शिवप्रसाद सिंह

अलग अलग वैतरणी

लोकभारती प्रकाशन

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

20.8.75

द्वितीय संस्करण : फरवरी, १९७०

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग,
इलाहाबाद-१

●

प्रथम संस्करण : नवम्बर, १९६७

●

कापीराइट
शिवप्रसाद सिंह

●

सुपरफ़ाइन प्रिंटर्स
१-सी. बाई का बाग, इलाहाबाद
द्वारा मुद्रित

मूल्य : रु. ..

पड़ोसी गाँव के बाशिन्दे
नागार्जुन, त्रिलोचन और शमशेर को
सप्रेम

तट चर्चा

कहा जाता है कि सती-वियोग से व्याकुल शिव के आँसुओं की धारा वैतरणी में बदल गयी। इस पुराण-कथा का प्रतीकार्थ जो हो, मुझे इसे पढ़ते हमेशा ही विक्षिप्त, बहिष्कृत, संत्रस्त और भीड़ के संगठित अन्याय के विरुद्ध जूझते शिव की याद आ जाती है। जब शिवत्व तिरस्कृत होता है, व्यक्ति के हक़ छीने जाते हैं, सत्य और न्याय अवहेलित होते हैं, तब जन-जन के आँसुओं की धारा वैतरणी में बदल जाती है। नरक की नदी बन जाती है।

बेचारे करैता गाँव की क्या बिसात! बचपन में, मेरे गाँव के पटवारी मुंशी हरनारायण लाल कहा करते थे कि पतिला 'नाचिराग़ी मौज़ा' है। उस समय मुझे इस शब्द में अजीब रूमान का बोध होता था।

रात के सन्नाटे में एक तेज़ झनझनाती आवाज़ उठती थी—"ति-ति-ति-ति-ति-तिल्लो-तिल्लो-तिल्लो····"

"यह क्या बोल रहा है?"

मेरे पूछने पर बाबा कहते—"पतिला डीह का करैत ठनक रहा है। अब पानी बरसेगा।"

'नाचिराग़ी मौज़ा' और "करैत का ठनकना" मेरे लिए नई चीज़ें नहीं हैं। जाने कितने गाँव नाचिराग़ी मौज़ों में बदल गये। आज वहाँ झाड़-झंखाड़ के बीच सिर्फ़ करैत ठनकते हैं। लेकिन किसान है कि उसमें से भी बारिस के सगुन उचार लेता है। मैं बार-बार सोचता हूँ कि ये मौज़े नाचिराग़ी क्यों हुए····?

बाढ़, विप्लव, युद्ध, सूखा, अकाल या और कुछ ?

इस उपन्यास पर मैं कई बरसों से काम करता आ रहा हूँ। कई बार काटा-पीटा और रद्दोबदल किया है। जानता हूँ यह अन्तिम रूप भी मेरे मन के करैता की सही 'ठनक' को बाँध नहीं पाया है। पर कहीं न कहीं तो विराम चाहिए ही।

मैं चाहे लाख चाहूँ, पढ़ने वाले इसे यदि आंचलिक उपन्यासों की पंक्ति में डाल दें, तो मैं कर ही क्या सकता हूँ। हाँ, निवेदन सिर्फ़ इतना है कि पढ़ते समय उपन्यास यदि आंचलिक लगे तो लगे, आपकी दृष्टि आंचलिक न हो, बस।

इस उपन्यास के अध्याय सत्ताइस और सत्रह क्रमशः 'धर्मयुग' और 'सारिका' में धारावाहिक छपे। इसके लिए मैं डॉ० धर्मवीर भारती और श्री कमलेश्वर का आभारी हूँ। कुछेक अंश इधर-उधर और भी छपे हैं। यह सब लेखक की विवशता रही है। इसके लिए पाठक क्षमा करेंगे।

परम आदरणीय पं० वाचस्पति पाठक की मेरे ऊपर सदैव आशीष और कृपा रही है। लोकभारती प्रकाशन के श्री दिनेशचन्द्र ने इस उपन्यास के प्रकाशन में अद्भुत तत्परता और सदाशयता बरती है। महावीर प्रेस वाराणसी के श्री बाबूलाल जैन फागुल्ल किसी न किसी रूप में मेरी अनेक पुस्तकों के मुद्रक रहे हैं। इन सबके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। पुस्तक में अध्यायों के आरंभ के सज्जाचित्रों के लिए कलाकारों का आभारी हूँ।

दीपावली १–११–६७
दुर्गाकुण्ड, वाराणसी

—शिवप्रसाद सिंह

एक

आज ही मेला शुरू हुआ है। कल खत्म हो जायेगा। हर साल रामनवमी को करैता के देवीधाम पर यह मेला होता।

देवीकुण्ड के चारों कगारों पर आदमी। मन्दिर के इर्द-गिर्द आदमी। चौतरफ़ा फूटनेवाले रास्तों पर आदमी। रास्ते-बेरास्ते पेड़ों के नीचे, सर्वत्र आदमी-ही-आदमी। इनमें मर्द कम, औरतें और बच्चे ज़्यादा। तरह-तरह की रंगीन साड़ियों में लिपटी, साज-पटार किये माथे पर अँगूठे के बराबर निशान का बुन्दा लगाये, कलाइयों में चूड़ियाँ और गहने झमकातीं, भीड़ में एक-दूसरे का सँग छूटने की आशंका से परेशान चीखती-चिल्लातीं, माथे की गठरियों को सँभालतीं, धक्के देनेवालों पर गुर्राती-खिजलाती औरतें। तरह-तरह की काली, गोरी, गन्दुमी-नवची; अधेड़, बूढ़ी। एक-एक के साथ बच्चे-बच्चियों की लम्बी क़तार। एक का हाथ एक पकड़े, इंजन के साथ जुड़े मालगाड़ी के डब्बों की तरह, हिलते-डुलते, लड़खड़ाते-घिसटते बच्चे-बच्चे। रास्ते-बेरास्ते चलती इन मालगाड़ियों का आपस में टकराना स्वाभाविक है।

पर इनमें से कोई स्वाभाविक नहीं मानता। हर क़तार अपनी सुविधा और सुरक्षा के लिए अड़ी-डँटी, सन्नद्ध। कोई किसी के लिए रास्ता नहीं देता। कोई किसी को अपने से पहले तमाशा देख लेने की बात को सह नहीं पाता।

मिट्टी के खिलौनों की दूकान पर 'बबुए' देखकर बबुए ठुनक जाते। माताओं का आँचल पकड़कर मचलने लगते।

"आओ चलो, नहीं तो दूँगी एक थप्पड़। जो देखते हो, वही ख़रीदने के लिए नंगई करते हो।" टीन की पपिहरी के लिए ज़िदियाये बच्चे की पपिहरी रुलाई से माँ चिढ़ जाती है।

हरे-लाल चमकीले काग़ज़ के चश्मे लगाये बच्चों को सारी दुनिया रंगीन लगती है।

"लौटोगे भी कि यहीं रात करोगे तुम लोग।" टुन्नू बाबू की कलाई में बँधी दो पैसे की अचल सूईवाली घड़ी में समय बदलता हो नहीं। वे बाबू के हाथ से कलाई छुड़ाकर मेले में खो जाना चाहते हैं।

"भई हम तो थक गये नाचते-नाचते। पैर दुखने लगे।" अधेड़ बाबू जामुन के पेड़ में पीठ टिका कर उदास हो जाते हैं।

"इत्ती जल्दी ?" डोरी खींचने पर रेंगनेवाले साँप को नचाते-नचाते जिरिया अपनी अम्मा से हँसकर कहती है—"माई ! बाबू तो थक गये।"

"मैंने तो अभी तक कठवत और बेलना भी नहीं ख़रीदा। भीड़ के मारे तो दूकान पर जाना मुहाल हो गया।" माई गठरी में से ढूँढ़ियाँ निकाल-निकाल कर बच्चों को बाँटती हैं।

"आप भी लीजिए।" अम्मा बाबू की ओर ढूँढ़ी बढ़ाती हैं।

"खाओ तुम्हीं लोग। मुझे भूख नहीं।" वे हथेलियों को फँसाकर अपने सिर के नीचे लगा लेते हैं।

"अम्मा।" टुन्नू बाबू फिर ठुनकने लगे—"तुम कहती थीं कि मेले में मिठाई ख़रीदेंगे।"

"लो लो, खा लो ढूँढ़ी। यह क्या किसी मिठाई से कम है। अभी

एक चीज़ भी नही ख़रीदी अपनी। गुलजारी फूआ कह रही थीं कि करैता के मेले में अमफरनी और कद्दूकस बड़ा बढ़िया मिलता है।"

"तुम्हें जो ख़रीदना-बेसाहना हो, जल्दी कर-करा लो।" थके बाबू ढूँढ़ी के गिरे हुए चूरों के न्यौते पर आयी मक्खियों को झटकारते हुए बोले—"मैं कोल्हू के बैल की तरह इस मेले में चक्कर नहीं काटता रहूँगा।"

"अरे जिरवा !" अम्मा गठरी बाँध कर झटपट उठती है—"ई तो हर बात में अनसाने लगते हैं। इत्ती दूर से आये तो कुछ ख़रीदें भी नहीं।"

"तो जाकर ख़रीदती क्यों नहीं ? कौन मना करता है तुमको।" बाबू किटकिटाते हैं—"पाँच रुपया बनिया से हथफेर लेकर आयी हो। उड़ाओ। मैं कुछ कहूँ तब तो। मैंने तो इसीलिए बोलना ही छोड़ दिया। कौन ऐसे बेकहल प्रानियों के पीछे जी हलकान करे।"

अम्मा मुँह लटकाये चली गयीं।

करवन का यह सबसे बड़ा मेला अपनी रंगीनी, चहल-पहल, हँसी-खुशी और मस्ती के लिए मशहूर था। दूर-दूर के लोग इस मेले को देखने के लिए आते थे, क्योंकि इसकी कुछ ऐसी ख़ास विशेषताएँ थीं जो दूसरे मेलों में नहीं होतीं। भेड़ों की लड़ाई सभी मेलों में होती है; पर गबरू नट का मशहूर भेंड़ा 'करीमन' सिर्फ़ इसी मेले में आता था। घुड़दौड़ तो और मेलों में भी होती है, पर सासाराम के कलक्टर 'क्लार्क साहब' की मोटर को डाँक जानेवाला देवीचक के केशो बाबू का 'अबलखा' इसी मेले को सुशोभित करता था। बिरहे के दंगल का रिवाज़ भी खूब है। हर मेले में एकाध दंगल हो जाते हैं, पर छन्नूलाल उस्ताद की मण्डली इसी मेले में उतरती थी। दसों नहों को जोड़कर गुरू का सुमिरन करके, अपने बारह अंगुल के लम्बे बालों को अँगूठी के नगों से पीछे उलटकर रामदास इसी मेले में अपनी 'सदा बहार कम्पनी' की नौटंकी पेश किया करता था।

औरतों से छेड़खानी हर मेले में होती है। पर करैता की किसी शोख़ लड़की से छेड़खानी करने के कारण मारपीट और ख़ून-ख़राबा इस मेले

का सालाना रिवाज़ था। इन चन्द सुर्ख़ियों से मालूम हो जायेगा कि करैता के मेले की क्या शान-शौक़त थी और क्यों उसके आकर्षण से खिंचकर लोग दूर-देसाउर से चले आया करते। इस मेले का कभी विज्ञापन नहीं होता। खेल-तमाशों के कोई इश्तहार नहीं छपते थे। पर नौगढ़ की तलहटी से गंगा पार के सौ मील के घेरे में बसे हुए तमाम गाँवों में मेले में होनेवाली हर दिलचस्प बात की चर्चा एक हफ़्ता पहले से होती रहती थी।

●

बुल्लू पण्डित करैता गाँव की हँसी-खुशी के सफ़रमैना हैं। उनकी अपनी हँसी-खुशी का कोई महत्त्व नहीं। घर में अकेले वे हैं और सत्तर साल की बूढ़ी माँ। नाम है दयाल। मगर गाँव बुल्लू ही कहता है। उनका चेहरा बुल्ले मछली की तरह मासूम और भोला है इसीलिए। चालीस-पैंतालिस के हुए पर चेहरे पर बचपन की निर्लोम चिकनाई ज्यों-की-त्यों बरकरार है। न दाढ़ी, न मूँछ। पण्डित झब्बूलाल उपधिया जब खुश होते; या जब बिना पैसे दयाल से कोई बेगार करानी होती तो उन्हें प्रेम से 'बालखिल्य' कहते। सुना वे लोग दैवी आत्मा थे। सदाबहारी बालक। विधाता के शरीर से निकले। अँगूठे बराबर देहवाले ये साठ हज़ार बालक सूरज देवता के रथ के आगे-आगे उड़ते हुए चलते हैं, रोशनी की जयजयकार करते हुए।

करैता गाँव में कोई शादी-ब्याह हो, कोई मुण्डन-जनेऊ हो, कोई व्रत-त्योहार हो, या कोई उत्सव-समारोह ही हो, दयाल महराज उसमें सबसे पहले तैयार दिखेंगे। उत्सव के हफ़्ते-भर पहले से इन्तजाम के लिए उन्हें बुला लिया जायेगा। दयाल महराज को न अपनी फ़िकर, न घर की, न माँ की। बस वे दूसरों की खुशी के आगमन के अवसर पर चेहरे पर स्वागतम् का पोस्टर चिपकाये घूमते नज़र आयेंगे। किसी को किसी चीज़ की ज़रूरत

हो, दयाल महराज से कहे। वे आकाश-पाताल छानकर चीज़ बरामद कर देंगे।

"क्या करूँ भाई! बाभन हूँ। हलवाही-चरवाही कर नहीं सकता। मिहनत-मजदूरी कोई करायेगा नहीं। ऊपर-झापर के कुछ काम कर देता हूँ। इसी से तो दो प्रानी का गुज़र चलता है।" वे बड़ी संजीदगी से कहेंगे—"इस महँगाई में तो वह भी गया। कितने लोग हैं, जिन्हें बाज़ार से सौदा-सुलुफ मँगवाना रहता है अब? कहाँ होता है उत्सव-त्योहार? बस किसी तरह ज़िन्दगानी कट जाये, यही बहुत है।"

मेले के दिन सुबह ही से दयाल महराज फेरू सिंह के दरवाज़े आ बैठे। अब दो ही चार घर तो रह गये हैं, जहाँ औरतें तेल-साबुन, चोटी, कंघी, जम्फर-ब्लाउज़ वग़ैरह अब भी मँगवाती हैं उनसे, क़स्बे भेजकर। फेरू सिंह की औरत दयाल महराज को काफ़ी मानतीं। बहुत कम औरतों के शादी के बाद मायके से ज़िन्दा सम्बन्ध रहते हैं। मगर फेरू सिंह-बो दयाल को अक्सर अपने मायके पठाती रहती हैं। आजकल वहाँ उनकी काफ़ी आमदरफ़्त थी।

एक बजे ही फेरू के छोटे लड़के नन्हकू को गोद में चिपकाये वे देवीधाम की ओर निकल पड़े।

"नन्हकू!" रास्ते में वे कसमसाते लड़के के गाल को चूमते हुए प्यार से बोले—"घाम लग रहा है भइया?" उन्होंने अपना गन्दा फटा-पुराना गमछा अपने सिर से नन्हकू के सिर तक फैला दिया। दोनों सिरों पर चँदोवा तानकर दयाल महराज ने जो दुलकी ली तो मेले में ही आकर रुके।

उधर देवीधाम के छवरे पर चँदोवा ताने गोद में लड़का लिये किसी आदमी को ढुलकते देखकर करैता की गलियों में सक्रियता बढ़ गयी। दूर से ही देवीधाम के चौगिर्द उमड़ते जन-समूह को देख-देखकर गाँव में दरवाज़ों पर बैठे लड़के अधीर हो रहे थे। अब तक उन्हें पिता-चाचा, बाबा-ताऊ की झिड़कियाँ ही रोके थीं।

"देखते नहीं घाम? निकलोगे छवरे पर तो खोपड़ी चनक जायेगी।"

"सब लोग जा रहे हैं।" लड़के अधीर होकर चिरौरी करते।

"कौन जा रहा है ? तीन बजे के पहले कोई नहीं निकलता मेला देखने।"

"और ऊ ?" लड़के अपनी पतली-पतली नन्हीं उँगलियाँ उठाकर छवरे पर दुलकते दयाल की ओर संकेत करते।

प्रौढ़, अल्हड़, अनुभवी लोग आँखों पर हथेली की आड़ करके आश्चर्य से छवरे की ओर देखते।

"दयलवा है। इसे तो बज्जर भी गिरे तो कोई रोक नहीं सकता। सबसे आगे मेला में न पहुँचे तो इसके पेट का पानी नहीं पचेगा।"

इधर बालखिल्य जी मन्दिर के पास पहुँचकर सुस्ताने लगे थे। नन्हकू के गाल धूप की वजह से लाल हो गये थे। दयाल उसे गमछे से हवा कर रहे थे। मेला की गहमागहमी, रौनक़, आवाज़ें, गन्धें उन्हें बरजोरी अपनी ओर खींच रही थीं, पर मुरझाये मुँह लड़के को लेकर मेला का मुआयना करना दयाल को पसन्द नहीं। कौन-सी देर हुई जा रही है ? ज़रा ठण्ढाय लें तो चलें।

"पानी।" नन्हकू अपनी नन्हीं-नन्हीं हथेलियों से दयाल महराज का मुँह पकड़कर बोला—"पानी।" सहसा वह ठुनकने लगा। रोकर चीज़ें माँगने की आदत अभी भी छूटी न थी। दयाल महराज घबरा गये। कहीं लड़के को लू तो नहीं लग गयी।

"वाह रे नन्हकू बाबू। आओ। चलैं तोहें पानी पिला दें। चुप रहो। चुप रहो।"

दयाल नन्हकू को गोद में उठाये मेले में घुस गये।

पच्छिम तरफ़ काफ़ी भीड़ थी। दयाल महराज को भीड़ अच्छी नहीं लगती। भीड़ अगर अपने काम में लगी हो और दयाल महराज की ओर ध्यान ही न दे, तब कुछ अच्छी लगती है। तब दयाल महराज को लगता है कि भीड़ है ही नहीं। वह कहीं से, किसी भी क़तार के बीच से घुस-पैठकर निकल सकते हैं। सब लोग अपनी-अपनी दिलचस्पी की बातों में

मगन रहते हैं। धक्का भी लग जाये किसी को तो कोई मुँह नहीं बनाता। डाँट-डपट नहीं करता।

दयाल महराज पानी की टोह में निकले थे।

वे जानते हैं कि मेले में पानी कहाँ मिलेगा। वो पूरब तरफ़, भीटे के पास, जहाँ हलवाइयों की दूकानें लगती हैं। वे यह भी जानते हैं कि नन्हकू को बहुत प्यास लगी है, पर मेला है। मेले में इतनी चीज़ें आयी हैं। उन्हें छोड़कर सरपट कैसे दौड़ा जा सकता है। देखते चलें सब-कुछ। घूमते-घामते, चलते-चलते पहुँच ही जायेंगे भीटे पर। एकदम से घाम में से आकर तुरन्त पानी पीना भी ख़तरनाक होता है।

"का हो भोलू साह।"

दयाल महराज हलवाइयों के खित्ते में आ गये थे। सामने करैता के भोलू साह ने दूकान लगायी है। बुलाने पर सुनते ही नहीं। गाहकों की बेवक़ूफ़ी पर तरस खा-खाकर हलक़ सुखवा रहे हैं।

"का हो साहजी।" दयाल महराज ने फिर हाँक लगायी।

"आओ बुल्लू पंडित।" भोलू साह की आँखें अपनी जिन्स पर लगी थीं।

"ई क्या किया साहजी आपने ?" दयाल महराज नाक पर गमछा हिलाते हुए बोले—"ई खाली गुड़ही जलेबी की दूकान ? ई क्या बात ? पर साल तो आपने मिठाई की दूकान लगायी थी ? ई उलट-फेर काहे ?" जलते तेल की भभक उनके मगज़ में चढ़ गयी थी।

"मिठाई की दूकान लगाकर बंटाढार करें ?" भोलू साह सामने से गुज़रती भीड़ की ओर ललचायी आँखों देखते हुए बोले—"सारा माल चौपट हुआ पर साल। आधा-तिहा भी नहीं बिका। गाँव की दूकान में पड़ा-पड़ा सड़ा किया। कौन ख़रीदता है चिन्नी की मिठाई—पाँच रुपया सेर। देख आइए। घूमे कि नहीं ? उधर घूम आइए। एक दूकान सामने अमनिया के रतनलाल की। चार उधर उत्तर मुँह को नयी बाज़ारवालों को। सालों के चेहरे पर पपड़ी पड़ी है, हाँ। रतनलाल की जान-पहचान

है देस-दिहात में। ऊ जानो अपना दाम निकाल भी लेगा। बाक़ी सालों से पूछो जाकर। ऊ हंडा-हंडियाँ, गैस-बत्ती, झंडे-झंडियाँ और चारों ओर सिलेमा की तसवीरें। सैयदराजा से आयी है नयी बाजार के परसोतम सेठ की दूकान। चार बीघे में घेरा डाला है। टट्टर और तिरपाल से घेरकर कुरसियाँ लगायी हैं। केवड़ा डालकर पानी पिलाता है। बाकी सबेरे से दुपहर होने को आयी, मगर एक खेप की पूरियाँ भी नहीं खपीं अभी तक। एकदम सन्नाटा। दौड़ा-दौड़ा आया था उसका मुनीम। कहने लगा—

"का हो भोलू साह ! ई का मामला है यार। हमारी तो टेंट कट गयी जानो। बधिया बैठ जायेगी। कुछ गाड़े-गूड़े तो नहीं हो यार उस ज़मीन में ?"

हमने कहा—"हाँ साले, गाड़े हैं उहाँ। तू समझ रहे थे कि ई हरिहर छत्तर-ददरी का मेला है ? पवडर पोतकर चुनरी पहन ले और खड़े हो जा दरवज्जे पर। देख भीड़ का रेला-पेला मच जाता है कि नहीं।" साला गरियाता हुआ गया है।

"तो पोता पौडर उसने ?" दयाल महराज ने सहज जिज्ञासा से पूछा।

"सच कहता हूँ, यार बुल्लू पण्डित ! उधर एक ठो बड़ा भारी तम्बू गड़ा है। आपने भी तो देखा ही होगा। फाटक पर मचान बँधी है। ऊपर खड़ा है एक ठो भँडुवा। चुन्ना पोते। कपार पर चोंच की तरह नोकीली टोपी लगाये। बग़ल में एक ठो चमरनेटुवा भी है। नाच-गाकर आदमी बटोरते हैं साले।"

"इन्दरजाल ?"

"हाँ, हाँ इन्दरजाल।" भोलू साह ने मुँह को विकृत करके कहा—"गये थे आप उसके भीतर ? दस पैसे का टिकट है। जानते हैं क्या दिखाता है ?"

दयाल महराज ने गरदन हिलायी—"नहीं भाई।"

"जब भीतर की जगह खचाखच भर जाती है न, तो एक आदमी मेज़ पर चढ़ जाता है। फिर वह लुंगी खोलकर सर पर बाँध लेता है, बस।"

"नहीं।" दयाल महराज को विश्वास नहीं हो रहा था—"पब्लिक कुछ नहीं कहती साले को ?"

"पब्लिक चिढ़कर गालियाँ देती है। मारने दौड़ती है। तो हाथ जोड़कर कहता है—भाइयो, माफ़ करें। इसका भेद किसी से न कहें। मैं आपके पैरों पड़ता हूँ। आपका तो पैसा गया ही। मेरा पेट क्यों काटते हैं।"

भोलू साह ने बड़ी गम्भीरता से हाथों और मुद्राओं से सारा दृश्य साकार करते हुए कहा—"जो जनता को जितना चूतिया बनाता है, उतना ही मज़ा काटता है। यह नया ज़माना है न। यह सब लोग ख़ूब ठाठ से देखते हैं। बाकी दस पैसे की शुद्ध देशी जलेबी खाने कोई नहीं आता। इसी से तो यह देस ग़ारत हो रहा है।"

"सच्ची ?" दयाल महराज की आँखें लिलार में सट गयीं।

"हाँ हो। सच्ची न तब क्या झूठ।"

भोलू साह के उदास चेहरे पर मुसकराहट आ गयी।

सच ही बड़ा कंजूस है भोलुवा। दयाल महराज ने मन-ही-मन सोचा—हँसता भी कितनी कंजूसी से है। जानो गाहक को बेदाम लुटा रहा हो अपना माल।

"पानी !" तभी अचानक नन्हकू को याद आयी कि उसे प्यास लगी है।

"ई तो फेरू सिंह का नन्हकू है न ?" भोलू साह ने आत्मीयता से पूछा—"पिलाओ, पिलाओ पानी बेचारे को। अरे बुल्लू महराज ! ले लो पाव-भर गरमागरम जलेबी। ऊ चुरचुराती ज़ायेकदार है कि तबीयत खिल जायेगी।"

"अरे साहजी ! अब हमीं मिले हैं आपको मूड़ने के वास्ते। पता नहीं कौन-सा तेल चढ़ाये हो कड़ाही में कि सरवा धुआँ लगने से उबकाई आ रही है।"

तभी नन्हकू ने जलेबी की ओर उँगली उठा दी।

"देख लो बुल्लू पण्डित !" भोलू साह हँसे—"लड़का का मन बरह्मा

की तरह साफ़ होता है। वे असली-नक़ली का भेद तुरन्त कर देते हैं। देखो तो कैसे उँगली उठा दी नन्हकू ने। चलो ख़रीदो अब।"

"पैसा कहाँ है ?" दयाल महराज ने कहा।

"तुम लो तो। पैसा तो मैं वसूल लूँगा फेरू सिंह से।"

"अरे हटाइए साहजी, लस्का लगायेगा।"

"अब इसी पर मुझे गुस्सा आता है बुल्लू पण्डित ! इसी को कहते हैं कि तेली का तेल जरे........।"

"अच्छा भई, दे दो एक छटाँक।"

छटाँक-भर जलेबी लेकर दयाल पण्डित भौंचक ताकते रहे—"पानी किधर है साहजी ?"

"अरे भाई खाते चले जाओ पिछवाड़े। उधर बैठा है गुल्लू गगरा लेकर।"

एक जलेबी मुँह से लगाकर नन्हकू थू-थू करने लगा।

"क्या है नन्हकू बाबू ?" दयाल महराज ने दोने में झाँकते हुए पूछा।

"तीती।" लड़का तुतलाया।

"वह तो होगी ही। ऐसे मक्खीचूस की जलेबी तीती न होगी तो क्या मीठी होगी।"

नन्हकू पानी पी चुका। जलेबी दयाल महराज ने खा ली। पानी पीकर चलने को हुए तो सामने से दुक्खू नाई आता दिख गया।

दयाल महराज से उससे कोई मतलब नहीं। वे लड़के को गोद में उठाये गुड़ही जलेबीवाली दूकानों की क़तार के आगे-आगे चलने लगे। ललछौंही बर्रे और ढेर सारी मक्खियों से बचने के लिए सामने ताको, तो नीचे हाथ-मुँह धोने के लिए गिराये पानी के कीचड़-काँदो में पैर धँस जाये।

"वाह रे नन्हकू बाबू।" दयाल भुनभुनाये—"अच्छी प्यास लगी तोहें।"

"ए महराजजी, महराजजी ! !"

दयाल ने उलट कर देखा।

"के है ? दुक्खू ! का है हो ? काहे तू मेला कपार पर उठाये जा रहे हो ?"

"अरे जाने हम आपको कब से बुला रहे हैं। आप सुनते ही नहीं। फेरू सिंह मलिकार कहाँ हैं ?"

"काहे के ?"

"ऊ हैं कहाँ ? मिलें तब न बताऊँ।"

"अबहीं नहीं आये।"

"बाक़ी ठकुरहन ?"

"हम क्या सगरो गाँव का जिम्मा लिये हैं। आते होंगे लोग। जून-बेला हो रही है। चले होंगे अब। धीरे-धीरे आवेंगे। आन गाँव के हैं क्या कि बड़े भिनसारे चल दें ?"

"तब महराजजी तुम ही देखो।"

"हम का देखें ?"

उसने अपनी किसबत में से ऐना निकाल कर बुल्लू के आगे कर दिया। बुल्लू महराज कुछ समझ नहीं सके।

"ई तुम हमसे मज़ाक़ कर रहे हो ? हम क्या अपनी शक़ल नहीं देखे हैं ? गोल मुँह है। न मूँछ न दाढ़ी। कपार के बाल उजला रहे हैं। दायीं ओर एक ठो तिल भी है। बस, हो गयी न शिनाख़्त ? अरे दुक्खू राम हमको चिढ़ँकू समझ लिये हो क्या ?"

"अरे महराजजी। ई बात नहीं मलिकार ! आप तो गुस्सा हो गये। हम लोग परजा-पौनी हैं। हर मेले-ठेले में अपने मलिकार लोगों को ऐना दिखाकर दो-चार पैसा पा जाते हैं। साले तीन-तीन ठो लड़के हैं चिल-बिल्ले। पीछे पड़ गये। बब्बू चलो। बब्बू चलो। सबों को मन्दिर के पास बैठाकर आ रहा हूँ। कोई खिलौना-खिलौना चिल्लाता है तो कोई जलेबी-जलेबी। हम सारा मेला घूमकर हार गये। अपने मलिकार लोगों का कहीं पता ही नहीं चला।"

"हूँऽ।" दयाल महराज ने ऐने को मुंह के सामने कर लिया। उन्हें बहुत अच्छा लगा कि दुक्खू उन्हें भी मलिकार समझता है।—"हम तो समझे यार कि तुम मज़ाक़ कर रहे हो।" उन्होंने ऐने में ताकते हुए अपने होठों को बटोर-बटोर कर टेढ़ा-सीधा किया। फिर ऐने को नन्हकू के आगे करके बोले—"लो यार नन्हकू, तुम भी मलिकार बन जाओ।"

"लाइए, लाइए। अब आप मज़ाक़ कर रहे हैं।" दुक्खू रूआँसा हो गया। उसने दयाल महराज के हाथ से ऐना छीन लिया और भुनभुनाता हुआ चला गया।

"अब ई लीला देखो!" दयाल महराज मुसकराये—अपना ही मुँह देखें और पैसा भी दें। अरे वाह ?····ऐने का भी एक ही तमाशा है। भगवान् ने आदमी ऐसा बनाया कि सारी दुनिया तो तुम देख सकते हो, बाकी अपना मुँह नहीं देख सकते।

अच्छा ही किया। नहीं, कहीं अपने से अपना मुँह दीखता होता तो इस सूखे-अकाल में अपना मुँह ही देख-देखकर कितने लोग बीमार हो जाते।

जमनिया का जयकिसुन पानवाला भी एक हँसोड़ है। इस साल उनकी दूकान नहीं आयी शाइत। कौन जाने आयी हो। अभी चौगिर्द घूमे कहाँ ? एक बार बुढ़ऊ मलिकार के लिए जरदा लाने गये। रामनवमी का ही औसर था। ऊ मेले में दूकान ले आने की तैयारी कर रहा था।

अपने आदमक़द शीशे में राख पोत दिया था उस बखत। सुखवा रहा था कि सूख जाये तो मल-मल कर चमकायें। मैंने उस ऐने में ताका, बड़ा बनमानुस-जैसा चेहरा दिखा। 'का हो पण्डित! इहै ऐना ले जा रहे हो करैता ? इसमें तो चेहरा बनमानुस-जैसा लगता है।' मैंने पूछा।

ठठाकर हँसा बाँभन। बोला, "ऐना कभी धोखा नहीं देता बुल्लू पण्डित। जो जैसा रहता है, वैसा ही दिखता है।"

मैं चिढ़कर बोला—"अच्छा, अच्छा। ले चलो वहाँ मेले में ई ऐना। जो तुम्हारी आकी-बाकी है वहाँ हो जायेगी। ढेला मार-मारकर तोड़ न दिया लँवडों ने तो कहना।"

"मेला भी एक ऐना ही है पण्डित। करैता का मेला पूरे नरवन का ऐना है। जैसी सभ्यता होगी आपके देस-दिहात की, मेले के ऐने में वैसी ही दिखेगी। आपके गाँव के लँवडे ऐना तोड़ेंगे तो पता चल जायेगा मुझे कि कितना शरीफ़ गाँव है करैता, हाँ।"·······

"कैसी अनहद बानी बोल रहा था पण्डित। क्यों न बोले भाई, बड़े-बड़े लोगों का सत्संग है।"

दयाल महराज एक क्षण वैसे ही खड़े रहे। फेरू सिंह ने कहा था कि इधर-उधर कहीं मत जाइएगा। ऐसा न हो कि हम लोग मेले में पहुँचें तो शाम तक आपको ढूँढ़ते ही रह जायें। चुपचाप मन्दिर के पास बैठिएगा।

"सो हे मन चलो मन्दिर के पास।" दयाल महराज बुदबुदाये—"का हो नन्हकू बाबू! ख़ूब मज़ा आ रहा है न ? देख लो जी-भर के, हाँ। नहीं ई बहार फिर साल-भरे के बाद लौटेगी।"

●

करैता मेले की शुहरत और बड़प्पन का एक कारण 'असकामिनी' देवी का प्रताप भी था। देवी-मन्दिर की देहरी पर माथा झुकाने और आशीर्वाद पाने के लिए दूर-दूर से यात्री लोग आते। गोगई उपधिया 'असकामिनी' का अर्थ 'आकाशगामिनी' बतलाते। "ई मामूली देवी नहीं। अष्टभुजा है। अष्टभुजा! जब कंस ने यशोदा की लड़की को पत्थर पर पटका तो वह आकाश में चली गयी और वहीं से बोली कि मुझे क्या मारता है बेवक़ूफ़; तेरा मारनहार जनम गया है गोकुला में। हाँ तभी से वह आकाशगामिनी कहलायीं। वही हैं ये देवी।" मगर सेवक लोग देवी के नाम का मतलब आस पूरनेवाली लगाकर ही सन्तुष्ट होते थे। गाँव के स्व० ज़मींदार जैपाल सिंह के पितामह स्व० ठाकुर देवीचरण सिंह निपूते थे। विन्ध्याचल में साक्षात् भगवती ने दर्शन दिया था उनको। फिर अपनी मूर्ति देकर कहा था कि ले जा इसे अपने गाँव में प्रतिष्ठित कर। तेरी सकल कामना पूरी

होगी । विन्ध्यवासिनी धाम से यह मूर्ति देऊ सोखा ले आये थे । इसे ठाकुर देवीचरण ने ही पत्थर का विशाल मन्दिर बनवाकर पूजा-अर्चा की विधि से पधराया । बाबू जैपाल सिंह के पिताजी के ज़माने में मन्दिर में नया कलश चढ़ा । भगवती की दोनों आँखें सोने की बनीं । आरती-पूजा का सारा साज-सामान नया किया गया । क्योंकि उसी साल करैता के ज़मींदार की सौभाग्यवती पत्नी की पवित्र कोख से जैपाल का जन्म हुआ । देवी के इस 'प्रताप' की कहानियाँ चारों ओर फैल गयीं और हर साल रामनवमी के अवसर पर बाँझ और निपूती औरतों की भीड़ इकट्ठी होने लगी ।

उधर सूरज की लाल किरणें अँजुरी-भर जवाकुसुम के फूल बिखराकर देवीधाम की देहरी पर शीश नवातीं; इधर औरतों की भीड़ द्वार पर खड़ी होकर 'मैया' से आशीश की भीख माँगती :

"—खोलो ना, खोल दो माँ, अपने इन बज्र-किवाड़ों को खोलकर,
एक बार बाहर भी देखो, तुम्हारे सेवकों की भीड़ लगी है ।
—खोलो ना, खोल दो माँ, अपने इन बज्र-किवाड़ों को खोलकर
एक बार बाहर भी देखो, तुम्हारे बालक तुम्हारे आसरे खड़े हैं ।
"—खोलो ना, खोल दो माँ, अपने इन बज्र-किवाड़ों को खोलकर
एक बार बाहर भी देखो, तुम्हारे भक्तों की भीड़ देहरी पर माथा
झुकाये खड़ी है ।"........

गोगई उपधिया देवीधाम के पुजारी थे । ठाकुर की ओर से पूजा-आरती, अर्चा-भोग के लिए उन्हें दस बीघे खेत माफ़ी मिले थे । गोगई के लड़के शीतलाप्रसाद जब पन्द्रह-सोलह साल के हुए तो महाराज को बोध जगा कि जब तक देश गुलाम है, पूजा-पाठ बेकार है । वे नरवन के कांग्रेसी नेता सुखदेव राम के झण्डाबरदार हो गये । जैपाल सिंह को बहुत गुस्सा आया । उन्होंने गोगई को पुजारी-पद से निकाल बाहर किया । खेत छिन गये । उपधाइन रोती-कलपती छावनी पहुँची । मलकिन के बहुत समझाने पर जैपाल सिंह ने खेत वापस कर दिये । तब से उनके लड़के श्री शीतला-

प्रसाद मन्दिर के पुजारी बने । गोगई बहुत खुश हुए कि उन्हें पूजा-पाठ से छुट्टी मिली । खेत भी घर ही रह गये ।

दयाल पण्डित नन्हकू को गोद में चिपकाये जब मन्दिर पहुँचे, तो देखा शीतलाप्रसाद पुजैया में मिले 'परसाद' को बटोरने-रखने में व्यस्त थे ।

"का हो शीतला ! आज तो बेटा ख़ूब मलाई कटी होगी ?" उन्होंने नन्हकू को मण्डप के पास उतारते हुए कहा ।

"के है बुल्लू चच्चा !" शीतलाप्रसाद हाँड़ी में रखे लड्डुओं को पत्तल से ढँकते हुए बोले—"अब का मलाई कटेगी चच्चा ! शुकवा उगा तब से आया हूँ हियाँ । उठते-बैठते कमर दुख गयी । भीड़ ऐसी कि साँस लेना मुश्किल । बाक़ी दच्छिना के नाम पर ठनठन गोपाल ।" उन्होंने मुट्ठी बाँध अँगूठे नचाते हुए कहा ।

"ई क्या बात ?" दयाल महराज को शीतला की बात पर विश्वास नहीं हुआ—"गोगई चच्चा के बखत में बीस-पचीस 'पियरी' गिरती थीं । हमें मालूम नहीं क्या ? गाँव के केतने लोग खरीद कर ले जाते थे ऊ साड़ियाँ तोहरे हियाँ से । बीस-पचीस सेर लड्डू और कम से कम एक 'ओड़चा' घुघरी और बताशा । रुपया-पैसा ऊपर से दच्छिना में ।"

"अब हेल आओ चच्चा ! आकर देख लो । तुमसे क्या छिपा रहेगा ? ई एक पतुक्की में लड्डू हैं सेर-डेढ़ सेर—और ई सेर-सवा सेर बताशा । अरे और तो और, चने की भिगोई घुघरी देने में भी अब हियरा फटता है ठकुराइन लोग का ।"

"पियरी ?"

"एक भी नाहीं । चढ़ी कम-से-कम पचीस-तीस । रैभानपुर की रहीं एक ठकुराइन । हमने कहा कि माई को चढ़ाई पियरी ले जाइएगा सरकार । ई तो पुजारी की होती है । बड़ी कमसिन उमर थी । देखने-वेखने में ख़ूबसूरत थीं । हँसकर बोलीं—माई का परसाद अंग पर नहीं डालूँगी पुजारीजी तो मनोकामना कैसे पूरेगी ।"

"ले जाओ डालो अंग पर ।" मैं मन-ही-मन भुनभुनाया—"माई का

परसाद पहनकर करो लसड़-फसड़ और पुरवो मनोकामना। का ससुर दरिद्दर जबाना आ गया चच्चा। अब पुजैया में भी चार सौ बीसी चलने लगी।"

"क्या करें लोग भाई ? देखते नहीं कि कैसा निहंग ज़माना है।"

"जबाना तो है चच्चा। खाने को नहीं मिलता, पर बेटवा खातिर मनौती की भीड़ घटती ही नहीं है। सारे देहात से चार-पाँच सौ बहिला-बाँझ तो आज आयी ही रही होंयगी। चौकठ पर माथा पटक-पटक कर बेटवा माँगती रहीं। हम भगवती माई से मन-ही-मन मनाते रहे कि कम से कम ई पाँच सौ दरवज्जा तो बन्द ही रखो मइया। जो ही कम हों! जेतना आय गये हैं बाहर उतने ही को खाने को नहीं मिलता। जो बन्द हैं ऊ भी खुल जायँ कहीं, तब तो ई बानरी सेना पेड़ के पत्ते भी चाट जायेगी।"

"राम राम!" दयाल पण्डित हँसे—"अरे शितलवा, तू मन्दिर में बैठकर यही सब करता है ?"

"क्या करें चच्चा। तबीयत बौरा गयी है जान लो। सालियों को खाने को तो नहीं मिलता। पुजारी की दच्छिना देने में हियरा फाटता है। एक से एक रद्दी सामान ले आते हैं सब हियाँ चढ़ाने को। बाकी वाह रे जबाना, वाह। ऊ साज-सिंगार, ऊ पौडर-लाली, ऊ अत्तर-फुलेल कि सरवा मग़ज तड़क रहा है। हम तो चच्चा कई बार भाग खड़े हुए भीतर से। हाँ, लगे कि तबीयत चकरी भौंरा खेल रही है। यहाँ रुके नहीं कि कै हुई नहीं। ई लोग इतना अत्तर-फुलेल काहे लगाते हैं चच्चा ?"

"बदबू छिपाने के वास्ते, और काहे। ई जान लो शीतला कि अत्तर-फुलेल जियादा वही लगाता है जिसके बदन से बदबू निकलती है।"

"सच्ची ?"

"हाँ रे और क्या ?"

शीतलाप्रसाद बहुत प्रसन्न हो गये। वे भीतर गए और पतुक्की से दो लड्डू निकालकर ले आये—"लो चच्चा, ज़रा पानी पी लो।"

दयाल पण्डित ने मुसकराकर लड्डू ले लिये।

"पानी नहीं है हो शीतला ?"

"खा लो चच्चा। पानी काहे नहीं है। चौबीसों घण्टा जब यहाँ रहना है तो पानी के बिना कैसे चलेगा।" एक लड्डू नन्हकू बाबू खा गये। एक दयाल पण्डित। पानी पीकर गमछे से मुँह पोंछ मण्डप से निकलकर बाहर आये। बस्ती की ओर नज़र उठायी तो चेहरा खिल गया।

"ऐ शीतला।"

"का है चच्चा।"

"अरे ज़रा ई देखो। ई छूटा है टिड्डी-दल। गाँव से लेकर देवीधाम के समूचे छवरे पर जानो उमड़ गयी है करैता की आबादी। अब जाकर बख़त हुआ है हमरे नगर के तमाशबीनों का।"

बड़े-बूढ़ों का दल अभी पीछे था। ठमक-ठमककर आता हुआ। पर लड़कों ने क़तार से टूटकर, अपना एक अलग गिरोह बनाकर 'रेस' लगा दी थी। हाँफ़ते-चीख़ते, चिल्लाते वे मेले की ओर दौड़ पड़े थे। देवीधाम के चौगिर्द आदमियों के विराट् समुद्र में ज्वार-भाटे उठ रहे थे। भीड़ की चुम्बकीय शक्ति बच्चों को बुरी तरह खींच रही थी। 'उद्देख रे, उद्देख' चिल्लाते दौड़ते चले आ रहे थे।

सत्तन, कल्लू, सुरेश, कम्मू, पप्पू, दुग्गा।

"वाह बहादुरो! आओ, आओ, ज़रा इहाँ बैठकर सुस्ता लो।" दयाल महराज ने लड़कों को शाबाशी दी। उन्हें लग रहा था कि ये बच्चे उनके जबरदस्त अनुयायी हैं। तभी तो बिना किसी की परवाह किये ये अगाड़ी दौड़ आये। उन्होंने माथे पर से गमछा उतारा और लड़कों को एक क़तार में बैठाकर उन पर हवा करने लगे।

फेरू सिंह दयाल की गोद में नन्हकू को देखकर मुसकराये। गाँव का रेला मेले में मिल गया था। अलग-अलग टोलियाँ भीड़ में धँसती चली जा रही थीं।

"दयाल महराज!" फेरू सिंह ने पूछा—"नन्हकू ने पानी-वानी पीया ?"

"पैसा भी दिया था आपने ?" दयाल महराज को अचानक गुस्सा आ गया।

"अरे भाई, तो आप मेरे पर काहे नाराज़ होते हैं ? मैंने समझा उसकी अम्मा ने पैसा दिया होगा। लीजिए यह चवन्नी। पानी पिला लाइए। एक चवन्नी आप भी लीजिए। रात होने के पहले ही चले जाइएगा।"

"और खिलौनों का पैसा ?"

"अरे भाई, उसी में एकाध पपिहिरी-वपिहिरी ख़रीद दीजिएगा।" फेरू सिंह अपनी टोली के साथ भीड़ में धँसने को आतुर थे। उन्हें रोकना कठिन था।

फेरू सिंह चले गये। दयाल महराज ने टिन की एक 'भिसिल' ख़रीद दी लड़के को। शेष साढ़े सात आने पैसों को उन्होंने बड़ी श्रद्धा से देखा। फिर अपनी टेंट में बाँध लिया। मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठ गये। नन्हकू को सामने खेलने दिया।

तभी गाँव से एक झुण्ड औरतें आयीं। बूढ़ियाँ, जवान, लड़कियाँ, सभी तरह की। दयाल महराज इस हुजूम को देखते रहे। डोमन चमार की लड़की सुगनी गोल से निकलकर दयाल महराज की ओर मुड़ आयी।

"का हो बुल्लू महराज !" वह बड़ी अदा से मुसकरायी—"आप तो लड़कोरी मेहरारू की तरह सीढ़ी पर पसर गये हैं।"

"तू तो कलोर की तरह सिवान-सिवान डाँक रही है !" दयाल महराज ने घृणा से गरदन फेर ली। "साली, बेहया, निर्लज्ज !" वे भुनभुनाये। "आयी होगी अपने चहेतों का पता-ठिकाना पूछने। जैसे मैं इस मेला का पूछ-ताछ दफ़्तर हूँ।"

"सुरजू सिंह मलिकार कहीं दिखे महराज जी !"

"काहे। दिखे काहे नहीं। क्या काम है ?"

"अरे अपने गिरहस्थ हैं। मेला लगा है। कुछ खरच-बरच देंगे ?" उसने तर्जनी से अँगूठे पर टुन्ना मारा जैसे पुरनका रुपया ठनका रही हो।

"हूँ। ई सब खरच-बरच तो गाँव-घर में ही माँग लेना चाहिए था। यहाँ लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे ? जाने कहाँ-कहाँ के रईस लोग आये हैं। ऐसा करो कि गले में एक ठो फीता लटकाय लो।"

"काहे को ?"

"उस पर लिखवा लो—सुरजू सिंह की मजूरिन : सुगनी देवी।"

"अब की दाईं तो चूक गये महराज जी। अगले साल ऐसा ज़रूर करेंगे। फितवा तो आप ही लायेंगे खरीदकर न ? हाँ, पइसा जरूर सुरजू सिंह मलिकार देंगे।"

"मैं तो सुरजू का और तेरे बाप का नौकर हूँ ही। क़िस्मत ही ख़राब है। नहीं तू चमरपिल्ली हमसे ज़बान लड़ाती ?"

"आप गुसिया गये बुल्लू पण्डित।" सुगनी वहाँ से आँखें चमकाती, मुँह लटकाये चली गयी। वह अपने इन्तज़ार में खड़ी चमारिनों के झुण्ड में मिलकर हँस-हँसकर बतियाने लगी। रह-रहकर वह मुँह उलटकर दयाल महराज को भी देखती जाती।

सहसा दयाल महराज बहुत उदास हो गये।

"क्या करम है साला अपना भी।" वे बुदबुदाये। सुरजू सिंह ने एक बार क़स्बे से सामान मँगाया था। कहा कि देवल की माँ के लिए चाहिए। लगता है, ऊ सब उन्होंने देवल की मौसी सुगनी को दे दिया। अब ई साली हमसे मजाक कर रही है मेला-ठेला में। कोई देख ले, और जाकर अन्हरी माई से दो का चार लगा दे तो चौके में हेलने नहीं देगी बुढ़िया।

दयाल महराज जानते नहीं क्या कि लोग किस-किसके लिए क्या सामान मँगवाते हैं। बाकी वे दूसरों के रहस्य को हमेशा रहस्य की तरह ही चिपकाये रहते हैं। उसका सरेआम भण्डा वे ही फोड़ते हैं, जिन्हें इसे खुल जाने से चिन्ता होनी चाहिए। पर लाज हो, तब न चिन्ता हो। अब तो लोग भँड़वापने को ही इज़्ज़त की चीज़ मानने लगे हैं। थुह !....

तभी सामने की ओर से ज़ोर का हल्ला उठा। लगा जैसे किसी बाढ़ की नदी में बाँसों ऊँची कगार भहराकर गिर गयी हो। एक भयानक

टकराहट। ज़ोर-ज़ोर से चीख़ने-चिल्लाने, भागने की आवाज़ें एक में एक गड्ड-मड्ड होकर कान फाड़ने लगीं। दयाल महराज चौंककर खड़े हो गये। उन्होंने लपककर नन्हकू को गोद में उठा लिया।

मेले में बीचोंबीच जैसे आग लगी हो। लपटें कहीं दीखती नहीं, पर सरसराहट सर्वत्र सुनायी पड़ रही है। अचानक करारी भगदड़ मची। जैसे पूरब के भीटे से कुलचकर कोई गुस्सैल भैंसा भीड़ में कूद पड़ा हो। सारी भीड़ उलटकर पच्छिम तरफ़ टूटी। खचाखच, ठसाठस। नर-मुण्डों का समुद्र। एक हिलकोरा और। सैकड़ों गज लम्बी चौड़ी आदमियों की दीवालें झूमने लगीं। सिर से सिर टकराने लगे।

अरे मइया। अरे बप्पा!! बाबू रे बाबू!!!....

चीख़-चिल्लाहट। घिघियाहट। हल्ला-गुल्ला। तड़ातड़ी जिसको जिधर मौक़ा लगा, भाग पड़ा। दूकानें पटापट बन्द होने लगीं। खिलौने कुचल गये। टिन के बाजे पिचक गये। मिट्टी के बरतन, लकड़ी के सामान टूट गये। चादर पर फैली शीशे कंघी की दूकानें रगड़कर धूल में मिल गयीं। जन-समूह एक पर एक टूटने लगा। क्या हुआ? क्या हुआ? एक साथ हजारों पूछते—क्या हुआ?

अब कौन बताये क्या हुआ।

इन्दरजाल! इन्दरजाल!!

भोंपू बोल रहा था—"भाइयो, भाइयो, सुनिए। झगड़ा शान्त हो गया है। घबड़ाने की बात नहीं। आप लोग लौट आइए। लौट आइए आप लोग। मेला फिर जम गया है।"

"ये देखिये इन्दरजाल! इन्दरजाल!! टिकट केवल दस पैसे। इन्दरजाल!!..."

"जाने कितने कुचल-उचलकर बराबर हो गये। और इस साले को अपने इन्दरजाल की हो पड़ी है।" दयाल महराज बोले—"अरे किसी को कुछ पता लगा? आखिर हुआ क्या?"

सामने से कई लोग जग्गन मिसिर और फेरू सिंह को घेरकर हल्ला

मचाते चले आ रहे थे। यह सारी भीड़ जैसे मन्दिर के पास आने के लिए ही चली थी। दयाल महराज का चित्त धड़कने लगा—"हे भगवान्, ई तो अपने ही गाँव के हैं लोग।"

मिसिर को फेरू सिंह पकड़े हुए थे। मिसिर की कनपटी के पास चमड़ा छिल गया था। ख़ून निकल आया था। फेरू सिंह के हाथ का अँगूठा फट गया था।

"हुआ क्या जग्गन?" झब्बूलाल उपधिया कब से पूछ रहे थे। कोई उनकी बात सुनता ही नहीं था।

"हुआ क्या?" मन्दिर के पास आकर मिसिर बोले—"यही है अपने गाँव की इज़्ज़त। अपने मेले में साले हमीं ख़ुद चमरपन्थी करते हैं। रैभानपुर के बाबू लोगों की बहू थी। पकड़ ली साले हरिया ने उसकी कलाई। ऊ लोग कुछ ख़रीद रही थीं। कई औरतें थीं। ई साला आँख पर काला चश्मा लगाये पड़ा उन सबों के पीछे। और दो हरामी वो भी थे छबिलवा और सिरिया साथ में। जहाँ जाकर बैठें वे सब, ई लोग भी बैठ जायें टिकुली-सेंदुर ख़रीदने।

'क्या माल है? देखो तो ज़रा सीरी मास्टर।' हरिया शीशा उठा-उठाकर सिरिया को थमावे और चश्मा उतार-उतारकर रैभानपुर वालियों की ओर आँखें मारै। ई तमाशा घण्टे-भर से चलता रहा। मैं चुप रहा। मगर शरारत की भी एक हद होती है। ऐसा धक्का मचाया उन लोगों ने कि पूछो मत। वे बेचारी सब चुप रह गयीं।"

"ख़ानदानी रईस हैं साहब, रैभानपुरवाले।" झब्बूलाल बोले—"कोई शरीफ़ औरत क्या बोलेगी ऐसे लोगों से? हाँ। फिर क्या हुआ?"

"हुआ क्या? ऊ सब इन्दरजाल वाले तम्बू के पास जाकर खड़ी हो गयीं। रैभानपुरवाले सब दंगल देख रहे थे। एक मिला जाकर बुला लाया। बारह-बारह पट्ठे हैं उहाँ के दंगल में। अखाड़ा छोड़कर उन सबों को मैंने जाते देखा, तभी मेरा माथा ठनका। मैंने फेरू सिंह को आँख मारी। हम दोनों भी चले पीछे-पीछे। हमने अपनी आँख से देखा झब्बू

भइया, नेवले-जैसा मुंह बना-बनाकर हरिया उन सबों से छेड़खानी कर रहा था। इन्दल की बहू ने कुछ कहा होगा गुस्से में। बस ई साले ने पकड़ ली उसकी कलाई। चीखी ज़ोर से ऊ औरत। रैभानपुरवालों ने चौतरफ़ा घेर लिया। एक ने छोड़ दी लाठी हरिया पर। हुआ हल्ला। मच गयी भगदड़। ऊ तो कहो मैं और फेरू दोनों कूदकर पहुँच गये सामने। वरना अन्धा-धुन्ध लाठियों की मार में जाने क्या हुआ होता। बड़ा समझा-बुझाकर शान्त किया सबों को।''

''का हो मिसिर जी।'' इन्दल सिंह दहाड़कर बोले—''यही है न आपका बड़कवा गाँव। बह गये आप लोग। करैता के मेले में करैतावाले गुण्डई नहीं करते थे कभी। जैपाल काका के बखत में, याद है न आपको एक वाक़या हो गया था तो ऊ देस दिहात हाथ जोड़ते फिरे थे। ऊ शराफ़त थी मिसिर जी कि गाँव के किसी बहेतू ने ग़लती कर दी तो मालिक माफ़ी माँगता था देहात-भर से। किस-किस मुश्किल से करैता के पुरनियाँ लोगों ने यह मेला जमाया और सँवारा। उसी मेले में अब आप ही के गाँव में के लोग आवारागर्दी करते हैं। धिक्कार है आप लोगों को। मैं क्या बोलता।''

''मरने दो लोगों को। तुमको जग्गन वहाँ जाना नहीं चाहिए था।'' झब्बूलाल ने पैंतरा बदल दिया था—''इन लोगों से लगना ठीक नहीं है। ऐसे शोहदे तो मैंने अपनी जिन्दगी में देखे नहीं। कुछ सोचते ही नहीं ये सब। परसाल गाँव में ही ऐसी हरकत की थी सबों ने। याद है न कुंज-बिहारी ने फटकारा था सबों को। क्या हुआ? बेचारे का खलिहान फूंक दिया सालों ने। चाहे मेला लगे, चाहे चूल्हे भाड़ में जाय। जिसको सँभा-लना हो सँभाले। ई तो पुलिस का काम है। तुम क्या पुलिस हो?''

''पुलिस भी थी वहाँ। सबसे बड़े सिपाही जगेस्सर राम ही हैं? ऊ तो उल्टा रैभानपुरवालों को ही दोषी ठहरा रहे थे। जौनपुर से आये हैं सिपाहीजी गाँव के मेले का इन्तज़ाम करने।''

''जो हो। मुझे तो बात ठीक आप ही की लगी उपधियाजी।'' फेरू सिंह ने कहा—''इन लोगों से हम क्यों उलझें? हम कोई थाना-पुलिस तो हैं नहीं। नाहक झगड़े में कूदे और चोट खायी। अब देखिए जग्गन की कनपटी के पास छिल गया। मेरा अँगूठा घायल हो गया। चलो जी दयाल महराज, चलें घर।'' फेरू सिंह ने विरक्त होकर कहा—''का हो मिसिर जी, चलिएगा कि....?''

''आप चलिए, हम आ रहे हैं थोड़ा रुककर।''

मिसिर दंगल की ओर चले गये। भीड़ छितर-बितर हो गयी।

●

मेला फिर जम गया था। मगर दयाल महराज का मन खट्टा हो गया था। वाक़ई साले शोहदों ने गाँव की नाक कटा दी। उन्होंने गर्दन उठाकर देखा। सूरज डूब रहा था। करैता के पेड़ों और बँसवारियों के पीछे गुलाल की आँधी उमड़ रही हो जानो। दयाल महराज को डूबते सूरज की लल-छौंही रोशनी में करैता गाँव अचानक बहुत सुन्दर लगने लगा।

''आओ चलें घर। ई करमदरिद्रों की भीड़ में रहकर कौन जी हल-कान करे।'' उन्होंने नन्हकू को कंधे पर बैठा लिया।

''का बुल्लू चाचा।'' घुरविनवा आकर खड़ा हो गया—''गाँव चल रहे हैं?''

''हाँ रे तू काँप काहे रहा है?''

''पता नहीं संग के सब लोग कहाँ चले गये। अभी बलबा मचा रहा न। तभी हाथ छूट गया। जाने कौन कहाँ गया, कुछ पता नहीं।''

''तो इसमें घबड़ाने की क्या बात है? सामने अपना गाँव है। रास्ते में तो बलबा हो नहीं रहा है। आ चल।''

दयाल महराज मेले में से बाहर निकलने लगे। ज्यों-ज्यों वे दूकानों, ग्राहकों, खिलौनों को गोद से चिपकाये हुए घिसटते बच्चों, दो पैसे का पान खाकर पान की दूकानों पर लगे आइने में मुंह देखकर खुश होते नवचों को

पार करते गये, उन्हें लगने लगा कि अभी मेला छोड़कर गाँव जाने का बखत नहीं हुआ। पर क्या करें। लाचार हैं। एक ठो जान की कबाहट कंधे पर बैठा ली है। फेरू सिंह गाँव पर पहुँचकर जोह रहे होंगे। देर हो जायेगी, तो दो बातें सुननी पड़ेंगी। इतना ही मज़ा क्या कम है। इसे भी कौन किरकिरा कराये।

सो वे मेले के बाहर आ गये।

वे घुरविनवा के साथ देवीधाम वाले छवरे पर मन मारे चलते रहे। छवरा खाली नहीं था। बहुत से लोग लौट रहे थे। छोटे-छोटे लड़कों को हाँककर ले जानेवालों की हट-हट आवाज़ों ने रास्ते को गुलज़ार कर दिया था।

दयाल महराज की उदासी कम हो गयी। एक झुंड लड़के। कितना हल्ला करते हैं सब। इन्हीं के साथ मनसायने निकल चलें।

लड़के मेले से काफ़ी दूर आ गये थे। मोह छूट गया था। अब वे मेले की खुशी से कटने का दुःख भूलकर अपने मनपसन्द गँवई खेलों में खो गये थे। आगे एकदम छोटे-छोटे बच्चे थे। अधिकतर छोटी ज़ातों के। गन्दे-गन्दे काले धूल-धूसरित। वे सब एक में गुत्थमगुत्था होकर तालियाँ बजा रहे थे। एकदम ताल-लय के साथ।

दयाल महराज दुलकते हुए उनके पास पहुँच गये। पास आने पर लड़कों की तालियों की आवाज़ और भी तेज़ लगने लगी। आगे-आगे एक बन्दर नचानेवाला मदारी था। पीछे-पीछे ताली पीटते लड़के—टपाटप, टपा-टप, टपाटप।

> महुआ की रोटी केसारी की दाल।
> महुआ की रोटी केसारी की दाल॥

"मार सालों को!" दयाल महराज ने कन्धे पर बैठे नन्हकू की जाँघ ज़ोर से पकड़ी और लड़कों के पीछे चिल्लाते हुए दौड़े—"यही देस-गीत गाते फिरते हैं आजकल हरामी साले। गाँव की गली से निकलना मुहाल हो जाता है। अरे सालो अपनी किस्मत पर रोआ। महुआ की रोटी

और केसारी की दाल खाकर दुनिया भर में डंका काहे पीटते हो? भग-वान् का नाम लो कि ई भी मिल जाता है। बप्पा रे! कितने लड़के हैं साले। जिधर निकलो झाँव-झाँव, काँव-काँव। इन चूहों का कहीं अन्त भी है कि नहीं, हे ईश्वर।"

दयाल महराज की डाँट-डपट से चिहुँककर लड़के सरपट दौड़ पड़े थे। वे उन्हें चिढ़ाने के लिए अपना परमप्रिय 'देशगीत' और ज़ोर-ज़ोर से गाते हुए भागे चले जा रहे थे।

"क्या ज़माना आ गया।" दयाल महराज के पाँव सुस्त हो गये। "हम लोग भी गाते थे। हल्ला भी करते थे। शरारत भी करते थे। पर ऐसी झाँव-झाँव नहीं होती थी। हम लोगों के जमाने का गीत ही दूसरा था।"

"तुम लोग कौन-सा गीत गाते थे दयाल चाचा?"

"हम लोगों के गीत में आसूदगी थी, आसूदगी। ऐसा कौवारोर नहीं था। खाने के लाले नहीं पड़ते थे। उस बखत तो पेट का बच्चा भी जानता था कि बाहर की दुनिया में खाने का क्या मज़ा है। हरी चुनरी पहनकर लाल मुँहवाली सुगनी सोहारी बेलती है। जितना खाना हो, खाओ छककर। हाँ!

> पेड़ पर की सुगनी सोहारी बेलेले।
> पेट में की बबुनी का झूठ बोलेले?

ई गीत गाते थे हम लोग। हाँ!"

"के है हो दयाल? हम भी कहीं कि बिना बुल्लू के पेट की बबुनी को कौन पहचाने?"

"अरे नाहीं भौजी! हाथ जोड़ते हैं। ग़लती हो गयी।" दयाल महराज एकदम घबड़ाकर बोले। वे अपनी उमंग में घुरविनवा को सुना-सुनाकर बीते दिनों की मधुर स्मृतियों का जायजा ले रहे थे कि ई विपत्ति सामने आ गयी। दयाल महराज सोमारू-बो भौजी से बेहद डरते हैं। कितनी लम्बी है यह औरत। खड़ी हो जाये गली में तो हाथ उठाकर ओरी छू

ले। इतनी ही लम्बी उत्तर पट्टी की दीना-बो चाची भी हैं। दोनों साथ-साथ चलें तो लगे कि औरतों के बीच में साँड़नियाँ खड़ी हैं।

जिस साल बरखा नहीं होती, इन दोनों साँड़नियों की इज़्ज़त बढ़ जाती है। औरतें शिवजी के अरघा के पास बैठकर 'हरपरवरी' गाती हैं। झब्बूलाल कहते हैं कि यह शब्द ग़लत है। शुद्ध होना चाहिए हल-पर्वरी। शर्बरी की तरह। यह भी एक पर्व है। पहले कभी-कभार ही होता था। अब अकालवादी देस का ई सालाना त्योहार हो गया। गाँव की दो सबसे लम्बी औरतें छाँटकर हल में जोती जाती हैं। यह हल एक घरी रात गये नधता है। हलवाहा भी औरत और बैल भी औरतें ही।

नारी पृथ्वी माता की बेटी है। सीता है। ऊ हल में जोती जाय। हाय, हाय! ई तकलीफ़ देखकर पृथ्वी माता की आँखें काहे नहीं आँसुओं से भर जायेंगी।

किसान सोचता है, भला इस दुःख से भी तो पृथ्वी माता की आँखें भरें। भरें तो सही। आँखें भरेंगी। आँसू उमड़ेंगे। टपकेंगे, तो गर्मी से तपी धरती ही सूखी कैसे रहेगी? वह भी उन्हीं आँसुओं की बरखा में नहा लेगी।

हल नाधकर औरतें थक जाती हैं। अब तक परम्परा थी कि मर्द हल जोतता था। औरत उसे खेत में दाना-पानी पहुँचाती थी।

बरखा नहीं हो रही है। सृष्टि बदल रही है। अब यदि औरत हल जोतेगी, तो खेत में दाना-पानी लेकर कौन जायेगा? मर्द। ऐसी अनरीत? पर इतने पर भी तो भगवान् नहीं सुनते।

'हलपर्वरी' मनाकर हल रुक जाता है। सोमारू-बो भाभी चिल्लाती हैं—"टिमला। टिमला। अरे टिमला!!!"

बाबू टीमलसिंह पुरनियाँ हैं, बुजुर्ग हैं। हलपर्वरी पर औरतों को पानी पहुँचाने का काम उन्हीं को करना पड़ता था। औरतें वहाँ उनकी बड़ी दुर्गति करती थीं।

पिछले साल टीमलसिंह बीमार हो गये। ऐसे भी अब उनकी आँखों की रोशनी जाती रही। अब वे अँधेरे में पानी लेकर जाने लायक़ नहीं हैं।

गाँव ने फ़ैसला किया कि इस बार 'हलपर्वरी' पर दाना-पानी लेकर दयाल को जाना होगा। सब लोग कहने लगे तो क्या करते दयाल महराज। बेचारे को जाना पड़ा।

"दयलवा! दयलवा!! बुलुवा, बुलुवा!!" मचो चिल्लाहट।

सोमारू-बो भौजी दहाड़ती ही चली जा रही थीं।

"आये मालिक। पहुँचे सरकार!!" चिल्लाते हुए दयाल पंडित एक हाथ में लोटा-भर पानी और दूसरे हाथ में बेसन की रोटी को गठरी लटकाये दौड़े सिवान की ओर।

"इतनी देर काहे हुई?" दयाल महराज दाना-पानी रख ही रहे थे कि "आह रे बप्पा" करके उठ पड़े। बैठते ही सोमारू-बो ने खींचकर पैना उनकी पीठ पर जमा दिया था। गुस्से में पीठ सहलाते हुए उन्होंने हाथ-पैर झटकारे तो दो-एक पैने और खाये। किसी तरह दौड़-भागकर जान बची।

उन्होंने गाँव के जाने-माने लोगों से शिकायत की। सभी उन्हीं को बुद्धू बनाते हुए हँस पड़े—"ऐसा तो होता ही है। तुम क्या उहाँ रसगुल्ला खाने गये थे।"

तब से दयाल महाराज सोमारू-बो भौजी को देखते ही हाथ जोड़ देते हैं। कौन जाने भाई। दइब की आदत पड़ ही गयी है बरखा रोकने की। हलपर्वरी तो होगी ही। गाँववाले ज़ोर डालेंगे तो दयाल नाहीं कैसे करेंगे। दाना-पानी पहुँचाना ही होगा। सो हे मन, पहले से ही हाथ-पैर जोड़कर सोमारू-बो भौजी को पटाये रहना चाहिए।

"मेला देखि आयू भौजी!" दयाल महराज ने बड़ी चिकनाई से पूछा।

"चल चल।" भौजी को नाक पर माछी बैठने देना भी पसन्द न था —"तेरी मुँह देखे की प्रीत मैं जानती नहीं का? मेला में नाहीं पूछा एको बार कि भौजी पानी पीओगी कि नहीं? अब चला है लौटती बखत मन-समुझावन करने।"

"कसम खाके कहता हूँ भौजी ! मन्दिर पर बैठ के जोहता रहा तुमको। तुम्हारी किरपा से ई नगरी को खाना-दाना मिल रहा है। नहीं जाने कब का बिला गया होता गाँव।"

"अच्छा, अच्छा !" भौजी ने लजाकर माथे पर पल्लू खींच लिया—"कबहूँ घर भी आकर दरशन दिया करो बुल्लू महराज। तुमने तो अब परब-त्यौहार पर भी आना छोड़ दिया।"

"अरे भौजी, ई सब तुम्हारा दिया ही न खाते हैं ? आवेंगे, आवेंगे। जब काम पड़े तनिक इशारा कर दो। हाथ जोड़ के खड़ा रहेंगे।"

भौजी ने प्रसन्न होकर उनकी ओर देखा और कृपा बरसाती मुसकरायीं।

औरतें बहुत धीरे-धीरे चल रही थीं। दयाल पंडित घुरविनवा के साथ डग बढ़ाते आगे निकल गये।

"जान बची।" उन्होंने गंभीर साँस ली—"घुरबिनवा ! ज़रा नन्हकू को सँभाल भाई। मैं बीड़ी पी लूँ।"

घुरविनवा ने नन्हकू को गोद में लेते हुए कहा—"बुल्लू चाचा, इस साल के मेले में कुछ दम नहीं था। नाच-वाच भी ससुरी सब कंडम। लोग कहते हैं कि पहिले दस-दस गिरोह नाच-नौटंकी आती रहीं !"

"पहिले की बात कहाँ रही।" बुल्लू पंडित अपने-आप कहने लगे : "तब बुढ़ऊ सरकार जी मेला में खुद आते रहे। बिना उनकी सवारी आये नाच नहीं होता रहा। तू उन्हें देखे है कि नहीं। क्या बात थी। ऊ गोरा भीषम शरीर, दपदप मलमली साफ़ा। वैसा चटक कुर्ता तो इस देहात में दूसरे को पहने नहीं देखा। यह-यह मुठिया गल-गोच्छे, काले-काले, जामुन की तरह। पीछे-पीछे गोबरधना चलता था बन्दूक़ लिये। ऐसी छाती फुलाये रहता कि जानो पलटन का सिपाही है। बड़ा ताप था बुढ़ऊ मालिक का।" बुल्लू पण्डित ने बीड़ी दगा ली। ज़ोर का कश लिया और धुँवा घोंट लिया। कड़ुवाहट उसके निर्लोम मुँह पर फैल गयी थी—"छोटे मालिक भी हैं; पर अपने तेल-फुलेल में भूले रहते हैं। परजा पर धाक जमाने के लिये हाथी का हिरदा चाहिए। नवमी के मेले में बुढ़ऊ मालिक के बखत में पाँच मन लड्डू बँटता था, हाँ। दो लड्डू से कम किसी को नहीं। और छोटा हो या बड़ा, मलिकार जी सबसे मुसकराकर कुशल-मंगल पूछें। सारे गाँव के एक-एक लड़के का नाम याद था उनको। हँसमुख भी ख़ूब थे। चौथे साल मेले में पूछ ही तो दिया : क्यों बुल्लू पण्डित, जिन्दगी भर कुंवारे ही रह जाओगे का ? भाई हम तो कटकर रह गये।" घुरविनवा को मुसकराते देख बुल्लू पण्डित यों झेंपे, जानो किसी ने चौके पर दुलहन के घूँघट हटा दिये हों।

"बुढ़ऊ महराज अब काहे नहीं आते बुल्लू चाचा ?" घुरविनवा ने कुछ इस ढंग से कहा गोया बुढ़ऊ सरकार का न आना तो बड़ा अनर्थ है।

"दो लड्डू मिलते थे, क्यों बे, यही न ?" बुल्लू ने छोकरे को एक चपत जमायी और हँसकर बोले—"अबे परियार साल ही तो इन्तकाल हुआ। हम उनके गाँव गये थे। बड़ा भारी सराद्ध हुआ था। हज़ारों करन्न, डोम, भिखमंगे जुटे थे। देखने लायक़ मजमा था, हाँ। पाँच सौ बाभन खिलाये थे। सबको एक-एक मलमल का गमछा और चवन्नी दच्छिना में मिली रही। बाक़ी, दिनभर दौड़-धूप करते-करते कमर भी झुक गयी। एक पल भी साँस लेने को फ़ुरसत न मिली।" बुल्लू ने छोकरे के कान में सटकर धीरे से कहा : "किसी से कुछ कहना नहीं। बुढ़ऊ में और छोटे सरकार में एकदम नहीं बनती थी। ई तो बहुत थोड़े लोग जानते हैं। वैसे हम लोग तो घर के आदमी हैं। कोई बात तोपी-ढाँपी थोड़े ही है। इनकी चाल-चलन बुढ़ऊ को फूटी आँख भी सुहाती न थी। कहते थे ई बंस में घमोय जन्मा है। सारी इज्ज़त मेट के जायेगा। निकली भी बात सही। बुढ़ऊ के मरते ही अँधेरा छा गया। वैसे जमींदारी उन्मूलन के बाद तो सभी की हालत 'डौन' है। पर इनके कारन तो बचा-खुचा भी फुंक-तप गया।"

"मुआ उ-हु-हु-हु-ऊ मुआ !" गर्मी से परेशान रेंघनी चिरइया पेड़ से कलपती उड़ी। दयाल महराज ने बीड़ी फेंक दी और नन्हकू को घुरविनवा की गोद से छीनकर छाती से चिपका लिया—"मर साली। किस तरह

कुत्ते की तरह रोती हुई उड़ रही है। सब कुछ तो सफाचट कर दिया। पता नहीं, अब क्या करने पर लगी है।"

दयाल महराज के शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। जाने कब की बात है, लोग अक्सर आफत-बिपत के दिनों में लम्बी साँसें लेकर कहते—भुरकुड़ा गद्दी के औघड़ साधु कीनाराम कहीं जा रहे थे। गर्मी के दिन थे। जेठ का सूरज तप रहा था। कीनाराम बहुत प्यासे थे। खलिहान में बरगद के पेड़ के नीचे पहुँचते ही बेहोश होकर गिर पड़े।

"पानी....?" डूबी-डूबी आवाज़ उभरी।

उस समय बरगद के नीचे धूप से परेशान मवेशी कान लटकाये ऊँघ रहे थे। एक झुण्ड चरवाहे शोर मचाते होलापाती, गुल्ली-डण्डा आदि खेलों में मशगूल थे।

किसी शरारती चिलबिल्ले लड़के ने बेहोश कीनाराम के मुँह पर एक अँजुरी धूल उठाकर फेंक दी।

प्यास से खुला मुँह धूल से भर गया। साँस घुटने लगी।

कीनाराम उठकर बैठ गये। उन्होंने आँखें पोंछीं। धूल सनी हथेली को एक क्षण देखते रहे और बुदबुदाये—"सब कुछ राख हो जायेगा।"

"हो ही रहा है।" दयाल महराज अपने-आप बोले और नन्हकू को गोद में चिपकाये अँधेरी गली में खो गये।

• •

दो

बीसू धोबी अपनी चेला-मण्डली के साथ ढोल और करताल लेकर बैठ जाता। चारों तरफ़ स्वरों का मेला लग जाता। उसके अलाप की काँपती आवाज़ दिलों में दर्द की घुमड़न बनकर बरसने लगती। वह धीरे-धीरे कड़ियों को अधरों से छुड़ाकर आसमान को सौंप देता।

सहसा उसकी आवाज़ मद्धिम हो जाती। वह एक नज़र सामने बैठे लोगों को देखता। आँखें नम हो जातीं। वह फिर धीरे-धीरे गाने लगता। एक फुसफुसाहट, एक बेचैनी, जैसे हहराती आँधी में चिड़ियों के बेबस बच्चे चीखते चले जा रहे हों :

उनके अँखिया से लोरवा गिरत होइहैं ना।
उनके गज मोती अँचरा भिजत होइहैं ना।।

बीसू के लोकगीत अपनी ऊँचाई की मीनारें बनाते, उधर बड़े-बूढ़ों की आँखों में बीते ज़माने की कहानी घुमड़-घुमड़कर बरसने के लिए आतुर हो जाती।

ज़माना तेज़ी से बदल रहा था। ज़मींदारी की पुश्तैनी पुख्ता दीवालें एक हल्के धक्के से ही ज़मीन पर आ रहीं। देखते ही देखते करैता का पूरा माहौल बदल गया। आसामियों ने ख़ानदानी लाज-शरम छोड़कर ज़मींदार की छावनी से अपना रिश्ता तोड़ लिया। अब कभी दशहरे के मौक़े पर आसामियों की भीड़ जुहार करने नहीं आती। न ही कभी छावनी के मुख्य द्वार पर रखा बड़ा-सा परात नज़राने के रुपयों से खनकता ही। अहीरों ने दही-दूध, कोइरियों ने साग-सब्ज़ी, मल्लाहों ने मछलियाँ, जुलाहों ने मुरग़ी और गड़ेरियों ने सलामी में खस्सी देना एकदम बन्द कर दिया। इसीलिए इन त्योहारों पर छावनी में कभी कोई ख़ुशी-उत्सव मनाने की जरूरत भी न रही। सफ़ेदी-रँगाई भुला दी गयी। चौड़े ओड़चों में हलवाइयों की तीन-तीन दिन की मुफ़्त मेहनत से बननेवाले लड्डुओं का भी कहीं दर्शन न होता था। होली के मौक़े पर न अब भारी कंडाल में ठंडाई घोली जाती थी, न अबरक का चूरा-मिली अबीर धूल की तरह परजा पर बखेरी जाती थी। न तो अब छावनी के लड़कों को देखकर कोई सत्तर साल का बूढ़ा झुककर सलाम करता था, न औरतों तक को देखकर कोई अपने चबूतरे की चारपाई ले उठकर खानदानी लिहाज़ दिखाता था। यह सब कुछ ताश के पत्ते की तरह हल्के से धक्के से बिखर गया।

ऐसी दुनिया में, जहाँ दूसरी हवा चलने लगी हो, जहाँ दूसरी बिरादरी बन गयी हो, जहाँ दूसरे रिश्ते जन्म ले रहे हों, बाबू जैपालसिंह ने क़दम न रखने की मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर ली थी। उन्होंने अपनी ज़िन्दगी के ज़्यादे दिन लोगों के झुके माथे और झुकी आँखों में देखकर बिताये थे। उन्हें नीच ज़ातवालों को तने-सीधे देखने का ताव न था। इसलिए उन्होंने अपने निजी परजा-पौनियों, सिरवाह, मुन्शी और ख़िदमतगारों को यह बात अच्छी तरह समझा दी थी कि वे आख़िरी साँस तक कभी करैता की काली माटी पर पाँव न रखेंगे।

पर मुन्शी नवजादिक ने पिछले साल के शुरू में ही उन्हें एक ऐसी ख़बर दी कि वे डाँवाडोल हो उठे। सभी गाँवों की तरह करैता में भी

पंचायत का चुनाव आ रहा था। इस चुनाव में वकील मुन्शी नवजादिक सुरजूसिंह के सभापति हो जाने की पूरी उम्मीद थी। बाबू जैपाल का झगड़ा सुरजू जैसे रेखिया उठान छोकरे से भला क्या हो सकता था। वे सुरजू के दादा मेघन सिंह और उसके बाप पिआऊ सिंह के दुश्मन थे। इन लोगों ने न केवल करैता गाँव के ज़मींदार को हमेशा परेशान किया, बल्कि ईसा ख़ाँ से पूरी कोशिश की कि गाँव मीरपुर के बबुआनों के हाथ न बेचा जावे। इसके बाद तो इन दुकड़हों ने हाथी से टक्कर लेने की जैसे कसम ही खा ली। ज़मींदार परिवार के लोगों को हर तरह से नीचा दिखाना ही इनका धरम-करम हो गया। बाबू जैपाल सिंह सब भूलने और माफ़ करने को तैयार थे। देवीचक के केशो बाबू ने एकबार सुरजू की ओर से माफ़ी माँगते हुए कहा था, "भइया राजा, आप उसके पिता समान हैं। आपके सामने वह दो दिन का 'छोकरा' क्या खड़ा होगा। समझ लीजिए कि सुरजू ने नहीं, बब्बन ने ग़लती की, उसे भूल जाइए।"

"आप कहते हैं तो मैं उसका कोई नुकसान नहीं करूँगा।" जैपाल सिंह ने कहा था—"दुश्मन का लड़का दुश्मन नहीं होता। मैं उसे अपने लड़के-सा ही मानूँगा। पर मैं चाहकर के भी देपाल को कैसे भूल सकता हूँ? इन लोगों से मेरे ख़ानदान का कभी मेल-जोल नहीं हो सकता। जब मैं इनसे बातचीत करूँगा, नज़दीक आऊँगा, हमारे इनके बीच देपाल की लाश खड़ी हो जायेगी।"

केशो बाबू चुप रह गये थे।

सच ही जैपाल कभी देवपाल को भूल नहीं सकते। उसकी सूरत अब भी उनकी आँखों के सामने झिलमिलाकर रह जाती है।

आह! देवपाल की वह जवानी किसे भूल सकती है। जवानी सबको आती है। पर ऐसा कभी-कभी ही होता है जब वह किसी एक के शरीर में अपने होने का प्रमाण देने आती है। देवपाल की उम्र उन दिनों अट्ठारह से अधिक न थी। करैता के ज़मींदार का छोटा लड़का होने के कारण वह राजा-परजा सबका प्यारा था। उसका गोरा-चिट्टा छरहरा बदन पूरे कसाव

पर होने पर भी दूध-घी से उफने ख़ून की लाली छिपा न पाता था। नये ख़ून के अंकुर, सोने के रंग की रेख बनकर उसके ऊपरी होठों पर नयी-नयी जई की तरह साँसों के परस से काँप-काँप जाते थे। उसके भरे चेहरे पर ख़ून की आँच कभी सँभल न पाती थी। भोली-भोली कजरारी आँखें सबके मन में समा जाती थीं।

ज़िन्दगी के लम्बे-लम्बे सत्तर वर्षों में शायद ही कभी कोई ऐसा दिन आया हो, जब बड़े से बड़े ग़म में भी जैपाल सिंह की आँखों में आँसू छलके हों। पर देवपाल की यादें उन्हें कई बार रुला चुकी हैं। उस दिन भी नवजादिक लाल से बातें करने के बाद सुरजू के बारे में सोचते-सोचते जाने वे कब देवपाल की छाया के पास आ गये। और जब उन्होंने उस भूली-बिसरी छाया को इतने क़रीब से देखा तो झुर्रियों से घिरी उनकी आँखों में भाप सघन हो गयी। वे फूट-फूटकर रो पड़े। वे सोचते कि देवपाल की मौत उन्हीं के कारण हुई। उन्होंने चाहा होता तो देवपाल को उस राह पर क़दम बढ़ाने से रोक लिया होता। पर बरसाती नदी की बाढ़ रोकना मुश्किल है। उसके रोकथाम के उपाय तो पहले से ही किये जाते हैं। उन्हें पहले मालूम ही कब हुआ? राजमती और देवपाल की प्रेम-कहानी तो उतने विस्तार से उन्होंने तब सुनी जब वे अपना सब-कुछ हार चुके थे।

देवीधाम पर वैसा मेला भी शायद ही कभी लगा हो। लोग कहते हैं कि जब सहजन में फूल ऐसा खिलें जैसा वे कभी न खिले हों, तो सच मानिए कि डाल टूटेगी। वह सब कुछ होना ही था। वरना देवपाल उनके घर में जन्म ही क्यों लेता। जब जन्मा तो इतना सुन्दर क्यों हुआ कि पीछे की सात पीढ़ियों में उनके ख़ानदान में वैसी गठन-बनावट का कोई कभी जन्मा ही नहीं।

दंगल में तो वह कभी उतरता ही न था। सुब्बा नट का डील-डौल देवपाल से दूना-चौगुना तो ज़रूर था। उसके हाथ अखाड़े में यों लहरते थे मानों कोई हाथी गन्ने का सड़ा रस पीकर पागल हो गया हो। साँड़ की तरह मांसल कन्धे में कनगुरिया-जैसा मोटे सूत का गंडा करैत साँप की

तरह उसके गले में झूलता रहता था। लोग कहते थे कि सुब्बा के बदन में 'भूमा खाँ' के अन्धे कुएँ के जिन्न का वास है। जब वह लड़ता है तो जिन्न की साँसों की गरमी से हवा सनसनाने लगती है। हज़ारों भूतनियाँ-डाकिनियाँ उसके पैरों की धमक पर थिरकने लगती हैं। सुब्बा नट अखाड़े का दानव था। इसीलिए उससे हाथ मिलाने का साहस किसी ने कभी न किया। देवपाल भी न करता, वह तो उसके सामने कुछ न था।

उस साल सुब्बा ने अखाड़े में जितने ज़ुल्म किये उतने कभी नहीं हुए थे। यह जानते हुए भी कि सुब्बा मेघन का आदमी है, वह पियाऊ को कुश्ती लड़ाने के लिए वहाँ रहता है। बबुआन ने कभी इस बात का विरोध नहीं किया कि सुब्बा रामनवमी के दंगल का निर्णायक न बने। जिस मेले को सजाने-सँवारने में जैपाल सिंह के पितामह देवीचरण ने दिन को दिन और रात को रात नहीं जाना, उसी को जैपाल क्या इसलिए उखाड़ देते कि वहाँ दंगल में जो आदमी निर्णायक बनता है, वह उनके दुश्मन के लड़के पियाऊ को कुश्ती लड़ाता है। इतने छोटे विचार जैपाल के मन में कभी नहीं उठे। एक बार फेरू सिंह ने उनसे कहा भी था—

"मालिक काका, आप यदि चाहते हैं कि दंगल ठीक से चले, मेले में गड़बड़ी न हो, तो सुब्बा को कुश्ती का चौधरी न बनाइए।" फेरूसिंह उत्तर पट्टी के शिवचन्द्र भाई का लड़का है। छावनी के ख़ूब ख़ैरख़्वाह थे ये लोग। लड़का कुश्ती लड़ता था। इसे कोई बात बुरी लगी होगी सुब्बा की।

"सुनो बेटा।" जैपाल ने फेरू सिंह की पीठ थपथपाते हुए कहा—"तुम्हारी बात ठीक है। मैं जानता हूँ कि सुब्बा अच्छा आदमी नहीं है। मगर वह इस दिहात का माना हुआ कुश्तीबाज़ है। उसे हटा दूँगा दंगल से तो लोग कहेंगे कि जैपाल मेघन की दुश्मनी की वजह से सुब्बा के खिलाफ़ हो गये। मैं यह नहीं चाहता कि कोई मुझ पर इसलिए उँगली उठाये कि मैं व्यक्तिगत मामले से ऊपर उठकर किसी बड़ी हस्ती की इज़्ज़त नहीं कर सकता।"

"सुब्बा जाने कब की बड़ी हस्ती बन गया।" फेरू तिनककर बोला

था। "एक हरामी है साला। छाँट-छाँटकर पियाऊ के संगी-साथियों को इनाम बाँटता है।"

जैपाल सिंह मुस्कराकर रह गये थे।

खुद पियाऊ को कुश्ती का शौक़ देखा-देखी ही हुआ था। वह देवपाल को किसी दिन नीचा दिखाने के लिए ही यह सब कर रहा था।

इस बार उसने एक नहीं कई कुश्तियों में साफ़ बेईमानी की। वह नटों के पट्ठों को ही विजय का सेहरा बाँधता चला जा रहा था। लोगों ने साफ़ देखा कि हर दाँव में नटों ने शरारत की। पर हर पाली में सुब्बा ने उन्हीं का गट्टा पकड़कर दंगल में ऊपर उठाया। रुपये और गाउटी का इनाम हर बार किसी-न-किसी नट-पट्ठे को ही मिला।

"बेईमानी है।" तभी घायल साँप की तरह फुफ़कार कर देवपाल उठा था—"सुब्बा, वह इनाम वापस करो। दीना की कुश्ती अच्छी थी, तुम्हारे नट की नहीं।" देवपाल ने सुब्बा के हाथ से गाउटी छीनकर दीना को दे दी। सुब्बा नट एक क्षण के लिए भौंचक खड़ा रह गया। एक लमहे के लिए उसे मालूम भी नहीं हुआ कि क्या हो गया है। उसने जनता की तालियों की गड़गड़ाहट से चौंककर देखा कि सामने देवपाल बाबू मुस्कराते हुए खड़े हैं।

"छोटे बाबू!" कन्दरा में हाथी के चिग्घाड़ की तरह एक आवाज़ गुरगुराई—"आप अभी बच्चे हैं! आप कुश्ती के बारे में कुछ नहीं जानते।" सुब्बा गुस्से से काँप रहा था। दर्शक-वृन्द साँस रोके यह सब सुन रहे थे। "आपने मुझे बेईमान कहा है, मुझे ललकारा है। करैता के दंगल में मैं पाँच साल से पट्ठों की कुश्ती का फ़ैसला करता आ रहा हूँ लेकिन आज....।" वह पागल की तरह चिल्लाया—"आप ठाकुर साहब के घर के न होते तो, तो? मैं आपको बता देता!"

देवपाल ने अपनी धोती और कुर्ते को निकालकर फेंक दिया। उसकी कसी जाँघों पर छींट की जाँघिया ऐसी फब रही थी, जैसे केले के पेड़ से तितलियाँ लिपट गयी हों।

"ऐसी की तैसी।" वह ग़ुस्से में बोला—"ज़्यादा ऐंठो मत सुब्बा! यहाँ ज़मींदार-आसामी का कोई सवाल नहीं है। सवाल है न्याय का। तुम अपनी ताक़त के बल पर स्याह को सफ़ेद नहीं कर सकते।" गाँववालों तक ने पहली बार देखा कि देवपाल केवल सुन्दर नहीं, कठोर भी है। कपड़े के नीचे, छिपे बदन की ऐसी कल्पना भी किसी ने न की थी। देवपाल चुपचाप अखाड़े में आकर खड़ा हो गया—"शेखी और हिम्मत का फ़ैसला हो ही जाय। क्यों सुब्बा?"

वहाँ करैता के अनेक नवयुवक पट्ठे बैठे थे। सबकी आँखें आश्चर्य और भय से देवपाल की ओर उठ गयी थीं। किसी को विश्वास ही नहीं हो रहा था कि देवपाल बाबू सुब्बा नट को लड़ने के लिए इस तरह ललकारेंगे!

सुब्बा की आँखों से चिनगारी फूट पड़ी। वह अपनी मऊवाली तहमत फेंककर, बाँह के पुट्ठों पर हथेली से बाँस फूटने की आवाज करते हुए चिल्लाया—"या अली।"

वह अखाड़े में पागल गैंडे की तरह चक्कर देने लगा। एक अजीब हादसा, एक अजीब खौफ़, एक अद्भुत भय और इसके भीतर-ही-भीतर ज़ोर मारता आशंका से भरा उत्साह। करैता गाँव के तमाम रेखिया उठान पट्ठे अखाड़े के चारों ओर खड़े हो गये।

सुब्बा पैंतरेबाजी से बहुत घबराता था। उसने अखाड़े में हेलकर हाथ मिलाते ही देवपाल की गरदन पर ज़ोर का वार किया। उस धक्के और चोट ने देवपाल की आँखों को जैसे अन्धा कर दिया। एक क्षण के लिए वह लड़खड़ाया। उसकी आँखों में खून उतर आया। वह अपने को पूरी ताक़त लगाकर सँभाल रहा था। आँखों की धुन्ध साफ़ हो चुकी थी। मन में एक नयी चीज़ कौंध उठी। सुब्बा ने पहले वार से ही चौकन्ना कर दिया। रास्ता साफ़ था। इस कुश्ती में दाँव-पेंच की नहीं, ताक़त और फुर्ती की आजमाइश थी। देवपाल ने एक पैंतरा और लिया। सुब्बा अपनी पहली सफलता से बड़ा खुश था। उसने फिर आगे बढ़कर दूसरा वार करना ही चाहा, तभी सीधे, तीर की तरह कौंधकर देवपाल अखाड़े में धँसा और उसने

अपने शरीर के अस्सी सेर वज़न को मुक्के में भरकर सुब्बा की उभरी हुई तोंद पर एक करारा वार किया।

"थम्म्" की तेज़ आवाज़ फटाके की तरह फूटी। सुब्बा लड़खड़ाकर अखाड़े में गिर गया। उसके मुँह से खून की सतर ढुलककर होंठों और दाढ़ी में चुपड़ गयी। वह बेहोश हो गया था। देवपाल भी बुरी तरह हाँफ रहा था। घायल शेर की तरह झलमलाता हुआ उसके पास पहुँचा।

"उठो पहलवान ! उठो ?" वह हाँफते हुए चिल्लाया। पर सुब्बा उठ न सका। उसने एक बार आँखें खोलीं। तभी देवपाल ने उसके एक पैर को अपने पैरों से दबा दिया, और दूसरे पैर को पकड़कर ऐंठने लगा। नट कूदकर अखाड़े में झपटे। पर करैता के नौजवानों ने लाठियों से उन्हें ठेल दिया।

"खबरदार !" फेरू ने लाठी हिलाकर ललकारा—"कर लेने दो फ़ैसला, हो जाये आज निपटारा। बेईमानी की भी हद है। साला अपने को रुस्तमे हिन्द समझता था। देहात की सबसे बड़ी हस्ती है सुब्बा। देवपाल चाचा तो उसके सामने छोकरे थे। पहला वार भी उसी ने किया। फिर अब सालो, क्यों कूदते हो अखाड़े में। बढ़ा कोई इधर तो खैर नहीं। मारकर खोपड़ी तोड़ देंगे, हाँ।"

"छोड़ दीजिए बाबू ! साले को।" बूढ़े घूरे नट ने हाथ जोड़कर देवपाल से कहा—"साला घमंडी। मादरचो····ने बकरी का मूत पिया था।"

देवपाल ने एक बार जनता की ओर देखा। एक बार फेरू की ओर। उसने सुब्बा को छोड़ दिया। चुपचाप आकर धोती-कुर्ता पहनने लगा, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

उस दिन मेला वहीं ठप्प हो गया।

"देवी भवानी की जय" करैता के हर आदमी, बच्चे, बूढ़े, जवान इस आवाज़ में अपनी आवाज़ मिलाकर विशाल जन-समूह में डूब गये। तीन पट्ठों ने देवपाल को उठाकर कन्धे पर बिठा लिया था। उसके धूल भरे शरीर में एक अजब आकर्षण था। गले में गेंदे के फूलों की मोटी मालाएँ हवा में लहरा रही थीं। मन्दिर के आँगन से, द्वार से, ऊपरी छत से औरतों की

हज़ारों आँखें उसे प्यार, स्नेह, और ममता से देख रही थीं। राजमती ने देपाल को कई बार देखा था। कई बार बातें की थीं। पर आज उसे लगा कि उसका देपाल बहुत अमूल्य है। उसकी पसन्द को विशाल जन-समूह ने एकस्वर से अपनी स्वीकृति दे दी थी। उसके रोम-रोम में पुलक का बास था। अंग-अंग में आशीष की घुमड़न थी। वह सबको चीरकर देपाल तक पहुँच जाना चाहती थी। पर लाज ने पैरों में साँकल डाल दी। वह ठिठक कर देखती रह गयी। भीड़ देपाल को कन्धे पर उठाये गाँव की ओर चली जा रही थी।

जैपाल सिंह इस समाचार से खुश नहीं हुए। कौन जाने भीतर-ही-भीतर हुए हों। पर बाहर से देखकर यही लगता कि ठाकुर अप्रसन्न हैं। उन्हें जाने किन आशंकाओं ने घेर लिया था। वे नहीं चाहते थे कि देपाल के शरीर पर किसी की आँखें लगें। कोई उसकी ओर बुरी भावना से देखे। इसलिए वे हमेशा देपाल को बरजते थे। कसरत करनी है, देह बनानी है, तो घर में ही करो। तुम्हें क्या पहलवानी की रोटी खानी है, जो लँगोट बाँधे गाँव-गाँव घूमोगे। देपाल ने भाई की बात का कभी विरोध नहीं किया। कर ही नहीं सकता था। इसीलिए वह कभी दंगल-वंगल में उतरता ही नहीं था। मेले से लोग उसे कन्धों पर लादकर गाँव चले, तब भी उसका मन उदास हो गया था। पता नहीं भइया क्या कहें। पर जैपाल ने कुछ कहा नहीं। फेरू ने उनसे पूरी बात बतायी तो वे चुप रह गये। फेरू को लगा कि बड़ी-बड़ी मूँछों में छिपे होंठों में एक हल्की मुसकराहट उभरी है। पर कुछ साफ़ नहीं कहा जा सकता।

जैपाल की चुप्पी से गाँव के नवयुवकों के उत्साह में कोई फ़रक़ नहीं आया। जिधर देखो, उधर बस देपाल-सुब्बा की कुश्ती की ही चर्चा थी। लोग खूब नमक-मिर्च लगाकर बखान करते। सबको लगता जैसे देपाल की जीत में उनकी भी अपनी जीत है। एक क्षण के लिए लोग यह भी भूल गये कि वे आसामी हैं, ज़मींदारी के अत्याचारों से पीड़ित-परेशान। न्याय की

जीत का शायद ऐसा ही नशा होता है, जो क्षण-भर के लिए सभी सीमाएँ लाँघ जाता है।

उधर मेघन सिंह के दरवाज़े पर गहरी उदासी थी। दुश्मन के भाई ने प्रतिद्वन्द्वी के उस्ताद को ही चित्त कर दिया था। सबों के मन में प्रतिकार की आग धुंधुवा रही थी।

एक पखवारा मुश्किल से बीता होगा कि गाँव में देपाल को लेकर एक दूसरा तहलका मचा। जाने किसने उसे और सुरजू की बुआ राजमती को केवड़ार में अकेले घूमते देख लिया था। बात फूटकर एक मुँह से दूसरे मुँह पहुँची। देखते-ही-देखते जंगली आग में गाँव के सभी चौराहे, गलियाँ, सखियों-सहेलियों से भरे आँगन एकबारगी झुलस उठे। बाबू जैपाल सिंह ने सिर पीट लिया। देपाल कभी ऐसा भी करेगा, उन्होंने स्वप्न में भी सोचा न था। उसने तो मीरपुर के बबुआनों की पगड़ी ही उछाल दी। एक कमीन नीच जाति के ठाकुर की लड़की के लिए उसने देवीचरन की वंश-मर्यादा को तराज़ू पर चढ़ा दिया। देपाल ने तो बबुआन की वह सारी प्रतिष्ठा ही धूल में मिला दी, जिसकी एक-एक इंट को जैपाल सिंह के पूर्वजों ने खून और पसीने से खड़ा किया था। उसने एक बार भी नहीं सोचा कि करैता गाँव के लोग मीरपुर बबुआनों की चाल-चलन को किस नज़र से देखेंगे। उसने तो इस लायक भी नहीं रखा कि गाँव के ज़मींदार अपनी परजा से आँखें भी मिला सकें।

उसके दो ही तीन दिन बाद। शाम के समय एक दिन जैपाल सिंह ने अकेले में देपाल को बुलाकर कहा था—"लल्लू यह तुमने ठीक नहीं किया बच्चा। हम तो तुम्हें किसी राह-भूले देवता का अवतार समझते थे। पर तुमने एक बार भी हमारे बारे में नहीं सोचा।" जैपाल की आँखें यह सब कुछ कहते-कहते ग्लानि और वेदना से भर आयी थीं। उन्हे बड़ा दु:ख था कि वंश का यह पतन भी उनके जीते-जी होना था। देवपाल कुछ न बोला। बड़े भाई का उसके मन में बड़ा लिहाज़ था। वह चुपचाप गरदन झुकाये पैर के अँगूठे से दालान की जमीन कुरेदता रहा। उसकी चुप्पी

जैपाल के लिए असह्य होती जा रही थी—"गूंगे क्यों हो गये हो ? बोलो। बोलते क्यों नहीं ?" उन्होंने कड़ककर पूछा था।

"हमने वादा किया है भैया !"

"वादा ? कैसा वादा ? क्या वादा किया है तूने ?"

"यही कि हम जियेंगे तो साथ और मरेंगे तो साथ।" एक झटके से कह गया देपाल।

उसका सारा बदन पसीने से सन गया। यह सब कुछ कह पाने के लिए उसके प्राण जाने कब से भीतर-ही-भीतर तड़फड़ा रहे थे। तभी जैपाल सिंह के दाहिने हाथ का तमाचा उसकी आँख के पास आग की लपट का निशान बनाता उभर गया। देपाल ने एक क्षण के लिए अपनी गर्दन उठायी। उसने बड़े भाई के मुंह पर देखा। उसकी लाल डोरों से भरी-भरी आँखें कुछ अधिक लाल थीं। पर उनमें क्रोध न था। एक अजीब तरह की स्वीकृत वेदना और विवशता थी। जैपाल ने इन आँखों की पीड़ा से पागल होकर अपने हाथ को दरवाज़े के बाजू पर पटक दिया था और खुद रोने लगे थे।

मेघन सिंह को खुद बड़ा अचम्भा हुआ था कि छावनी के मालिक हमारे दरवाज़े पर, हमारी चारपाई के पास आकर खड़े हैं। उन्होंने वैसे बैठे ही बैठे कहा—"क्या आये हो जले पर नमक छिड़कने ? हम तुम्हारी हिम्मत देखकर दंग हैं। भगवान् के लिए तुम जल्दी से जल्दी चले जाओ। नहीं पियाऊ देख लेगा तो तुम्हारा साबुत बच के निकल जाना बड़ा कठिन होगा।"

"अब साबुत कहाँ बचे हैं चाचा ! जो करना हो करो। मेरी तो लाज बिक ही गई है। हारकर तुमसे एक चीज़ माँगने आया हूँ। नाहीं मत करना।" गिड़गिड़ाते हुए जैपाल ने कहा था।

"कौन-सी चीज़ ?

"राजमती को दे दो देपाल के लिए।"

जैपाल की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि बुड्ढा ठाकुर अपनी चारपाई पर चौचक खड़ा हो गया। गुस्से के मारे उसका सारा बदन पीपल के पत्ते

की तरह थरथरा रहा था—"कमीने, डोम की औलाद । निकल जा मेरे दुआर से नहीं····तो ?" बड़बड़ाते हुए मेघन सिंह दालान में चले गये थे और दरवाज़ा बन्द कर लिया था ।

जैपाल ने सोचा था कि इस बेइज़्ज़ती से बचने का एक ही उपाय है कि राजमती और देपाल का विवाह हो जाय । शायद इससे करैता गाँव के सभी झगड़े मिट जायँ । शायद दोनों परिवारों का सम्बन्ध भावी सुख और शान्ति का कारण बने । पर उनकी यह आशा भी ऊसर के बीज की तरह निष्फल हो गयी । बेइज़्ज़ती जो मिली सो ऊपर से । वे आहत मन से मुंह नीचा किये मेघन के चबूतरे से उतरे और गलियों में लोगों की आँखें बचाते छावनी लौट आये ।

जैपाल अपनी बेइज़्ज़ती, अपमान और वेदना में दीन-दुनिया से ऐसे ग़ाफ़िल हो गये कि उन्हें कुछ भी पता न चला कि विपत्ती उनसे बदला लेने के लिए कौन-सा षड्यन्त्र कर रहे हैं । दो हफ़्तों की ढील तो शायद सब-कुछ शान्त हो जाने के लिए दी गयी थी । जैपाल सोचते थे मामला अपने-आप दब जायगा । परिवारवालों की कड़ाई से राजमती रास्ते पर आ जायगी । देपाल से उसका मिलना-जुलना बन्द हो जायेगा । वह भी धीरे-धीरे भूल जायगा । उन्हें क्या मालूम कि राजमती पर कुछ भी कड़ाई नहीं की जा रही है । उसे केवड़ार में नहीं पियाऊ के घर पर ही मिलने-जुलने की आज़ादी है । देवपाल लोगों की आँख बचाकर रोज़ शाम को दक्खिन पट्टी जाता है । रोज़ राजमती से मिलता है । राजमती कहती थी—"भैया-बाबू दोनों मान गये हैं । मालिक आये थे खुद । उन्होंने बाबू से हमारी-तुम्हारी शादी की बात भी की । बाबू ने कोई जवाब तो नहीं दिया पर धीरे-धीरे मन बदल गया है । लोग जल्दी ही तुम्हारे भैया से कहनेवाले हैं ।"

"राजो !" पियाऊ ने एक दिन कहा, "अरे पगली । देपाल रोज़ शाम को आता है । तू उसके सामने होती ही नहीं । माँ से और तेरी भौजाई से बातें करके चला जाता है । आखिर वह कोई बेगाना तो नहीं है । उसे पानी-वानी के लिए पूछना चाहिए तुझे ।" राजो ने लजाकर गर्दन झुका

ली । उसके होठों पर बड़ी प्यारी-प्यारी टटकी मुस्कराहट खेलने लगी । पियाऊ रोज़ शाम को बादाम की ठंडई पीता था । आज भी वह दालान में सिल के पास बैठा था । ढेरों बादाम के छिलके बिखरे थे । एक बाल्टी शरबत बना था । एक गिलास की ओर इशारा करके उसने कहा था—"जा ले जा इसे, दे देना उसको । जल्दी जा । सुब्बा आ रहा है, उसे भी ठंडई लेनी है ।" राजो लाज से गड़ गयी । पर जब भाई कह ही रहा था तो गिलास देपाल के हाथ में थमा देने में क्या बुराई थी ? उसने चुपचाप गिलास उठाया । धीरे-धीरे आँगन में ले जाकर देपाल को देती हुई बोली—"भाई ने दी है, ठंडई है ।"

"ऐ है ! शादी के पहले ही बीवी जी इशक कर रही हैं ।" पियाऊ की पत्नी ने ताने देते हुए कहा था । राजो सिकुड़कर कोनिया घर में छिप गयी थी ।

देपाल ने आँखें मूँदकर एक झटके में शरबत पी लिया था । वह पियाऊ-बो की बातों से बुरी तरह झेंप गया था । गिलास रखकर मुस्कराते हुए भाग आया था ।

रात बारह बजे क़रीब देपाल मरा था । गोरा चिट्टा बदन काला हो गया था । देखनेवालों से यह बात छिपी नहीं रही कि किसी ने ज़हर दे दिया है । पर किसी ने मन की बात को बाहर न किया । सब शंका को दिल के भीतर ही छिपाये सिसकते रहे । उसने जाने कितनी बार कै की । बाद में दस्त भी आने लगे । लोगों ने समझा था कि हैजा हो गया है । हैजे का देहाती उपचार ही होता रहा । देपाल ने कई बार पूछने पर भी यह न बताया कि उसने कोई ऐसी-वैसी चीज़ खायी है । देपाल की बीमारी की खबर से सारे गाँव में एक अजीब सकता छा गया ! एक दहशत—गर्मी की शुरुआत में ही हैजा ! लोग-बाग हैजा का नाम सुनकर ही घरों के दरवाज़े बन्द करके आँगन में छिपकर बैठ जाते । कुछ ही लोग थे उस समय देपाल की चारपाई के पास, जब उसकी लाश उतारी गयी थी । जैपाल तो उसकी लाश पर ही बेहोश होकर गिर पड़े थे । बड़ी मुश्किल से उनको

होश आया था। तीन-चार हट्टे-कट्टे आदमियों ने उन्हें ज़बर्दस्ती बन्द कर दिया था एक घर में, ताकि इस पागलपन में वे अपना भी कुछ कर न बैठें।

दूसरे दिन देपाल की मौत का रहस्य छिपा न रहा। राजो ने भी देपाल के मरने की खबर सुनी। वह मुँह-अँधेरे औरतों के साथ तालाब जा रही थी। सन्न हो गयी।

"लोग कहते हैं, हैजा हो गया था।" एक औरत फुसफुसाकर बोली—"पर फेरू देवर कह रहे थे कि ज़हर दिया गया था। कै करते बखत बादाम का टुकड़ा गिरा था। किसी ने दिया होगा शरबत-वरबत में।"

राजो ने सुना तो लगा कि उसके कलेजे के भीतर किसी ने गाय का वध करनेवाली तलवार हूल दी है। "आह!" वह मन-ही-मन विथरकर बोली—"यह सब मेरे ही हाथों कराया गया। उन्हें एक बार भी शंका नहीं हुई कि शरबत में क्या होगा। वे तो मेरा मुँह देखते रहे और एक साँस में शरबत पी गये।"

राजो अपने प्रति एक विचित्र घृणा और नफ़रत से भर उठी। उस बेचारी को भी कैसे धोखे में रखा गया। वह जान भी न सकी कि देपाल से उसे किसलिए मिलने-जुलने दिया जा रहा है। वह पगली तो समझती थी कि बाबू-भइया का मन बदल गया है। वे अपनी दुलारी राजो की खुशी के लिए सब कुछ करने को तैयार हो गये हैं।

"हाय रे छल!" वह भीतर-ही-भीतर सिसककर चुप रह गयी। "अपने ही हाथों उनको माहुर दे दिया मैंने।"

वह चुपचाप तालाब से लौट आयी। साथ की लड़कियों को बड़ा अचरज भी हुआ कि इस खबर से राजो को कोई विशेष दुःख न हुआ। वह रोज़ की तरह ही बातचीत करती रही। हाथ-मुँह धोकर जब वह पड़ोस की दूसरी लड़कियों के साथ लौटी तो भी अभी हल्का अँधेरा था। लोग जग रहे थे। राजो कोनिया घर में चली गयी। माँ और भाभी से भी उसने कोई बात न की। भीतर से उसने दरवाज़ा बन्द कर लिया। औरतों ने सोचा, खबर लग गयी है शायद। दुःख के मारे वह बाहर नहीं आना चाहती। औरतें भी उस धोखे से बाहर कहाँ थीं? मरदों की बात को क्यों न पतियातीं भला। सभी कहते कि राजो देपाल को ब्याही जा रही है।

जब दोपहर होने को आयी और राजो फिर भी बाहर न आयी तो उसे खिलाने के लिए जगाना ज़रूरी हुआ। पियाऊ बो ने बहुत हाँक लगायी। साँकल पीटी। न कोई बोला, न दरवाज़ा खुला। हड़बड़ाकर मर्दों को खबर दी गयी। बढ़ई ने दरवाज़ा काटा तो देखा राजो गरदन में रस्सी बाँधकर घर की बल्ली से लटक गयी है। माँ ने छाती पीट ली। भाई धाड़ मारकर रो पड़ा। रस्सी कटी। देह नीचे आयी। पर राजो बहुत ऊपर चली गयी थी।

गाँव में देपाल और राजो की साथ-साथ होनेवाली मौतों ने एक अजीब उदासी की मटमैली चादर तान दी। अनेक गर्मियों में तपकर, बरसातों में घुलकर और जाड़ों में ठिठुरकर भी यह खूनी चादर कभी धूमिल न हुई। कभी-कभी तो लोगों को बीसू पर भी बहुत गुस्सा आता। वह बासी घाव को अपने से भरने भी नहीं देता। निरन्तर कुरेद-कुरेदकर उसे रिसने के लिए छोड़ देता है। मगर बीसू था कि जैसे उसने गले के सारे दर्द से इस कहानी को हमेशा-हमेशा नहलाते रहने की कसम ले ली हो—

फूल परिजतवा झरत होइहैं ना।
लरिकइयाँ कै नेहिया टुटत होइहैं ना॥

• •

तीन

"बुड्ढा फिर आ रहा है।"

करैता गाँव के लिए जैपाल सिंह के लौटने की खबर एक बहुत बड़ी घटना थी। ज़मींदार, जो किसी बाहरी गाँव के बाशिन्दे होते हैं, अपनी छावनी पर आते-जाते रहते ही हैं। इसमें इतने आश्चर्य की क्या बात ? फिर अब तो ज़मींदारी टूट गयी। जैपाल के आने-जाने से क्या फ़रक़ पड़ना चाहिए भला। पर करैता के लोगों को जैपाल के लौटने की बात मामूली नहीं लगती। छावनी के अमलों की मार्फ़त किसी तरह खबर फूट गयी थी और सुबह से लेकर दोपहर तक के भीतर ही नाना तरह के अर्थों, अनुमानों और शंकाओं में लिपटी-सिमटी गाँव के ऊपर मँडराने लगी थी।

"सच्ची ? क्या बुढ़ऊ फिर आ रहे हैं ?" दयाल महराज को लोगों की बात पर विश्वास नहीं होता। एक निहंगड़ा गाँव है यह। किसी ने किसी को चिढ़ाने के लिए उड़ा दी होगी बात। यहाँ तो अपना कान कोई देखता नहीं, आसमान में कौवे की ओर सब ताकते हैं। "बुढ़ऊ अब क्या आयेंगे यहाँ ?" दयाल महराज जानते हैं—"क्या बाक़ी रही उनकी यहाँ। ज़मींदारी टूटी कि लोगों ने छावनी की ओर मुँह करना भी छोड़ दिया।"

तब करैता गाँव के सभी रास्ते छावनी को ही जाते थे। आप गाँव

की किसी भी गली में निकलिए, घूम-फिरकर छावनी ही पहुँचेंगे। वे गलियाँ, जो छावनी के रास्ते को काटती थीं, लोगों को भूलभुलैया में डालती और भरमाती थीं, बन्द कर दी गयीं। और बन्द हुईं तो ऐसी कि फिर वे कूड़ा फेंकने के ही काम आयीं, कभी उनमें फिर किसी आदम-जात ने पैर नहीं रखा।

इस भूलभुलैया के बिसातखाने पर उत्तर कोने में जो बड़ा सा चौकोर घेरा है, उसमें एक बूढ़ा बाघ रहता था। दूसरे कोनों में छोटे-छोटे दरबों के भीतर मेमने बन्द थे। यहाँ कभी किसी ने यह सवाल नहीं किया कि कृपया आप इस नक़शे में वह रास्ता बताइए जिससे होकर बाघ बिना रास्ता भूले मेमनों के पास पहुँच जाये। यहाँ तो भूलभुलैया में रास्ता ढूँढ़कर खुद मेमने ही बाघ की माँद में आया करते थे। क्या करते बिचारे, तब करैता गाँव के सभी रास्ते छावनी को ही जाया करते थे।

ज़मींदारी टूट गयी। फिर भी किसी को विश्वास नहीं होता था कि मांसाहारी बाघ शाकाहारी हो गया। तभी जैपाल सिंह गाँव की बिगड़ती हुई रस्मोरवाज से खिन्न हो करैता छोड़कर चले गये। उन्होंने कसम ले ली कि जीते-जी वे फिर यहाँ कभी पाँव नहीं रखेंगे।

"बुड्ढा फिर आ रहा है। यह क्या बात ?" दयाल महराज ने कंधे पर गमछा डाला और छावनी की ओर चल पड़े।

"आओ बुल्लू पंडित।" बुझारथ उन्हें देखकर मुस्कराते हुए बोले—"आपसे किसने कहा ?"

"तो बात ठीक है।" दयाल महराज मन ही मन मुस्कराये—"बेतार के तार से खबर लगी छोटे सरकार। आप तो यों पूछ रहे हैं, जैसे मैं भी गाँव छोड़कर चला गया था।"

"मालिक काका ने आपके लिए खास तौर से कहलाया है।" बुझारथ उनकी ओर रहस्यभरी दृष्टि से देखते रहे—"वे करैता के और किसी आदमी पर विश्वास ही नहीं करते। मुंशी नवजादिक लाल गये थे मीरपुर। मालिक

काका ने कहा कि दयाल से कह देना कि मैं आ रहा हूँ। कहीं अनतै न चला जाय।"

"तो आपने तो कहलाया नहीं छोटे सरकार। यदि मैं आकर यहाँ पूछता नहीं तो पता भी न चलता। इसी से तो कह रहा हूँ कि बेतार के तार से ख़बर लगी है। किस दिन आ रहे हैं बुढ़ऊ मालिक ?"

"किस दिन नहीं, किस बख़त पूछिए। दोपहर को खाना-पीना करके चल पड़े होंगे। अब पहुँचते ही होंगे। समझ लीजिए, अधिक से अधिक घंटा भर और।'

"अच्छा छोटे सरकार।" दयाल पण्डित हड़बड़ाकर उठे—"तो चलूँ। काम-धाम निपटा लूँ। पता नहीं कब वारंट निकल जाये।" वे हँसे। गमछे को गर्दन में डालकर दोनों सिरों को मुट्ठियों में पकड़कर खींचा जैसे गर्दन सीधी कर रहे हों।

दयाल महराज रास्ते भर मौन रहे।

लगता है, बुड्ढा चुनाव की वजह से आ रहा है। सुना होगा कि करैता गाँव में सभापति के आसन पर पियाऊ का लड़का सुरजू बैठने जा रहा है। बुढ़ऊ को मैं ख़ूब जानता हूँ। ऊ सब सह सकते हैं, मगर मेघन के प्रानियों को करैता का सरगना बनते नहीं देख सकते।

लेकिन बुढ़ऊ मालिक ग़लती कर रहे हैं। उन्हें मालूम नहीं कि पिछले तीन-चार साल में करैता क्या से क्या हो गया है। अब यह वही करैता नहीं है।

सुरजू भी अब वे ही सुरजू नहीं हैं। उन्होंने अपनी अलग 'पाल्टी' बना ली। उनकी पाल्टी में एक से एक बदमाश और नंगे-लुच्चे भर गये हैं। हरिया, सिरिया, छबिलवा, शशधर, और क्या नाम है उसका कल्लूसिंह के लड़के का, हाँ सूरत। ई साले सबके सब एक से एक हरामी हैं। किसी को कुछ समझते ही नहीं। तारीफ़ तो यह है कि इनमें से कोई उजड्ड-गँवार भी नहीं है। सब पढ़े-लिखे हैं। हरिया दरज़ा नौ में पढ़ता था, विपिन बाबू के साथ। सिरिया-छबिलवा दोनों एकाध दरज़ा नीचे रहे होंगे।

अखबारों का पढ़ने में मन लगेगा ? कोई न कोई बहाना करके भाग खड़े हुए। अब ये ही गाँव के सरदार हैं। जो चाहें वही होता है।

सुखदेव राम की अलग पाल्टी है। वह देश-देहात का सबसे बड़ा काँग-रेसी नेता है। पिछली बार चुनाव में हार गया तो इससे क्या ! पूरी जादव पाल्टी, गोंड, कँहार, दुसाध, कोइरी-काछी सब उसको वोट देंगे। कहीं सुखदेव राम और सुरजू मिल जायँ, तब तो और क्या कहना ? कौन जाने मिल ही जायँ। सुरजू से तो खैर ख़ानदानी दुश्मनाही है। सुखदेव राम काहे को साथ दें ज़मींदार घराने का। इधर हरिया-सिरिया रोज़ फुसफुसाकर बतियाते हैं सुखदेउवा से। का जाने मिल-जुलकर लड़ें सब। ऐसे में बुढ़ऊ तो क्या भगवान् भी आ जायँ इनकी पाल्टी में, तब भी बुझारथ नहीं जीत सकते। बुझारथ को गाँव जानता नहीं क्या ? एक लुच्चा और बदमाश है ई आदमी। अब हमसे क्या छिपा है। ई साला भी सुगनी के लिए क़स्बे से सामान मँगवाता है। ख़ाली सुगनी ही क्यों ? जब से मियवा का साथ हुआ है, तब से तो और भी बह गया। एक तो तितलौको फिर नीम चढ़ी। वैसी सीता-सतवंती औरत है घर में। बाकी साला साथ नहीं रखता। रखेगा क्या, ऊ खुद इसके साथ रहने को तैयार नहीं। ऐसे मलेच्छ के साथ कौन रहेगा ?

ऐसे आदमी को सभापति बना देगा गाँव ? अरे वाह ! किसी को कुक्कुर काटे है क्या भाई।

खैर हमसे का मतलब। बुढ़ऊ की बात उठी, तो ई सब मन में आ गया। नहीं कौन ई सब परपंच में पड़े।

●

बड़े सरकार आ रहे हैं इसलिए छावनी की लिपाई-पुताई हो रही है। दालान के भीतर वाली कोठरी में सोते हैं वे। जब तक करैता रहे, उसी कोठरी में सोये। इसी में देपाल बाबू का इन्तकाल हुआ था। कोठरी की

फ़रस धोयी जा रही है। कोने-अँतरे में लगे मकड़ी के जाले छुड़ाये गये। सामने के चबूतरे को गोबर से लीप-पोतकर साफ़ किया गया। दोपहर को ही बखरी-भीतर से बड़की पलंगड़ी निकालकर चबूतरे पर रखी गयी। साफ़ तोशक और तकिया। बाईं ओर बड़का तखत बिछ गया। इसी की लम्बाई-चौड़ाई का पुराना गलीचा ऊपर डाल दिया गया। कोने में गोरसी रख दी गयी। हमेशा आग तैयार रहनी चाहिए। बनारसी खमीरा और कटावदार चीलम। गुड़गुड़ी बालू से खूब मल-मलकर चमकायी गयी। पुराने नैचे की सींवन उघेड़कर उसे नये कपड़े और तार के गोटे से सुधरवाया गया। खुदाबक्कस सबेरे से दौड़-दौड़कर घोड़े की लगाम और बागडोर रँगता रहा। बड़े बाबू को गन्दी लगाम से गुस्सा आ जाता है।

खुदा क़सम जब वह धीरे से कहते हैं, खुदाबक्कस मियाँ, औज़ार साफ़ रहता तो काम भी साफ़ होता—तो मेरी साँस बन्द हो जाती है। कलेजा हलक़ को आ जाता है। नवजादिक लाल कोने-अँतरे में छिटके-फुटके कूड़े को उठवा कर खेत में फेंकवा रहे हैं।

"तीन-चार साल के भीतर क्या कर दिया बुझारथ सिंह ने? राम राम! दरवाजे पर घूरा रखवा दिया।" मुंशी नवजादिक बड़बड़ाते हैं। छावनी के बगल के घूरे को सबेरे से बीसों मजदूरे कोड़-कोड़ कर खाँचियों में उठा रहे हैं। अब जाकर साफ़ हुई है जगह। छोटे सरकार को कुछ पता नहीं है। वे बड़े तरद्दुद में हैं। बिला वजह जाने क्यों मालिक काका करैता आ रहे हैं।

शाम होते-होते बड़े सरकार का खेमा छावनी पर आ गिरा। वही बुढ़िया पंचकल्यानी घोड़ी। वही रंगीन दकदक जिनपोश। वही चटक मिरज़ई और चटक साफ़ा। बीरा पीठ पर बड़ा-सा गट्ठर बाँधे आगे-आगे चल रहा था। गुद्दन अहीर लम्बी-सी मोटी लाठी को कंधे पर हमेशा की तरह ही टिकाये घोड़ी के पीछे-पीछे। गोबरधना बहेलिया दुनाली बंदूक और कारतूस की मटमैली पेटी लटकाये। वह हमेशा ताल-तलैया और पेड़ों पर आँखें गुड़ेर-गुड़ेर कर चिड़ियाँ ही खोजता चलता है। रमचन्ना

फुदकता हुआ, अचरज से पुराने पेड़-पौधों को देखता कि जैसे वे वही हैं कि बदल गये हैं। पर बौरहे को क्या मालूम कि वे सब वही हैं, बदल वह खुद गया है। पहले वह सोलह साल का लोच चेलका था, अब तो गबरू जवान हो गया।

खुदाबक्कस ने झुक कर जुहार की। पलंगड़ी पर तोशक खिंच गयी। पुराने बैठकबाज अगवानी में खड़े थे। नवजादिक लाल ने अपने बाप के जमाने की पुरानी मचिया सिरहाने लगा दी थी। जाने कब क्या पूछ बैठें। रमचन्ना ने गुड़गुड़ी को पानी से तर किया और चीलम चढ़ा दी।

"कहो खुदाबक्कस मियाँ। बछेड़ा कुछ लत से औंका कि अभी पुश्तकबाजी ही चलती है।"

"हाँ बड़े सरकार, जी हुज़ूर! अब तो हुज़ूर, हुनरमन्द हो गया है श्यामकरन। गरीब परवर हाँ, हाँ।" खुदाबक्कस ने कोर्निश बजाते हुए बड़ी अदा से कहा—"कल सुबेरे मालिक की थोड़ी इनायत हो जाय तो कुछ इसके भी करतब देख लिये जायँ हुज़ूर।"

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं। करतब देखने ही तो आया हूँ।"

बड़े सरकार कुछ इस ढंग से हँसे कि खुदाबक्कस मियाँ का उत्साह ठंडा हो गया। वह परे हट गया।

पुराने बैठकबाज लोग धीरे-धीरे मुसकरा रहे थे। अभी किसी से जैपाल सिंह से बात नहीं हुई। पर उन्होंने सरसरी तौर से देखा था मूँछों में ही मुसकराये थे। वह मुसकराहट क्या भूलने की चीज है। कभी लगता नहीं कि जैपाल सिंह चार-पाँच साल के बाद करैता आ रहे हैं। उनकी मुसकराहट समय की दूरी को लाँघ जाती है। सामने बैठे हर आदमी के मन के भीतर की बातों को जानकर ही ऐसे मुसकराया जा सकता है।

"का हो हरखू भाई।" जैपाल सिंह इस बार बहुत साफ़ हँसे—"कस्बे जाना होता है कि नहीं?" सभी लोग हो-हो कर के हँस पड़े।

हरखू सरदार की आँखें ज़मीन में गड़ गयीं। झुर्रियों में लिपटा उनका चेहरा लाल होने-होने की कोशिश में धूमिल लगने लगा।

"इसी से मैं नहीं आता था यहाँ।" वे मन ही मन बुदबुदाये। "एक बात कह दी कभी किसी ने। बस वह बरमलेख हो गयी। इसी के कारन सब कुछ किया-कराया साफ़ पोंछ के चिक्कन। ऊ साला भोलुवा एक मसखरा है। सारा गाँव जानता है कि वह एक में दो जोड़कर मसखरेबाज़ी करता है। पर इनके लेखे तो उसके जैसा सत्तवादी कोई है ही नहीं।"

चार-पांच साल पहले की बात है। जैपाल सिंह ने हरखू को दस रुपये देकर क़स्बे भेजा। कुछ ज़रूरी सामान खरीदने थे। हरखू सरदार सुबह बाज़ार करने निकले तो फिर दूसरे दिन सुबह ही छावनी लौटे। जैपाल सिंह ने कई बार आदमी भेज-भेजकर पुछवाया। हर बार आदमी ने लौटकर यही बताया कि वे क़स्बे से अभी लौटे नहीं।

दूसरे दिन सुबह हरखू सरदार बड़े घबराये-घबराये चेहरे पर ज़माने भर की उदासी और निराशा लपेटे छावनी पहुँचे।

"का हो हरखू।" देखते ही जैपाल सिंह ने कहा—"अच्छी खरीदारी करते हो भाई। इतना ज़रूरी सामान था। इसलिए आप-जैसे यकीनी आदमी को भेजा। जोहते-जोहते रात हो गयी। अब जाकर दरशन हुए आपके।" जैपाल सिंह की आवाज़ में कुढ़न और खीझ थी।

"क्या कहें भइया राजा!" हरखू सरदार हकलाकर बोले।

"कहना-वहना क्या अब! सामान बखरी में दे दिया न?"

"वही तो कह रहा था भइया राजा! महावीर सामी कसम, जाने किसने मुर्री में से रुपये काट लिये।" हरखू सरदार ने अपनी धोती का खूँट दिखाते हुए परम दयनीय भाव से कहा—"नयी धोती थी।" धोती का खूँट फटा हुआ था, पर ऐसा नहीं लगता था कि वह ब्लेड से कटा है।

"आप क्या बेहोश होकर क़स्बे में घूमते हैं?" जैपाल सिंह वैसे ही सामने ताकते हुए बोले। उन्होंने हरखू सरदार की नयी धोती का मुआइना भी नहीं किया—"असल में मेरी मति मारी गयी कि आप जैसे खब्ती आदमी को बाज़ार भेजा। जाइए, अब क्या खड़े हैं यहाँ।"

हरखू सरदार वहाँ से तो हट गये, पर दालान से गये नहीं। मनमारे,

मुँह लटकाये बग़ल की चारपाई पर बैठ गये। जैपाल सिंह गुस्से से विफर रहे थे। उन्होंने वीरा को गाँव में भेजा। पता लगा लो ज़रा बनियों के यहाँ जाकर कि कोई क़स्बे जा रहा है? भोलू साह अपना टट्टू कसकर चले ही थे कि वीरा ने मालिक का संदेश दिया। टट्टू को छावनी के पास गली में खड़ा कर वे दालान में हेल आये।

"कुछ हुकुम है सरकार।" उन्होंने जैपाल सिंह के सामने जाकर हथेली रगड़ते हुए पूछा।

"अरे भोलू साह! कुछ सामान लाना है भाई। दस रुपया देकर भेजा था हरखू को कल। अभी आये हैं सुबह। किसी ने रुपये उनकी मुर्री से काट लिये। जब कटे थे, तभी आ जाते। मैं किसी और को भेजकर कल ही मँगवा लेता। बिना ज़र्दा के मेरा काम तो नहीं चलेगा। बखरी का सामान भले देर से आये।"

भोलू साह ने दालान में घुसते वक़्त ही गर्दन झुकाये बैठे हरखू को देखा था।

"ई तो आढ़त के पास बैठकर गाँजा पी रहे थे।" भोलू साह भेद-भरी मुस्कराहट से हरखू की ओर देखते हुए बोले—"रेलवे गोदाम का पल्लेदार जगदल भी था। खूब बहसाये था इन्हें।"

"देखो भोलू साह।" हरखू सरदार तिनककर खड़े हो गये—"सोच-समझकर और मौका-बेमौका देखकर मसखरी किया करो। नहीं महावीर सामी कसम, मैं कहे देता हूँ खून-खराबा हो जायेगा किसी दिन।"

"मसखरीबाज़ी आप करते हैं बाबू हरखू सिंह!" भोलू साह बेमुरव्वती से बोले—"मैं अभी जाकर बुला लाऊँगा जगदल को। आपके सामने न कबुलवाय दिया तो कहिएगा।"

"हाँ-हाँ, बुला लाओ जगदल को। हमको क्या उसका डर पड़ा है?"

"और मंगली पल्लेदारिन को? उसको भी बुलवाऊँ?"

एक क्षण के लिए हरखू सरदार का चेहरा बिल्कुल फ़ीका हो गया। तुरन्त ही उन्होंने अपने को सँभाला और गुस्से से उछलकर भोलू साह के

सामने पहुँचे—"देखो, भोलू। देखो हाँ, कहे देता हूँ। देखो, ठीक नहीं होगा। महावीर सामी कसम, ठीक नहीं होगा, हाँ।"

"क्या ठीक नहीं होगा।" भोलू साह भी कड़े पड़े। हरखू सरदार ने एक बार उनकी ओर फटो-फटी आँखों देखा, फिर सिमटकर बैठ गये। आज भी जब हरखू सरदार उस क्षण के बारे में सोचते हैं तो उनकी गर्दन अपने-आप झुक जाती है। चेहरा स्याह हो जाता है। उस समय आवाज़ ही नहीं निकल रही थी उनको, जाने कैसे भोलुवा को सब पता चल गया था।

जैपाल सिंह को तो घर बैठे मुफ्त का तमाशा मिल गया। वे क्यों चुप रहें भला।

"ई मंगली कौन है हो भोलू साह !" उन्होंने बड़ी चटक आवाज़ में पूछा।

"नयी बाज़ार की खटकिन है सरकार। अब यहीं आकर रहती है। गोदाम में झारी करवाती है। सब लोग पल्लेदारिन, पल्लेदारिन कहते हैं उसे। बड़ी मन-शोख़ और बेशरम है। राह चलते मुसाफ़िरों से छेड़खानी करती है। पान-बीड़ी, मिठाई माँगती है। एक हरामी है। ई समझते हैं कि इनसे परेम करती है। ई नहीं समझते कि इन्हें चूतिया बनाती है।" भोलू साह काफ़ी गंभीर हो गये थे। अब उनके कटाक्ष और व्यंग्यों में हरखू के प्रति शुभकामना और सहानुभूति भी छलकने लगी थी। भोलू साह यह सब अपने एक ग्रामवासी-बंधु की भलाई के लिए कह रहे हैं। वरना उन्हें क्या ग़रज़ पड़ी है कि ये दुनिया के परपंच में पड़े।

इस अवांछित सहानुभूति ने हरखू पर कुछ ऐसा असर किया कि उनकी आँखें छलछला आयीं। वे उदास भरी-भरी आँखों जैपाल सिंह को देखते चुपचाप वहाँ से चले आये।

उस दिन के इस वाक़ये के बाद कभी जैपाल सिंह ने हरखू से मंगली या जगदल को लेकर मज़ाक़ नहीं किया। धीरे-धीरे हरखू सरदार के

कलेजे का ज़ख़म भर गया। मगर उसके बाद भी वे जैपाल सिंह से हमेशा ही आशंकित रहते।

"हुई न बात वही, तीन-चार साल के बाद मिले तो मेरे बारे में और कुछ नहीं पूछा। कितने-कितने अच्छे काम किये, उसकी कोई चर्चा नहीं। याद पड़ी तो बस क़स्बे वाली बात। इसे ही कहते हैं दुम हिलाते कुक्कुर को दुलत्ती मारना। आजकल इसी में लोग अपनी 'बडबरगी' समझते हैं।" हरखू सरदार ने गर्दन नहीं उठायी।

जैपाल सिंह ताड़ गये कि हरखू को बात लग गयी है। इसलिए उन्होंने बातचीत की दिशा बदल दी। उसी समय बुझारथ बखरी से आये और उन्हें खाना खिलाने के लिए भीतर बुला ले गये। महफ़िल ख़त्म हो गयी।

●

जैपाल सिंह ने इधर करैता की गली में पाँव रखा, उधर सिरिया ने सुरजू सिंह को ख़बर की।

"तुमने अपनी आँख से देखा है ?" सुरजू सिंह अपनी चिन्ता छिपा न सके, "आने दो। इस बार वे अपनी आँख के सामने अपनी इज्ज़त और बड़प्पन की लाश उठते देख लेंगे।"

"लेकिन गाँववालों को कैसे समझायेंगे हम लोग ?" सिरिया बोला—"जब से ख़बर लगी है लोगों को कि बुड्ढा आ रहा है, सारे करैता में हौलदिली छायी है। जेबासे बड़े-बड़े लोगों के चेहरे पर फेफ़री पड़ गयी है। जैसे बुड्ढा उन लोगों को बेदख़ल करने के लिए आ रहा है। ऐसा डरपोक गाँव तो मैंने देखा नहीं।"

"अच्छा ?" सुरजू सिंह बात तो सिरिया से कर रहे थे, पर लगा कि सारे गाँव को मुख़ातिब करके कह रहे हैं—"क्या कर लेंगे जैपाल। अब क्या कोई उनके असामी हैं ? दस गुना लगान जमाकर भूमिधर बने हैं। ऊ पुरानी बातें लद गयीं कि बिला वजह जब चाहा किसी को पकड़वाया

और मुरग़ा बनाकर लटका दिया। अब तो एक के दो नहीं, चार देने वाले हैं इसी गाँव में। किसके चेहरे पर हौलदिली छायी थी। ज़रा नाम तो बताना ?"

"नाम क्या बतायें आपसे। आप तो जान ही गये होंगे। जेबासे आ रहे थे पच्छिम टोला से। वहीं लोग बतिया रहे थे।"

"केवल सिंह कह रहे होंगे। उनका ख़ानदान पुश्तैनी डरपोक है। ज़िन्दगी भर जैपाल का तलवा चाटते रहे। ऊ न डरेंगे तो कौन डरेगा भला ? वही थे न ?"

"हाँ केवल थे। जेबासे दो चार और थे उसी टोला के।"

"मारो सालों को। जैपाल नहीं आते, तब भी वे हमारा साथ नहीं देते। ई बताओ सुखदेव राम से कुछ बातचीत हुई ?"

"उधर भी कुछ साफ़ पता नहीं चलता। जेबासे हरिया ने बेवक़ूफ़ी भी कर दी। हर बात पर सुखदेव नाहीं-नहीं करते रहे तो उसने ग़ुस्से में कह दिया कि जाइए बनिये सभापति। जेबासे न खाये गच्चा तो कहिएगा। ऐसी ही अकल न होती आपकी तो क्या ऐसे फटेहाल रहते ? मामूली-मामूली काँगरेसियों ने पक्की हवेली बना ली। और आप निकलुआ के निकलुआ ही रह गये। नेतागिरि देख ली। आप तो चाहते हैं कि दो छुटभइये लड़ जायँ और ज़मींदार जीत जायँ।"

"अच्छा ? ऐसा कह दिया हरिया ने ? ठीक किया। हम भी सुखदेव राम को बुलाकर यही समझाना चाहते थे। हरिया ने सही मुद्दे पर हाथ रख दिया। सुखदेवराम को वही समझा भी सकता है। एक डरपोक है साला। जन्मा तो यादववंश में; लेकिन है पूरा मुंशी। ऐसे न माने तो, वैसे ही मनाना पड़ेगा उसे। खड़े तो हुए थे पिछले चुनाव में जैपाल के ख़िलाफ़। क्या हुआ ? ज़मींदारी खतम हो गयी, मगर गाँव के सरगना जैपाल ही बने रहे। इस बार खड़े होकर फिर करेंगे बंटाधार। इधर हमारा वोट बँट-वायेंगे। उधर बुझारथ जीत जायेंगे।"

"जीत कैसे जायेंगे। जेबासे फूंक नहीं देंगे हम लोग सारा गाँव।

पिछली बार हम लोग ग़फ़लत में रहे। जेबासे चुनाव-सुनाव की कोई इलम नहीं थी। अब की बार देखिए।"

सीरी सिंह ने गमछा झटककर कंधे पर डाला, जैसे संकल्प को ताज़ा कर रहे हों। फिर झपटकर गली में चल दिये।

●

बखरी में जैपाल, बुझारथ और नवजादिक इकट्ठा थे। बड़ी देर तक बातें होती रहीं।

जैपाल सिंह ने चलते-चलते बुझारथ से पूछा—"खाना कौन बनाता है ?"

"अब तक तो जैसे-तैसे बन जाता था। आज से बुलवा लिया है शीतला की अम्मा को।"

"गोगई की औरत ?"

"हाँ।"

वे बखरी से निकलकर सीधे दरवाज़े पर आ गये। भीड़ छँट गयी थी। हलका-हलका जाड़ा पड़ने लगा था। पलंगड़ी उठाकर बरामदे में डाल दी गई थी। बैठते ही जैपाल सिंह ने गुद्दन अहीर को बुलाया।

"कहो गुद्दन ! सुखदेव राम से तो तुम्हारी जान-पहचान होगी ?" जैपाल सिंह ने पूछा।

"जान-पहचान ? वाह, मालिक आप भी क्या पूछते हैं ? अरे सुख-देउआ हमरी ममेरी बहिन का लड़का है ग़रीब परवर।" गुद्दन चौधरी ने कहा—"एकदम निहंग आवारा है। दलगंजन पाहुन से पटती नहीं उसकी। कोई बात हो तो हुकुम करियेगा। गट्टा पकड़कर साले को खींच लायेंगे।"

"अरे नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। जरा हम सुखदेव राम जो से कुछ राय-बात करना चाहते थे।"

"अब हीं मालिक ! पकड़ लाते हैं साले को। उसकी क़िस्मत है कि सरकार ने याद किया।" गुद्दन राम जी ने अपनी लाठी उठाई और हूरा पटकते चल पड़े।

●

सुखदेव राम जी ने यादववंश में गलती से जन्म ले लिया। पर ले लिया तो अब क्या किया जाये।

"कसके एक खाँची खाद उठा दें तो साले का माथा चरचराने लगता है।" दलगंजन चौधरी ऐसा अनखा कर बोलते हैं कि सुखदेव राम जी का मन होता है कि कहीं 'तीरथ जात्रा' पर निकल पड़ें। माँग मुड़ाकर संन्यासी बन जायँ ! ससुरी माया कैसा नाच नचाती है।

न तो सुखदेव राम जी ने कभी डंड-बैठक किया, न 'ललकी गाउटी' ओढ़ी। कभी गर्दन में ऐंठे सूत का गंडा भी नहीं पहना। कभी भैंस की पीठ पर बैठ कान में उँगली डालकर बिरहा भी नहीं गाया। लाठी से उन्हें सख्त नफ़रत थी। पटा-बनेठी का खेल देखकर उन्हें गश आने लगता। दूर खड़े होकर चिल्लाते—"अरे बन्द करो सालो। एकदम भुच्चड़ हैं। देखो, अभी किसी का सर फटता है कि नहीं।" वे भय से घबराकर हाँफने लगते। दलगंजन चौधरी उन्हें 'चेखुरदास' कहते। गिलहरी की तरह दुबला-पतला और डरपोक।

"इ जाँगरचोर कहाँ से जन्मा अपने घर में ?" हुक्का थमाती चौधुरानी को लक्ष्य करके चौधुरी ललकारते—"दोगला है। खेती बाड़ी होगी नहीं। गये थे गढ़गित करने। तीन महीने के बाद ही झोला-डंडा उठाकर भाग आये। का हुआ भई, काहे भागे ? तो वहाँ खाने को नहीं मिलता। वाह रे पेटू। सगरो गाँव के लड़के उहाँ टिककर पढ़ते हैं। ऊ क्या वहाँ उपास करते हैं। मैं तो लच्छन देखकर ही जान गया कि चेखुरदास से कुछ न होगा। न ये इस घाट लगेंगे, न उस घाट।"

सुखदेव राम जो बहुत उदास हो जाते। उनको सारा गाँव बेवक़ूफ़ी की आँच में लहरता नजर आता। गाँवों की गलियाँ तंग लगतीं, लोगों के बइठके कड़वे धुवें से भरे-भरे। वे धीरे-धीरे मन को समझाते। बातें सहने के योग्य बनाते। दो बातें सुन ही लेंगे तो क्या हो जायेगा। चीख-चीख कर बाबू आखिर को चुप तो हो ही जाते हैं। मगर ज्यों-ज्यों खेती-गिरहस्थी की हालत खराब होने लगी, चौधुरी की चीख-चिल्लाहट बढ़ती गई।

जो होना था वही हुआ। यानी सुखदेव राम जी काँगरेसी हो गये। गाँव छोड़कर भाग गये। किसी ने आज उन्हें बनारस देखा। किसी ने गाजीपुर। बिल्कुल खाँटी खादी का 'उज्जर' कुर्ता और लकलक साफ धोती। माथे पर 'गान्ही' टोपी। हम तो भाई पहचान ही नहीं पाये सुखदेउआ को। दलगंजन चौधुरी सुनते तो उनके होंठ घृणा से बटुर जाते।

"मारिए साले को। हमारे सामने उसका नाम न लीजिए। ऐसे अवारा पूत से निपूता भला।"

पूरे पाँच साल के बाद, एक कतकी भोर में सुखदेव राम जी करैता लौटे। काली माटी के सलेटी सीवान में सफेद आकृति ऐसी खिली कि रास्ते के हर खेत में हल रोक-रोककर लोग आगन्तुक का हुलिया नज़दीक से देखने के लिए बेताब हो गये।

"सुखदेउआ ! अरे, वाह रे वाह ! सुनते हैं भइया ऊ कोई बहुत बड़ा नेता हो गया। तीन साल जेहल काटकर आ रहा है। सुना उसी जेल में महात्मा जी, पंडित जी और बड़े-बड़े सुराजी नेता लोग भी बन्द थे। क़िस्मत देखिये। कैसा जोर मारा कि इतने बड़े-बड़े लोगों के सत्संग में पहुँच गया सुखदेउआ।"

"आ, राम भजो, सब गप्प है। सुखदेव राम शिवपुर जेहल में थे। हम जानते नहीं क्या ? हमारे लोकवाँ-टोकवाँ के मौसा का लड़का उसी जेहल में सन्तरी है। हम गये थे उहाँ एक बार। हाथ-पैर में यह-यह मोटा कड़ा और कमर से लेकर दोनों ओर घुट्ठी तक झनाझन लोहे की जंजीर।

हजारों कैदी हैं बेसुमार। लात से माँड़कर आँटा सानकर लिट्ट बनता है। गोंजर और पिलुवा वाली दाल। उहाँ कहाँ थे सुराजी नेता ?"

"तब तो सुखदेउवा के हाथ में भी कड़ा पड़ा रहा होगा।" जेल की ऐसी सच्ची खबर के प्रति अपनी पूरी सरधा व्यक्त करते हुए कोई पूछता।

"हो सकता है। यदि पड़ा रहा होगा तो कलाई और घुट्ठी में घट्ठे जरूर होंगे।"

"हाँ।" आश्चर्य से आँखें विस्फारित हो जातीं। कितने पते की बात है। सब लोग मन ही मन अगली बार सुखदेव राम को नज़दीक से देखने और 'पते की चीज़' पर ग़ौर करने का मन्सूबा बाँधने लगते।

पर इन बातों का गोगई महराज पर कोई असर नहीं हुआ। कुछ साल पहले की बात है। बयालिस का आन्दोलन अभी छिड़ा नहीं था। बनारस में उनसे अचानक सुखदेव राम मिल गये थे। उन्होंने ललककर गोगई महराज के पैर छू लिये। साल डेढ़ साल के भीतर पहली बार करैता का कोई आदमी दिखा था। सुखदेव राम जी को लग रहा था कि वे खटिया पर बैठे ही थे कि अम्मा ने फूल के झकझक सफेद कटोरे में सहदेइया का चिवड़ा दूध में भिगोकर थमा दिया है। उनका हियरा भरभरा आया और आँखें नम हो गयीं।

"का चच्चा, कहाँ से ?" उन्होंने गोगई महराज की खुरदरी हथेली को अपने दोनों हाथों में समेटकर पूछा।

"गाँव से सुखदेव बेटा ! और कहो भइया, अपना हाल-चाल ! सुना तुम नेता हो गये।" सुखदेव राम जी उन्हें अपने डेरे पर ले गये। जिला काँगरेस कमेटी के सेक्रेटरी की कृपा से एक अनाज-व्यापारी ने अपने गोदाम की एक कोठरी दे दी थी उनको। बिल्कुल अँधेरी और सील से भरी हुई। सुखदेव राम ने बड़े प्रेम से गोगई को बैठाया। चाय पिलायी। काँगरेस के जिला-दफ्तर में ले गये। वहाँ देश के बड़े-बड़े नेताओं का चित्र देखकर गोगई महाराज की आँखें भर-भर आयीं।

"धन्न हो। धन्न हो। सुखदेव राम जी।" चलते वक़्त गोगई महराज ने उनका पैर छू लिया—"उद्धार हो गया बेटा, जान लो कि हाँ। ऐसी बोलती मूरतें आँख से देख लीं। ई सब रतन हैं देस के। हम पतित लोगों को कहाँ दरशन मिलता है इनका।"

"दरशन जब चाहो चच्चा, तब मिल जाय। मगर दरशन के लिए ज़मीन चाहिए ?"

"क्या चाहिए ?" गोगई महराज ने अचंभे से पूछा।

"ज़मीन चाहिए, ज़मीन।" सुखदेव राम जीबड़ी कंजूसीसे मुस्कराये—"बड़े नेता वहाँ जाते हैं चच्चा, जहाँ ज़मीन हो। सौ पचास चवन्नियाँ मेम्बर हों। दस-बीस चरखा चलते हों। सुराज की लहर हो। जब तक ऐसी ज़मीन तैयार नहीं होती, इनको ले जाना बेकार है। ऊसर पर बीज डालने से क्या फायदा ?"

"हाँ।" गोगई महराज इस परम सत्य को समझकर झूम उठे—"बिना ज़मीन के कुछ नहीं होगा। ठीक बात है।" सहसा उनका चेहरा उदास हो गया—"तब तो इन मूरतों के चरण नहीं पड़ेंगे अपने यहाँ ?"

"क्यों नहीं पड़ेंगे गोगई चच्चा। आप चलकर गाँव में जोत जगाइये। भूले-भटके लोगों के मन में सुराज के लिए लगन लगाइये। देखते चलिये धीरे-धीरे कैसी जागृति आ जाती है।"

"अच्छा बेटा।" गोगई महराज गद्गद होकर बोले—"तुमने तो भइया, मेरे नैनों में गियान का आँजन लगा दिया।"

गोगई महराज बनारस से लौटे तो उनके झोले में बाबा विश्वनाथ के 'परसाद' की जगह छोटा सा तिरंगा झंडा और दो-चार गांधी टोपियाँ थीं। वे खूब गुमसुम रहते। लाख जुगुत भिड़ाते पर समझ में नहीं आता कि जोत कैसे जगे। टोपी और झंडा झोले में ही पड़े रहे। लड़के लिहाड़ी लेंगे, इस डर से उन्होंने कभी 'परभात फेरी' की हिम्मत नहीं की। आज अचानक सुखदेव राम जी के गाँव आने की खबर सुनकर उनकी जबदी मनोवृत्तियाँ भड़क उठीं। उन्होंने बाँस के डंडे में झंडा लटकाया। सर पर

गांधी टोपी लगायी और चिल्ला पड़े—"इन्कलाब जिन्दाबाद।" तमाशबीनों की भीड़ लग गयी।

"गोगइया पगला गया है।" भीड़ के इस निर्णय से गोगई महराज का हौसला पस्त नहीं हुआ।

"चिल्लाओ सालो मूरखो ! तुम क्या जानो कि सुराज क्या है। कभी अपने आँख से देखी हैं देसरत लोगों की मूरतें।" गोगई महराज ने गाँव में सुराज की धूम मचा दी। पुराने स्कूल के हाते में जलसा हुआ। मुफुत का तमाशा देखने के लिए गाँव के लड़के और बुड्ढे उमड़ पड़े।

जैपाल सिंह को खबर लगी। वे मूँछों में मुस्कराये। तुरन्त स्कूल की ओर चल पड़े।

जलसे में गाँव के ज़मींदार का आना ऐसी अजूबा बात थी कि लोगों के विनोद से बटुरे चेहरे प्रसन्नता से खिल उठे। अचानक सुराज के प्रति भीड़ की 'सरधा' बढ़ गयी। लोगों के होंठ फरफराये और भारत माता तथा गांधी जी की जै-जै कार से स्कूल का अहाता थरथराने लगा।

"कहो भाई सुखदेव !" जैपाल सिंह मुस्कराकर बोले—"सुना आपके स्वागत में जलसा हो रहा है तो मैं भी आ गया। अपने गाँव के तुम रतन हो। देशभक्त के स्वागत-सत्कार में गाँव का मुखिया ही न रहे, तो कितनी बुरी बात होगी।"

"धन्न भाग, धन्न भाग !" जैपाल सिंह को देखते ही गोगई महराज की साँस भीतर ही भीतर घुटकने लगी—"आया जाय, आया जाय सरकार। अब काहे नहीं ज़मीन तैयार होगी। जब आपके चरण पड़ गये तो जोत जग के रहेगी।"

गोगई महराज खुद दौड़कर स्कूल के भीतरी दालान से कुरसी उठा लाये। ज़मींदार को सामने देखकर सुखदेव राम कुरसी से खड़े हो गये थे। दोनों कुरसियाँ साथ-साथ लगा दी गयीं। ज़मींदार ने आसन ग्रहण करने के पहले सुखदेव राम जी का हाथ पकड़कर उन्हें अपने बग़ल की कुरसी पर बैठाया। गोगई महराज ने जिस समय 'गेना' की माला दोनों मूरतों के

गले में डाली, तालियों की गड़गड़ाहट से गौरे उड़ गये। दूर से दलगंजन चौधरी ने जब कुरसियों पर बैठी 'राम-लछमन' की जोड़ी देखी तो उनका हियरा जुड़ा गया। उन्होंने हाथों को जोड़कर माथे से लगाया और अपने 'चेखुरिया' के लिए देवताओं से मिन्नतें कीं।

गोगई महराज ने तीन-चार बार खँखार-खँखार कर गला साफ किया, फिर बोले—"भाइयों, सुखदेव राम जी के आ जाने से अब यह गाँव पवित्तर हो गया। सुखदेव राम जी सीधे कन्हैया जी की जन्मभूमि से, यानी जेहल से आ रहे हैं। देस के कारन बड़े-बड़े नेता लोग जेहल काट रहे हैं। सुखदेव राम जी ने छछात् अपने नैनों से 'गान्ही महत्मा' को देखा है। अब जोत जगा दीजिये आप लोग भी इस गाँव में कि परदेशी राज भसम हो जाय। अब ई जोत जग के रहेगी, इसमें सुबहा नहीं। जब बड़े मालिक का आसिरबाद मिल गया तब क्या कहना। बोल दीजिये एक बार राजा रामचन्द्र की जै। गान्ही महत्मा की जै।"

अचानक सुखदेव राम के प्रति लोगों की जिज्ञासा ठंढी हो गयी। सर्वत्र जैपाल सिंह के जलसे में सम्मिलित होने की चर्चा थी।

●

तीन-चार दिनों के बाद ही उन्होंने गोगई महराज को देवीधाम के पुजारी पद से अलग कर दिया। माफी खेत अपने जोत में ले लिया। उपधाइन बहुत रोयीं-गिड़गिड़ायीं, तब कहीं शीतला प्रसाद पुजारी बने, और खेत वापिस मिले। शीतला प्रसाद ने गोगई को मार-पीट कर घर से निकाल बाहर किया। तब से गोगई महराज का डेरा देवी चौधुरी के बइठके में आ रहा। सुखदेव राम के साथ वे दिन भर मूँड़ से मूँड़ सटाकर ज़मीन तैयार करने की योजनाएँ बनाते; पर ज़मीन साली इतनी कड़ी थी कि कहीं से भी उन्हें रास्ता देने को तैयार ही नहीं होती थी।

'चेखुरिया' के प्रति अचानक दलगंजन चौधुरी के पुराने जज़्बात फिर भड़क उठे।

"खाने के जून ससुर को घर याद आता है। दिन भर उस कोढ़ी गोगइया के साथ बैठकर माछी मारते रहते हैं।"

"जाकर हिरको उहाँ अहीरों की गोठ में। वहीं खूब दूध-मलाई चाभो। पेट भरने यहाँ क्या चले आते हो।" गोगई महराज के सामने थाली सरकाती हुई उपधाइन बड़बड़ातीं।

देशभक्तों को समय काटना भारी लगने लगा। दोनों बहुत उदास हो गये। तभी देश स्वतंत्र हो गया। चुनावों का दौर शुरू हुआ। उम्मीदवारी के टिकट बाँटे जाने लगे। मगर दैव वहाँ भी बाँव दे गया। अव्वल तो लोगों ने सुखदेव राम जी को पहचाना हो नहीं। बाद में देहात के काँगरेसी उम्मेदवार ने पहचाना भी तो बड़े प्रेम से एक खुराक उपदेश पिला दिया।

"देखिये सुखदेव राम जी! यह तो भाई बीहड़ रास्ता है। अगम चढ़ाई, औघट घाट। धीरे-धीरे बढ़ना होता है। पैर सँभालकर रखिये। लम्बी छलाँग लगायेंगे तो नुकसान होगा। नीचे का सहारा तो छूटेगा ही। ऊपर का भी कहीं पकड़ में न आया तो चारो खाने चित्त। है कि नहीं? सो भाई, हिम्मत न हारो। ज़मीन तैयार करते रहो। डँटे रहो अहिंसा के रास्ते। पहले गाँव सभापति के लिए कोशिश करो। फिर आगे देखा जायेगा।"

तीन-चार वर्षों के भीतर गाँव की कड़ी माटी ने सुखदेव राम को काफ़ी भोथर कर दिया था। अपनी पाल्टी केनेता लोगों ने उनकी उपेक्षा करके उनका रहा-सहा रुतबा भी छीन लिया। परिणाम सामने आया। वे गाँव सभापति के चुनाव में भी हार गये। जैपाल सिंह के आगे उनकी एक न चली।

●

"सुखदेव आ गये हैं सरकार!" गुद्दन ने लाठी को कोने में टिकाते हुए कहा—"बाहर खड़े हैं।"

"बाहर क्यों खड़े हैं?" जैपाल सिंह चारपाई से उठकर खड़े हो गये—"आइये, आइये सुखदेव राम जी। अरे, आप वहाँ शीत में काहे खड़े हैं? यहाँ आइये। इधर बैठ जाओ, भाई।"

सुखदेव राम जी इस अद्भुत सौजन्य के भार से दबे जा रहे थे।

"ठीक है बाबू साहब, मैं बड़े मजे में हूँ।" उन्होंने चारपाई के पैताने बैठते हुए कहा—"आपने मुझे बुलवाया है?"

"हाँ भाई बुलवाया है।" जैपाल सिंह चारपाई से उतर पड़े—"आइये भीतर दालान में। कुछ निछद्दम बातें करनी हैं। वहीं ठीक रहेगा।"

सुखदेव राम को साथ लेकर जैपाल सिंह दालान में चले गये। दरवाज़े बन्द करा लिए। दोनों में बड़ी देर तक बातचीत होती रही।

●

गाँव के स्कूल पर उस दिन खूब चहल-पहल थी। ग्रामसभा का चुनाव था। तीन उम्मीदवार थे। तीनों की तीन दरियाँ बिछी थीं। उत्तर तरफ बाबू सुरजू सिंह की, बीच में जैपाल सिंह की और एकदम दक्खिन तरफ सुखदेव राम की।

सुरजू सिंह की दरी पर काफी भीड़ थी। काफी चहल-पहल, गहमा-गहमी और कोलाहल। सिरिया, छबिलवा, हरिया, शशधर तथा उनके हम-उम्री अनेक नवयुवक इकट्ठे थे। मतदाताओं को गली से आते देखकर ये सब उनके पास जाते। मुस्कराते। साथ-साथ लाकर आदर के साथ दरी पर बिठाते। सुरजू सिंह भी वहाँ उपस्थित थे। पर वे बहुत गंभीर थे। किसी कुशल गोताखोर की तरह तल के रहस्यों के बारे में खूब वाकिफ़ और सावधान। वे किसी खास व्यक्ति को देखते, तभी अगवानी के लिए जाते। वैसे रह-रहकर अपनी व्यस्तता से उचटकर वे अपनी मंडली का उत्साह

बढ़ाने के लिए बोल-बतिया भी लेते; पर प्रायः मौन और चुप ही रहते। दरी के पास एक ऊँचे स्टूल पर बड़ी सी थाल में पान, बीड़ी, सिगरेट वग़ैरह सजे थे।

"हरी भाई !" सुरजू सिंह ने आहिस्ते से पुकारा—"जरा पान-सिगरेट भी चलता रहे। चमरौटी के वोटरों पर खूब खियाल रखना।"

"आप निशाखातिर रखिये सुरजू भइया। आप जाइये, उधर देखिये। यहाँ की चिन्ता छोड़िये।" सुरजू सिंह स्कूल की इमारत में घुस गये।

जैपाल सिंह की दरी पर कुल सात-आठ आदमी मौन मुँह लटकाये बैठे थे। न पान न बीड़ी, न सिगरेट न ज़र्दा। बुझारथ और खुदाबक्कस एक दूसरे के कान में फुसफुसा कर बातें कर रहे थे। मुंशी नवजादिक लाल के चेहरे पर बारामासी कुढ़न विद्यमान थी।

तभी सुखदेव राम अपनी मंडली के साथ पधारे। गोगई महराज के कंधे पर तिरंगा लहरा रहा था। उनकी बानरसेना पीछे-पीछे शोर करती दरी पर आकर बैठ गयी। चमरौटी के रामकिसुन, झिनकू, घुरविनवा, चरना आदि चमार-युवक सुखदेव राम की दरी पर आ विराजे।

"देख लो।" हरिया विकृत मुँह बनाकर बोला—"पब्लिक आ गई।" उसने कुर्ते की जेब में से रूमाल निकाल कर अपनी नाक पर रख ली—"का हो सीरी मास्टर ! अरे यार पहले से मालूम होता तो गुलाब जल भी मँगवा लेते।"

सीरी मास्टर कुछ समझे नहीं।—"गुलाब जल ? ऊ क्या होगा जे बा से जाड़े में शरबत पियोगे का ?"

"अरे यार शरबत नहीं पियेंगे।" हरिया नाक के पास रूमाल हिलाते हुए बोला—"सुखदेव राम जी के वोटरों पर गुलाबपाश से छिड़केंगे।"

"ओह।" सिरिया जोर से हँसा।

रामकिसुन ने इन लोगों की बातें सुन ली थीं। उसने कुछ कहा नहीं। गुस्से से एक क्षण देखता रहा, फिर मुँह फेर लिया।

हरिया काफ़ी उत्साह में था। वह अपनी मंडली के साथ चलता-फिरता

बोलियाँ कसता जाता। गाँव की औरतें भी आने लगी थीं। उनके लिए स्कूल के पिछवाड़े वाले दरवाजे से जाकर वोट डालने का इन्तजाम किया गया था। ठकुराने की औरतें ज्यों ही गोल बनाकर निकलीं, हरिया झपट कर आगे हुआ।

"का चाची।" उसने एक अधेड़ औरत के पास जाकर कहा—"ज़रा खियाल रहे चाची।"

"अरे हाँ बेटा ! अभी कल ही बताये हो। आज का भूल जाऊँगी ?"

"और लोगों को भी अपने साथ-साथ चाची....।"

चाची मुस्कराती आगे डुगर गयीं। हरिया भीड़ में खड़ी भौजाइयों से बोली-ठठोली करता, हँसता-हँसाता, पूरी जमात की परिक्रमा पर परिक्रमा किये जा रहा था।

"देख लो साले का।" छबिलवा ने सीरी से कहा—"हम तुम तो बोल ही नहीं पायेंगे इस तरह औरतों से। ई साला एक फरेबी है। जाने किससे-किससे मेल-जोल गाँठे रहता है।"

"अरे भाई हमारी दरी पर ऐसा सन्नाटा काहे है ?" हरिया परिक्रमा पूरी करके आ रहा था। वह जैपाल सिंह वाली मंडली के आगे से गुजरते हुए बोला—"परजा-पौनी साले एकदम से निमकहराम निकल गये क्या ?"

हरिया के व्यंग्य ने बुझारथ के कलेजे पर सीधी चोट की। वे तिलमिला गये।

"ऐसो ही बात पर आग लगती है।" सुना-सुना कर बोले—"इसी पर कुछ हो जाय तो आई-बाई पच जायेगी।"

तभी फेरू सिंह, दीना सिंह, गुद्दन अहीर तथा उत्तर पट्टी के बहुत से लोग जैपाल सिंह की दरी की ओर बढ़ आये।

"क्या बात है बुझारथ भाई।" फेरू सिंह ने उन्हें गुस्से में बड़बड़ाते देख पूछा।

"बात क्या है। बोलबाज़ी हो रही है।"

"कौन साला है बोलबाज़ी कर रहा ? ज़रा नाम तो बताइये। खोंच कर टाँग न चोर दिया तो कहियेगा।"

"अरे वही है हरिया। ससुर जोतते हैं हल और पहनते हैं पतलून। अपने सामने किसी को कुछ गिनते ही नहीं।" बुझारथ सिंह अब दबने को क़तई तैयार नहीं थे।

"देखिये फेरू भइया। जरा कह दीजिये बुझारथ सिंह से कि जबान में लगाम लगाकर बात करें। मैं पतलून पहनता हूँ तो अपने बाप की पहनता हूँ। किसी के आगे हाथ नहीं पसारता। ऊ भी पहनें पतलून। कोई मना करने जाता है ? पतलून पहनने का भी हुनर चाहिए। हम पतलून पहनकर हल जोतते हैं तो किसी दूसरे का क्या ?"

"तुम पतलून पहनकर गोबर फेंको। हमसे क्या मतलब। पर तुम बोलबाजी करोगे, तो ठोंक दिये जाओगे।" बुझारथ सिंह अपनी जगह पर उछलकर खड़े हो गये।

"अरे जाइये, जाइये। आप जैसे कितने तीसमार ख़ाँ देखे हैं हमने।" हरिया ने हाथ झटककर कहा—"हम क्यों बोलबाज़ी करें। हम तो अपने सुरजू भाई को कह रहे थे। मौके पर साले सब परजा-पौनी निमकहराम निकल गये। सारी दुनिया आपही की परजा-पौनी है क्या ?"

"जाने दो बुझारथ भाई।" फेरू सिंह ने उनका हाथ पकड़कर बैठा दिया—"लफंगों के मुँह लगने से कोई फायदा नहीं।"

अचानक चुनाव का माहौल काफ़ी गरम हो गया था। इर्द-गिर्द चारों तरफ़ तमाशबीनों की भीड़ लग गयी। औरतें मुँह पर पल्लू डालकर आश्चर्य से आँखें मुलकाने लगीं। सुखदेव राम की दरी पर बैठी ग़रीब 'पब्लिक' ने डर के मारे मुँह नीचे कर लिया। पोलिंग बूथ के अधिकारी भी बाहर आकर तमाशा देखने लगे।

तभी सुरजू सिंह आगे बढ़े। उन्होंने उसी गम्भीरता और शालीनता के साथ हरिया के कंधे पर हाथ रखा। तमतमाये हुए हरिया, छबिलवा, शशधर वग़ैरह को उन्होंने आँख के इशारे से समझाया। सभी चुप बैठ गये।

भीड़ में बैठे उन छोकरों को देखकर लगता था कि बारूद के पलीते में आग लगी है, मगर ऊपर का ढक्कन इतनी ज़ोर से बन्द है कि विस्फोटक पदार्थ भीतर ही भीतर मचल रहा है।

●

तीसरे दिन बबुआनों को छावनी पर अजीब रौनक थी। चारों ओर उत्साह और ख़ुशी का वातावरण छाया हुआ था। केले के खम्भे, रंगीन काग़ज की झंडियाँ, अशोक के पत्तों के फाटक। शीशे की हंडियाँ, गैस बत्ती और हवा में फरफराता हुआ चँदोवा। ऐसी सजावट और आराइश करैता में बहुत वर्षों बाद दिखी थी।

दयाल पण्डित आज बहुत व्यस्त हैं। बीस काम लगा रहता है।

इतना बड़ा उत्सव है। काम तो लगा ही रहेगा भाई। दयाल महराज बहुत ख़ुश हैं। जाने कितने दिनों बाद यह हँसी-ख़ुशी का मौक़ा आया।

"सो तो हुआ।" देवी चौधरी मुसकराकर बोले—"बहुत काम है। ई हम भी समझ रहे हैं। बाकी ई सब नाच-बाजा काहे ? हारने की ख़ुशी में।"

"रह गये न वही घोंचू दास।" दयाल महराज कृपापूर्वक मुसकराये—"अरे मूरखचन्द, आज बुट्टू बाबू का जन्म दिन है। महीने भर से तैयारी हो रही है। पखवारा पहले मैं गया था सैयदराजे। सरकार ने तो सोचा था बनारस से कीर्तन-मण्डली बुलायें। मगर डौल नहीं बैठा। सैयदराजे वाले रामदास उस्ताद कहने लगे—दयाल महराज। भाई हद हो गयी। कुछ तो ख़ियाल करो। हमसे कौन सी ख़ता हो गयी कि बनारस की कीर्तन-मण्डली पर फ़िदा हैं आप। मैंने कहा कि यह भी क्या याद करेगा। सट्टा में एक रात के वास्ते बोला डेढ़ सौ रुपिया। मैंने कहा उस्ताद दस रुपिया और। मगर काम दिलोजान से होना चाहिए। पूरे एक गाही लौंडे हैं चौधुरी। छप्पन छुरी, बहत्तर पेंच। देखोगे तो आँख उलट जायेगी, हाँ।"

दयाल महाराज मगन तो हैं, पर रह-रहकर चौधरी वाली बात उनके कलेजे में चोट कर जाती है।

हारने की खुशी में ! अयँ ?

होगा भई कुछ ! बुड्ढे को समझना मुश्किल है।

रामदास उस्ताद की मण्डली स्टेज पर बैठ गयी थी। बाजे पर गत बजने लगी। ढोलक की आवाज़ गुमर-गुमर कर गाँव वालों को छावनी के जशन की खबर देने लगी। सामने दरी पर तोशक बिछी थी। उसके बीचों-बीच पायजामा, सिल्क का कुर्ता पहने और सिर पर मुरेठा बाँधे बुट्टू बाबू विराजमान थे। कल ही जैपाल सिंह ने आदमी भेजकर मीरपुर से बुलवाया है बुट्टू और शीला को। बुट्टू बाबू गले में झूलती गेंदे की माला को नाक में लगा-लगाकर मुसकरा रहे हैं।

जैपाल सिह उनके पीछे मसनद का सहारा लिये बैठे हैं। उत्तर पट्टी के अधिकांश लोग महफिल में विराजमान हैं।

लोग-बाग बिला वजह घरों से निकलकर गलियों में आ जाते हैं। चलने लगते हैं तो आपोआप पैर छावनी की ओर मुड़ जाते हैं। चबूतरे के पास खड़ा होकर झांकते हैं। पौडर लगाये, सजे-बजे लौंडे स्टेज पर बैठ कर रामदास उस्ताद से मुसकरा-मुसकरा कर बातें कर रहे हैं।

एक क्षण खड़े होकर लोग तटस्थ भाव से मुआयना करते। फिर उचक कर दरी पर बैठी भीड़ में शामिल हो जाते। बैठते इस तरह गर्दन झुका कर कि पहचान में न आएँ।

पर ठाकुर जैपाल की नज़र चाहे जिधर भी घूमे, फाटक से आनेवाला कोई उनसे बचकर जा नहीं सकता। वे आज किसी को बेशिनाख्त, हुलिया से अलग रहने देना चाहते ही नहीं।

"आ हा। आओ, आओ मौली भाई ! इधर निकल आओ। अरे दयाल महराज, ज़रा मौली भाई को पान-इलायची देना। कहाँ है वीरा ? रमचन्ना !! अरे जरा बनारस वाली खमीरा भर के ले आ। हाँ, चीलम में तवा रख लेना। ओ कौन हैं ? अरे सिजोगी भाई, ऐसा अनरथ मत करो। काहे लड़कों में बैठ रहे हो। इधर निकल आओ तोशक पर। आओ, आओ।"

मौली और सिजोगी भाई जैपाल के पास आकर बैठ जाते। गरदन शर्म से ऊपर नहीं उठती। इन लोगों ने तो कल खुले आम सुरजू का साथ दिया था।

मगर है जैपाल भी एक मरद-बच्चा। हार गया तो क्या। चेहरे पर शिकन नहीं पड़ी। कैसा ठहाके पर ठहाका लगा रहा है, जी खोलकर।

चँदोवे के बाहर फेरू सिंह खड़े-खड़े मालिक काका का तमाशा देख रहे हैं।

"का दयाल महराज ! नाच तो बड़ी कटीली ले आये आप।" फेरू सिंह कहते हैं।

"है तो फेरू बाबू। मगर मामला कुछ फीका हो गया। चुनाव साले ने रौनक बिगाड़ दी।"

"आप भी दयाल महराज, हैं पूरे बमभोला। रौनक तो बढ़ गयी है बुल्लू पण्डित !"

"कैसे ?"

"यह बताइये कि सुखदेव राम कितने वोट से जीते ?"

"सुना पैंसठ वोट से।"

"और मालिक काका को कितने वोट मिले ?"

"वह तो नाम न लीजिए। बड़ी शरम की बात है। सुना है कुल बीस वोट।"

"उत्तर पट्टी में जानते हैं कितने वोट हैं ? डेढ़ सौ। नब्बे तो सिर्फ़ मेरे खानदान के ही थे। ये वोट तो सभी मालिक काका के ही थे। थे न ?"

"वही तो। लगता है उत्तर पट्टी वालों ने भी मलिकार को वोट नहीं दिया।"

"दिया होता तो क्या होता। क्या मालिक काका जीत जाते ?"

"जीतते तो नहीं, बाकी ऐसी नँवहँसाई तो न होती।"

"और उनको न देकर सुखदेव राम को दिया तो क्या हुआ ?"

"क्या हुआ ?"

"सुरजू हार गया। वह सुखदेव से पैंसठ वोट से जीत रहा था बुल्लू पण्डित। हमारे वोटों ने हराया है उसे।"

"वाह ! ई बात। तो ई थी गोटी।" दयाल महराज की आँखें आलू बराबर निकल आयीं।

"जी, मालिक काका ने हम सबको डाँटकर कह दिया कि खबरदार बात कहीं फूटे नहीं। पहले तो बुझारथ भाई उठने वाले थे। मगर काका ने मना कर दिया। बोले बुझारथ नवजवान है। उसे हार अखर जायेगी। मेरा नाम दो। वे जानते थे कि हारना तो है ही। लेकिन वे मीरपुर से यही प्रतिज्ञा करके चले थे कि मैं सुरजू को सभापति नहीं बनने दूँगा। और नहीं बनने दिया। हुई न खुशी की बात ? क्यों ?"

"ए उस्ताद जी !" दयाल पंडित वहीं से चिल्लाये—"ई क्या लस्टम-पस्टम करा रहे हैं जाने कब से। किन्-किन्-किन् लगाये हैं। जरा करिये चालू तूफ़ान मेल।"

उस्ताद रामदास मुसकराये। तूफान मेल छूटी। लहाछेह मच गयी।

"बाकी फेरू बाबू ! सुखदेउआ भी तो साला एक हरामी है।"

"है तो....। खैर देखते चलिये। आगे-आगे होता है क्या ?" फेरू सिंह मुँह में उतरी बात घुटुक गये। दयाल महराज के डूबने-उतराने के लिए इतना ही काफ़ी था। जो भी हो, इतना तो साफ़ है कि आगे और भी उत्सव तमाशे होते रहेंगे।

• •

चार

सुरजू सिंह के बइठके पर काफ़ी उदासी थी। सिरिया और छबिलवा चार-पाई पर मुँह लटकाये बैठे थे ! सुरजू सिंह सिरहाने रखी तोशक के सहारे लेटे हुए थे।

"कहाँ हैं हिसाबीदास ?" सुरजू सिंह गुस्से से बोले—"मैं पहले ही कहता था कि चमटोल का वोट गड़बड़ायेगा। मैंने ऐन मौक़े पर उससे कहा भी कि ज़रा ख़याल करना। बोला आप निशाखातिर रखियेगा। चिन्ता मत कीजिये। लो, नहीं किया चिन्ता। हो गया न सत्यानाश ! सिर्फ़ पैंसठ वोट से नक्शा बदल गया।"

तभी सामने से पतलून की जेब में हाथ डाले हरिया आया। वह बड़े विचित्र ढंग से मुस्करा रहा था। बरामदे में इन लोगों को देखकर वह ठठाकर हँस पड़ा।

"कमाल है। मैं तो भाई, बुड्ढे की खोपड़ी पर फिदा हो गया हूँ।" वह बरामदे में यों झुका, जैसे फ़र्शी सलाम करने जा रहा हो। फिर कमर

सीधी करके लम्बी-लम्बी साँसें खींचते हुए बोला—"क्यों सुरजू भइया, पता लगा आपको असली मामले का ?"

"कैसा मामला ?" सुरजू सिंह उसकी भँड़ैती से चिढ़कर बोले।

"अरे पैंसठ वोटों का मामला। और कौन सा मामला हो सकता है इस कंडम जगह में। आपका शक बिलकुल ग़लत है। चमारों के वोट नहीं फूटे। जिन्होंने वादा किया था, उन्होंने पूरा किया। सच तो यह है कि आशा से ज्यादा वोट मिले चमटोल से। आप पैंसठ वोट से जीत रहे थे जनाब। बाक़ी वाह रे बुड्ढे की खोपड़ी। ऐसी लंगी मारी अनचक्के में कि अंटा चित्त।"

"तुम साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते ?"

"उत्तर पट्टी में कुल कितने वोट हैं ? डेढ़ सौ। हैं न ! ये सभी जैपाल सिंह के ठोस वोट थे। मगर उन्हें मिले कितने ? सिर्फ़ बीस। बाक़ी एक सौ तीस कहाँ गये जनाब ? ये गये सुखदेव राम को। गये नहीं, दिये गये। जानकर, तैं करके दिये गये। ताकि सुरजू सिंह हार जायँ। यानी बुड्ढा जीतने के लिए नहीं खड़ा था। आपको हराने के लिए खड़ा था।"

"हूँ ! तो मेरे हारने की खुशी में उस रोज जशन मनाया गया ?" सुरजू सिंह का चेहरा उतर गया।

"साफ़ है।"

हरिया सीरी और छबीले वाली चारपाई पर बैठ गया। सन्नाटा काफ़ी गहरा हो गया था।

"मुझे एक और भी खतरा दिखाई पड़ रहा है सुरजू भइया।"

"क्या ?"

"ये एक सौ तीस वोट सुखदेव राम को कैसे मिले ? मुफ़्त में तो मिले नहीं। कुछ न कुछ इसके बदले में देने का वादा उन्होंने किया होगा जैपाल सिंह से।"

"यानी....।"

"यानी यह कि सुखदेव राम बिना जैपाल सिंह से पूछे कोई काम नहीं करेगा।"

"इसका मतलब यह हुआ कि हारकर भी असली सभापति जैपाल ही रहेंगे।"

"साफ है।" हरिया ने मुँह बनाते हुए दोनों हथेलियों को फैलाकर अपनी बेबसी व्यक्त की।

"खाली सुखदेव राम ही तो नहीं हैं सब कुछ कि जे बा से उनका राज हो जायगा। गाँव पंचायत भी तो है। उसमें भी तो अपने आदमी रहेंगे।"

"रहेंगे तो क्या ?" हरिया बोला—"फ़ैसला तो वोट से होगा। छत्तीस मेम्बर हैं पंचायत में जिसमें अपने आदमी कुल ग्यारह हैं। एक-तिहाई से भी कम। क्या कर लेंगे ये ग्यारह आदमी ? मेम्बर्स के चुनाव पर हम लोगों ने ध्यान ही नहीं दिया। वहाँ भी वे सब बाज़ी मार ले गये।"

"छोड़ो। मार ले गये बाज़ी, मार लेने दो।" सुरजू सिंह काफ़ी विरक्त होकर बोले—"कौन माथा खपाये इन वाहियात बातों में। पंचायत क्या हमारे घर खाना पहुँचायेगी ? जिसे होना हो, हो। झूठ-मूठ में साला पचासों रुपया जेब से चला गया।"

अचानक तीनों ने अपराधी भाव से अपनी गर्दनें झुका लीं। एक क्षण तीनों इस आशा से बैठे रहे कि शायद सुरजू सिंह का उत्साह फिर लौट आये। वे इतनी जल्दी हथियार डाल देनेवाले आदमी तो नहीं हैं। पर आज सुरजू सिंह पर पस्त-हिम्मती इस तरह तारी थी कि वे उसकी बेहोशी में ही सकून पा रहे थे। वे मौन भाव से बरामदे की शहतीरों को ताकते रहे।

अभी कुछ देर पहले तक वे बहुत खुश थे। उन्हें लगता था कि चाहे सुखदेव राम से वे भले ही हार गये; उन्होंने जैपाल सिंह को तो खूब सबक़ सिखा दिया। यह है अब बबुआनों की क़दर इस गाँव में। इतनी कोशिश के बावजूद सिर्फ़ बीस वोट। पर अब लगता है उन्हें कि जैपाल ने बुद्धू बनाया। सुरजू सिंह का सारा शरीर असफल क्रोध और बेबस युयुत्सा की

ज्वाला में लहरने लगा। उत्साह का तापमान कातरता के बुलबुले छोड़ता, बजबजाता एक-एक डिग्री नीचे खिसकता गया। उनके चेहरे पर दयनीय विरक्ति और विकृत तटस्थता की मुरदनी छा गयी।

हरिया, सिरिया और छबीले—तीनों ने उनके गोल चेहरे को अठकोण होते देखा। वहाँ से बिना कुछ कहे वे चल दिये।

एक पखवारे के भीतर ही ग्राम पंचायत की मीटिंग बुलायी गयी। गिरते स्कूल की इमारत को ठीक कराने, सुधरवाने का प्रस्ताव आया। सुरजू सिंह बैठक में उपस्थित थे। उनके सहायक और अनुयायी भी। जैपाल सिंह नहीं थे। लोग स्कूल की इमारत की बुरी हालत, उसे ठीक कराने की जरूरत पर अपने विचार व्यक्त कर रहे थे। पर सुरजू की आत्मा में चैन नहीं था। चुनाव के समय इज़्ज़त और प्रतिष्ठा का प्रश्न था। हार जाने के बाद बेमतलब खर्च हुए रुपयों की याद उनके मन में काँटे की तरह चुभती। जैपाल ने वोटरों के लिए कुछ नहीं किया। पान-बीड़ी, सिगरेट-मिठाई कुछ भी नहीं। तभी सुरजू को एक नयी बात सूझी। जैपाल का उत्साह इस समय आसमान छू रहा है। यदि सुरजू स्कूल की इमारत के लिए सौ रुपये चन्दा दें तो जैपाल पाँच सौ अवश्य देंगे। न सही पाँच सौ, दो सौ-तीन सौ से कम देना तो वे शान के खिलाफ समझेंगे। यकायक सुरजू सिंह मुसकरा उठे। हँसकर बोले—"हर आदमी पर आठ आना या एक रुपया चन्दा लगाने से स्कूल की इमारत नहीं बनेगी। गाँव के कुछ रईस लोग ज़रा सा ख़याल कर दें तो सब काम आसान हो जाय।"

पंचायत के सदस्य उनकी ओर बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे। सुरजू सिंह एक क्षण चुप रहे। उन्होंने कहा—"मेरी राय में गाँव के लोगों पर चन्दा न लगाया जाय। अपनी ख़ुशी से जो जितना दे सकें, दें। यह तो दान है। स्कूल में लड़के पढ़ते हैं। बेचारों को कितनी तकलीफ़ होती है। विद्यालय बनवाने से बढ़कर पुण्य और क्या हो सकता है? मैं कोई बहुत बड़ा आदमी नहीं हूँ। आप लोग जानते हैं। न जमींदार था, न हूँ। मैं छोटी हैसियत का आदमी हूँ। फिर भी मैं विद्यालय के लिए सौ रुपया दूँगा। मेरे नाम सौ रुपये लिख लीजिए।"

गाँव के दूसरे लोगों से 'पुण्य कार्य' के लिए दान माँगने के वास्ते एक कमेटी बनी। सुरजू सिंह के उत्साह का क्या कहना। दान-सूची में उनका नाम सबसे ऊपर था। वे गाँव में घूम-घूमकर लोगों को पुण्य करने के लिए उत्साहित करते रहे।

एक दिन हरिया, सीरी, सुखदेव राम और दूसरे कई सदस्य, जिनमें सुरजू सिंह नहीं थे, जैपाल सिंह के पास पहुँचे। जैपाल सिंह छावनी के सामने तखत पर बैठे थे। वीरा तेल-मालिश कर रहा था। इतने लोगों को सामने से आते देख उन्होंने रमचन्ना को हाँक लगाकर कुर्सियाँ मँगवायीं।

"आओ भाई।" उन्होंने बड़े प्रेम से कहा—"धन्य भाग कि सुबह ही सुबह गाँव के सरदारों के दर्शन हुए। बैठो, बैठो। अरे, इसमें संकोच की क्या बात है। बैठो हरी बेटे।"

सभी लोग बैठ गये।

"कहो भाई, क्या सेवा करूँ।" जैपाल सिंह ने सुखदेव की ओर रहस्य-भरी दृष्टि से देखते हुए पूछा। सुखदेव राम चुप रहे। हरिया ने नेतृत्व सँभाला। उसने विद्यालय के भवन की दयनीय अवस्था का चित्रण किया। सुरजू सिंह की बातें दोहरायीं। उनके उत्साह की तारीफ़ की। जैपाल सिंह मौन भाव से सब सुनते रहे।

"यह तो बहुत अच्छी बात है। सचमुच में पुण्य काम है यह। सुरजू बेटा ने जो कुछ कहा है, सोलहों आने सही कहा है। विद्यालय के लिए सबको शक्ति भर दान देना चाहिए।"

हरिया बहुत ख़ुश हुआ। सुरजू सिंह ने उससे अपने मन की बातें बता दी थीं। कहा था कि बुड्ढे को सान पर चढ़ाना तेरा कार्य है। इस समय उसका मन तुरंग पर है। पाँच सौ रुपये निकलवा लो। बुड्ढा अपने को बहुत बड़ा अक़्लमन्द समझता है। ज़रा हम लोगों की भी एक लंघी देख ले।

"यह सब तो ठीक है मालिक काका ! आपका आशीर्वाद मिल गया तो हो भी जायेगा। लेकिन इस गाँव में दान देनेवाले हैं कितने। किसी की हालत आपसे तो छिपी है नहीं। पेट भर भोजन और तन ढँकने के लिए मामूली कपड़ा जुटा सकना भी मुश्किल है। फिर दान कौन देगा ?"

"इसका जवाब तो हरी बेटे सुरजू सिंह से माँगो। यह प्रस्ताव तो उन्हीं का है न ? आठ आना या एक रुपया चन्दा लोग मर-जीकर किसी तरह दे भी देते। दान माँगोगे तो दाता नहीं भी कर सकता है। यह तो उसकी खुशी की बात है। वह अपनी बेबसी से यदि पुण्य न भी करना चाहे तो भी तुम्हें नाराज़ होने का हक़ तो नहीं ही रहता।"

"हाँ, यह बात तो है। दान में कोई जबर्दस्ती तो कर नहीं सकता। इस गाँव के रईस लोग रास्ता दिखायें तो अलबत्ता बहुत कुछ हो सकता है। देखा-देखी पाप, देखा-देखी पुण्य।" हरी ने बड़ी श्रद्धा से देखा—"आप बड़े लोग रास्ता दिखायेंगे तो विद्यालय का उद्धार हो जायेगा।"

जैपाल सिंह मुस्कराये।

"कौन नहीं चाहता कि विद्यालय का उद्धार हो। रही बात रास्ता दिखाने की, तो यह जान लो हरी बेटे कि यह नया ज़माना है। प्रजातंत्र है। हर आदमी को वोट देने का हक़ है। वैसे ही हर आदमी को अपना रास्ता आपोआप देखने का भी हक़ है। तुम्हें किसी को रास्ता दिखाने का क्या अधिकार ? अपना रास्ता अपने चुनो। यही तुम्हारा हक़ है और यही फ़र्ज़।"

हरिया अचंभे से जैपाल सिंह की ओर ताकने लगा। बुड्ढे ने उसकी ओर बड़ी आत्मीयता से देखा और मूँछों में मुस्कराया।

"मेरी बात तुम्हें पसन्द नहीं आयी हरी बेटे। है न ? कोई बात नहीं। जाने दो। काम की बात करो। बड़ी-बड़ी बातों से कुछ नहीं होता। विद्यालय की इमारत बननी चाहिए। यही मैं भी चाहता हूँ। मैं क्या सेवा कर सकता हूँ इसमें, ऊ कहो ?"

हरिया ने जेब से दान-सूची निकालकर सामने कर दी।

"अभी तक इस सूची में सबसे ऊपर नाम सुरजू सिंह का है मालिक काका ! उन्होंने सौ रुपये दिये हैं। अब आपका जो हुकुम हो।"

"और सबसे नीचे किसका नाम है हरी बेटे ?" जैपाल सिंह ने पूछा—"यानी कि तुम लोग दान की सूची में भी नीचे-ऊपर का भेद करते हो। भई नये जमाने के आदमी ठहरे तुम लोग। दान में भी अहंता रह गयी तो पुण्य क्या ? मेरा नाम सबसे नीचे लिख लो।"

हरिया भौचक ताकने लगा—"ई कैसे हो सकता है मालिक काका। भला ई कैसे हो सकता है ? मैं अपनी कलम से आपका नाम नीचे कैसे लिख सकता हूँ ?"

"तो कहाँ लिखना चाहते हो मेरा नाम ?"

"मैं तो आपका नाम माथे पर लिखना चाहता हूँ। सबके ऊपर।"

"तो लिख लो वहीं। मेरे लिए कोई फरक नहीं पड़ता। नाम नीचे रहे या ऊपर। उससे क्या होता-जाता है ? पर हरी बेटे, जब तुम चाहते हो कि ऊपर रहे, तो ऊपर ही रहेगा।"

हरिया का चेहरा खुशी से खिल गया। उसने कनखी से सिरिया की ओर देखा। पाकेट से कलम निकालकर सूची में सबसे ऊपर उसने जैपाल सिंह का नाम लिखा। वह बड़ी उत्सुकता, प्रसन्नता और अपने प्रयत्न की संभाव्य सफलता से उत्पन्न घबड़ाहट के मिले-जुले भावों को होंठों में समेट कर मुस्कराया—"कितना लिखूँ मालिक काका !"

"लिख लो भाई, एक सौ एक रुपये।"

"जी ?" हरिया और सिरिया एक साथ बोले।

"एक सौ एक रुपये।" जैपाल सिंह रुक-रुक कर बोले—"सुरजू सिंह से एक रुपया अधिक। ताकि मेरा नाम सूची में सबसे ऊपर रहे और हरी बेटे की इच्छा पूरी हो।"

हरिया ने गर्दन झुका ली। उसकी आँखों में ताव न था कि वह जैपाल की ओर देख सके। उसने सूची में जैपाल के नाम के आगे एक सौ एक

रुपया दर्ज कर लिया। कलम का ढक्कन लगाते वक़्त उसका हाथ काँप गया। उसे ऊपरी जेब में रखकर हरिया ने सीरी की ओर देखा।

"कहो जी सुखदेव राम जी।" जैपाल सिंह बाक़ी लोगों की उपस्थिति से अपने को पूर्णत: अलग करते हुए बोले—"और सब कैसे चल रहा है?"

"ठीक है।" सुखदेवराम ने गर्दन हिलाई—"अभी तक तो ठीक ही है।"

"आगे भी ठीक ही रहेगा।" जैपाल सिंह हँसे—"सुखदेव राम जी की व्यवस्था में सबको सुख ही सुख रहेगा। तो चलूँ मैं अब नहाने?"

जैपाल सिंह चौकी से उठे। पैरों में खड़ाऊँ डालीं और बखरी में चले गये।

करैता गाँव की पंचायतें अब मलिकाने के चबूतरे पर नहीं होतीं। अब इन पंचायतों में ठाकुर जैपाल सिंह मुखिया के आसन पर नहीं बैठते। अब गाँव के लोग राय और फैसले के लिए उनका मुँह नहीं ताकते। पर यदि कोई भी आदमी पिछले पाँच सात महीनों के भीतर करैता गाँव में हुई वारदातों और उनके फैसलों का लेखा-जोखा करे, तो उसे यह जान कर बड़ी हैरत होगी कि एक भी फैसला ठाकुर के मन के खिलाफ नहीं हुआ। जाहिरा तौर पर सुखदेव ही पंच था, पर फैसले ठाकुर की मर्जी से होते थे। गाँव वालों को एक फायदा ज़रूर हुआ कि मामूली-मामूली जुर्म के लिए पहले से दूनी सजाएँ मिलने लगीं। क्योंकि करैता में अब एक नहीं, दो पंचों का राज था।

उस दिन शाम को जैपाल सिंह और सुखदेव छावनी के बरामदे में बैठे थे। वहाँ और कोई न था। सुखदेव राम बहुत घबराये थे।

"अब तक तो हुआ। पर यह मामला बड़ा संगीन है।" सुखदेव ने धीरे से कहा।

"तुम तो मामूली-सी बात से घबड़ा जाते हो।" जैपाल सिंह बोले—"मामला संगीन है तो आमदनी भी संगीन होगी। एक हज़ार से कम पर राज़ी मत होना। दो-तीन हज़ार से कम के गहने देवा के हाथ नहीं आये हैं। फिर ख़ून का मामला है। एक हज़ार आसानी से दे देगा वह। उसमें पाँच सौ से कम पर थानेदार राज़ी न होगा। आने तो दो कल। देखना चुटकी बजाते सब ठीक कर दूँगा।" ठाकुर ने यों चुटकी बजाई जैसे मक्खी उड़ा रहे हों।

करैता गाँव पर एक अजीब तरह का सकता छाया हुआ था। सभी जानते थे कि देवा नम्बरी चोर और बदमाश है, पर आखिर है गाँव का आदमी। यदि भंडाफोड़ हुआ तो बड़ी बदनामी होगी। आस-पास के गाँवों में मुँह दिखाना मुश्किल हो जायेगा। पिछले हफ़्ते देवा किसी दूर गाँव की एक औरत भगाकर ले आया। औरत नाक-नक्श और कपड़े-लत्ते से अच्छे घर की मालूम होती थी। पता नहीं, देवा ने क्या सब्ज़-बाग दिखाया उसे। वह शायद अपने ससुरालवालों से नाराज़ थी। एक रात गहनों की पोटली छिपाये वह देवा के साथ चल पड़ी। देवा ने गाँव में हल्ला किया कि औरत रेल के नीचे कटने जा रही थी। उसने ऐन मौक़े पर पहुँचकर उसे बचाया और अपने साथ ले आया। दो-एक दिन में सुस्थिर हो जायेगी तो उसका अता-पता पूछकर वह उसके घर पहुँचा आयेगा।

फूला, यही नाम था उस औरत का, बीस-बाईस के उम्र की जवान औरत थी। बहुत सुन्दर तो नहीं थी पर उसकी बात-चीत, चाल-ढाल से मालूम होता था कि उसमें जीने की ख्वाहिश है और अपने मन-मुताबिक जीने के लिए वह कोई भी क़दम उठा सकती है। देवा पर उसे पूरा यक़ीन था। गाँव की औरतें सुबह से शाम तक देवा के घर जुड़ी रहतीं।

फूला के बारे में तरह-तरह की ख़बरें गाँव में उठा करतीं। कुछ औरतें उसकी शौक़ीनी की निन्दा करतीं। कुछ उसके हँसमुख स्वभाव की तारीफ़ करते नहीं अघातीं।

अभी कल की ही बात है, शाम तक फूला हँसती-बोलती रही। औरतों के सामने अपने मायके और ससुराल के लोगों की चुटकियाँ लेती रही। आधी रात के करीब देवा के धाड़ मारकर रोने की आवाज़ से सभी चौंककर उठ बैठे। मुहल्ले के तमाम लोग उसके दरवाजे पर टूट

पड़े। भीतर के दालान की बल्ली में मोटी रस्सी से फूला की लाश झूल रही थी और नीचे बैठा देवा अबोध बच्चे की तरह बिलखकर रो रहा था।

"कहती थी कि मुझे घर मत भेजो। चाहो मुझे कुएँ में काटकर डाल दो। पर मैं ससुराल नहीं जाऊँगी। वह मेरी गरदन मरोड़कर रख देगा। उसकी माँ जलते चिमटे से मेरी देह दागकर काली कर देगी। कसाई की औलाद हैं सब। पर भला आप सब लोग ही कहिए पंचो, कि मैं परायी औरत को कब तक अपने घर में रख सकता था। जब तक मुझे उसके नैहर-सासुरे का पता-ठिकाना नहीं मालूम था; मैंने उसे बहिन बोलकर अपने घर में रखा। पर जब मुझे सब पता-ठिकाना मालूम हो गया तो एक पल भी दूसरे की बहू-बेटी को अपने घर में कैसे रहने देता? उसके रोने-गिड़-गिड़ाने का बिना खियाल किये मैंने डाँटकर कहा कि यह नहीं हो सकता। कल सुबह तुम्हें ज़रूर-से-ज़रूर अपनी ससुराल चला जाना होगा। उसे जाने किस बात का इतना डर था कि धरन में रस्सी डालकर झूल गयी। इसने तो मुझे किसी ओर का नहीं रखा।....अब मैं क्या करूँ रे बप्पा!" देवा बिना पूछे ही ये सारा बयान सुनाकर रोने लगा।

गाँव वाले फूला की मौत पर दुःखी हुए। उन्होंने देवा को समझाया-बुझाया। पर सबके दिल में पुलिस का भयंकर हादसा छाया हुआ था। जाने किसकी-किसकी शामत-मलामत होगी। थोड़ी देर तक अजीब सन्नाटा छाया रहा। फिर धीरे-धीरे लोग अपने-अपने घरों की ओर चल दिये।

ग्राम सभापति सुखदेव और जैपाल सिंह एक साथ ही देवा के घर में घुसे। बाहरी फाटक बन्द करके दोनों आँगन में चले आये। देवा के रोने-कलपने का गाँववालों पर जैसा भी प्रभाव पड़ा हो, जैपाल सिंह पर तो उसका रत्ती भर भी असर नहीं था।

"क्यों? कितने हज़ार के गहने होंगे?" आते ही उन्होंने देवा के चेहरे पर घूरते हुए पूछा।

"गहने कहाँ थे उसके साथ? आप भी हुज़ूर।" देवा डर के मारे थूक निगलने लगा।

"चुप करो। हम तुमको आज से नहीं जानते। रसरी की नकली फँसरी असली भेद छुपा न सकेगी। पुलिस के आते ही सारा भंडाफोड़ हो जायेगा। गाँव की बदनामी होगी वह अलग से। तुम्हारी तो इस बार खैर नहीं ही है।"

देवा ने सब कुछ क़बूल लिया। एक हज़ार रुपया देना भी उसने स्वीकार कर लिया। ठाकुर ने पूरा विश्वास दिलाया कि कल थानेदार के आने पर वे सारा मामला रफ़ा-दफ़ा कर देंगे। गाँव की इज़्ज़त बचाने की ख़ातिर वे कुछ भी उठा न रक्खेंगे।

सुबह-सुबह ही भय के आतंक से बदहवाश गाँव में घूम-घूमकर दयाल पंडित तरकारियाँ, दही, मुरगे, घी, चीनी आदि इकट्ठा करते रहे। मुसकरा-मुसकरा कर सबसे बोलते और इत्मीनानदार आदमी के कान में धीरे से कहते: "फाँसी लगाकर नहीं मरी थी। देवा ने मार डाला है। गला दबाकर। वह तो कहो गाँव की बदनामी के ख़ियाल से ठाकुर साहब बीच में पड़ गये। अब कोई फिकिर नहीं। जज-कलक्टर का हाथ पकड़कर फ़ैसला बदलवा दें। दारोगा-थानेदार की तो बात ही क्या!" दयाल पंडित की बातों से लोगों को थोड़ी राहत मिली।

स्वागत-सत्कार में किसी तरह की कमी न हुई। चौकीदार, कांस्टेबिल, मुंशी, थानेदार सब प्रसन्न थे। इस ज़माने में इस तरह का स्वागत कम ही होता है। ठाकुर जैपाल ख़ानदानी आदमी थे। बड़े-बड़े अफ़सरों से उनकी दोस्ती थी। इस बात को अदना सिपाही से थानेदार तक सभी जानते थे। चाहे थानेदार नया हो या पुराना, करैता गाँव में आने के पहले ठाकुर जैपाल के बारे में सब कुछ जान लेना उनका फ़र्ज था।

"अब आप ही देखें साहब! नेकी करते हाथ जलता है। कहाँ तो बिचारे ने रेल से कटने से उनकी जान बचायी। कहाँ वह उसी के घर में फाँसी डालकर मर गयी। बेचारा ग़रीब आदमी अलानाहक़ आफ़त में फँस गया।"

"देखिए ठाकुर साहब! मैं आपसे यह उम्मीद नहीं करता था। यह

सीधा 'मरडर' का केस है। औरत की गर्दन में अब तक उँगलियों के निशान बने हैं। नहीं-नहीं। ये रुपये आप रखिये—देखिये इस तरह। नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता। यह मेरे कैरियर का सवाल है।" थानेदार ने आँखें फेर लीं। देवा की उसी दिन चालान हो गयी। फूला की लाश थाने भेज दी गयी।

सुबह ठाकुर जैपाल चबूतरे पर बैठे मालिश करा रहे थे। उनकी आँखें रात भर जगने के कारण बुरी तरह लाल थीं। सुखदेव सामने कुर्सी पर मनमारे बैठा था।

"क्या कहा उसने ?"

"कहेगा क्या साला। नीच जात का यही हाल है। ऊँचे ओहदे पर पहुँच जाने से कहीं शराफ़त आ जाती है ? शराफ़त तो ख़ानदानी चीज़ होती है। कहने लगा 'मरडर' का केस है। अरे 'मरडर' का केस न होता तो क्या चोरी-डकैती के केस के लिए हम तुम्हारी सिफ़ारिश करते।" ठाकुर गुस्से में बड़बड़ाये—"नीच जात कहीं का ? खायेगा साला गच्चा। बड़े-बड़े कैरियर बनानेवाले आये और बिला गये।"

सामने दयाल पण्डित खड़े थे। ठाकुर उनकी ओर बड़ी आशा लगाये ताक रहे थे। पर दयाल पण्डित ने जाने क्यों रोज़ की तरह हामी में गर्दन नहीं हिलायी।

● ●

पाँच

दयाल पण्डित ने गर्दन तो क्या नहीं हिलायी, इन्होंने जैपाल सिंह के मन की सूखी-बिथरी आशा के आखिरी अँखुवों को भी मसल दिया। ज़माना पलटा था। बातें बदली थीं, पर ऐसा कुछ नहीं कि जैपाल सिंह अपने को इस नये ज़माने में फिट करना चाहें और कर न सकें। जैपाल सिंह को पूरा विश्वास था कि वे इस आँधी को सँभाल लेंगे। गाँव की जनता के सामने माथा झुकाकर छिपे तौर से उसके भाग्य-विधाता बने रहेंगे। इसमें शक नहीं कि जैपाल सिंह अपने इस प्रयत्न में पूरे सफल रहे। सुरजू को उन्होंने सभापति नहीं होने दिया। सुखदेव कोई काम उनके मन के ख़िलाफ़ न कर सका। पर चाहकर भी जैपाल सिंह देवा को पुलिस के चंगुल से न छुड़ा सके। यह उनकी करारी हार थी।

जैपाल सिंह का पुराना दमा फिर उभड़ गया और वे खाँसते-खाँसते सारे बदन को सिकोड़कर गठरी की तरह पड़ गये। वीरा दौड़कर पानी ले आया। रुई के पहल को गरम करके सेंक दी गयी। पुरानी दवाओं के नाम याद हुए। परिचित वैद्य-डाक्टरों को खबर की गयी। पर किसे मालूम

था कि जैपाल सिंह का यह रोग जाना-पहचाना पिछला रोग ही नहीं, कुछ और भी है।

जैपाल सिंह उसी हालत में अपने पूर्वजों के पुराने आँगन में लाये गये। उन्होंने अपने शुभचिन्तकों और परिवार वालों से साफ़ कह दिया कि करैता गाँव की हवा उनके स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं पड़ती। वे अब एक क्षण भी इस गाँव में नहीं ठहर सकते। जिस धरती का चप्पा-चप्पा बबुआन के रोब और ऐश्वर्य की साँसों से भींगा है, उसी पर अपनी आखिरी हार की कहानी वे छोड़ना नहीं चाहते। मीरपुर में उन्हें बदली आँखों से देखने वाला कोई नहीं था। वे सदा के जैपाल थे। परिवार के बीच उनकी कमजोरी और अच्छाई के पहलू किसी से छिपे न थे।

जैपाल सिंह ने अपनी रोग-शय्या पर पड़े-पड़े कई बार अपने जीवन का लेखा-जोखा किया! लाभ-हानि का हिसाब लगाया। पूरे हिसाब के बाद उनके चेहरे पर सन्तोष की मुस्कराहट उभर आयी। कोई बुरा नहीं रहा है उनका व्यवसाय। यह सही है कि उन्हीं के जमाने में बाप-दादों की बसायी ज़मींदारी उजड़ गयी। पर यह केवल उनका मामला ही नहीं था। यह तो तूफ़ान था। इसमें सभी पेड़ टूटे। ताड़ की तरह सीना ताने जो आसमान से बातें कर रहे थे, वे भी, जो आस-पास की ज़मीन को चूस-चूसकर वीरान बनाकर लहलहा रहे थे, वे भी। इसमें सवाल सिर्फ़ यह था कि इस आँधी में पेड़ समूल उखड़ जाता है, या नुच-चुँथ कर कुछ साबुत भी बच रहता है। इसमें भी सन्देह नहीं कि जैपाल सिंह के वैभव का वृक्ष ठूँठा हो गया; पर वह जड़ से नहीं उखड़ सका। वह हरियाली न रही, वह शान-शौकत न रही। न वे फल, न वे फूल। पंछियों का वह कलरव भी नहीं रहा। घोंसलों में परों की वह गरमाहट भी न रही। पर पेड़ खड़ा था।

"पर यह खड़ा रहेगा नहीं। बुझारथ इसकी जड़ में घुन की तरह लगा है। एक न एक दिन इसे खोखला करके रहेगा।" जैपाल सिंह ने बेचैनी की हालत में छटपटा कर करवट बदली—"देवीचरण की प्रतिष्ठा और इज्जत की नींव में यह दीमक की तरह लग गया है।"

पिछले आठ-नौ महीनों से करैता में रहते हुए जैपाल सिंह को बुझारथ की 'करतूतों' को नज़दीक से देखने का अवसर मिला। उसके प्रति उनके मन में अब भी मोह था। सोचते थे, शायद उमर के साथ ही साथ उसकी अक़ल भी बढ़ी होगी और वह अब सही रास्ते पर आ गया होगा।

उन्होंने जब सुना कि चुनाव के दिन बुझारथ से हरिया लड़ गया था, तो वे नाराज़ हुए—"तुम ऐसे नाचीज़ लौंडों-लफंगों से क्यों उलझते हो ?"

"वह बोली बोल रहा था।" बुझारथ ने गर्दन झुकाकर कहा।

"वह तो खुशी की बात है। गर्व की चीज़ है। लोग बोली उसी पर बोलते हैं, जिससे खुले आम टकराने की हिम्मत नहीं होती। दूसरी ओर ऐसे लोग बेवक़ूफ़ी के कारण अपने मन की नाराजी भी खोल देते हैं। ऐसों को ठीक से जान लेना चाहिए, और इनसे खूब सोच-विचारकर बाद में निबटना चाहिए। तुम गुस्सा होगे, चिढ़ोगे, सो उसे खुशी होगी कि उसने तुम्हें चोट पहुँचा दी। यह तो खुद अपने हाथों अपनी बेइज्ज़ती करा लेना है।"

बुझारथ चुप रह गये थे। जैपाल को समझते देर नहीं लगी कि वे जिस अक़ल की आशा लगाये थे, उसके आने में अभी बहुत देर है। उन्होंने गाहे-बेगाहे कई मौक़ों पर बुझारथ को समझाने-सिखाने की कोशिश की।

उस दिन, और लोगों के साथ हरिया जब रुपये माँगने आया, तो जैपाल सिंह थोड़ा सजग हो गये।

"मुझी से दाँव सीखकर मुझी पर लंघी लगाने आया है।" वे मूँछों के भीतर मुस्कराए। आखिर को उदास चेहरा बनाये हरिया और सिरिया को वहाँ से जाते देख जैपाल अपनी हँसी नहीं रोक सके थे। नहा-धोकर वे बरामदे में बैठे तो भी खुशी और संतोष से उनका मन प्रसन्न था। उसी वक़्त खुदाबक्कस को बुलाकर उन्होंने बछेड़े पर पलानी कसवायी।

"जरा क़स्बे तक हो आयें ख़ुदाबक्कस मियाँ।" वे हँसते हुए बोले—"आज आपकी घुड़-फेराई का इम्तहान भी हो जायेगा।"

"बड़ी मेहरबानी है सरकार। मैं भी चलूँ क्या?"

"आपको घोड़े पर यक़ीन नहीं है, ऐं?"

ख़ुदाबक्कस कुछ न बोला। उदास हँसी हँसकर पीछे हट गया।

लौटते-लौटते क़रीब दो बज गये। जयकिसुन महराज की यह आदत है। देख लेते हैं तो पीछे पड़ जाते हैं। उन्हें अपनी दूकान की भी परवाह नहीं होती। बड़ी देर तक वे इधर-उधर घूमते रहे।

छावनी लौटकर उन्होंने घोड़ा रमचन्ना के हाथ सँभलाया। चाबुक लिये बखरी में घुस गये।

सामने आँगन में चारपाई पर बुझारथ लेटे थे। पायताने मियवाँ बैठा था। और उसी के सामने वह लड़की खड़ी थी। जैपालसिंह उसे पहचान नहीं पाये। उसके नाक-नक़्श, कपड़े-लत्ते से उन्होंने समझा कि गाँव के किसी की बहू-बेटी होगी। उन्हें इस तरह आँगन में घुसते देख ख़ुदाबक्कस घबड़ाकर उठ गया। बुझारथ ने देखा तो उनकी साँस टँगी की टँगी रह गयी। इतने में वह लड़की तेज़ी से मुड़ी और जैपाल सिंह के बग़ल से कतराती हुई निकल गयी।

"कौन थी यह?"

"वह? वह मालिक काका सुगनी है।" बुझारथ की जीभ तालू से सट-सट जाती।

"कौन सुगनी!" जैपाल सिंह सामने खड़े लोगों की मुद्राओं से भड़क उठे थे। उन्होंने काफ़ी विकृत चेहरा बनाकर पूछा।

"डोमन चमार की लड़की।"

"यहाँ क्यों आयी थी? देखने से तो वह किसी रजपुत-बाभन की लड़की जैसो लगती है। यहाँ क्या करने आयी थी?"

बुझारथ का चेहरा एकदम स्याह हो गया था। जैपाल सिंह चाबुक लिये उनके पास से गुज़रे। कोनियाँ घर में जाते हुए उनकी इच्छा हुई थी कि

एक चाबुक जड़ दें, इस सूरत हराम, नालायक़ कमीने को। देवीचरण के वंश में यही जन्म लेने को था। ख़ुदाबक्कस की ओर तिरछे देखते तो उनके शरीर में आग ही लग गयी थी। जाने क्या सोचकर बाबूजी ने इसका बुझारथ नाम रखा था। ऐसा बुझा रथ और ये ऐसे सारथी! यह बदज़ात इसे ले बीतेगा—उन्होंने सोचा और कमरे में हेल गये।

आज ये बातें सोचते-सोचते जैपाल सिंह को लगा कि अचानक उनकी छाती पर जैसे कोई बहुत बड़ा आदमख़ोर जानवर उछलकर बैठ गया है। एक हिंसक दुर्गन्ध उनके फेफड़े में अटक गयी है। साँस न भीतर जाती है, न बाहर आती है। जैपाल सिंह घबड़ाकर उठना चाहते हैं, पर उठ नहीं पाते। उनके मुँह से एक चीत्कार निकल पड़ी।

"क्या बात है! क्या हुआ? बाबूजी!" कनिया दौड़कर आयीं और उन्होंने उनके शिथिल हाथ को पकड़कर झकझोरा।

उन्होंने ग्लास से पानी लेकर उनके मुँह पर छींटे दिये। कपड़े से पोंछा। कुछ देर के बाद जैपाल सिंह स्वस्थ हुए।

कनिया चुपचाप चौकठ के पास बैठ गयी थीं। बोरा भीत दृष्टि से देखता हुआ दालान से बाहर चला गया। जैपाल सिंह ने बिना देखे समझ लिया कि बहू दरवाज़े पर बैठी है। वे उस छोटी कोठरी की बल्लियों को देखते रहे। इस कालिमा में जगह-जगह कमज़ोर आँखें स्याह उजले प्रकाश के काँपते हुए जाले बना देतीं। रेशों के जाले। बराबर के मोड़, बराबर के बन्धन। हर मोड़ से सीधी लकीरें खिंची होतीं उस केन्द्र तक, जहाँ मकड़ी चुपचाप निश्चेष्ट बैठी रहती है। सब कुछ दीखता है। पर केन्द्र नज़र नहीं आता।

"बहू।" ठाकुर ने खँखारकर कहा—"आज जाने क्यों याद पड़ गया। इसलिए कह देना चाहा। तुम मेरे न रहने पर करैता चली जाना।"

"बाबू जी!" कनिया के गले से एक दर्द भरी आवाज निकली। कनिया के मन में ससुर के टूटते हुए शरीर के विषय में कम शंकाएँ न थीं। वह जानती थीं कि इस पीले पत्ते का अब क्या भरोसा। कब काँपे और कब चू जाए। पर यह बात बुढ़ऊ के सामने ही स्वीकार करनी

पड़ेगी, यह उन्होंने नहीं सोचा था। इसीलिए यह सब सुनकर वे विचित्र भय और पीड़ा से बोल पड़ीं—"आप ऐसा न कहें बाबू जी! आप ठीक हो जायेंगे। आप....।"

जैपाल सिंह ने हाथ का संकेत करके बहू को चुप किया। मुस्कराते हुए बोले—"मुझे बहुत दुःख है बहू! मैं तो तुझे भवानी का प्रसाद मानता था बेटी। सोचता था दुःख, शोक, भय से तू कभी न घबड़ायेगी। यदि तू ही काँप जायेगी बेटी, तो जैपाल के ख़ानदान का क्या होगा? तेरी सास, सास की सास, किसी के सामने परीक्षा की यह घड़ी नहीं आयी थी, जो तेरे सामने है। इफ़रात में से कुछ बचा लेना या परिवार चला लेना सभी जानते हैं। पर कुछ न होने पर भी अपने को जोड़ रखना केवल माँ भवानी की कृपा से होता है बेटी। मैं तो तुझे माँ भवानी की कृपा ही मानता हूँ। वरना तुझ जैसी बहू ऐसे नालायक़ों के परिवार में क्यों आती। बुझारथ पर गुस्सा होकर तेरे पिता ने कहा था, ना ना रोक मत बेटी मुझे, सुनती जा चुपचाप, कहा था उन्होंने कि ठाकुर, मैं अपनी लड़की जूए पर हार आया। मैं नहीं जानता था कि देवीचरण के परिवार में आवारे और बदमाश पैदा होने लगे हैं।

उस समय मेरी आँखों में खून उतर आया था। मैंने ठाकुर का गट्टा पकड़कर चारपाई से उठा दिया था। पर उनकी आँखों में एक क्षण देखते ही मैं समझ गया था कि यह समधी की शान नहीं, एक दुखी बाप की आत्मा बोल रही है। मेरे पैर धसक गये थे। मैं अपनी चारपाई में गिर पड़ा था। उस समय तक मैं बेटे के प्रेम में अन्धा था। मुझे बुझारथ की चाल-चलन पर कोई शक न था। मैं उसकी ओर से आँखें बन्द किये बैठा था। तेरे बाप ने मेरी आँखें खोल दीं। यह सब कुछ तब हुआ, जब लड़का बूढ़े जैपाल के हाथों से निकल चुका था। मुझे बड़ा भय था। दुश्चिन्ता से रात-रात भर नींद नहीं आती थी। मैं सोचता था कि हे भगवान्, क्या यह भी होगा मेरे परिवार में? मैं जानता था बेटी कि चाहे जो कुछ हो जाये, पर तू माथा नहीं झुकायेगी। अन्याय के सामने तू नहीं झुकेगी।

इसीलिए मैं और भी परेशान था कि कहीं मेरा परिवार टूट न जाये। बेटे-बहू बिछड़ न जायें। पर बेटी, तूने मेरे परिवार को सँभाल लिया। तू भीतर से अपने को तोड़कर भी परिवार को बचाये रही।" बूढ़े ठाकुर का गला भर आया। कनिया द्वार पर बैठी सिसक रही थीं। उन्होंने आँचल का खूँट मुँह में भर लिया था, पर हिचकी सँभल नहीं पाती थी।

"छिः छिः छिः।" जैपाल ने मन को कड़ा करके कहा—"इसमें रोने की बात नहीं बेटी। खुशी की बात है। बूढ़ा हुआ। अब और क्या देखने के लिए रोकना चाहती है? इसलिए कह रहा था बेटी कि मेरी आख़िरी बात ज़रूर मान लेना। तू करैता चली जाना। बुट्टन और शीला की दुनिया में तेरा मन बहला रहेगा। शायद तेरे पास रहने से वह भूला-भटका भी राह पर आ जाये कभी।" कनिया कुछ न बोलीं।

"एक बात और है बेटी।" जैपाल ने पूरा स्वस्थ होकर बहू की ओर मुँह करके कहा—"यह बात पहले से कम ख्याल करने की नहीं है, अगरचे इसका दुःख दूसरे तरह का है। बेटी, इस परिवार पर पता नहीं, किस ग्रह की छाया पड़ा करती है। दुर्दिन नज़र नहीं आता। पर अचानक कुछ ऐसा हो जाता है कि जो इसमें सबसे अमूल्य, सबसे बेशक़ीमत होता है, वही खो जाता है। बाबू जी से नाराज़ होकर उनके भाई पुलिस में गए। तीन साल तक उनकी कोई ख़बर नहीं मिली। बाद में चिट्ठी मिली कि घुड़सवारी सीखते समय घोड़े से गिरकर मर गए। उनके मरने की ख़बर सुनकर बाबू जो सुध-बुध खो बैठे। ज़िन्दगी भर वे अपने को धिक्कारते रहे। मरने तक उनकी आत्मा को शान्ति न मिली। देपाल के बारे में तुमने सब सुना ही होगा। मुझे विपिन का हमेशा डर बना रहता है। मैं जानता हूँ कि वह औरों से अलग तरह का आदमी है। पढ़ा-लिखा है। सहनशील है। चाल-चलन का भी कच्चा नहीं है। पर है बड़ा ज़िद्दी। इसकी माँ थी, तब इसकी ज़िद्द की कोई सीमा नहीं थी। माँ मर गयी, तो उसने ज़िद्द करना छोड़ दिया। पर बेटी, स्वभाव जल्दी नहीं बदलता। थोड़ी सी भी ठेस उसके मन से सही नहीं जाती। अपनी माँ के मरने के

बाद उसने तुझी को माँ समझा है। मैं यह भी जानता हूँ बेटी कि तू उसे बुट्टन से कहीं ज़्यादा प्यार करती है। पर मेरे मन को चैन नहीं आता।" जैपाल सिंह का गला भर आया था। आँखों में धुन्ध छा गयी थी। एक क्षण के लिए कुछ बोलने की चेष्टा करके भी कुछ कह न सके। फिर धीरे-धीरे उन्होंने बहू की ओर देखा और बोले : "बेटी, तू मेरी क़सम खाकर मुझे एक वचन दे दे। मैं सब तरफ़ से निश्चिन्त हो जाऊँगा। मेरी जान बड़ी ख़ुशी-ख़ुशी इस शरीर से बाहर निकलेगी।....तू....।"

"आप जो कहेंगे, मैं वह सब करूँगी बाबू जी।" कनिया की आँखों की चमक आँसुओं से और भी बढ़ गयी थी—"मैं विप्पी के लिए कुछ उठा न रक्खूँगी।"

"ना ना बेटी, ना। यह तो मैं सपने में भी नहीं सोच सकता कि तू उसके लिए कुछ उठा रक्खेगी। डर तेरी ओर से नहीं है बेटी। बस तू इतना ही वचन दे दे कि तू उस बिन-माँ के बच्चे से कभी नाराज़ न होगी। वह कभी ग़लती करे, तू उसे क्षमा कर देगी। वैसे मैं यह भी बता दूँ बेटी कि विपिन तेरी छाया में बढ़ा है। वह जल्दी में कोई ग़लती नहीं करेगा, फिर भी आदमी से जाने-अनजाने कुछ हो ही जाता है....।"

"मैं क़सम खाती हूँ बाबू जी....।"

कनिया की क़सम पता नहीं, जैपाल सिंह के कानों में पड़ी या नहीं, वे बड़ी ख़ुशी से आँखें मूँदकर तकिये पर उठंग गये। सारा बदन काँपकर थिर हो गया। पंछी उड़ गया। कनिया घबराकर चीख उठीं। वे दौड़कर चारपाई के पास पहुँचीं। बाँहों को हिलाया। पर आँखें खुलीं नहीं। जैपाल सिंह के चेहरे पर सन्तोष का भाव था। बन्द आँखें कनिया की ओर देख-देखकर मुस्करा रही थीं। एक आशीष भरी मुस्कराहट। कनिया एक क्षण उस चेहरे को देखती रहीं फिर फूट-फूट कर रोने लगीं। उसके रोने की आवाज़ सुनकर वीरा और दूसरे कई लोग भीतर आ गये। आगन्तुकों के पैरों की ध्वनि से कनिया को स्थिति का ज्ञान हुआ। वे धाड़ मारकर चारपाई की पाटी पर गिर पड़ीं।

समय एक पखवारा से अधिक बीत गया। बुझारथ और विपिन दोनों पिता की मृत्यु की खबर पाकर उसी दिन आ गये थे। बड़ी धूम-धाम से ठाकुर जैपाल सिंह का श्राद्ध सम्पन्न हुआ। करैता गाँव के बहुतेरे लोग, जो जैपाल सिंह से उनकी ज़िन्दगी भर नाराज़ रहे, उनके मरने की मनौतियाँ मनाते रहे, उनके 'काम' में शामिल हुए। भूले-बिसरे परजा-पौनियों ने भी स्वर्गीय ज़मींदार के क्रिया-कर्म में अपनी पूरी ताक़त लगाकर सहयोग दिया।

'काम' ख़तम होते ही अपनी पढ़ाई पूरी करने विपिन शहर चला गया। बुझारथ को मीरपुर रहना कभी नहीं रुचा। इसलिए उनके कुछ दिन रहने का सवाल ही कहाँ था। वे भी दो-एक दिन और रुक-रुका कर 'परोजन' के सामानों को उनके मालिकों के पास भेज-भाजकर तथा न्योते में आये रिश्तेदारों को विदा करके करैता लौट गये।

जाते समय बुझारथ ने कनिया से कुछ नहीं पूछा। उतनी बड़ी बखरी में जैपाल के मरने के बाद एक भी ऐसा पारिवारिक व्यक्ति नहीं था, जो बाहर के काम-काज देख सके। अकेली औरत सब कैसे सँभालेगी? नौकर-चाकर हैं जरूर, पर वे सब कुछ तो नहीं कर सकते। इन सब कठिनाइयों के बारे में जैसे बुझारथ को कोई ध्यान ही न था। वह तो क्रिया-कर्म बीतते ही अपने उत्तरदायित्व से छुट्टी पा गये। जाते वक्त वीरा से इतना कहलवा दिया कि वह करैता जा रहे हैं। वहाँ न जाने से हर्ज़ होगा।

कनिया ने वीरा की ये बातें सुनकर कोई जवाब नहीं दिया। उन्होंने न रोकने की कोशिश की, न जाने की सलाह दी। वे चुपचाप आँगन में चटाई डाले बैठी रहीं। शीला ने धीरे से कहा भी—"भौजी (विपिन से सुनकर कनिया के दोनों बच्चे उन्हें भौजी ही कहते थे) बाबू जी जा रहे हैं।"

"तो मैं क्या करूँ?" कनिया की उदासीनता देखकर शीला चुप मार गयी।

दो महीने के बाद घर का सारा इन्तजाम ठीक करके, ख़ास-ख़ास

चीज़ें भंडार घर में बन्द करके, नौकरों के लिए खाने-पीने की चीज़ें रसोईघर में रखवाकर, भीतर के सभी घरों में ताले बन्द करके कनिया ने बुट्टन और शीला को साथ लेकर करैता जाने की तैयारी कर दी। बुझारथ के व्यवहार से उन्हें बहुत चोट लगी थी। वे किसी भी प्रकार करैता जाने को तैयार न थीं। पर मरण-शय्या पर बूढ़े ससुर को वे वचन दे चुकी थीं। इसलिए हारकर मनमारे वे करैता चली गयीं।

कनिया से करैता जाने की खबर विपिन को मुंशी नवज़ादिक लाल ने भेजी। मनीआर्डर के कूपन पर उन्होंने लिखा था—"बहूरानी छावनी पर आ गयी हैं। मनीआर्डर उन्हीं के हुकुम से जा रहा है। खर्चे की कमी पड़े तो सन्देसा भेजना।" विपिन को बड़ी प्रसन्नता हुई कि भाभी और भाई में समझौता हो गया। ठीक भी है। मालिक काका के मरने के बाद तो कम से कम भैया को इतनी अक़ल आनी ही चाहिए।

● ●

छह

विपिन चारपाई पर लेटा टुकुर-टुकुर छावनी की दीवालों को देख रहा था। जाने कितने हाथों के पसीने और कारीगरी से बन-सँवरकर ये पक्की पुख्ता दीवालें खड़ी हुई हैं। सौ साल तक सैकड़ों आँधियाँ-बरसात झेल कर भी ये वैसे ही खड़ी हैं। आज भी लोग इन्हें आते-जाते हाथों से छू लेते हैं। बबुआन के बड़प्पन को सराहते संकोच नहीं करते। पर कौन जानता है कि इन पुख्ता लगनेवाली दीवालों की नींवों में तरह-तरह की दीमकें लगी हैं, जो उनकी ईंटों तक को चाट रही हैं, छेद कर रही हैं।

गाँजे के धुएँ में साँस लेना मुश्किल हो गया है। विपिन खुश था कि कनिया के करैता आ जाने से सब कुछ ठीक हो जाएगा। उसे लगा था कि भाई-भौजाई में मेल हो गया, वरना कनिया करैता आतीं क्यों। पर कुल चौबीस घंटों में ही उसे समझते देर न लगी कि मन की खाई पटी नहीं, बिथरी ही है। कनिया ने इन चौबीस घंटों में एक बार भी भाई के बारे में बातें नहीं कीं। एक बार भी उन्होंने घर की हालत का ज़िक्र नहीं किया।

छावनी के सामने वाले चबूतरे में प्वाल की पहाड़ियाँ सिर उठाये गर्मी की लू को ललकारती थीं। आज तो मुश्किल से छाती भर ऊँची 'पोरवट'

बच रही है। इर्द-गिर्द खूँटों में बँधे बैलों की आठ ठठरियाँ इसकी निग-रानी करती रहती हैं। बग़ल में दक्खिन मुँह घोड़े का अस्तबल है। नाद गड़ी है छावनी की दीवाल में। रमचन्ना डर के मारे रात में भी सो नहीं पाता। अब तक खरहरा करता रहा है। सारे बदन को मलमल कर चम्पी करेगा घोड़े की। एक गगरी चना भिगोकर रखा है। लेई, चोकर ऊपर से। भूसा ख़रीदा गया होगा इसके लिए अलग। गेहूँ-केसारी का भूसा तो यह खाएगा नहीं। चने-जौ का चाहिए, कोरा। पता नहीं इसे कौन हल खींचना है। बैल मरें, घोड़े पलें। इस पर गाँजे की लपट....घुड़सवारी का तुर्रा। शिकार का शौक़ और जाने क्या-क्या।

विपिन यह सब कुछ सोचता-सोचता भीतर-ही-भीतर कुढ़ रहा था, पर कुढ़ने से क्या होगा, कुछ कह सकता नहीं भाई से। यह बबुआन की मर्यादा के खिलाफ़ है कि छोटा भाई बड़े भाई के इन्तज़ाम की नुक्ताचीनी करे। कनिया कुछ कह सकती थीं, पर उन्होंने तो जैसे क़सम खा ली है कि ज़बान से क़स्द के ताले को न खोलेंगी, न खोलेंगी।

क़ुर्क अमीन से मुंशी नवज़ादिक लाल अब भी गुंथे थे, वैसे ही कान के पास बुद-बुद बातें करते हुए। बुझारथ सिंह खाने चले गये थे। खुदा-बकस उनकी चारपाई के पास ही एक बँसखट डालकर लेटा था। वह बीड़ी सुलगाकर धुएँ घोंट रहा था। रात की उदासी बढ़ रही थी। धीरे-धीरे अँधेरी की चादर घनी होती जा रही थी। तभी अँधेरे के बदन पर तेज़ चाक़ुओं का अभ्यास करती हुई-सी आवाज़ रह-रहकर सन्नाटे को बेधने लगी :

कजरा कइ धन बिरवा, अँसुवन फूल।
गरवा कइ मनि हरबा, उपजै सूल॥

रह-रहकर समूची चेतना को अपने चंगुल में समेटती हुई, यह आवाज़ छावनी की दीवालों से टकराने लगी। बग़ल के केवड़ार में गंध तीव्र हो गई थी। मानो सोयी हुई प्रेतात्माएँ एक साथ चिहुँककर, इस आवाज़ को साँस रोककर सुनने लगी थीं। "बाबू की केवड़ार" जाने कितनी

प्रणय-कथाओं को अपनी छाती में दबाये वैसे ही खड़ी है। लोग कहते हैं कि रात में वहाँ टहनी-टहनी में चमकीले साँप झूलते हैं। उनकी साँसों से केवड़ों के फूल अधखिले ही मुरझा जाते हैं।

"कौन है ?"

"मैं हूँ दयाल।"

"पाय लगी दयाल महराज।" नवज़ादिक ने बुल्लू चाचा को कनखी से देखकर प्रणाम किया और फिर क़ुर्क अमीन से बात करने में लग गया।

"कहिए दयाल महराज, मेले के बाद तो आप ऐसे गुम हुए जैसे गधे के सर से सींग।" खुदाबक्कस मुसकुराते हुए बोला। नौ बजे ही इस तरह की चुप्पा-चुप्पी उसे अखर रही थी।

"सींग खो जाने से क्या हुआ मियाँ साहेब, गधे तो रहे ही होंगे....।" दयाल महराज बड़े ज़ोर से हँसे। "उधर कौन सोया है पलंगड़ी पर—अरे हाँ, विपिन बाबू हैं न।"

"कौन है बुल्लू महराज।" बखरी से खाना खाकर बुझारथ सिंह नीम के तिनके से दाँत खोदते हुए अपनी चारपाई पर जाकर उठंग गए।

"हाँ, छोटे सरकार !"

"आज बड़ी देर से आये बुल्लू महराज। कहाँ खो गये थे ?"

"नून-तेल में राजा, और क्या रखा है खोने को ?" दयाल महराज के चेहरे पर खुशी उड़ गयी थी। उन्हें बुझारथ का एकाएक इस तरह टपक पड़ना रुचा नहीं। फिर ज़रा क्षमा माँगने का भाव लाकर बोले, जैसे कोई ग़लत काम कर रहे हैं, "ज़रा विपिन बाबू से क़ुशल-मंगल कर लूँ। इन्हें देखे तो जाने कितने युग बीत गये छोटे सरकार !"

"हाँ-हाँ, विपिन, जाग रहे हो न।" बुझारथ बाबू ने पूछा, "यह देखो दयाल महराज हैं।"

"आइए दयाल महराज !" विपिन ने तकिये का सहारा लेकर पैरों को ऊपर मोड़ते हुए कहा—"आइए, आइए, इधर आइए।" उसने सिरहाने से तकिया खींचकर जगह बनायी। दयाल महराज पैताने की तरफ़ ही बैठते

हुए बोले, "नहीं छोटे बाबू, यहीं ठीक है, आप उधर ही बैठे रहिए।"

बहुत देर तक दयाल पंडित लोगों को सुना-सुनाकर इधर-उधर की बातें करते रहे। बुझारथ सिंह और खुदाबक्कस किसी रहस्यपूर्ण बातचीत में खो गये थे।

"दयाल महराज!" विपिन ने 'काजर बिरबे' की उस दर्दनाक आवाज़ को अनसुनी करते हुए पूछा—"यह कौन गा रहा है?"

"ओह, अरे सरकार ई तो सुरजितवा है। बीसू धोबी का छोरा। ई अपने बाप का भी कान काटेगा बाबू, हाँ। बाप-बेटे के सुर भी एक जैसे हैं। दूर से गायें तो फ़रक करना कठिन हो जाता है। पर सुरजितवा के गले की मिठास ही कुछ और है। एकदम कचरस ऊख की अँगारी, हाँ, बीसू के गले में भी मिठास है। बाक़ी पकठल गन्ने में ऊ बात कहाँ? रोज गाता है पट्ठा इसी वक़्त। घाट से आ रहा होगा सरकार।"

विपिन कुछ न बोला। वह चुपचाप उसी दर्द की गेंडुर में अपने पूरे जिस्म को जैसे डुबोये जा रहा था।

"विपिन बाबू!" दयाल पंडित ने एक बार बुझारथ सिंह की चारपाई की ओर देखा और फिर धीरे से बोले, "आपको 'वो' जोह रही हैं, बखरी के पिछवारे।"

"कौन?" विपिन ने चौंककर धीरे से पूछा।

"बखरी में चले जाइए, पिछवाड़े वाले रास्ते से निकलिएगा। बस निकसार के पास ही खड़ी हैं। बड़ी आरज़ू-मिन्नत कर रही थीं कि एक पल के लिए ज़रूर चले आएँ।"

विपिन बड़े पशोपेश में पड़ गया। दयाल पंडित एक बुझौवल सुनाकर चुप हो गये हैं। अब वे एक अक्षर नया नहीं जोड़ेंगे। विपिन दयाल महराज की इस आदत को खूब जानता है। गाँव के छोकरे बुल्लू चाचा को 'मउगा' की पदवी दे चुके हैं। वे सुबह से शाम तक इस घर, उस घर की औरतों की फ़रमाइशें पूरी करने में जुते रहते। बाज़ार से छींट, गोटे, चोटी, बिन्दी लानी है, तो किसी की बहू को टीसन के चिट्ठी वाले डब्बे में लिफ़ाफ़ा छुड़वाना है। किसी का आल्ता चुक गया है, किसी का तेल खतम हो गया है। किसी को बब्बू के 'सुइटर' के लिए ऊन चुक गया है, खरीदना है। किसी के बालों का 'किलिप' खो गया है। दयाल महराज से अधिक विश्वासपात्र दूसरा कोई न मिलेगा। वे बड़े प्रेम से सौदा खरीद लाते हैं। एक-एक चीज़ खोज-खोजकर ले आते हैं। फिर सबका सही-सही हिसाब साफ़-साफ़ समझा देते हैं। एक बात उनमें और भी है। वे इधर की उधर नहीं लगाते। औरतों की बातचीत को कभी किसी मर्द से नहीं कहते। औरतों के लिए दयाल पंडित बिलकुल निजी थे, जैसे उन्हीं की जमात के एक जीव। पर दयाल पंडित की यह अच्छाई कभी-कभी क्रोध का कारण भी बन जाती। अब यही देखिए। कोई पिछवाड़े खड़ा है, विपिन से मिलना चाहता है, पर दयाल पंडित यह कभी न बतायेंगे कि आखिर 'वो' कौन है? क्या नाम है? आप नाक रगड़कर हार जाइए, पर दयाल पंडित टस से मस न होंगे। 'वो' के अलावा कुछ न कहेंगे।

विपिन धीरे से उठा और छावनी के ओसारे से होता हुआ, बखरी के दरवाज़े पर पहुँचा। भाभी सो न गयीं हों। दरवाज़ा बन्द था। उसने ज़ोर से साँकल खटखटायी। कनिया अभी सोयी नहीं थीं। उन्होंने आकर दरवाज़ा खोला।

"क्या है विप्पी?"

"पानी पीऊँगा।"

"आ जाओ।"

विपिन आँगन में चला आया, कनिया गिलास में पानी ढालने लगीं। "रमचन्ना कहाँ गया? एक गगरी पानी रख देना भी अब इन सबों से नहीं होता।" कनिया गिलास थमाते हुए बोलीं, "रात-बिरात कभी प्यास लगे तो अँधेरे में उठकर कोई कहाँ-कहाँ पानी ढूँढ़ता फिरेगा। रुको, ऐसे मत पीओ, बताशा डाल लो एक ठो मुँह में।"

"अभी तो खाना खाया है भाभी।" विपिन ने गिलास मुँह को लगाया

था, पर रुक गया क्योंकि उसकी बात सुने बग़ैर कनिया घर में बताशा लाने चली गयी थीं ।

पानी पीकर विपिन बोला, "अभी आता हूँ भाभी, ज़रा कुछ काम है ।" उसने गिलास रखते हुए कहा, और पिछवाड़े वाला दरवाज़ा खोलकर गली में हो रहा । गली के मोड़ पर, जहाँ छावनी की ऊपरी छत की 'रेलिंग' की कटावों से भरी परछाईं गली में चाँदनी की क्यारियाँ बना रही थी, एक दूधिया छाया खड़ी थी, सफ़ेद साड़ी में लिपटी, काँच की मूरत की तरह निश्चेष्ट । छावनी के निकसार की तरफ़ पीठ थी उसकी, इसलिए दूर से देखकर पहचान पाना असम्भव था । विपिन चुपचाप पास आ गया । उसके पैरों की आवाज़ सुनकर भी वह औरत वैसे ही खड़ी रही । विपिन पास आकर रुक गया ।

"विपिन बाबू ।" घूंघट से घिरे मुँह को ज़रा-सा फेरकर वह बोली, "पहचाना नहीं मुझे ?"

विपिन उसकी ओर चुपचाप ताकता रहा । वह सोलह-सत्रह साल की भरे-पुरे बदन की लड़की थी । चाँदनी उसके मुख के दायें भाग को उजागर कर रही थी । उभरे हुए गाल की मरोड़ पर कपास के रेशे की तरह एक चमक थी, जिसकी छाया में उसके पतले-पतले लाल होंठ आशंका और विस्मय से खिंचे हुए जुड़े थे । विपिन को लगा कि इस मासूम, अपनापन और शालीनता से भरे हुए चेहरे में किसी भूली स्मृति के रंग छिपे हैं, पर वह तुरन्त स्पष्ट करके उन्हें देख नहीं पा रहा था । इस शान्त चेहरे में उसकी आँखें मौजू नहीं हो रही थीं, बड़ी-बड़ी तिरछी आँखें एक अजीब शैतानी से भरी थीं, जैसे उसे परेशानी में डालकर वे दुष्टता से हँसी रोकने की कोशिश कर रही हैं । विपिन सब कुछ भूल सकता है, पर इन दुष्ट आँखों को वह शायद ही भूले । चिलक, शोख़ी और निर्भीकता का वह मिलन....।

"पुष्पी !" विपिन हकलाकर बोला, "आप पुष्पा हैं न ?"

"हाँ, हाँ ।" वह एक अजीब खुशी से थरथराती लजाती आवाज़ में

टुहककर बोली, "ईश्वर ने लाज रख ली । मैं तो डरती थी कि तुम मुझे पहचान भी नहीं पाओगे ।"

"ओह....मेरा मतलब है, आप बहुत बदल गयी हैं । एक छिन के लिए तो मैं सचमुच नहीं पहचान पाया ।"

"इतनी तो नहीं बदल गयी हूँ विपिन कि तुम मुझे 'आप' कहने लगो ।" वह खिलखिला के हँस पड़ी, "शहर में रहते हो । पढ़ी-लिखी लड़कियों से बातचीत करने की आदत होगी, पर मैं तो वही गँवार पुष्पी हूँ । मुझे तो आप 'आप' मत कहा करो ।"

"पुष्पी । तुमने मुझे बुलवाया था दयाल पंडित से ?" विपिन काम की बात करके जल्दी चला जाना चाहता था । पता नहीं, कनिया क्या सोच रही होंगी ।

"हाँ, विप्पी, मैंने ही बुलाया ।" उसका चेहरा सहसा एकदम पीला पड़ गया । आँखों से आँसुओं की लर बिखर गयी—"मैं बड़ी विपत में पड़ गयी हूँ, विप्पी । सुबह से, जब से सुना है कि तुम आये हुए हो, कई बार तुमसे मिलने की इच्छा हुई, पर मैं संकोच में पड़ी रही । पर ऐसे समय में तुम्हारे सिवा मुझे कोई दूसरा दिखाई भी तो नहीं पड़ता ।"

"क्या बात है ? बोलो न ?" विपिन उसे सिसकते देख बिल्कुल घबड़ा कर बोला ।

"विप्पी, कल मेरे घर कुर्की आनेवाली है । अभी-अभी सुना कि कुर्क अमीन आया है । मुझे कुर्की का कोई डर नहीं है । घर-द्वार कुर्क हो जाएगा, हो जाए । पर बाबू बहुत बीमार हैं । वे इसका सदमा सह नहीं पाएँगे । भगवान् के लिए तुम इसे कुछ दिन रुकवा दो । हम लोग जैसे भी होगा, उनके अच्छा होते ही कोई इन्तज़ाम करेंगे ।"

"किस बात की कुर्की है पुष्पा ?" विपिन ने बात सुनी थी, पर पूरा समझ न सका था ।

"बाबू ने मालिक काका से रुपया लिया था, आजी के किरिया-करम में । दो सौ या तीन सौ, मैं ठीक नहीं जानती । बाबू कहते हैं कि वे अपनी

तनख़ाह में से कटाते रहे, पर वो मुग्रा नवज़ादिक मुंशी कहता है कि नहीं, एक पैसा भी नहीं दिया है अब तक। सो कुल चार सौ रुपये का मुक़दमा चलाया। उसी की कुर्की है विपिन। तुम जानते ही हो, चार-पाँच साल से पैदा एकदम नहीं हो रही है। खाने तक के लिए उधार लेना पड़ता है। फिर कहाँ से देते बाबू चार सौ रुपया। जाने क्यों नाराज़ हैं तुम्हारे भैया हम लोगों से।'' पुष्पा हिचककर फूट पड़ी, ''मेरा करम ही ऐसा है विप्पी। मैं किसी का दोष क्यों दूँ। यह धरती फटती भी नहीं कि मैं समा जाऊँ। जाने किस साइत जन्मी कि....।'' वह ग्लानि और पीड़ा से पूरी तरह निचुड़कर, सिसकियों के हचकोले में टूटती हुई खड़ी थी। उसकी आँखें ज़मीन में टिकी थीं।

''तुम चुप हो जाओ पुष्पा। मैं कुछ न कुछ करूँगा। सुनो, कुर्की कल सुबह नौ बजे होनेवाली है न। मैं पाँच-छ: बजे, जो कुछ होगा, तुमसे बताऊँगा। बड़े सुबह आऊँगा मैं तुम्हारे घर। चुपचाप चली जाओ।''

पुष्पी उसे एकटक देखती रही। फिर आँखें पोंछती चली गयी।

विपिन धीरे से पिछवारे वाले दरवाज़े से बखरी में आ रहा। उसने फाटक बन्द कर दिया। आँगन में आकर कनिया की चारपाई पर बैठ गया। कनिया अब तक सोयी नहीं थीं, विपिन को देखते ही उठकर बैठ गयीं।

''तुम सोयीं नहीं भाभी!''

''नहीं विप्पी, नींद नहीं आयी। तुम कहाँ गये थे?''

विपिन चुपचाप बैठा रहा। उसके चेहरे को देखकर कनिया चौंक कर पास आ गयीं।

''क्या हुआ? तबीयत तो ठीक है न?'' उन्होंने माथा छूकर कहा ''देह तो ठीक है।''

''हाँ, तबीयत ठीक है भाभी! आप चिन्ता मत करिए। मुझे कुछ नहीं हुआ है।''

''फिर इस तरह उदास क्यों हो?''

''भाभी, मुझे दो सौ रुपये चाहिए....अभी।'' वह धीरे से ज़मीन की तरफ़ देखता हुआ बोला, ''बहुत ज़रूरी काम है। आज रुपया न मिला तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।''

''क्या करोगे, दो सौ रुपये? इस समय रात को कौन-सा ऐसा काम आ गया? कहाँ गये थे तुम अभी?''

विपिन चुपचाप कनिया के चेहरे की ओर देखता रहा। उसके मुँह पर एक अजीब तरह की छाया थी; ग्लानि, पीड़ा और असहायता की, जिसे कनिया बहुत देर तक नहीं झेल सकीं—''मुझसे बताओगे नहीं विप्पी!''

''बता दूँगा भाभी। मैंने आज तक तुमसे कुछ छिपाया है क्या? पर मेरी विनती मान लो, अभी मत पूछो। कल, परसों, कभी। फुरसत से मैं आपको बता दूँगा।''

कनिया धीरे से उठीं और भंडार घर में चली गयीं। उन्होंने 'ट्रंक' खोलकर दो सौ रुपये निकाले और विपिन के हाथों में रखकर चारपाई पर बैठ गयीं।

विपिन धीरे से बरामदे वाले घर में गया। उसने अपने 'मनीबेग' से सौ-सौ रुपये के दो नोट निकालकर सभी रुपयों को एक काग़ज़ में लपेट लिया। पुलिन्दे को अपने कुर्ते की जेब में डालकर वह बाहर आया और कनिया से बोला—

''भाभी, दरवाज़ा बन्द कर लीजिए।''

कनिया उसे देखती रहीं। वह अपनी चारपाई पर जाकर बैठा तो कनिया ने दरवाज़े बन्द कर लिये।

''क्यों, तुमने खाना नहीं खाया था क्या?'' बुझारथ बाबू अभी भी जग रहे थे।

''नहीं, भूख नहीं थी। ज़रा देर से खाने की आदत है।'' उसने धीरे से कहा और चारपाई पर लेट रहा।

चबूतरे पर कई चारपाइयाँ पड़ी थीं। प्राय: सभी लोग सो गये थे। एक अजीब सन्नाटा चारों ओर छा गया था। दूर रेलवे लाइन पर किसी

गाड़ी के जाने की खड़खड़ाहट अँधेरे में गूँजती रही, जैसे गाड़ी पटरी पर न चलकर, गाँव को बीचों-बीच चीरती हुई चली जा रही है। धुप् सन्नाटे में कभी-कभी हवाओं से चौंककर कुत्ते भौंक उठते। एक की आवाज़ पकड़कर दूसरा किसी गली में भौंक पड़ता। रिरियाहट का ताँता बँध जाता।

चाँदनी में सोया सीवान सिहर जाता। भूखे-प्यासे सियार हुवाँ-हुवाँ करके चिल्ला उठते। एक क्षण के बाद फिर वही दमघोंट सन्नाटा।

विपिन ने सोने की बहुत कोशिश की, पर सो न सका। रह-रहकर उसकी आँखों में आँसुओं से तर पुष्पी की आँखें नाच उठती थीं।

तब माई जीवित थी। करैता की छावनी इस तरह मुरदों का घर नहीं मालूम होती थी। सुबह से शाम तक चहल-पहल रहती। बखार-वर से अनाज निकालकर आँगन में, चबूतरे पर, ऊपर की छत पर फैलाया जाता। जाड़ों में छावनी के पूर्वी खंड में तीन-तीन ढेकियाँ चलतीं। उनकी 'ढेचुंक्-ढेचुंक्' आवाज़ मुँह अँधेरे भोर से रात ढले तक गूँजती रहती। गाँव के बनियों की दूकानों पर चीनी की मिठाइयाँ, ककनी, जलेबी और रेवड़ियों की परातें भरी रहतीं। बीरा गमछे में अनाज की मोटरी बाँधकर विप्पी को कन्हैयाँ लादे दूकानों पर मँडराया करता।

पुष्पी की माँ यानी 'चचिया' रोज़ छावनी में आतीं। दिन भर यहीं पड़ी रहतीं। उन्हें कोई बँधा काम नहीं करना था। माई जो कह देतीं, चचिया उसी काम में लग जातीं। कभी ढेंकी के पास बैठकर मजूरिनों की निगरानी करतीं। कभी आँगन में कच्ची मटर की छीमियों से दाने निकालतीं। कभी कनिया के साथ सोंठ के लड्डू बनातीं। कभी दो-तीन महीने की शीला को उबटन से मलतीं-घँसतीं। सैकड़ों काम थे चचिया के। माई चचिया को सगी बहन जैसा आदर देतीं। और चचिया थीं कि 'मलकिन' के लिए जान देने को तैयार रहतीं।

पुष्पी उन दिनों कुल तीन-चार बरस की रही होगी मुश्किल से। गोरी चिट्टी, थोड़ी थुल-थुल। उसका सिर खरबूजे की तरह एकदम गोल था। बादामी रंग के पीले मुँह में उसकी साफ उजली आँखें खरबूजे के

काले बीज की तरह जड़ी हुई लगतीं। वह चुपचाप माई की चारपाई का गोड़ा पकड़कर खड़ी हो जाती। कुछ न कहती। उसकी आँखों की काली पुतलियाँ बड़ी तेज़ी से पलकों के कोनों में खिंच-खिंच जातीं। माई शायद इन आँखों की भाषा पढ़ लेती थी। क्योंकि ज्योंही पुष्पी उनके सिरहाने खड़ी होकर आँखें मुलकाती, त्योंही माई कनिया को हाँक देकर बुलातीं।

"बहू, ज़रा पुष्पी को कुछ दे दो 'खराई' मारने को।"

कनिया उसकी बाँह पकड़कर भंडार में ले जातीं। उसकी मैली कुर्ती की जेब में चिवड़ा और रेवड़ियाँ भर देतीं। पुष्पी मुँह में रेवड़ी चुराये, गाल फुलाये, एक हाथ से कुर्ती की जेब दबाये, छावनी से निकलकर गलियों में गुम हो जाती। विप्पी ने उसे कभी कुछ बोलते नहीं सुना था।

शीलू कुछ बड़ी हो गयी थी। उसे गोद में उठाना अब अच्छा लगता था। विप्पी उसके खटोले पर बैठकर उसे हँसाता, चिढ़ाता। शीलू बिना दाँत का पोपला मुँह खोलकर हँसती। हाथ और पैरों को हिला-हिलाकर अपनी अनबोल खुशी जाहिर करती।

"बचिया मेरी है।"

विप्पी मुड़कर देखता तो खटोले का गोड़ा पकड़े पुष्पी खड़ी होती, जैसे वह सुबह माई के पास खड़ी होती है। वह चुपचाप शीलू को देखती रहती। कुछ कहा है उसने, उसका उत्तर मिलना चाहिए, यह परवाह पुष्पी को न होती।

"धेत्त्, भाग यहाँ से।" विप्पी डाँटता। "बचिया इसकी है। आयी झूठी कहीं की। भाग नहीं झोंटा पकड़ कर झोंक दूँगा।"

"मौसी से पूछ लो, कह रही थीं कि बचिया मेरी है।" वह अपना गोल मुँह उसी तरह से निधरक उठाये कहती।

विप्पी को इस ज़रा-सी लड़की की शोख़ी बहुत बुरी लगती। वह पुष्पी के हाथ से शीलू के हाथ छुड़ा देता। तनिक भी विरोध होता तो एक झटका देता और पुष्पी ज़मीन पर धड़ाम से चित्त।

"पें-पें-पें-पें....।" चुप रहेगी, तो चुप, जैसे मुँह में जबान ही नहीं है। और जब चिल्लाएगी तो सारा घर सिर पर उठा लेगी।

"क्या हुआ रे पुष्पी !" माई उसे उठाते हुए बोलतीं, "किसने मारा तुझे?"

"इछ्‌ने।" वह आँसुओं और धूल से सने हुए गालों को गुस्से से फुला-फुलाकर बोलती।

"अच्छा जाने दे। आ, चल भीतरी खंड में चलें।"

वह एक हाथ से माई की धोती थामे, दूसरे से आँसू पोंछती, उनके पीछे-पीछे लुढ़कती चल देती। एकाध बार मुड़कर पीछे देखती तो उसकी आँखें गुस्से से लाल होतीं, चेहरा रोष से खिंचा होता। एक चुनौती उसके चेहरे पर मँडराती होती—अब तो डाँटो, आओ भोंको तो मुझे....मलकिन मौसी ऐसा थप्पड़ लगाएँगी कि हाँ....।

"क्यों मौसी।" वह आँगन को पार करती हुई पूछती—"बचिया मेरी है न ?"

"हाँ हाँ, तेरी ही है। आ चल" मलकिन को और भी बहुत से काम थे।

पुष्पी आश्वस्त हो जाती। भीतरी खंड में जाते-जाते वह मुड़कर विपिन की ओर देखती। कुछ कहने को होंठ थरथराते रहते।

चचिया को तो जैसे पुष्पी के बारे में कुछ सोचने-गुनने की ज़रूरत ही नहीं रही। जब मालकिन बहिन जी ने खुद पुष्पी को घूरे से उठाकर गोद में लगा लिया तो अब क्या करना-धरना रह गया उन्हें। वह छावनी को अपने घर जैसा ही समझतीं। सुबह से शाम तक अनाज-पानी उठाने-रखने में लगी रहतीं। पता नहीं पिनपिनी पुष्पी इस बीच कितनी बार रोयी-हँसी, लड़ी-झगड़ी, विपिन के हाथों पिट-पिटाकर कुट्टी करती रही। कितनी बार उसकी आँखें गुस्से से सूजीं। कितनी बार उसने मौसी का आँचल पकड़कर विपिन की शिकायत की। पर अचानक एक दिन विपिन ने उसके होने का अनुभव किया तो उसे बड़ा अचंभा हुआ कि पुष्पी कितनी बड़ी हो गयी है। विपिन जब क़स्बे के स्कूल से घर लौटता तो चचिया के बोलने के पहले पुष्पी लोटा और गिलास धोकर पानी ले आती और कनिया से पानी पीने के लिए कुछ माँगकर लाती। कटोरे में सोंठ की मिठाइयाँ या कभी चिवड़ा या कभी और कुछ लेकर वह चुपचाप विप्पी के पास खड़ी हो जाती।

"बबुई तो तप कर रही है चाची।" कनिया मुसकुराकर चचिया से कहतीं।

"कैसा तप कनिया ?"

"देवर को बरने की मनौती मान रही हैं। देखती नहीं। विप्पी को नाश्ता-पानी देने में कितनी खुशी होती है इन्हें। एक पैर पर खड़ी रहती है बेचारी।"

पुष्पी के चेहरे पर साँझी सूरज मुट्ठी भर अबीर बिखेर देता। उसके छोटे-छोटे गाल लाज से थरथरा उठते। वह कटोरे को विप्पी के पास ही चारपाई पर रखकर दूसरे खण्ड में भाग जाती।

"तप करने से कहीं आसमान का तारा हाथ आता है बेटी।" चचिया अपने काम में वैसी ही लगी रहतीं। "पहले तो हमेशा लड़ा करती थी बहिन जी से। रोज 'बचवा' की शिकायत करती रहती थी। अब जाने कैसी गऊ हो गयी है। विप्पी स्कूल रहते हैं तो दिन भर छावनी की चरनी पर बैठी क़स्बे की राह पर नज़र बिछाये रहती है।"

कनिया आगे कुछ न कहतीं। चचिया और सास के बीच बहनापा था ज़रूर, पर इसे कौन नहीं जानता था कि मालिक काका अपने असामी और सीरवाह की बेटी से बेटे का ब्याह कभी नहीं करेंगे। कनिया एकदम चुप हो जातीं।

और तब, अचानक एक दिन जाने कहाँ से हवा का एक तेज़ झोंका आया और दीये की लौ काँपकर बुझ गयी। माई नहीं रही। मलकिन की मौत ने बखरी को वीरान कर दिया।

विप्पी की सारी ज़िदें सो गयीं। चचिया का बहनापा उजड़ गया। पुष्पी की मौसी उसके मासूम हाथों से आँचल छुड़ाकर चली गयीं। कनिया को तो लगा जैसे उनके चारों ओर आशीष की छाया की तरह मँडराने वाली दीवालें ही धसक गयीं। मलकिन बुझारथ को नारून का

फल कहती थीं, सुन्दर पर विषैला। कनिया के दुःख को वे खूब समझती थीं। किसी से उन्होंने बुझारथ के बारे में कुछ न कहा। कनिया शीला और बुट्टन की दुनिया में अपने को भुला सकीं तो केवल सास की ममता के कारण ही। वरना कनिया के बाप ने जाने कभी बेटी को 'नीचों की छाया' से दूर कर दिया होता। पर वे एकदम से अड़ गयीं। वे बीमार सास को छोड़कर नइहर नहीं जाएँगी। बाप ने बेटी का मुँह न देखने की क़सम खा ली। समझ लिया कि तारा जनमते ही मर गयी।

कनिया ने बाप के रिश्ते का धागा तोड़ लिया, पर वे सास से रिश्ता न तोड़ सकीं। बुझारथ से उन्हें घृणा थी, पर काली रात में जब बच्चे सो जाते और कनिया के चारों तरफ़ अकेलेपन की डरावनी छायाएँ नाचने लगतीं, वे रातें रो-रोकर बिता देतीं। उनकी सिसकियों की आवाजें कोई न सुन पाता। आँसुओं से तर तकिये पर सिर धरे जब वे अपनी हालत पर सोचते-सोचते बेहोश हो जातीं, तो उन्हें लगता कि उनके बालों को कोई अपनी हथेली से सहला गया है। कोई पैताने रखी रजाई को खींच कर उनकी और बच्चों की देह पर डाल गया है। कनिया उस दुःख भरी बेहोशी में कुछ जान न पातीं। उन्हें किसी चीज़ की याद न रहती; पर सोकर उठने पर भी वे सास के पैरों की आहट भुला न पातीं। अइय्या को नींद नहीं आती।... जब तक कनिया सो नहीं जातीं, अइय्या बेचैन बिस्तरे पर लेटी जागती रहती हैं। वे जब तक उठकर देख नहीं लेतीं कि कनिया सो गयीं, अइय्या को नींद न आएगी। इसीलिए, कनिया लेटते ही आँखें मूँदकर सोने का बहाना करती रहतीं, पर अब तो अइय्या भी न रहीं।....मलकिन का काम बीत गया तो कनिया जैपाल सिंह से कहकर मीरपुर चली गयीं, क्योंकि उन्हें विश्वास न था कि अइय्या के न होने पर वे कभी छावनी में एक पल भी अपने तिरस्कार का दुःख भुला कर सो पाएँगी।....

विप्पी पढ़ने के लिए शहर गया। कनिया मीरपुर गयीं। अइय्या ऊपर वालों की प्यारी बनीं। चचिया और पुष्पी का सहारा ही टूट गया।

जब छावनी में औरतें ही नहीं रहीं तो गाँव की औरतों के आने-जाने का काम ही क्या था।

मरते वक़्त भी मलकिन को पुष्पी भूली न थी। उन्होंने उसे अपनी चारपाई के निकट बुलाकर सिरहाने से सोने की लाकेट निकालकर पहनाया था और उसके मुख को चूम लिया था। यह लाकेट मलकिन के भाई ने डोला उठते वक़्त बहिन के गले में डाल दी थी। मलकिन इसे मायके की सबसे प्यारी निशानी समझती थीं और मरने के एक घंटा पहले तक वे उसे अपने से कभी दूर न कर सकीं। उस समय मलकिन की चारपाई के पास चचिया भी बैठी थीं। उसकी आँखों में आँसुओं का उफ़ान आ रहा था।

"मैं पुष्पी के लिए कुछ भी न कर सकी बहिन।" मलकिन की आँखें सजल हो गयी थीं। "चाहती तो थी इसे अपने हाथों ब्याहकर डोली में बिठाऊँ, पर भगवान् को यह मंजूर न था।"

मलकिन पुष्पी को वैसे ही छाती से लगाये उसके बालों को सूँघती रहीं। चचिया अपने को रोक न सकीं और ज़ोर से हिचक कर रो पड़ीं। कनिया उन्हें पकड़कर दूसरे घर में ले गयी थीं। और आज चचिया के घर क़ुर्की है। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा?

विपिन आगे कुछ न सोच सका। उसके मन में कोई चीज़ नम और घनी हवा के दबाव की तरह उफन रही थी। वह यदि अपने को सँभाले न रहता तो शायद उसका सारा शरीर काँप-काँपकर टूटने लगता। उसकी हिचकियों की आवाज़ छावनी पर सोये लोगों को अजीब परेशानी से भर देती। तूफ़ान थमा तो आँखों से गरम आँसू की धार उमड़ पड़ी। तकिये की पर्त गीली हो गयी। आँसू की नमी गालों को छूने लगी। अपने ही आँसुओं की तरावट उसके शरीर से सारी पीड़ा का विष खींचकर उसे हलका कर रही थी। विपिन इस राहत देने वाले आँसुओं की फूल-चादर में अपने को ढँककर जाने कब सो गया, उसे मालूम भी न हुआ।

● ●

सात

चारों ओर फैला वातावरण क्या सचमुच निर्लिप्त शून्य ही है ?

ऐसा होता तो जग्गन मिसिर उस दिन सुबह उठते-उठते ही इतना उदास क्यों हो जाते। मिसिर तालाब से मुँह-हाथ धोकर लौटे, तो मन ऐसा अलसाया कि अखाड़े में उतरने की तबीयत ही नहीं हुई। वे चबूतरे पर चढ़े। धोती-कुर्ता उतारकर लँगोट भी लगा लिया, पर फावड़े से अखाड़े की मिट्टी खोदकर उसमें लोट-पोट करने की इच्छा ऐसी मुरझायी कि धसककर मेड़ पर बैठ गये।

"का मिसिर चाचा।" सिरिया चबूतरे पर चढ़ते हुए बोला—"आज ई अलसेटी कैसी ? जे बा से तबीयत तो ठीक है न ?"

जग्गन मिसिर हल्के मुसकराये। सिरिया को देखकर मिसिर को हमेशा ही गुस्सा आ जाता है। गुस्सा कहना शायद ठीक न होगा। गुस्सा बहुत पहले आता था, अब तो उबकाई आती है। गुस्सा नहीं कर सकते। उसे बरज़ोरी घोंटना पड़ता है। इसी से शायद उबकाई आती है। गाँव-घर का मामला है। मिसिर का वश चलता तो जाने कब से अखाड़े पर उसका

आना बन्द कर देते। मना नहीं कर सकते, इसलिए गुस्सा आता है। गुस्सा नहीं कर सकते, इसलिए उबकाई आती है। और आज मिसिर का मन उदास है। इसलिए वे उबकाई ले आना भी नहीं चाहते। इसलिए वे हल्के मुसकराये। उनकी मुसकराहट बड़ी फीकी और बेबसी से भरी हुई थी।

"आओ सीरी !" वे बोले और अपनी रानों पर रंदा देने लगे।

"तबीयत ठीक है न ?" सिरिया अपना गमछा रखकर कुर्ता निकाल रहा था।

"ई साला नहीं मानेगा।" मिसिर भुनभुनाये—"बिना बात-की-बात में ही इसे रस आता है।"

मिसिर की रंदेबाज़ी तेज़ हो गयी थी। वे इस महत्त्वपूर्ण काम में अपनी घोर व्यस्तता के बहाने सिरिया की बात अनसुनी करने की कोशिश कर रहे थे।

"आज तो धरमू सिंह के यहाँ कुर्की है।" सिरिया लँगोटे के पछोटे को दाँतों से छुड़ाकर पीछे कमर में खोंसते हुए बोला—"जे बा से इस गाँव में अनियाव के ख़िलाफ़ बोलनेवाला अब कोई नहीं रहा। ऐसे सब लोग बड़ी मरदई दिखाते हैं। बाक़ी असल मौक़े पर ज़बान बन्द हो जाती है।"

"तुम तो हो अनियाव के ख़िलाफ़ बोलनेवाले। तुम्हारी ज़बान काहे बन्द हो रही है ? जाकर बोलो। यहाँ सटर-सटर बतियाने से क्या फ़ायदा ?" मिसिर ने कहा और अपनी जाँघों का मुआयना करते रहे।

सिरिया ने फावड़ा उठा लिया। अखाड़े की मिट्टी खोदने लगा।

साढ़े सात बजते-बजते नगाड़े की आवाज़ गाँव की गलियों में घुमड़ने लगी। अजीब क़िस्म की लगती है यह आवाज़ भी। शादी पर भी नगाड़े बजते हैं। नाच में भी। मातापुजैया पर भी। पर कुर्की के नगाड़े की आवाज़ ऐसी लगती है, जानो पहाड़ी से कोई पत्थर लुढ़क रहा है। उसकी चपेट में फलों-फूलों भरे मासूम पौधे पिसते चले जा रहे हैं। गलियों के

कंकड़ छोकरों के पैरों से खड़खड़ा उठते। गन्दी क़मीजें, फटे-पुराने जाँघिये पहने, जिनसे बड़ी मुश्किल से देह ढँक पाती, आपस में धींगा-मुस्ती, लड़ाई-झगड़ा करते छोकरे नगाड़े की आवाज़ के साथ इस तरह बहे चले जाते गोया कहीं ख़ुशी की मिठाइयाँ बँटनेवाली हैं।

"रे चरना! बे कनचिप्पा!! साला डुगडुगी तो क्या बजा रहा है, किसी को कुछ समझता ही नहीं। यों अकड़कर चला जा रहा है, जैसे बैंड बाजा का बिगुलची हो। कब से पूछ रहा हूँ कि यह बिना मौसम की शहनाई काहे की बजाई जा रही है; पर यह गुलमवाँ का नाती है कि एक छिन रुककर जवाब तक नहीं देता।" वंशी काका अपनी दालान के चबूतरे पर छोकरों की ओर मुंह करके बड़बड़ा रहे थे।

"का हो बंशी भाई! किसको झाड़े जा रहे हो? महाबीर सामी क़सम तुम्हारी सिनियरी नहीं गयी। बाह बा, क्या हाड़ दिया था गोसैयाँ ने तुम्हें भी।" हरखू दादा ने हथेली में रखी सुरती पर अँगूठे का टिन्ना देते हुए कहा।

"अरे हरखू सरदार! मैं तो इस चरना से पूछ रहा था कि साले ई बैंड बाजा काहे बजा रहा है। पर गुलमवाँ का बाप कुछ सुनतै नहीं। गन्धी राज है न। डोम-चमार तो किसी का भरम ही नहीं खाते। न सरम न लिहाज़"—वंशी चाचा ज़माने से एकदम निराश होकर बोले: "जाने क्या-क्या होगा इस राज में।"

"इसे बैंड बाजा ही जानो बंशू भाई।" हरखू सरदार बड़े गर्व से बोले: "हम तो समझाकर थेथर हो गये। धरमू भाई ने रुख ही नहीं मिलाया। ज़मींदारी चली गयी तो लोग समझ गये, परजा का राज हो गया। आ गयी न कुर्की। अब दिखाओ परजा का राज। सरकारी कुर्की है। छाजन में एक नरिया पटरी भी न बचेगी, हाँ। महाबीर सामी क़सम वो तो बुझारथ बचवा ने रामनवमी का त्योहार बरा दिया। नहीं गवर्नमेंएट क्या बरत-त्यौहार देखती है? अरे, रेलगाड़ी है भाई, जो भी पड़े लैन में चीर के रख दिया। कहो बंशू भाई झूठ कहूँ तो जो सजाय चोर की वह हमारी। कहो न।"

"अच्छा तो धरमू की कुर्की है?" बंशी काका पुराने दाँतों को थोड़ी हवा दिखाकर बोले: "जैसी करनी वैसी भरनी। नमक हराम कहीं का। जैपाल सिंह के जमाने में धरमुआ के सभी प्रानी छावनी में डटे रहते थे। खाना-पीना, सब वहीं होता था। दुःख-सुख सबमें बड़े ठाकुर उसके सर पर छाया किये रहे। माँ मरी तो धरमुआ ने कार-परोजन के लिए तीन सौ रुपये कर्ज लिया। अब देने की बारी आयी तो साले की नानी मर गयी। मुक़दमा लड़ेगा। हुँह, पाया न मुक़दमा का मज़ा। अब जो है सो बनाओ परजा का राज, लो।"

नगाड़ा डम् डम् की आवाज़ की लकीर खींचता गलियों में घूम रहा था। दरवाज़ों के भीतर से औरतें डरती-डरती इस अशुभ बाजे की ओर देखतीं। फिर दरवाज़ा बन्द कर लेतीं कि कहीं कोई उनके बदन की मैली पेबन्दों से भरी साड़ी न देख लें।

डम् डम्, डम् डमर डमर डम्।

आवाज़ गाँव की गलियों में घुमर रही थी। यह आवाज़ कितनी नाचीज़ है। न क्रम, न लय, न मिठास, न आकर्षण। कुछ भी तो नहीं है इसमें। पर गाँव में विद्यमान कोई भी नहीं, है ऐसा, जो दरवाज़े से, बरामदे से, आँगन या छज्जे से इस आवाज़ को सुनकर चौंकता नहीं। चौंककर इसके अर्थ पर सोचने की फिकर कितनों को होती है। एक कुतूहल, एक तमाशा सबको अपनी ओर खींचे जा रहा है। लोग उझक-उझक कर जुलूस में जा मिलते हैं।

एक ग़रीब परिवार के उजड़ने का दर्द अनुभव करना शायद ऊपर-ऊपर की बनावटी बात है। अपने जीवन की नीरसता यदि किसी दूसरे की व्यथा के भीतर से ही कम होती तो ऐसा अवसर भी छोड़ने को कोई तैयार नहीं। यही मनुष्य की नियति है।

"गरीब का घर जरे, गुंडा हाथ सेकैं।"

नगाड़े के पीछे-पीछे चलते तमाशबीनों के शोर-शरापा, गौगा-घमरौल से परेशान होकर दयाल महराज अपनी गाय को केहुनी से मारते हैं "साली, उधर क्या ताकती है ? जहाँ चार आदमी देख लिया भड़कने लगती है।"

दयाल महराज अचानक चिढ़ गये थे। लगता है विपिन बाबू भी दग़ा दे गये। कितनी आशा लेकर विचारी गयी थी उनके पास। इस दुनिया में कोई किसी का साथी नहीं।

दयाल पंडित ने चरनी पर रखे गमछे को उठाया और कंधे पर लटका लिया। नगाड़े की आवाज़ गलियों में निरन्तर मँडरा रही थी। अब उसके साथ ही साथ तमाशबीनों की हरक़त, गलियों से उनकी आमदरफ्त कंकड़ियों पर जूतों की रपटन से उत्पन्न खटर-पटर ने गाँव की सदाबहारी समाधि को पूर्णतः भंग कर दिया था।

घर में आकर दयाल महराज एक क्षण चारपाई के पास खड़े रहे। उनकी बूढ़ी माँ आँगन में बैठी बरतन धो रही थीं।

"गैया सिवान में गयी ?" बुढ़िया दयाल को सामने देख चिल्ला कर बोली।

"नहीं।" दयाल ने कहा।

"तो ताकते रहना। नहीं दूर चली जायेगी।"

"बहिरी अपने धुन में ही लगी रहती है।" दयाल भुनभुनाये—"नहीं गयी, नहीं गयी।' वे चिल्ला कर बोले—"नहीं जायेगी।"

"हाँ। जरा खियाल करना।" बुढ़िया सन्तुष्ट होकर कराही को उबसन से रगड़ने लगी।

"बहरा होना भी कितना बढ़िया है।" दयाल महराज अचानक बहुत खुश हो गए। "इसको कुछ नहीं मालूम। इसने डुगडुगी की आवाज़ भी नहीं सुनी। इसको पता ही नहीं कि किसी का घरबार नीलाम हो रहा है।"

मगर दयाल महराज तो बहरे नहीं हैं। उन्होंने डुगडुगी की आवाज़ भी सुनी है। उसका हल्का-हल्का अर्थ भी समझा है। मन थोड़ा भारी भी हो गया है। पर चुपचाप यहाँ खड़े रहना उनको भी पसन्द नहीं।

"चलें देखें।" वे गमछे को बेमतलब इस कंधे से उतारकर उस कंधे पर रखते हैं। फिर बुढ़िया की ओर चिल्लाते हैं—"जा रहा हूँ।"

"ख़राई होगी। दाना ले लो।"

दयाल उसकी बात सुनी-अनसुनी कर गली में उतर गये।

●

मिसिर के अखाड़े पर भीड़ बढ़ गई थी। पहलवान लोग अखाड़े में उतर गये थे। पर मिसिर वैसे ही मेंड़ पर बैठे रहे।

तभी सामने की गली से डुगडुगी की आवाज़ उभरने लगी। साथ-साथ लड़कों का हुजूम शोर करता, नारे लगाता चल रहा था।

"नहीं चलेगी, नहीं चलेगी। गुंडा-गर्दी नहीं चलेगी।"

"ए टुन्नू बाबू, ए दुग्गा। तुम लोग कतार बिगाड़ दोगे तब तो सारा मजा ही चौपट हो जायेगा। ठीक से चलो भाई।" लड़कों के जुलूस के बग़ल में हरिया मुसकराता हुआ पतलून की जेब में हाथ डाले चल रहा था। वह लड़कों का नाम ले-लेकर शाबाशी देता और ठीक से क़तार में चलने और एक साथ नारे लगाने की हिदायत देता। यह सब कुछ करके वह अपनी पतलून में इस तरह सिमट जाता गोया वह इस जुलूस का सिर्फ़ तटस्थ द्रष्टा मात्र है, उससे इन चीजों से भला क्या मतलब।

"गुंडागर्दी !" मिसिर को हँसी आ गयी।

हरिया को देखकर ही मिसिर की भौंहें खिंचने लगी थीं। अभी चार-पाँच दिन भी नहीं हुए कि इसने रामवनी के मेले में ऐसा हुड़दंग मचाया कि जाने कितनों की जान जोखिम में पड़ गयी। देस-दिहात में गाँव की बेइज़्ज़ती हुई सो अलग से। आज वही हरिया दूसरों की गुंडागर्दी के ख़िलाफ़ जुलूस निकाल रहा है। नारे लगवा रहा है।

"आजकल साले नारे भी खूब निकले हैं। गुंडे गुंडागर्दी के खिलाफ़, बदमाश बदमाशी के खिलाफ़, चोर चोरी के खिलाफ़, और जुल्मी जुलुम के खिलाफ़ गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाते हैं।" मिसिर सामने बैठे लोगों को सुना-सुना कर बोलते रहे—"संग-संग हल्ला करने के लिए कुछ भाड़े के टट्टू और कुछ स्कूली लौंडे बटोर लेते हैं। ऐसी ऊधम मचती है कि पता ही नहीं चलता कि सफ़ेद क्या है और काला क्या है।"

"हरिया है मिसिर चाचा।" सीरी मास्टर को मिसिर की बातों में अपने मित्र के प्रति अभिनन्दन का भाव नज़र आया और वे उत्साहित होकर बोल पड़े—"ई साला हर चीज़ को ऐसा रोचक बना देता है कि जे बा से बिना तमाशा का तमाशा खड़ा हो जाता है।"

सामने चबूतरे पर सिरिया, छबिलवा को खड़ा देख हरिया जुलूस में से निकलकर इधर आ गया।

"का हो सीरी मास्टर।" वह चहक कर बोला—"अरे भाई पहलवानी ही करते रहोगे कि मोर्चे पर भी चलोगे ?"

"कैसा मोर्चा ?" सीरी मास्टर धोती पहनते हुए बोले—"ई जुलूस कहाँ ले जा रहे हो। जे बा से तुम भी गोगई महराज के चेला हो गये का ?"

"ई गोगई-सोगई जैसे चापलूसों और गांधी टोपी वाले चोरबाज़ारियों का जुलूस नहीं है सीरी मास्टर। ई अगिया बैतालों की सेना है। हाँ। अरे आज धरमू सिंह की कुर्की हो रही है। उहाँ नहीं चलोगे क्या ?"

"वहाँ जाकर क्या करेंगे ? जे बा से ग़रीब आदमी का मददगार कोई नहीं है इस जमाने में।"

"सुरजू सिंह तो हैं।" मिसिर को लगा कि उनकी जाँघों पर झुरझुरी फैल रही है। सो उन्होंने रंदे तेज़ कर दिये।

हरिया उनकी ओर देखकर कुटिल ढंग से हँसा। सीरी मास्टर की ओर कनखी ताकते हुए बोला—"अरे इतने धरमराज हैं इस गाँव में। कोई न कोई तो मदद करेगा ही। बड़े-बड़े लट्ठधारी सूरमा हैं। क्या उनके देखते-देखते एक ग़रीब आदमी को देश-निकाला हो जायेगा ?"

सिरिया धीरे से मुस्कराया—"अब तो देखना ही है। जे बा से कौन कैसा सूरमा और धरमराज है, सामने ही आ जायेगा।"

"सुरजू सिंह तो वहाँ पहुँच गये होंगे। जाकर वहीं जै-जैकार करो। यहाँ बेमतलब की बातें करने से क्या फ़ायदा।" मिसिर सिरिया की ओर एकटक ताकते हुए बोले—"तुम लोग भी समझते हो कि चार आदमी गर्दन में गर्दन फँसाकर घुसुर-फुसुर बातें कर लें तो बहुत बड़ी हलचल मच जायेगी ज़माने में। है न ? ऐसे-ऐसे पाल्टीबाज जाने कितने जन्मे और कितने बिला गये इसी गाँव में। पाल्टी नहीं लड़ती जुलुम के खिलाफ, आदमी लड़ता है। आदमी अगर खुद स्वार्थी, बदमाश और लुच्चा होगा तो वह राम की ओर से भी लड़े तो उन्हें भी रावण बनाकर दम लेगा, हाँ।"

"आप तो मिसिर चाचा, हर बात में लंघी ही मारते हैं।" सिरिया मिसिर से वाद-विवाद नहीं करना चाहता। ऐसे 'दोखी' आदमी से बच कर ही रहना ठीक है। इसलिए उसने चेहरे पर काफी उदासी चढ़ाकर कहा—"आप भी मिसिर चाचा झूठ-मूठ नाराज हो जाते हैं। जैसे कि हमी लोग कुर्की करा रहे हैं। हम लोग नहीं चाहते क्या कि जे बा से बुझारथ सिंह की पगड़ी उछल जाये ? चार सौ रुपये की बात है। अगर सुरजू भाई फेंक दें कुर्क अमीन के मुँह पर तो मज़ा आ जाये। धीरे-धीरे करके धरमू चाचा रुपये भर देंगे उनका। है कि नहीं ?"

"मैं तो इसे ठीक नहीं मानता।" मिसिर बोले—"सुरजू और बुझारथ एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। जैसे नागनाथ वैसे साँपनाथ। तुम लोगों को लगता होगा दोनों में फ़रक़। देखने में, ऊपर-ऊपर से दोनों एक दूसरे के दुश्मन लगते हैं। मगर इनका यदि कोई सबसे अधिक नज़दीकी है तो जान लो, ये ही हैं खुद के सबसे नज़दीकी। मैं यदि धरमू सिंह की जगह होता तो कभी भी सुरजू का एहसान नहीं लेता। दलदल में धँसकर मर जाना कबूल, लेकिन भेड़िये की दुम पकड़कर बाहर आना अच्छा नहीं। एक ही बार जो-कुछ होना है, हो जाय।"

"तो धरमू सिंह क्या उनका रुपया मार लेंगे ? धीरे-धीरे करके दे ही डालेंगे। इसमें एहसान क्या ?" सिरिया बोला।

"कहाँ से दे देंगे ? अरे भाई वे भी तो हमारी-तुम्हारी तरह फ़सल-भेंट पाल्टी वाले ही हैं।"

"ई 'फ़सल-भेंट पाल्टी' क्या होती है मिसिर चाचा ?" छबिलवा ने पूछा।

"अगहन में चार मन धान हो जाय तो ऐसे जुगुत से खरचो-खाओ कि चैत भेंट ले, और चैत में चार मन गेहूँ-चना हो तो ऐसी कंजूसी-कटौती बरतो कि अगहन ठेक जाय। यही है फ़सल-भेंट पाल्टी।" मिसिर हँसे—"इस गाँव में तीन-चौथाई लोग इसी पाल्टी के मेम्बर हैं।"

"चलो जी सीरी मास्टर।" हरिया विरक्त होकर बोला—"यहाँ लेक्चर झाड़नेवाले बहुत हैं। देखो सूरजू सिंह क्या करते हैं ?"

"तो तुम्हीं क्यों नहीं करते कुछ ? पतलून में हाथ डालकर ऐंठते हुए चलते तो ऐसे हो मानों तुम्हारे जैसा शाहखर्च कोई है ही नहीं। चार सौ रुपये ही निकाल दो।" मिसिर ने घृणा से मुँह बिदोर कर कहा।

"होता मेरे पास मिसिर जी तो जाने कब का फेंक दिये होता। अपनी जान के वास्ते गरदन भी कटा सकते हैं। रुपया साला क्या चीज़ है ?" हरिया नौटंकी के मजनू की तरह गरदन पर तलवार चलाने की अदा दिखाते हुए बोला।

तभी तड़ाक् की आवाज़ हुई और वह ज़ोर से 'आह' करते हुए अपना पैर पकड़कर बैठ गया। मिसिर ने चबूतरे पर रक्खी खुरपी खींचकर मार दी थी। खुरपी पाँव के नीचे खुले पैर की एड़ी में धँस गयी थी।

"अरे बाप रे बाप !" हरिया गलगलाते हुए, गुस्से में उबलता-उफनता चिल्लाया—"बड़े धरमराज बनते हैं ससुर। जैसे इन्हें हम जानते ही नहीं। घर में बेवा भौजाई रखे हैं। मोटाई का मंगल गाते हैं। पड़ जाओगे कभी घात में। छठी का दूध याद आ जायेगा। हाँ।"

"फिर कहो कोई गन्दी बात गाँव की किसी बहू-बेटी को और देखो ?"

मिसिर चबूतरे पर चौचक खड़े हो गये थे। "इस बार फावड़े से मारकर टाँग तोड़ दूँगा साले लुच्चा ! उस दिन मेले में छोड़ दिया तो जानते हो तुमसे डर गए ?"

"फूंक दूँगा, फूंक दूँगा।" हरिया हाथ हिला-हिलाकर चुनौती देता बोला—"उसी में साले जर मरोगे। देखो फूंकता हूँ कि नहीं ?"

"चलो फूंको।" मिसिर ने चबूतरे के पास रखी लाठी खींच ली। हरिया लँगड़ाते हुए भागा।

"आओ साले ! आओ। फूंको। मैं कुंजबिहारी नहीं हूँ कि खलिहान फूंक दिया बिचारे का, तो ग़म खा गया। मैं तो तुम्हें हिलने-डुलने लायक ही नहीं छोड़ूँगा।"

मिसिर लँगोटा पहने गली की ओर लपके। सिरिया-छबिलवा ने दौड़ कर उनका रास्ता रोक लिया।

"जाने दीजिये मिसिर चाचा ! जाने दीजिये। साला मुँहफट है। जो मुँह में आता है बक देता है। जे बा से नादान है। माफ़ कर दीजिये।" सिरिया ने मिसिर का हाथ पकड़ लिया। छबिलवा उन्हें पीछे की ओर से पकड़े था। दोनों उन्हें किसी तरह समझा-बुझाकर लौटा लाये। मिसिर चुपचाप धोती-कुर्ता पहनते रहे।

सिरिया-छबिलवा एक क्षण रुक-रुककर उन्हें देखते रहे। फिर चले गये।

●

मिसिर से पूरी तरह लताड़ खाकर हरिया अहाते के बाहर आया था। उस समय वह शर्म, क्रोध और आहत अभिमान के मिले-जुले भावों के बगूले में उड़ रहा था। गली से जाते वक़्त मिसिर की बखरी का फाटक खुला देख वह दालान में हेल आया। एक मिनट तक आँगन में रुककर उसने आहट ली। मिसिराइन शायद रसोईघर में चूल्हा पोत रही थीं। उसने दो-एक बार खँखारकर किसी बाहरी आदमी के आने का संकेत भी

दिया। मिसिराइन रसोई से बाहर आयीं। उनके एक हाथ में माटी-पानी में लिपटा पोतन था।

"चाची, जरा प्यास लगी है।" उसने भोला चेहरा बनाकर कहा।

"वह चौकी के पास लोटा है हरी। उधर गगरी से ढाल लो।" अपना पोतन वाला हाथ दिखाती हुई मिसराइन बोलीं—"हाथ ठीक नहीं है मेरा।"

हरिया ने लोटा उठाया और घायल पैर को घसीटते हुए वेदी पर रखी गगरी की तरफ बढ़ चला।

"तूँ लगड़ा क्यों रहा है इस तरह?" मिसिराइन ने पूछा, "तेरी एड़ी में खून भी चुहचुहा आया है?"

"अब क्या बताएँ चाची....।" हरिया बोला, पर अचानक बीच में ही चुप हो गया।

"बताता क्यों नहीं?" मिसराइन ने फिर पूछा।

"अब बताऊँ चाची तो यहाँ भी बद बनूँ। एक जगह जरा सा मुँह खोला तो टाँग टूटते-टूटते बची।"

"किसने तेरी टाँग तोड़ी?"

"मिसिर चाचा ने। खुरपी खींचकर मार दी। मैंने कुछ कहा भी नहीं चाची। बस इतना ही पूछ दिया कि मिसिर चाचा बारात में मुझे भी ले चलोगे न? बस, इतनी सी बात पर लाल भभूका हो गये। अरे भई जब विवाह ठीक हुआ है तो क्या छुपा रह जायेगा? मुझसे क्या मतलब? छबिलवा कहने लगा कि दक्खिन में कोई गाँव है कोइलर। वहीं का एक ब्राह्मण कल आया था। उसी की दायादी में कोई लड़की है। पाँच सौ रुपया देने का वादा किया है। बस इतनी सी बात है। मैंने पूछ दिया तो उन्होंने खींचकर खुरपी मार दी। अब तुम्हीं कहो चाची, कहीं मेरा पैर कट जाता, तो बैठाकर खिलाते मुझे?"

हरिया धीरे से गगरी का पानी ढाल लाया। मिसिराइन वैसे ही हाथ

में पोतन लिये खड़ी थीं। जैसे उन्हें लक़वा मार गया हो। हरिया ने उनकी ओर कनखी देखा और गटगट पानी पी गया।

लोटा रखकर, हाथ जोड़कर, चेहरे पर घनी दीनता का भाव लिये बोला—"दोहाई, चाची। मिसिर चाचा से मेरा नाम मत कहना। नहीं मेरी गरदन काट देंगे। तुमने पूछा तो मैं कह गया। अब तुम माता समान हो। तुमसे झूठ कैसे बोलता?"

मिसिराइन कुछ न बोलीं। हरिया मुड़ा और तीर की तरह फाटक से बाहर निकलकर गली में खो गया।

थोड़ी देर के बाद मिसिर हाथ से हाथ रगड़कर माटी छुड़ाते आँगन में आये। गगरी से पानी ढालकर हाथ-मुँह धोया।

"अरे सुनती हो। जरा दूध जल्दी दे जाओ मुझे। सुना धरमू सिंह की कुर्की हो रही है। मैं भी देख आऊँ।"

कुछ देर तक कोई आवाज़ न आई। मिसिर मचिया पर बैठे दूध आने का इन्तज़ार करते रहे।

तभी मिसिराइन खौलते हुए दूध की दुधहँड़ आँचल लगाकर दोनों हाथों से उठाये हुए आयीं और मिसिर के ठीक आगे धम्म से पटक दिया। जलता दूध उछलकर मिसिर के पैरों पर पड़ गया।

"अरे बाप रे। तुम भूजोंगी क्या मुझे? अंधी हो गयी हो क्या?" मिसिर गुस्से के मारे काँप रहे थे।

"हाँ, हाँ। मैं अंधी हो गयी हूँ। इसीसे न आँख वाली से विवाह कर रहे हो। देखती हूँ किधर से पाँच सौ रुपिया आता है तुम्हारे कफ़न के वास्ते।"

मिसिर एक क्षण हक्का-बक्का की तरह ताकते खड़े रह गये। "यह सब हरिया साले की करतूत है।" वे भुनभुनाये। "घर फूँका तो नहीं, आग जरूर लगा दी। चलो हफ़्ते भर के लिए हो गयी छुट्टी। दूध तो गया ही। खाना-दाना भी मिलेगा कि नहीं, राम जानै।"

धरमू सिंह के दरवाज़े पर भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। कुर्क अमीन सामने चरनी पर चढ़कर खड़ा हो गया। उसने अपने अधिकार और ताक़त का ऐलान करने के लिए स्टेज ढूँढ़ लिया था। बग़ल में चरना गरदन में टिमकी लटकाये बड़ी तत्परता के साथ खड़ा था। भीड़ में खड़े लोग प्रायः चुप थे। वे एकटक कुर्क अमीन को देखे जा रहे थे। खुदाबक्कस नवजादिक लाल के साथ खड़ा-खड़ा बातें कर रहा था!

"क्यों रे पट्ठे!" कुर्क अमीन ने चरना की ओर उँगली उठाकर कहा—"चारों ओर मुनादी कर आया न?"

"जी हुज़ूर।" चरना हाथ की लकड़ी को नचाते हुए बोला—"चौगिर्द घूम आया सरकार।"

"हाँ भाई, कहीं बाद में कोई यह न कहे कि ख़बर ही नहीं करायी।"

कुर्क अमीन अपने मन को पूरी तरह तसकीन दिलाकर अब पब्लिक की ओर देखने लगे थे।

भीतर धरमू सिंह के घर में बेहद सन्नाटा था। कोने वाले कमरे में वे चारपाई पर निढाल पड़े थे। तेज़ खाँसी से उनका कमज़ोर बदन पूरी तरह निचुड़ जाता। साँस सहज ढंग से आती-जाती रहती है, तो कोई ध्यान भी नहीं देता, पर वही साँस हर बार आते भी जाते भी धरमू सिंह के सारे हक़ को इस तरह कुरेद-खरोंच रही थी कि वे छटपटाते-छटपटाते गठरी की तरह बटुर जाते थे।

चचिया उसी कमरे के दरवाज़े पर बैठी सामने आँगन में देख रही थीं। मौन अडिग-अडोल। छोटा सा घर है। मिट्टी की दीवालें हैं। इस नाटे-ठिगने उदास से लगनेवाले घर के चेहरे पर कभी रोब या ऐंठन या आत्मविश्वास का भाव शायद ही आया हो। छोटे कमरे, लघु आँगन। दीवालें अलबत्ता चिकनी हैं। इनका कोई हिस्सा ऐसा नहीं जिस पर चचिया के हाथ से लेवन-पोतन न लगा हो। चचिया इन दीवालों को वैसे ही देख रही थीं, जैसे कोई माँ अपने बेबस मासूम बच्चे के भूखे शरीर को देखती है। खाना-दाना न सही प्यार से बदन को सहला देने से ही माँ को कुछ न कुछ संतोष मिल जाता होगा।

आज यह उदास भोली-भाली दीवालों और नन्हें-नन्हें घरों का मकान किसी और का हो जायेगा। बीमार पति और जवान लड़की को लिये-दिये मैं किस घाट लगूँगी हे राम!

अचानक चचिया की आँखें छलछला आती हैं। बाहर हल्ला-गुल्ला बढ़ रहा है।

हरिया, सिरिया, छबिलवा और उनके दूसरे समवयस्क युवक खुदाबक्कस वाली क़तार के ठीक सामने आकर खड़े हो गये हैं। उन्हें इस तरह गोल बाँधकर आते देखकर खुदाबक्कस का उत्साह कम पड़ गया। उसके मन में कुढ़न और अपने अकेलेपन के प्रति विरक्ति ऐसी बढ़ी कि वह मुंशी नवज़ादिक की ओर देखकर हँसने लगा।

"यह क्या हर जगह बेमतलब को खीं-खीं करने लगते हो?" मुंशी नवज़ादिक इस संगीन मौक़े पर किसी तरह का छिछोरापन बर्दाश्त करने को तैयार नहीं थे।

तभी सामने से जग्गन मिसिर आये। उन्हें देखते ही हरिया और उसकी गोल के लोग हिलना-डुलना छोड़कर ठोस क़तार की तरह खड़े हो गये। मिसिर ने कनखी से उधर देखा और कुर्क अमीन के बहुत पास चरनी के सामने आकर खड़े हो गये।

चचिया वैसे ही चौकठ पर बैठी गुमसुम पड़ी थीं। बाहर उठता शोर दीवालों को लाँघकर आँगन में टूट-टूट कर गिर रहा था। कुछ भी तो ऐसा नहीं है अपने पास जिसे बेचकर इस बेइज़्ज़ती से बचाव कर सकें। एक से एक बुरे दिन आये। गिरानी में ऐसे मौक़ों की क्या कमी जब लहरों के थपेड़ों से डूबती-उतराती चचिया को मलकिन की दी हुई लाकेट की याद आती रही। पर आज तक उन्होंने लाकेट को अलग करने की बात नहीं सोची। पुष्पी कई बार उसकी याद दिला चुकी है। पर हर बार चचिया भरी-भरी आँखों से उसे निहारकर ही चुप रह गयीं।

कल शाम कुर्की आने की बात सुनकर वे अपने मन को सँभाल नहीं सकीं। हारकर उन्होंने बक्से से लाकेट निकाली और उसे अपने आँचल में छिपा लिया। एक क्षण वे कमरे में रुकी-रुकी किसी अदृश्य आँखों से टकराती रहीं। फिर दीपू सेठ की दूकान की ओर चल पड़ीं। लाकेट का चपड़ा निकालकर दीपू उसे तौल रहा था और चचिया थीं सोचती कि कैसे चपड़ा, सोना, तागा समेटकर भाग चलूँ। गली से किसी के पैरों की मामूली आहट से भी उनके दिल की धड़कनें बढ़ जातीं।

"कुल दो सवा दो भर है पुष्पा की अम्मा। खाद-वाद काटकर मैं ढाई सौ रुपया दे सकता हूँ।" दीपू ने उनकी आँखों में ताकते हुए कहा।

"क्या ?" चचिया की आँखें फटी की फटी रह गयीं—"खाली ढाई सौ।"

"ऊ भी मैं तुम्हारा मौक़ा देखकर कह रहा हूँ ठकुराइन। नहीं तो दो सौ से अधिक देने में भी सरासर घाटा है हमको।"

चचिया ने झपटकर लाकेट ले ली थी और गलियों में से बेतहाशा दौड़ती-भागती घर आ गयी थीं।

"तो तू क्या समझती थी कि यह लाकेट एक हजार की है ?" कोई उनके कानों में भुनभुनाया—"मलकिन की ममता और प्रेम को तौलवाने चली थी।" चचिया इस तरह दुबक गयी थीं गोया अपनी परछाईं से ही डर रही हों।

तभी रसोईघर से हाथ में पोतन लिये पुष्पी निकली। माँ को सामने चौकठ पर बैठी देख वह धीरे से मुसकरायी। हाथ-पैर धोकर वह कोनिया घर में चली गयीं।

"साहबान !!" कुर्क अमीन बड़ी चटक आवाज़ में बोला—"सरकार ने ठाकुर बुझारथ सिंह को धरमू सिंह पर चार सौ रुपये की डिग्री दी है। डिगरीदार को यह भी अख्तियार है कि वह रक़म मुद्दई की ज़र-ज़मीन-मकानात और मवेशियों को नीलाम करके वसूली जाये। तो लगाइये बोली...."

डिम् डिम् डिम् तड़क् तड़क्

तभी धरमू सिंह के दरवाज़े का पल्ला थोड़ा सा खुला। लोगों की आँखें अचानक उस ओर उठ गयीं।

"मिसिर चाचा !" पुष्पी ने सामने खड़े मिसिर को पुकारा।

मिसिर एक क्षण परेशानी की हालत में इधर-उधर ताकते रहे। फिर उन्होंने एक लम्बी साँस ली और दरवाजे की ओर बढ़ गये।

"मुझे बुलाया बेटी ?" उन्होंने पूछा।

"मेरे बाबू की तबीयत बहुत खराब है। इसी से समय पर रुपया नहीं दे सके। ये हैं चार सौ रुपये। आप इन्हें कुर्क अमीन को दे दीजिए और इसकी रसीद दिला दीजिए।

मिसिर ने हाथ बढ़ाकर रुपये ले लिये। वे दरवाजे पर इस तरह खड़े थे कि पब्लिक को सिर्फ़ उनकी पीठ ही नज़र आ रही थी।

"हाँ तो साहब इस गाय की क़ीमत लगाइए।" कुर्क अमीन ज़ोर से चिल्लाया—"ऐ लड़के, बजा तो ज़रा ज़ोर से डुगडुगी।"

मिसिर दरवाजे से धीरे-धीरे डग बढ़ाते हुए चरनी के पास आये।

"चरना !" उन्होंने ज़ोर से कहा—"डुगडुगी बन्द कर।"

"क्या ?" कुर्क अमीन मिसिर की ओर घूरते हुए बोला—"क्यों डुगडुगी बन्द करे ?"

"बात यह है अमीन साहब कि धरमू सिंह की तबीयत बहुत खराब है।"

"सरकार से इससे क्या वास्ता ? कोई बीमार है कि मर रहा है इससे हमसे कोई मतलब नहीं। किसी के बीमार होने से सरकारी फ़ैसले की तकमील नहीं रुक सकती।"

"सरकारी फ़ैसले की ऐसी की तैसी।" मिसिर ज़ोर से चिल्लाये—"ये हैं आपके चार सौ रुपये। सरकार को किसी के जीने-मरने से मतलब न होगा, लेकिन हम गाँव वालों को तो होगा। धरमू सिंह बीमार थे वरना कब का ये रुपये फेंक आये होते।"

"ये बातें पहले करनी थीं।" कुर्क अमीन खौंखिआया।

"क्या पहले और क्या बाद। रुपया रुपया है। आप पूछिये बुझारथ सिंह से कि क्या वे अपने चार सौ रुपये चाहते हैं या गाँव के एक आदमी को बिला वजह बेइज़्ज़त करना चाहते हैं ?"

"बुलाइये, बुलाइये बुझारथ सिंह को।" सिरिया चिल्लाया—"ई कैसा अन्धेर है। वाह रे वाह ! रुपया दे ही रहे हैं जे बा से तो फिर कुर्की कैसी भाई ? क्यों भाइयो, आप लोगों के मुँह पर ताला क्यों लग गया है ? जे बा से ऐसी अन्धेर हो रही है और आप लोग चुप हैं ?"

"गुण्डागर्दी नहीं चलेगी।" हरिया हाथ की मुट्ठी से आसमान में घूँसा मारते हुए चिल्लाया।

"नहीं चलेगी, नहीं चलेगी।" लड़के तालियाँ बजा-बजाकर चीखे।

खुदाबक़्क़स को यह माहौल बिल्कुल नागवार लगा। वह बड़ा परेशान-सा कुर्क अमीन की तरफ़ देख रहा था।

"जाइये, जाइये खुदाबक़्क़स मियाँ।" भीड़ में एक ओर से सुरजू सिंह बोले—"बुझारथ सिंह से पूछ आइये कि क्या मंशा है उनकी ?"

खुदाबक़्क़स वहाँ रुकना चाहता भी नहीं था। वह तुरन्त मुड़ा और छावनी की ओर लपक चला।

सिरिया, हरिया वग़ैरह सुरजू सिंह की ओर गुस्से से देख रहे थे—"यहीं खड़े थे छिपकर। अभी को आवाज़ निकली है ; हुँह !"

खुदाबक़्क़स मियाँ दौड़ते-हाँफते वापस आये। "छोटे सरकार कहते हैं कि हमको सिर्फ़ रुपये चाहिए। धरमू सिंह की कुर्की कोई हम खुशी से नहीं करा रहे थे। मिहरबानी करके अमीन साहब, ज़रा मेरे साथ आइये।"

"हाँ, हाँ, ले जाइये साथ।" मिसिर बोले—"काग़ज़-पत्तर ठीक कराके इसे रफ़ा-दफ़ा कराइये। मुझे फारख़ती-रसीद कब मिलेगी ?"

"अभी हो जाता है मिसिर जी।" खुदाबक़्क़स ने बड़ी नम्रता से कहा और कुर्क अमीन को कन्धे पर हाथ रखकर उसे समझाते-बुझाते छावनी की ओर ले गया।

पब्लिक बहुत उत्साहित थी। आशा से अधिक मज़ा आ गया था।

"गुण्डागर्दी नहीं चलेगी।" हरिया ने मिसिर की ओर कनखी ताका और चिल्लाया।

"नहीं चलेगी, नहीं चलेगी।" लड़के थरथरा-थरथरा कर बोले।

मिसिर मुसकराये और सारा हाल बताने के लिए धरमू सिंह की दालान में हेल गये।

●

वातावरण शान्त हो गया था। गोधूलि बेला की अकुलाहट और धूमिलता अन्धेरे में घुल गयी थी। शाम की सुरमई रोशनी बुझ रही थी। उसका स्थान रात की कालिमा लेने लगी थी। रहस्य और कुतूहल में रँगी चीज़ें अधिक स्पष्ट होने लगी थीं। पूरब तरफ़ आसमान में समकोण पर चाँद उगा था जिसका लाल सिंदूरी गोला बबुआन की छावनी के पूरब तरफ़ फैली हुई तलैया में झलमला रहा था। चैत की चौदस का चाँद इतना उदास शायद ही कभी लगता हो। ऊपर आकर सिंदूरी चाँद उजलाता गया। बिल्कुल सन्नाटे से रँगे सिलेटी लैंडस्केप के ऊपर के रुई के सफ़ेद गाले-सा चाँद अँटका हुआ हो जैसे। उत्तर की तरफ़ धुन्ध की पहाड़ी आसमान से उतर सुदूर हरित वनस्थली में सोई गंगा की धारा में धँसती जा रही थी।

ठाकुर के चबूतरे पर शाम को रोज़ ही जमावड़ा होता है। तरह-तरह के लोग यहाँ बैठते हैं। कोई गप्प हाँकनेवाले, कोई दक्खिन पट्टी के छिपे हुए क़िस्सों का राज़ बताकर वाह-वाही पानेवाले, कोई हाज़िरी बजाकर अपनी वफ़ादारी की जमा-पूँजी को निरन्तर बढ़ाते रहनेवाले, कोई ठाकुर बुझारथ सिंह की शान-शौक़त और दानिशमन्दी की तारीफ़ करनेवाले, कोई ताबड़तोड़ चीलम पर चीलम चढ़ाकर गाँजे की लपट और गन्ध से हवा को बेतरह परेशान बनानेवाले। आज भी यहाँ सभी तरह के लोग इकट्ठा होने लगे थे।

गाँजे की तुरन्त बोझी चीलम को, अपनी जेब से निकाली हुई साफ़ी में लपेटकर मूँछों और होंठों के बीच रखकर, गालों को भीतर सिकोड़ कर, आग को सोख लेने की मंशा से, खुदाबक़्क़स ने ज़ोर का कश खींचा। धुएँ की सरसराहट के साथ ही चीलम का मुँह लाल लपटों से भर उठा। वह धुएँ को घोंटकर एक क्षण चुप बैठा रहा। फिर चीलम से साफी उतार कर उसे बाबू बुझारथ सिंह की ओर बढ़ाता हुआ मुँह से धुएँ का केंचुल उगलकर बोला : "हुज़ूर, बहुत खामोश हैं। कुछ सोच रहे हैं क्या ?"

"नहीं। अरे नहीं खुदाबक़्क़स।" चीलम को अपनी साफ़ी में समेटते हुए बुझारथ ने कहा—"सोचना-ओचना क्या है। आज तो इज़्ज़त धूल में मिल ही गयी।" छोटे सरकार बेहद ग़मगीन होकर कह रहे थे। खुदाबक़्क़स को इस बारे में कुछ कहने-समझाने की हिम्मत न हुई।

●●

आठ

अभी भोर नहीं हुई थी। मगर पूर्वी आसमान में ललछौंहा उजास फूटने लगा था। बीसू धोबी का बेटा सुरजितवा गधे पर लादी लादे गाता हुआ नदी की ओर चला जा रहा था :

कबिरा गरब न कीजिये, इस जीवन की आस।
टेसू फूले चार दिन, खंखर भये पलास॥

—और आज सबको मालूम था कि हरिया कहीं चला गया। कल रात वह अपने 'आन्हर' बाप से लड़ पड़ा। मारते-मारते जोरू की पीठ फुला दी। छिः छिः क्या हो गया था इस छोकरे को। वह तो ऐसा न था। कितना 'जीव-जाँगर' लगाकर गिरहस्थी थामे रहा। बस, जिसे देखो, वही अपने नालायक 'जाँगर-चोर' लड़कों को हरिया की मिसाल दे-देकर साध रहा है। किन्तु यह हरिया ? गधा कहीं का ! आज सबके आदर्शों के कंगूरे टूट गये थे।

अब तो पछुवा हवा की गति तेज़ हो गयी है। बैशाख के शुरू हफ़्ते में ही भयंकर लू चलने लगी। जलती हुई खपरैलों की छाजनें, ऊमस से

खौलती हुई गलियाँ, धूप में चिलचिलाते आँगन के बीच करैता किसी बूढ़े योगी की तरह धूनी रमाये ऊँघता रहता। आस-पास की बावलियों, तलैयों और पोखरों का पानी सूख गया। कीचड़ तक गर्मी की मार से फट गयी है। अभी एक महीने पहले पानी की चादर में हवा की गति पर लहरों की चुन्नट पड़ जाती थी, वहाँ आज सूखी कीचड़ की पीठ पर विभिन्न आकार प्रकार की दरारें तस्वीरों का जाल बिछाये हुए हैं। इन दरारों से मेढ़क और मेगचियों की मासूम प्यास भरी आँखें झाँका करती हैं। लारभरी जीभें निकालकर हाँफते कुत्ते इस सील में आकर बैठते हैं। दरारों से उछल-उछलकर मेगचियों का झुण्ड डरके मारे गिरता-पड़ता दूर किनारे की ओर चला जाता है।

अभी चैती की फसल कटे मुश्किल से एक महीना ही बीता है, पर शायद ही दो चार जन ऐसे हों जिनके चेहरे पर घर में अनाज होने की खुशी दिखाई पड़ती हो। बहुत सा अनाज तो खलिहान से ही पिछले क़र्ज़ की पटाई में और महाजन की उधारी चुकाने में खतम हो गया था। ऐसी सूरत में अधिकतर घरों में जौ चने के सत्तू ने दोपहर के भोजन का स्थान ले लिया था। किसी तरह इस घोल को आम की चटनी के साथ पेट में उतारकर लोग इस-उसके ओसारे में आ जमते और वैशाखी दोपहरी को बड़े शौक़ के साथ ताश खेलने, गप्पबाज़ी करने या खुर्राटे भरने में बिता देते।

यदि इस दोपहरी में कोई आदमी करैता के तमाम नवयुवकों से इकट्ठा मिलना चाहता हो तो उसे ज़रा भी दिक़्क़त न होगी। बस, दो-तीन अड्डे हैं। बारी-बारी से पहुँच जाइये तीनों जगहों पर। कहीं तेल लगे चीकट ताश के पत्तों पर मन्सूबों के महल बन रहे होंगे। कहीं चैती की फसल के दिनों में माँ-बाप की नज़र बचाकर बेचे हुए अनाज के पैसों को जुए के खेल से बढ़ाया जा रहा होगा। कहीं कोई व्यक्ति इसके-उसके घर के गन्दे और ग़लीज़ क़िस्सों को चटपटे ढंग से सुना-सुनाकर अपनी कल्पनाशक्ति का विकास कर रहा होगा। कहीं किसी को और कुछ काम न मिला तो काग़ज़

या तिनके की सलाई बनाकर किसी खुर्राटे भरते प्रौढ़ या वृद्ध की नाक में घुसाकर उसकी बौखलाहट और नाराज़गी से अपना दिल बहलाने का प्रयत्न कर रहा होगा। बहुत से लोग बिना प्यास की प्यास बुझाने पास के किसी कुएँ पर भी आ जा रहे होंगे, क्योंकि सुनसान दोपहरी में पानी भरने वालियों से मज़ाक़ करने का इससे अच्छा समय शायद ही कभी मिले।

●

बाबू सुरजू सिंह का 'बइठका' करैता के तीनों अड्डों में सबसे बड़ा और सबसे रंगीन था। पूरे 'बइठके' में पूरब से पश्चिम तक कुल आठ-नौ चारपाइयाँ पड़ जातीं, जिन्हें बकौल बाबू सुरजू सिंह, तमाम 'आवारे' कुश्ती लड़-लड़कर बरबाद कर देते। कहाँ तक बनवाता फिरूँ। आज किसी में ओरदवानी लगाऊँ तो कल किसी का चूल ठीक कराऊँ। जब रोज़ टूटना-पाटना चली रहा है तो मरम्मत कराने से क्या फ़ायदा?

वैसे दूसरों के सामने अपने नुक़सान का बयान सुनाते वक़्त बाबू सुरजू सिंह मुसकराकर गुस्से को जितना तोप-ढाँप लें, पर उनके ओसारे में दोपहर-बसेरा लेनेवाले पंछियों पर उनकी डाँट-डपट के गोले कई बार दग चुके थे।

"क्यों रे छबिलवा।" बाबू सुरजू सिंह आज किसी चिन्ता से परेशान थे। उन्होंने सोने की लाख कोशिश की, करवटें बदलीं, तकिये को उल्टा-पल्टा, पर नींद नहीं आयी। आख़िर उन्होंने मन को मसोस के भीतर से काढ़कर ऊपर कर दिया और छबिलवा की आँखों में एकटक ताकते बोले, "तू तो अपने को भूतनाथ कहता था न? कहता था कि सुरजू भैया करैता की ज़मीन के भीतर कोई भी साँय-फुस बात हो तो मैं उसे एक घण्टे के अन्दर बाहर कर दूँ। अजगर के पेट में से भी बात निकाल लाना मेरे बायें हाथ का खेल है। अब पन्द्रह दिन से सर पटक रहा हूँ और तू एक

छोटी सी बात का पता नहीं निकाल सका। डूब मर चुल्लू भर पानी में—राम-राम !"

"कौन सी बात के बारे में कह रहे हो सुरजू भैया ?" छबीले ने बग़ल से माची खींचकर सुरजू सिंह के पास बैठते हुए कहा।

"अरे, वही धरमू सिंह की बात। और कौन सी बात हुई है दूसरी ? आखिर कुछ पता चला भी। उस छोकरी को चार सौ रुपये मिले कहाँ से ? जरूर इसमें कोई न कोई राज़ है। है कि नहीं ?"

"इतना पता तो ज़रूर से लगा सुरजू भैया कि उस दिन ख़ुदाबक्कस अपनी जेब में चार सौ रुपया लेकर आया था। उसे पूरा भरोसा था कि नीलामी में मकान-ज़मीन किसी और के हाथ नहीं जायेगी। बाबू बुझारथ सिंह भी चाहते थे कि ज़मीन अपने ही आदमी के क़ब्जे में रहे।"

"ह, ह, ह, ह।" सुरजू ज़ोर से ठहाका लगाकर हँस पड़े, "और वे रुपये ख़ुदाबक्कस को बुझारथ ने दिये थे ? अरे घोंचूदास, यही नयी बात खोपिया करके लाये हो। इतना तो वहाँ खड़ा एक बच्चा भी जानता था भाई। कुछ सुराग़ लगेगा तो जग्गू मिसिर से। अखाड़े तो रोज़ जाता है। कभी पूछा नहीं उनसे ?"

"राम राम, जग्गू मिसिर का नाम मत लो सुरजू भैया।" छबीले की आवाज़ एकाएक काँपकर रह गयी, "उस दिन हरिया को मार दिया था खुरपी से। इत्ती धँस गयी थी गोड़ में उसके कि लंगड़ाकर चलता था बिचारा।"

"हरिया को ? काहे, क्या किया था उसने ?"

"किया-विया कुछ नहीं था। पुष्पिया का नाम लेकर कहने लगा कि मेरे पास होता चार सौ रुपया तो मैं उसे ज़रूर दे देता। बस इतना सुनना था कि जग्गू मिसिर ने अखाड़े की खुरपी खींच मारी। ग़ुस्से से लाल भभूका हो रहा बाभन। बोला, साले, मेरे सामने गाँव की किसी बहू-बेटी के बारे में ऐसी बात कही तो फावड़े से मारकर टाँग तोड़ दूँगा।"

"अच्छा !" सुरजू सिंह एकाएक गम्भीर हो गये। फिर थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहे और बोले, "तो तू हरिया से ही क्यों नहीं पूछता ? शायद उसे कुछ मालूम हो। जरूर से मालूम होगा उसको।"

"तो आप ही क्यों नहीं पूछ लेते हो सुरजू भैया ? ओसारे में तो सोया था अभी। ज़रूर होगा वहाँ। बुला लाऊँ ?"

"हाँ, धीरे से बुला ले आ। कुछ कहना मत वहाँ चांडाल चौकड़ी के सामने।"

"अरे नहीं।" छबीले आया और हरिया को जगाकर भीतर ले गया।

"आओ हरी भाई।" सुरजू सिंह ने आलमारी से सिगरेट का डब्बा निकाला। हरिया को देकर कहा—"लो पियो।"

"क्या बात है सुरजू भैया ?" हरिया मुसकराया—"आज कोई ख़ास बात है क्या ?"

"क्यों, ख़ास बात कैसी ?"

"ख़ास बात न होती भला तो आप मुझे इतने प्रेम से कैप्स्टन सिगरेट का डब्बा क्यों थमाते। पुजैया के बकरे को भी कनइल की माला पहनायी जाती है।" अब हरिया ज़ोर से ठहाका लगाकर हँसा। बाबू सुरजू सिंह भी हँस पड़े। छबीले भी।

सुरजू सिंह ने एक सिगरेट निकालकर खुद जलायी और तीखे धुएँ को बड़े ढंग से फेंकते हुए बोले—"बात यह है हरी भाई कि हम यह जानना चाहते हैं कि उस दिन नीलामी के रोज़ धरमू सिंह ने जो फट से चार सौ रुपया निकाल के दे दिया, सो कहाँ से ? बड़ा मजा आया, इसमें क्या कहना। बुझारथ के सारे मन्सूबों पर पानी पड़ गया। इत्ता सा मुँह निकल आया था उस ख़ुदाबक्क़स का। यह तो तुम जानते हो हरी भाई कि हमसे अधिक ख़ुशी इस बात से और शायद ही किसी को हुई होगी। पर हम यह नहीं जान सके कि आखिर वह कौन माई का लाल है, जो बुझारथ की पगड़ी उतरवा कर भी पर्दे में छिपा है ? किसी को कहीं से ख़बर तक नहीं हुई और उसने इतना रुपया निकालकर धरमू सिंह को दे दिया। तुम ज़रूर कुछ न कुछ जानते हो इस बाबत, है न....एँ ?"

"हम जानते हैं। ज़रूर जानते हैं।" हरी ने कहा—"पर एक बात साफ़-साफ़ कह दूँ सुरजू बाबू कि इसको जानने से आपको कोई फ़ायदा नहीं होगा और हो भी शायद अगर कुछ, तो हम नहीं बतायेंगे।" हरिया सुरजू के चेहरे पर घूरते हुए बोला।

"अच्छा?" सुरजू सिंह क्रोध और आश्चर्य से तमतमा उठे। उन्होंने बार-बार अपना सर हिलाया और इस असम्भव तथ्य को किसी क़दर गले के नीचे उतारने में सफल हुए। पर उन्हें अब भी विश्वास नहीं हो रहा था कि ये बातें हरिया कर रहा है। बाबू सुरजू सिंह को उसकी कृतघ्नता पर बड़ा अचम्भा हुआ। गुस्से के मारे पागल होकर वे चारपाई से कूद पड़े।

"नमकहराम कमीना कहीं का। तू नहीं बतायेगा? वाह, वाह रे! निकल जा यहाँ से, और ख़बरदार जो अपना काला मुँह लेकर यहाँ आया। भुक्खड़ कहीं का।"

सुरजू सिंह की कड़ी आवाज़ से खिंचकर तमाम छोकरे दरवाज़े पर आकर खड़े हो गये। ताश के पत्ते चारपाइयों पर बिछे रह गये। गोटियाँ चौबीसो की चौकोर रेखाओं पर वैसे ही पड़ी थीं। सारे खेल का वारा-न्यारा इनके हिलने-डुलने से ही हुआ करता है, पर ये हिल कहाँ पाती हैं अपने से! ये तो किसी के हाथ के इशारे से हिला-डुला करती हैं बेचारी।

"क्या बात है सुरजू भैया!" तमाम छोकरे एक साथ चिल्लाए। उन्होंने गर्दन झुकाये हरिया को देखा और यह समझते देर न लगी कि इस सारे हंगामे के मूल में यही है।

"जे बा से मजनुआ ने कुछ कहा है क्या?" सिरिया दाँतों को निपोर कर इस अन्दाज़ से बोला, मानो हरिया के असली भेद को अब तक वही समझ पाया है—"आजकल इसका दिमाग़ ठीक नहीं है सुरजू भैया। जे बा से यह तो किसी न किसी से लड़ने का बहाना ही खोजता था।" सिरिया ने छबिलवा की ओर कनखी मारी। गोया पूछ रहा हो कि ठीक कहा है न हमने। पर छबिलवा कुछ न बोला।

"हम सब समझते हैं।" सुरजू सिंह के होंठ थरथरा रहे थे, "इसके

सात पुस्त को जानते हैं हम। ये सब चुग़ली की रोटी खाते हैं। बिना इस-उसकी हाँड़ी में मुँह डाले कुत्तों को चैन कहाँ? बुझारथ ने बहकाया होगा इसको। इसका बाप तो अब तक बुझारथ के तलवे चाटता है!"

"देखो सुरजू सिंह बाप-दादे का नाम मत लो इसमें। नहीं ठीक न होगा।" हरिया पूरी भीड़ की ताक़त को अपनी भौंहों से थाहते हुए बोला—"कहीं गुस्से में ज़बान खुल गयी तो पछताओगे। हमसे किसी के ख़ानदान की बातें छिपी नहीं हैं। हाँ।" गुस्से के कारण हरिया के पैर जैसे मन-मन भर के हो गये। दालान की ज़मीन को धसकाता ओसारे से बाहर हो गया। सुरजू सिंह एकटक देखते रह गये। ख़ानदान की बातें! कौन है गाँव में, जो उनके परिवार की बातें नहीं जानता? उन्हें सोचकर ही इनकी गर्दन लज्जा से झुक जाती है; पर आज तक किसी ने भी उनके मुँह पर उन बातों का ज़िक्र करने का कभी साहस नहीं किया। यह हरिया? इस कुत्ते की मजाल। जब तक बाबू सुरजू सिंह हृदय में लगे मुक्के की बेहोशी से उबरकर कुछ कहने-करने की सोचते, तब तक तो हरिया गली के मोड़ में खो चुका था।

●

गली में दोपहरी का सूरज का ताप अपनी परछाईं को समेटकर ठहर गया था। पेड़ों की छायाएँ तब जड़ की ओर सिमटती जा रही थीं। धूप का आतंक आज अधिक गहरा था। हवा एकदम बन्द थी। कहीं कोई पत्ता तक हिल नहीं रहा था। पंछी भी अपने पंख समेटे डालियों की सघन छाया में चोंच खोले हाँफ रहे थे। एकाध बार कभी किसी चहार-दीवारी या मुंडेर पर बैठा कौवा कर्र से बोल देता और फिर दोपहर का धमाका अपनी साँस तोड़कर दम साध लेता।

हरिया अपने मन में ही उबलता-उफनता चुपचाप गमछे से सिर और कानों को ढँककर चला जा रहा था। सुरजू सिंह के प्रति उसके मन में

कभी कोई बुरा भाव न आया। आज का झगड़ा एकदम अचानक हो गया था। हरिया ख़ुद नहीं सोच पा रहा था कि आखिर ऐसा क्यों हो गया।

गाँव के दक्खिन तरफ़ नीम का एक छोटा सा पेड़ है। पास में एक कुआँ है। बग़ल में महावीर जी का छोटा सा मन्दिर। अगल-बगल केले के कुछ पेड़ हैं। उनके हरे-हरे पत्ते गर्मी के कारण दोनों तरफ़ के किनारों को झुकाकर हाथी के सुस्त कानों की तरह लटके हुए हैं। हरिया इस स्थान पर कई बार आ चुका है, पर यह इतना सुनसान और एकान्त कभी नहीं मालूम होता था। वह चुपचाप कुएँ की जगत पर चढ़ गया। डोलची को उठाकर उसने कुएँ के मुँह में ढीला। डोलची भर गयी तो उसने दबाव को ढीला कर दिया। बाँस का मुख दूसरे सिरे पर बँधी पत्थर की चाकी के भार से ख़ुद ऊपर उठने लगा। डोलची का पानी जगत की सतह के बराबर आ गया। उसने उसे खींचकर ऊपर कर लिया। हाथ पैर धोया, मुँह धोया, जी भरकर पानी पिया। गमछे को फिर सिर पर लपेट कर वह मन्दिर के मण्डप की फ़र्श पर जा बैठा।

इत्ता सारा ठण्डा पानी पी लेने पर भी उसके दिल की तपन कहाँ बुझी। पानी ने तो जैसे लपटों को और धुंधुवा दिया। तीखा करकता-सा डला जैसा कुछ उसके गले में अँटक गया।

●

हरिया उन दिनों विपिन के साथ क़स्बे के हाईस्कूल में पढ़ता था। आठवीं कक्षा में इतिहास-अध्यापक जद्दू बाबू हाज़िरी के समय उसका नाम लेते समय चश्मे के भीतर से घूर-घूरकर ताकते—"क्यों जी हरी मास्टर, आज अभी फोर्टीन डाउन का टाइम नहीं हुआ ?" हरिया कसमसा कर रह जाता। कक्षा के लड़के मुसकराते। उसकी ओर कनखी ताक कर चिढ़ाने की कोशिश करते।

हरिया अकसर छुट्टी होने के एक घण्टा पहले, जब फोर्टीन डाउन

(अपर इंडिया) प्लेटफ़ार्म पर लगती, कक्षा से भाग जाता। पचोखर के हरगेन बाबू के लड़के जीवनाथ से उसकी बड़ी दोस्ती थी। जीवनाथ स्कूल का छँटा लोफर था। सुना शहर के किसी स्कूल में पढ़ता था। बार-बार हाईस्कूल की परीक्षा में बैठा और बार-बार फ़ेल हुआ। हारकर हरगेन बाबू ने स्थानीय हाईस्कूल को कृतार्थ किया। हेड मास्टर से कह कर अपने साहबज़ादे को दसवीं कक्षा में भरती करा दिया। जीवनाथ चार मील दूर पचोखर से सायकिल पर आता था। सटे पाँयचे की पतलून पहनता। कमीज़ के ऊपर कसीदेदार चुस्त स्वेटर। रूमाल कमर के पीछे पतलून की थैली में खोंसता। उसके बारह अंगुल-के लम्बे-लम्बे बाल सिर से हमेशा तक़रार करते। बिला वजह मुँह पर लटक आते। जीवनाथ बालों को हथेली से ठीक करने को गवारूँपन मानता। वह रह-रहकर सिर को यों झटकता जैसे माथे की टक्कर से गोल में फुटबाल झोंकने का अभ्यास कर रहा हो। जीवनाथ की ये मस्तानी अदाएँ हरिया के दिमाग़ में 'क्लिक' कर गयीं। वह उसका मुरीद हो गया। दोनों फ़ोर्टीन डाउन के समय प्लेटफ़ार्म पर हाथ में हाथ डाले घूमते। सिगरेट पीते। भिखमंगे और खोमचे वालों को गालियाँ बकते।

"चलो साले स्टेशन मास्टर से पूछें ?" घूमते-घूमते जीवनाथ चिढ़कर कहता—"फोर्टीन डाउन साली 'डिरेल' तो नहीं हो गयी ?"

गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर लगती। दोनों लाइन डाँक कर उस पार आते। फिर इंजन से लेकर गार्ड के डब्बे तक उनकी परिक्रमा शुरू होती। फ़र्स्ट क्लास के डिब्बे में दोनों घुस जाते। बैठे हुए यात्रियों को उचटती नज़र से देखते। कहीं कोई जनाना सवारी हो, और यदि वह आकर्षक और युवती हो तो इनकी आँखों के गोलक एक चक्कर खाकर आमने-सामने टकराते "चलो उधर।" जीवनाथ इशारे से कहता।

दोनों उस औरत के पास या सामने ख़ाली सीट पर जाकर बैठ जाते।

"क्यों बे।" जीवनाथ हरिया की पीठ पर एक धौल लगाता—"मौसी जी नाराज़ हो गयीं शायद।"

"तुम साले करते ही हो ऐसी बनरखत।" हरिया कहता—"बेचारी सामान-वामान बाँधकर तैयार थीं। ले जाते उन्हें भी। ज़रा सिनेमा-विनेमा दिखा देते।"

"अरे अब क्या सिनेमा देखेंगी। दो-दो बच्चे हुए, देखते नहीं बदन ढल गया है।"

सामने की औरत उन लोगों की ओर देखकर तमतमाती, चिढ़ती, घृणा से मुँह सिकोड़ती। यदि कहीं उसके साथ का आदमी हट्टा-कट्टा हुआ तो ये लोग धीरे से अपनी जगह से उठते।

"आओ जी हरी मास्टर।" जीवनाथ बुदबुदाता—"आज का दिन बिल्कुल खाली गया। कैसे कंडम लोग भर जाते हैं गाड़ियों में आजकल। बैठते हैं साले फ़र्स्ट क्लास में मगर तबियत बिल्कुल दर्जी की। नीचे से ऊपर तक खाली कतरन और कटपिस माल। छिः।"

हरिया ने हर मामले में जीवनाथ की रहनुमाई स्वीकार की, पर एक मामले में वह उसके प्रति वफ़ादार नहीं रहा। वह आठवीं कक्षा में प्रथम श्रेणी में पास हुआ। परीक्षाफल निकला तो अचानक हरिया का चेहरा तिकोने से चौकोन हो गया। वह एक अबूझ आत्म-विश्वास से भरा-भरा लगने लगा। जहाँ पहले गाँव के लोगों के सामने अपनी शिकायतों को सुनाये जाने से परेशान होकर मुँह लटका लेता था या लोगों की घृणा भरी आँखों से बचने के लिए मुँह फेर लेता था, वहाँ अब वह उन शिकायतों को अपने परीक्षा-फल के साथ चिपकाकर ऐंठते हुए चलने लगा।

गाँव में कल्लू सिंह के लड़के सूरत की सज्जनता और सिधाई की तूती बोलती थी। अकसर लोग हरिया की आवारागर्दी और लोफरई का ज़िक्र करते हुए बतौर नमूने के सूरत का नाम लेते थे। दोनों एक ही दरजे में पढ़ते भी थे।

अब बात चलती तो हरिया मुँह बिदोर कर बड़ी जुगुप्सा से कहता—'हाँ-हाँ, सूरत बड़े धरमराज हैं। सब देखा है। इसी से न मेड़ पर मुँह के बल गिरे। ऐसा पसरे बिचारे धरमराज, कि ग्रेस-मार्क देने पर भी उठ नहीं पाये।'

हरिया के फ़र्स्ट डिवीजन में पास होने की बात सारे गाँव में फैल चुकी थी। उस साल उसके अंक विपिन से भी अच्छे थे। गाँववालों को विश्वास ही नहीं होता था। कोई शातिर और बदमाश लड़का ऐसे अच्छे नम्बर क्यों कर पा सकता है भला।

पर विपिन ने कभी ऐसा नहीं सोचा। हरिया सिगरेट पीता था। जीवनाथ के साथ चाय पीता था। मटरगश्ती करता था। गाँव में आकर छोटे बच्चों को छेड़ता था। लड़ाई-झगड़ा करता था। सूअर के छौनों के पीछे कुत्ते लगाकर मीलों दौड़ाता था। ताश खेलता था। गालियाँ बकता था।

मगर हरिया पतलून पहनकर जब चारपाई पर बैठ जाता तो घण्टों पढ़ता रहता था। न उसकी कमर दुखती थी, न सिर दुखता था। सिगरेट के टुकड़ों से बइठका भर जाता था। टीमल सिंह पहले भुनभुनाते थे। दो-चार बार डाँट-डपट भी की थी, पर जब हरिया ने उनके हाथ में प्रथम श्रेणी के परीक्षाफल का कागज़ खोंस दिया तो उनकी बोलती बन्द हो गयी। वे सिगरेट के टुकड़ों को यों बटोर-बटोर कर रखते गोया पूजा के फूल हैं।

धीरे-धीरे हरिया की आवारागर्दी ईर्ष्या की चीज़ हो गयी। वह गाँव में किसी को कुछ नहीं समझता था। न नमस्ते, न प्रणाम। हाल चाल न बातचीत। उसे अपने काम से काम था। वह किसी से भी कुछ वास्ता नहीं रखता था और यही चाहता था कि कोई उसके बीच में न पड़े।

ग्रीष्मावकाश के बाद जुलाई में जब स्कूल खुला तो हरिया का रंग ही कुछ दूसरा था। उसकी घुमन्तू आदतें ज्यों की त्यों बरक़रार थीं। शरारतों में इज़ाफ़ा ही हुआ था। पर अब वह स्कूल के अध्यापकों से डर-कर मुँह चुराता हुआ नहीं चलता था। इस नये विश्वास ने उसके व्यक्तित्व को काफ़ी आकर्षक बना दिया।

जीवनाथ के साथ उसकी दोस्ती बढ़ती गयी। स्कूल के बाहर क़स्बे में, दूकानों पर, स्टेशन पर, प्लेटफ़ार्म पर वे दोनों वैसे ही घूमते, गालियाँ बकते और शरारतें करते। हेडमास्टर के पास रिपोर्टें आतीं।

"हरि प्रसाद।" हेड मास्टर शिवकुमार लाल उसे आफ़िस में बुलाकर डाँटते—"तुम्हारे जैसे तेज़ और ज़हीन लड़के के लिए यह सब कितने शर्म की बात है। तुम जीवनाथ का साथ छोड़ दो। उसे और कोई काम नहीं है, इसलिए पढ़ता है। तुम्हें बहुत से काम करने हैं, इसलिए पढ़ना है। तुम उसकी सोहबत से अपनी ज़िन्दगी क्यों खराब कर रहे हो?"

"आपको लोगों ने बिलकुल ग़लत रिपोर्ट दी है सर!" हरिया हेड-मास्टर की ओर निधड़क देखते हुए बोला—"आप यक़ीन मानिये सर, मैं कोई भी अनुचित काम नहीं करता।"

"तो गाड़ी के डब्बों में घुस-घुसकर लोगों को गालियाँ बकना, यात्रियों पर बोलियाँ कसना, दूकानदारों से लड़ाई करना, सिगरेट-पान लेकर हाकर्स को पैसे न देना, इक्के वालों को मीलों दौड़ाकर किराया माँगने पर पीटना—ये सब उचित काम हैं? देखो मिस्टर हरिप्रसाद, यह तुम्हें आख़िरी चेतावनी दी जा रही है। आगे से कोई सख्त कार्यवाही की जायगी। समझे?"

"यस सर!" हरिया कहता और चुपचाप कक्षा में आकर बैठ जाता। उस दिन वह दिनभर गुमसुम रहता। किसी लड़के से कुछ न बोलता। कोई मज़ाक़ करे, चिढ़ाये तो भी मुँह लटकाये किताबों पर आँखें गड़ाकर ताकता रहता।

सन् सत्तावन को फ़रवरी थी। चुनावों का बाज़ार गर्म था। जद्दू बाबू कक्षा नौ में इतिहास के साथ-साथ नागरिक शास्त्र भी पढ़ाया करते। हरिया के प्रति उनके रुख में काफ़ी तबदीली आ गयी थी। अब वे उसे 'प्रतिभावान् दुष्ट' कहकर छेड़ा करते।

"क्यों हरी मास्टर।" उन्होंने शरारतभरी आँखों से हरिया की ओर देखते हुए पूछा—"अगर तुम्हें वोट देने का हक़ हो तो तुम किसे वोट दोगे?"

"लोचन चपरासी को।" हरिया खड़ा होकर बोला। लड़के ठठाकर हँसे।

लोचन चपरासी स्कूल की एक अनुपम हस्ती थे। उनकी उमर साठ से ऊपर थी। बदन भरा-भरा और तन्दुरुस्त। लम्बी-लम्बी घनी सफ़ेद मूँछों की वजह से चेहरा खूब भड़कीला लगता। उनके कानों की ललरी और मेंड़ों पर चार-चार अंगुल लम्बे घने बाल थे। खोपड़ी एकदम सफ़ा खल्वाट। चिकनी ऐसी कि लड़के उसमें झाँककर अपना मुँह देख लें। लोचन चपरासी बज्र बहरे थे। घड़ी में समय देखकर घण्टा बजाने का अपना काम भी ठीक से नहीं कर पाते। उनके राज में घण्टे अक्सर छोटे-बड़े होते रहते थे।

"तुम्हें दीखता नहीं? पन्द्रह मिनट पहले घण्टा बजा दिया।" गुस्से से आफ़िस से बाहर आकर हेड मास्टर शिवकुमार लाल घड़ी की ओर हाथ दिखा-दिखाकर झौंहाते—"जाने किस चिड़ियाखाने से यह अजूबा जन्तु लाकर सेक्रेटरी ने मेरे गले मढ़ दिया?"

"अभी टिफ़न की घण्टी में देर है।" लोचन चपरासी हेडमास्टर की ओर देखकर हँसते—"अभी कैसे बजा दूँ।"

"घण्टा ग़लत बजाया है।" हेड मास्टर उसकी हँसी से चिढ़कर चिल्लाते—"अन्धे भी हो क्या?"

"मेरा क्या लगता है। अभी बजा देता हूँ। मैं तो हुक्मी आदमी। मेरा क्या जाता है।" वे घण्टे की ओर मुँगरी लेकर चल देते।

"हे बहिरबंड, ऐ बुद्धू....!! ई क्या कर रहा है? टिफ़िन की घण्टी बजाने को कौन कह रहा है तुझसे? अमरनाथ, ओ अमर बाबू!" हेड-मास्टर क्लर्क को चिल्ला-चिल्लाकर बुलाते—"उस नामाक़ूल चपरासी के हाथ से हथौड़ा छीन लीजिये। मैं कह रहा हूँ कि घण्टा पन्द्रह मिनट पहले क्यों बजाया, तो कह रहा है अभी बजाता हूँ टिफ़िन की घण्टी।"

क्लर्क दौड़कर लोचन चपरासी के हाथ से मुँगरी छीन लेता। उस दिन लोचन चपरासी का चेहरा अचानक उदास हो जाता। उन्हें हेडमास्टर और क्लर्क की मूर्खता पर बहुत दया आ जाती और वे अपनी कोठरी में आकर मुँह लटका कर बैठ जाते।

"तो तुम लोचन चपरासी को वोट दोगे हरी मास्टर।" जद्दू बाबू खूब रस ले-लेकर बोले—"लोचन को क्यों भाई? तुमको सबसे योग्य लोचन ही लगता है?"

"यस सर।"

"क्यों भला? क्या इसलिए कि वह बहरा है?" जद्दू बाबू मुसकराये।

"बहरा होना कितना अच्छा है सर। लोचन को बेवकूफ़ नेताओं के झूठे भाषण नहीं सुनने पड़ते। वह किसी का उपदेश नहीं सुनता। फिर यह कि वह किसी की चापलूसी भी नहीं करता। न तो वह किसी की निन्दा करता है, न किसी का पक्षपात। वह बिल्कुल स्वतंत्र आदमी है सर।"

"तो तुम चाहते हो कि इस देश में बहरे लोगों की गवर्नमेंट बने?"

कक्षा के लड़के मुसकराये। पर हरिया ने बड़ी गंभीरता से कहा—"यस सर। तभी कुछ हो सकता है इस कंडम पुराणपंथी देश में।"

"ओह।" जद्दू बाबू एकदम विरक्त होकर चुप हो गये। इस तरह की विद्रोह-भरी बातों को सुनने की उनकी इच्छा यकायक खतम हो गयी थी।

उस वर्ष नौवीं कक्षा की परीक्षा में हरिया पुनः फ़र्स्ट डिवीज़न में पास हुआ।

उसी साल क्वार महीने में टीमल सिंह बीमार पड़े। शुरू-शुरू में मामूली बुखार था। गँवई-गाँव का जाना-पहचाना 'कफ़जर'। टीमल सिंह ने तुलसी का काढ़ा लिया। गुड़-मिर्च पकाकर खाया, पर बुखार कम न हुआ और वे महीनों चारपाई पर पड़े रहे। उनकी आँखों में अचानक दर्द उभरा और बुरी तरह छटपटाते रहे।

हरी स्कूल जाता। स्कूल से लौटता पर घर में घुसते ही एक अजीब

तरह की उदासी और अदृष्ट आशंका उसे धर दबाती। उसकी छोटी बहन राजो दिन-रात बापू की चारपाई के पास बैठी उनके सिर और कनपटी पर तरह-तरह की दवाओं के लेप छोपती। लोगों ने बताया कि दर्द की जगह पर गुदना गुदवा लेने से सबलबाई हट जाती है। टीमल सिंह की कनपटी के दोनों हिस्से दागों से भर गये, पर सबलबाई न गयी। एक दिन दर्द इतनी तेज़ी से उभरा कि बाबू टीमल सिंह दिन भर चिल्लाते रहे। दूसरे दिन सुबह दर्द तो गया पर आँखों की रोशनी के साथ। उसी दिन बाबू टीमल सिंह ने शाम के समय जब हरी स्कूल से लौटा तो उसे बुलाकर चारपाई के पास बिठाया। हरी एक क्षण साँस रोके पिता के खिन्न मुख को देखता रहा। तभी मौन को तोड़कर टीमल सिंह ने कहा—

"देखो बेटा, मैं यह नहीं चाहता था कि मेरे जीते जी तुम पढ़ाई छोड़ो; पर इस बीमारी ने मुझे एकदम लाचार कर दिया है। आँखों से कुछ सूझता नहीं भैया!" असहाय चेहरे पर आँसुओं की दो मोटी लरें बिखर गयीं, "बुआई के दिन सर पर आ रहे हैं। खेती-बारी से ही अपना गुज़र है। मैं तो इस लायक़ भी नहीं रहा कि बैल-बछरू को भूसा-घास भी डाल सकूँ। जाने गोसैंया की क्या मर्ज़ी है। पर बेटा एक बात जान लो, यदि खेती बिगड़ गयी तो चार प्रानी के मुँह में अन्न जाने की भी नौबत नहीं आयेगी। जवान लड़की सिर पर है। मेरे तो कुछ समझ में नहीं आता।"

बाबू टीमल सिंह कमज़ोरी के कारण इतनी देर में ही हाँफने लगे थे। हरी चुपचाप गर्दन झुकाये उनकी बातें सुन रहा था। दूसरा मौक़ा होता तो वह अड़ भी जाता, पढ़ाई के लिए कई बार कशमकश हुई थी। समय पर फ़ीस न मिलने पर कई बार वह रूठा था। कई दिन तक उसने घर पर खाना न खाया था। सूखे अकाल के दिनों में घर में पैसा न होने पर भी टीमल सिंह लाख जतन करके उसकी फ़ीस के रुपये जुटाते रहे। हरी तब रूठता था, क्योंकि वह जानता था कि हाथ तंग होने पर भी बाबू के दिल में उसे पढ़ाने की सच्ची इच्छा है। पर आज वह रूठे भी तो किससे!

आज तो हरी के रूठने के पहले भगवान् रूठ गये थे। बाबू की बेबसी उससे देखी न गयी और वह बिलखकर रोने लगा।

"मैं पढ़ाई छोड़ने के कारण नहीं रो रहा हूँ बाबू।" वह कलप-कलप कर कहता रहा—"मैं सब सँभालूँगा। खेती-बारी पहले ही जैसे होगी। उसकी तुम कुछ भी फिकर मत करो। भगवान् तुम्हारी आँखें अच्छी कर दें बस, मैं इतना ही चाहता हूँ।"

हरी बाप की छाती पर सिर रखकर जाने कब तक रोता रहा। टीमल सिंह के असहाय हाथ लड़के को दुख सहने का सहारा भर दे सकते थे। वे आज चाहकर भी लड़के को खेती-बारी के जुए में जुतने से रोक नहीं सकते थे। लाचारी की एक धुंध उनकी निस्तेज आँखों में कुहरे की तरह सघन हो गयी। उसमें अथाह आँसुओं को पैदा करने की ताक़त थी।

क्या हरी एक साथ गिरस्थी का भार और आँसू का बोझ दोनों सँभाल सकेगा? टीमल सिंह ने बड़ी कोशिश से उन आँसुओं को बरजोरी रोक लिया।

हरी की पढ़ाई छूट गयी। उसने गृहस्थी का काम उठा लिया। उसने न पतलून छोड़ी, न सिगरेट। क़लम की जगह हल की मूठ पकड़ने में उसे भीतर-भीतर जो पीड़ा हुई हो, बाहर से कोई भाँप न पाया।

पतलून पहनकर हरिया कंधे पर हल उठाये चलता तो लोग हँस देते। वह कंधे पर हल, हाथ में पैना और आगे जुआठ में नधे बैलों की जोड़ी सँभालते गलियों से यों निकलता जैसे उसके अलावा कहीं किसी का अस्तित्व ही नहीं है। उसकी पढ़ाई से, आवारागर्दी से ईर्ष्या करनेवाले लोग आपस में फुसफुसाते और मुसकराते। उनकी नज़रों में हरिया के लिए स्वागत का वही भाव था, जो हाईस्कूल के खुर्राट लड़कों में छठी कक्षा के नये-नये लड़कों के प्रति रहता है। वे हल-विद्या के अपने अनुभवों और ज्ञान को बेमोल लुटाने के लिए तैयार थे, बशर्ते हरिया दयनीय मुद्रा बनाकर उनसे उनकी याचना करे। पर हरिया ने ऐसा कुछ नहीं किया।

चैती फ़सल की बुआई के वक़्त गाँव का कोई भी किसान खाद वग़ैरह पर ध्यान नहीं देता। करइल में क्या खाद? ऐसे ही माटी में नमी कम रहती है। हरिया के पास खेत कम थे। उसने गेहूँ के खेत में बीज के साथ चाँद मार्का खाद मिलाकर बोया। वह क्या कर रहा है इसके बारे में लोगों में उत्सुकता बिल्कुल न थी। न तो वह खेत में हल खड़ा कर किसी से बात-चीत करने जाता था और न तो कोई उसके यहाँ कुशल-मंगल लेने आता था। दोपहर को हल छोड़कर वह बैलों को हाँककर खूँटे पर बाँध देता था। उन्हें दाना-भूसा डालकर खुद नहाता और खाना खाता था। सिगरेट पीता था। इस 'इण्टरवल' पर पुराने किसान मुसकराते और फबतियाँ कसते। पर हरिया को किसी के उपदेशों की ज़रूरत ही कब थी।

उस साल टीमल सिंह के छोटे से खेत में गेहूँ की जैसी फ़सल लगी वैसी पूरे देहात में शायद ही किसी खेत में कभी लगी हो।

चैती फ़सल कटी। खलिहान से अनाज घर में आया। हरिया ने खूब चटकदार काकरेजा की पतलूनें और बुर्राक सफ़ेद पापलिन की क़मीज़ें बनवायीं। क़मीज़ के ऊपरी जेब में पनामा सिगरेट का डब्बा और पतलून की जेब में 'लाइटर' रखकर वह जब गलियों में निकलता तो हल-विद्या-विशारद लोग उसकी ओर आश्चर्य से ताकते रह जाते।

"का हो हरी बेटा।" हरखू सरदार हरिया की होशियारी के मुरीद हो चुके थे। प्रशंसनीय चीज़ की प्रशंसा न करना वे इन्सानियत के साथ घात मानते।—"कहाँ चल दिये ऐसी दुपहरी में?" हरिया हरखू सरदार के पास आकर खड़ा हो जाता। डब्बे से सिगरेट निकालकर उन्हें थमाता। लाइटर निकालकर दगाता।

"चलें चाचा, जरा सुरजू भाई के बइठके में। वहाँ चंडाल-चौकड़ी जमी होगी। ताश-वाश खेलेंगे। गप-सड़ाका होगा। और क्या रखा है इस कण्डम देहात में। है कि नहीं?"

"ठीक कहते हो हरी बेटा।" सिगरेट के धुएँ से हरखू सरदार की आँखें पनियाँ जातीं—"उदास लगता होगा अकेले। कहाँ तुम दिन भर सैकड़ों में हा-हा, हू-हू करनेवाले और कहाँ यहाँ 'कउवारर्र' सन्नाटा।"

"अरे नहीं हरखू चाचा। सन्नाटे-वन्नाटे की मुझे कोई फ़िकर नहीं। साल भर खटकर काम किया अब गर्मी के दो महीने ठाट से तफ़री करेंगे।"

"ई तफ़री क्या है हो हरी बेटा?" हरखू सरदार आदर और श्रद्धा से पूछते।

"मटरगश्ती, हरखू चाचा, मटरगश्ती। खाओ, पीओ, मौज़ करो। यही होती है तफ़री।"

"हूँ। बाह बा। ठीक है। ज़रूर करो तफ़री बेटा। जब ऐसी जांगर-तोड़ कमाई किया तो तफ़री करना ही चाहिए।"

हरिया अधजली सिगरेट फेंककर नयी दगाता और नोकीले मुँहवाले बूट के तल्ले में जड़ी बटन-बराबर कीलों से गलियों के कंकड़ों को रगड़ता ठोकर मारता चल देता।

हरिया मन्दिर के खम्भे से पीठ टिकाये चुपचाप बैठा रहा। वह जब सातवीं कक्षा में था, उसकी शादी हुई थी। जिस साल उसने पढ़ाई छोड़ी उसी साल गवना हुआ। अब छः सालों के भीतर वह तीन-तीन बच्चों का बाप हो चुका है। कैसी कटही और बेवकूफ़ है औरत।

"मेरा तो करम दरिद्दर से नाता जुड़ गया।" अनखा-अनखा कर बिला वजह बोलती है—"तन को यह गुदड़ी सी कर लाज शरम ढँकूँ कि तुम सूअरों का झगड़ा निपटाऊँ।" बीचो-बीच आँगन में पसरकर, नंगे पैरों को फैलाकर फटी साड़ी खींचकर सीती रहती है और मुट्ठीभर भात के लिए लड़ाई करते लड़कों को किटकिटाकर गंगा के दहाने में भेजती रहती है।

मैं तो करम दरिद्दर हूँ ही। न होता ऐसा तो इस कंडम ख़ानदान की गाड़ी में इस तरह जुतता क्यों रहता। आँख पर अँटौतल लगाये कोल्हू के बैल की तरह घूमता रहूँ तो सभी साले खुश रहेंगे। छः सालों में एक दिन भी ऐसा नहीं रहा होगा कि सात घण्टे, आठ घण्टे कसकर मिहनत न की हो। दो-तीन साल ख़ूब पैदावार हुई। उन दिनों जब माडर्न प्रिंट की एक से एक ज़ोरदार बार्डर वाली साड़ियाँ पहनकर साली आँगन में बिछुआ झमकाती चलती थी, तब करमदरिद्दर से नाता जुड़ने का रोना नहीं रोती थी। घर में, बइठके में जिधर देखो बिस्तरे गूदड़ का ढेर लगते थे। पूरे पचास गज़ खारुवें ख़रीदकर गन्दी रुई की खोसें भराई थीं। उन दिनों टटके छूने में खुरदुरे पर आरामदेह बिस्तरे पर इसी करमदरिद्दर निखट्टू के साथ रात-रात भर चिपककर ये तीन-तीन मेमने पैदा कर दिये साली ने। तब एक बार भी मिहनत के लिए तारीफ़ की कोई बात नहीं कही होगी। अब चार साल से सूखा पड़ रहा है। फ़सलें खेत में खड़ी-खड़ी कोयला हो जाती हैं, तो रोज़ घर में कौवारोर मचा रहता है। मैं क्या करूँ? गर्दन भी काट दूँ तो एक हाथ से अधिक खेत गीला नहीं हो पायेगा। जाओ साले चूल्हे भाड़ में। मैंने क्या ज़िन्दगी भर यह घूरा टालने का ठीका ले रखा है।

और ई साला सुरजुआ! ससुर अपने को बड़े भारी तीसमार खाँ समझते हैं। मुँह कैसा है नेवले जैसा। ई लड़ेंगे जैपाल और बुझारथ से? मामूली गँवई-गाँव के चुनाव में खड़े हुए। तीस-चालीस रुपये मुश्किल से लगे होंगे, चाय-पानी, बीड़ी-सिगरेट में। मार दी बुड्ढे ने लंबी बस चारों खाने चित्त गिर गये। लगे रो-रोकर कहने—"पचास रुपये जेब के गल गये।" ससुर दरिद्र। पचास रुपये गल गये तो लगाकर फँसरी झूल जाओ किसी पेड़-वेड़ में। इसी बिरते पर चले थे जैपाल से लड़ने। जैपाल से लड़ने के लिए कुछ दम-सम चाहिए। दाँत निपोरकर पूछने लगे—"तुम बता सकते हो हरी भाई कि वह कौन-सा माई का लाल है, जो बुझारथ की पगड़ी उतरवा कर भी पर्दे में छिपा है? किसने धरमू सिंह को चार सौ रुपये दे दिये?"

हुँह।

तुमने तो नहीं दिये। तुम क्या दोगे? सिरिया सोचता था कि सुरजू भइया चट से रुपये निकालकर दे देंगे। चार सौ रुपये निकालने में सुरजू सिंह की छाती फट जायेगी।

ये सिर्फ़ दूर-दूर से तमाशा देखनेवाले हैं। सोचते होंगे कि कोई बहुत पैसेवाला असामी इनकी पार्टी में आ गया। रुपये देनेवाले का नाम पूछ रहे थे मुझसे। क्या करोगे नाम जानकर ?

वह धीरे से उठा और गाँव की ओर चल पड़ा। गर्मी की शाम धीरे-धीरे ठण्ढी होने लगी थी। लू में खुनकी अब भी थी, मगर वह हवा दिन भर झुलसे हुए शरीर को काफ़ी अच्छी लगती थी। हरिया चला तो घर के लिए, मगर उसके पैर धरमू सिंह के मकान के दरवाजे पर रुक गये। सामने आँगन में पुष्पा हल्दी पीस रही थी। वह दरवाज़े पर खड़ा होकर भुनभुनाया—"अब कोई क्यों ताकेगा भई, अब तो रुपये देनेवाला दोस्त आ गया है, बनारस से।"

पुष्पा ने उसकी ओर देखा, उसने बरजोरी होंठों को भींच लिया। वह वैसे ही हल्दी पीसने में जुटी रही। हरिया एक क्षण वैसे ही खड़ा रहा। उसे आशा थी कि पुष्पा यह बात सुनकर डर के मारे पसीने-पसीने हो उठेगी, दरवाज़े पर दौड़ी आयेगी और बार-बार हाथ जोड़कर बिनती करेगी कि यह बात किसी से मत कहना। तब हरिया उसे अपने चंगुल में दबोच लेगा। फिर पुष्पा से जो चाहेगा, वही मिलेगा। मगर जब पुष्पा अपनी जगह से नहीं उठी तो वह चुपचाप उबलता-उफ़नता छावनी की ओर चल पड़ा। छावनी पर उस समय कोई न था। कनिया रमचन्ना को सरेख रही थीं और वह बैलों को भूसा डाल रहा था।

"क्यों हरी ! तू इतना घबड़ाया क्यों है ?" कनिया ने पूछा। जाने क्यों कनिया की इस बात से हरी की आँखें भरने-भरने को हो गयीं। वह मुँह छिपाकर बोला—"क्यों, घबड़ाया कहाँ हूँ ? विपिन नहीं हैं क्या ? ज़रा कुछ काम था उनसे।"

"विपिन तो अभी-अभी उठकर गया है। क्या काम था उससे ?"

"कुछ नहीं भौजी।" वह कनिया के पास आकर बोला—"आप विपिन को समझाती क्यों नहीं ? उसके बचपने से देखिये न, भाई साहब की कितनी हेठी हो गयी ?"

"क्यों ? क्या हुआ ? साफ़ कहो न ?"

"आपको भी नहीं मालूम शायद। धरमू सिंह के यहाँ नीलामी थी। भाई साहब ने क़ुर्क अमीन बुलाया। उधर विपिन ने कल रात धीरे से पुष्पा को रुपये थमा दिये।" हरिया एक क्षण रुककर कनिया के चेहरे पर बनती-मिटती छायाओं को देखता रहा—"यह कोई अच्छा काम तो नहीं है भौजी ?"

"मुझे नहीं मालूम हरी कि विपिन ने उसे रुपये दिये कि नहीं। यदि दिये तो ठीक ही किया। आज अइय्या जीती होतीं तो शायद क़ुर्की आती ही नहीं। अइय्या ने तो पुष्पा को अपने बेटों से कभी कम नहीं समझा। इसे तो तुम भी जानते हो। भला ऐसी बात सुनकर उनका कलेजा फट न जाता। विपिन यह नहीं करता तो मैं करती। मुझे तो किसी ने बताया ही नहीं। और तो और चचिया भी छुपा गयीं। एक बार कह भर देतीं, बस....। इससे तो अइय्या की आत्मा को शान्ति मिली होगी भैया, इसको तुम बचपना कैसे कहते हो ?"

हरी का चेहरा शर्म से लाल हो गया। वह कितना नीच है, जो ये बातें कनिया से कहने चला। कनिया को क्या वह जानता नहीं। मगर वह करे क्या ? सुरजू, बुझारथ, पुष्पा, विपिन, कनिया कोई भी उसे नहीं समझ सकता। सब बड़प्पन दिखाते हैं, उसे नीच समझते हैं, छोटा समझते हैं। उसके मन की शर्म धीरे-धीरे गुस्से में बदल गयी। वह घायल साँप की तरह फुफकारकर बोला—"आप भी कभी धरमराज के आसन से उतरकर सोचियेगा तो पता चलेगा। मर्द के ख़िलाफ़ देवर को उभाड़ना अभी अच्छा लगता होगा। बुझारथ भाई भी दूध पीते बच्चे नहीं हैं, उनको क्या अपना भला-बुरा नहीं दिखायी पड़ता होगा ?"

कनिया धीरे से हंसीं, अजीब तरह की उपेक्षा और दुःख से मिली-जुली हँसी।

हरिया इस हँसी को झेल न पाया। वह भीतर ही भीतर धुँधुवाता घर की ओर चल पड़ा। उस शाम खाना खाते वक़्त वह बिना वजह

अपनी पत्नी से उलझ पड़ा। सामने की थाली पटक दी। बेक़सूर औरत को उसने बुरी तरह पीटा। घर में हल्ला-गुल्ला मच गया। टीमल सिंह हाथों से दीवालें टटोलते, काँपते पैरों से राह की ठोकरें बचाते रसोईघर के दरवाजे पर पहुँचे हरिया को समझाने-बुझाने, तो वह उनसे भी उलझ पड़ा। काफ़ी तू-तू मैं-मैं हुई। हरिया ने उस 'अन्धे' को किसी कोने में बैठकर चुपचाप मक्खी मारने की सलाह दी। "यह अन्धा समझता है कि मैं इसे काँवड़ में बिठाकर ढोता रहूँगा"—उसने कहा। छोटी बहन बाप की ओर से बोली तो हरिया ने झोटा पकड़कर उसे खींचा और मारा। उसी रात वह गाँव छोड़कर जाने कहाँ चला गया।

दूसरे दिन सुबह मुँह अँधेरे टीमल सिंह ढोरों के लिए भूसे की खाँची लेकर चले तो लुढ़क गये। बीसू धोबी का लड़का सुरजीत लादी ढोते गधों को रुकने के लिए पुचकार कर लाठ के नीचे आ रहा। उसने खाँची को अलग किया। टीमल सिंह कुछ न बोले। चुपचाप घायल हाथों में सिर को छुपाये सिसकते रहे। सुरजितवा गधों को हाँके नदी की ओर चला जा रहा था। करैता के पूरे सीवान को बींधती उसकी प्रभाती घायल भौंरे की तरह चारों ओर मँडरा रही थी।

कबिरा गरब न कीजिए, इस जीवन की आस।
टेसू फूले चार दिन, खंखर भये पलास॥

• •

नौ

असाढ़ लग रहा था। अभी तक पानी की एक बूँद भी धरती पर नहीं आयी। सुबह से शाम तक आसमान को निहार-निहार कर किसान निराश हो जाते। वे अपने दुःख-दर्द का हाल एक दूसरे को सुनाने खलिहान में बरगद के पेड़ के नीचे इकट्ठा हो जाते।

अब तक तो यहाँ पानी ही पानी होता था। जहाँ आज छोकरे सतघरवा, गुल्ली-डंडा और होला-पाती का खेल रचाते हैं, वहाँ घुटने बराबर पानी हलकोले खाता रहता था। असाढ़ चढ़ता था। बादल गरजते थे। तपी हुई धरती पर मूसलाधार पानी बरसने लगता था। पेड़ों के हिलते-काँपते पत्ते थिर हो जाते थे। गाय-बैल बदन ढीला किये कानों को लटका कर जुगाली शुरू कर देते। सोंधी गंध से हवा सुवासित हो जाती। गाँव की गन्दी गलियाँ, धूसर पेड़ों के पत्ते, गर्द भरे पशुओं के तन, लू से मटमैली बनी खपरैलें, सभी धुल-पुंछकर कैसी टटकी और ताजी लगने लगती थीं।

बरसात भी अजब रहस्यमयी होती है। असाढ़ सिर्फ बादलों के गर्भने का ही माह नहीं है। सारी प्रकृति के गर्भाधान का महीना है। ऋतुमती नारी की तरह धरती वर्षा की बूँदों की प्रतीक्षा करती है। बूँदें गिरतीं नहीं कि तीन-चार दिनों के अन्दर ही तरह-तरह के रंगों वाले अँखुवे लहराने लगते हैं। हल्के मटमैले, ज़रा सफ़ेदी लिये हुए हरे-हरे, एकदम सुर्ख लाल, हल्के पीले-पीले, बैंगनी। सिन्दूरी, नील, आसमानी, धानी जाफरानी रंगों की एक बाढ़ जैसे सिवान को अपने आँचल में छिपा लेती है।

ऊपर-ऊपर से देखने पर लगता है कि हुआ ही क्या। धरती हरी-हरी हो गयी है बस। पर इस हरियाली के पास, इसके भीतर उतरकर देखने पर असली रहस्य सामने आता है। बैलों के पैरों, या माँस-खोर पक्षियों के झपट्टों से डरकर एक झुण्ड फतिंगे भरभरा कर छिटकते हैं। भूरे-भूरे पुराने, ऐंठे पुट्ठों वाले अकड़बाज, और उन्हीं के साथ कुछ ललछौहें गबदगोल नवागन्तुक। कहीं लम्बी सूँड़ वाले हरे-हरे घासिया रंग के सूई नुमा तो कहीं रंगबिरंगी पाँखों वाले इन्द्रधनुषी। कहीं बस मामूली पीली-पीली तो कहीं हाथ को अपनी सुनहली पाँखों से रंग जानेवाली सुवर्णपंखी तितलियाँ, तितलियाँ

जहाँ पानी ज़्यादा है, वहाँ पीले-पीले मेढ़क टाँय-टाँय की आवाज़ करते तबलचियों की तरह मटक-मटककर सिर हिला रहे हैं। कहीं एक दूसरे के बदन की गन्ध से पागल मेढ़क-युग्म, एक की पीठ पर सवार एक, लम्बी छलाँगे लगाते हुए जलक्रीड़ा कर रहे हैं। इसी जलक्रीड़ा में तो मेढ़क जाति की सृष्टि का रहस्य है। तीन-चार दिनों में ही मेढ़कों के अण्डे पानी पर तैरने लगेंगे। और फिर झुण्ड के झुण्ड लार्वा पानी की सतह पर छोटी-छोटी दुमें हिलाते तैराकी का अभ्यास करेंगे। फिर बेशुमार मेगचियाँ चिकनी-चिकनी निर्लोम प्लास्टिक की बनी बटनों की तरह गड्ढों से निकल-निकलकर घास में अठखेलियाँ करेंगी।

थोड़ा पानी और बरसेगा। खेतों की मेड़ों के पास तलैयों के किनारे, जल के हिलकोरों के साथ काई, सेवार, बनप्याज और घेउर के बीजों में

मिले-जुले गाज में मछलियों के बच्चे किलोल करेंगे। तब एक झुण्ड पंछी, इनका शिकार करने के लिए, देश-देशान्तर से टूट पड़ेंगे। चाहे, लेदी, जाँघिलें, बत्तखें, जलमुर्गियाँ, टंटार और सुर्खाब। वाह, सिवान क्या है, अजब तरह की गन्ध वाले पक्षियों के लिए सदावर्त बाँटने का क्षेत्र है।

ज़रा इस बरगद की डालों की तरफ़ सर तो उठाइए। ज़रा बचकर। अभी तो इनके बीटों से पेड़ की जड़ें ही सफ़ेद हुई हैं। कहीं आपके सर पर ही वे खड़िया का घोल न गिरा दें। कोई डाल नहीं जिस पर घोंसले न हों। कोई घोंसला नहीं जिसमें पतली-पतली चन्दनी चोंच निकाल कर टिहुकते पक्षिशावक न हों। कलंगी वाले, बिना कलंगी के। टिनोपाल में धुले कपड़े वाले। लम्बी-लम्बी गरदन और हल्की पीली चोंचों वाले बगुले, बगुले, बगुले। हाय री बलाका-सृष्टि। सारा पेड़ जैसे सफ़ेद-सफ़ेद फूलों से लद गया है।

किन्तु आज यहाँ कुछ नहीं है। उदास आँखों से आसमान को हेरते कुछ किसान, मटमैले बदन पर से मक्खियाँ झाड़ते हुए ढोर। पता नहीं कहाँ गया वह असाढ़। वे बादल। रंगों की वह प्रदर्शिनी। पंछियों का वह वर्षा-मंगल।

विपिन बरगद की जड़ में बैठा शायद आगत-विगत की उसी तुलना में डूबा था। तभी हरखू सरदार ने उसे देख लिया।

"आ हा! विपिन राजा। अरे आप भी यहीं बैठे हो मालिक! धन्न भाग।" वे गमछा झाड़कर कन्धे पर रखते हुए विपिन के पास आकर बैठ गये—"अकेले मन नहीं लगता होगा? क्यों राजा? ठीक है न?" हरखू सरदार को न तो उत्तर की प्रतीक्षा थी, न है। वे अपनी कहे जाते हैं। कोई सुने तो भी ठीक, न सुने तो भी ठीक। उनका फ़र्ज़ है, अपनी बात कह देना। सो वे बोले—"धरमू सिंह ने तो उस दिन राजा, कमाल ही कर दिया। चलो अच्छा हुआ। मालिक कब चाहेगा कि परजा का घर उजड़े। अरे भाई, देना था तो पहले ही दे देते। काहे को थुक्का-फजिहत होती। क़सम महावीर सामी की भैया, मैं तो मन ही मन सोच रहा था

कि आज अगर मालिक भइया होते तो ऐन मौके पर कुर्की बन्द करवा देते। रुपया अपनी ओर से भरते। कहते कि ज़मींदार की हो गयी। अब परजा की हो। क्या हिरदा था उनका। महावीर सामी कसम रतन थे भैया, रतन।"

हरखू सरदार की बातों में किसी को रस न हो, ऐसी बात नहीं। पर सभी अपनी-अपनी समस्याओं की बखिया उधेड़ने में लगे थे। जग्गन मिसिर ने उनकी बात सुन ली थी। बोले—"अब बुढ़ऊ का नाम लेने से क्या फ़ायदा हरखू सरदार। जो गया, सो गया। अब जो हैं, वे देखें। ज़मींदारी टूट गयी तो एक तरह से अच्छा ही न हुआ? कुछ के पास अपनी ज़मीन हो गयी। मोह-माया से उसे जोतें-गोड़ेंगे। लेकिन ज़मीदारी टूटने से ही तो सब दुःख नहीं बिलायेगा। वैसे भाई बुढ़ऊ थे भी दूसरे तरह के आदमी। वे बहुत महीन मार करते थे। उनका रहन-सहन, चाल-व्यवहार बड़ा संस्कारी था। ख़ैर, एक मामला तो सलटा। धरमू सिंह की इज़्ज़त रह गयी। अच्छा ही हुआ। बाक़ी कब तक? छिपे-छिपे ग़रीबों का बचाव कब तक होगा? आख़िर को हातिमताई को भी सरे बाज़ार आना ही पड़ेगा है कि नहीं?"

विपिन ने जग्गन मिसिर के चेहरे पर आँखें गड़ा दीं। मगर मिसिर की आँखें वैसी ही साफ़ थीं। न उनमें व्यंग्य था, न कटाक्ष, न चालबाज़ी। विपिन कुछ न बोला। वह चुपचाप सामने खड़े पशुओं को देखता रहा।

"क्यों विपिन बाबू, अभी तो कुछ दिन रहना होगा गाँव में? अभी तो आपकी छुट्टियाँ-वुट्टियाँ होंगी।"

"हाँ, अभी तो हूँ ही मिसिर चाचा। पढ़ाई भी तो इस साल ख़तम हो गयी। अब सोचूँगा कि आगे क्या करना है।"

"अच्छा तो पढ़ाई पूरी हो गयी विपिन राजा। जै महावीर सामी की। भगवान् आपको जीता-जागता रक्खें। वाह-वाह! चित्त चिकना जाता है आप लोगों की बढ़न्ती देखकर, हाँ। आपने तो ओर-माथे तक पढ़ लिया। इस देहात में तो कोई इतना नहीं पढ़े हैं। है कि नहीं जग्गन मिसिर!"

"ठीक है हरखू सरदार। पढ़े-लिखे आदमी होंगे तभी न हम लोगों की भी भाग पलटेगी। अभी तो सनिच्चर गोड़ तोड़े बैठा है। किसी को घर है, तो बैल नहीं। किसी के तन पर पूरा बस्तर नहीं। किसी को भरपेट खाने को अन्न नहीं। संस चली गयी। किसानी तो जवाल हो गयी है। बस ढोये जा रहे हैं। क्या करें कुछ चारा भी तो नहीं।" जग्गन मिसिर एकदम से मौन हो गये। उनके चेहरे पर अचानक कहीं से बादल का एक टुकड़ा उमड़ा और आँखें छलछला आयीं—"अब देखो न, धरमू सिंह की ही हालत। जाने कब से खटिया पकड़े हैं बिचारे। जवान बेटी सर पर है। घर में दोनों जून चूल्हा जलने की भी नौबत नहीं है। ऊपर से आ गयी यह कुर्की। ख़ैर, भगवान् ने इज़्ज़त रख ली। मगर कब तक? अभी जाने क्या देखना होगा। ख़ाली पेट इन्सान क्या नहीं करता।"

हरखू सरदार को यह 'लीक्चर' बड़ा बुरा लग रहा था। इसलिए प्रसंग को बदलने की ग़रज़ से बोले—"का हो मिसिर जी। सुना हरिया भाग गया घर से? कुछ सुराग़ लगा आपको? महाबीर सामी की क़सम, आज के लौंडों को न तो सरम है, न हया। अन्धे बाप पर सब कुछ छोड़कर जाने कहाँ पेल-पराया हरामी। आपसे तो ख़ूब पटती थी उसकी। कुछ कह-सुनकर गया है आपसे भी कि नहीं?"

"हमसे तो कुछ नहीं कहा उसने। गया, अच्छा ही हुआ। रहता तो जाने क्या होता। बाँह-टाँग टूटती। साला हरामी कहीं का।"

"मैं तो कह रहा हूँ मिसिर जी कि टीमल सिंह को भी दुःख नहीं करना चाहिये। ई खेती-बारी में का धरा है। महाबीर सामी की क़सम, अब ई तो खेती डाँड़ हो गयी। हरिया भागा तो अच्छा ही हुआ। कहीं दो पैसा कमायेगा, तो आदमी बन जायेगा।"

"अरे हरखू सरदार, कौन है इस गाँव में जिसने बाहर जाकर चह-बच्चा ला दिया?"

"ऐसा काहे कहते हैं मिसिर जी, देवी चौधुरी का लड़का क्या कम कमाय रहा है? महाबीर सामी क़सम, जगेसर ने तो कमाल कर दिया।

देखते-देखते ईंटों की जुड़ाई होने लगी। फिर खलील मियाँ के बदरुलुवा को ही देखिये। सुनता हूँ कि पाकिस्तान से 'मनी अड्डर' भेजता है।"

"आ, चुप रहिये। हमें सब मालूम है। ऊ तो खलील मियाँ ही जानते होंगे कि उनका हिरदा हो जानता होगा। देवी चौधुरी भी ईंटें अपने लड़कों की कमाई से जुड़वाय रहे हैं कि मियाँ की रेहन से। ई आपको कौन समझाये। चलिये आप ही की बात सही हो। हरिया कमायेगा तो हमें तो खुशी ही होगी।"

विपिन को हरिया के बारे में दिलचस्पी न थी। वह सोच रहा था इस गाँव के बारे में जिसकी धूल में लोट-पोटकर वह बड़ा हुआ। जिसकी माटी की गन्ध उसके कलेजे में कस्तूरी की तरह व्यापी हुई है।

जाने कब सीरी और कल्पू जड़ में आकर बैठ गये थे। उन्हें विपिन ने कनखी देखा। चिन्ता के धुन्ध में उलझी आँखें एक क्षण ही शायद ऊपर ठहर पायीं।

कल्पू बंशी काका का एकलौता लड़का है। गोरा चिट्टा इकहर बदन। कमर इतनी पतली कि झुककर कमान की तरह हो गयी है। चेहरा कभी भरा-पूरा था। रौनक़ थी। अब तो गालों की उभरी हुई हड्डियों के नीचे चमड़े का त्रिभुज जैसा बन गया है।

"क्यों बे! क्या सचमुच उसने तुझे झोंक दिया? बोलता काहे नहीं जे बा से गाँव भर में यह बात फैल गयी है। अजिया कह रही थीं कि ऐसी चरबाँक औरत तो मैंने देखी नहीं। लड़के को कमरे के बाहर ठेल दिया।" कल्पू चुप।

"अब लजाते क्या हो ससुरे? जे बा से किसी लायक़ नहीं रहोगे। अरे साले उसको पकड़कर ऐसा दबा दे कि साली का कचूमर निकल जाये। जे बा से तू दाँत-निपोर कुछ नहीं करेगा। डरता होगा। पढ़ी-लिखी है न। सुना दो चोटी काढ़ती है। कनपटी के पास माँग काढ़कर सेंदुर लगाती है। छिः छिः। गाँव की नाक कटा दी तू ने। मरद जाति का नाम हँसाया।"

कल्पू फिर चुप रहा। अब की उसके चेहरे पर सिर्फ़ कुहरे का रंग ही नहीं छाया; बल्कि एक दर्दनाक पीड़ा का भाव भी उभर आया। उसका सारा बदन पसीने-पसीने हो रहा था।

तभी सिरिया के पास आकर छबिलवा भी बैठ गया—"कहो सोरी भाई! बीड़ी तो निकालो एक ठो।"

"तेरे बाप ने रोकड़ जमा किया है क्या मेरे यहाँ? जे बा से बस जब हुआ दाँत चियार दिया। धत्तेरे की।" सिरिया यह सब कहने के पहले ही पाकेट में हाथ डाल चुका था। छबिलवा ने दियासलाई पर काँटी घिसकर बीड़ी दगायी और उसका धुआँ कल्पू के चेहरे पर उड़ाते हुए बोला—"इस जनखे से क्या फुसुर-फुसुर बतिया रहे हो तुम? क्यों रे, अभी वही हाल है कि कुछ मामला आगे भी बढ़ा। अरे ससुर नई बाज़ार के हकीम जी को दिखाकर कोई पुष्टई खाओ। नहीं ऊ छैल-छबीली किसी और के यहाँ आँख लड़ायेगी, हाँ। उसने धीरे से सिरिया के कान के पास मुँह सटाकर कहा—सुना बे, छावनी में जाती है आजकल। एक दिन बंशू बो काकी से हँसते-हँसते कहा तो तिनक गयीं। कहने लगीं कनिया राजलक्ष्मी हैं। गऊ हैं। सीता हैं। उनसे बड़ी पटती है बहू की। उन्हीं से मिलने-जुलने जाती है। लेकिन ई गाँव तो भभीखन है। बस जहाँ देखो एक दूसरे की निन्दा। हुँह। कनिया से मिलने जाती है? जैसे कोई जानता नहीं। बुझारथ बुलाता होगा, हाँ।" सीरी ने छबिलवा की काँख में एक खुदक्का मारा और आँख दबाकर इशारा किया। विपिन कुछ दूर बैठा था। छबिलवा देखते ही सकपका गया। तीखा धुआँ गले के नीचे उतर गया। चिलचिलाती हुई खाँसी से उसका सारा जिस्म दलदला उठा। वह एकदम से निढाल हो गया। साँसें लौटीं तो ज़ोर से सिरिया से सुनाकर बोला—"जरा बगदैंया से हो आयें हो सिरी भाई। आज भैंइ-सिया नहीं लौटी।" सीरी कुछ कहता उसके पहले वह सिवान की तरफ़ लपक पड़ा।

तभी विपिन ने देखा कि बुट्टन भी आकर बरगद की जड़ में बैठ गया

है। अब तक कल्पू भी चुप था। मुर्दे की तरह निश्चेष्ट लगता था। अब बुट्टन के आ जाने से जैसे जी गया हो। वह भी धीरे से घिसक कर बुट्टन के पास आ गया। तीनों एक में एक सर मिलाकर जाने क्या बतियाते रहे।

सहसा गाँव की समाधि को तोड़ता हुआ बैंड बाजा बजने लगा। आगे-आगे बजनियाँ, पीछे-पीछे गीत गाती गाँव की औरतें।

"ई क्या होने लगा? किसी के यहाँ पुजैया है क्या?" हरखू सरदार का चेहरा अचानक खिल गया। वे विपिन की चुप्पी से बेहद कुढ़ रहे थे। बाजे की आवाज़ ने उन्हें गम्भीरता को साँसत से मुक्ति दिला दी। वे चहक कर बोले—"अपना गाँव भी मिसिर जी एक ही रसीला है। महावीर सामी क़सम इसे ही घरफूँक मस्ती कहते हैं। खाने को ठिकाना नहीं और पुजैया में बैंड बाजा।"

"देवनाथ आया है विपिन बाबू। आपको तो ख़बर मिली होगी?" जग्गन मिसिर ने हरखू सरदार की दार्शनिक प्रसन्नता की उपेक्षा करते हुए कहा—"कल पूछ रहा था आपके बारे में। यह पुजैया उसी की है। झब्बू बो भौजी ने मनौती मानी थी। जब लड़का डाक्टरी पास करके आ गया तो बैंड बाजा बज रहा है। मैं तो भूल ही गया। चलूँ, नहीं झब्बू भैया तिड़क जायेंगे।"

देवनाथ के आने के समाचार से विपिन बहुत ख़ुश हुआ।

"तो झब्बू उपधिया का लड़का डागदर हो गया?" हरखू सरदार ने पैंतरा बदल लिया। आदमी यदि हर स्थिति में अपने को ख़ुश रखना ही चाहे, तो कठिनाई कैसी। उन्होंने चेहरे पर विपुल प्रसन्नता का भाव उभार कर कहा—"तब तो ज़रूर बैंड बाजा बजना चाहिये। महावीर सामी क़सम ऐसा सीधा और गऊ लड़का तो हमने देखा नहीं। एकदम हीरा है देवनाथ। डागदरी जैसी आमदनी किसी काम में नहीं। क्यों जी मिसिर जी, है कि नहीं? देखिये, कस्बे का कानू डागदर कैसा रुपया भोर रहा है।"

मिसिर ने कुछ जवाब नहीं दिया। चल पड़े। विपिन भी उठ पड़ा।

उपध्या जी अपनी दालान में तख़्त पर बैठे हैं। हाथ में 'कल्याण' का एक अंक दबाये हुए कुछ पढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। पास की चारपाई पर देवनाथ के साथ गाँव के कई जन बैठे गप्पें कर रहे हैं। कोई बातचीत के बीच ही में धीरे से अपना हाथ आगे बढ़ाकर बोला—"ज़रा बेटा, हमारी नबुज़ तो देखो।"

देवनाथ हँसते हुए बढ़े हाथ को थामने ही वाला था कि उपध्या जी बोल पड़े—"अरे कन्ता बाबू, ई सब काम एकन्ते का है। ऐसा नहीं कि जब हुआ, हाथ बढ़ा दिया। नबुज़ का मामला बड़ा सूक्ष्म होता है। और अभी तो साइत-मुहूरत भी नहीं हुआ। जब काम-धाम शुरू हो जाये, तब ठीक से होगा।" उपध्या जी इस तरह मुसकराये कि मानो लोगों को हँसाने के लिए ही कह रहे हों—"और फिर ख़ाली हाथ नबुज़ थोड़े धराया जाता है सरकार? आप लोग तो गाँव के मालिक राजा हैं। कुछ दच्छिना भी तो चाहिये।" उपध्या जी बड़े ज़ोर से हँस पड़े। कन्ता बाबू ने बढ़ा हुआ हाथ पीछे खींच लिया। कुछ झेंपते हुए बोले—"ठीक बात है, ठीक बात है उपध्या जी।" वे उठकर चलने लगे।

"अरे चल कहाँ दिये सरकार। अभी कुछ देर बैठो बाबू। देवी माता का परसाद लेकर तब जाना। अब लोग आ ही जाती हैं। कब की गयी हैं। हाँ।"

उपध्या जी ने उँगली लगे पन्ने को फिर पलटा और 'कल्याण' में मगन हो गए। बाबू कान्ता सिंह मन मारकर चुपचाप बैठ गये।

उपधाइन जी देवी पूजा से लौटीं। उन्होंने सबको एक-एक लड्डू का प्रसाद दिया। उपध्या जी को प्रसाद देते वक़्त वे इस तरह मुसकरायीं जैसे उनकी हँसी बहुत बेशक़ीमत है। उपध्या जी ने लड्डू लेकर माथे से लगाया। उनकी आँखें किसी अनजानी कृतज्ञता से भर आयीं। उपधाइन मिठाई की हाँड़ी लिये आँगन में चली गयीं। उनके पीछे-पीछे अनेक लोग, लड़के-लड़कियाँ, चरवाहे, कमकर आदि मक्खियों की तरह भनभन करते झुण्ड बाँधकर चल पड़े।

शाम को विपिन उपध्या जी के दरवाज़े पर जा पहुँचा। उसे देखते ही झब्बूलाल चारपाई से उठकर खड़े हो गये।

"पालगी महराज जी !"

"आओ विपिन राजा। जीवो जीवो, बड़े भाग कि आपके चरण पड़े। अरे निक्कू।" उन्होंने अपने मझले लड़के को हाँक पर हाँक देकर बुलाया, पर जब कोई उत्तर न मिला तो वे खुद ही घर में चले गये और एक साफ़ बिस्तर लेकर लौटे। फिर उसे विपिन के सिरहाने रखते हुए बोले—"ठीक से बैठ जाओ विपिन बाबू। अरे नहीं, इसमें कष्ट की क्या बात ? हाँ, सिर के नीचे रख लो।" विपिन बिस्तरे पर उठंगकर बैठ गया। तभी देवनाथ भी आ गया। उसी चारपाई पर बैठकर बोला—"इम्तहान खतम हुआ तो आपने खबर भी नहीं दी। सीधे गाँव चले आये। होस्टल गया तो आपके साइड पार्टनर ने कहा कि वो तो उसी दिन घर चले गये।"

"हाँ भाई, थोड़ी जल्दी थी। रामनवमी को ही घर पहुँचने की बात लिख चुका था कनिया को। सोचा कि न जाने से कहीं चिन्ता न हो। इसलिए तुमसे बिना मिले जल्दी में चले आये।"

दोनों कुछ देर तक चुप रहे।

"अब क्या इरादा है ?" विपिन ने बात शुरू की।

देवनाथ कुछ न बोला। झब्बूलाल ज़ाहिरा तो 'कल्याण' में मगन थे, मगर उन दोनों की बातों को काफ़ी दिलचस्पी से सुन रहे थे। बोले—"मैं तो कहता हूँ विपिन बाबू कि कहीं नौकरी ढूँढ़ो। गवर्नमेंट की नौकरी के सामने बाक़ी सब फ़ेल है। है कि नहीं ?"

"हाँ, है तो। मगर नौकरी में कुछ है नहीं महराज जी। अव्वल तो नये आदमी को जल्दी अच्छी नौकरी मिलती नहीं। फिर उसमें भी बीस तरह की झंझटें हैं। आमदनी भी क्या ? गिनी-चुनी रुपल्ली हर महीने। देवनाथ का तो बड़ा ही सम्मानित पेशा है। जनता की सेवा। कुछ ऐसा क्यों न करें कि अपना भी लाभ हो और जितनी बन सके, उतनी जनता की सेवा भी हो। कहो तुम्हारी क्या राय है ?"

"मैं भी प्राइवेट प्रैक्टिस की सोच रहा हूँ, विपिन बाबू ! नौकरी की कोई उम्मीद नहीं है। ज़िला परिषद् में गाँव के अस्पतालों के लिए कुछ वान्टें हैं ज़रूर। मगर उसमें पैसे बहुत कम हैं। फिर जब देहाती अस्पताल में ही रहना है तो अपने बल-बूते पर ही कुछ क्यों न करें ?"

"ठीक है। बिलकुल ठीक है। मैं भी यही सोचता था। एक अच्छी सी डिस्पेंसरी खोल लो। जम जाओ भगवान् का नाम लेकर। चल जाने पर है। तुम्हारा बर्ताव-व्यवहार अच्छा है ही। रोगी आयेंगे। धीरे-धीरे प्रचार भी हो जायेगा। घर बैठे खासी आमदनी हो जायेगी। शुरू-शुरू में थोड़ी दिक़्क़त हो सकती है। मगर बाद को इसकी क़सर निकल जायेगी। क्यों महराज जी ?"

"ठीक ही है विपिन बाबू। आप लोगों का यही निर्णय है तो ठीक ही है। परन्तु बाबू, गाँव घर की डागदरी को लोग गाजर-मूली समझ लेते हैं। यह सोच लीजिए। बारे सेवा की बात जो है सो है। परन्तु सेवा ही से तो पेट नहीं चलेगा। इसके पश्चात् लोग निन्दा भी करेंगे। फ़ीस भी न देंगे। सब काम मुफ़त में चाहेंगे।"

"सब मुफ़त में कैसे होगा महराज जी। दवा तो मुफ़्त में मिलेगी नहीं। रही फ़ीस की बात तो उसमें थोड़ा गाँव घर का लिहाज़ तो करना ही पड़ता है। आस-पास के गाँवों में भी कहीं कोई डाक्टर नहीं है। सब जगह ज़रूरत रहेगी। मज़े से चल जायेगा।"

एक क्षण सब चुप रहे। झब्बूलाल इस निर्णय से बहुत सन्तुष्ट नहीं है। यह समझते देर न लगी, पर विपिन किसी भी हालत में देवनाथ को बाहर जाने नहीं देना चाहता था। इसलिए बोला—"तो महराज जी नेक काम में विलम्ब कैसा ? कोई अच्छा सा मुहूर्त निकालिए। कुछ सामान-वामान भी तो खरीदना पड़ेगा।"

"हाँ भई, सामान तो बहुत चाहिए। दवा-दारू में हज़ार दो हज़ार लगा देना कोई कठिन काम नहीं है। मगर खोलना ही है तो क्यों न क़स्बे

में खोलें। वहाँ ज़्यादा ठीक पड़ेगा। सुविधा भी रहेगी। क्यों देवनाथ बेटा, तुम्हारी क्या सम्मति है?"

"क़स्बे में तो कई डाक्टर हैं पिता जी। वहाँ खोलना ठीक भी है, बुरा भी है। नये आदमी के लिए रुपये से अधिक आवश्यकता यश की है। अगर मिल जाये तो पहले के जमे-जमाये दस डाक्टरों के बीच में भी कोई दिक़्क़त नहीं होती। लेकिन अचानक उनके बीच में जाने से तो ईर्ष्या होगी। वे लोग भरसक कोशिश करके मुझे जमाने नहीं देंगे। इसलिए यहीं खुले डिस्पेंसरी। अगर भाग ने साथ दिया तो बाद में क़स्बे के बारे में भी सोचेंगे।"

देवनाथ विपिन की तरफ़ देखकर हँसा। विपिन ने राहत की साँस ली। देवनाथ उन बातों को भूला नहीं है। विश्वविद्यालय में इकट्ठे बैठ कर वे दोनों अपने गाँव की उन्नति के हज़ारों मनसूबे बाँधा करते थे। देवनाथ उस समय भी अपने पिता की ओर से आनेवाली बाधाओं की बात किया करता था। विपिन उसे हमेशा ही उत्साहित करता रहता।

"अच्छा भई, जब दोनों मित्रों की यही राय है तो मैं विरोध क्यों करूँ? जाकर सामान-वामान खरीद लाओ। एक दो आलमारियाँ भी चाहिए, कुर्सी-मेज़ भी, क्यों विपिन बाबू?"

"हाँ दवाएँ और दूसरे ज़रूरी सामान मँगा लीजिए अभी। कुर्सी-मेज़ तो मेरे यहाँ भी बहुत से पड़े हैं। दो-चार मँगा लीजिए तब तक।"

दोनों वहाँ से उठकर घूमने चल पड़े।

"अपना रिजल्ट तो देखा होगा आपने?" देवनाथ बोला।

"हाँ देख लिया है।"

"क्यों ख़ुशी नहीं हुई शायद। फ़र्स्ट क्लास नहीं आया। लेकिन विपिन बाबू, इस साल पूरे बैच में सिर्फ़ एक लड़का फ़र्स्ट आया था। मेरा ख़्याल है एम० ए० इतिहास में सौ लड़के तो रहे ही होंगे?"

"ज़्यादा ही समझो।"

"फिर क्यों नाख़ुश हैं आप? न सही फ़र्स्ट क्लास। सर्वोत्तम लड़कों में दूसरा स्थान पाना क्या खेल है?"

"खेल नहीं सही। फ़र्स्ट क़्लास फ़र्स्ट क्लास ही है। ख़ैर छोड़ो।"

दोनों चुप हो गये।

शाम हो रही थी। बरसात की साँझ ऐसे भी मनहूस होती है। और उस साँझ का तो और भी क्या कहना, जो आसमान की किचराई आँखों से झाँक रही हो। विपिन सोच रहा था कि शाम को केले के पत्ते इतने रहस्यमय क्यों हो जाते हैं। हरे-हरे निढाल पंख की तरह सुन्न, निश्चेष्ट। पूरा गाँव धुएँ के घोंसले में बन्द था। सिवान से ढोर, चरवाहे सभी सरक कर गाँव चले जा रहे हैं, शरण पाने, घर की छाया में, पर वहाँ घर क्या होता है? घर का एक आभास!

• •

दस

कुर्कीवाले दिन से आज तक क़रीब दो महीने हो गये, पर पुष्पा से विपिन की भेंट न हो सकी। इस बीच वे एक दूसरे से छिपते फिरे, ऐसा कहना तो ठीक न होगा, किन्तु एक भाव था ऐसा ज़रूर दोनों के मन में। एक अबूझ अनजाना सा भाव, जो निपट एकान्त में ही साकार हुआ करता है और रहस्य को जाननेवाले किसी निकटतम से भी अपने को छिपाता रहा है। पुष्पा सोते-जागते, काम करते, इधर-उधर घूमते विपिन की ही याद में खोई रहती।

चचिया के कहने से ही वह विपिन से रुपये माँगने गयी थी। चचिया को ऐन रामनवमी के दिन समाचार मिला कि विपिन आये हैं। मन में थोड़ी शंका थी। वे बहुत दिनों से गाँव नहीं आये। पता नहीं पहचानेंगे भी या नहीं। शहर में रहते-रहते आदमी कितना बदल जाता है। चाँदनी रात का वह उजास अब भी पुष्पा की आँखों में उसी तरह शीतल माया-नगर की सृष्टि कर देता है। वह धड़कते दिल को बँधी बाँहों में समेटे बखरी के पीछे प्रतीक्षा में खड़ी थी। और जब विपिन ने उसे पहचान लिया, तो वह जैसे एक निधि पा गयी। वे रुपये न भी दे पायेंगे तो क्या हुआ। पुष्पा को उन रुपयों से हजार गुना बड़ी क़ीमत का विश्वास मिल गया है। वह एक क्षण बेसुध की तरह ज़मीन पर ही देखती रह गयी

थी। इच्छा हुई कि आँखें उठाकर विपिन को एक बार फिर देख ले, पर बहुत बरज़ोरी करने पर भी आँखें उठ न सकीं। जाने कितनी पुरानी डोरी है वह। दिनों, महीनों नहीं बरसों, वह निरन्तर घूम-घूमकर उसे बाँधती रही है। इसने सिर्फ़ मन को ही तो नहीं बाँधा। इसकी ऐंठन में भीतर का अहसास भर ही तो नहीं बँधा। यह तो हाथ, पैर, कमर, सभी कुछ को, अंग-अंग को बाँध चुकी है।

उस दिन जब पुष्पा विपिन के सामने खड़ी थी तो उसे लग रहा था कि अचानक यह डोर जिसके होने का वह बोध भी भूल गयी थी, कसती चली जा रही है, और निरन्तर उस कसाव के बीच एक अनजानी ख़ुशी भरी पीड़ा में डूबती जा रही है। उनके सामने इतने दिनों के बाद खड़ा होने का अवसर भी आया, तो हे भगवान्, मैं किस पंक में डुबोकर खड़ी कर दी गयी। कहीं उन्हें मालूम हो गया कि यह सब कुछ बबेला पुष्पी के लिए है, तो वे क्या सोचेंगे। वह उस रात बहुत कोशिश करने पर भी सो न सकी। मन बहेतू पंछी की तरह जाने कहाँ-कहाँ चक्कर लगाता रहा। वह कई बार अपने पर भी खीझी। छिः ऐसा सुख क्या इस अभागी के माथे में लिखा है! झूठे सपने अपना ही उपहास करते से प्रतीत होते।

अलसायी आँखें लगी ही थीं कि धीरे-धीरे साँकल खड़कने की आवाज़ आयी। पुष्पा चारपाई से उछलकर खड़ी हो गयी। उसके मन में कोई शंका ही नहीं उठी कि साँकल की यह झनझनाहट किसी और के हाथों से उपजी होगी। एक क्षण वह बिल्कुल विजड़ित सी आँगन में खड़ी रही। माँ सोयी थी। पिता जी कमरे में खाँसते-खाँसते जाने कब के निढाल हो गये थे। वह धीरे से दबे पाँवों दालान में आयी और किवाड़ खोलकर खड़ी हो गयी। पुष्पा न चौंकी, न झिझकी। उसने एक नज़र में ही सामने वाले को देख लिया था। अब वह चुपचाप ज़मीन की ओर देखती बीचों-बीच दरवाज़े में खड़ी थी।

"पुष्पा, ये रुपये हैं, चार सौ।" विपिन की आवाज़ में एक कम्पन

थी। "लो, रख लो इसे।" विपिन रुक-रुककर बोल रहा था। पुष्पा ने वैसे ही ज़मीन पर देखते हुए, हाथ बढ़ा दिये थे।

पुष्पा के हाथ पर नोटों को रखकर विपिन ने अपने दोनों हाथों में उसकी हथेली बन्द कर ली थी। मानो अपने पूरे अन्तर्मन से वह उसे आश्वस्त कर रहा हो। पुष्पा ने वह हाथ खींचा नहीं था। सारा शरीर काँटों से भर गया था और तभी वह सिसककर रो पड़ी थी।

विपिन ने हाथ छोड़ दिया था और वह दरवाज़ा हेल कर दालान में आ गया था। यह दालान उसके लिए अपरिचित कब थी। पर आज वह सचमुच एकदम अनजानी जैसी लगती थी। वह बिना कुछ बोले पुष्पा की पीठ थपथपाता रहा। पुष्पा की हिचकी अभी जारी थी। जाने क्या था उस हृदय में, वर्षों की यादों, कल्पनाओं और सपनों से बुना हुआ, जो जैसे रुलाई और हिचकियों में ही अपनी अभिव्यक्ति पा सकता था। विपिन घबरा रहा था। भोर हो गयी है। बहुत से लोग तालाब की तरफ़ आने-जाने लगे हैं। यहाँ ज़्यादा देर तक रुकना ठीक नहीं है अब। पर वह पुष्पा को कैसे समझाए। यह अब भी वैसे ही रोये चली जा रही थी। विपिन ने दोनों हथेलियों में उसके मुख को थाम लिया। ऊपर उठी आँखें बन्द थीं। पलकें आँसुओं से तर थीं। विपिन के सामने दरवाज़े से तेरस के चाँद की रोशनी उस गोल चेहरे पर इस तरह पड़ रही थी कि एक तरफ का उठा हुआ चिकना गाल पूरी तरह प्रकाशित लग रहा था। उसने अपना मुँह उस उद्भासित अंश पर रख दिया। और अपने होंठों से उसने पलकों के नीचे चमकते हुए आँसुओं को पोंछ दिया।

"जाओ। घबराना मत, सब ठीक हो जायेगा।" विपिन की आवाज़ में केवड़े के फूलों की गंध थी, और पुष्पा इस गंध से जाने कितनी-कितनी परिचित है। वह चुपचाप अलग हटकर खड़ी हो गयी। विपिन ने जाते-जाते उसके हाथ को फिर हाथों में दबा लिया और एक क्षण उसकी आँखों में देखता रहा, फिर तुरन्त झटके से निकलकर फाटक के पार हुआ और अँधेरी गली में खो गया।

इसके बाद भी दो बार वे रास्ते में आते-जाते मिले। विपिन उसकी ओर देखकर भी न देखता सा प्रतीत होता। पुष्पा दीवाल में सटकर सारे शरीर को समेटकर इस तरह से निकलती, कि वह विपिन की छाया से भी दूर रहना चाहती है। पर दोनों के मन में एक क्षण की उस निकटता के कारण भी तूफ़ान सा उठ जाता। दोनों ही एक दूसरे के मन के इस रहस्य को जानते थे। इसीलिए दोनों का दोनों को देखकर अपरिचित सा एक दूसरे के सामने से गुजर जाना औरों के लिए जैसा भी सीधा-सादा व्यवहार लगे, उनके लिए तो यह नाना अर्थों से भरा बोध बन जाता।

●

उस दिन बुझारथ सिंह किसी काम से खुदाबख्स के साथ क़स्बे चले गये थे। गाँव में वे सबसे अपना कार्यक्रम बताकर तो गये नहीं, पर गाँव में दूसरे का कहीं जाना-आना भी रहस्य से ढँका रह जाये तो फिर गाँव कैसा। बुझारथ सिंह की अनुपस्थिति की ख़बर मिली होगी तभी तो चचिया पुष्पी को साथ लेकर बखरी में आ रहीं।

कनिया उन्हें देखकर खड़ी हो गयीं।

"आओ चाची!" उन्होंने चारपाई पर सिरहाने की ओर चचिया को हाथ पकड़कर बिठाया। उनके हाव-भाव से यह भाँप पाना एकदम मुश्किल था कि उनके मन में इतने दिनों बाद आनेवाली चचिया के प्रति कोई व्यंग्य या उलाहना का भाव है या नहीं। उन्होंने तो चचिया से इस विषय में कोई बात ही नहीं की। चचिया को बिठाकर जैसे अचानक उन्हें लगा हो कि उनके साथ पुष्पा भी आयी है और वे ललककर उससे जा मिलीं।

"बाह बा, बहुत दिनों के बाद आज चाँद उग आया, किधर से?" पुष्पी उनकी बात से थोड़ा लजाती चौकठ के पास दुबककर बैठने को हुई कि कनिया ने कलाई पकड़कर ऊपर को बरजोरी उठाया ताकि वह वहीं न बैठ जाये! शीला से मचिया लाने को कहकर वे पुष्पी की आँखों में

झाँकती-मुसकराती रहीं। शीला ने मचिया रख दिया तो वे बाँह को शिथिल करके बोलीं—"हाँ, अब बैठने दूँगी। बैठ जाओ।"

"नहीं आप बैठिये भौजी इस पर।" पुष्पा ने मचिये पर बैठने में बहुत नाहीं-नुकर की, किन्तु कनिया माननेवाली न थीं। पुष्पा लाचार चुपचाप बैठ गयी। कनिया चचिया के पैताने बैठकर बहुत साफ़ और स्वच्छ ढंग से हँसते हुए बोली—"कहो चाची, तुमने तो हमारा हाल-चाल लेना भी बिसार दिया।" कनिया शीला को पानी लाने को कहकर चचिया की ओर देखकर कहती गयीं—"अइय्या थीं, तो तुम भी थीं। अब अइय्या नहीं हैं तो तुम भी नहीं हो। अइय्या छोड़कर गयीं तो मैंने किसी तरह धीरज धर लिया कि चलो चचिया हैं। उनके रहते मुझे अइय्या का सोग उतना खलेगा नहीं। मैंने तो चाची बहुत-बहुत आशा बाँधी थी तुमसे। पर तुमने तो मुझे एकदम से अलग निकालकर रख दिया।"

"ऐसी तो कोई बात नहीं रानी।" चचिया बोलीं, मगर अचानक उनका गला रुँध गया—"ई तो बेटी, भगवान् जानते हैं ऊपर कि ये हिरदा में कनिया बेटी के लिए कितना ख़ियाल किया है। हम तो रानी बस तुम्हारा मुख जोहती रहीं।" आगे चचिया कुछ बोल न सकीं और उनकी आँखें आँसुओं से भर आयीं।

शीला एक कटोरी में तोड़ी हुई मिश्री और लोटे में पानी ले आयी। कनिया के आग्रह पर चचिया ने मुँह-हाथ धोकर पानी पीया। कनिया हुक्का पीती नहीं। मलकिन पीती थीं। उनके न रहने पर हुक्का धूल में सना किसी कोने में रखा था। अब उसे कौन धोये-भरे। कनिया ने बीड़ी जलाकर चचिया को दिया।

"तुम पानी नहीं पीयोगी क्या खिलाड़ी!" कनिया ने हँसते हुए पुष्पा से कहा। कनिया आगे कुछ और न कहें इस डर से पुष्पा हँसती हुई कटोरी से मिश्री उठाकर शीला के साथ बगल वाले घर में चली गयी। चचिया सन्तोष की मुसकराहट बिखेरती बीड़ी सुड़कती रहीं।

"चाची!" कनिया बोली। उन्होंने इधर-उधर ताक-झाँककर देखा

कि कहीं लड़कियाँ आस-पास तो नहीं हैं। फिर पूरी तरह आश्वस्त होकर कहने लगीं—"तुम्हारी बिपत की हाल मैंने सुनी थी। जिसने तुमको ऐसी मझधार में डाला, उसको तुम भी जानती हो, मैं भी जानती हूँ। मगर इसका मतलब यह तो नहीं कि हम सभी तुम्हारे दुश्मन हो गये।"

"अब मैं उसमें किसका दोष दूँ बेटी!" चचिया इस प्रसंग से काफ़ी संकोच का अनुभव करते हुए बोलीं—"मैं बुझारथ बचवा को भी क्यों दोष दूँ। उनको जो ठीक लगा कर दिया। पर हाँ, उन्होंने यह सब ठीक मौक़े पर नहीं किया। पुष्पा के बाबू का जी बेराम था। कुछ दिन बरा जाते तो उतना न सालता बेटी। और क्या कहें। हम लोग तो सब दिन तुम्हारा ही नमक खाकर जीये। मारो तो तुम्हारा ही पाँव पकड़ेंगे, दुलारो तो तुम्हारा ही पाँव पकड़ेंगे। बस, एक दया करो, बेटी तुम तो जानती ही होगी कि कुर्की के रुपये भरने के लिए भी तुम्हारे ही पाँव पड़ी। चारों तरफ़ तो आग लगी है। पर पैदावार की बात तुमसे छिपी थोड़े ही है। जैसे भी होगा, पेट काटकर भी, हम तुम्हारा रुपया भर देंगे। बस इतनी किरपा ज़रूर करना रानी कि हमको बेईमान मत समझना।" चचिया की आँखें फिर भरभराने लगी थीं।

"कैसी बात करती हो चचिया।" कनिया उनके मन की इस व्यथा से खुद ही जैसे बहुत दुखी थीं, उन्होंने चचिया के सामने अपने मन को पूरी तरह खोलकर रखते हुए भाव में कहा—"क़र्ज-वर्ज़ की बात न करो चचिया। हमने जितना तुम्हारे साथ किया, वही मुख में कालिख लगाने के लिए काफ़ी है। पता नहीं आज अइय्या होतीं तो क्या करतीं। वे तो यह सब सुनकर ही माथा पीट लेतीं, अब जो हुआ उसे भूल जाओ।"

"नहीं बेटी, करज़ तो करज़ ही है।" चचिया कहती गयीं—"ऐसे भी तुम्हारा दिया क्या कम है। मैं चाहूँ भी तो क्या उस सबसे उरिन हो सकती हूँ। बस, यह जवान लड़की सर पर है। इसी का गोसैंयाँ किसी तरह पार-घाट लगा दें। हम बूढ़े-बूढ़ी के लिए ज़िन्दगानी खींचने के लिए बहुत है।"

ऊपर कोठे से आँगन में लोगों की बातचीत सुनकर जिज्ञासावश विपिन भी उतर आया। सामने चारपाई पर चचिया और कनिया बैठी थीं और वे दोनों एक दूसरी के मुख में मुख मिलाकर जाने क्या-क्या फुसफुसा रही थीं। बगल के कमरे से पानी पीकर पुष्पा आ गयी थी और मचिया खींचकर बैठने ही वाली थी कि सामने विपिन को देखकर चुपचाप खड़ी रह गयी।

"आओ अम्मा, चलो भी कि दिन भर बतियाती ही रहोगी।" पुष्पा ने यह बात इतनी ज़ोर से कही थी कि विपिन और कनिया दोनों सुन लें। पुष्पा खूब जानती थी कि यह बात उसने नहीं कही है। विपिन भी जानता ही होगा कि पुष्पा की उतावली कितनी सही और वास्तविक है।

कनिया ने सामने विपिन को देखा तो मुस्कराकर चारपाई से उठ पड़ीं। विपिन उनकी इस मुस्कराहट से बहुत घबराता है। कनिया का व्यक्तित्व भी अजब पारदर्शी आईना है। पता नहीं इस चेहरे पर जो कुछ झलकता है, वह खुद के अन्तर्मन का प्रतिबिम्ब है, या दूसरे के मन की छाया। विपिन ने कनिया को अक्सर ममतालू माँ के रूप में ही देखा है। किन्तु परेशानी और संकट के क्षणों में वे सभी रहस्य समझनेवाली, तटस्थ व्याख्या और निर्णय देनेवाली मित्र भी लगती हैं। उनके ये दोनों ही रूप विपिन को जाने कितना-कितना आश्वस्त करते हैं। पर कभी-कभी कनिया की उमर से एक लम्बा नीरस समय अचानक कटकर अलग हो जाता है। उनके गोरे गालों की झुर्रियाँ हवा की मरोड़ों से खिचकर मिट जाती हैं। ललछौंहें सूरज का उजास पानी में थिरक उठता है और वे किसी बीते दिन के माया-सरोवर में नहाकर चंचल किशोरी बनकर मचल उठती हैं। कनिया का यह रूप विपिन को बहुत परेशान कर देता है। इस रंग में उनके प्रौढ़ व्यक्तित्व का उतरना एक अजीब मानसिक क्रान्ति का परिणाम होता है और विपिन को लगता है कि अब वे या तो उसे विवाह करने की सलाह देंगी या बहुत 'मूड' में हुईं तो पूछेंगी कि कहीं यदि किसी से कुछ चल रहा हो, तो वह साफ बता दे, कनिया की ओर से उसमें कुछ भी विरोध न होगा।

इतना ही नहीं, यदि इसके लिए कोई छोटा-मोटा युद्ध भी हुआ तो कनिया उसमें लक्ष्मीबाई का पार्ट अदा करने के लिए पूरी तरह तैयार हैं।

उस दिन भी जब कनिया चारपाई पर से मुस्कराती हुई उठीं तो विपिन को लगा कि वे मायावी सरोवर में पूरी तरह उतर चुकी हैं और उनके बालों की बिखरी लटों से रहस्यमयी मुस्कराहट की अगनित बूँदें चू-चू कर बिखर रही हैं।

"बिप्पी!" उन्होंने विपिन के चेहरे पर मुस्कराते हुए देखा—"यह तो देखो, कौन है?"

कनिया सिकुड़ती हुई पुष्पा के मुख से घूँघट को बरज़ोरी ऊपर करते हुए खिलखिलायीं—"पहचाना इन्हें?"

विपिन अच्छी तरह पहचानता है इस चेहरे को। पर एक क्षण ऐसा भी तो होता है, एकदम कृत्रिम, किन्तु ऊपर से पूरा स्वाभाविक, जब आदमी पहचानते हुए भी न पहचानने का नाटक करता है। विपिन के चेहरे पर अपरिचय और परेशानी के मिले-जुले भाव उसकी मासूमियत के प्रमाण बनकर घने होने लगे थे।

कनिया उसकी यह परेशानी देखकर जैसे बहुत खुश हुई हैं। जाने तभी उनको कहाँ से बचपन की सीखी पंक्तियाँ याद हो आयीं और वे ताली बजा-बजाकर गा उठीं—

> चोली रे पहिरि हम हाट गए सुनु बालहिया।
> चोर परीखन लागु परम हरि बालहिया॥

"अरे बिप्पी, यह तुम्हारी बालहिया, बालसखी पुष्पा हैं। इन्हें नहीं पहचाना तुमने। हद कर दी भाई।" चचिया उल्लास और निराशा से मिली-जुली अजीब हँसी में डूब-उतरा रही थीं। शीला चौक पर बैठी मुँह पर आँचल लगाये हँस रही थी और पुष्पा? पुष्पा तो जैसे ओड़हुल का फूल थी लाल सिंधोरे पर रखा हुआ, टटका फूल!

कहीं कनिया आगे कुछ और न कहें, इसलिए वह आँखें तरेरकर

उनकी ओर देख रही थी। उसकी बड़ी-बड़ी शोख चंचल आँखें आज कातरता और गुस्से से बुरी तरह थरथरा रही थीं।

विपिन यह सारा दृश्य एक ऐसी भाव-भंगी के साथ देख रहा था, जिसमें आदमी परेशानी की स्थिति से निकलने की जितनी कोशिश करता है उतना ही अधिक फँसता जाता है। सबकी हँसी में हँसी मिलाने के लिए हँसना ज़रूरी है, किन्तु विपिन की आँखें निरन्तर पुष्पा के चम्पई बदन की लरज़ती मरोड़ों में अँटक रही थीं। वह सचमुच अपने को इस काया और उसके भीतर के स्नेह-भरे मन के अवदान का पात्र समझकर विचित्र तरह के अर्थवान् बोध में खोया जा रहा था।

"सात-आठ साल हो गये बिप्पी।" कनिया जाने किस अदृश्य को निकट खींचती हुई कहती गयीं—"तब पुष्पा इसी घर में सुबह से शाम तक रहती थी। एक क्षण भी नहीं था उसका, जब वह आँखों से ओझल हो। अइय्या ने कभी पुष्पा को अपने बेटों से कम नहीं समझा।" वे अचानक बहुत उदास सी हो गयीं—"अइय्या क्या गयीं, यह घर ही बदल गया। जिन्हें वे कलेजे का टुकड़ा समझकर सीने से लगाए थीं, आज वे हमारे लिए एकदम बेगाने हो गये, क्यों चचिया है न ?"

"बहू, तुम फिर वे ही बातें दुहरा रही हो।" चचिया अपराधी सा भाव लाते हुए बोली—"हम तुम्हारे लिए वे ही हैं जो पहले थे। न कभी बेगाने हुए, न होंगे।"

"तुम चचिया चाहे न हो, पर हमने तुमको बेगाना बनाने के लिए कुछ छोड़ा नहीं।" कनिया के मन में अब भी क़ुर्की की बातें उसी तरह बेध रही थीं। वे एकदम खामोश होकर छत की रेलिंग को एकटक देखती रहीं।

तभी दालान में जूते की मचमचाहट उभरती हुई पास आने लगी। चचिया और पुष्पा दोनों घबराकर बेबस हरिनी की तरह एक दूसरे की आँखों में देखने लगीं। कनिया वहाँ से उठीं। दालान के दरवाज़े पर जाकर खड़ी हो गयीं। उनको सामने खड़ा देख बुझारथ के पाँव एकाएक रुक गये। वे तुरन्त मुड़कर बाहरी निकसार की तरफ पीठ करके खड़े हो गये। कनिया जानती हैं कि बुझारथ की आँखों में इतना ताव नहीं कि वह उसकी ओर देख सके। कनिया जलती दीपशिखा की तरह थीं, जिनकी ज्योति के आगे वह घुग्घू की तरह आँखें मुलमुला लेता। सारी दुनिया में वह कितना भी निर्लज्ज और बेहया बनकर घूमे, आँख की लाज-शरम को भले ही पानी की तरह बहाये, कनिया के सामने आते ही उसके भीतर का कालुष्य उसे पूरी तरह जकड़ लेता। मुँह पर एक स्याह पर्दा आपोआप चढ़ जाता और वह आँख बचाकर निकल जाता।

"रमचन्ना नहीं है क्या ?" बुझारथ सिंह पीठ पीछे खड़ा होकर वैसे ही बोले—"ज़रा पानी भिजवा दो।" इतना कहकर वहाँ से हटकर वे बाहर बइठके में चले गये। कनिया मुड़कर फिर आँगन में आ गयीं। उनका चेहरा खिंचा था, पर यह भाँप पाना बहुत सहज न था कि उनके मन में कितनी खीझ और विरक्ति उभर आयी है। पुष्पा यह जानकर कि बुझारथ लौट गये हैं, ख़ुशी से भरी थी। इस आशा से कनिया का मुँह जोह रही थी कि यदि वह उसकी ओर देखें तो किंचित् मुसकराकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करे, किन्तु कनिया ने उसकी ओर देखा नहीं। वे सीधे भंडार घर में जाकर कटोरी में मिश्री रखकर ले आयीं और भरे पानी का लोटा शीलू को थमाते हुए बोलीं—"बाहर दे आ, बइठके में।" शीलू लोटा और कटोरी लेकर जब बाहर निकल गयी तो कनिया आकर चारपाई के पास बैठ गयीं। वे एकदम से बहुत गंभीर हो गयी थीं। उन्हें जैसे याद ही नहीं रहा कि यहाँ पुष्पा और चचिया भी बैठी हैं। विपिन बहुत पहले ऊपर छत पर चला गया था। पुष्पा और चचिया एक क्षण वैसे ही बैठी रहीं।

"अच्छा बहू, अब हमें छुट्टी दो।" चचिया चारपाई से उठकर बोलीं।

"आँ! जाओगी चचिया ?" कनिया ने कहा और पिछवारे वाले दरवाज़े तक माँ-बेटी को पहुँचाने के लिए दूसरे खंड में चली गयीं।

● ●

ग्यारह

शशिकान्त की नियुक्ति जब पूरबी नरवन के एक गाँव में हुई तो वह बहुत परेशान नहीं हुआ। हेड क्लर्क ने हँसते हुए उससे कहा था—"भई, पिछले बीस साल से यहाँ नौकरी कर रहा हूँ। और जाने इस बीच कितने तबादले देखे हैं, मगर आप पहले आदमी हो जो करैता स्कूल में नियुक्ति का समाचार सुनकर भी मुसकरा रहे हो। अध्यापकों में तो यह बात मशहूर है कि जिस पर अधिकारी नाराज़ होते हैं, उसका तबादला करैता-स्कूल में कर देते हैं।"

क्लर्क की बात सुनकर शशिकान्त ज़ोर से हँस पड़ा था—"मुझसे तो आप नाराज़ नहीं हैं न बड़े बाबू?"

बड़े बाबू ने किंचित् झेंपते हुए स्नेह के साथ कहा—"नाराज़ तो नहीं हूँ पांडे। दुःखी थोड़ा ज़रूर हूँ कि तुम्हारे जैसे प्रतिभावान् युवक की एक सड़ियल जगह में नियुक्ति हो गयी। माना कि जिसके अन्दर आग है, वह कहीं भी भेज दिया जाय, अपनी रोशनी फैलायेगा ही, मगर एक ज़हीन आदमी को मुर्दा जगह में 'डम्प' करना कोई बुद्धिमानी तो नहीं है। ख़ैर,

तुम्हें वहाँ भेजा जा रहा है, तो खास बात होगी ही। तुम्हारे हल्के के डिप्टी इन्स्पेक्टर ने तुम्हारे बारे में जो रपट भेजी थी, वह क्या मैं भूला हूँ। लिखा था कि इस तरह के लगनवाले यदि दो दर्जन अध्यापक भी इस जिले में मिल जायें तो शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति हो सकती है। अब करो भई क्रान्ति। मुझे तो लगता है तुम्हारी तारीफ़ के ये अलफ़ाज ही तुम्हारी बदनसीबी के बाइस हो गये।"

"अब जो हो बड़े बाबू, नियुक्ति हो गयी है और मैं इससे ख़ुश हूँ। सोचता हूँ शायद यह मेरी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी परीक्षा की घड़ी है। मैं तो बड़े बाबू इस बात में विश्वास करता हूँ कि हर इन्सान के लिए उसकी प्रतिभा और शक्ति के अनुसार कार्यक्षेत्र सौंपने का काम कोई अदृश्य शक्ति किया करती है। किसी जमे-जमाये शोहरत वाले स्कूल में जाता तो जो भी करता, वह पहले के किये-कराये का ही हिस्सा बन जाता। करैता के बारे में आप सब लोग इतना जानते हैं कि उस अन्धेरे में एक चिनगारी भी जला सका तो आप लोगों का स्नेह मिल जायेगा। बस, मुझे और क्या चाहिये।"

"अच्छा भाई, जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं तो सोचता था कि तुम नियुक्ति रुकवाने की अर्ज़ी देने आये हो। और मैं तुम्हें अपनी ओर से पूरा विश्वास दिलाता हूँ कि यदि तुम ऐसी अर्ज़ी दोगे तो मैं अपनी ताक़तभर तुम्हारी बात मनवाने की कोशिश करूँगा और मुझे उम्मीद है कि इसमें कामयाब भी हो जाऊँगा। तुम सोच लो, अभी भी मौक़ा है। बाद में अवसर बीतने पर पछतावे के अलावा हाथ भी क्या लगेगा।"

"अब तो बड़े बाबू आपकी सहानुभूति और प्रोत्साहन ही चाहिये।" शशिकान्त ने झेंपते हुए कहा, पर उसकी आँखें एक अजीब चमक से दीप्त हो रही थीं।

"अच्छा बेटे, मेरी सारी शुभकामनाएँ तुम्हारे साथ हैं।"

"धन्यवाद बड़े बाबू!" शशिकान्त झोला उठाकर काउण्टर से हट गया था।

पहली जुलाई को करैता स्कूल पर शशिकान्त पहुँचा तो उसे चारों ओर से कुछ जीवित धोखों ने घेर लिया था। अभी वह हेडमास्टर से मिल भी नहीं सका था कि स्कूल में पढ़नेवाले दस-बीस बच्चे उसे घेरकर खड़े हो गये थे। ये बच्चे हिन्दुस्तान के दूसरे बच्चों से किसी क़दर भिन्न न थे। न नाक में, न नक्श में। गन्दे ज़रूर थे, मगर यह भी कोई ऐसी बात नहीं जो नये मास्टर का ध्यान खींच सके। इन बच्चों की भोली-भोली मासूम आँखों में एक बार झाँकते हुए शशिकान्त काँप ज़रूर उठा था। इनमें निरीहता के साथ-ही-साथ एक ऐसी घिनौनी निराशा थी, जैसे अथाह जल के भीतर किसी भारी पत्थर में बँधी कोई नाज़ुक चिड़िया हो, जो लड़ते-लड़ते थककर निढाल हो गयी हो।

शशिकान्त का आना और लड़कों की खलबली की आहट हेडमास्टर को मिल गयी थी। हेडमास्टर मुंशी जवाहिरलाल अधेड़ उमर के आदमी थे। उनकी खोपड़ी पर बीचोंबीच बाल नदारद थे और चौगिर्द बचे हुए बाल कुछ इस क़दर उठे हुए थे कि जैसे उन्होंने कोई धूल सनी काली गोल टोपी पहन रखी है। उनका शरीर काफ़ी झुका था। पर तोंद काफ़ी उभरी थी। ये घुटने तक की गन्दी धोती पहने थे। शरीर में आधी बाँह की बंडी थी जिसका बाँही और गरदन का हिस्सा चीकट और काला हो गया था। वे पैरों से खड़ाऊँ घसीटते नये मास्टर की अगवानी में आ गये थे।

"क्यों खड़े हो जी इस तरह? जाकर बैठो अपनी जगहों पर। यहाँ क्या कोई रंडी का नाच हो रहा है?" मुंशी जवाहिरलाल लड़कों को झिड़ककर मास्टर शशिकान्त की ओर मुड़े। उसने हेडमास्टर साहब को अपना नाम बताते हुए नमस्कार किया। वह एक क्षण बूढ़े हेडमास्टर के चेहरे पर देखता रहा, जैसे उनके पूरे व्यक्तित्व की थाह ले रहा हो। वैसे उसके कान में अब भी उनका वाक्य मँडरा रहा था "यहाँ क्या कोई रंडी का नाच हो रहा है।" रंडी का नाच! क्या सुन्दर उपमा दी है इस बुज़ुर्ग ने। मगर इससे बुरा मानना भी कहाँ का न्याय होगा। जिस वाक्य को कहकर कहनेवाला इस तरह तटस्थ हो गया हो, जैसे उसने कुछ कहा ही नहीं, तो

सुननेवाले को क्या हक़ है कि वह उन शब्दों के उनको सही अर्थ और अर्थ की आत्मा से जोड़े ही।

"मैं यहाँ का हेडमास्टर हूँ मास्टर साहब!" मुंशी जवाहिरलाल ने तनकर कहा—"मेरा नाम तो आप जानते ही होंगे?"

"जी।" शशिकान्त अपना नाम बताने को उत्सुक हेडमास्टर के आगे हाथ जोड़कर तैयार था कि वे बतायें और उनका अभिनन्दन करें, मगर जब कुछ देर तक भी मुंशी जी ने अपना नाम न बताया तो उसने जोड़े हुए हाथों को नीचे कर लिया।

"यहाँ आइये, इधर आ जाइये।" मुंशी जी उसे भीतर वाले कमरे में लेकर पहुँचे—"इनसे मिलिये, आप हैं बाबू पुरसोतिम सिंह, आप कक्षा चार-पाँच की पढ़ाई का काम देखते हैं।" बाबू पुरसोतिम सिंह काफी हट्टे-कट्टे दुहरे बदन के इन्सान थे और वे प्राइमरी के मास्टर कम, फ़ौज के कमांडर अधिक प्रतीत होते थे। उनके भी बाल खिचड़ी हो गए थे, मगर चाँद पूरी तरह ढँकी थी। कनपटी के पास अलबत्ता काफ़ी बारीक चार अंगुल चौड़ी पट्टी कटी थी और इसी सबब से उनका मुँह बहुत लम्बा लग रहा था। वे कुर्ता पायजामा पहने थे। शशिकान्त ने उन्हें पहले हाथ जोड़कर प्रणाम किया, फिर हाथ मिलाया।

हेडमास्टर के कमरे में जाकर वह खड़ा हो गया। कोने की तरफ एक बहुत पुरानी मेज़ थी, जिसके तीन पैर तो साबूत थे, एक पूरा टूट गया था। टूटे हुए पैर के नीचे ईंटों की टुकड़ियाँ एक के ऊपर एक इस तरह जोड़ दी गई थीं कि वे मेज़ के ढाँचे में सहारा बनकर टूटे हुए पाँव का कर्तव्य अदा करें। मेज़ टूटी सामने की तरफ़ ही थी, लेहाज़ा उसका मुँह मोड़कर दराज़ वाले हिस्से को दीवाल से लगा दिया गया था। मेज़ के ऊपर ही स्कूल के सरकारी काग़ज़ात रखे थे। मुंशी जवाहिरलाल ने जहाँ-जहाँ दस्तख़त करने के लिए कहा, शशिकान्त ने कर दिये। इन सभी कामों से फ़ारिग होकर जब वह मुँह-हाथ धोकर तैयार हुआ तो मुंशी जवा-

हिरलाल ने उसे दर्जा दो और तीन के कमरे में ले जाकर लड़कों से उसका परिचय कराया।

"लड़को, अबे तेलिया कमीने, सब लड़के खड़े हैं और तू घिसनी काट रहा है बैठे-बैठे।" वह लड़का जिसे मुंशी जी ने 'तेलिया कमीने' के संबोधन से बुलाया था, रुँआसा होकर उठा और उठते-उठते ही ज़ोर से फुक्का मारकर रो पड़ा।"

"क्या हुआ बे?" मुंशी जी बिगड़ कर उसके पास पहुँचे। "इस तरह क्या अपशकुन कढ़ा रहा है, अयँ?" तभी शशिकान्त उस लड़के के पास पहुँच गया।

"क्या बात है बच्चे, किसी ने मारा है तुझे?" उसने बड़े प्यार से लड़के को सहलाते हुए पूछा।

"किसी ने हमारी रबर चुरा ली।" लड़का हुटक-हुटक कर बोला।

"अच्छा, यह बात है। अभी दिलाते हैं हम तुम्हारी रबर, तुम चुप हो जाओ।" लड़का आश्वासन पाकर चुप हो गया, पर वह अब भी बीच-बीच में हुटकने लगता था।

"हाँ तो लड़को, मैं कह रहा था कि ये हैं तुम लोगों के नये मास्टर बाबू, उहूँ, बाबू नहीं पंडित शशिकान्त पाँड़े।" मुंशी जी ने लड़कों की ओर तनकर देखा—"आज से तुम लोगों को यही पढ़ायेंगे। ठीक से पढ़ना। शैतानी नहीं करना। नहीं सुना कि किसी ने शैतानी की, तो जानते हो? क्या जानते हो? हाँ, मैं उसे उनचकर ठीक कर दूँगा, हाँ।" मुंशी जवाहिरलाल ने मुसकराते हुए शशिकान्त की ओर देखा—"लीजिए जनाब, सम्भालिए अपना क्लास।"

"जी, शुक्रिया" शशिकान्त ने उन्हें हाथ जोड़कर बिदाई दी।

शशिकान्त के बैठने के लिए जो लोहे की कुर्सी रखी थी, वह उसके पहले के अनेकानेक अध्यापकों के बदन की ऐंठन, निराशा और थकान का भार सँभालते-सँभालते अकड़ गयी थी। पैर बूढ़े पहाड़ी बकरे की तरह खुर के पास मुड़ गये थे।

"तो भई क्या नाम है तुम्हारा बच्चे!" उसने कुर्सी पर बैठते हुए उस बच्चे से पूछा जिसकी रबर खो गयी थी। लड़के ने सकपका कर गर्दन झुका ली।

"देखो भई, उठकर खड़े हो जाओ और अपना नाम बताओ।" लड़का उठकर खड़ा हो गया पर लजाकर उसने किंचित् मुस्कराते हुए गर्दन लटका दी, नाम फिर भी न बताया।

"बोलो बोलो, इसमें शर्माने की क्या बात है?"

लड़का इस बार थोड़ा सुगबुगाया और धीरे से बोला—"घीसू।"

"ओह, तो तुम शायद सोचते हो कि तुम्हारा नाम बहुत खराब है इसीसे नहीं बताते थे। अरे भाई नाम से क्या होता जाता है। और फिर तुम्हारा तो कितना शानदार नाम है। तुम्हारे रास्ते में जो भी रुकावट आयेगी, कठिनाई होगी, तो तुम सबको घिस के रख दोगे। यह तो बिल्कुल बहादुराना नाम है। है न, तुमको बहादुरी के साथ आगे बढ़ना है। लजाना-शर्माना ठीक नहीं। अच्छा तो तुम्हारी रबर खो गई है, है न?"

"जी नहीं, खोई नहीं, किसी ने चुरा ली है।"

"नहीं भाई, यह ठीक नहीं है। तुम्हें कैसे मालूम कि किसी ने चुरा ली है। तुमने देखा है किसी को चुराते? नहीं देखा न? फिर कैसे कह सकते हो तुम कि किसी ने चुरा ली। तुम ऐसा कहोगे तो तुम्हारे दूसरे सहपाठी सोचेंगे कि तुम उन्हें चोर बना रहे हो। वे लोग नाराज़ होंगे। और भाई हमारे क्लास के सभी लड़के राजा बेटे हैं, हैं न? चोरी क्यों करेंगे भला। तुमने कहीं रबर गिरा दी होगी, किसी ने मज़ाक करने के लिए धीरे से छिपा दिया होगा।" शशिकान्त घीसू से इतना कहकर पूरे क्लास की ओर देखकर मुस्कराते हुए बोला—"क्यों, तुममें से जिसने मज़ाक में रबर छिपा दी हो, वह खड़ा होकर घीसू को उसकी रबर दे दे और कहे कि भई अपनी चीज़ सम्भालकर रखा करो।"

लड़के एक क्षण अजीब तरह के आश्चर्य, कुतूहल और अपनत्व से नये मास्टर की ओर देखते रहे।

"उठो भई, कौन है वह बहादुर बच्चा, जल्दी उठकर आ जाओ।" बगल से एक साँवला लड़का उठ खड़ा हुआ और उसने मास्टर शशिकान्त के पास जाकर रबर उनके हाथ में रख दी—"हमने चुरायी नहीं थी, मास्टर साहब।" लड़के का जोश कुछ ठंडा पड़ने लगा था।

"बिल्कुल नहीं भई, कौन कहता है कि तुमने चुरायी थी। चोरी तो गन्दे और बेवकूफ़ लोग करते हैं। लो भई घीसू, यह रही तुम्हारी रबर। अब इसे सँभालकर रखो। है न?" शशिकान्त ने साँवले लड़के की पीठ थपथपाते हुए कहा—"कभी ग़लती हो भी जाये, तो हमें हर्गिज़ छिपाना नहीं चाहिए। तुरन्त बात कह देनी चाहिए। ऐसा करनेवाला धीरे-धीरे बहुत बड़ा इन्सान बन जाता है। है न। शाबाश। जाकर अपनी जगह बैठ जाओ।"

यह था शशिकान्त का पहला दिन, करैता के बदनाम स्कूल का पहला अनुभव।

करीब दो महीने बीत गये। इन दिनों में शायद ही कोई ऐसा दिन रहा हो जब शशिकान्त ने स्कूल के जीवन के बारे में न सोचा हो। यहाँ स्कूल का जीवन चलती हुई घड़ी की तरह समय को मापने का एक यंत्र भर था। कहीं कोई उल्लास नहीं, कहीं कोई परेशानी नहीं। स्कूल में पढ़ाई के अलावा और कोई काम ही न था। पढ़ाई भी एक बँधी-बँधाई परिपाटी का निर्वाह भर थी। एक के बाद एक नया दिन आ रहा था, मगर उसमें कहीं नयापन न था। एक अजब किस्म की मुर्दनी जैसे दीवालों के भीतर बदस्तूर क़ायम थी। गन्दे घिनौने लड़के, फटी-फूटी किताबें, गन्दे हाथ और किचरीली आँखें। उन्हें डाँट दो तो भी, हँसाओ तो भी, चेहरे में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता था। वह अक्सर रात के समय स्कूल के बाहरी दालान में चारपाई पर लेटा तरह-तरह के सपनों में खोया रहता।

करैता के स्कूल की इमारत नयी थी। अभी-अभी ही बनी है शायद। मगर दीवालें कितनी बदरंग और अफाट मुर्दनी से भरी हैं। लगता है जब से बनीं, कभी सफ़ेदी हुई ही नहीं। स्कूल दक्खिन तरफ़ बबुआन के

तालाब के भीटे पर बना था। जैपाल सिंह ने यही जमीन दी थी और उन्हीं ने एक कच्ची इमारत बनवा दी थी। हिफ़ाज़त और मरम्मत के अभाव में एक बरसात में स्कूल बैठ गया था। बाद में ग्रामसभा के सभापति सुखदेव, जैपाल सिंह और सुरजू सिंह के प्रयत्नों से नयी पक्की इमारत बनी। स्कूल के बाहर घासों से ढँका एक बहुत सुन्दर मैदान था, मगर वह गाँव वालों के लिए कुल्ला-फराकत के ही काम आता। बड़ी रात गये तक शशिकान्त तालाब के किनारे पेड़ की जड़ में बैठा सोचता रहता। सारा सिवान जैसे सिसकारियों में डूब जाता, उसे कहीं भी कोई रोशनी दिखायी न पड़ती।

कोई तब्दीली आये, इसलिए उसने मुंशी जवाहिरलाल से अलग अपने खाने-पीने की व्यवस्था की। बर्तन ख़ुद धो लेता, शुरू-शुरू में मुंशी जवाहिरलाल ने उसके आदर्शवाद की खिल्ली उड़ायी। नयी परिपाटी चलाकर लड़कों को बिगाड़ने का इल्ज़ाम लगाया, पर वह चुप रहा। उसने सोचा कि ये मामूली से लगनेवाले काम शायद कोई गहरा परिवर्तन ले आयेंगे, मगर ऐसा कुछ न हुआ। वह अपने खादी के कपड़े ख़ुद धोता। बहुत चटक और साफ़। उसकी पोशाक पर भी व्यंग्य होते, मगर वह अपने सहज स्वभाव को इन सब बातों के चलते छोड़नेवाला न था। दिन बीत रहे थे, मगर भीतर-भीतर कुछ मुर्दा-सा भी हो रहा है, वह सोचता। क्या मुझे इसी तरह घुट-घुटकर मरने के लिए यहाँ भेजा गया है? क्या सचमुच इस तबादले के पीछे मेरे अशुभ-चिन्तकों का ही हाथ था? क्या मैं इस मुर्दा जगह के बदलने के बजाय ख़ुद उसी का एक अंग नहीं बनता जा रहा हूँ? यह लाख सिर मारता मगर इन सवालों का उसके दिमाग़ में कोई उत्तर ही नहीं सूझता। वह क्या करे कि एकाएक इस स्कूल में एक नयी ज़िन्दगी आ जाये।

एक दिन सितम्बर के शुरू हफ़्ते में उसने मुंशी जवाहिरलाल और बापू पुरुसोतिम सिंह को इकट्ठा करके एक प्रस्ताव रखा। पहले तो ये दोनों ही सज्जन मीटिंग की सूचना पाकर एक दूसरे के चेहरे को देखकर मुसकराये,

पर जब वह बिना किसी हिचक और घबराहट के उनके सामने आकर बैठ गया तो वे भी दिखाने के लिए ही सही गम्भीर होकर आ बैठे।

"यहाँ का स्कूली जीवन बड़ा नीरस और 'डल' है। इससे बच्चों का पूरा विकास कभी नहीं हो सकता। मैं यह सोचता हूँ।" उसने अपने दोनों वरिष्ठ सहयोगियों के चेहरे पर अपलक देखते हुए कहा—"लड़कों में आवश्यक उत्साह पैदा करने के लिए पढ़ाई-लिखाई के अलावा भी कुछ कार्यक्रम होने चाहिये।"

"हाँ, हाँ। यह तो बहुत अच्छी बात है।" दोनों मुस्कराते हुए एक साथ बोले। उनके लिए जैसे किसी की मूर्खता पर मुस्कराने के सहयोगी प्रयत्न का एक सुअवसर अचानक हाथ आ गया था।

"तो आप लोगों की भी यही राय है? यह जानकर मुझे बड़ी ख़ुशी हुई।" वह और भी अधिक उत्साहित होकर बोला—"मैं यहाँ की कठिनाइयाँ समझ रहा हूँ। यहाँ न तो खेल के सामान हैं, न तो बच्चों को घुमाने-फिराने की कोई ठीक व्यवस्था ही है। पर ये कठिनाइयाँ तो सभी स्कूलों के साथ कुछ-न-कुछ लगी हुई हैं। हमें इन्हीं कठिनाइयों के भीतर कुछ शुरू करना चाहिये। मैं समझता हूँ कि शाम को चार बजे के बाद खेल-कूद का एक अनिवार्य कार्यक्रम चलाया जाये।"

"बहुत ठीक, बहुत ठीक पाण्डे जी! हम आपके उत्साह की दाद देते हैं।" दोनों पुनः एक साथ बोले और चुप हो गये। फिर मुंशी जवाहिरलाल ने कहा—"आपकी राय है कि लड़कों को कबड्डी खिलाया जाये और टाँग-वाँग टूट जाये। देखिये, एकाध बार पहले भी आपही की तरह नवचे मास्टर आये थे और उन लोगों ने भी ऐसी स्कीमें रखी थीं। मैं तो भाई तब भी उनका समर्थक था, आज भी हूँ। मगर जो असलियत है उससे वाक़िफ़ करा देना मैं अपना फ़र्ज़ समझता हूँ।"

"जी हाँ, आप बिल्कुल असलियत बतायें, मैं वही तो जानना चाहता हूँ।" शशिकान्त ने कहा।

"मैं कह रहा था पाण्डे जी कि खेल-कूद का मतलब हो-हल्ला और

कबड्डी नहीं है। उसके लिए सामान चाहिये। बड़े बच्चों के लिए फुटबाल, बालीबाल, छोटे बच्चों के लिए रिंग वाल वगैरा। तभी बच्चों में इसके लिए दिलचस्पी जागेगी। वरना कबड्डी-वबड्डी का खेल तो वे अपने से भी खेलते ही रहते हैं। कौन नहीं चाहता कि उनके बच्चे भी लेज़िम सीखें, कवायद सीखें, तरह-तरह के नये-नये खेल-कूद सीखें और उसमें नाम कमायें। मैं नहीं चाहता कि बाबू पुरुसोतिम सिंह नहीं चाहते? आपका कहना ठीक है कि यहाँ का जीवन बहुत नीरस और 'डल' है, मगर कहने और करने में बहुत अन्तर है मास्टर साहब, क्यों जी बाबू पुरुसोतिम सिंह?"

"हाँ, ठीक कहते हैं आप। काम शुरू तो कोई जब चाहे तब कर दे, मगर उसको ठीक से चलाना ज़रा मसक्कत की बात है।" वे हँसकर बोले—"अब भाई, मैं इसमें ज़्यादा क्यों बोलूँ। जब मैं इसमें कुछ मदद नहीं कर सकता तो बोलने से क्या फ़ायदा?"

"क्यों, क्यों, आप क्यों नहीं मदद कर सकते इसमें?" शशिकान्त ने उत्सुकता से पूछा।

"बात यह है भाई पाण्डे जी।" मुंशी जवाहिरलाल ने ही जवाब देते हुए कहा—"बाबू पुरुसोतिम सिंह हमारे आपकी तरह परदेश में तो हैं नहीं। यहाँ से बस तीन मील ही है इनका घर। और ठहरे भी घर के अकेले आदमी। वहाँ का भी काम-धाम इन्हीं के माथे है। ये जब चार बजे चलेंगे यहाँ से तब न संझा तक घर पहुँचेंगे? अब ऐसे में भला ये आपकी क्या मदद कर सकते हैं। आप ही बताइये?"

"ओह, हाँ ठीक है।" शशिकान्त ने थोड़ा रुककर कहा—"इनके साथ तो वाक़ई लाचारी है। मगर आप तो हैं। सिर्फ़ कुछ देर मैदान में खड़े भर हो जाइये। बाक़ी मैं सब कर लूँगा।"

"अब मुझ बूढ़े को नचाइयेगा मास्टर जी?" मुंशी जी ने अपने सुरती से काले दाँतों को बुरी तरह फैलाकर विवशता के भाव में हाथ हिलाते हुए कहा—"मैं ठहरा दमा का मरीज़, वैसे भी ज़्यादा चलने-फिरने से

तक़लीफ़ हो जाती है। करना तो सब कुछ आप ही को पड़ेगा पाण्डे जी। बाक़ी मैं भी कभी-कभी मुआइना करने ज़रूर आ जाऊँगा।"

"अच्छी बात है।" शशिकान्त एकाएक चुप हो गया।

शशिकान्त को मालूम न था कि मण्डल के मिडिल स्कूल के हेड-मास्टर सदाफल पाँड़े हैं। वह पाँड़े जी को पहले से जानता था। चोलापुर से ही।

"अरे शशिकान्त !" देखते ही पाँड़े चिलके—"तुम? कहाँ से भाई?"

"आपको मालूम नहीं, मैं आपके मण्डल में ही आ गया हूँ, करैता स्कूल पर।"

"करैता में?" सदाफल पाण्डे एकाएक संजीदा होकर बोले—"तुमने खुद पहल की होगी, इस नियुक्ति की? है न? तुम्हारी आदत ही है ऐसी। अरे भलेमानस, तुमने यह जगह क्यों चुनी? मुझे यक़ीन नहीं होता कि चोलापुर के इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स का दुलारा 'आदर्श अध्यापक' करैता में डम्प किया गया होगा।"

"मैंने खुद पहल नहीं की थी पाण्डेय जी, क़सम से कहता हूँ आपसे। कहीं बहुत ऊपर बात उठी थी शायद कि कुछ बहुत अच्छे अध्यापकों को बहुत खराब जगहों में भेजकर प्रयोग किया जाय। सुना ही है मैंने। सो आ गया यहाँ। मगर हर बुरी परिस्थिति में भी कुछ-न-कुछ अच्छे पहलू तो निकल ही आते हैं। अब देखिये न, मुझे तो सपने में भी नहीं सूझा कि यहाँ पहुँचकर आपके दर्शन होंगे।"

"अच्छा अच्छा, कैसे चले? तुम्हारे यहाँ हेडमास्टर तो वही जवहिरा ही है न?"

"हाँ।" शशिकान्त मुसकराया—"देखता हूँ, मुंशी ने कोई बेअदबी की है आपसे।"

"अरे मारो गोली। कई बार आया जुलाई से अब तक, मगर उसने तुम्हारा कभी जिक्र नहीं किया!"

"भूल गये होंगे।"

"मैं उसे ज्यादा अच्छी तरह जानता हूँ। ख़ैर, कहो चले कैसे?"

"आ तो गया पाण्डे जी करैता। मगर लगता है मुझे ख़तम करने के लिए ही वहाँ भेजा गया है। मैं क्या करूँ वहाँ? न कोई सामान है, न कोई साधन। खेल के मैदानों की कमी होती है गाँवों में। मगर करैता में क़िस्मत से दो मैदानों का एक मैदान है, ठीक स्कूल के बग़ल में। मगर खेलने के लिए कुछ नहीं। सोचा आपके यहाँ नाक रगड़ूँ। शायद कुछ हो जाय।"

"देखो भई, जब से सामानों की सप्लाई में ज़िला परिषद् और विकास खण्डों का सहयोग हुआ है, सब कुछ बण्टाधार हो गया है। जो चीज़ें, हम समझते हैं कि वे देंगे, वे उनके पास नहीं होतीं। जो चीज़ें वे समझते हैं कि हम देंगे, वे हमारे पास नहीं होतीं। बस एक सामान है, कहो तो दे दूँ।"

"क्या?"

"लेजिमें।"

"और कुछ?"

"कुछ नहीं।"

शशिकान्त उस दिन बड़ी मुश्किल से सोलह लेजिमें पा सका। खुश-क़िस्मती से विकासखंड का कार्यालय भी वहीं है। मगर वहाँ की हालत तो और भी गयी गुज़री थी। एक रिंग बाल निकल आया बड़ी मुश्किल से। करैता का नाम सुनकर विकास अधिकारी उसे भी छीनने लगा था। सदाफल पांडे ने उसे जब 'शशिकान्त' का मतलब समझाया, तब कहीं शान्त हुआ वह। चलते वक़्त टीन का एक टूटा सन्दूक़ भी उठा लिया था उसने।

"यह क्या करोगे, यह बिल्कुल बेकार है।" सदाफल पांडे बोले।

"करेंगे क्या? आख़िर यह सब ले कैसे जायेंगे।"

यह सब सरो-सामान बस पर रखकर वह गाँव के पास तक लाने में भी सफल हो गया। समस्या सिर्फ़ बस-स्टाप से स्कूल तक पहुँचाने की

थी। यह भी वह लड़कों की मदद से कर सकता था, पर उसे बड़ा अचंभा हुआ कि यह जानते हुए कि मैं इसी बस से कुछ सामान लेकर उतरूँगा, मुंशी जवाहिरलाल ने न तो लड़के भेजे न ख़ुद यहाँ तक आने की तक़लीफ़ गवारा की। बहरहाल गाँव के एक चरवाहे की मिनती-आरज़ू करके वह यह सारा सामान लादे-फाँदे स्कूल पहुँचा। स्कूल में उसका पहुँचना था कि मुंशी जवाहिरलाल अपनी पूरी बत्तीसी झलकाते हुए दालान से बाहर आये और उनके साथ ही किलकारियों में अपनी ख़ुशी व्यक्त करते हुए बीसियों लड़कों ने दौड़कर मास्टर शशिकान्त को घेर लिया।

"वाह मास्टर साहब !" मुंशी जवाहिरलाल ने मन ही मन शशिकान्त की पीठ ठोंकते हुए कहा—"मान गया भाई। आप भी कठिन जीवट के आदमी हो। ई सब क्या लाद के लाये? सन्दूक़ की क्या ज़रूरत थी भला? यह जहाज़ रखियेगा कहाँ?"

"क्यों?" उसने आश्चर्य से पूछा—"जहाँ सारा कूड़ा-करकट रखा है, वहीं कोने में यह भी पड़ा रहेगा। कम से कम इसके रहने से सामानों की सुरक्षा तो रहेगी।"

"हाँ हाँ, सो तो ठीक है। अब इस भानुमती के पिटारे को खोलिए भी तो ज़रा देखा जाये कि क्या-क्या नेमतें उठा लाये हैं आप?"

पहले मुंशी जवाहिरलाल का हर वाक्य शशिकान्त को भोंड़ेपन और बेवक़ूफ़ी का प्रतीक सा लगता। अब तो उसने धीरे-धीरे अपने को इस तरह बदल लिया था कि ये वाक्य महज वाक्य के अलावा कुछ लगें ही न। जब इस व्यक्ति के साथ घसीटना ही है किसी क़दर, तो नाहक़ कुछ कहकर झगड़ा मोल लेने से क्या फ़ायदा। उसे बड़ी तेज़ प्यास लगी थी। घंटों बस में बैठने और इधर-उधर दौड़-धूप करते वह काफ़ी थक भी चुका था। पर वह इन बातों को भुलाकर पाकेट से ताली निकालकर सन्दूक़ को खोलने लगा। लड़कों ने एक ठस गोला बनाकर चारों ओर से घेर लिया था। सन्दूक़ के पास ही लोहे की अकड़ी कुर्सी पर चमकीली चाँद वाले मुंशी जवाहिरलाल बैठे थे। उनके चेहरे

पर उत्सुकता फैलकर बेवक़ूफ़ी में बदल गयी थी। उनका चेहरा देखकर लगता था जैसे चिड़ियाखाने से फँसाकर लाये गये हों।

सन्दूक़ खोलकर शशिकान्त ने लेजिमें और रिंग बाल वग़ैरह दिखाया।

"फ़ुटबाल, बालीबाल, नेट वग़ैरह कुछ भी नहीं?" मुंशी जवाहिरलाल ने परम सन्तोष के साथ कहा। अब तक वे शशिकान्त की इस सफलता से बुरी तरह दुःखी थे, अब जाकर कलेजे में रुकी साँस बाहर निकली। जब उन्हें सहसा लगा कि यह मास्टर भी उन्हीं की तरह एक मामूली आदमी ही है। उन्हें इस बात की भी बेहद ख़ुशी हुई कि ज़िला परिषद् के काम में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हो रहा है। सब कुछ पूर्ववत् है। और यह बोध उनके लिए बड़ा प्रीतिकर था। उन्हें सहसा अपने व्यक्तित्व पर बेहद प्यार हो आया और वे अपनी चाँद को बड़े मोह के साथ सहलाते हुए बोले—"ले-देकर, बस लेजिमें भर मिलीं आपको? बिना नेट के तो यह रिंगबाल भी बेकार ही है।"

"जी हाँ।" शशिकान्त ने खीझकर कहा—"कृपा चाहिए आपकी, बस देखते चलिए।"

अध्यापकों का रुख जो भी रहा हो, लड़कों में इन थोड़े से सामानों के आ जाने से ही काफ़ी उत्साह था। कब प्रार्थना हुई, कब पढ़ाई शुरू हुई, और कब शाम आ गयी, उन्हें जैसे मालूम ही नहीं हुआ। लड़के सुबह से ही इधर-उधर आते-जाते एक-दूसरे साथी के कंधे पर हाथ रखकर उँगली से सन्दूक़ की ओर इशारा करते और इस तरह आनन्द में विभोर होकर आँखें मुलमुलाते, जैसे इसके भीतर कोई बायस्कोप बन्द है।

चार बजे स्कूल बन्द हुआ। बहुत से लड़के अपने आप रुक गये। मुंशी जवाहिरलाल अपने चौका-पानी के इन्तज़ाम में लग गये। उन्हें लक्षण अच्छे नज़र नहीं आ रहे थे। चौका-पानी का काम-धाम जाननेवाले जो दो-चार चौकस लड़के थे, वे भी कहीं इस बहेतू मास्टर के साथ खेल के मैदान में जा डँटे, तो हो गया बेड़ा ग़ारत। यह मास्टर तो अजब झक्की क़िस्म का

आदमी है। अपने से बर्तन धोकर चढ़ा देगा तावा। दो-चार मोटी-मोटी रोटियाँ सेंककर इस प्रेम से खायेगा जैसे मालपूवा खा रहा हो कमबख्त। लेहाज़ा मुंशी जवाहिरलाल ने तीन ही बजे दर्जा पाँच के अपने सधे-सधाये सेवकों को खोद-खोदकर चौका-पानी काम शुरू करा दिया था।

शशिकान्त ने चार-पाँच लड़कों को लेजिमें थमायीं। बग़ल में रिंगबाल दबाया और खेल के मैदान में जा डँटा। मैदान की हालत काफ़ी ख़राब थी। जगह-जगह बरसात की वज़ह से और बैलों के खुरों से खुदकर ज़मीन काफ़ी कट-फट गयी थी। एक बड़े लड़के को गाँव भेजकर उसने फावड़ा मँगवाया। और ऊँचे-ऊँचे टोलों को ख़ुद ही काटने लगा। लड़के माटी समतल करने के काम में लग गये। देखते-ही-देखते उस झाड़-झंखाड़ के बीच काम भर का काफ़ी लम्बा-चौड़ा समतल मैदान निकल आया। छोटे बच्चों की उसने एक टोली बनायी। उनका एक कप्तान नियुक्त किया। उन्हें रिंग बाल सौंप दिया गया। बड़े बच्चों में से सोलह को छाँटकर उसने लेजिम की टीम बना ली। प्रत्येक को एक-एक लेजिम दे दी गयी। उस दिन नियमित खेल शुरू कराने का कोई सवाल ही न था।

उसने बड़ी टीम को एक घेरे में बैठा दिया और धीरे-धीरे विश्वास के साथ लड़कों की ओर देखते हुए कहा—"बच्चो, अब से हमलोग रोज़ शाम को पढ़ाई-लिखाई के बाद खेल-कूद का भी थोड़ा काम किया करेंगे। मैं तुम्हारे चेहरों पर जो खुशी देख रहा हूँ, उसी से जान रहा हूँ कि तुम इसके लिए कितना तरसते थे। पढ़ाई-लिखाई के साथ खेल-कूद बहुत ज़रूरी हैं। इससे पढ़ाई-लिखाई पर भी असर पड़ता है। पढ़ने-लिखने में ज़्यादा मन भी लगता है। मगर कुछ बातें भी हैं, जो तुमको जान लेनी चाहिए। पहली तो यह कि खेल-कूद के मैदान में हर लड़के को दूसरे लड़के के साथ मिल-जुलकर रहना पड़ेगा। बिना इसके खेल-कूद हो ही नहीं सकता। लड़ाई-झगड़ों से तुम्हारा तो नुक़सान होगा ही, दूसरे लोगों का खेलना भी बन्द हो जायेगा। इसलिए तुम लोगों को क़सम लेनी होगी कि तुम लोग लड़ाई-झगड़ा कभी नहीं करोगे। मिल-जुलकर खेलोगे।" इतना कह-

कर शशिकान्त चुप हो गया और लड़कों के मुँह की ओर देखने लगा—"तो तुम लोग क़सम खाते हो न?"

"हाँ, हम क़सम खाते हैं।" सबने एकस्वर से कहा—"हम लड़ाई-झगड़ा नहीं करेंगे।"

"शाबाश!" स्वाभाविक प्रसन्नता से मुसकराते हुए शशिकान्त कहता गया—"मैं तुम लोगों को एक नयी दुनिया में ले चलना चाहता हूँ। करैता स्कूल के बारे में लोगों का कहना है कि यह एक मुर्दा और सड़ी हुई जगह है। यहाँ के लड़के हर चीज़ में फिसड्डी हैं। क्या पढ़ाई-लिखाई, क्या खेल-कूद। मगर मैं तो यह देखता हूँ कि यहाँ के लड़के और जगह के लड़कों से अधिक भोले-भाले और उत्साही हैं। बस, तुम लोगों को काम करने का मौक़ा नहीं मिला है। अब तुम्हें मन लगाकर पढ़ना है। साथ ही खेल-कूद से तन्दुरुस्ती भी बनानी है। मैं चाहता हूँ कि लेजिम, मार्चिङ्ग और आसन, इन तीन चीज़ों में तुम लोग इस तरह पक्के हो जाओ कि हम मण्डल और सर्किल टूर्नामिन्ट में ही नहीं, ज़िला टूर्नामिन्ट में भी शामिल हों। हमारी टीम इनाम लेकर लौटे। मैं तुम लोगों को गाँव के बाहर की दुनिया भी दिखाना चाहता हूँ। मगर यह सब तुम्हारे बल-बूते ही होगा। मैं तो सिर्फ़ रास्ता बता सकता हूँ। करना सब तुम्हें ही है।"

शशिकान्त देख रहा था कि मासूम बच्चों के चेहरे उत्साह से लाल होते जा रहे हैं, होंठ थरथरा रहे हैं, उन पर एक विस्मयकारी मुसकराहट फैल रही है। बच्चों की आँखों में अनजानी चमक आ गयी है। शशिकान्त इस चमक से अच्छी तरह परिचित है। यह चमक एक अजीब तरह की अन्दरूनी आग की सूचना देती है, जो इन्सान में निरन्तर जलती रहती है। परिस्थितियाँ, समाज-व्यवस्थाएँ और ग़रीबी तथा ज़हालत इसे निराशा की राख में ढँक देती है और धीरे-धीरे जब राख का पर्दा परत-पर-परत पड़ता चला जाता, है तब एक दिन ऐसा भी होता है कि इस चिनगारी का गला घुट जाता है। यह कालिख की परत के नीचे सिसक-सिसककर बुझ जाती है और इन्सान की ज़िन्दगी उस लालटेन

की तरह अँधेरे में डूब जाती है जिसकी चिमनी काले धुएँ से भरकर रोशनी को ढँक लेती है। शशिकान्त बच्चों की आँखों में छिपी इसी चमक की प्रतीक्षा में था। आज जब सामने बैठे बच्चों की आँखों में यह चिनगारी चमक उठी तो उसे लगा कि वह निहाल हो गया है। जिस प्रकार उसका एक अदृश्य शक्ति में विश्वास था, वैसा ही इस चमक में भी। वह इस चमक को अदृश्य शक्ति का ही वरदान मानता और उसकी दृढ़ आस्था थी कि यदि एक बार यह चमक जग जाये तो अन्धकार की मोटी-से-मोटी परतें भी अपने आप फट जाती हैं।

"....तो बच्चो, तुम यह सब करने के लिए तैयार तो हो न ?"

"जी मास्टसाब !" सभी लड़के थरथराती आवाज़ में हचकोले खाते हुए-से बोले।

"अच्छा, एक बात और है। कल से तुम लोग छुट्टी मिलते ही यहाँ आ जाओगे। जो लोग इस गाँव के हैं, अपने घर जाकर दाना-पानी करके तथा जो दूसरे गाँवों के हैं, स्कूल पर ही मुँह-हाथ धोकर तैयार होकर खेल के मैदान में आयेंगे। हो सके तो तुम लोग अपने साथ अपने क़द बराबर की एक-एक लाठी या डण्डा भी ले आओ। अभी कोई इतनी जल्दी नहीं है। जिसके पास नहीं है, उसे निराश होने की ज़रूरत नहीं। बस, खोज में लगे रहो। ढूँढ़ो। घरवालों से कहो। मुझे विश्वास है कि तुम्हारी मनचाही चीज़ मिल जायेगी। जिसे इतने पर भी न मिले, उसे मैं दूँगा। इसलिए किसी चीज़ के न मिलने पर निराश होकर हारो मत। अपनी कठिनाई बड़ों से कहो। मुझसे कहो। उत्साह से अपने काम में लगे रहो। बस आज यहीं काम बन्द। कल फिर मिलेंगे। जय हिन्द।"

● ●

बारह

गाँव का जीवन और उसके रिश्ते अजब तरह के होते हैं। हर घर, हर व्यक्ति एक बनी-बनाई परिभाषा में बँधा है। ये परिभाषाएँ कितनी भी बेमानी लगें, अवसर पर अपना पूरा हक़ और प्रतिदान पाकर ही शान्त होती हैं। नीची से नीची जाति का कोई मर्द हो या औरत, लड़का हो या लड़की, बूढ़ा हो या बूढ़ी, ऊँची से ऊँची जातिवालों के साथ उसका रिश्ता तै है। धन्नू भगत, बंशी सिंह दीना सिंह, देऊ सोखा, सहदेव कानू सभी चाचा हैं। और उनकी औरतें सभी चाची हैं।

कल्पू विपिन से दो-तीन महीने ही तो बड़ा है। मगर बड़ा तो है। इसलिए बंशी काका की बहू उसकी भाभी हैं। भाभी यदि किसी के घर आये, और उसका देवर उससे आँखें चुराये, दो-चार मज़ाक न करे तो न सिर्फ़ इससे असामाजिकता और अहमन्यता प्रकट होती है, बल्कि यह बात भाभी के दिल पर चोट भी कर सकती है और यह क़तई नामुमकिन नहीं कि भाभी इसे अपना अपमान मान लें और फिर रुष्ट होकर जाने क्या-क्या उपाधियाँ दे डालें।

और यह भाभी भी कोई मामूली भाभी नहीं। बंशी काका कभी मामूली किसान थे। लोग कहते हैं कि उनके पूर्वज बबुआन की सीरवाही कर चुके हैं। जिस ओहदे पर अभी कुछ दिनों पहले तक धरमू सिंह वर्तमान थे, उसी ओहदे पर कभी बंशी काका के पिता जी भी काम करते थे। बहुत मामूली ज़मीन थी उनके पास। साल भर दोनों जून खाने के लिए भी मुश्किल से ही अँट पाता। बंशी काका के तीन भाई थे। तीनों बड़े ही हट्टे-कट्टे, मिहनती और लगन के पक्के। बंशी काका के पिता जी बबुआन से लगान पर खेत लेकर जोतते-बोते। बेटे जब बड़े हुए, तो वे उन पर सारा काम-धाम सौंपकर छावनी में पड़े रहते। बेटों ने ज़मीन को सिर पर उठा लिया। जब देखो चारों के चारों खेत में डटे हैं। सुबह, दोपहर, शाम वे किसी-न-किसी खेत की मेंड़ ठीक करते। ज़मीन बराबर करते। खाद फेंकते। कोड़ते-गोड़ते। उनकी मेहनत का फल था कि खेतों में फ़सलों की जगह रुपये के पेड़ उग आये। देखते-ही-देखते बंशी काका की बखरी चौखुँटा पक्की हो गयी। दरवाज़े पर खंभियों वाला दालान और कोठा। बैलों की पक्की चरनी तथा दालान के सामने की सारी फ़र्श ईंटों से जड़कर उनके वैभव का ऐलान करने लगी। बंशी काका के दो भाई सुखराम और जीतन तपेदिक से मरे। गाँव के बहेतू छोकरे और काहिल आवारे कहते कि सबों का काम करते-करते 'हिक्का' फट गया था। खाँसते थे तो गले से खून निकलता था। बच रहे बंशी काका और उनके बड़े भाई पोल्हावन। पोल्हावन काका अब भूल गये हैं। घर में दो बेवा भवहें और पोल्हावन बो काकी दुनिया से विरक्त होकर मरने के दिन जोह रही हैं। सुखराम और जीतन को बस एक-एक लड़कियाँ थीं जिनकी शादी हो गयी।

कल्पू सभी का प्यारा था। जब वह छोटा था तो जीतन, सुखराम और पोल्हावन खाली वक़्त में उसे कंधे पर बैठाये गाँव की गलियों में घूमा करते। बंशी काका के परिवार पर कंजूसी का नीरस पहरा कभी ढीला नहीं पड़ा। उनके वैभव ने ईर्ष्यालु लोगों के मुख से क्या-क्या नहीं कहवाया। यह सही है कि बंशी काका के परिवार के किसी व्यक्ति ने कभी बनियान या कुर्ता नहीं पहना। धोती खुँटियाये, सिर पर गमछा लपेटे, हाथ में खाँची या कुदाली लिये उनकी ज़िन्दगी बीत गयी। जीतन और सुखराम अक्सर खलिहान के बरगद के नीचे बैठकर सुस्ताते वक़्त गाँव के किसी लड़के को अच्छा कपड़ा या जूता पहने देखते तो अजीब ढंग से मुसकराते। उनकी हँसी सचमुच उस समय बड़ी प्यारी लगती।

अपने ही तरह काम करनेवाले और कपड़े-लत्ते से हीन किसी नवचे को आँख के इशारे से उस लड़के की ओर देखने को कहकर वे मुसकराते हुए कहते—"ई सवख देख रे घुरबिनवा, महफिल लगावे की तैयारी है का?" उनकी आँखों में अच्छे कपड़े-लत्ते के लिए सचमुच हिकारत का भाव था।

लोगों के अच्छे पहनने ओढ़ने पर मुँह बिचकाने का भाव धीरे-धीरे उनकी आदत बन गया। एक बार जग्गन मिसिर किसी रिश्तेदारी में जा रहे थे। जग्गन मिसिर को खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने में कोताही से सख्त नफ़रत है। बारात-वारात के अवसर पर या नेवता-रिश्ता में जाते वक़्त वे हमेशा सिल्क का धराऊँ कुर्ता निकालते। साफ़ चटक धोती, सिल्क का कुर्ता और ऊपर से भागलपुरी चद्दर। पहलवानी ऐंठ के साथ बन-ठन कर मिसिर निकले कि इसी बरगद के नीचे सुखराम और जीतन ने टोक दिया।

"का हो मिसिर जी, पा लागी।" जीतन बोला—"लड़की देखे जाय रहे हैं का?" मिसिर जी उनकी आदतों से परिचित थे। इसलिए हल्के मुसकराकर निकल जाना चाहते थे। तभी सुखराम व्यंग्य से मुँह को बिगाड़कर हँसते हुए बोला, "अरे अरे, टोक मत जितना, टोक मत। देखो तो तनिक कि आज मिसिर जी का कुर्ता कैसा 'फोकस' मार रहा है।"

मिसिर को यह वाक्य सहा नहीं गया। वे मुड़कर बरगद के नीचे आ रहे।

"बात ई है बाबू जीतन सिंह कि कुछ लोगों के करम में घूरा टालना ही लिखा रहता है। आप लोगों को एक लाख मन भी अनाज हो जाये

तो कोई फरक नहीं पड़ेगा। चूहे के घर में गेहूँ होगा तो क्या वह पूड़ो बनाकर खायेगा ? दाँत निपोर के मरोगे एक दिन और बिना कफ्फन के लड़के खींचकर दरियाव में फेंक देंगे। कहेंगे जा स्साले मुसहर से पिंड छूटा।''

''अरे आप तो गुस्सा हो गये मिसिर जी।'' सुखराम हें-हें करते हुए बोला—''ई तो मज़ाक में कह रहा था जितना।''

''मज़ाक-वज़ाक से का मतलब आप लोगन से सुखराम बाबू, बिना बान के चन्नन से माथा पिराता है। समझे न ? हँसी-मज़ाक, खाना-पीना, नाच-गाना ई सब आदमी लोग करते हैं सरकार, आदमी लोग। हाँ ?''

मिसिर एक साँस में इतना कहकर मुड़े और मस्तानी चाल से दक्खिन वाले छवरे पर चल पड़े।

उनकी बातों से दोनों भाइयों के चेहरे उतर गये थे। हँसी चेहरे पर आयी थी, मगर उसमें उतनी ताक़त न थी कि वह मिसिर के व्यंग्य वाणों की चोट को पूरी तरह पोंछ दे। वह असफल हँसी सामने बैठे लोगों की दया का कहीं पात्र न हो जाये, इसीलिए दोनों भाई एक क्षण मौन रहे। फिर कुछ देर बाद मिसिर के प्रभाव को पूरी तरह ध्वस्त करने की गरज़ से सुखराम बोला—''इनकी तो नस मिसराइन ही ठीक करती हैं। उनके सामने भींगी बिल्ली की नाईं कैसे म्याऊँ-म्याऊँ करने लगते हैं।...हँ....हँ....हँ। एक ठो जाने कब का जाकड़ी कुरता डाल लिये सिलिक का, बस, बन गये धन्ना सेठ। इनके सात पुश्त को जानते हैं हम लोग।''

जीतन कुछ न बोला। अगल-बगल बैठे लोगों की एकाएक जैसे इन बातों से दिलचस्पी ही हट गयी थी।

यह सब कुछ पहली बार नहीं हुआ है। सुखराम और जीतन शायद आज ज़िन्दा होते तो उन्हें यह देखकर ख़ुशी होती कि अच्छा खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने की तमन्नाएँ एक-एक करके क़ब्र में सोती जा रही हैं। ऐसे मौक़े पर निराश और परेशान लोग शायद उनकी बातों की बेहद क़द्र भी करते, पर उस समय तो सचमुच हवा उल्टी चल रही थी। वंशी

काका का परिवार कंजूसी के आरोपों के दलदल में इस तरह धँस रहा था कि उनके घर के किसी प्राणी का इधर-उधर गलियों में निकलना मुहाल होने लगा। औरतों ने इस परिवर्तन को ज़रा पहले भाँप लिया।

कल्पू उस समय बच्चा था, नया प्राणी। इसलिए आरोप मिटाने के सारे प्रयोग उसी पर आरम्भ किये गये। सुखराम ख़ुद क़स्बे गया और कल्पू के लिए रंगीन चुन्नटवाले झबले, मख़मली कुर्तियाँ, लाल जूते, मुलायम ऊन का बन्दर टोप, फुग्गे वाली एक गोल टोपी और एक रंग-बिरंगी स्वेटर ख़रीद लाया। कल्पू को ये चीज़ें पहनाकर बारी-बारी से सभी भाई ख़ाली वक़्त में दिन के बारहों घण्टे गाँव की गलियों में घुमाया करते। चौराहों पर धूप सेंकते, अलाव के पास आग का कूड़ा टारते, दालानों और छानों में बैठे लोग हुक्का गुड़गुड़ाते कल्पू के कपड़ों और जूतों की तारीफ़ करते और दाम पूछते। जीतन या सुखराम मुसकराकर बड़ी मासूमियत के साथ कहते—''अरे राम कहो चाचा, आग लगी है चारों तरफ़। दूकानदार तो खड़े लूट लें। सौ रुपिया का नोट गल गया, ई सब बित्तेभर के कपड़ों में, हाँ।''

''हाँ भई, गल ही गया होगा। ज़माना नहीं देखते हो जीतन बेटा !'' बूढ़ा किसी और ही दुनिया में खोया-खोया बोलता। उसकी आँखों के आगे गली में कूड़े पर काग़ज़ बटोरता, या कहीं दीवाल में चिपककर घाम सेंकता, मैली कमीज़ पहने (जिसके नीचे जाँघिया भी नहीं) अपना पोता याद आ जाता और वह ज़माने के बारे में पहले से कहीं अधिक तीखा होकर कहता—''आज को दुनिया में ग़रीब आदमियों का गुज़र नहीं है बेटा।''

''हर बात में दुनिया को दोष लगाने से क्या फ़ायदा ?'' जीतन मुसकराते हुए कहता—''ऐब तो हम लोगों में भी कुछ-न-कुछ होयगा ही। नहीं धरती कभी धोखा देती है भला ? बात यह है चाचा कि अब के लोग आरामतलब हो गये हैं। दिन भर बैठे-बैठे पलँगड़ी तोड़ेंगे, तो अनाज कहाँ से आयेगा ?''

जीतन और सुखराम ऐसी बातें पहले भी करते थे। तब लोग जल-

भुनकर उन पर कंजूसी का आरोप करके मन की तिताई निकाल लेते थे। अब तो रंगीन झबले में लिपटे कल्पू की ढाल के सामने कोई वार असर ही न करता था।

इस तरह के माहौल में कल्पू की परवरिश हुई। लड़का काफ़ी गोरा-चिट्टा और नाक-नक़्श से भी आकर्षक था। जीतन और सुखराम के प्यार-दुलार में वह एक शौक़ीन छोकरे की तरह बढ़ने लगा। गाँव के प्राइमरी स्कूल में लड़के उसके कपड़े-लत्ते से ईर्ष्या करते। मगर साथ भी उन्हीं का था, इसलिए कल्पू की बाहरी काया पर शौक़ीनी और अमीरी का जो भी रंग रहा हो, भीतर के संस्कार ज्यों-के-त्यों थे। गन्दे लड़कों की सोहबत से जो कुछ भी सीखा जा सकता था, वह सब कुछ सीखता रहा। करीने से कटे बाल, ढंग सलीके के कपड़ों के आकर्षण से आँखें उसकी ओर बरबस उठ जातीं। वह बहुत जल्दी शोहदों, आवारों और बाल-प्रेमी प्रौढ़ों का प्रियपात्र हो गया। प्राइमरी स्कूल में भी वह पढ़ने में बहुत तेज़ न था। मगर कृपालु अध्यापकों ने कभी उसके रास्ते में रुकावट न डाली। यहाँ की पढ़ाई ख़त्म हुई, तो वह क़स्बे के हाईस्कूल में दाख़िल कराया गया। कल्पू का नाम लिखाने जीतन और सुखराम दोनों गये थे। अंग्रेज़ी शिक्षा के बारे में दोनों भाइयों के मज़ाक आज भी लोगों को याद हैं। घृणा से क़रीब-क़रीब विकृत मुँह बनाकर वे 'पढ़वैया' लोगों की लिहाड़ी उड़ाया करते; मगर कल्पू का नाम लिखाकर दोनों भाई लौटे तो जैसे दुनिया ही बदल गयी।

"अब क्या बतावें आपसे।" जीतन बिल्कुल मासूम और बेवक़ूफ़-सा चेहरा बनाकर आश्चर्य से आँखें फाड़-फाड़कर कहता—"हीडमास्टर रहा ऊ। दरवाजे का कपड़ा खसकाय के पट से आ गया हमारे सामने। बोला—क्यों कल्पनाथ आपका लड़का है? मैं तो भइया सकताय गया। एक मिनिट के वास्ते बोलती बन्द। फिर कैसेहू-कैसेहू करके, हिम्मत बटोर के कहा—हाँ हुजूर। जाने ससुरा फिर क्या गिटपिट-गिटपिट करता रहा। हम तो भइया ओकरे मुँह पर ताकते रह गये। एक अच्छर नहीं पल्ले पड़ा।"

"बोलते क्यों नहीं?" मुझको ऐसे टुकुर-टुकुर ताकते देख ऐसा डपटा उसने कि मेरी तो सिट्टी-पिट्टी गुम। मैं तो लगा हकलाने। मुझे भी एकदम से किरोध आ गया। ई सरवा हमको कहीं छोटी जात समझकर रोब तो नहीं ले रहा है। तपाक से बोला—'हम उसके बाप हैं हुजूर।' लगा हँसने ऊ बन्दर। ताली पीट-पीटकर हँसता रहा। बोला—हाँ-हाँ, तुम उसके बाप हो, इसी से तो पूछता हूँ कि उसका 'साटिकफिटिक' कहाँ है।"

अब हम का जानैं कि ई 'साटिकफिटिक' का है। अरे हल, फार, हरिस, नाधा, जोता, पैना-वैना की बात पूछता, तो कुछ कहते भी। ऊ तो कहो कि कल्पनाथ वहीं खड़ा था। बाक़ी हम कहेंगे भइया जी, कि देखने में ऊ कम उमिर का भले हो। है बड़ा चलाक। पट से आगे आया। जेब में से ऊ 'साटिकफिटिक' निकालकर थमा दिया।

"फारम के साथ देना चाहिए न, कि जेब में रखने के लिए लाये थे इसे।" बस भैया एतना कहके ऊ बन्दर टोप डाले कोठरी में घुस गया। तो जाके हमरे जान में जान आयी।

जीतन के इस बयान में अपनी मूर्खता की आत्मस्वीकृति थी तो सिर्फ़ इसीलिए कि वह क़स्बे के हाईस्कूल के रुतबे का सिक्का सबके हृदय पर बिठा देना चाहता था। और इसी रुतबे वाले हाईस्कूल में कल्पनाथ भी पढ़ने गया है, यह दूसरा महान् सत्य था, जो कहा नहीं जाता था, पर प्रत्येक श्रोता के मन पर आपोआप पूरी अहमियत के साथ प्रकट हो जाता था। यह था वंशी काका के परिवार की प्रतिष्ठा का नया अध्याय, जिसे जीतन और सुखराम एक जूट होकर चारों तरफ सुना-सुनाकर प्रचारित कर रहे थे।

बाद में तो दो-तीन बरसों के अन्दर ही अन्दर जीतन और सुखराम दोनों बारी-बारी से दुनिया से मुँह मोड़कर चलते बने। वंशी काका का परिवार इस धक्के से लड़खड़ा उठा। मगर कल्पनाथ की पढ़ाई-लिखाई पर इसका कोई असर न पड़ा। जगजीत ने अकेले ही सारा काम-धाम सँभाल लिया। वंशी और पोल्हावन थोड़ा-बहुत हाथ बँटा देते। जमा हुआ काम था। गाड़ी खिंचती गयी। कल्पू जिस-तिस करके आठवीं या नौवीं कक्षा

में पहुँचा। वह पहले से काफ़ी लमछर हो गया था। शरीर थोड़ा खिंच गया था। मगर चेहरे पर कोई खास फ़र्क नहीं आया। उसकी आँखों के चतुर्दिक काली रेखाएँ पड़ गयी थीं। इसे भी उसके चरित्र पर किसी तरह के आरोप का कारण न मानकर पढ़ाई में लगन का परिणाम ही कहा जाता था। एक बात ज़रूर नयी दिखाई पड़ती थी कि अचानक वह जाने क्यों बहुत लजाधुर हो गया था। सामने किसी चबूतरे पर, गली के मोड़ या चौमुहानी पर यदि दो-तीन आदमी बात-चीत करते हों तो वहाँ जाने से, या उधर से निकलने से कतराता था। शोहदे और आवारे उसे देखते ही बोलियाँ कसते। वह धीरे से मुँह गड़ाये एक ओर निकल जाता। वंशी बो काकी ने कल्पू की लज्जाशीलता का काफ़ी प्रचार भी किया।

"हमरे कल्पू तो बड़े लजाधुर हैं बहिनी जी!" वे अपनी दायादिनों से अक्सर कहा करतीं—"घर में भी केहू से खायक-पानी नहीं माँग सकते। जौन माँगना हो, हमहीं से कहते हैं।"

कल्पू का साथ बस दो तरह के लोगों से ही रह गया था। या तो अपने से बहुत कम उम्र के लड़कों के साथ गुल्ली-डंडा, ताश-कौड़ी खेलना या कहीं बैठकर गप्प करना। या फिर बहुत बूढ़ों के साथ बैठकर उन्हें अपने स्कूल की बातें सुना-सुनाकर उनका मनोरंजन करना।

उसकी उमर मुश्किल से अभी पन्द्रह-सोलह की ही हुई होगी। ब्याह के लिए देखनहरू घूमने लगे। वंशी काका को अपरंपार खुशी होती कि उनके कल्पू का भाव इतना बढ़ गया है। इतना तिलक तो मलिकाने के लोगों को छोड़कर किसी को गाँव में कभी मिला नहीं। कल्पू के तिलक की इस महिमा का कारण उसकी पढ़ाई थी। यह सत्य वंशी काका पर उजागर हो गया था। इसलिए आठवीं क्लास में फेल होने पर भी वे कल्पू से ज़रा भी नाराज़ नहीं हुए। उन्होंने काफ़ी दृढ़ता से दोबारा नाम लिखाकर पढ़ने-लिखने में जुट जाने की सलाह दी। उन्हें विश्वास था कि यदि एकाध साल और मौक़ा मिल जाये तो भाव कुछ और बढ़ जायेगा। दस हजार का तिलक जरूर से ज़रूर मिलके रहेगा।

फिर एक दिन सुनाई पड़ा कि कल्पू का रिश्ता तै हो गया। पूरब के देखनहारू आये। वंशी बो काकी दायादिनों से मुस्कराती हुई मिलतीं। कभी कोई बर्तन चाहिए, कभी कुछ, कभी कुछ। दिन भर इस घर, उस घर दौड़-धूप चलती रहती।

"बबुआन लोग हैं बहिनी जी। भाई पटने में रेल्वेई में कौनो भारू उहदा पर हैं। बाप नाहीं हैं। मुसरमात की बेटी है।"

"तब तो बड़ा दहेज मिली दुलहिया। देख मौका विचले न पावे।" दायादिन लम्बी साँस लेकर सलाह देती—"तिलक-विलक की बात हुई कि नहीं?"

"बात-वात सब हो गयी बहिनी जी! दस हजार अँगने में देवेंगे अउर का।" वंशी बो काकी इस तरह चेहरा बनातीं कि जैसे उनका सोने का लड़का माटी के भाव बिक रहा है।

कल्पू का ब्याह हो गया। बिना माँ-बाप की लड़की के सगे भाई ने अपनी मसक्कत की कमाई का सर्वस्व दस हजार तिलक के रूप में दिया। भौजाई ने जाने कितनी जोड़ी साड़ियाँ और ब्लाउजों से बक्से साजे। लड़की पटने में भाई-भौजाई के साथ ही रहती थी। नवीं तक पढ़ी भी है सो अपनी दुलारी बहन के लिए अच्छा घर-बर खोजने में भाई ने कोई कसर नहीं छोड़ी। करैता बबुआनों का गाँव है। वंशी सिंह मामूली गृहस्थ नहीं हैं। चौखुंटा पक्की हवेली है। हाथी जैसे आठ बैल, गायें और भैंसें ऊपर से। लड़के की तो कुछ पूछो मत। हज़ार लड़कों में एक लड़का है। दपदप गोरा, सुघर और सजीला। अभी रेख भीन रही है। नवीं में पढ़ता है। पढ़ने में भी लगन का पक्का। सुनते हैं पढ़ने-लिखने के अलावा किसी चीज से कोई मतलब ही नहीं रखता। आजकल के 'पढ़वैया' लड़कों जैसा शोहदा नहीं है। न बीड़ी सिगरेट न और कोई बुरी आदत। भगवान ने चाहा तो पढ़-लिखकर कहीं 'सेटल' कर जायेगा। बस फिर क्या 'बबुनी' की किस्मत चमक जायेगी। ऐसे घर-वर दोनों भाग्य से मिलते हैं। वंशी

सिंह मलिकार हैं। समधिन मलकिन। अकेला लड़का ठहरा। अब चाहिए क्या ?

यों ब्याह हुआ। दुलहिन घर में आयी। दुलहिन के बारे में वंशी बो काकी ने बिना पूछे ही सब बताया—"पढ़वैया लड़की है बहिनी जी। उल्ला पल्ला डाल के मचिया पर बैठी। हमने कहा—हे-हा, देखो ई पटना ना है। जइसन देस वइसन भेस। घुंघुट काढ़ के रहना परी। हमारी बात सुनके हँसे लगी। एकदम लड़की है बहिनी जी। मचिया से उतर के घुंघुट काढ़ के कोने में बइठ गयी। हिरदा भरभरा गया। गुन-सहूर कुल से भरी-पुरी है, हाँ। जोड़ की तोड़ लड़की मिल गयी। जइसे कल्पनाथ वइसे पतोह।"

"अब का चाहीं दुलहिया।" दायादिन चेहरे पर अनमोल हँसी खिलाते हुए बोली।

विवाह होने के बाद गर्मियाँ आयीं। नई दुलहिन को पहला तोहफ़ा यह मिला कि उसका पति फेल हो गया। फेल तो कल्पू पहले भी हुआ था, पर इस बार का फेल होना कुछ और ही था। उसके फेल होने या न होने के बारे में जैसे किसी को चिन्ता ही न थी। वंशी काका एकदम निश्चिन्त थे। शादी हो गयी। अब चाहे वह पास हो या फेल। उनसे कोई मतलब नहीं। पर नयी दुलहिन को यह चीज़ उदास कर गयी। एक साल और नुक़सान हुआ। वह सोचती। मन में भी जाने कितनी परतें होती हैं। किसी में ग़म, किसी में ख़ुशी, किसी में झिड़की, किसी में दुलार....और यह सब एक शरीर ही के भीतर ढोते हुए नयी दुलहिन की विचित्र स्थिति थी। अभी वंशी बो काकी ने नये दम्पति को अलग कमरा दिया नहीं। सो ऐसा मौक़ा ही नहीं आया कि मन के भीतर की परतें खुलें और नयी दुलहिन अपने पति को सब कुछ खोलकर दे दे। सारा जीवन ऊपर के हलकोरे की तरह बीतने लगा, ये हलकोरे कभी सर्द-गर्म भी होते, कभी तेज-मद्धिम भी, पर इन सबको अपने अगोश में सँभाले एक धीर-गंभीर सागर भी था, ख़ुशी और प्यार का जो निरन्तर सुहाग रात के पूनम के

इन्तजार में था। एक दिन एकाएक बिना किसी सूचना के खाने-पीने के बाद नयी दुलहिन को इशारा मिला कि उसे उस कमरे में जाना है, जहाँ दीये की मद्धिम रोशनी में एक चारपाई है, उस पर उसके मायके से आयी रेशमी खोल वाली तोशक है। उस पर उसका गोरे चिट्टे सुघर सजीले बदन वाला प्रियतम। सचमुच उस दिन नयी दुलहिन के पैर में पाँखें निकल आयी थीं। खाना-पीना भी उसे भारी-भारी लगा था। सासुवें खा-पीकर सो चुकी थीं। अपनी सास को हुक्का थमाते हुए नयी दुलहिन के हाथ काँप गये थे।

"हाथ-पैर धोकर छत पर चली जाना।" सास ने धीरे से कहा और जैसे वे अपनी लाज छिपाने के लिए हुक्के के नारियल में गड़ गयीं। नयी दुलहिन घूंघट के ओट से हल्के मुस्कराई थी। वहाँ से आयी तो अपने कमरे में एक क्षण खड़ी रह गयी। बेमतलब। कुछ देर शून्यता में डूबी रही। पर वहाँ भी उसके धड़कते दिल को सँभालने का कोई आधार न मिला। पैर धोते हाथ फिसल जाता। मायके की चप्पल कई रातें पहनी हैं उसने। पर आज का पहनना ही कुछ और था। बार-बार पहनी चप्पलें पैर से फिसल-फिसल जातीं। एक क्षण पैरों में चप्पलें डालकर भी वह उठी नहीं। सब तरह से तैयार थी वह। पर सोये हुए लोगों की बेख़बरी का उसे जैसे विश्वास ही नहीं होता था।

जैसे-तैसे करके द्वार पर तो आ गयी, पर बग़ल वाले कमरे में घुसने की हिम्मत बटोरती वहीं बाजू से सटकर खड़ी रही। काफी देर तक। कमरे में हेलकर वह चारपाई के पास आ गयी। घूंघट से मुँह ढँका था। साँसें इतनी मद्धिम थीं अन्तर्मुखी, कि भीतर जैसे कोई उनके हर आवा-गमन की गिनती कर रहा था।

काफ़ी देर पाटी से सटकर खड़ी रही, पर पति ने न बैठने को कहा, न हाथ पकड़कर खींचा ही। सखियों से सुना था कि मर्द बहुत जल्दी गर्म होते हैं। औरत को लाज-शरम छोड़कर उनकी बात एकाएक नहीं मान लेनी चाहिये। मान-मनौवल का भी एक रस है। मगर यह अजीब मरद

है कि फों-फों नाक बुलाता सो रहा है। सचमुच का सो रहा है कि नाटक कर रहा है? कुछ समझ में नहीं आता। नयी दुलहिन यह सब सोचकर मुसकरायी—"बेचारा लजा रहा होगा।" वह खुद प्रतीक्षा करते-करते थककर चारपाई पर बैठ गयी। बैठी रही और खीझ और उदासी को दबा-दबाकर हल्के मुसकराती रही। निर्लज्ज होना खुद में एक पीड़ा भरा व्यापार है। पर वह निर्लज्ज कहीं और तो हो नहीं रही। उसने अपनी पतली काँपती हुई उँगली से कल्पू के तलवों में गुदगुदाया।

कल्पू पर इस गुदगुदाने का भी कोई असर न हुआ। पत्नी ने स्पर्श थोड़ा कड़ा किया तो उसने पैर खींचकर सिकोड़ लिया। दुलहिन को लगा कि यह नाटक है। वह धीरे से बगल में लेट गयी। कुछ देर तक चित्त लेटकर वह कमरे की शहतीरों को चंचल नेत्रों से देखती रही। एकाएक वह करवट बदलकर कल्पू की पीठ में सटकर उधर ही मुँह करके लेट गयी और उसके कानों के पास हल्के छूते हुए बोली—"रूस गये हैं क्या?"

कल्पू कुछ न बोला तो वह फिर धीरे-धीरे कहने लगी—"बताना न चाहिये? बात क्या है? हमसे कोई ग़लती हुई?"

कल्पू जग रहा था और वह उसकी बातें सुन रहा था। मगर वह कुछ न बोला। दुलहिन को लगा कि आदमी ज़िद्दी है। जल्दी नहीं मानेगा। जल्दी करने की जरूरत भी नहीं है। वह चुपचाप मन मारे अँधेरे कमरे की दीवालों को हेरती रही।

काफ़ी देर हो गयी। कल्पू फिर नाक बुलाता सो गया। धीरे-धीरे दुलहन का मन थक गया। झुँझलाहट भी होने लगी। नाना प्रकार के बुरे ख्याल उसके मन में उभरने लगे—"हे भगवान् ई कइसा मरद है....?" उसने सोचा और बहुत हिम्मत करके अपनी ओर से आखिरी कोशिश करने का निश्चय किया।

लगातार उभरती शंकाओं ने उसके मन से लाज-शरम सब छीन ली थी। उसने कई बार कल्पू को जगाने के लिए हाथ उठाया। सोचा झकझोर कर रख दूँ। पर उठा हाथ वापिस आ गया। रात धीरे-धीरे बीत रही थी। मन की सारी उमंगें अपनी अन्तिम सीमा की असफल यात्रा से लौट आयीं। एक अजीब तरह की घृणाभरी अभद्रता सिर उठाने लगी। नयी दुलहिन ने यह सब कुछ रोक रखने को बहुत कोशिश की, पर सफल न हुई और उसने कल्पू को झकझोर कर कहा—"ऐसे ही सोना था तो यहाँ आने का काम?" कल्पू झकझोरने वाले हाथों को ठेलते हुए उठ बैठा—"हमें तुम सोने दोगी कि नहीं?"

"आखिर हमने किया क्या है, आप बताइये न? इस तरह से सताने का क्या मतलब?" दुलहिन गुस्से और ग्लानि से गिड़गिड़ाते हुए बोली। उसने कल्पू का हाथ अपने दोनों हाथों में थाम लिया। उसकी आँखें भर आयी थीं। लोर की एक भारी-सी बूँद तीन हाथों की सन्धि पर चू गयी। वह सिसक-सिसक रोने लगी।

कल्पू ने झटके से हाथ छुड़ा लिया। चारपाई से उतरकर वह नीचे खड़ा हो गया। उसने जल्दी-जल्दी पैरों में जूते डाले और कमरे से निकलकर छत पर आ गया। एक क्षण इधर-उधर घूमता रहा। फिर सीढ़ियाँ उतरकर नीचे गया और दालान का दरवाज़ा खोलकर गली में खो गया।

यह सब कुछ इतनी तेज़ी के साथ हुआ कि दुलहिन कुछ कर न सकी। वह चाहती थी कि जाते-जाते उसे रोक ले। कहे कि आप निश्चिन्त सोइये। मैं कुछ न कहूँगी। पर कुछ कह न सकी।

"हे भगवान्! क्या सोचेंगे लोग?" वह घबराकर चारपाई से उतरी। नंगे पैरों सीढ़ियाँ उतरकर दालान में आयी। दालान का दरवाजा कल्पू बाहर से भेड़ता गया था। नयी दुलहिन ने दरवाज़ा खोला। गर्दन निकाल कर उसने गली में झाँका। इधर-उधर देखा। शायद दरवाज़े पर खड़े हों, तो बुला लूँ और पैरों में गिरकर कहूँ कि चुपचाप ऊपर चले चलिये, मैं कुछ न कहूँगी, पर कल्पू कहीं दिखाई न पड़ा। दरवाज़ा बन्द करते समय हिचकियों की लहर उसके समूचे शरीर को हिला गयी। उसने दाँतों से होंठ भींच लिये। साँकल चढ़ाकर वह भागती हुई छत पर आयी और कटे गाछ की तरह चारपाई पर गिर पड़ी।

जो कभी दो व्यक्तियों के बीच का राज़ था उसे समय ने दूसरे अनेक लोगों की रुचि और कल्पना का दिलचस्प विषय बना दिया। वंशी बो काकी को यह बात सबसे पहले मालूम हुई कि कल्पू बहू के कमरे में जाकर सो जाता है। और जगाने पर भी जगता नहीं। उन्हें यह भी पता चला कि यह सब कुछ इधर ही नहीं होने लगा है, बल्कि पहले दिन ही ये 'लच्छन' प्रकट हो गये थे। कुछ दिनों वंशी बो काकी काफी अफसोस में गिरी रहीं। उनकी समझ में कुछ आता ही न था। लड़के को बहू पसन्द न हो, यह उनकी कल्पना के बाहर की चीज़ थी। बहू सुन्दर है। पढ़ी-लिखी है। कपड़ा-वपड़ा भी ढंग से पहनती है। 'सवख' से रहती है। फिर क्या हो सकता है उसमें खोट कि लड़का पहले दिन ही खिंचकर अलग हो जाये? बहू से नज़र हटाकर जब वे लड़के के बारे में सोचतीं तो उनका मातृहृदय प्रेम से लबालब भर जाता। "बच्चा है अबहीं हमारा कल्पू।" वे मन ही मन सोचतीं। उनके मन के अदृश्य हाथ नाना मुद्राओं में कल्पू को सहलाने लगते। सिर के मुलायम बालों पर से हाथ फेरते-फेरते वे नखशिख कल्पू को अपने प्रेम और स्नेह की चादर में लपेट लेतीं। कल्पू का एक-एक अंग उनका देखा है। उनकी आँखों में कई दृश्य हैं ऐसे, जब उनकी दृष्टि कल्पू के शरीर के एक खास हिस्से पर कई बार केन्द्रित हुई है। सोये हुए कल्पू के शरीर के उस अशिथिल हिस्से को उन्होंने देखा नहीं है क्या? फिर, फिर क्या हो गया है उसे? इतनी सुघर और सजीली औरत से दूर क्यों भागता है? यह सही है कि ये दृश्य तब के हैं जब कल्पू बारह साल का किशोर था। बहुत साल हो गये। कल्पू को उन्होंने सोये हुए फिर कभी नहीं देखा। वह अब मर्दों के साथ दरवाज़े पर सोता है। पर इस बीच तो ये सब चीजें पहले से अधिक पोढ़ाई ही होंगी। उनमें किसी तरह की कमी का क्या सवाल? अब राम जानें। वे सोचते उदास हो जातीं। एक ही लड़का है। बंस-बरखा से बिचला तो, हम लोगों की तो ज़िन्दगानी ही भार हो जायेगी।

राज़ की यह बह बात जाने कैसे इस घर से उस घर तक पहुँचने

लगी। कोई कहता कल्पू में खोट है। कोई कहता दुलहिन ही चरबाँक है। ऐसे मौक़े पर जब वंशी बो काकी वहाँ पहुँच जातीं, अचानक बातचीत का रुख बदल जाता। सभी औरतें एक साथ दुलहिन को ही कोसने लगतीं—"ना बहिनी, दुनिया कुछ कहे। हम लोग तो कल्पू को लड़काईं से देखते आ रहे हैं। हज़ारों लड़कों में दीया लेकर खोजने से भी वैसा लड़का नहीं मिलेगा। ज़रूर न ज़रूर से दुलहिन में ही कोई ऐब है। कल्पू की माई, तूँ तनिक कवनों ओजा-सोखा से काहे नहीं दिखाती? कुछ-न-कुछ फ़रक है ज़रूर।"

वंशी बो काकी इन सब उपदेशों को दयनीय भाव से सुन-सुनाकर हाँ-हूँ कर देतीं। यदि कोई कल्पू पर लांछन लगानेवाली बात घुमा-फिराकर भी कहता तो सभी तरह से उद्यत होकर अपने कल्पू के लिए ढाल बनकर खड़ी हो जातीं। वैसे समय उनके मुँह से दुलहिन के खिलाफ़, उसने नारी न होने के प्रमाण में, हज़ारों बातें धारा-प्रवाह फूट निकलतीं। हमजोली औरतों या फिर ननदों आदि के द्वारा ये बातें किसी न किसी प्रकार रँग-रचकर दुलहिन के पास ज़रूर पहुँचतीं। इन्हें सुनकर एक बार को दुलहिन के शरीर में अँगूठे से चोटी तक आग लग जाती।

"मैं औरत नहीं हूँ? मेरे पास कुछ नहीं है?" वह ये बातें सुनकर हँसती। पीड़ा और निराशा में भी ये बातें उसकी अन्तरात्मा के भीतर कहीं सोये हुए तारों को छेड़ देतीं। वह बन्द कमरे में शीशे के आगे अपना ब्लाउज और चोली उतारकर घंटों निहारती रहती। गोरे चम्पई रंग के बीच हल्की कालिमा लिये ललछौंहें गदराये वक्ष उसकी आँखों में अजीब उदासी से भरी वेदना जगा जाते। पके हुए चित्तीदार अमरूदों की गंध उसके नथुनों में बस जाती। वह बेसुध की तरह अपने निरर्थक शरीर को चोली और ब्लाउज से ढँक लेती।

अपने बारे में ज्यों-ज्यों दुलहिन आश्वस्त होती गयी, त्यों-त्यों उसके रुख में एक अजीब परिवर्तन आता गया। उसने रंगीन साड़ियाँ पहनना छोड़ दिया। साफ़ धुला हुआ लुग्गा उसे बेहद अच्छा लगता। धुले कपड़े

की गंध उसकी अशान्त नसों को शान्त कर देती। वह दिन भर या तो घर के कामों में लगी रहती या फिर खाली हुई तो महल्ले की लड़कियों को बटोरकर उनकी बाल-चोटी किया करती। वंशी बो काकी बहू के इस रुख परिवर्तन से खुश ही हुईं। उन्हें खुद बहू-बेटे के मामले पर ज़्यादा सोचना कष्टकारक लगता। जो होगा, सो होगा। अब मैं क्या करूँ। जो करम में लिखा होगा, उसका मेटनहार कोई नहीं है।

शादी के बाद छः-सात साल बीत गए। कल्पू दिन पर दिन दुबला होता गया। कमर झुककर कमानी हो गई। पिचके हुए गालों ने चेहरे पर त्रिभुज का निर्माण कर दिया। उसकी तुलना में बहू के अंदर कोई खास परिवर्तन नहीं हुए। बहुत ग़ौर से देखने पर चेहरे में एक खिंचाव ज़रूर नज़र आता। चेहरा पहले से कुछ लम्बोतरा लगता। आँखों के नीचे हल्की कालिमा भी दिखाई पड़ती, पर जब वह लड़के-लड़कियों को बटोरकर खिलखिलाती तो ये सभी कुछ उसकी उजलती हँसी में छुप जाते। अब धीरे-धीरे पर्दा भी ढीला हो गया था। दुलहिन पटनहिया भाभी के नाम से लड़के और लड़कियों की जबान पर चढ़ चुकी थीं। उनकी हँसी की चारों ओर चर्चा थी। वाह, दुलहिन हो तो ऐसी। हमारे तुम्हारे घर की नवखी दुलहिनें कैसा मुँह फुलाये रहती हैं। ज़रा काम बढ़ जाये, दो ठो पाहुन बाहर के आ जायें, तो नाक चढ़ जायेगी। झनक-पटक शुरू हो जायेगी। एक ठो वो दुलहिन है कि सारा काम-धाम सपरा कर पढ़ेगी, या कपड़ा सिलेगी या फिर लड़के-लड़कियों को बटोरकर हा-हा हँसेगी। ऐसे घर में लक्ष्मी न रहेंगी तो क्या हमारे तुम्हारे यहाँ रहेंगी जहाँ आदमी हमेशा रोवाँ गिराये दिन काटेगा ?

पटनहिया भाभी से आठ-नौ साल के छोकरों की भी खूब पटती। वे चीलम के लिए आग माँगने, खेलते-कूदते प्यास लगी तो पानी माँगने, या माँ या चाची के संदेश वंशी बो काकी तक पहुँचाने, यदि आँगन में आ गए तो पटनहिया भाभी फगुवा के तीन महीने पहले से ही होली मनाना शुरू कर देतीं। आग मिलती, पानी मिलता, वंशी बो काकी न रहीं तो सन्देश सुनकर भाभी उनसे भुगता देने का वचन भी देतीं, पर तभी जब वे अपनी इच्छा के अनुसार पानी या कीचड़ से लड़के को नहला लेतीं। इतने तक ही वे सीमित रहतीं, तो भी छोकरों के लिए ज़्यादा चिन्ता की बात न होती, पर उनकी एक आदत और भी थी। पता नहीं क्यों उन्हें हर छोकरे को नंगा करना अच्छा लगता। रंग, पानी या कीचड़ डालते यदि लड़के ने अपने बचाव के लिए छीना-झपटी की, हाथ-पैर चलाये तो बस, यह पटनहिया भाभी के लिए जैसे इशारा होता और वे कमर में हाथ डालकर भगई या धोती, नेकर या जाँघिया खींचकर नीचे कर देतीं। लड़का लजाकर ज़मीन में धँस जाता तो भी मुक्ति न मिलती जब तक कि वह सीधे खड़ा होकर मिनती करके उनसे अपने कपड़े न माँगे। कपड़े तब तक न मिलते जब तक कि वंशी बो काकी या दूसरी चचिया-सासुएँ बीच-बचाव करके बहू को प्यार से झिड़कती हुई आदेश न देतीं। सासुओं की मीठी झिड़कियों के कारण वे कपड़े लौटा देतीं; पर 'चीरहरण लीला' से बाज़ न आतीं। कपड़े लौटाती हुई पटनहिया भाभी नंगे लड़के की ओर कनखी से देखती रहतीं और जाने क्यों उनकी आँखें डबडबा आतीं।

● ●

तेरह

विपिन पटनहिया भाभी के बारे में यह सब कुछ नहीं जानता। उस दिन खलिहान वाले बरगद के नीचे बैठा अन्यमनस्क सोच रहा था तो अलबत्ता सिरिया और छबिलवा को कल्पू से खुसुर-फुसुर बतियाते और मज़ाक़ करते सुना। मरद ज़ात का नाम हँसाया तूने—ऐसा ही कुछ सिरिया ने कहा था। विपिन इसे सुनकर भी न सुना-सा बना रहा। 'मरद ज़ात' का भी कितना-कितना अर्थ है। 'औरत ज़ात' से अचानक इसे काटकर अलग कर देने में हमें कितना सन्तोष मिलता है। विपिन की आँखों के सामने एकाएक कनिया और पुष्पा की छायाएँ उभर आयी थीं। बड़े भाई साहब भी 'मरद ज़ात' के ही प्रतिनिधि हैं। यह 'जाति भेद' हमारे बचपन से ही घुट्टी में पिलाया जाता है। लड़के और लड़कियों के कर्म और धर्म की जुदा-जुदा परिभाषायें हम मृत्यु-पर्यन्त ढोते रहते हैं। कितना खुश होते हैं। सब कुछ सहकर भी इस लीक पर आँख मूँदे चले जा रहे हैं।

पटनहिया भाभी इधर अक्सर छावनी में आने लगी हैं। सिरिया कहता था—बुझारथ बुलाता होगा। कनिया हैं कि जैसे उनके ऊपर कोई

असर ही नहीं। रोज़ ही आती है। पर जब भी आयेगी, इस तरह हर्ष और ममता के साथ कनिया भेंटेंगी जैसे बहुत दिनों के बाद कोई बिछुड़ा हुआ संगी-संघाती आ मिला हो। जब तक यह औरत यहाँ रहेगी, बेमतलब की हँसी और खिलखिलाहट से आँगन गूँजता रहेगा।

विपिन छत पर से उतरकर आँगन में आया तो पटनहिया भाभी सहसा मौन हो गयीं। जैसे वे अब तक हँसती ही न रही हों। विपिन ने सोचा था कि वे उसे देखकर हाथ भर का घूँघट ज़रूर मारेंगी। पर वे सिर के पल्ले को थोड़ा-सा खिसका-सरकाकर ही सन्तुष्ट हो रहीं।

"विप्पी!" कनिया हर आनेवाली औरत से, और यदि वह थोड़ी खुली और चुटकी लेने में चतुर हुई, तब तो क्या कहना, विपिन का परिचय कराना अपना फ़र्ज़ समझती थीं। ऊपर से उनके चेहरे पर निर्मुक्त मुस-कराहट खेलती रहती। भीतर सोये मन्तव्य को तो उनका अन्तर्यामी भी शायद ही जान पाता।

"विप्पी, अरे भई, यहाँ आना ज़रा। यह देखो तुम्हारी भौजाई हैं कल्पू बो। जाने बिचारी कितनी ललक कर तुमसे बात करना चाहती हैं, तुम हो कि किताब में मूड़ गड़ाये बैठे रहते हो।"

विपिन हल्के मुसकराया। थोड़ा लजाते-झेंपते कनिया के पास की चार-पाई के गोड़े पर पैर रखकर यों खड़ा हो गया जैसे बदन की बनावट का इम्तहान होनेवाला हो।

पटनहिया भाभी उसे देखकर ज़रा झिझकीं-लजाईं। कनिया भी उसकी इस बहादुरी से बहुत खुश नहीं हुईं। इसलिए एक क्षण मौन रहीं।

"क्या बबुआ जी, लड़ाई करने आये हैं?" विपिन की ओर कनखी देखते हुए पटनहिया भाभी बोलीं।

"हाँ।" विपिन हँसते हुए निधड़क बोला। उसके चेहरे पर इस कृत्रिम खुलेपन को व्यक्त करने का प्रयत्न उसका ही मज़ाक़ उड़ाता हुआ-सा छा गया। औरत से बात करना भी कितना मुश्किल काम है। कुछ न बोलो तो अभिमान प्रकट होता है, जो नारी ज़ात का अपमान लग सकता है और

कुछ बोलने का प्रयत्न करो तो अपने व्यक्तित्व को सँवारकर प्रस्तुत करने की इच्छा खुद पर ही व्यंग्य करने लगती है। विपिन 'हाँ' कहकर, हँसते हुए भी हँस न सका और उसका चेहरा हल्के लाल रंग में रँग गया।

"अरे मइया रे।" पटनहिया भाभी कनिया के बदन में धँसती हुई सी चिलककर बोलीं—"दिदिया राउर देवर तो बड़े बहादुर लगते हैं।"

"तो क्या समझा था आपने?" विपिन ने देखा कि कनिया निहायत चुप हो गयी हैं। उसे अपने वाक्य की निरर्थकता और भी अधिक खलने लगी। उसका चेहरा बिल्कुल बुझ-सा गया। पर पटनहिया भाभी का उत्साह वैसे ही अटूट था। वे खिलखिलाती रहीं, भौंहें नचाती बोलीं—"अभी किसी लुगाई से काम नहीं पड़ा है बबुआ जी। इसी से बढ़-बढ़कर बोल रहे हैं, करे दिदिया?"

'दिदिया' अब भी वैसे ही चुप थीं। पर विपिन मोर्चे पर काफ़ी आगे बढ़ चुका था। अभी उसके कानों में बरगद के नीचे सिरिया और कल्पू के बीच होनेवाली बातचीत के शब्द वैसे ही गूँज रहे थे। बड़ी चरबाँक औरत है यह। उसने शायद 'मरद जात' के अपमान का भरपूर बदला लेने का निश्चय कर लिया था, इसलिए एक क्षण कनिया की ओर देखकर उसने कुछ सोचा और फिर बिना होंठ मुरकाये कहा—"सभी लोग कल्पू भाई की तरह सीधे ही नहीं होते भौजी! अभी आपको भी किसी मरद से पाला नहीं पड़ा।"

सहसा पटनहिया भाभी का चेहरा गाढ़े लाल रंग में डूब गया। ललाई ज्यों-ज्यों बढ़ती गयी, एक अजीब चेतन स्याही सारे चेहरे पर दौड़ने लगी। कनिया इस धक्के से कीचड़ और पानी की पकड़ से छूटकर बाहर आ गयीं। उनका चेहरा अबूझ ग्लानि से रँगा हुआ था। विपिन यह देखकर बिल्कुल घबड़ा गया। कही हुई बात कोई स्लेट पर लिखी इबारत न थी कि मिटा दे या काग़ज़ का पुर्जा भी न था कि वापस माँग ले। इस छूटे हुए तीर को रोकने के प्रयत्न जैसे व्यर्थ थे, वैसा ही व्यर्थ घाव को सहलाना भी था। इसलिए एक क्षण इधर-उधर ताककर

परिस्थिति को थाहता हुआ विपिन आँगन से निकलकर दरवाज़े पर चला गया।

दरवाज़े की चारपाई पर बैठा वह सामने की केवड़ार की मटमैली बदरंग चहारदीवारी को देखता रहा। उसे इस बात की उतनी चिन्ता न थी कि कल्पू बो भौजी क्या सोचेंगी? चिन्ता कनिया की थी। ज़िन्दगी में पहली बार इतना बेलगाम होकर वह बोल गया था। दोपहर को जब खाने के लिए शीला बुलाने आयी तो उसके क़दम गहरी आशंका के कारण लड़खड़ा रहे थे।

सामने थाली परोसते हुए कनिया मुस्करायीं। जब वह गर्दन लटकाये खाना खाने लगा तो वे हँसते हुए बोलीं—"कहो बहादुर, सब जानते थे कि बस यों ही जड़ दिया?"

"क्या?"

"अरे वही कल्पूवाली बात।"

"कैसी बात?"

"तुमने कहीं सुना तो होगा ही? लोग कहते हैं कि दुलहिन ने उसे कमरे से झोंक दिया था।"

"क़सम से भाभी, मैं यह नहीं जानता था। अरे बाप रे, तब तो कल्पू बो भौजी बड़ी चिढ़ी होंगी?"

"चिढ़ी तो ज़रूर होंगी, पर कुछ बोलो नहीं। अब दो-एक दिन के बाद पता चलेगा। चिढ़ी होंगी तो शायद अब यहाँ आयेंगी ही नहीं।"

विपिन की आशंका निर्मूल सिद्ध हुई। पटनहिया भाभी नाराज़ नहीं हुईं। दूसरे दिन शाम होते-होते वे फिर बखरी में आ गयीं। विपिन द्वार पर बइठके में था। उसे उनका आना मालूम न था, क्योंकि गाँव की औरतें हमेशा ही बखरी में पिछले दरवाज़े से आया करती थीं। कनिया ने कल्पू बो को आया देखा तो वे रोज़ की अपेक्षा कहीं ज्यादा प्रेम से उतावली होकर आवभगत के लिए खड़ी हो गयीं।

"आव दुलहिया। हमने तो सोचा कि भई तू हमारे देवर से बुरा मान

गयी। विपिन दिल का बड़ा साफ़ लड़का है। मज़ाक़ में भाभी को चिढ़ाने के लिए कह गया।''

''अरे नाहीं दिदिया ! हम क्या ई नहीं जानतीं कि बबुआ ऊ सब बातें चिबोरी में कर रहे थे।'' कल्पू बो एक क्षण के लिए कनिया की ओर देखती हुई बोलीं; पर तुरन्त उन्होंने आँखें झुका लीं। मन में भय था कि शायद कनिया ऊपर-ऊपर से उसे खुश करने के लिए कह रही हैं। मन में शायद कुछ और हो, और वह कहीं उनकी आँखों में दिख गया तो खाई पाटने के जिस उद्देश्य से वह आयी हैं, वह पूरा न हो सकेगा।

''बैठ जाओ न, खड़ी काहे हो।''

''आज तनिक जल्दी है दिदिया। बहाना करके आयी हूँ। आजकल बड़की जनी खाना बनाती हैं। थोड़ी छुट्टी मिल जाती है। बैठे-बैठे मन नहीं लगता।'' पटनहिया भाभी पीढ़ा खींचकर बैठती हुई बोलीं। आज सचमुच वे बहुत थकी-थकी लग रही थीं। समय का भारी बोझ एक क्षण के लिए उतरा हुआ ज़रूर लगता था, पर उसको ढोते रहने को एक अजीब मुर्दनी थकान चेहरे पर छाई हुई थी।

''क्या करती रहती हो दिन भर ?'' कनिया कुछ और भी जानना चाहती हों जैसे।

''क्या करती हूँ ? किसी ने फटा-पुराना कपड़ा दिया तो सी-बटोर दिया। नहीं चुपचाप मक्खी मारती बैठी रही। मायके से जो कुछ किताबें-वितावें लायी थी, उन्हें दस-दस बार पढ़कर उबीठ गयी। सोचा शायद विप्पी देवर के पास कुछ पढ़ने-वढ़ने की चीज़ मिल जाये; वे नहीं हैं क्या ?''

''कुछ देर पहले तो था यहीं। शायद बइठके में हो। रहो बुलवाती हूँ शीला से।''

शीला जाकर विपिन को बुला लायी। आँगन में कल्पू बो को बैठी देख विपिन आशंका से भर उठा। जाने क्या-क्या कहेंगी यह औरत। मन में थोड़ी राहत भी हुई कि चलो बहुत चिढ़ी नहीं, वरना यहाँ आती ही क्यों।

''विप्पी।'' कनिया मुसकराती हुई बोलीं—''दुलहिन कहती हैं कि यदि तुम्हारे पास कोई किताब-विताब हो तो इसे पढ़ने को दे दो।''

''कैसी किताब ?''

''अरे कोई उपन्यास-कहानी की। और कैसी किताब।'' कल्पू बो भौजी मुसकराती हुई बोलीं—''जाने कितनी होंगी 'रउरा' के पास इधर-उधर फेंकी हुई।''

''हैं तो ज़रूर। ऊपर वाले कमरे में। बहुत-सी इधर-उधर पड़ी हैं। लेकिन पता नहीं आपको पसन्द आयें न आयें....?

''ऊपर जाकर तू ही छाँट ले न ?'' कनिया ने कहा।

विपिन के साथ कल्पू बो सीढ़ियाँ चढ़ती छत पर पहुँची। बग़ल में कमरा था विपिन का। एकाएक पटनहिया भाभी के मन में सोई कोई लहर धुएँ की पतली लकीर की तरह उठी। उनकी आँखों में अजीब करुणा छा गयी। ऐसी ही सीढ़ियाँ, छत के एक कोने में ऐसी ही कोठरी। कितनी खुशी और उल्लास के साथ वे उस कमरे के दरवाज़े पर बाज़ू से सटकर खड़ी थीं। दिल की धड़कन एकाएक बढ़ गयी थी। वे प्रसन्नता से ऐसी स्तब्ध हो गयी थीं कि उसकी एक-एक आवाज़ उनके कानों में साफ़ सुनाई पड़ रही थी। एक क्षण वे विपिन के कमरे के दरवाज़े के पास रुक गयीं। एक क्षण के लिए उनकी आँखें डबडबाने को हुईं। एक क्षण उनके जीवन की विवशताएँ उन्हें अपने नागपाश में बाँधकर निश्चेष्ट-सी बना गयीं।

''आ जाइये न ?'' तभी विपिन ने उन्हें संकोच में दरवाज़े के बाहर खड़ा देखकर कहा—''चली आइये।''

ऐसी ही आवाज़, यही उत्तर सुनने की अछोर आकांक्षा लिये तो वे बाज़ू से सटकर खड़ी थीं, उस दिन। पर स्वागत के ये शब्द, जो उनकी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी नियामत होते, कभी सुनाई न पड़े। पटनहिया भाभी चौकठ हेलकर कमरे में आ गयीं। विपिन की चारपाई के पास

सिरहाने की पूरी आलमारी किताबों से भरी थी। ऊपर के दो खानों में इतिहास की पुस्तकें थीं। नीचे कुछ कहानी-उपन्यास की।

"देखिये न, इनमें से कोई पसन्द आ जाये शायद।" उसने निश्छल उदार हँसी के साथ पटनहिया भाभी की ओर देखते हुए कहा।

"कोई दे दीजिए, सभी अच्छी ही हैं बबुआ जी मेरे लिए। जहाँ कुछ भी नहीं है, वहाँ सभी अच्छे ही हैं, है कि नहीं?"

विपिन ने दो उपन्यास निकालकर उनको थमाते हुए कहा—"कल शायद आप मेरी बात का बुरा मान गयीं, भौजी?"

"नहीं तो। यह कैसे समझ लिया आपने?"

"कनिया कह रही थीं कि शायद दुलहिन को तुम्हारी बातें बुरी लग गयीं।"

"दिदिया ऐसे ही कह देती हैं।" पटनहिया भाभी की आँखें एकाएक भरभरा आयीं—"पहले बुरा मानती थी बबुआ, तब किसी की कोई बात सही नहीं जाती थी। अब तो आदत पड़ गयी। हमको तो अब कुछ बुरा लगता ही नहीं। कुछ भी नहीं। सच।" उनकी आँखें डबडबा आयीं।

विपिन एक अजीब आश्चर्य से उनके चेहरे की ओर देखने लगा। पर वे उसकी तरफ़ से झटके से आँखें मोड़कर किताबों के आवरण-चित्रों को देखने लगी थीं।

"अच्छा तो फिर चलूँ।" उन्होंने बड़ी निरीहता-भरी उदासी के साथ विपिन की ओर देखा। उसके उत्तर का बिना इन्तज़ार किये वे कमरे से बाहर आ गयीं। विपिन ने कोठरी के दरवाज़े बन्द किये। पटनहिया भाभी उससे पहले सीढ़ियाँ उतरकर आँगन में आ गयी थीं। विपिन भी आँगन में आ गया। उसने आश्चर्य से देखा कि उनके चेहरे की उदासी जाने कहाँ गुम हो गयी थी। वे खिलखिलाकर हँसती हुई कनिया से बातें कर रही थीं। एक किताब के कवर पर बनी नारी की तस्वीर को कनिया के मुँह से सटाकर कह रही थीं—"सचमुच दिदिया! यह तेरी-जैसी ही लग रही है।"

• •

चौदह

यह तलैया स्वाभाविक बिलकुल नहीं लगती। जब भी इसे देखा है, लगता है, किसी चंचल लड़के ने एक टेढ़ी-मेढ़ी नीली रेखा खींच दी है। इधर-उधर का गन्दा पानी यहाँ आकर इकट्ठा हो जाता है। किसी साल बारिश कम भी हो तो भी यह तलैया गाँव की गलियों से बहकर आये हुए पानी से ज़रूर उतरा उठेगी। आजकल तो इसकी गन्दगी की भी एक शोभा है। सारी गन्दगी कत्थई रंग की काई में बदल गयी है। लगता है एक बादामी चौड़ी द्रवणशील सड़क करैता गाँव को दो टुकड़ों में बाँटती बल खाती इस छोर से उस छोर तक निकल गयी है। पूरब तरफ़ जलकुंभी के नीले-नीले फूल हैं। पश्चिमी हिस्से में उजले ललछौहें छतनार पत्तों के बीच पीले-पीले जवों वाले कुईं के। कहीं-कहीं काई फटी है। वहाँ नीले, तनिक गाढ़ कालिमा लिये हुए गन्दे जल में एक झुण्ड लड़के-लड़कियाँ 'डुबकी-छुओवल' का खेल मचाये हैं।

इस तलैया के दक्खिनी कगार पर करैता की चमरौटी आबाद है। गाँव के बड़े लोगों से 'नान्ह लोगों' को अलग करती हुई यह तलैया मुझे इसी कारण कभी स्वाभाविक नहीं लगती। शूद्र, चांडाल, चिड़ीमार, कसाई, खर्बट के बाहर रहेंगे—यह व्यवस्था जिस किसी ने जब भी दी

हो, उस समय तलैया नहीं रही होगी। मुझे यह इत्मीनान नहीं होता कि इस व्यवस्था के पहले यहाँ तलैया थी और इसके उत्तर तरफ़ सवर्ण और दक्षिण तरफ़ शूद्र बसा दिये गये। यह खाईनुमा तलैया ज़रूर बाद में बनी क्योंकि गाँववालों को लगातार डर रहा होगा कि कहीं चमरौटी की आबादी समतल सीमा को चीरकर किसी दिन उनसे सट न जाय। इसीलिए हमेशा माटी निकाल-निकाल इस तलैया को गहरा किया जाता रहा होगा और भेदकारी पूर्वी भीटे को ऊँचा। पूर्वी भीटा ऊँचे छवरे की तरह गाँव को चमरौटी से जोड़ता है। दोनों बस्तियों को दूर-दूर रहना ज़रूरी है क्योंकि व्यवस्था है। इसलिए तलैया है। किन्तु दोनों के मिले बिना एक दूसरे का काम न चलेगा। इसलिए ऊँचा भीटा है। पोढ़ रास्ता है। यह दोनों को जोड़ता है।

सुकवा उगते ही, धुंएँ से करियाए झिनकू के छप्पर पर अपनी एक टाँग उठाकर, सारे बदन को आज़मा कर, सिर के लाल जटामासी कलंगे को नचाकर बुढ़वा मुरग़ा पहली बाँग देता है ···क् क् क् क् कुकुहूँ कू····।

तभी झिनकू जग जाता है। जग जाता है और पास सोये घुरबिनवा को खोद-खोदकर जगाता है। लड़का उसके हर कोंचे के साथ करवट बदल लेता है। कभी पिता की कड़ी उँगली की नोक ज़्यादा ज़ोर से लगी तो कुत्ते की तरह कूँ-कूँ करते हुए वह पैरों को सिकोड़ लेता है और फिर गुड़ी-मुड़ी गठरी की तरह बटुर जाता है।

"अउर कुकड़ी मार, हरामी साले।" झिनकुवा बड़बड़ाता है—"बैलों को दाना-पानी देने की जून हो गयी। देर से पहुँचे साले तो जगजितवा कान उमेठकर दे देगा एक तमाचा। सारी उँघाई हवा हो जायेगी।"

घुरबिनवा बाप के खुदक्के से उतना परेशान नहीं होता, जितना जग-जीत के नाम से। वह एक झटके से उठकर बैठ जाता है। थोड़ी देर झोपड़ी के अँधेरे में घूरता, दो-एक जँभाइयाँ लेता और फिर उठकर भगई ठीक करता हुआ गली में खो जाता है।

बड़े भिनसारे बंशी सिंह की बखरी के दरवाज़े पर जाकर हाँक

लगाता। घंटों दरवाज़ा थपथपाने और सिकड़ी पीटने के बाद कहीं दरवाज़ा खुलता। दोनों पल्लों की संध में मुँह डालकर घुरबिनवा दालान में हेले कि गालियों की बौछार तड़तड़ा उठती।

"मुँहझौंसा आधीरात को सिकड़ी पीटने लग जाता है।" जगजीत बो मार खाये साँपिन की तरह मुँह फैला-फैला करके जँभाइयाँ लेती हैं और बुदबुदाती हैं—"जरी आँख लगी नहीं कि ई दानवादूत दरवाज़े पर हाज़िर। बज्जर परे उस करमनिखट्टू पर। तनिक दरवाज़ा खोलने में देर हो जाये तो भूत की तरह लाल-लाल आँखें करके चिल्लायेगा। इस घर के सब प्रानी रानी हैं। जैसा मुसहर ऊ वैसी मुसहरिन मैं। घंटों सिकड़ी बजे, कोई उठ कर दरवाज़ा नहीं खोलेगा। क्यों खोले भाई, सब लोग तो चहबच्चा लेकर आयी हैं। बड़े बाबू की बेटी हैं। एक करमजली तो मैं हूँ। आग लगे ऐसे बाप-भाई की कमाई में। जाने कहाँ के कमीने लोगों के घर शादी करके कुइयाँ में झोंक गये मुझे।"

जगजीत बो की बड़बड़ाहट घर में सोई पटनहिया भाभी सुनतीं और चुपचाप लेटे-लेटे सोचती रहतीं—कौन करमजली है, कौन नहीं, इसका फ़ैसला तो अन्तरजामी ही कर सकता है। कहने से का लाभ ?"

घुरबिनवा पर इस बड़बड़ाहट का कोई असर नहीं होता। ई सब तो 'रोजीना का नेम' है। कभी-कभी तो अगर यह सब उसे सुनाई न पड़े तो बड़ा उदास लगता है। बड़की दुलही का जब कभी 'कपार बथने' लगता है और वे 'खँटवास-पटवाँस' ले लेती हैं, तो छोटकी जनी सुबह सिकड़ी बजने पर चुपचाप दरवाज़ा खोलती हैं—"का बबुआ! तोरा सच-मुच नींद नहीं लगती का ?" छोटकी बहू हँसती हुई कहतीं—"बड़ा नीमन लड़का है घुरबिन तो। ले जा उधर गगरी में दाना है और उधर वाली हाँड़ी में जूठ।"

घुरबिनवा उनकी ओर मुसकराकर देखता और कनखी से बड़की बहू के दरवाज़े की ओर आँख का इशारा करता। छोटकी बहू इस बात पर कुछ बोलती नहीं। बस हँसी रोककर, दाँत से ओठ दबाये थप्पड़ हिला-

कर जतातीं कि ऐसा करेगा तो मार खायेगा। फिर मुसकराती हुई अपने घर में चली जातीं। उस दिन गमछा सिर पर लपेटकर एक हाथ से गगरी और दूसरे हाथ से हाँड़ी उठाकर दरवाज़ा पार करते हुए घुरबिनवा ज़ोर की आलाप लेता :—

तोहरा के लइबे झुलनी, अपना के छाता, आरे रावल मुनियाँ।
जब हम जइबै कलिकाता, आरे रावल मुनियाँ।

घुरबिनवा बैलों को सानी-भूसा, दाना-पानी देता। सार में से गोबर निकालता। दरवाजे को खरहरे से झाड़-बुहारकर साफ़ करता, तब चमरौटी लौटता। उस समय पूरब में क्षितिज के पास के आसमान में पेड़ों के हाशिये के माथे पर एक छोर से दूसरे छोर तक उदीयमान सूरज की लाली छायी होती। ललछौहीं रोशनी में चमरौटी का अस्थिपंजर अपनी सारी विकृतियों जो उभाड़कर ठगा-सा खड़ा प्रतीत होता।

ठीक छवरे के अन्तिम छोर पर जहाँ से चमरौटी शुरू होता है, दुक्खन चाचा का मकान है। इसे मकान कहना ठीक न होगा। खंडहर है यह अब। दीवालें अभी भी साबुत खड़ी हैं। मगर पक्खों पर न बंडेरा है, न दुपलिया छानें। ख़ाली जगह समझकर लोग कूड़ा और राख फेंकने लगे हैं यहाँ। इसी में आकर हरामज़ादियाँ पाखाना भी कर जाती हैं, सूअर कहीं की! घुरबिनवा गमछे के खूंट से नाक तोपकर हुर्र से आगे बढ़ जाता है।

दुक्खन चाचा को उसने ख़ूब अच्छी तरह देखा था। लम्बे-तड़ंगे आदमी थे। ख़ालिस आबनूसी रंग के। मलिकाने में चरवाही करते थे। सिर पर अगल-बगल में कुछ दूर के हिस्से को छोड़कर बाक़ी सब जगह खोपड़ी के बाल एकदम ग़ायब थे। कान में ललरी से एकदम सटी हुई बालियाँ पहने रहते। चेहरे पर हमेशा मुस्कराहट।

"का हो घुरबिन बेटा।" गली से गुज़रते वक़्त टोकते—"जरी हाथ सेंक ले बेटा। बड़े भिनुसारे निकल जाते हो। बढ़िया है, बहुत बढ़िया।" वे हुक़्क़े के नारियल में ओठों को सटाकर तमाखू सुड़कते हुए कहते—"झिनकू भाई तो ठीक हैं न रे?"

"हाँ चाचा।" घुरबिनवा कौड़े के पास बैठकर अपने ठिठुरे हुए हाथों को उलट-पलटकर सेंकते हुए ठंढी आँखों से बहते पानी को गरम-गरम हथेली से सुखवाता। वह चुपचाप दुक्खन चाचा के हुक़्क़े की गुड़गुड़ाहट सुनता जाता।

"अच्छा हो घुरबिन बेटा, चलें हम भी। आज बुढ़ऊ मलिकार आने वाले हैं।" दुक्खन चँचरे के बाज़ू के पास हुक़्क़ा टिकाते हुए कहता—"हम भी भइया उनहीं को जोह रहे हैं। छोटे सरकार की गालियाँ अब सही नहीं जातीं।" अचानक दुक्खन चाचा की आँखें भर आती हैं। घुरबिनवा इन सब बातों का कोई मतलब नहीं समझता। दुक्खन चाचा को कोई तक़लीफ़ है। वह इतना भर समझता है। दुक्खन चाचा ये सब बातें उससे कहते हैं। इसलिए वह काफ़ी ख़ुश होता है। उसे लगता है वह भी समझदार आदमी हो गया है, शाइत।

बुढ़ऊ मलिकार को घुरबिनवा ने भी देखा है। यह-यह गलमोच्छा, दो बित्ता माने चौड़ा मुँह, लाल-लाल बड़ी-बड़ी आँखें! बाप रे, कोई सामने खड़ा होकर बोलने की हिम्मत नहीं करता बुढ़वा के। ऊ तो कहो दुक्खन चाचा ने हमको चरनी के आड़ में खड़ा कर दिया था। सो हम टुकुर-टुकुर देखते रहे उहाँ से; नहीं 'केहू' उतना पास से बुढ़वा को देख सकता है भला?

"तपेसरी!" दुक्खन चाचा ने अपनी छोटकी लड़की को बुलाकर गमछा माँगा और लाठी लेकर छावनी की ओर चले गये।

दोपहर होते-होते तो हल्ला मच गया था इहाँ। दुक्खन चाचा लाद-फाँदकर घर लाये गये। 'केहू' कुछ कहता था 'केहू' कुछ। घुरबिनवा ने छान में जाकर अपनी आँख से देखा था, वह कभी झूठ न बोलेगा। बाईं टाँग में ठेहुन के नीचे भारू चोट थी। बित्ता माने फट गया था। चमड़ा हट गया था। लाठी की चोट से कुचलकर माँस बाहर आ गया था। हाड़ दिख रहा था। दुक्खन बो चाची, तपेसरी, जिरवा, झबुआ सब

इकट्ठा होकर एक साथ रो रहे थे। एक झुंड चमार-चमारिनें दरवाज़े पर खड़ी होकर 'हौरा' मचा रही थीं।

राम क़सम, दुक्खन चाचा को रोते-कराहते देखकर तो उसकी भी आँखें भरभरा आयी थीं।

दुक्खन चारपाई पर चित्त लेटा छान की बल्लियों को देख रहा था। उसकी मटमैली छोटी-छोटी आँखें आँसुओं से तर थीं। चार पुश्त इन लोगों की सेवा-टहल में गल गया। काम के पीछे दुक्खन ने कभी दिन को दिन और रात को रात न जाना। गर्मी, बरसात और जाड़े में सारी मशक़्क़तें सह-सहकर इनका काम करते रहे। और इन्होंने इस काम की यह बख्शीश दी है। जब से बड़की मलकिन मरी हैं, एक दिन भी छावनी में बुलाकर खायक नहीं दिया। समहुत पर भी खाली दो अँजुरी अनाज देकर टरका देते हैं।

"अरे दुक्खन, इहाँ न घर न घरनी। ई सब खायक-वायक तो औरत रहें, तब न होता है?" इस तरह मुस्कराकर कहेंगे बुझारथ सिंह कि जैसे बेचारे पर विपत का पहाड़ टूट पड़ा है। बनिहारों और चरवाहों को कुछ देते आँखें छटकती हैं। सारे गाँव भर के शोहदों को बटोरकर गाँजा पिलाते कितना खुश होते हैं? नीच जात की औरतों से आशनाई करते शरम नहीं आती। खूब जन्मे हैं कुल-बढ़ावन। घोड़े को चना भिगोना भूल गए तो आँख लाल करके उबल पड़े—"का रे दुखना, तोरे आँख में चर्बी छा गई है?" बुढ़ऊ मलिकार भी कभी दुखना कहकर नहीं बोले होंगे। एक आदमी को बोलने-बतियाने का भी सहूर होता है। जन्म ले लिया ऊँचे खानदान में, लेकिन हिरदा बस डोम का डोम। क्या किया था मैंने? सियाँ-मुकुड़ी साले ने एक में दो जोड़कर चुगली कर दी। बस लग गयी आग एड़ी से चोटी तक।

"त तोहूँ हमको उपदेश देते हो स्साले, हम गाँजा-भाँग में अपना सर्वस फूंक-ताप दें, तेरे बाप का क्या? कमीना। अपनी औक़ात नहीं देखता, ज़बान लड़ाता है हरामी।" खींच करके लाठी मार दिया टाँग में। हम

तोहें काहे उपदेस दें। तू भक्खर में जाव। हमसे का मतलब? बाकी नहीं। जिसका नमक खाये हैं, उसको आँख के सामने बिलाते नहीं देखा जाता। इसी से टोक देते हैं। बहूरानी लछिमी हैं। उनका मुँह ताकते सब कुछ सहकर बने रहे। लेकिन अब नहीं होगा। अब सहा नहीं जायेगा। जोखन भगत के खानदान में ई कबों नाहीं हुआ। हमको भी उठल्लू का चूल्हा समझ लिया है का?"

ज्यों-ज्यों दुक्खन इन बातों को सोचता त्यों-त्यों आँखों से आँसू गिरते रहते। दुक्खन बो छान के आगे बैठकर बड़बड़ाती रही। घंटों खीझ और दुःख को कलेजे की साँसों से ठेलती रही—"अउर करो मर-मर के बेगारी। जीव-जाँगर लगाकर इन लोगों का काम करो। तनिक कुछ कह दो। कहीं भूल-चूक होय जाय तो मार के जान ले लेंगे।"

शाम हो आई थी। सुरजू सिंह को पता चला कि बुझारथ ने दुक्खन को मार दिया है तो खुशी के मारे उछल पड़े। बस यही एक दैत्य था बुझारथ का खैरखाह। साला भूत की तरह काम करता था। कहीं किसी से झगड़ा-वगड़ा हो जाये तो लाठी लेकर सबसे पहले खड़ा हो जाता था। लाख पूछो, चिरौरी करो, ऊँच-नीच समझाओ, मगर कभी छावनी के खिलाफ़ एक बात नहीं बतायेगा, "का हो दुक्खन, आजकल तुम्हारे मालिक-मलकाइन में मेल हो गया क्या?" एक बार पूछ दिया था ज़रा तो चमर-पिल्ले की आँख कैसी चढ़ गई थी लिलार में?

"तो आपको काहे जलन होती है सुरजू बाबू।" मुँह बिदोरकर बोला था—"मरद मेहरारू के बीच झगड़ा कोई झगड़ा होता है का?"

सुरजू सिंह को पता लगा कि जैपाल सिंह आ गये हैं। उन्हें मौक़ा मिल गया। बस, कैसे भी दुखना को लाद-फाँदकर छावनी भेजना चाहिए। जैपाल सिंह एक चरवाहे के लिए अपने बेटे से लड़ जायें तो भी, या बेटे का पच्छ लेकर दुखना को खदेड़ दें, तो भी, मज़ा ही मज़ा है। सुरजू सिंह बिना एक छन रुके, लाठी लेकर चमरौटी की ओर चल पड़े।

दुखना की झोपड़ी पर अब भी इक्के-दुक्के लोग खड़े थे। चमरौटी

का जो भी आदमी उसके मारे जाने का हाल सुनता, वह वहाँ ज़रूर पहुँचता। चमारों में एक अजब हादसा छाया था। जब दुक्खन भगत की ई हाल है भइया, तो हमारी तुम्हारी क्या बिसात ?

"का हो झिनकू ?" झोपड़ी के पास रुककर सुरजू सिंह ने ठुड्डी के नीचे लाठी का सिरा टिकाकर पूछा—"चोट गहरी है का ?"

"अरे बाबू साहब, गहरी न है तब का ? मलिकार लोगों के लेखे चमार आदमी थोड़े होते हैं। खींचकर लाठी मार दिया, जैसे काठ वैसे टाँग।"

"तो तू लोग यहाँ क्या घुसुर-फुसुर बतियाते हो भाई। सुना जैपाल काका भी आ गए हैं। उठाकर ले जाओ उनके सामने। अँधेर पड़ी है क्या कि जिसके मन में जब आये, किसी की टाँग तोड़ दे। ऐसा मौक़ा हाथ नहीं आयेगा, समझे ? मीरपुर जाकर दोहाई देते, तब तक तो बात आयी गयी, पुरानी भयी। यहाँ तो अभी टटका मामला है। जाकर पूछो कि सरकार हम लोग रहें कि गाँव छोड़कर जायँ ? क्या हुकुम होता है ? देखो क्या नियाव करते हैं बुढ़ऊ।"

सुरजू सिंह इतना कहकर, मुस्कराते हुए आगे बढ़ गये। दुक्खन बो वहीं बैठी उनकी बातें सुन रही थी। यह सलाह पूरी तरह उसके मन में बैठ गयी। लाद-फाँदकर बस ले ही चलना चाहिए बुढ़ऊ के सामने। मन बहकने की बात है। आज टाँग तोड़ा है, कल गर्दन कटवाय दें। कौन जाने। पूरी रहजन्नी आ गयी है।

दुखना को खटोले पर लादकर जब चमार छावनी पहुँचे तो गाँव के तमाशबीन लोगों का एक छोटा-मोटा जलूस साथ-साथ चल पड़ा।

छावनी पहुँचकर जैपाल सिंह के सामने खटोला उतारकर चमार एक ओर खड़े हो गए। दुक्खन बो चमाइन रो-रोकर सारा दुखड़ा कह रही थी। नवजादिक, खुदाबख्श तथा बुझारथ सिंह और उनके दूसरे शुभेच्छु इस आकस्मिक घटना से बिल्कुल घबड़ा से गये। बग़ल की चारपाई पर बुझारथ सिंह बैठे थे। जैपाल सिंह के क्रोध से सभी परिचित

थे। मुंशी नवजादिक चमारों को समझा-बुझाकर मामला रफ़ा-दफ़ करना चाहते थे। मगर बुढ़ऊ के सामने कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ी।

दुक्खन खटोले में चुपचाप लेटा था। वह आँखें झपकाये जाने क्या-क्या सोच रहा था। घर से चलते वक़्त उसने घरवाली को डाँटा भी कि अब यह सब तमाशा खड़ा करने से क्या फ़ायदा ? पर उसकी एक न चली। पता नहीं बुढ़ऊ मलिकार क्या सोचें। जो हुआ था, चुपचाप उसे सह जाने में कुछ ग़नीमत थी। अब तो बात बढ़ गयी। कहीं छोटे सरकार का पच्छ लेकर बुढ़ऊ ने उसको ढकेल दिया तो इन चार-पाँच प्रानियों को लेकर किस किनारे लगेगा वह।

सारा क़िस्सा सुनकर जैपाल सिंह एक मिनट मौन बैठे रहे। वे तकिया पर दोनों कुहनियाँ अड़ाये सामने कहीं देखते रहे।

"तो दुक्खन, तुम क्या चाहते हो ?" उन्होंने मुड़कर खटोले की तरफ़ गर्दन घुमाकर पूछा।

"अब हम सरकार का कहें ? जो मालिक का हुकुम हो। हमारा तो चार पुश्त आप लोगों के चरणों में गल गया सरकार। इस बखरी के अलावा हम कहीं हाथ फैलाने नाहीं गये। बाकी अब लगता है मलिकार कि हम लोगों से आप लोगों का मन उबीठ गया, तो सरकार जो हुकुम हो।" दुक्खन ने कातर नेत्रों से जैपाल सिंह की ओर देखते हुए हाथ जोड़कर अपनी बात कह दी।

"ठीक है तब। बब्बन से तुम्हारी नहीं पटेगी यह हम समझ रहे हैं।" जैपाल सिंह कुछ देर रुक गए। दुक्खन और दूसरे चमारों का चेहरा बिल्कुल स्याह हो गया था। यही 'नियाव' पाने आये थे यहाँ हम ? मार भी खायें और यदि बोलें और दुहाई दें तो उल्टा देश-निकाला भी मिले। वाह ! वे एकटक जैपाल सिंह के चेहरे की ओर देखते रहे तभी उन्होंने तकिये के नीचे से अपना बटुवा निकाला और दस-दस रुपये के दो नोट बढ़ाते हुए बोले—"ये रुपये रख लो तुम। दवादारू कराओ। दस-पन्द्रह रोज के बाद जब ठीक हो जाओ मीरपुर चले चलो। वहाँ भी तो काम-

धाम देखनेवाला आदमी चाहिए ही। रहने-वहने का इन्तज़ाम वहीं हो जायेगा तुम्हारा।"

मुंशी नवज़ादिक लाल चट से उठे। वे मालिक के हाथ से नोट लेकर खटोले में लेटे दुक्खन के पास खड़े होकर बोले—"लो दुक्खन। सुन लिया न तुमने? सरकार क्या कह रहे हैं?"

"रुपिया-उपिया हम क्या करेंगे मुंशी जी? सब कुछ तो यहीं का दिया खाते हैं। मलिकार ने हमारी अरज-गरज सुन ली, यही बहुत है।" कृतज्ञता के भार से उसका गला रुँध गया था और आँखें आसुओं में तिरने लगी थीं।

"नहीं, नहीं, रख लो इसे, समझे?" जैपाल सिंह ने कहा। दुक्खन इस 'समझे' के सारे ज़ोर को समझ गया और उसने काँपते हाथों से नोट थाम लिया।

चमारों ने खटोला उठाया और मुस्कराते हुए चमरौटी को लौट चले।

सुरजू सिंह ने जब यह दास्तान सुनी तो भुनभुनाकर जैपाल सिंह को गालियाँ देते रहे—"साला मक्कार। एक घाघ है ई बुड्ढा। कैसा नाटक रच दिया। न साँप मरा, न लाठी टूटी। न बेटे से बद्दू बना, न नौकर से हाथ धोया।"

मगर सुरजू सिंह की यह उदासी और पराजय बहुत दिनों तक उनके साथ नहीं रही। जैपाल सिंह के मरते ही बुझारथ ने दुक्खन को मीरपुर से भी निकाल बाहर किया। दुक्खन अपनी दो लड़कियों, लड़के और पत्नी को लेकर कहाँ गया, यह किसी को मालूम नहीं।

●

घुरबिनवा दुक्खन वाले खंडहर के सामने से हुर्र से भागता हुआ आगे निकल गया था। पूरब में बसवारियों और पेड़ों के हाशिये की गोद से उकस कर सूरज ऊपर आ गया था। ढेर-सा सुनहला प्रकाश झोपड़ियों के पक्खे

और पेड़ों के फैलाव को बचाता, इधर-उधर से ख़ाली जगह पाकर समूची चमरौटी को हलकोरने लगा था। खम्भे की तरह धँसती हुई रोशनी में जगह-जगह झुण्ड के झुण्ड गर्द-गुबार, कीड़े-मकोड़े तैराक़ी का अभ्यास करने लगे थे।

घुरबिनवा के ठीक सामने अपनी झोपड़ी के दरवाज़े पर दोनों पैरों को पसारकर बैठी धनेसरी बुढ़िया आँखें मुलकाती जाने क्या सोच रही थी। बग़ल में उसका सूअर हाँकनेवाला सोटा पड़ा था। वह कभी सोटे को छूकर उसकी विद्यमानता का विश्वास करके निश्चिन्त होती तो कभी मुख पर भिनभिनाने वाली मक्खियों पर चिढ़कर उनका सत्यानाश करने की ग़रज़ से अपने ही मुँह पर तमाचा जड़-जड़कर सन्तोष का अनुभव करती।

धनेसरी बुढ़िया सारी चमटोल के लिए बिना दाम का तमाशा है। उमर सत्तर के पार हुई। सर के बाल सन की तरह सफ़ेद हो गये हैं। भौंहें तक सटी हुई रूई की रेखा-सी लगती हैं। धनेसरी का रंग काफ़ी साफ़ है। कभी वह काफ़ी गोरा रहा होगा। बुढ़िया मरने के किनारे आयी पर चिल्लाती कितना तेज़ है। घुरबिनवा धीरे-धीरे पैर दबाये धनेसरी बुढ़िया की पीठ की ओर पहुँच गया। उसने बग़ल में रखे सोटे को खींचा। 'खड़' की आवाज़ सुनकर धनेसरी का हाथ सीधे सोटे पर जा पड़ा। उसने सरकते हुए सोटे को पकड़ा और आयी विपत्ति का पूरी तरह सामना करने की ग़रज़ से उचककर खड़ी हो गयी।

"कौन है रे मुँहझौंसा। तेरे सात पुश्त को गंगा के दहाने में डारूँ। बूढ़ी औरत से ठिठोली करता है? हरामी का पिल्ला कहीं का?" धनेसरी बुढ़िया के हाथों की पकड़ काफ़ी मज़बूत थी। वह कमर को दुहरी करके रसाकशी की मुद्रा में घुरबिनवा के हाथ से सोटा छीन लेने के लिए सारा ज़ोर लगा रही थी। घुरबिनवा से सोटा सँभल न सका। उसका सिरा हाथ से छूट गया। तभी धनेसरी बुढ़िया धड़ाम से पीछे की ओर उलट गयी। ज़मीन पर गिरते ही धनेसरी के मुँह से गालियों का फव्वारा निकल पड़ा। वह अपनी असहायता पर ग्लानि से भर गयी। ज़ोर-ज़ोर से रोने

लगी। घुरबिनवा एकदम घबरा गया। उसने हँसने-हँसाने के लिए यह सब किया था। मगर बुढ़िया भहरा कर गिर पड़ी। अब चीख-चीख कर चिल्ला रही है। लोग-बाग इकट्ठे हो जायेंगे। कहीं बाबू को पता लगा तो ख़ूब मरम्मत करेंगे। घुरबिनवा चुपचाप धनेसरी बुढ़िया के सिर के पास पहुँचा। उसे सहारा देकर उठाने लगा।

"उठ जा दादी, उठ जा....गिर गयी का दादी ?"

"हूँ, तो तू है भिनकुआ का बाप। भोंक कर गिराय दिया, अब बात बनाय रहा है हरामी। बंशी सिंह की बखरी का अनाज खाकर मोटाई का मंगल गाय रहा है। तेरी जवानी में ढोला परै, आग लागै।" बुढ़िया अपनी कुहनी के पास के छिले हुए चमड़े को छू-छू कर घुरबिनवा का पूरा सत्कार करती रही। और वह वहीं खड़ा होकर अपनी निर्दोषिता की सफ़ाई देता रहा।

धनेसरी बुढ़िया भी अजीब है। कोई छोटा लड़का उसे छू दे या डंडा-सोटा खींचकर मज़ाक कर दे तो एकदम से रोने-धोने लगेगी। गालियाँ देती रहेगी। उनमें अपने आँख की अन्धी होने, या पैर काँपने या हाथ के न उठने की विवशता का वर्णन ही ज़्यादा होगा, गालियों का तो बीच-बीच में सिर्फ़ संपुट होता चलेगा। मगर धनेसरी को यदि कोई प्रौढ़ या जवान छेड़ दे, उसका कोई नुक़सान हो जाय तो बस, वह कराल रूप धारण करके सारे गाँव को अपनी गालियों और चीखों से थर्रा देगी।

धनेसरी बुढ़िया ग़रीब है। असहाय है। मगर ज़िन्दगी से उसको बड़ा मोह है। कभी उसके भी सभी थे। घुरफेकन भगत बस एक दिन की बीमारी में मरे। उस साल चमरौटी में ज़ोर से हैज़ा फैला। देखते ही देखते सारी चमरौटी भयानक बीमारी से झुलस गयी। सबसे पहले हैज़े का आक्रमण धनेसरी के परिवार में ही हुआ। लोग कहते हैं कि घुरफेकन महा पिशाच था। खेती-बारी, हल-कुदाल से उसे बराये नाम ही वास्ता था। जब कोई धंधा हाथ न आता, तो वह लाचार होकर किसी का हल-फाल थाम लेता। मगर उसे रखनेवाला गिरहस्थ बहुत विवश-लाचार होकर

हो उससे समहुत कराता। क्योंकि वह जानता था कि बीच मझधार में वह कभी काम छोड़कर भाग जायेगा। या बीमारी-तीमारी का बहाना करके अंझा देता रहेगा। बुलाने जाओ, डाँट-डपट करो, उसका कोई असर नहीं। वह मुरदा चेहरा बनाये सिर से लेकर पैर तक गूदड़ में ढँके रुआँसा होकर बोलेगा—"अरे मालिक, यहाँ जीव पर आन बनी है, और आपको सरकार अपने कामै की पड़ी है। सच्ची मसल है कि चिरई की जान जाये, खवैया को सवादै नहीं।" वह एक वाक्य कहने में बारह बार कराह-कराह उठेगा।

लाचार होकर गिरहस्थ उसे बुलाना छोड़ देता। घुरफेक्कन गूदड़ उतार देता। उसकी बीमारी छू-मंतर हो जाती।

बरसाती बीमारियों की वजह से, अक्सर ढोर मरते। घुरफेक्कन पशुओं की मौतों का बेकरारी से इन्तज़ार करता होता। कहीं भी गाय, बछिया, बूढ़े बैल या पड़वा-पड़िया के मरने की ख़बर मिली, वह चार चमारों को इकट्ठा करके, बाँस और रस्सी लेकर पहुँच जाता। मरे हुए जानवर को बाँध-छानकर बाँस में लटका कर उठवा लाता। फिर चमरौटी के पूरब खेत में डाँगर खलियाता। एक झुण्ड बदरंग और डरावने गीध 'डाँगर' को घेर कर बैठ जाते। उस दिन चमरौटी में काफी जशन मनाया जाता। गाय-बैल का माँस बहुत से चमार नहीं खाते। जो खाते वे घुरफेक्कन के साथ मुरदे पशु के ले जाने से खलियाने तक उसके साथ रहकर मदद करते। ढोर का चमड़ा घुरफेक्कन किसी को न देता। उसकी इस बदनीयती के कारण चमारों ने उससे असहयोग भी किया। अपने गिरहस्थों के मरे पशुओं को वे घुरफेक्कन को लाने से मना करते। मगर जिस सफाई से घुरफेक्कन खाल अलग करता, वैसी दूसरे न कर पाते, लेहाज़ा कुछ मोल-तोल, भाव-ताव के बाद घुरफेक्कन उनके गिरहस्थों के 'डाँगरों' को भी पा जाता। साल भर उसका यह काम किसी न किसी रूप में चलता रहता। यदि गाँव के पेड़ों पर गीधों की क़तार बैठी हो, या नीले आसमान में अडोल डैने फैलाये झुण्ड-के-झुण्ड गीध मँडरा रहे हों, तो समझ लीजिए

कि आजकल घुरफेक्कन बहुत ही व्यस्त है। उसे किसी से बात करने की भी फुरसत नहीं। यहाँ तक कि खैनी की खिल्ली को उसके मुँह में दाँतों और होठों के बीच जमाने का काम भी किसी और का ही हाथ कर रहा होगा।

घुरफेक्कन का चमारों से उतना मेल-जोल नहीं था जितना क़स्बे के क़रीम खाँ से, जिसका हाड़ गोदाम ऐन रेलवई सड़क से सटकर खड़ा है। या फिर मूसे अंसारी से जो लम्बे-लम्बे पलड़ों वाले तराज़ू पर चमड़ों की नाप-जोख करते हमेशा मुंह में पान दबाये रहता है और तेज़ ज़र्दे की पीक से अपनी दूकान के पक्खे को बिल्कुल सुर्ख-लाल बनाया करता है।

उस बार बंशी सिंह का साढ़े सात सौ रुपये का हाथी जैसा बैल देखते ही देखते मर गया। झिनकू को यह सब 'कसाई कर्म' पसन्द नहीं। नतीजा यह कि बंशी सिंह की सार में दो दिन तक मरा बैल पड़ा रहा। असाढ़ के दिन थे। ताला तलैया भरी थीं। घुरफेक्कना ने किसी तरह बंशी सिंह से कह-सुनकर बैल को घर से बाहर करवाया, फिर उसने एक गज़ब की तरकीब सोची। मरे बैल को तलैया में झोंक दिया। लाश उतरा गयी। गरदन में रस्सी बाँधकर वह इतने बड़े मुर्दे बैल को खींच-खींचकर पानी के रास्ते चमरौटी ले गया।

उसके तीन-चार रोज़ के बाद ही तो हैज़ा फैला और देखते ही देखते घुरफेक्कन, उसके दो लड़के और उसकी बूढ़ी माँ एक-दो दिन में ही साफ़ हो गए। धनेसरी छाती पीटकर रह गयी। उसके आगे पीछे कोई न बचा।

धनेसरी उस समय जवान थी। दो ही बच्चे तो हुए थे उसे। पति और बच्चों की जुदाई का सदमा उसे बुरी तरह तोड़ गया था। पर दु:ख से हाय-हाय करती घर में बैठे रहने से काम कब तक चलता। गोविन्दा चमार ने कोशिश की कि वह उसके घर बैठ रहे। मगर जल्दी में वह कुछ तै न कर सकी। तब करैता गाँव पर शनीचर का प्रकोप न था। गिरहस्थ खुशहाल थे। अगहन से लेकर माघ तक ढेंकियाँ चलती

थीं। कूटे जाते धान के कन्ने से आँगन भर जाता था। एक अजीब तरह की खुशबू गाँव की गलियों में फैली रहती। धनेसरी दिनरात धान की कुटाई में लगी रहती। उसका गठा हुआ बदन और गोरा रंग धान की उड़ी हुई भूसी में डूबकर अजब तरह से निखर जाता। उसके गले में भी क्या मिठास थी। दिन भर ढेकियाँ चलाते पैर अकड़ जाते, मगर उसे कभी थकान न आती। मन उदास हुआ कभी तो उसके सुरीले कंठ से गीत की कड़ियाँ फूट निकलतीं—

बैगन बाग में करैली तूरे ना जाव सखी, बैगन बाग में।
ओही बैगन बाग मलहोरिया छोकरवा।
बैगन देखाय सान मारे सखी, बैगन बाग में।
बैगन बाग में करैली तूरे न जाब सखी, बैगन बाग में।

धनेसरी बहुत जल्द गाँव की अनेक बखरियों की चहेती मजूरिन बन गयी। घर लौटती तो खोइंछे में खुद्दी या मोटा चावल होता, जो उसके पेट के ठीक नीचे फाँड़ में बँधा रहता। वह बड़े सधे क़दमों से चलती। नाक की सीध में देखते जाना उसने सीखा ही न था। आँखें अगल-बगल चक्कर ज़रूर मारतीं। राह चलते चरवाहे, हलवाहे या शोहदे-आवारे जब धनेसरी से मज़ाक़ करते तो वह यों मुसकराती कि उनकी सारी बोलियाँ और ठिठोलियाँ उसके पैरों पर लोटने लगतीं। कम उम्र के चरवाहे लजाते हुए किसी गुइयाँ का हाथ पकड़ खिलखिला के भागते। जवान नवचे दर्द को दबाकर बैलों की पूँछ मरोड़ते हुए चेहरे का भाव छिपाने की कोशिश करते।

"के हो, के है ? बड़े आये आँख दिखाने ? हेंह।" कभी धनेसरी किसी काम पर जाना सकार लेती और देर हो जाती, नवचा गिरहस्थ आग-बबूला होकर उसे डाँटता तो धनेसरी छान से बाहर आकर मुँह बिचका कर कहती—"जा जा, कौनो अवर मजूरिन खोज लेव, हमसे ई सब नहीं होता। मैं किसी की जरखरीद नौकरानी हूँ का ? मन में आयी, तो काम उठावेंगे, न आयी न उठावेंगे।"

धनेसरी गाँव में किसी से नहीं डरती। कोई उससे छेड़खानी करे, डाँटे तो वह एक को दो जवाब देने के लिए तैयार रहती। लड़कों-फड़कों को भला वह क्या समझती? जब वह उनके बाप-चाचाओं के एक-एक करम से परिचित है। मिसाल की ज़रूरत क्या है? वह खुद अपने अनुभव को नहीं जानती क्या? आये बड़े बड़के बननेवाले, हुह्! हमसे लगने की 'केहू' कोसिस मत करो। हमसे किसी का कुछ छिपा नहीं है। हाँ, कहे देती हूँ।

ऐसी थी धनेसरी। अपने अकेलेपन की गाड़ी को वह बिना हारे-थके खींच रही थी। कभी अनाज की बोरी उठाये वह कस्बे आँटा पिसाने जा रही है, कभी तेलहन लेकर तेल पिरवाने। कभी ओड़ी लेकर किसी गृहस्थ के साथ सौदा-सुलफ़ खरीदने जा रही है, तो किसी के यहाँ परपाहुन आ जाने पर झपटकर बाज़ार से तरकारी लाने जा रही है।

ज्यों-ज्यों धनेसरी की उमिर ढलती गयी, त्यों-त्यों उसके पेशे और कर्म बदलते गए। अब धनेसरी वह धनेसरी नहीं है। वह पहले का शरीर कहाँ रहा। तो क्या हुआ इससे? वह कूट-पीस नहीं सकती, क़स्बे-बाज़ार नहीं जा सकती, कटिया-बिनिया नहीं कर सकती, यही न? तो वह अब 'सौरी कमायेगी।' क्या हरज है इसमें। अरे दुलारी चाची, सुकालू बो, धन्नू बो काकी क्या ये सब नहीं करती थीं। 'गू-मूत' से क्या बचा है भाई, वह तो सबके पेट के भीतर है। औरत ज़ात पर इन मरदों को क्या दया-मया। अपने काम से काम चाहे औरत मरे, चाहे जीये। सो धनेसरी ने 'सौरी कमाने' का काम शुरू कर दिया। बच्चा जननेवाली माताओं ने एक से एक चमारिनें देखी थीं। पर धनेसरी का कोई मुका-बिला नहीं। और सब तो नीब खाने जैसा कड़वा मुँह बनाकर सौरी में घुसतीं। बात-बात पर झिनझिनातीं। कितना भी दो, मुँह सीधा ही न होता। एक धनेसरी है। दिन रात लगी रहेगी। कितनी सफ़ाई से 'गू-मूत' उठाते भी कभी मन मलिन नहीं होता। दुनिया भर की बातें

करके सौरी में जच्चा को हँसाती रहेगी। बच्चे को सँभालना, चुपवाना, जच्चा को तेल लगाना, मालिश करना तो कोई धनेसरी से सीखे।

धनेसरी को एक-एक बच्चे या बच्ची के जन्म का सारा हाल मालूम है। दर्द से चीखती माताओं को सँभालने और तुरन्त के जन्मे बच्चों के 'नार' काटने के बाद वह परिवार वालों की बेहद खुशी की हर साक्षी अपने हृदय में समोये हुए है। खुशी से बजती थाली की आवाज़ें अब भी उसके कानों में ताज़ा हैं। नई पीढ़ी के दर्जनों लड़के जन्मते ही उसकी गोद में सौंप दिये गये हैं। बरही बीतने तक वह इन बच्चों को जाने कितने प्रकार से खिलाती, चुपवाती। रोते-चिल्लाते बच्चों को चुप कराने के लिए उनके मुँह में क्या उसने कितनी ही बार अपने स्तन नहीं डाल दिये हैं? लड़के भी कितने चतुर होते हैं? एक क्षण को चुपचाप मसूड़ों से चूचुक को चुभलाते चुप पड़ जाते, पर दूध न पाकर फिर अपनी पें-पें की आवाज़ से सारा घर सिर पर उठा लेते। आज भी ये यादें बूढ़ी धनेसरी के सारे शरीर में खुशी की लहर पैदा कर देती हैं और उसके रोंगटे भर-भरा उठते हैं।

हमेशा खुशी की रोशनी में ही धनेसरी बुलाई जाती रही हो, ऐसा भी नहीं। एक इतिहास और है अनकहा, जिसे धनेसरी अपनी छाती से चिपकाये ही गंगा के पेट में समा जायेगी। कम से कम एक दर्जन दास्तानें तो हैं ही ऐसी, जिन्हें सोच-सोचकर धनेसरी की आँखें भर आती हैं। जाने कितनी बेवकूफ़ होती हैं ये छोरियाँ भी। ज़री सी किसी ने चापलूसी कर दी, दो-चार मीठी बातें सुना दीं बस पिघल गयीं....। ऊ तो पता चलता है बाद में न। हाय राम, कैसी पान-फूल की तरह सुकुँवार थी गंगजली। छोरी क्या थी, साक्षात् परी थी। चार-पाँच महीने का तो था ही। लगे उपध्या जी पैर पड़ने।

"धनेसरी, अब हमारी इज्ज़त-आबरू सब तुम्हारे ही हाथ है।" हुह! ऐसे धनेसरी को कोई नहीं पूछता। पास से निकले तो छाया छू जायेगी। कुत्ते की तरह दुरदुरायेंगे। बड़का बाभन बनते हैं लोग। जो हो भाई,

गाँव-घर का मामला है। जैसे उनकी इज्ज़त, वैसे अपनी। क्या करती, जाना ही पड़ा। पेट माड़ते-माड़ते भोर होने को आयी, पर बाह रे पेट, जाने कौन-सी आँत पकड़कर भूल गया था छोरा। जरा टस से मस नहीं होता था। गंगजली का सारा शरीर छिटकुन की मार से काला हो गया था। वह सब तो शायद सह गयी होगी छोरी। बाकी पेट माड़ने का दुःख सहा नहीं गया। रहती-रहती मेरी दोनों बाँहें पकड़कर चिपक जाती सीने से। ऐसा रोती थी कि मया के मारे मेरी आँखें भरभरा आती थीं। पर मैं क्या करती। मुझे तो सीने पर पत्थर रखकर सब कुछ करना था। सबेरे चार बजे के करीब गिरा था। भगवान् का भी अजब खेल है, एक दम साँचा में ढालकर शरीर गढ़ता है। फिर जाने कहाँ से परान डाल देता है। झिल्ली फाड़कर मैंने अपनी आँख से देखा था। बेटवा था। बित्ते भर का ही तो रहा, पर सब अंग आ गये थे। हाँड़ी में मूँदकर मुँह-अँधेरे गाड़ आयी थी, टेंगरी वाली गढ़ई में।

बाद में कैसा लगे तीन-तेरह पढ़ाने उपधिया। अरे धनेसरी हम कहीं भाग थोड़े जायेंगे, बाकी भी तुम्हारा दे ही देंगे, कभी न कभी। अरे जाव, बाकी वसूलने धनेसरी तुम्हारी ड्यौढ़ी पर आयेगी? आफत-बिपत में फँसे तो आ गयी धनेसरी कि धनेसरी किसी के यहाँ भीख माँगने जाती है।

पता नहीं अब का हो गया, इन छोरियों को। शाइत लोग सोचते होंगे धनेसरी बुढ़िया हुई, अब क्या सँभाल सकेगी ऐसे मामले। अरे जा रे जा। बुढ़िया हुई तो क्या। अभी चाहूँ तो इन हाथों से सात-सात महीने का माड़कर खलास कर दूँ। आ, कौन जाने भाई, दुलारी काकी का कहना ही सच हो। रोज़-रोज़ तो नया 'फिस्सन' चल रहा है। चली होगी कौनो 'गोली-रब्बर'। दुलारी काकी कहती थीं कि गोली-रब्बर के कारण अब खतरा ख़तम हो गया। बिचारी कितनी उदास रही। मैं तो भइया, पहले ही सब समझ गयी कि दाग़दार कमाई से गुज़ारा नहीं होगा। बस जोड़-जाड़कर रुपिया-पैसा जो रहा सो लगा दिया। एक जोड़ा सूअर व एक जोड़ा बकरी-बकरा खरीदकर बैठ गयी। तीन-चार साल में एक

लेंहड़ा हो गये ससुरे। न आँख न दीदा। दिनभर दौड़ते-दौड़ते देह बथने लगती है।

शुरू में तो बड़ा तंग किया मुँहझौंसों ने। लेकर कुक्कुर दिनभर हमारे छौनों के पीछे 'लीहो-लीहो' करते रहते थे। सिरिया-छबिलवा। ई दोनों तो साफ़ ही कर देते। चुपचाप देखते रहे। जब नहीं सहा गया तो मैंने भी सोचा कि चाहे जान रहे चाहे जाये, अब बिना सोटा लगाये छोड़ूँगी नहीं।

एक दिन छवरे पर बैठी सूअर चराय रही थी। गाँडर-मोथा था, अपना वे सब एक जूट होकर थूथनिया रहे थे। झूठ क्यों बोलूँ। एक भी कहीं खेत-वेत में नहीं पड़ा। सिरिया ने ढेला मारकर हमारे छौनों को बिदकाया। छबिलवा ने कुक्कुर दौड़ाय दिया।

उधर से जब छवरे पर कुक्कुर के पीछे छबिलवा दौड़ा, बस मैंने खींचकर सोटा दे दिया उसको टाँग में। सीधे जाके घोड़ा-नस पर लगा और ऊ मुँह के बल चित्त।

"तोरे सात पुश्त के गंगा के दहाने में डारूँ। मुँहझौंसू, सोचते हो कि धनेसरी को न आँख है, न दीदा, क्या कर लेगी? उठानी उठे हो? ग़रीब आदमी को भूँजकर खा जाओगे? चलो तो हमारे छौनों के पीछे। तुम्हारी जो आकी-बाकी है, बो करके न छोड़ दूँ तो कहना?"

छबिलवा टाँग पकड़ के बैठ गया।

"करे कनचिप्पी बुढ़िया, हरामजादी, एक तो तूँ बीया में छौने डाल के चरायेगी और भगायें तो सोटा खींच के मारेगी? रह-रह, आज मैं तेरा गट्टा तोड़ के दम लूँगा।" वह मेरी तरफ़ लाल-लाल आँख करके झपटा। मैंने वह हल्ला मचाया—वह हल्ला मचाया कि मारे जन, मारे जन, चौतरफ़ा भीड़ लग गयी।

"आ रे आ, मार के गट्टा तोड़ तो देखूँ। तीन-तीन छौने कुक्कुर से तुड़वाय के रख दिया। हम ग़रीब आदमी को हल-बैल हैं का? हमारी तो सब जमा-पूँजी उहै हैं न? किसी के पेट पर लात मारोगे तो फल पाओगे।

बड़े-बड़े शीतला के रंथ में दब गये। तूँ कौने खेत की मूली हो भइया जी। ई घमण्ड छोड़ दो।" मैं कहती जाती और रोती जाती।

मेरा रोना-गलगलाना सुनके लोग छबिलवा को खूब बिगड़े। बेचारे की गरदन ही न उठती थी। एकदम सकताय गया था छोरा।

•

घुरबिनवा एक क्षण धनेसरी बुढ़िया का रोना-गलगलाना सुनता रहा। वह वहाँ से कुलचकर गली में कूदा और भागा। जान बची लाखों पाये। कहाँ से कहाँ जा पहुँचा उस खूसट बुढ़िया के पास। चलो सस्ते छूटे। नहीं कहीं जाकर 'लाई' लगा देती बाबू से तो चार चटकना सबेरे-सबेरे 'खरमेटाव' के लिए मिल जाता।

• •
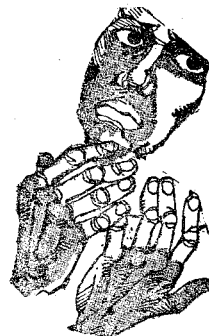
पन्द्रह

सूरज की रोशनी थोड़ा और चमकदार हो गयी थी। चमरौटी से उठा हुआ धुआँ अब इस रोशनी में सफ़ेद लगता था। घर-आँगन बुहारने से धूल का तम्बू तन गया था। इक्के-दुक्के लड़के-लड़कियाँ गली में आकर खेलने-कूदने लगे थे। सामने डोमन चमार का मकान है। डोमन चमारों का चौधुरी है। ठीक से कहना तो मुश्किल है कि छाजन से छानें कब हटीं। कब मिट्टी की दीवारों पर निगस्ते बैठे मगर यह सब होने में कुछ समय तो लगा ही होगा। पता नहीं इसके लिए डोमन को कौन-कौन से पापड़ बेलने पड़े होंगे। वैसे अब भी उसकी बखरी चौखुंटी खपरैलों की छायी हुई नहीं हो सकी है। दक्खिन ओर के तीन घर ही खपरैलों के हैं। सामने लम्बे बँडेरे वाली मड़ई अब भी है। इसकी वजह से बग़ल का कोठरीनुमा घर बिल्कुल अलग एक गुमटी-जैसा मालूम होता है। घर का ही हिस्सा, पर घर से बिल्कुल अलग। डोमन इसी कोठरी में बैठकर बड़े आश्वस्त भाव से हुक़्क़ा गुड़गुड़ाता है।

घुरबिनवा को सामने से आते देख डोमन की लड़की सुगनी दौड़कर आयी। घुरबिनवा को इस लड़की से बेहद खीझ होती। मगर यह खीझ कुछ मीठी-मीठी भी है। मन के भीतर कहीं कुछ सुगबुगाने-सा भी लगता है इससे। इसलिए घुरबिनवा खुलकर विरोध नहीं कर पाता। सुगनी उसको बहुत अच्छी लगती है। यद्यपि वह उससे सात-आठ साल बड़ी है, मगर दोनों की खूब दोस्ती है। सुगनी के साफ़ लुग्गे से बड़ी अच्छी खुशबू निकलती है। घुरबिनवा को याद है कि कभी-कभी अम्मा भी ऐसे ही उसे अपनी अँकवार में भर लेती हैं। मगर अम्मा के लुग्गे से हमेशा पसीने की बदबू निकलती है। जब सुगनी घुरबिनवा को दोनों बाँहों में भर लेती है, तो इच्छा होती है कि वह उसकी देह में एकदम से समा जाये।

"ऐं-हैं, का हो घुरबिन, आज तो तू आँख बचाय के जा रहा था ?" सुगनी ने उसे बिलकुल बटोरकर गठरी-सा बना दिया। फिर अपनी बाँहों में कसकर बाँध लिया। घुरबिनवा के सिर के नीचे कोई गद्देदार तकिया-जैसी चीज़ छू जाती है। वह छूटकर निकलने की कोशिश में दो-चार बार सिर से वहीं टक्कर देता है। सुगनी इन धक्कों से खिलखिलाने लगती है। लगता है कि जगजीत के सोकने बाछे के गले के घुंघुरू बज रहे हैं। सुगनी को जाने क्या होता है। वह घुरबिनवा को और भी ज़ोर से अपनी बाहुओं में कस लेती है।

"क्यों रे, आज बखरी से 'खरमेटाव' नहीं मिला ?" घुरबिनवा को यह बात बहुत बुरी लगती है। सुगनी पता नहीं कैसे हाथों से बाँधे-बाँधे ही उसकी नंगाझोली ले लेती है। उसे बखरी से जो कुछ गुड़-चबेना मिलता, सुगनी उसमें हिस्सा बँटा लेती।

"लालची कहीं की। इसी के लिए दौड़कर अँकवार में भर लेती है ?" वह उसके बाहुपाश से छूटकर बड़बड़ाता।

सुगनी दाने का फंका मुंह में डालकर आँखें नचाती और घुरबिनवा को अँगूठा दिखाकर चिढ़ाती।

● ●

घुरबिनवा घर पहुँचा। झिनकू अभी वैसे ही पुआल पर लेटा था।

"बब्बू ! आज काम पर नहीं जावगे का ?" वह गमछे को सिर पर लपेटते हुए बोला।

"नाहीं। जगजीत सिंह कुछ कह रहे थे ?"

"हाँ, कह रहे थे। सुक्खू उतना दूर से आ गया। झिनकू लाट साहब का अबहीं पता नहीं। जाने का हो गया है, इस झिनकुआ को। पहले तो अइसी कसरिआही नहीं करता था ?"

"हूँ, ऊ का जानेंगे। अपने तो दोनों जून दाल-रोटी चाभ लेते हैं। जिसका पेट भरा होता है, उसका गाल बहुत बजता है। कसरिआही का नाम है, तो यही सही। अब पेट जला के काम नहीं होगा। हमारी आँख के सामने ई लड़का-लड़की बेचारे दाना बिना कुलबुला कर रह जाते हैं। आदमी जाँगर पीटता है, पसीना बहाता है, काहे को ? इसीलिए न कि लड़का-प्रानी को दोनों जून रूखा-सूखा पेट भरने को मिल जायेगा। इहाँ तो हाड़ तोड़ के काम भी करो, तो भी मुंह में दाना मुअस्सर नहीं होता।"

झिनकुआ की आँखें एकाएक गीली हो गयीं। घुरबिनवा के चेहरे की खुशी एकाएक बुझ गयी। वह बाप की बात को ठीक से समझ न सका हो, सो नहीं, मगर वह कर ही क्या सकता है। चुपचाप वहाँ से हट कर भाई-बहनों के पास चला गया।

झिनकू चुपचाप वैसे ही उठँगा हुआ दरवाज़े के बाहर देखता रहा। चार साल से उसका यह हाल चल रहा है। चार बीघा खेत हर साल मिलता है मजूरी की एवज़ में। इसी चार बीघे में इतना उपज जाता था कि साल भर का खरचा कतर-ब्योंत करके चल जाता था। चार बीघे अब भी मिले हैं। यह खराब खेत है, ई भी बात नहीं। झिनकू झूठ नहीं बोलेगा। दो बीघा जो ताल वाला है, उसमें तो 'पोरसा' भर के धान लगते थे। उसने देखा नहीं है का ? दो बीघा 'उपरौला' भी खराब नहीं है। उसमें भी पाँच-पाँच मन फ़ी बीघा चना वह अपने हाथ से काट चुका है। मगर, तब ज़माना दूसरा था। धरती में संस थी। बेमन से भी बोया

फेंक दो, तो हहास बाँधकर फ़सल उग आती थी। अब इस साल दो बीघे धनखर में एक मुट्ठी धान नहीं होगा। सारा खेत झुलसकर कोयला हो गया। दो बीघे उपरौले में छिट्टुवा धान होय न होय। धान तो सफ़ाचट्ट हो गया, मगर ज्वार के फुटके बच गये। ऊ भी 'चिरई-चुरगुन' से बचकर आयेगा तो इतने प्रानी के लिए कितने दिन का होगा ? शुरू कुआर में कहा कि बाबू अब खेत पर हलवाही नहीं सपरेगी अपने से। दो बीघा खेत ले लो अपना। हमें रोज़ाना बन्नी पर रख लो। तो लगे कसर-मसर करने। परती खेत देकर हलवाही कराने में मज़ा आता है। बन्नी देते माथा चरचराता है।

"यह सब तो तुम्हें चढ़ते असाढ़ में कहना चाहिए था ?" जगजीत सिंह आँख निकालकर बोले—"बेईमानी पर लात मत दो। मरद की बात एक होती है। तुमने खेत माँगा, हमने खेत दिया। अब तुम जानो तुम्हारा भाग जाने। हम क्या करें। पैदा नहीं होता तो हम क्या ईश्वर-दइब हैं कि पैदा कर दें।"

तुम नहीं जानते तो मत जानो। आधी खेती कर दिया। आधे खेत में पैदावार है। बाक़ी आधा खेत परती है। उसे ले लो। हमें छुट्टी दो। जब बिना खाये मरना ही है तो हाड़ तोड़कर काम करने से का लाभ ?

झिनकुवा यही सब सोचता लेटा पड़ा रहा। तभी जगजीत मोटी लाठी का हूरा मड़ई के दरवाज़े पर पटकता चिल्लाया—"का रे झिनकुवा। सारी दुनिया के हल-बैल खेत पर पहुँच गये। एक-एक आँतर जोत भी हो गया कितनों का। अभी लाट साहब के नाती की भोर ही नहीं हुई का ?"

"तबीयत हमार ख़राब है मलिकार।" झिनकू ने वैसे ही बैठे-बैठे कहा।

"खेतीबारी के दिन में तबीयत-वबीयत ख़राब का हीला-हवाला छोड़ दो झिनकू। नाहीं, हमारी खेती बिगड़ेगी, तो हम तुमको बिना ख़राब किए छोड़ेंगे नहीं!"

"अब क्या ख़राब करोगे मालिक। ख़राब तो हो गये। चार-चार दिन से हमारे लड़कों के मुँह में एक दाना नहीं पड़ा। हमसे मुँह बाँधकर काम नहीं होगा सरकार!" झिनकू पुआल से उठकर हाथ जोड़ यह सब कह रहा था।

"तो ठीक है। चलो चाचा से कह दो कि काम नहीं होगा तुमसे।"

गुस्से के मारे जगजितवा जाने क्या-क्या बकता रहा। आगे-आगे वह चला, पीछे-पीछे झिनकू।

बाबू बंशी सिंह खटिया पर बैठकर सुतली कात रहे थे। जगजितवा के साथ झिनकुवा को आते देख, वे मुँह की सुरती को पिच् से थूककर उठ बैठे।

"ई का है ? दो बाँस दिन चढ़ आया। तू लोग अभी गाँवें में मटर-गस्ती कर रहे हो ?"

"हम मटरगस्ती नहीं कर रहे हैं। बीच कातिक में काम छोड़कर ई बैठ रहे हैं ?"

"का ?" बाबू बंशी सिंह की आँखें आश्चर्य से ललाट में चढ़ गयीं। "कारे झिनकुवा। समहुत करके बीच में तू काम छोड़ रहा है ? एं ?"

"हम काम काहे को छोड़ें सरकार। पेट भरने को भी तो चाहिए मालिक। आप ही बताइए बाबू कि ताल वाले टपरा में एको मुट्ठी धान होगा ?"

"सूखा तो सारे गाँव के लिए पड़ा है। किसी के टपरा में धान नहीं हुआ। तुम्हारे में भी नहीं होगा। इससे का काम पकड़कर तू बीच दरिआव में लाकर छोड़ दोगे ?"

"सबकी क्या दाँज, सरकार। सबके लड़का-प्रानी तो भूखे नाहीं मर रहे हैं। खाली पेट बाबू काम नहीं होगा। हम तो कह रहे हैं कि अपना खेत ले लीजिए। हमको रोजीना बन्नी पर रख लीजिए।"

"अरे वाह, रोजीना बन्नी पर ही रखना होगा, तो तोहरे में कौनो सुर्ख़ाब की पाँख लगी है का भाई ?"

"ई ऐसे न मानी चच्चा।" जगजितवा गुस्से के मारे उफना रहा था—"बड़ बतिआये, चमार लतिआये। चार हाथ लगे अभी न, बस इसकी सारी हैकड़ी भूल जायेगी।"

"ठहर जाव, सीधे उँगली से काढ़ के देख लो, न निकले तो उहौ होगा।" बाबू बंशी सिंह बोले।

"काट के फेंक दो सरकार।" झिनकुवा बिफरकर गर्दन हिलाते हुए बोला, मानो वह अपने निश्चय को और भी अधिक दृढ़ करने का प्रयत्न कर रहा था—"जिन्दगी-भर मर-मरकर खून-पसीना बहाकर काम किया। अब सूखा-बाढ़ की विपत आ जाय तो आप लोग ग़रीब आदमी का पेट काटकर काम करायेंगे। उस पर अपनी अरज-गरज कहें तो मारने-पीटने की बात कहेंगे। तो काट के फेंक दो बाबू। काट दो, एक बार ही छुट्टी मिल जायेगी।"

"हम क़साई हैं? क़साई हैं स्साले?" जगजितवा ने आगे बढ़कर झिनकू का हाथ ऐंठकर उसकी पीठ पर ज़ोर का लात मारा। तभी फाटक से सटी हुई झिनकू बो 'फुक्का' मारकर रो उठी। हल्ला-गुल्ला सुनकर कितने लोग इकट्ठे हो गये।

जगन मिसिर ने झपटकर जगजीत सिंह को अलग किया—"पगला गये हो का बाबू जगजीत सिंह?"

"हमारा हाथ छोड़ दीजिए मिसिर चाचा। आज हम इस साले का अंग-भंग करके रहेंगे। सारी दुनिया के खेत में हल नध गया। ई नमक-हराम साला कहता है कि काम नहीं करेंगे?"

"और मारो बाबू। और मारो। मार के जान ले लो। लेकिन हम एक बार नहीं, सौ बार कह रहे हैं। हम बिना रोज़ीना बन्नी के काम नहीं करेंगे। परती खेत लेकर हम का ओम्मा अपनी कब्बर बनायेंगे? हमारे छोटे-छोटे लड़िका चार दिन से भूखे सोय रहे हैं। हमसे अइसा काम नहीं होगा!" उधर फाटक पर झिनकू बो राग बाँधकर रोने लगी थी।

"जगजीत बेटा। यही न कह रहा है यह कि खेत पर नहीं, बन्नी पर काम करेगा?" जगन मिसिर ने पूछा।

"हाँ-हाँ, कह तो यही रहा है। मगर यह सब इसे असाढ़ में कहना चाहिए था।"

"अरे तो भइया, ई तुम्हारा पुश्तैनी आदमी है। भूखे कैसे काम करेगा?"

"नहीं करेगा मत करे।" बंशी सिंह को गाँव के इकट्ठे शोहदों से 'नियाव' की कोई आशा न थी, बोले—"हमारा पचास रुपये का करज़ है इसके उप्पर। दे दे। और किनारे लगे। हमसे कोई मतलब नहीं। बन्नी पर काम करनेवाले एक नहीं, हज़ार मिलेंगे।"

"का हो झिनकू, सुन लिया न? बंशी भाई कह रहे हैं कि करज़ अदा कर दो, और जाव जो करना हो करो।"

"ठीक है महराज जी। दो बीघे में ज्वार लगा है, काट-पीट के हम उनका करज दे देंगे।"

"कइसा ज्वार तुम्हारा?" जगजीत बोला।

"काहे बाबू। असाढ़ में खेती कराये हो तो का सब मुफुत में हुई।"

"जाने दो भाई।" बंशी सिंह को यह सब 'टंट-घंट' नापसन्द था—"ठीक है। मगर दो बीघे का ज्वार काट के मेरे खलिहान में गिरेगा। पचास रुपया ले के तब हम उठने देंगे खलिहान से। समझे?"

झिनकू कुछ न बोला। वह चुपचाप गर्दन झुकाये झिनकू बो को साथ लिये चमरौटी की ओर चला गया।

सारी चमरौटी में झिनकू के पहुँचने के पहले खबर पहुँच चुकी थी कि उसने बंशी सिंह का काम छोड़ दिया। जगजीत ने झिनकू को बहुत मारा। झिनकू सीधे आकर मड़ई में घुस गया। चाँचर बन्द कर लिया। पुआल पर गिरकर बड़ी देर तक रोता रहा। चारों तरफ़ अँधेरा था। दोपहर का अँधेरा। चाँचर की खपच्चियों के बीच से आकर हल्का-हल्का धारीदार प्रकाश ज़मीन पर लोट रहा था। घुरबिनवा शायद घर में न था। अभी

झिनकू ने उससे कुछ कहा नहीं। भैंस लेकर चराने गया होगा उनकी। घुरबिनवा को खाना-दाना बखरी से मिलता है। इसी में से कभी-कभी दूसरे छोटे लड़के भी कौर-आध कौर पा जाते थे। घुरबिनवा को भी आज ही छुड़ा दूँगा। झिनकू ने सोचा। इन लोगों से अब कोई मतलब नहीं। जो लिखा होगा करम में भोगेंगे। ऐसे निर्दयी लोगों की बेगारी नहीं करेंगे।

"अब लगता है करैता का दाना-पानी उठ गया।" झिनकू पट लेट कर भींगी हुई आँखों को आस्तीन से पोंछते हुए बुदबुदाया। "जाने कहाँ-कहाँ की ठोकर खानी लिखी है।" बाहर जाने की आशंका उसे बुरी तरह दबोच रही थी। न जान न पहचान, "का करें। कहाँ जायँ।"

●

तभी उसकी आँखों में एकाएक बीते दिनों की बातें ताज़ी हो जातीं। चार-पाँच साल पहले देवीचक के चमार-चमारिनें कटिया करने आयी थीं। चैत का दिन था। एक झुण्ड औरतें और मर्द आकर दरवाज़े पर खड़े हो गये। सरूप भगत को उसने दुक्खन की लड़की की शादी में देखा था। सारा झुण्ड 'हाँक' कर वही लाये थे।

"का हो झिनकू बेटा!" भगत मुसकराते हुए बोले—"तोहरे देस आ गये हैं मर-मजूरी करने। कहीं रहने की जगह-वगह दिलाओगे। एक डेढ़ महीना रहेंगे हम लोग। कटिया-बिनिया खतम करके चल पड़ेंगे। उड़ते पंछी आज यहाँ, कल वहाँ।"

"आप ही का घर है भगत। गर्मी का तो दिन है। उधर के खंडहर में डेरा गिर जाये। बाक़ी सब जवन लकड़ी गोइँठा, नून-तेल की ज़रूरत पड़ी तो हम हैं ही।"

देवीचक के चमारों का बग़ल के खंडहर में डेरा गिर गया था। दिन-भर चमार-चमारिनें इस-उस गृहस्थ के खेत में जाकर कटिया-लवनी करतीं। बन्नी में फ़सल का जो 'डाँठ' मिलता, झिनकू के खंडहर में रखा

जाता। सारा खंडहर गोबर से लीप-पोत कर साफ़ कर दिया गया। रात-भर चमारिनें लबेदा से पीट-पीट कर अनाज अलगातीं। अजब मनसायन लगती थी चमटोल। भूसे की पाँके उड़-उड़ कर आँगन में बिछ जातीं। चलते वक़्त पैरों में गुदगुदी होने लगती। चबूतरे की नीम भी खूब फूली थी उस साल। महमह खुशबू चारों तरफ़ छा जाती।

सरूप भगत जैसा हँसमुख आदमी भी नहीं देखा। अधेड़ उमर होने को आयी। बदन था कि ज़रा टस से मस नहीं हुआ।

"जब से चमार गाँव बसा के रहने लगे झिनकू बेटा, सारी क़ौम बुज़दिल हो गयी।" सरूप भगत मुसकराकर कहते—"अरे खेत-सिवान के पंछियों को घोंसला से का काम भाई? घोंसला बनाओ तो गीध-कौवों की नजर लगेगी ही। इस-उसके तलवे चाटने और मार खाकर भी पूँछ हिलाने के सिवा चारा क्या है? गोसैंयाँ ने देह में ताक़त दी है, हाथ में क़ूबत है, तो जहाँ रहेंगे, वहीं दो रोटी मिलेगी। जैसे कंता घर रहे वैसे रहे विदेस। है कि नहीं।"

"लेकिन हम लोग तो भगत, जाने कै पुस्त से गाँवों में ही रहते आ रहे हैं। बाहर कहीं जाने का मन ही नहीं होता। जाने पर लगता है कि कहाँ बीयावान जंगल में आय गये। चाहे जो कुछ भी कहो भगत, बिना घरद्वार के भी ज़िन्दगानी कौनो ज़िन्दगानी है?" झिनकू ने बड़े विश्वास के साथ कहा था।

"ठीक कहते हो झिनकू बेटा, मोह जो न करावै। ई सही बात है। घर-दुआर का बड़ा मोह होता है। मोह न होता तो मखजन-चमार अलगाते कैसे? चमार भी मखजन ही थे। मखजन का मतलब जानते हो न। मख माने जग्यँ व जन माने आदमी। जब गिरहस्थ लोग जग्यँ-बरत करते तो जंगल-सिवान के इन पंछियों को भी बुलाते। तब किसी की चोटी किसी के तलवे के नीचे नहीं थी। धीरे-धीरे गाँव का रहन-सहन खोंचने लगा। मखजन लोग परिजन बन गये। तोहरे इहाँ भी तो आते होंगे मखजनवा। इहाँ उबरुआ वसूलते हैं कि नहीं?"

"काहे नाहीं वसूलते। अभी परसाल डेरा गिरा रहा—खलिहान वाले बरगद के नीचे। सूप-भर चना ले गये तो करिमना मखजन आँख तरेर के कहने लगा—अब सब धरम-करम गया चूत में स्साला। मखजनों को भी उड़नझाँसी देने लगे चमार। नाहीं, पहिले ज़माने में चावल या गोहूँ से कम हम लोग लेते ही नहीं थे। लेकिन हम ई बात नहीं जानते थे भगत, कि मखजन व चमार दूनौ एक थे।"

"हाँ भई, एक थे। जब चमार गाँव में रहने लगे तो मखजन इस पाप के बदले उनसे दान-दच्छिना लेकर छोड़ देते। इस तरह से देखो तू ऊ सब हम लोगों को कुजात समझकर अलग हो गये।"

"हो तो गये, बाकी का हम लोगों से उनकी हालत बहुत अच्छी है?"

"अच्छी न होय न सही। बड़े लोगों का तलवा नहीं चाटते। अब देखो, गाँव में रहने का नतीजा का हुआ? लाख बेइज्ज़ती हो। भरपेट मजूरी मिले, चाहे न मिले, लरिका-प्रानी उपास करें, चाहे भूखे मरें, हम गाँव नहीं छोड़ सकते। ई घास-फूस की मड़ई भइया गोड़ छाँदकर बैठ जाती है। बड़े लोगों की देखा-देखी गुन-अवगुन सीखते चले जाते हैं। अब चमारिनें भी चौड़ी किनारी का लुग्गा पहनने लगी हैं कि नहीं। फिर ई सब आवै कहाँ से? न ज़मीन है न पैदावार। पेट चलाने को तो मजूरी मिलती नहीं। अब ई 'फ़िस्सन' बदे कहाँ से आवै। तो दुनिया-भर के पाप। कोई गीलट का बुंदा देखाय के, कोई लाल पंजी देखाय के, कोई चार पैसे की मिठाई, चाहे दो पैसे की बीड़ी थमा के लड़की-पतोहों को फुसलाय रहा है। हम चमार गोड़े में गर्दन डाल के सब देखते हुए भी आन्हर की नाईं बैठे हैं। है कि नहीं?"

सरूप भगत की बात सुनकर झिनकू एकदम चुप हो गया था। उसे लगा कि भगत करैता के चमटोल की सारी कहानी ही कह रहा है। उसके कलेजे में बिना अनी की बरछी जैसे हूल दी गयी हो।

"सचमुच ई झोपड़ी पैर को छाँद लेती है। आदमी को बेबस बनाकर छोड़ देती है।" झिनकू ने करवट बदली।

वे भी तो चमार ही हैं। मगर जैसे बेचारापन कहीं छू नहीं गया है। किसी गिरहस्थ के यहाँ बँधकर काम नहीं करेंगे। जहाँ काम मिलेगा, झुंड के झुंड जायेंगे। चहचहाते हुए पंछियों की तरह डेरों को आबाद कर देंगे। नौ-दस औरतें थीं उस गिरोह में भी। तीन-चार बुढ़ियाँ थीं। बाकी सब नवची-नवेली। सरूप भगत की लड़की दुलरिया तो जानो हँसी-खुशी का फ़व्वारा थी। दिन-भर कटिया करती। ऊँचे-ऊँचे बोझे, जो 'मरद ज़ात' से न उठे, उठाकर खलिहान में पटक देती। बदन पसीने से भींग जाता। बाल धूल-माटी से सन जाते। मगर उसे कोई फ़िकर नहीं। कटिया की बन्नी उठाकर खंडहर में ले आकर पटक देती। छिन-भर सुस्ता कर निकल जाती पोखरे की ओर। घरी रात गये लौटती। माटी से मिसे हुए बाल उसकी पीठ पर छितरा जाते। जानो मधुमक्खी का छत्ता लहरा रहा हो। कपड़े कोई बहुत अच्छे नहीं थे। मगर उन्हें रोज़ साफ़ करती। हाथ, कान, नाक में कोई गहना भी न था। बिल्कुल सादा। बस, कलाई में दो-दो उजली माठ पहने रहती थी।

"का भौजी?" घर में आकर अरगनी पर लुग्गा फैलाते हुए घुरबिनवा की माई से कहती—"तुम नहायी धोयों नहीं अभी तक?"

घुरबिनवा की माई बिना कुछ बोले, उसका मुँह ताकती रहती। उसे विश्वास ही नहीं होता था कि चमार-चमारिनें भी इस तरह दोनों जून नहाने-धोते हैं।

"चमार आदमी नाहीं है का भौजी?" ऊ खिलखिलाकर हँसती—"दुनियां तो हमें दुतकारती ही है अछूत कहकर, बाकी हम लोग भी कम नाहीं हैं। एक बहाना मिल गया कि हम चमार हैं, हमको सफ़ाई से रहने का क्या काम भला?"

"अच्छा दुलारी, अब ई सब कथा-पुरान छोड़। कल वाली कहानी अब हीं पूरी ना हुई। तोहरे मुँह से कहानी सुनके तो सच धिया, बुझाता है कि सहद चू रही है।"

दुलरिया ताली पीटकर हँस पड़ती—"वाह भौजी, वाह। अच्छा चल-चल, तुझे सहद का संरबत पिलायें।"

चमटोल की जाने कितनी औरतें इकट्ठी हो जातीं। वे दुलारी को घेरकर गेहूँ-जौ के डंठलों की राशि से उठंग कर बैठ जातीं। दुलारी की कहानी शुरू होती—

लचिया थी देह की पतली। पान-फूल-सी सुकुँवार। बाँकी तिरिया। उसका पति था उठती उमर का गबरू जवान। स्यामल-स्यामल मसें भीन रही थीं। एक बार देस में ऐसा अकाल आया कि चारों तरफ़ कुहराम छाया। सरोवर सूख गये। नदियाँ रेत से भर उठीं। लोग-बाग अन्न-पानी के लिए छछनने लगे। ऐसे में लचिया का पति उसे समझा-बुझाकर, परतोख बँधा विदेस गया। बालम के बिछोह में लचिया रात-रातभर रोती रही। आँसू से बिछौना-डासन भिगोती रही। एक दिन उसके रूप पर जयसिंह लुभा गया। घोड़ा दौड़ाकर पास आया। बोला कि तेरा आँचल मैं मोतियों से भर दूँगा। तेरे गले में नवलखा हार चमक उठेगा। तू मेरी हो जा। लचिया ने नैन तरेरकर जयसिंह को वरज दिया। "तोरे मोती में आग लगे", कहकर वह चली गयी। बहुत दिनों के बाद लचिया का पिया लौटा। मगर पंचो हो, मरद की जात बड़ी खोटी होती है। अकल की मोटी होती है। जैसे अपने वैसे ही सारी दुनिया को जानते हैं। वैसा ही सबको मानते हैं। लचिया के पिया ने उसकी परीक्षा लेने के लिए भेस बदल लिया। व्यौपारी का स्वाँग किया। सोने-रूपे के गहने, मोती, हीरा के ढेर लचिया के आगे रखकर 'परेम' की भीख माँगी। लचिया बोली—[दुलरिया भरे-भरे गले से गाने लगी]—

आ रे एँ एँ एँ!
अगिया लागे गलहार बजर परे मोती लरी।
तोहरो ले पिया मोर सुघर गुलाबे के फूल छरी ॥
कटबों चननवाँ के गाछि पलँगिया डसाइबि हो।
ताही पर पिया के सुताइबि, बेनिया डुलाइबि हो ॥

[तुम्हारे हार में आग लगे; तुम्हारी मोतीलरी पर वज्र गिरे। मेरे प्रिय तुमसे कहीं सुन्दर हैं, जानो गुलाब की फूल-छड़ी। मैं चन्दन का वृक्ष कटवाकर पलँग बनवाऊँगी और उसी पर प्रिय को सुलाकर उसे बेना डुलाऊँगी।] इतनी बात सुनना था कि व्यापारी हँस पड़ा। पगड़ी उलट गयी और लचिया ने अनचक्के पिया को पहचान लिया। धत्तेरे की, किसको क्या कह गयी। यह सोचकर बेचारी को मुरछा आ गयी।

धनि सतवन्ती नारि, धरम के ज्योति खरी।
भेस बदल पिय ठाढ़, देखि धनि मुरछि परी ॥

"वाह वा, वाह वा, दुलारी वाह!" चमारिनें लम्बी उसासें लेतीं, दुलरिया को अँकवार में भर लेतीं। वह सबसे आँख मटका-मटकाकर मज़ाक करतीं। क्या ज़माना था वह। कैसे-कैसे लोग थे।

उनसे छेड़खानी करने को भी कोई हिम्मत नहीं करता था। दुलारी कहती थी कि यदि औरत ख़ुद न ढरक जाये तो मरद की क्या हिम्मत है कि वह कुछ कर सके। सुरजू सिंह के यहाँ कटिया हो रही थी। चौदहों में ख़ूब गेहूँ लगा था। इतना बड़ा टपरा। बस, उन्होंने देवीचक की ही कटनी लगायी। कहते कि भइया, काम करना हो तो देवीचक वालों से कराये। न मोल न तोल। न काहिली न सुस्ती। सब बोझे एक बराबर बाँधेंगे। जो मन चाहे छाँट लो। बारह बोझे पर उनकी एक बोझे बन्नी दे दो। बस, काम से काम। ई नहीं कि इहाँ के चमारों की तरह बात-बात पर तकझक। छोटे-छोटे ग्यारह बोझे थमा दिया गिरहस्थ को। गेहूँ की बालें भाँग-भाँग कर एक बोझा बनाया अपनी बन्नी के वास्ते। अगर गिरहस्थ कहीं चाल भाँप ले और वही बोझा छाँटकर ले ले तो नानी मर गयी और लगे हुटक-हुटककर खलिहान में ही रोने।

सुरजू सिंह घर चले आये थे, खाने। उनकी एवज़ पर सिरिया गया था खेत अगोरने। सिरिया सार भी एक लफंगा है। घूम-घूमकर बस पहुँचे दुलरिया के पास। ऊ लड़की भी थी पटाखा। ख़ूब हँस-हँस के बतिआवै। एक कोने में सरूप भगत अपनी 'पाह' धरे काटते चले जा रहे थे। उन्हें

तो जैसे कोई फ़िकर ही नहीं—कौन किससे बतियाता है, कौन किससे हँसमुसनी करता है। बस बुढ़वा अपने रंग में मस्त। थक जाये तो बीच-बीच में खैनी बनाने के लिए बैठ जाये। लोटे का पानी मुँह में गिरा के गट-गट पीये और फिर खैनी होंठ के नीचे दबाकर गमछा सिर पर बाँध कर जुट जाये फ़सल ढाहने में। कहीं सुस्ती आये, थकावट उपजे तो बुढ़वा छेड़ दे गाना :

> जुगुति बताये जाव, कवन विधि रहबों राम।
> जुगुति बताये जाव॥
> जो तुम साम बहुत दिन बितिहें
> अपनी सुरतिया मोरे बहियाँ पर लिखाये जाव।
> जुगुति बताये जाव। जुगुति····॥

सरूप भगत की आँखें गीली हो जाती थीं। खेत में काम करती 'कटनी' एकदम चुप हो जातीं। सबके गले में दरद का जानो ढोंका फँस गया हो। दुलरिया तो 'कान पार' कर सरूप के गीतों को सुनती रहती। उसके दोनों हाथ फ़सल की कटाई करते और मन घायल भँवरे-सा कहीं और ही चक्कर लगाता। कई बार हँसिया उसकी उँगलियों को दरेरती चली जाती। खून बहने लगता। वह उँगली को मुँह में डालकर एक मिनट बैठी रहती, फिर काम शुरू कर देती, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

सीरी सिंघवा रह-रहकर दुलरिया पर मँडरा रहा था। एक 'पाह' पूरी हुई। बोझे बँधे। दुलरिया का बोझा उठाने सीरी खुद पहुँच गया।

"का हो दुलारी, जे बा से हम मदद करें का ?"

"हाँ, हाँ मालिक, नेकी भी पूछ-पूछ ?" दुलरिया दाँत से होंठ दबा के बोली।

सीरी सिंघवा ने बोझा उठाते झटके से अपना कपार दुलरिया के मुँह में सटाय दिया। बस, पूरा का पूरा बोझा उछलकर अइसा गिरा कि सीरी नीचे, बोझा ऊपर। दुलरिया ताली पीट के हँसै तो हँसबै न करे। सब बुढ़िया 'कटनी' भी हँसिया थामे खेत में खड़ी हो गयीं। मुँह पर

अँचरा डालकर हँसने लगीं। कहीं बात न बढ़ जाय, इस डर से सरूप भगत और देवीचक के तीन-चार नवचा चमार वहीं खड़े हो गये आकर।

सिरिया 'कैसहूँ-कैसहूँ' बोझा 'टसकाय' कर उठा। ढेले की रगड़ से उसकी केहुनी का चमड़ा छिल गया था। वह आँखें लाल-लाल करके दुलरिया को देख रहा था। दुलरिया थी कि वैसे ही 'खी-खी' करती हँसे जा रही थी।

"हें-हें हँसती हो जे बा से ? सरम नहीं आती। बोझा पटक दिया मेरे ऊपर। इत्ता-सा बोझा नहीं सँभला ?"

"मुझसे नहीं सँभला बाबू कि आपसे नहीं सँभला ?" दुलरिया की हँसी ग़ायब थी और वह एकदम कठोर चेहरा बनाय के सीरी सिंह को देख रही थी—"दुपहर से आपका करतब देख रही हूँ। हमारे बोझा उठानेवाले आदमी ना हैं का ?"

"अच्छा, अच्छा, समझ लूँगा।" सिरिया खिसियानी बिल्ली की तरह खों-खों बोला।

"अरे जाने दो सरकार।" सरूप भगत धीरे-धीरे कहने लगे—"नीच जात से नहीं लगा जाता बाबू ! ऊ अपने रस्ते, आप अपने रस्ते।"

"खूब समझते हैं हम तुम्हें बुड्ढे, जे बा से खूब समझते हैं।"

"तू का समझोगे बाबू हमें ? हम जैसे दूसरे के रस्ते में नहीं पड़ते, वैसे ही चाहते हैं कि कोई हमारे रस्ते न पड़े। जैसी आपकी इज़्ज़त वैसी हमारी इज़्ज़त।"

"आये बड़ी इज़्ज़त वाले। चमार और ठाकुर की इज़्ज़त एक हो जायेगी ? हूँह्।"

"इज़्ज़त तो सबकी एक ही है बाबू ? चाहे चमार की हो, चाहे ठाकुर की। हम आपका काम करते हैं, मजूरी लेते हैं। हमें गरज़ है कि करते हैं। आपको गरज़ है कि कराते हो। इसका मतलब ई थोड़े हो गया कि हम आपके गुलाम हो गये।"

"तो तू कमनिस्ट हो सार, जे बा से एही से बढ़-बढ़ के बतिआते हो। अबहीं तू सीरी सिंह को नहीं जानते बुढ़ऊ।"

"आप भी सरकार अभी बहुत कम उमर के हो। करैता गाँव में जन्मे यहीं रहे। आपने भी सरकार अभी आदमी नहीं देखे हैं। भगवान् न करें कि देखे-दिखावे का मौक़ा आवे....। चल री दुलरिया, उठा बोझा, झब्बू !"

"हाँ दादा !"

"नन्हकू !"

"हाँ दादा !"

"तू लोग भी बोझा उठा के जाव, इसके साथ।"

सिरिया एकटक सरूप भगत के चेहरे पर देखता रह गया। उसने सच ही दिल का ऐसा कड़ा चमार नहीं देखा था अभी तक। वह चुपचाप खिसिया कर डाँड़ पर बैठ गया।

●

घुरबिनवा को कुछ भी पता न था। वह दोपहर को भैंस लेकर आया। तलैया में धो-धाकर खूँटे पर बाँध दिया। चरनी में से अपना टीन का तसला लेकर वह बखरी पहुँचा। यह तसला उसकी थाली भी है, लोटा भी। जगजीत खेत से खाना खाने लौटा था। घुरबिनवा को दालान में खड़ा देखकर गुस्से से लाल हो गया।

"क्या बे, यहाँ का है ?" उसने कोने में लाठी टिकाते हुए पूछा।

"खायक माँगे आये हैं ?"

"खायक का इहाँ तेरा बाप कमाकर रख गया है ? ऊ काम छोड़ के घर बैठ गया और तू खायक माँगने चला आया। जा भाग यहाँ से, तेरी भी कोई ज़रूरत नहीं। जैसे सब होगा, वैसे भैंस का भी इन्तज़ाम हो जायेगा, भाग।"

जगजीत की डाँट खाकर घुरबिनवा एकदम सकता गया। उसे बड़ी

तेज़ भूख लगी हुई थी। सबेरे 'खरमेटाव' के लिए दाना माँगने आया था तो जगजीत बो उठकर आँगन में बैठी थीं। कौड़ी-भर गुड़ थमाते हुए बोलीं—"जा-जा, आज यही है खरमेटाव। दोनों जून नाद भरने के लिए अनाज भी चाहिए न ?" सबेरे से दोपहर एक बजे तक वह भैंस के पीछे-पीछे 'ओ ही, ओ ही' करता घूम रहा था। ज्यों-ज्यों थकता गया, ख़ाली पेट आग धुँधुवाती गयी। अब खाना माँगने आया तो ई झिनझिना रहे हैं। भाग तेरी ज़रूरत नहीं। नहीं ज़रूरत है तो न सही। दोपहर तक जो काम किया है उसका तो खायक चाहिए।

घुरबिनवा वैसे ही बैठा रहा। मलिकार अभी खेत से घाम में खौंखियाये आये हैं। ठंडा हो जायेंगे। ऐसे ही बड़बड़ाय गये। उसने सोचा।

तभी आँगन में से लौटकर जगजीत फिर आया। वह खाली धोती लपेटे कंधे पर गमछा रखे, तेल चुपोड़ता नहाने जा रहा था। घुरबिनवा को वैसे ही बैठा देख भड़क उठा—"का बे तू अभी गया नहीं ?" उसने लात खींच कर तसले पर मारा और घुरबिनवा का हाथ पकड़ कर बाहर झोंक दिया। घुरबिनवा रोने लगा। बाहर गिरे तसले को उठाकर वह चमरौटी चला गया।

रोते हुए जब वह चमरौटी की गली में घुसा तो धनेसरी बुढ़िया दरवाज़े पर वैसे ही टाँग पसार कर बैठी थी। घुरबिनवा के रोने की आवाज़ सुनकर वह झपटकर उठ बैठी। रुलाई भी कई तरह की होती है। धनेसरी बुढ़िया को इस रुलाई में कोई खास बात दिखी होगी तभी तो डुगुरते-डुगुरते गली में आ गयी।

"का रे घुरबिन, किसने मारा है तुझे ?"

घुरबिन कुछ न बोला। वह चुपचाप वैसे ही रोते-कलपते अपनी मड़ई की ओर चला गया। धनेसरी बुढ़िया एक छिन वहीं खड़ी होकर सोचती रही। चमटोल में घुसते ही उसने सुगनी से सुना था कि झिनकू ने वंशी सिंह का काम छोड़ दिया। सुना जगजीत ने मारा भी। वह सोटा टेकती झिनकू की मड़ई की ओर चल पड़ी।

घुरबिनवा की रुलाई सुनकर झिनकू मड़ई से बाहर आ गया था।

"का रे, का हुआ ?" उसने पूछा।

"जगजीत ने मारकर मुझे झोंक दिया है।"

"काहे ?"

"भँइस बाँधकर खायक माँगने गये तो तसले पर एक लात मारकर कहा—भाग बे, तोर कवनो काम नाहीं हियाँ।"

घुरबिनवा हुटुक-हुटुक कर रोता रहा। गलगला-गलगलाकर अपनी बातें कहता रहा। झिनकू इसी आशा में बैठा था कि घुरबिनवा खायक ले आयेगा तो एक-एक कौर मुँह में डालकर सभी प्रानी पानी पी लेंगे। संझा को देखा जायेगा। घुरबिनवा को खाली तसला लिये वापस लौटते देख झिनकू ग़ुस्से से उबल पड़ा।

"तो तूं ससुरै उनके दरवज्जे का करने गया था ? हम तो उस साले के हियाँ अब थूकने भी नहीं जाते।"

"तो हमें का मालूम था ?" घुरबिनवा वैसे ही रोते-रोते बोला।

जाने क्या हुआ झिनकुवा को कि उसने आगे बढ़कर घुरबिनवा के गाल पर एक थप्पड़ जड़ दिया—"साले गये थे खायक माँगने, हुँह्।"

घुरबिनवा इस अचानक प्रहार से बिलबिला उठा। वह ज़ोर से चीख-चीखकर रोने लगा। झिनकू बो चाँचर से लगी, यह सब देख रही थी।

"आग लगे ऐसे मरद के जाँगर में। पेट की आग सही नहीं जाती तो लड़कों को भूंज के खा जा, मुँहझौंसा कहीं का। एक लात जगजितवा ने गट्टा चढ़ा के पीठ पर दिया तब नाहीं शेख़ी बघारने आयी। तब तो राँड़ औरत की नाईं कलप रहे थे—काट डालो बाबू, काट डालो बाबू—करम निखट्टू कहीं के!" उसने ऐसा विकृत मुँह बनाया कि उसका बस चले तो वह अभी मरोड़ कर झिनकू को चूल्हे में डाल दे।

"का बात है रे झिनकू बो।" धनेसरी बुढ़िया सोटा ठुकठुकाती दरवाज़े के पास आकर खड़ी हो गयी।'

"बात का है चाची, मियाँ को न पाऊँ तो बीबी को बकोटूं।" उसने

हाथ चमका कर कहा—"ई काम-धाम छोड़ के बैठे। हम भी कहते हैं कि भाई ठीक किया। पेट काटकर काम करने को कौन कहे। तो अब जो आयी है, उसे सहने से न बनेगा चाची। बेचारे छौंड़े को पीटने से का होगा ? खायक मिल जायेगा ? ऊ तो 'बासी-मुंह' दिनभर भैंस चराकर लौटा। खायक माँगने गया तो उस कसाई ने तसला पर ठोकर मार दी। मेरे लड़के को पीटकर निकाल दिया। इसमें बेचारे का क्या क़सूर है चाची, अब तुम्हीं कहो। ऊपर से ई दलिद्दरवा उसे पीट-पीटकर 'किरोध' निकाल रहा है।" झिनकू बो यह सब कहती जाती और घुरबिनवा के बालों को सहलाती जाती।

"का हो झिनकू बेटा।" धनेसरी सोटा पसार कर पुआल पर बैठ गयी—"इत्ते में घबरा गये भइया। ऐसे सीधे गऊ लड़के को मार दिया ? राम-राम। अरे भाई, ई सब तो आफ़त-विपत आती रहती है। बाकी मरद को घबराना नहीं चाहिये। अब देखो न, जब तोहरे बच्चा मरे, तो हमरे आगे-पीछे कौन था ? घर में एको दाना नहीं था, राम दहँ, मगर नाहीं। मैंने कहा कि भइया टुकड़े-टुकड़े हो जाऊँगी, बाकी 'केहू' की जूती नहीं चाटूँगी। छुट्टा रहूँगी, मन लायक़ मजूरी मिले तो काम करूँगी, नाहीं सूअर-बकरी चराऊँगी। है कि नहीं ?"

"हाँ चाची, है तो। मगर मेरी तो समझ में हो नहीं आता कि का करूँ। ई पाँच-पाँच प्रानी का पेट कैसे भरेगा। हे भगवान्।" वह बिलकुल रोने-रोने को हो आया।

"घबराव मत बेटा, आओ हमरे साथ चलो। दस सेर चना है ले आओ। तनिक दिमाग ठीक हो जाय तो सोचो। हम तो कहेंगे बेटा कि तुमने तो बड़ा अच्छा काम किया। नाहीं छोड़ते काम तो खायक तो मुअस्सर नाहीं ही होता। देह-जाँगर टूट कर बेबाक़ होता ऊपर से। हाँ, मुफ़ुत में काम करना भइया पाप है। तू तो सील-मुरव्वत में काम सँभाले रहते। बाक़ी धीरे-धीरे टूट जाते। अब काम छोड़ के छुट्टा हो गये। ये आदमिन के आगे कभी झुकना नहीं चाहिये। झुके नाहीं भइया कि ई कूद

के पीठ पर चढ़ जायेंगे और ऐसी सवारी कस देंगे कि छूटना मुहाल हो जायेगा। अब निधड़क विचरो। सुना सड़क पर माटी फेंकने का काम लगा है। रुपिया रोज़ की मजूरी मिलती है। दूनों औरत-मरद कल से डँट जाव सड़क पर। दो रुपिया कुछ होता है भइया, है कि नहीं ?"

"हाँ चाची, बाक़ी सड़क का काम केतना दिन चलेगा ? महीना-डेढ़ महीना और का ?"

"महीना-डेढ़ महीना कवनो कम होता है का हो झिनकू ?" धनेसरी चाची बड़े विश्वास से बोलीं—"मरद का तन पाये हो, सौ काम मिलेगा तुम्हें करने को। घबराते काहे हो ?"

"हाँ चाची, अब तो सब करना ही पड़ेगा।"

"पड़ेगा का हो, अरे पहिले से मउज से रहोगे झिनकू बेटा। एक काम अउर करो। घुरबिनवा से कह दो कि हमरी बकरी चरावे। दो ठो पाठ दे देंगे हम ओके। छः महीना में दो का चार हो जायेंगे। बकरी जैसा रोज़गार तो कुछ है ही नहीं। कहोगे तो दो ठो छौनों का भी बन-बस्त कर दूँगी, हाँ।"

"अच्छा चाची।" झिनकू उपकार से पूरी तरह लद चुका था—"अब देखैं, इस तरह कब तक बीत जाता है। जितने दिन का दाना-पानी होगा इहाँ का, रहना ही पड़ेगा।"

"तू, गाँव छोड़े की बात सोचते हो का ? झिनकू बेटा, राम-राम, अइसा काम कभी करना मत। गाँव में तोहार एक बित्ता ज़मीन है। मड़ई है, ईहै न तोहार पूँजी है ? इसको तो बनाये रखना बेटा। जहाँ मन हो तहाँ जाकर कमाओ। खाओ। बाक़ी फ़ुरसत मिलते ही मड़ई में ज़रूर लौट आओ। तबै सान है। नाहीं कसाई सोचेंगे कि तू हार के भाग गये। है न ? तोहैं तो 'इहैं' निफिकिर रहे के चाहीं, अउर इन कमीनों की छाती पर दाल दरै के चाहीं। तू कहीं चले गये भइया, तब तो ई सब अउर मान लेंगे कि सचमुच ये चमारों के करम-विधाता हैं। ना ना, तू गाँव छोड़े का तो नाम मत लो। हाँ।"

"अच्छा चाची।"

"तो चलो, रहिलवा लेत आओ, हमरे हियाँ से।"

झिनकू चुपचाप मनमारे धनेसरी बुढ़िया के साथ चल पड़ा। गमछे में चना बाँधकर लौटा, तो उसके चित्त में एक नया विश्वास छा चुका था। धनेसरी बुढ़िया और सरूप भगत की बातें क़रीब-क़रीब एक जैसी ही थीं। दोनों छुट्टा जीवन के हिमायती थे। सरूप घर का मोह ठीक नहीं मानते थे। गाँव की रहाइस को ही वे सारी विपत की जड़ समझते थे। धनेसरी बुढ़िया गाँव-घर छोड़ने को कायरता समझती थी। रास्ता चाहे दोनों का अलग-अलग क्यों न हो, मुक़ाम दोनों का एक ही था। झिनकू मन ही मन खुश हुआ कि दोनों ही उसका 'खियाल' करते हैं।

● ●

सोलह

सुबह के आठ बज रहे थे। खुदाबख्श और बुझारथ सिंह दोनों सोपिया नाले की तरफ़ खेतवाही करने गये हैं।

सोपिया नाला!

जाने किसने रखा था यह नाम? करैता के पूर्वी ताल से निकल यह नाला देवी-धाम वाले छवरे को काटता उत्तर में बहती गंगा में जाकर मिल जाता है। इतना-भर कह देने से शायद ही कोई सीपिया नाले के रूप और आकार का सही अनुमान लगा सके। ताल से जहाँ वह निकलता है, वहाँ तो शायद गहराई का नामोनिशान भी नहीं। पर ज्यों-ज्यों यह रास्ता तै करते हुए उत्तर तरफ़ की मुलायम सिकता-धरती में धँसता है, धारा चौड़ी और रूप भयंकर होता जाता है।

उत्तर तरफ़ जहाँ नाले को रेलवे लाइन पार करती है, चौड़े-चौड़े सात मेहराबदार ताखों का भारी-सा पुल है। बरसात के दिनों में दक्खिनवाली पक्की सड़क के किनारे-किनारे समूचे नरवन के इलाके का फ़ालतू पानी बहकर करैता के ताल में गिरता है और करैता का यह ताल इस अनावश्यक पानी को नाले की शक्ति और सीमा की बिना परवाह किये सौंप देता है। घुमड़ती हुई धारा अगल-बग़ल के खेतों को काटती गंगा की

ओर दौड़ पड़ती है। रेलवे वालों ने इस वेग से संचार-साधन की सुरक्षा के लिए पुल के दोनों तरफ़ भारी-भारी पत्थर के ढोंके गिरा दिये। कभी नाले की गति तेज़ रही तो उसने पत्थर के ढोंकों को पुल से और भी उत्तर और कभी गंगा की बाढ़ ज़ोरदार रही तो उसने पत्थरों को पुल के और भी अधिक दक्खिन फेंककर अपनी-अपनी ताक़त की रस्साक़शी दिखायी।

नाले में बरसात के दिनों में, ज़्यादा पानी वाले गड्ढों में, घोंघे, मछलियाँ, सीपियाँ और कछुवों की भरमार हो जाती। पानी सूख जाने पर मछलियाँ और कछुवे तो जाने कहाँ चले जाते, उजले घोंघे और सीपियाँ ज़रूर इस छोर से उस छोर तक बिछ जातीं और सूरज की धूप या चाँदनी रात में किरणों के पड़ने से चमक-चमक उठतीं। मुझे लगता है, इसी चमक को देखकर किसी कविहृदय किसान ने इसे सीपिया नाला नाम दे दिया होगा।

●

"कोई है?"

आवाज़ में एक अजीब तरह की गरगराहट थी। जैसे गले में घनी भाप जमी हो। विपिन इस आवाज़ को पहचानता है। हालाँकि इधर आठ-नौ वर्षों से उसने यह आवाज़ सुनी नहीं। किन्तु यह इतनी अलग आवाज़ है कि इसे भूल पाना संभव नहीं। खलील चाचा की आवाज़ ही अजूबा रही हो, ऐसा नहीं। उनका सब कुछ अजीब है। कपड़ा-पोशाक, चाल-ढाल, नाक-नक़्श। उनके पूरे व्यक्तित्व में सबसे आकर्षक वस्तु शायद उनकी दाढ़ी है।

इतिहास में गुप्तवंशीय राजाओं की वीरता के प्रसंग में समुद्रगुप्त की दिग्विजय की, कालिदास के रघु की दिग्विजय में छाया खोजनेवाले एक खास श्लोक की बड़ी चर्चा किया करते थे। कहा गया है कि रघु ने

उत्तर में हूणों पर हमला किया और लड़ाई में जो हूण मारे गये, उनके कटे हुए सिरों से केसर के खेत पट गये। उनकी दाढ़ियाँ ऐसी लगती थीं मानो मधुमक्खी के छत्ते हिल रहे हों। विपिन अपनी कक्षा में जब भी इस उदाहरण पर सोचता था, उसे ख़लील चाचा की दाढ़ी याद आ जाती। कटे हुए सिर और दाढ़ी—राम राम, मैं भी क्या-क्या सोच जाता हूँ। वह ज्यों-ज्यों इन ख्यालों को दिमाग़ से बाहर करने की कोशिश करता त्यों-त्यों ख़लील ख़ाँ की दाढ़ी उनकी आँखों के सामने लहराने लगती।

ख़लील चाचा की दाढ़ी करैता के उत्थान-पतन की प्रतीक हो जैसे। एकदम गोल बड़ी गैस बत्ती के रेशमी झोंझ की तरह, बीच में तनिक सी नुकीली, बड़े क़रीने से सँवारी हुई, ख़ालिस काले रेशमी सूत के गुच्छे की तरह चमकदार। अब वही दाढ़ी कैसी रूखी-सूखी, बेतरतीब और उदास लगती है, मानो अन्धड़ सूने बये के घोंसले को झिंझोड़ कर रख दिया है। मालिक काका के पास शाम को ख़लील मियाँ अक्सर आते।

'क्यों जी शाहजादे साहब, मिज़ाज तो ठीक है, क्या हाल है ?' विपिन चुपचाप एक तरफ़ बैठ जाता। वह कुछ न बोलता। ख़लील चाचा धीरे-धीरे बुदबुदाते जैसे हाथ उठाकर दुआ कर रहे हों—"मालिक भइया, आपके ख़ानदान में फिर एक गुलाब खिल गया। ख़ुदा ने चाहा तो इसकी ख़ुशबू से आपकी खोई हुई ख़ुशी लौट आयेगी।"

मालिक काका कुछ न बोलते। जाने क्यों उनकी आँखें गीली हो जातीं। ख़लील चाचा इसे तुरंत भाँप जाते और इस ख़ूबी से बात-चीत का दौर बदल देते कि जैसे उन्होंने अब तक कुछ कहा ही नहीं था।

"अरे भाई, कोई है ?" आवाज़ दालान के ठीक दरवाज़े पर अपनी गरमाहट के साथ फिर गूँजी तो विपिन चारपाई से उतरकर दरवाज़े पर आ रहा।

"नमस्कार ख़लील चाचा।"

"वालेकुल सलाम बेटे, वाह-वाह। मुझे तो उम्मीद नहीं थी कि इतनी जल्दी तुम्हारे दरशन हो जायेंगे।" उन्होंने विपिन की पीठ थपथपायी और

चारपाई पर बैठते हुए बोले—"दो महीने तक बाहर रहा जमनिये में। जानते ही हो वहाँ बदरूल का ननिहाल है।" फिर तनिक झेंपते हुए मुस-कराये—"वैसे करैता गाँव के शोहदे तो कहते हैं कि ख़लील मियाँ को ससुराल के अलावा कहीं अच्छा लगता ही नहीं।" फिर ज़ोर-ज़ोर से हँसते हुए शोहदों के कथन को पूरी तरह नामाक़ूल सिद्ध करते हुए चेहरे को थोड़ा खींचकर कहते गए—"हफ़्ते भर हुआ होगा, हुआँ से आये। कल ज़ुबैदा को खाँसी आने लगी। भई, हम तो नई बाज़ार के हकीम साहब से जोशांदा ही लाते। एक ख़ोराक से ही सख़्त से सख़्त जोक़ाम बिल्कुल रफ़ा-दफ़ा हो जाता है, मगर तुम्हारी चाची कहने लगीं कि अब नई बाज़ार दौड़ने की क्या ग़रज़। अब तो घर में ही डाक्टर हो गया। झब्बू उपधिया का लड़का, देबू पंडित डाक्टर हो गया है न ? अरे तुम तो जानते ही होगे, भई तुम्हारा वो दोस्त। हाँ, तो मैंने भी सोचा कि ठीक बात है, जब घर में डाक्टर आ गया तो बाहर वालों के पास नाक रगड़ने की क्या ज़रूरत। सो देबू के यहाँ गये थे। दवा की शीशी हाथ में लेकर सोचा कि जब इधर आ गए हैं तो तुमसे मिलते चलें। वरना कहोगे कि ख़लील चाचा भी ज़माने के साथ बदल गये। मालिक काका थे, तो सुबह से शाम तक मह-फ़िल गुलज़ार करते थे, अब आँख ही नहीं मिलाते, है कि नहीं ?"

"अरे नहीं ख़लील चाचा, ऐसी भी क्या बात है।" विपिन ने उनकी आत्मग्लानि के बोझ को उतारते हुए कहा—"मुझे पता लग गया था कि आप गाँव पर हैं नहीं।"

"ओफ्फो, तो तुमने इस नाचीज़ का पता भी लगाया। यह तुम्हारा बड़प्पन है बेटे। और क्या कहूँ ? एक ख़लील मियाँ थे कभी, वो भी अपने को तीसमार ख़ान ही समझते थे। क्या जलवे थे। गोल चौड़ी मुहरी का पायजामा, कलाबत्तू के गोटेवाला तंजेबी कुरता, कान में हिना का इत्र, पैरों में नियाग्रा, बाह बा....। हुँह, किसी को कुछ समझते ही न थे। सोना उगलनेवाली दोमट माटी में पचास बीघे का काश्त था न। बस, पैर

ज़मीन पर ही न पड़ते थे।"....एकाएक खलील मियाँ के चेहरे पर उड़ते हुए बादलों का एक टुकड़ा छा गया—"यही सब सोचते होंगे बेटे, क्यों ?"

"नहीं तो चाचा। मैं यह सब नहीं सोच रहा था।"

"तो तुम्हें मेरा हाल-चाल मालूम नहीं ? ताज्जुब है, तुमसे अभी तक किसी ने कहा नहीं। अब तो लोगों को खलील के हाल-चाल सुनाने में भी मज़े आते हैं भाई।"

"कैसा हाल-चाल ?"

खलील मियाँ खिलखिलाकर हँसे—"वाह विपिन बेटे, जानकर अनजान बन रहे हो। क्या तुम्हें नहीं मालूम :

हासिल से हाथ धो बैठ ऐ आरज़ू खिरामी
दिल जोशे-गिरिया में है डूबी हुई असामी
उस शमअ की तरह से जिसको कोई बुझा दे
मैं भी जले हुवों में हूँ दाग़े-ना-तमामी।"

विपिन मुस्करा पड़ा। ज़माना बदल गया, मगर खलील चाचा की मस्ती वैसे ही बरकरार है। वही हँसी, वे ही बारीक़ बातें। पुरज़ोर मस्ती का आलम ऐसा कि बात की बनात में शेरो-शायरी के रेशमी बेल-बूटे लगातार टँकते चले जायँ।

तभी रमचन्ना एक तश्तरी में मिश्री और शीशे के गिलास में पानी लाया।

"प्यास तो नहीं है बेटा, खैर लाओ पी ही लूँ।" खलील मियाँ तश्तरी को बहुत देर तक देखते रहे, फिर उन्होंने मिश्री का ढोका मुँह में डाल लिया। उसे कूँचते वक़्त भी वे तश्तरी को उँगलियों पर रखकर इधर-उधर घुमाते रहे। जैसे कोई निशान पढ़ रहे हों। फिर अचानक झटके से तश्तरी को चारपाई पर रखकर गिलास उठाया और पानी पीने लगे। थोड़ा पानी बचाकर मुँह भी धोया और रूमाल से चेहरा पोंछकर अजीब बनावटी हँसी हँसकर बोले—"बहू रानी यहीं हैं न अब ?"

"हाँ।"

उन्होंने दोनों होंठों को सटाकर कुछ सोचते हुए गर्दन हिलायी—"यह तश्तरी और यह गिलास मालिक भैया से खरीदवाया था मैंने। एक सेट पूरा। मैं आता तो इसी गिलास में पानी और इसी तश्तरी में नाश्ता वग़ैरह आता। और भी दूसरे मुसलमान अफ़सरान आते, तो बर्तनों की दिक़्क़त पड़ती थी। मैंने ही खरीदवाये थे सब....हाँ। भूली हुई बात है। बहुत पुरानी। न तुमने पानी के लिए कहा, न मैंने। फिर भी पानी आ गया। इसी से पूछा कि बहू रानी हैं क्या ?"

रमचन्ना तश्तरी-गिलास रखकर पान ले आया था। खलील चाचा ने दो बीड़े विपिन की ओर भी बढ़ाये। बाक़ी दोनों बीड़े जमाकर, तम्बाकू फाँक, उँगली से चूना लेकर उन्होंने तश्तरी विपिन की ओर बढ़ा दी। फिर बड़े इत्मीनान से चूना चाटते हुए बोले—"बड़े सरकार कहीं गये हैं क्या ? लो भई, ज़र्दा तो खाते हो न ?"

"हाँ।" विपिन ने तश्तरी थाम ली और बोला—"वे और खुदाबख्श सीपिया नाले की तरफ़ खेतवाही करने गये हैं।"

"हूँ। यह खुदाबख्श भी अजीब शख्स है। मैंने मालिक भइया से कहा कि आप लाये तो हैं इसे घोड़ा फेरने के लिए, मगर यह फेरेगा सवार को, तो बुढ़ऊ मेरी बात सुनकर ज़रा ग़मगीन हो गये थे। इसलिए मैंने बात आगे नहीं बढ़ायी। पता नहीं भाई, उन्हें कैसा लगे। इसीलिए खामोश रह गया। मगर अब मुझे लगता है कि मेरी उस दिन की खामोशी काफ़ी नुक़सानदेह साबित हुई। मैं ही एक शख्स था कि मालिक भइया से सब कुछ साफ़-साफ़ कह सकता था। मगर मुझसे भी ग़फ़लत हो गयी। और यह ग़फ़लत बेटे, मेरे अन्दरूनी जज़्बात की वजह से हुई।"

"क्या मतलब ?"

"अब क्या बताऊँ तुम्हें।" खलील मियाँ मुसकराकर बोले—"मेरा यह ख्याल है, और मैं इसे आज भी वैसी ही अहमियत देता हूँ बेटे कि इन्सान के तहज़ीब की जाँच उसके बातचीत करने के तरीक़े से होती है। बड़े आदमी से बातचीत करना कोई खेल नहीं है। न तो यह कोई एक-ब-

एक सीख लेने की चीज़ ही है। असली इम्तहान तो तब होता है जब आप किसी ऐसे नाज़ुक मसले पर बात कर रहे हों, जिसका उस शख्स से सीधा ताल्लुक़ हो। अब इसी खुदाबख्श वाले मसले को ही लो। इस गाँव के बीसियों मूज़ी लोग यह जानकर कि बुढ़ऊ और बड़े शाहज़ादे साहब में पटती नहीं, बातचीत के दौरान अक्सर वाहवाही लूटने के लिए ऐसी बात कर देते थे जो ऊपर से तो बुड्ढे को खुश करने वाली मालूम होती थी, मगर वे यह क़त्तई भूल जाते थे कि यह झगड़ा दो फ़रीक़ैन का नहीं; बाप और बेटे का है। फिर बुढ़ऊ कोई सीधे-सादे ढब के आदमी भी नहीं थे। उन्हें समझना बहुत मुश्किल था। बड़ी दूर की सोचते थे वो। इसलिए हल्के-से-हल्का झोंका दरिया में कैसी लहर पैदा करेगा, इसे बिना सोचे कंकड़ी उठाना और खेल-खेल में सतह पर फेंक देना हमेशा खतरनाक होता था। मैंने उनसे एक दफ़ा कहा—भइया साहेब, अब आपकी उमर ढली। आप इन सब मसाइल पर ऐसे फ़िकर मत किया कीजिये। लड़के बड़े हुए, अपना सँभालेंगे? अब आप राम-राम कीजिये।

"बोले—खलील मियाँ, मुझे बुझारथ की फ़िकर नहीं है।

"विपिन बाबू की भी फ़िकर क्यों हो आपको। वे तो बिलकुल दूसरे तरह के आदमी हैं, आप उनके बारे में भी फ़िकर न करें। मैंने कहा।

"बोले—तुम समझे नहीं खलील, मुझे फ़िकर बहू की रहती है।

"मैं एकदम चुप हो गया था बेटा। यह बूढ़ा किस गहराई में किस चीज़ को समझता था, यह जान पाना बड़ा मुश्किल था। खैर छोड़ो भी, यह सब कहानी। अब तुम क्या कर रहे हो, यह बताओ?"

"अभी तो कुछ नहीं कर रहा हूँ चाचा। सोचा था इम्तहान खत्म हो गया। गाँव चलूँगा। फिर कुछ दिन वहाँ रहकर सोचूँगा कि क्या करूँ, क्या न करूँ। यहाँ आये भी चार-पाँच महीने हो गये। मगर कुछ सोच न सका। यह गाँव तो अब वह रहा ही नहीं। जिधर देखता हूँ अजीब कुहराम है। सभी परेशान हैं, सभी दुखी। पता नहीं इस गाँव पर किस ग्रह की छाया पड़ गयी है। किसी के चेहरे पर खुशी दीखती ही नहीं।

"हूँ, आईने पर अक्स पड़ता ही है बरखुरदार। जिसके दिल का आईना जितना साफ़ है, उस पर यह खौफ़नाक़ छाया उतनी ही घनी पड़ेगी, इसमें शक नहीं। पर तुम चाहो भी तो क्या इसे बदल सकते हो?"

"क्यों? क्या आप समझते हैं कि गाँव को मायूसी के पंजे से छुड़ाया ही नहीं जा सकता?"

"देखो भाई, खलील मियाँ एक हारा हुआ इन्सान है। उसने जो कुछ देखा है, उसी की बिना पर वह तुमसे कुछ कह सकता है। वह यदि तुम्हारे मन के माफ़िक़ न भी हो तो बुरा मत मानना। तुम इस गाँव को मायूसी के पंजे से छुड़ाना चाहते हो, बहुत नेक ख्याल हैं तुम्हारे। हों भी क्यों न? तुम्हारे जिस्म में भी तो इस ज़मीन का हिस्सा है, तुम्हारे दिल में इसकी फ़िज़ाँ की खुशबू है। इसलिए तुम्हारा ऐसा सोचना ठीक है। मगर बेटे, जहालत, ग़रीबी और तंगख्याली की परतें एक-पर-एक न जाने कब से जमती चली गयी हैं। मैं नहीं समझता कि कोई इसे एक-ब-एक बदल सकता है। इस फ़िज़ाँ में ही कुछ ऐसा दमघोंट और मुर्दा-सा है कि हर मनसूबा पस्त हो जाता है।

"अब तुमको मैं अपने बारे में ही बताऊँ तो तुम यक़ीन नहीं करोगे। कौन मानेगा कि कुल बारह साल के भीतर ही एक हँसता-चहकता चमन एकदम वीरान हो गया।"

खलील मियाँ के चेहरे पर विपिन ने पहली बार ग़ौर से देखा।

"मियाँ लोग तो उजड़ गये" कहा था किसी ने योंही बातचीत में। विपिन ने सोचा कि जैसे सबकी हालत थोड़ी-बहुत गिरी है, वैसी ही मियाँ लोगों की भी होगी। मगर खलील हारा हुआ इन्सान है, चमन वीरान हो गया—आदि वाक्य इस अदेखी पीड़ा से बोझिल होकर निकले थे कि वह इन्हें खलील मियाँ की मज़ाक़िया तबीयत का सूचक कहकर ही टाल नहीं सकता था। खलील मियाँ की दाढ़ी क़रीब-क़रीब पूरी तरह उजली हो गयी है। ससुराल जाने के पहले शायद मेंहदी से रँगा था इसे। बार-बार धुले गुलाबी रंग के कपड़े की तरह दाढ़ी बिल्कुल बदरंग लगती है। आँखों में

एक अफाट सूनापन छाया है । क्या हुआ खलील मियाँ को ? कौन-सा सदमा पहुँचा कि उसने सारी चमक ही धूमिल कर दी । उस दिन हँसते-हँसते हरखू सरदार ने कहा था कि "बदरुलवा मनिग्रड्डर" भेजता है । उससे तो और खुशी ही होनी चाहिए थी खलील मियाँ को ।"

"बदरुल भाई कहीं बाहर हैं क्या खलील चाचा ?"

"उस मादर....की हमसे बात मत करो बेटा ।" खलील मियाँ एकदम से बिफर पड़े—"उसी कमीने ने तो मेरा सारा हौसला पस्त किया । उसने तो मुझे कहीं का नहीं छोड़ा । बीच भँवर में डालकर चला गया ।"

"कहाँ....कहाँ चला गया बदरुल ?"

"अब क्या बतायें ।" खलील मियाँ अपनी काँपती उँगलियों से मुँह को बुरी तरह दबोचकर एक क्षण रुके, फिर बोले—"हाईस्कूल के बाद उसने पढ़ाई छोड़ दी । हाईस्कूल तो तुम्हारे साथ ही पास किया था न ? हूँ, तो बाद में पुलिस में चला गया । मैं चाहता तो नहीं था कि वह नौकरी करे । अकेला आदमी हूँ । अब तो खुदाया एक नन्हा और भी है सदरुल, खैर । सोचा कुछ मदद करेगा । पुलिस में उसने तरक्क़ी की और हेडकांस्टिबिल हो गया । रुपये-उपये कुछ भेजता न था । जमनिये में उसकी भी शादी की थी । बीवी भी बड़ी खूबसूरत और लायक़ । सोचा मुझे कुछ नहीं देता तो न सही । बीवी को सँभाले । यही बहुत है । तभी एक दिन सुना कि जमनिये के कई मुसलमानों के साथ साला पाकिस्तान चला गया । उसका ससुर ले गया होगा । जो हो, मैं तो उसी का क़सूर कहूँगा कि उस साले का खून खून नहीं रहा । पानी हो गया । मैंने माथा पीट लिया । जुबैदा की माँ लगी रोने । मैंने कहा, अब रोती क्या हो । जान लो कि एक बेटा मर गया । बेग़म को रंज भी हुआ मेरे ऐसा कहने का । मगर भाई, मैं तो साफ़गो हूँ । जब खर्च को इफ़रात था, तब भी सच ही कहा और आज जब फटेहाल हूँ तब भी सच ही कहूँगा । ईमान के अलावा और क्या है इस खलील के पास ।"

"तब से क्या कोई समाचार नहीं मिला उसका ?"

"नहीं, दो-चार खत आये । हर बार लिखता कि अब्बा वहाँ क़ाफ़िरों

के बीच क्या पड़े हो । अभी मौक़ा है, चले आओ । उसने दो-चार लोगों के नाम भी लिखे कि उनसे मिलकर बातचीत कर लो । वे लोग तुम्हारे पाकिस्तान आने का बन्दोबस्त कर देंगे । मैंने लिख दिया बेटे कि तुम्हारे पाकिस्तान पर मैं लानत भेजता हूँ । साले तू दोग़ला है । क़ाफ़िरों के बीच अपना दर्जनों पुश्त गल गया । आज तक ऊपर खुदा गवाह है बेटे, मैंने कभी हिन्दू और मुसलमान में फ़र्क नहीं किया । मैंने दसमी नहीं मनायी कि दीवाली के दीये नहीं जलाये ? तुमने तो देखा ही है कि होली के दिन मेरे सहन में जाज़िम बिछ जाती । और क्या छोटा और क्या बड़ा सब इकट्ठे होते । फाग गानेवाली टोली पहले यहाँ छावनी पर जमती थी, फिर यहाँ से उठकर लोग सीधे मेरे दरवाजे आते । मैं अहीरों को बुलवा कर पहले से ही कंडाल भर ठंढई बनवाये रहता । लोग खूब छानते, और खूब गाते । मेरे घर में होली के दिन पूड़ियों और सिवइयों की टाल लग जाती । सारी ठकुरहन पुराने रवाज़ को निभाती रही । ईद के मौक़े पर लोग हमारे यहाँ मुबारक़बाद देने आते । बुढ़ऊ मलिकार खुद पिछली बार आये थे । आज तक खलील मियाँ की बेटी-बहू को या उनके किसी पुश्त में खान-दान की किसी लड़की को कभी हिन्दुओं ने अपनी बेटी-बहू से अलग नहीं माना । तो बेटा ! तुम्हीं बताओ कि मैं कैसे मान लूँ कि मैं क़ाफ़िरों के बीच हूँ या कि दुश्मनों के बीच हूँ ।

"बदरुल के खतों ने मुझे बड़ी परेशानी में डाल दिया । एक बेमानी दहशत पैदा कर दी । उन दिनों कुछ जगहों में दंगे-फ़साद भी हो रहे थे । मैं झूठ नहीं बोलूँगा बेटे । मैंने भी घंटों इस मसले पर सोचा है । कई बार अपने को अजीब पेशोपेश में पाया है । बेग़म बहुत जल्द घबरा जाती हैं । उन्होंने कहा कि अभी क्या बिगड़ा है । उन आदमियों से मिलो और रुख-सत करो । माना पहले कुछ नहीं हुआ, मगर कौन जाने अब हो । लेहाज़ा जल्दी से जल्दी खतरे वाली जगह से हट जाना ही अक़्लमन्दी है । मैं कई तरह की कशिश के बीच तड़पता रहा । सोचा, क्या चला जाऊँ ? मगर मन के भीतर कोई बोलता—क्या कहकर जाओगे । हाँ, मैं क्या कह

कर जाता? जहाँ कोई खतरा न था, जहाँ काली से काली रात में भी कभी किसी ने मेरे खानदान की ओर ग़लत ढंग से आँख नहीं उठाई, वहाँ से क्या कहकर जाऊँ। क़ाफ़िर मुझे सता रहे हैं, ऐसा कहना सरासर झूठ होता। बेटे, मुझे लगा कि यह धरती के साथ दग़ा करना है। झूठी तोहमत लगाकर वतन को छोड़ना सबसे बड़ा कुफ़ है। मैंने बिलकुल पक्का कर लिया कि कुछ भी हो जाये, मैं करैता छोड़कर नहीं जाऊँगा।"

"लेकिन खलील चाचा, इतना होने पर भी कम से कम एक बात तो ऐसी है ही जो आपको बुरी लगनी चाहिए। हिन्दू आपका लाख ख्याल करें, मगर अपने बर्तन में पानी पीने तो नहीं ही देते। अब देखिये न, कनिया ने भी पानी भेजा तो एक अलग ही तश्तरी और गिलास में। आपको बुरा तो लगा ही होगा।" विपिन ने बड़े अपराधी मन से अपने दिल की साफ़ बात कह दी।

"बुरा लग सकता है बेटे, क्यों न लगेगा बुरा, मगर यह बुरा उन्हीं को लगेगा, जो अक़्ल से काम लेना नहीं चाहते। मुसलमान सब बाहर से ही नहीं आये हैं। लेकिन मुसलमान धर्म तो बाहर से आया ही। और जो उसको लेकर आये, वे हमलावर तो थे ही। कोई हमलावर किसी का बर्तन छीने, उस पर क़ब्ज़ा करे, उसके मन्दिरों को तोड़े, उसकी लड़कियों को ज़बर्दस्ती छीने, तो क्या वह क़ौम उसे देवता मानकर उसका पैर चूमेगी? उस क़ौम के बदन में ताक़त न थी कि वह हमलावर को पीछे धकेल दे, मगर उसकी तहज़ीब और रूह में वह ताक़त ज़रूर थी कि वह हमलावर से कभी हार न माने। हिन्दुओं ने कभी भी मुसलमानों को अपने से बेहतर इन्सान नहीं माना। तो क्या यह उनकी तंगदिली कही जायेगी? और मैं सोचता हूँ कि यह उनकी ताक़त थी, जो उसको सँभालने में मददगार साबित हुई।"

"लेकिन यह चीज़ पहले कितनी भी ज़रूरी रही हो, आज तो वह एक निरर्थक रूढ़ि बनकर रह गयी न?"

"हो सकता है। पढ़े-लिखे लोगों को सोचना चाहिए इस पर। और अब तो यह काफ़ी टूट भी रही है।" खलील मियाँ मुसकराते हुए बोले—

"रही कनिया के भेजने की बात, तो वे बर्तन तो मैंने खुद ख़रीदवाये थे। ख़ैर, तो मैं तुमसे कह रहा था, कि मैं इसी वजह से पाकिस्तान नहीं गया। उस बीच खेती-बारी भी कोई बहुत खराब हालत में नहीं थी। मगर पता नहीं क्या बात थी कि खेती-बारी की पैदावार से काम चल न पाता। चीज़ों का दाम बढ़ा था। मगर उतना नहीं कि हालत खस्ता हो जाये। कुछ समझ में न आने पर भी हालत खराब होती गयी। ज़मींदारी उन्मूलन से मेरे ऊपर कोई सीधा असर न पड़ा। एक बात ज़रूर हुई कि काम के हलवाहे और बनिहार मिलना मुश्किल हो गये। मैंने इस मुहिम का भी पूरी तरह से सामना करने का मन्सूबा बाँधा। खुदा क़सम बेटे, साल का ऐसा कोई दिन नहीं गया जब मैंने आठ-आठ नव-नव घंटे खेत या खलिहान में मेहनत करते न गुज़ारे हों। माना कि मुझसे अकेले पचास बीघे खेत नहीं सम्हल सकते, मगर ऐसा तो क्या कि खाने भर को पैदा न हो।

"एक बात ज़रूर हुई। किसी ने कहा होगा, या जैसे भी हुआ हो, मेरे ऊपर कृषि आय कर लाद दिया गया। साल में ढाई-तीन सौ रुपये जमा करने पड़ते। ये रुपये बहुत अखरे। लेकिन ऐसा ही 'कर' मेरे तरह के दूसरे किसानों पर भी लगा। यही सोचकर दिल को ढाढ़स देता रहा। किसी किसी तरह पाँच साल खिंच गये। जुबैदा की बड़ी बहन सक़ीना की शादी आ गयी। जवान लड़की को देखकर कलेजा मुँह को आता था। आस-पास में कोई अच्छा रिश्ता बैठ नहीं पाया। नई बाज़ार में शादी तै की। रुपयों की सख्त ज़रूरत थी। रुपये देने को कोई तैयार नहीं। देवी चौधरी का ख़ान्दान मेरी हलवाही-चरवाही करता रहा। अहीरों ने बड़ी मदद की है अपनी। देवी चौधरी का लड़का जगेस्सर पुलिस में है। खूब आमदनी है। उनके पास रुपये थे। उन्होंने सौ रुपये फ़ी बीघे पर खेत रेहन रखने की रज़ामन्दी ज़ाहिर की। तुम्हें सुनकर ताज्जुब होगा बेटे कि बीस बीघे खेत रेहन रखकर मैंने सक़ीना की शादी की। सोचा, चलो अभी तीस बीघे खेत हैं। कुल दो हज़ार रुपये यदि इकट्ठे हो जायें तो रेहन वाले खेत भी छूट जायेंगे।

"मगर ऐसा कुछ न हो सका। वे बीस बीघे खेत तो गए ही, उनके पाने की नामुराद ख्वाहिश ने दस-बारह बीघों का और सफ़ाया कराया।"

"क्या, देवी चौधुरी ने रुपये लेकर भी खेत लौटाने से इनकार कर दिया ?"

"अब तुम्हें क्या-क्या सुनायें बेटा ? यह खलील मियाँ की ज़िन्दगी की सबसे करारी हार है। इसने तो जैसे हर चीज़ के भीतर से मेरे ईमान और इन्सानियत को झकझोर कर अलग कर दिया। मुझे जिस तरफ़ से खतरे की कोई उम्मीद न थी, खतरा उधर से आया। देवी चौधुरी बेचारे कब के आसूदे और खुशहाल हैं ? दाने-दाने को मोहताज़ थे। मैंने इन लोगों को रोटियाँ दी हैं, रोटियाँ। सारे कुनबे को इस या उस काम के बहाने खिलाया-पिलाया है। उस देवी चौधुरी ने मेरे साथ दग़ा की। रेहन रखने के चार-पांच साल तक तो मैं सोच भी न पाया कि कभी ऐसा हो सकता है। ताल में पचीसों का रक़बा देखा है न तुमने ? हाँ, उस पचीस बीघे के रक़बे में दो हिस्से थे। एक पाँच बीघे का, एक बीस बीघे का। ऊपर का पाँच बीघे वाला हिस्सा बनिहारी में दिया था, देवी चौधुरी को। जाने कितने बरस में उनके जोत में था। वे दस गुना लगान भरकर उसकी भूमिधरी का पर्चा लाये, तब भी मेरे मन में मलाल नहीं हुआ। जिसकी जोत में दस बारह साल से अधिक सिकमी बन्दोबस्त था, सभी भूमिधर हो गए। तो यदि बेचारे देवी चौधुरी हो गए तो क्या हरज़ भला। नीचे वाला बीस बीघे का रक़बा रेहन था। उन्होंने दोनों के बीच की मेंड़ उड़ा दी, तो भी मैंने कुछ न कहा। दोनों उन्हीं की जोत में हैं, उन्होंने शिनाख्त के लिए बीच में एक 'जूर' लगा दिया है, चलो ठीक है। उसी वक़्त दलसुखलाल पटवारी की जगह एक नया लेखपाल आया रामकरन। सुना कि वह उनकी जात-बिरादरी का था। जो हो, पहले के पटवारी घूसखोर थे, ज़मींदार के पिट्ठू थे, मगर डकैत नहीं थे। लेखपाल ससुरे ने बीस बिगहे वाले रक़बे पर भी देवी चौधुरी का क़ब्ज़ा दिखाया। यही नहीं बेटे, उसने पीछे के बीस साल के क़ब्ज़े का इन्तखाब भी दे दिया। देवी चौधुरी उसका भी दसगुना लगान अदा करके 'भूमिधरी परचा' ले आये। यह सब छिपे-छिपाये हुआ। इस बीच वह लेखपाल बदल गया। नया लेखपाल आया। तब जाकर सुराग़ लगा। मुझे उसकी बात पर इत्मीनान नहीं हुआ। मुझे हमेशा लगा कि देवी चौधुरी मेरे साथ ऐसा कभी न करेंगे। मैंने सोचा कि पूछूँ भी तो कैसे ? जब पास में देने की दो हज़ार रुपये नहीं हैं तो रेहन छुड़ाने की बात कैसे करूँ। पर मन नहीं माना। लड़के की मौत का ग़म इन्सान सह जाता है भइया, मगर ज़मीन छिन जाने का ग़म नहीं सहा जाता। मैंने बंशी सिंह से बात की। वे तैयार भी हो गए। चार बीघे खेत का दो हज़ार में बयनामा हो जायेगा। मैंने यह सब ठीक करके देवी चौधुरी को बुलवाया। काम में फँसे होने का बहाना करके वह हीला-हवाला करता रहा। लाचार एक दिन खुद मैं उसके दरवाज़े पर गया।

"क्यों जी, चौधरी ! फ़ुर्सत नहीं मिली ज़रा सी बात सुनने की ?

"देवी चौधुरी बड़े ग़ुस्से में उखड़कर बोला—अपना काम देखें कि दिन भर हाज़िरी बजायें ?

"मैंने कहा—हाज़िरी की ऐसी की तैसी। अपना दो हज़ार रुपया लो भइया और हमारी रेहन लौटा दो। चार आदमी के सामने रुपये ले लो और चार के सामने दस्तावेज़ फाड़ दो। बस।

"अब तो खेत बुआय गया है, अब कातिक में रेहन क्या छुड़ायेंगे, जेठ में छोड़ दूँगा। बुरा तो लगा मुझे; मगर खुशी भी हुई। चलो, देवी चौधुरी एकदम से बेईमान नहीं है। जेठ ही में सही। चार-पाँच महीने में कौन सी आफ़त आ जाती है।

"यह सब कुछ मन का वहम था बेटा। मगर बहम क्या एक लमहे के लिए आदमी को तस्क़ीन नहीं देता ? मैं भी इस बहम से तस्क़ीन पाता रहा। जैसे दिल पर रक्खा भारी पत्थर हट गया हो। मैंने उसी समय चार बीघे खेत बंशी सिंह को बय कर दिया। सोचा रुपया पास में रहेगा तो ठीक रहेगा। नहीं जेठ में भी हीला-हवाला करके देवी एक साल और ठेल ले जायेगा।

"जेठ में मैंने भइया, बटोर की। देवी का लड़का जगेसर छुट्टी पर आया था। सुखदेव भी था। गाँव के दूसरे लोग भी इकट्ठा हुए। मामले की रू से तो सभी वाक़िफ़ थे ही। मगर सब कुछ फिर से दुहराना जरूरी था। मैंने अपनी आफ़त की बातें बताकर कहा—मैंने पंचो, सौ रुपये फ़ी बीघे के हिसाब से अपने बीस बीघे खेत देवी चौधुरी को रेहन में दिया। पिछले कातिक में मैंने रुपये इकट्ठे करके देवी चौधुरी से रेहन लौटाने के लिए कहा तो बोले कि अब तो खेत बोया जा चुका है। जेठ में आप हमारे रुपये दे दीजिएगा, मैं आपका दस्तावेज़ लौटा दूँगा। सो मैं रुपये लाया हूँ। ये रुपये ले लें और मेरा दस्तावेज़ लौटा दें।

"वाह रे वाह मियाँ जी।" जगेसर उछलकर मेरे सामने आया और बोला—"इहै करोगे क्या ? अरे भाई आफ़त-विपत में मदद करने का यही नतीजा होता है, ऐं ? सुनो पंचो, ई बात सही है कि दो हज़ार रुपये पर खेत रेहन धरा गया। मगर उसके बाद कई बार मियाँ जी को रुपयों की ज़रूरत पड़ी। तीन हज़ार रुपया और दिया। बयनामे की बात हुई तो खलील मियाँ ने कहा कि अपने नाम बन्दोबस्त कराके भूमिधरी ही ले लो। बयनामा कराने में हमारी हँसाई होगी। सोचा ठीक है। मियाँ जी का नमक खाया है, हम लोगों ने। ऐसा करो कि इनकी बेइज़्ज़ती न हो। सो पंचो, बंदोबस्त कराके अपने नाम हमने भूमिधरी करा ली। अब काहे का रुपया और काहे का खेत ?"

"मैं तो जगेसर की बात सुनकर बेटा, हक्का-बक्का ताकता रह गया। इन्सान इस क़दर बेईमान हो सकता है, कभी सोचा ही न था। एक मिनट के वास्ते मैं कुछ बोल न सका।

"क्यों खलील मियाँ, जगेसर के बयान पर कुछ कहना है आपको ?" सुखदेव ने पूछा।

"यह सब ग़लत है, फरेब है।" मैंने गुस्से के मारे काँपते हुए कहा।

"वाह वाह ई सब ग़लत है, फरेब है। अरे वाह मियाँजी, वाह ! हमको आप जोलहकट्टी मत सिखाइये। इहाँ न लगिहै राउर माया, वाह रे वाह।

"मैंने तुमसे कब कहा कि बन्दोबस्त करा के भूमिधरी ले लो ?

"मुझसे नहीं कहा आपने। बाबू से कहा। मैं यहाँ कहाँ था जो आप कहते। फिर ई सब बात सात-आठ साल पुरानी हुई। आपको नहीं मालूम था कि दस साल पीछे से बन्दोबस्त मेरे नाम चल रहा है।

"मुझे नहीं मालूम था।

"सुनो पंचो, इनको नहीं मालूम था। आठ साल के बाद इनको अनचक्के में मालूम हो गया। जगेसर ताली पीटकर हँसा। रामकरन के सामने इन्होंने कहा, तभी तो उसे बेचारे ने बन्दोबस्ती दरज़ किया। इन्हें मालूम नहीं था। अरे मियाँ जी, कुछ ऊपर वाले का भी डर करो—।"

"मैं जानता था बेटा कि रामकरन से पूछताछ करने से भी कोई फ़ायदा न होगा। मैं सब तरफ़ से घिर गया हूँ। एक आसरा खुदा का ही रह गया था। मैंने एक से एक बदनीयत इन्सान देखे हैं, मगर वे भी खुदा का खौफ़ खाते हैं।

"क्यों देवी चौधुरी ! मैंने आखिरी बार क़िस्मत को आजमाने की ग़रज़ से कहा—तुम क्या कहते हो ?

"ऊ का कौनो झूठ कह रहा है।" देवी चौधुरी की गरदन ऊपर नहीं उठी।

"मेरी तरफ़ देखकर कहो न एक बार।

"मुझे देखने में डर लगा है का ?" देवी चौधुरी मेरी ओर फिर भी देख न सका।

"अच्छा तो ठीक है, तुम अपने पोते की क़सम खा जाओ पंचों के सामने। और शिव जी की पिंडी उठाकर कह दो कि जगेसर जो कह रहा है वही सच है।

"देवी चौधुरी का चेहरा उतर गया। एक लमहे के लिए वह चुप रहा। फिर बोला—ई किरिया-क़सम से का होता है मियाँ साहेब। हमने रुपया भी दिया, अब ई सब किरिया-क़सम भी उठायें। नेकी करने का इहै फल है का ?

"साँच को आँच क्या देवी चौधुरी। जैसे इतना किया, इतना और भी कर दो। मुझे तसल्ली हो जायेगी।

"और बेटे, देवी चौधुरी ने अपने पोते के सर पर हाथ रखकर क़सम खा ली। शिव जी की पिंडी उठाते वक़्त भी वह ज़रा काँपा नहीं। मैं सब कुछ हार गया। मैंने इन्सान की अन्दरूनी अच्छाई में ईमान लाकर सब कुछ गवाँ दिया।

"उस दिन घर लौटकर आया तो बेग़म ने कुछ कहा नहीं। मैं जानता था कि यह ख़बर मेरे पहुँचने के पहले उसके पास पहुँच गयी होगी। शायद वह फिर पाकिस्तान का नाम लेकर, बदरुल के ख़तों की याद दिलायेगी। मेरे भोलेपन का मज़ाक़ उड़ायेगी। मगर उसने ऐसा कुछ नहीं किया। वह कुछ न बोली। इसी से मेरी परेशानी और भी बढ़ गयी। मज़ाक़ उड़ाकर शायद वह अपने दिल का दर्द बहा लेगी। मगर ख़ामोश होकर मेरे दिल को मथती रही। उसकी भी आँखों के सामने एक बिनब्याही लड़की थी। क़रीब उन्तीस-तीस बीघे खेत के एक-ब-एक निकल जाने से मेरे तो जैसे पैर ही कट गए। मैं अकेले में दिल को बार-बार सँभालने की कोशिश करता। मगर मन का क़रार जो खोया सो फिर वापिस न आया।

"सोचा एक बार रामकरन से भी मिल लूँ। आख़िर वह भी इन्सान है। पता नहीं किस रौ में बह गया। अब शायद उससे अपने दुःख-दर्द का हाल कहूँ, तो कुछ मदद करे। बेबसी जो न करायें बेटे। उसके गाँव का पता लगाया। मालूम हुआ कि वह अपने गाँव से भी दूर सैयदराजे की तरफ़ किसी गाँव में लेखपाली करता है। वहाँ पहुँचा। मुझे देखकर वह एक लमहे के लिए ताकता रह गया।

"पहचाना नहीं मुझे रामकरन! मैं करैता का रहनेवाला हूँ, ख़लील ख़ाँ।

"अरे हाँ हाँ, कहिये ख़ाँ साहेब, कुशल मंगल?

"अब ख़ाँ साहेब की कुशल-मंगल तो अल्ला ताला की मर्ज़ी की बात है पर भइया, तुमसे ऐसी उम्मीद न थी। एक मासूम इन्सान का गला

काटते वक़्त तुम्हें कुछ तो सोचना चाहिए था? मैंने आख़िर तुम्हारा क्या बिगाड़ा था? कोई साल ऐसा नहीं गया कि मैंने तुम्हारी तहरीर न दी हो। मैं सीधा इन्सान हूँ बेटे। मुझे छक्का-पंजा नहीं आता। इसी से मेरी किसी से न लड़ाई थी, न झगड़ा। फिर भी उसूल निभाते रहने की ग़रज़ से मैंने तुम्हारी उजरत में कोई ढिलाई नहीं की, फिर भी पता नहीं तुमने कब की दुश्मनी साधी। मुझे तो याद भी नहीं भइया कि मैंने तुम्हारी शान में कभी गुस्ताख़ी की हो। फिर तुमने यह कब का वैर निकाला?

"रामकरन कुछ बोल न सका बेटे। बार-बार कहने पर उसने सिर्फ़ इतना कहा कि अब वह कुछ कर नहीं सकता, उसका तो हाथ कट चुका है। जो लिख गया उसे बदलना उसके वश के बाहर है। मैं लाचार वापिस आ गया। इन्सान भी अजीब है। कुछ बना सकने की उसमें ताक़त नहीं, पर मिटा सकने का ग़रूर वह हमेशा ढोता रहता है।

"यही है ख़लील मियाँ की कहानी विपिन बेटा! तुम्हारे ख़लील चाचा आख़िर को फ़ाख़्ते उड़ाने ही रह गये।"

विपिन इस बेबस हारे मनुष्य के बयान को इस तरह सुन रहा था, मानो आँखों के सामने मनुष्यता की हत्या के दृश्य एक के बाद एक उभरते चले जा रहे हों।

"अब भी आप हिन्दुओं की सभ्यता और तहज़ीब की तारीफ़ ही करते जायेंगे ख़लील चाचा, या....।"

ख़लील मियाँ विपिन की बात को बीच में ही टोककर बोले, "ऐसी चोट मत करो विपिन बेटा। ख़लील मियाँ के खेत चले गये, उनकी शान-शौकत चली गयी, उनकी क़िस्मत रूठ गयी। मगर ख़लील मियाँ में अभी इतनी ग़ैरत बाक़ी है कि वे एक अदने आदमी की नालायक़ी के लिए पूरी क़ौम को गुनहगार नहीं मान सकते। जिस दिन ख़लील मियाँ को अपने इन उसूलों में तब्दीली लाने की ज़रूरत होगी बेटे, उस दिन तुम जान लेना कि ख़लील मियाँ मर चुके। ख़लील मियाँ यह सब कुछ सहकर भी

आज अगर ज़िन्दा है तो सिर्फ़ इसीलिए कि इन गरम-सरद झोंकों से डालियाँ तो लच गयी हैं, मगर जड़ें हिली नहीं हैं।"

विपिन सिर्फ़ मुसकरा कर रह गया। ख़लील मियाँ का यह आदर्शवाद ऐसी पीड़ा से भरा था जिसके पक्ष या विपक्ष में कुछ भी कहना अनुचित ही होता।

"ख़ैर छोड़िये", विपिन ने बातचीत की दिशा बदलने के लिए कहा—"तो आपको इन्सान की अच्छाई में अब भी विश्वास है ?"

"विश्वास ही नहीं बेटे, मैं हमेशा उसके इन्तज़ार में हूँ। ख़लील मियाँ ख़ुदफ़रामोशी में डूबे हैं, अपने को भूल गये हैं, मगर अँधेरी रात के बाद उजाला होगा, इसके वे अब भी मुन्तज़िर हैं। बक़ौल शायर—

वक़्त ने कर दिया है ख़ुदफ़रामोश।
अपना भी मुन्तज़िर तेरे इन्तज़ार में।।

"अच्छा बेटे, अब छुट्टी दो आज, जाने कितना वक़्त ज़ाया किया तुम्हारा....।" वे चारपाई से उठकर बोले—"कभी आओ मेरे ग़रीबख़ाने पर भी।"

"आऊँगा ख़लील चाचा। अच्छा, नमस्कार।

"नमस्ते बेटे।"

ख़लील मियाँ एक हाथ में दवा की शीशी थामे, दूसरे से अपनी दाढ़ी को आहिस्ता से सहलाते हुए गली से मुड़कर चले गए। विपिन बड़ी देर तक उदास बैठा रहा। अब भी दालान के गोशे-गोशे में एक दर्दभरी गरगराती आवाज़ मानो वैसे ही गूँज रही थी। "कोई है, कोई है ? ? कोई है ? ? ?"

● ●

सत्रह

जगन मिसिर ने दालान में भीतर की ओर चारपाई कर ली, ताकि निकसार से आती हवा से वे बच सकें। मिसिर को मामूली बुख़ार था। हल्की हरारत। इतनी हरारत तो अक्सर हो जाती है। इसके लिए सोने की ज़रूरत उन्होंने कभी महसूस नहीं की। यदि गाँववाले देख लें कि जगन मिसिर दोपहर को रज़ाई ओढ़कर सो रहे हैं, तो सच मानिये एक हंगामा मच जायेगा। अब तक किसी ने मिसिर को असमय चारपाई पर लेटे कभी नहीं देखा। रज़ाई ओढ़ते मिसिर को कुछ अनकुस लगा था। पर उन्हें अचानक बक्से से तुरन्त-तुरन्त निकाली रज़ाई की महक अच्छी लगी और उन्होंने उसे बदन पर खींच लिया। उन्हें तेल में डूबी गोटों वाली वह रज़ाई बड़ी आरामदेह लग रही थी और उसके भीतर गरम बदन जैसे कुनकुने पानी में डूबता जा रहा हो।

मिसिर ने बुख़ार के चलते रज़ाई नहीं ओढ़ी है। बुख़ार तो एक बहाना मात्र है। असल में सुबह अखाड़े से लौटकर आते ही मिसिराइन से उनकी कुछ खटपट हो गयी।

दूध का कटोरा हाथ में थमाते मिसिराइन ने कहा—"नहीं राज़ी हो तो वहो कर लो, जो करना चाहते हो। मैं सोचती थी कि गाँव के लफ़ंगे-

चिढ़ाने को चिकोटी काटते हैं। बाक़ी अब लगता है कि वे सही कहते हैं। तुम्हारा भी मन है बिग्राह करने का। तो भाई कर डालो, इसमें इतना छिपाव-दुराव काहे का।"

मिसिर कटोरा हाथ में थामे निश्चेष्ट बैठे रहे। उनकी मुद्रा देखने लायक़ थी। लग रहा था जैसे उन्हें अचानक बोध हुआ कि कटोरा इतना वज़नी है कि उठाकर मुँह से लगा लेना सम्भव नहीं। उन्होंने मिसिराइन के चेहरे पर ताकने की कोशिश की। आँखों से आँखें मिल भी नहीं पायीं कि मिसिराइन ने बेमुरव्वती से मुँह फेर लिया और सिर का पल्लू इस तरह खींचा, जैसे वह नहीं चाहतीं कि मिसिर उनके मुँह को देख सकें।

मिसिर कुछ देर तक मिसिराइन के लौटने की प्रतीक्षा करते रहे। पर वे नहीं लौटीं। मिसिर ने लाचार दूध का कटोरा मुँह से लगा लिया। मुँह-हाथ धोकर वे दालान में आकर मचिया पर बैठ गये।

सामने की चारपाई पर मिसिराइन के भाई थे। दो दिन हुए आये। साथ में एक छोटा लड़का भी है। बिरिछ। बिरिछ कई बार पहले भी आ चुका है। काफ़ी छुटपन से ही यहाँ आता रहा है। फुफुआन करने। मिसिराइन इस लड़के पर जान देती हैं। साल में तीन-चार बार कहारिन भेजकर कुशल-मंगल पुछवाती हैं। हर बार मौसम के अनुसार तिलवा-मिठाई, खाजा-बताशा, गुड़-पट्टी, लाई-ढुंढे वग़ैरह भेजती रहती हैं। एक गठरी कपड़े की भी भेजवाती हैं। भौजाई के लिए साड़ी, ब्लाउजें, चोटी, कंघी। दूसरे लड़कों के लिए कुछ नहीं भेजा जाता। पर बिरिछ के लिए मोजा-स्वेटर, कमीज़-जांघिया ज़रूर चाहिए।

मिसिर ने कभी मना नहीं किया। सच तो यह है कि बिरिछ के लिए उनके मन में भी कुछ न कुछ झुकाव है। वे छुटपन में उसे घंटों गोद में चिपकाये या कंधे पर चढ़ाये सिवान-सिवान घूमते रहते। गाँव में तो उसके होने पर इनका अकेले निकलना मुश्किल हो जाता। लड़का फूफा-फूफा चिल्लाते पीछे-पीछे हिलक जाता। उसे भुलवाकर घर से बाहर निकलने को होते कि वह चीखकर इनकी धोती पकड़ लेता। लाचार उसे कंधे पर लादना ही पड़ता। धीरे-धीरे मजबूरी भी बान बन गयी। और मिसिर को बिरिछ के बिना गाँव में घूमना उदास लगने लगा। यदि बिरिछ कन्धे पर या गोद में न हो तो मिसिर को लगता कि बिना अंग-रखा पहने ही घर से निकल आये हैं।

मिसिर मचिये पर बैठे निकसार से बाहर गली में देखते रहे। रामदहिन पांडे आज कितना चुप हैं। ऐसा आदमी भी चुप हो सकता है, यह मिसिर को बड़ा विचित्र लगा। रामदहिन काफ़ी बातूनी आदमी हैं। ऐसे बातूनी कि उनकी बातें सुननेवाले को सिर्फ़ छूती ही नहीं नोचने-खसोटने लगती हैं।

पहुना यह बात। पहुना वह बात। गरज़ यह कि पांडे एक क्षण भी चुप रहना नहीं जानते। अपने गाँव, घर, देहात, कचहरी की लाखों बातें, जिनसे उनका कोई संबंध नहीं, सुनाते जायेंगे और बीच-बीच में सुनने वाले को खुदक्के भी देते जायेंगे कि कहीं वह अन्यमनस्क तो नहीं हो रहा है।

पूरबहिया रिश्तेदारों की यह विशेषता होती है कि लड़की की शादी जिससे करते हैं, उसे अन्त तक अपने से बड़े नहीं मानते। जिसने उसकी लड़की ली, मानो उसने बेइज़्ज़ती की। इस बेइज़्ज़ती का बदला अपने बहनोई से गन्दे मज़ाक़ करके लेना एक तरीक़ा हो सकता है, पर फ़ालतू बातों के जाल में घंटों फँसाकर छटपटाने के लिए विवश करना तो सच-मुच ज्यादती है।

मिसिर के भाई बैजनाथ रामदहिन पांडे की इन हरक़तों के सीधे शिकार बनते थे। भइया इतने सज्जन थे कि वे साले की गालियों की बौछार में हँसते-हँसते नहाते रहते। पांडे को शुरू-शुरू में भइया की यह अदा बहुत अखरती। वे घंटों गालियाँ बककर अपनी निष्फलता से बौखला कर कहते—"ई साला खालिस मउगड़ा है। उस पर तो कुछ असर ही नहीं होता।"

भाई साहब पांडे का यह नया रूप देखकर थोड़ा दुखी होते, मन में

कहीं कुछ चुभता, फिर भी ये वैसे ही हँसते रहते। उनकी हँसी थोड़ी घायल ज़रूर लगती, पर ख़ास फ़रक़ नहीं होता।

रामदहिन शुरू से ही जग्गन मिसिर से थोड़ा घबड़ाते। क्योंकि मिसिर एक गाली का दो से जवाब देने को हमेशा तैयार रहते। पाण्डे यदि अपने शगल में प्रगति करके उनके पास पहुँचते और खुदक्के लगाने की कोशिश करते तो मिसिर भी गट्टा पकड़कर पाण्डे के गालों को मसल देने के लिए तत्पर रहते। गाँववाले हमेशा इस फ़िराक़ में रहते कि पाण्डे को उत्तेजित करके मिसिर से फँसा दिया जाये, क्योंकि पाँड़े न सिर्फ़ बैजनाथ को, जो उनके ख़ास जीजा थे, बल्कि गाँव के दूसरे नवचे लोगों को भी, वैसे ही गालियों से नवाजते रहते। गाँव के रेखियाउठान छोकरे गोल बाँधकर भी रामदहिन को आसमान तकाने में जब असफल हो जाते तो वे कोई-न-कोई नाटक रचते और मिसिर को पाण्डे से उलझा देते।

ये बातें पहले की हैं। उमर के बढ़ने के साथ-ही-साथ पाँड़े ने अपनी आदतों में परिवर्तन कर लिया। हाथापाई बन्द कर दी। पर गालियाँ बकने और फ़ालतू बातें करने की उनकी ताक़त में और इज़ाफ़ा हो गया।

पाण्डे की यह चुप्पी मिसिर को चारों ओर से बाँधने लगी। बातों का जाल इतना अधिक नहीं कसता था, क्योंकि उसकी बान पड़ गयी थी, पर यह रहस्यमय चुप्पी इतनी अपरिचित और आश्चर्यजनक थी कि कारणों की तलाश में मिसिर का माथा दर्द करने लगा।

कोई ख़ास बात थी भी नहीं। कल सुबह मिसिर अखाड़े से लौटे तो मिसराइन बहुत ख़ुश थीं। उनका साँवला चेहरा ललछौंहा हो रहा था और आँखें एक अबूझ चमक से चिलक रही थीं। मिसिर उनकी ओर एक क्षण देखते रहे। कुछ बहुत आकर्षक भाव था चेहरे पर जिसे भोगना अच्छा लगता है। मिसिर को यह भाव कभी-कभी ही अर्पित होता और जब होता तो मिसिर को लगता, कि आज मौसम अचानक 'मनसायन' होने-होने को मचल रहा है।

दूध का कटोरा हाथ में थामते मिसिर का चेहरा बहुत मासूम हो

गया। उन्होंने कटोरे की जगह हाथ थामकर कहा—"आज तो अपने हाथ से ही पिला दो।"

मिसराइन ने कटोरा मिसिर के हाथ में सम्हालते हुए कहा—"ठीक से पकड़ो नहीं गिर जायेगा।"

मिसिर कटोरे को पकड़कर भी नहीं पकड़े होने का बहाना करने लगे तो मिसराइन एक बार फिर हँसीं। इस बार अधरों की कच्ची कली कुछ ज्यादा खिल गयी और मिसिर इतने से ही ऐसा प्रसन्न हुए कि उन्होंने कटोरा मुँह से लगाया और एक साँस में सारा दूध हलक़ के नीचे उतार लिया। मिसराइन के गले में खिलखिलाहट की घण्टी-सी बजी और वे गगरी से पानी ढालते वक़्त रह-रहकर मिसिर की ओर कनखी देखती रहीं।

मिसिर दूध पीकर मुँह धोने के लिए पानी की प्रतीक्षा में बैठे रहे और मिसराइन थीं कि जैसे भरी गगरी को बार-बार झुकाने पर भी गिलास नहीं भर रहा था।

दोपहर को खाना खाकर मिसिर अँगने में बैठे तो मिसराइन उनके पास आकर खड़ी हो गयीं। वे एक क्षण मिसिर को देखती रहीं। उनके चेहरे को देखकर मिसिर ने भाँप लिया कि कोई ख़ास बात करनी है। मिसिराइन अब भी सुबह वाली हँसी के सुगन्धित प्रभाव में खोयी-खोयी थीं।

"बिरिछ आया है।"

उन्होंने धीरे से कहा और चारपाई पर बैठ गयीं। बिरिछ का आना मिसिर को भी मालूम था। इतनी-सी बात भी कहने के लिए दोपहरी में मिसराइन उनके साथ चारपाई पर बैठने की उदारता नहीं दिखा रहीं। मिसिर ने सोचा और चुप रहे।

"मैं चाहती हूँ कि कचहरी जाकर सब लिखा-पढ़ी हो जाये।"

मिसिर इन बातों को भी सुन चुके थे। पिछले साल डेढ़ साल से मिसराइन उनको समझाती रही हैं। सन्तान हो नहीं सकती। होनी नहीं

चाहिये। ऐसी हालत में बूढ़ा-बूढ़ी के लिए कुछ सहारा तो चाहिये। मिसिर को अभी से बूढ़ा समझ लिया जाना बहुत पसन्द नहीं आया था। पर पूरी बात सुनने की ग़रज़ से उन्होंने टोक-टाक नहीं की थी। मिसराइन चाहती थीं कि बिरिछ को गोद ले लिया जाये। मिसिर को यह बात भी नापसन्द नहीं थी। पर इसे इतनी जल्दी में तै करने की क्या ज़रूरत आ गयी। इसे वे न तब समझ पाये न अब।

"बोलते क्यों नहीं ?"

मिसराइन थोड़ी तिनककर बोलीं—"बिरिछ को गोद लेने में कोई हरज है क्या ?"

"मैं कहाँ कहता हूँ कि हरज है।" मिसिर गर्दन झुकाये बोले—"इत्ती जल्दी क्या पड़ी है। दुधमुहाँ बच्चा गोद लिया जाता है। बिरिछ तो बड़ा हो गया है। इसे ही गोद लेना है तो क्या अभी और क्या पीछे। हो जायेगी लिखा-पढ़ी।"

मिसराइन को यह सब अच्छा नहीं लगा। उन्होंने साहस करके फिर समझाया—"जो कुछ करना है, कर देना चाहिये। आदमी का कोई भरोसा नहीं। कब है और कब आँखें बन्द हो जायेंगी, कौन जानता है।"

"हम में से किसी एक ही की न बन्द होगी। मेरी हो जायेगी तो तुम लिख-पढ़ देना।"

"और मेरी होगी, तो तुम नहीं लिखोगे, यही न ?" मिसराइन का चेहरा अचानक लाल भभूका हो गया।—"मैं पहले ही जानती थी। तुम मेरे भतीजे के नाम यह सब लिखना नहीं चाहते। तुम सोचते हो कि तुम्हें घेरकर मैं जबर्दस्ती लिखवाना चाहती हूँ। मैं तुम्हारा पैर क्यों बाँधू। तुम जो करना चाहो करो। मन हो 'बिआह' भी कर लो। फिर लिखने-पढ़ने की नौबत ही नहीं आयेगी। पर इतना सुन लो कि मैं अपना हिस्सा बिरिछ को ही देकर जाऊँगी। यह मत समझना कि अपना हिस्सा भी उस 'मुँहझौंसी' के लिए छोड़े जाऊँगी, हाँ।"

मिसिर तिलमिलाकर रह गये। वे चाहते थे कि कहें कि तुमने मुझे अब इस लायक़ कहाँ रहने दिया है कि कोई 'मुँहझौंसी' इस घर में आये, पर चुप ही रह गये। मिसराइन का बड़बड़ाना शुरू हो गया था। देखते ही देखते आँगन बुरी तरह जलने लगा और मिसिर चारपाई से उठकर बखरी के बाहर निकल गये।

शाम तक वे इधर-उधर भटकते रहे। लोगों के दरवाज़े बैठे। हँसी-मज़ाक़, गप्प-ठहाके में भी शामिल हुए। रोज की ही तरह अट्टहास और ठहाकों में डूबे-उतराये भी, पर रह-रहकर दोपहर का प्रसंग मन में उभरता रहा और बीच-बीच में मिसिर हँसते-हँसते चुप हो जाते। उन्हें लगता कि उनकी हँसी और ठहाके किसी भुतैली कोठी में समाते जा रहे हैं और वे तटस्थ होकर अपने अट्टहास की प्रतिध्वनि भलीभाँति सुन रहे हैं।

उस रात खाने का मन सचमुच नहीं था। पर झगड़ा कहीं और तूल न ले ले इसलिए मिसिर मन मारे बखरी में हेल गये। आँगन की उसी चारपाई पर बैठकर वे रसोई में मिसराइन का बड़बड़ाना सुनते रहे।

"जिसे यहाँ आकर खाना हो, खा जाये, कोई लौंडी नहीं है कि खड़ाऊँ पानी रखकर 'बीजे' उठायेगा।"

मिसिर चुप चारपाई से उठे और गगरी से पानी निकालकर हाथ-पैर धोकर 'ठहर' पर जाकर बैठ गये।

मिसराइन ने चूल्हे के पास से थाली सरका दी। झटके से दाल-सब्ज़ी एक में मिल-जुल गये।

एक क्षण के लिए मिसिर का चेहरा खिंच गया। दूसरे ही क्षण आँखें भरभरा आयीं और वे चुपचाप खाना खाने लगे।

न तो मिसराइन ने पूछा और न मिसिर ने कुछ माँगा। बिना दाल-सब्ज़ी रोपे इनका खाना पूरा नहीं होता था और मिसराइन को भी 'कुछ और लोगे' पूछे बिना चैन नहीं मिलता था। आज दोनों ओर से यह बर्ताव बन्द रहा। मिसिर खाना खाकर उठ गये। उन्होंने मुँह धोया और दरवाज़े पर निकल गये।

मिसिर ने चारपाई डाली। दरी बिछाई और लेट गये। बड़ी रात तक नींद नहीं आयी। बरामदे के खम्भे अँधेरे में हाथ उठाये आदमी की तरह मूक खड़े थे। मिसिर ने अपनी मेहनत और कमाई से यह बइठका बनवाया। बैजू भइया अजब सन्तोषी जीव थे। उन्हें गिरे हुए कच्चे बइठके या घास-पात से भरे इस सहन से, जो उन दिनों गोबर पाथने की जगह से भिन्न नहीं लगता था, कभी असंतोष नहीं हुआ।

जग्गन मिसिर को माँ-बाप की याद नहीं आती। बैजू कहा करते थे कि तेरे जनम के दो साल के भीतर ही वे दोनों हमें छोड़कर चले गये। उस समय बैजू भइया भी कुल सात-आठ साल के ही थे। वे जब जग्गन मिसिर से उन दिनों की बातें बताने लगते तो अचानक आँखें भरभर आतीं। जब बाबू की लाश आँगन से निकाल के लोग गली में ले आये तो अपने दो साल के नन्हें भाई को गोद में उठाये बैजू बखरी के निकसार पर अचेत की तरह खड़े देखते रह गये थे। माँ पहले ही मर चुकी थीं।

झब्बू बो भौजी मज़ाक़ में हँसते हुए कहतीं—"अरे बबुआ, आज न तुम गबरू जवान बने गली में ठठोली करते चलते हो, उस दिन की याद करो जब बुढ़ऊ तुम दोनों भाइयों को उठाकर ले आये थे। बैजू देवर तो कुछ देखने लायक़ भी थे, बाक़ी तुम तो कौवे के गीधे बच्चे की तरह मरियल लगते थे। आँख नाक में दुनिया भर का कीचड़ लपेटे, दिन भर टुहुक-टुहुक कर रोते। बुढ़ऊ मेरे दरवाज़े पर खड़ा होकर बोले—'बहू, इन दोनों को तू सम्हाल ले। बड़ा पुण्य होगा। बद्री मिसिर के लड़कों का यह हाल मुझसे देखा नहीं जाता।' मैं घूँघट काढ़े घर में से निकली और चौकठ पर खड़े बैजू देवर की गोद में से तुम्हें लेने लगी तो तुम यों घिघिया कर रोये जैसे सामने गोगो देख लिया हो। एक बाल्टी पानी से मल-मलकर मुँह का कीचड़ छुड़ाया था। धो-पोंछकर अपने घर में बिठलाया तो घंटों हुटकते रहे जैसे बड़ी मार पड़ी हो। वही न हो बबुआ कि मेरे बिस्तरे पर सोये-सोये रोज मूत देते थे। अब न चौधुरी बने घूमते

हो। सारी दुनिया का 'नियाव' करते हो। कभी मेरा भी तो 'नियाव' करो।"

झब्बू बो भौजी की ये बातें सुनकर मिसिर का चेहरा अचानक उत्तर जाता। वे ग्लानि की अकृतविद्यता में डूबे-डूबे लज्जालु हँसी की चादर तान लेते। सच ही कितना निराश्रित और दूसरों की कृपा पर निर्भर था उनका जीवन। झब्बू भैया के घर में जो मिला, वह चूँकि जीवनदायक था, इसलिए कभी उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिए। मन में भी ऐसी बात का उठना भी पाप है, पर मिसिर लाख चाहकर भी उन दिनों की कटुतिक्त यादों को भुला नहीं पाते।

मिसिर लोगों के पास कुल दस बीघे खेत थे। ठाकुर जैपाल सिंह के पिता ने कृष्णार्पण में दिये थे। बद्री मिसिर बड़े सीधे वैष्णव थे। कथा-पुराण बाँचना, मूहूर्त देखना, शादी-ब्याह कराना, यही उनके काम थे। यही जीविका। ठाकुर की माँ उनका आदर करतीं। मीरपुर के बबुआनों का परिवार शाक्त था, पर दादी अम्माँ वैष्णव थीं। गुरुमुख हुई थीं। गले में तुलसी की कंठी डाले रहतीं। उन्हीं की कृपा थी कि दस बीघे खेत मिले।

बैजू जग्गन जब उपधिया लोगों के घर में रहने लगे, तो ये खेत भी उपधिया की जोत में आ गये। बड़ी उपजाऊ माटी थी। पचासों मन धान और गेहूँ इन खेतों में उपजता। पर जग्गन मिसिर को याद है कि कभी उन्हें अलग थाली में उनके निमित्त खाना नहीं परोसा गया। उपधिया खाकर उठते, जूठी थाली में एक मुट्ठी भात, एक कलछुल दाल डाल दी जाती। जग्गन को हाँक दी जाती। आँगन में, दालान में, खंडहर में, या गली में खेलते जग्गन दौड़े-दौड़े आते और थाली में मुँह डालकर पेट भर लेते। बैजू भाई को अलबत्ता अलग थाली में खाना मिलता। पर उन्हें भी सिर्फ़ दाल-भात ही। न सब्जी, न दूध, न घी, कुछ नहीं। वैसे बैजू भाई बाबू की तरह ही पूरे वैष्णव थे। ख़ूब सहनशील। कुएँ से नहाकर गमछा लपेटे आते। थाली आगे सरका दी जाती। वे गर्दन झुका कर खा लेते। बिल्कुल चुप। बिल्कुल मौन। क़स्बे में चक्कावान के साधु

विश्वेश्वरानन्द ने एक संस्कृत पाठशाला खोल रखी थी। खा-पीकर वे क़स्बे चल देते। रात गये घर लौटते। जो कुछ मिलता खा लेते और दरवाज़े पर पटिया पर दरी बिछाकर सो जाते।

सबेरे मुँह अँधेरे उठकर, मुँह-हाथ धोकर वे स्तोत्र बाँचते। बुढ़ऊ जिन्दा थे तो वे अपने बद्री भाई के इस होनहार बछेड़े को खूब चुचकारते-पुचकारते। उन्हें स्तोत्र बहुत अच्छे लगते। बुढ़ऊ नहीं रहे तो झब्बू भइया ने कुछ दिन क्रम चलते रहने दिया। बाद में उनकी नींद में ख़लल पड़ने लगा और उन्होंने बैजू को कह दिया कि सुबह उठकर तालाब की तरफ़ निकल जाना चाहिये। वहीं नहा-धोकर भीटे पर बैठ कर पूजा-पाठ करना चाहिये। बैजू बहुत खुश हुए और उन्होंने गर्दन झुकाकर अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। रात में पटिया पर सोने के अलावा मर्दाना बइठके से अब उनका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया।

दिन बीतते गये। बैजनाथ मिसिर ने क़स्बे की पाठशाला से पढ़ाई पूरी कर ली। और वे बड़ी कच्ची उमर में जजमानों की पुण्यखाता सँभालने में लग गये। उसी समय रामदहिन पाँड़े के पिता जी को उन पर नज़र पड़ गयी। वे एक ऐसे ही लड़के की तलाश में थे, जिसे पाने में कम से कम खर्च करना पड़े। पाँड़े जी को बैजनाथ और भी कई कारणों से खूब जँचे। उन्होंने ऊपर से झब्बूलाल उपधिया की खूब स्तुति की। उनके पैरों पर अपनी पगड़ी रख दी, पर मन ही मन यह सोच लिया कि शादी हो जाये तो दोनों भाइयों को उपधिया-परिवार से हटाकर पुरानी बखरी में भेजना होगा। सिर्फ़ तीन प्रानी, दस बीघे खेत। ऊपर से बैजू की उपरोहिती। बस, लड़की रानी बनकर रहेगी। न सास, न ननद। किसी तरह की कोई झंझट नहीं।

मिसिर को याद है कि भौजी दूल्हन बनकर उपधिया के घर में उतरी थीं। पर एक पखवारे के भीतर-भीतर अदृश्य इस तरह गभिन होकर सामने आया कि पुरानी बखरी लीप-पोतकर ठीक की गयी और अपनी

पत्नी और छोटे भाई को लेकर अपने पुश्तैनी मकान में आकर आबाद हो गये।

"हमने दस साल तक दोनों भाइयों की परवरिश की।" काफ़ी बेबाक ढंग से झब्बूलाल बोले—"मगर कभी दोनों में से किसी ने एक ज़बान नहीं कहा। और इस दो दिन की लड़की का न देखो कि डोले से उतरकर ड्योढ़ी में पैर रखा नहीं कि चनचना उठी। ऐसा खायक आदमी नहीं खाते। अरे वाह, वही तो हम लोग भी खाते हैं। हम लोग आदमी नहीं हैं क्या भाई?"

"तो इसमें आपको दुखी नहीं होना चाहिए उपधिया जी।" बैजू के ससुर ने बड़ी उदारता से समझाते हुए कहा—"आपका धरम था कि अनाथ लोगों को पाल-पोसकर खड़ा कर दिया। अब वे अपने पैरों चलने लायक़ हुए तो हँसी-खुशी विदा कीजिये। आखिर उनका भी शादी-ब्याह हुआ। लड़के-बच्चे होंगे। कब तक दूसरे के परिवार को आप सँभालकर रखियेगा। अपनों में जब 'हूँ-टूँ' होती है तो बेग़ानों में कैसे न होगी।"

"ठीक है, ठीक है; हम सब समझते हैं। कौन अपना-बेगाना समझ रहा है, यह भी हम जानते हैं। मुझे कोई मलाल नहीं। बैजू जग्गन अपना घर सँभाले, उससे अच्छी बात क्या हो सकती है। बाक़ी, इतना हम ज़रूर कहेंगे पाँड़े जी कि इस शादी-ब्याह में हमारा भी कुछ खर्च-बर्च लगा है, वह हमें मिलना चाहिये।"

"हाँ-हाँ, यह तो होना ही चाहिये।" बैजू के ससुर ने आस-पास बैठे गाँववालों को देखकर कहा—"इतने भाई-बन्धु, परिजन-पुरजन हैं जो कह देंगे, वह बैजू को देना पड़ेगा। वे गाँव-परिवार से बाहर थोड़े हैं। जो फ़ैसला हो जाये, उन्नीस-बीस, उसे मानना ही पड़ेगा।"

हिसाब-किताब में काफ़ी चख-चख हुई। हिसाब शादी-ब्याह का होने चला था। होने लगा पूरे दस वर्षों का। गाँववालों ने काफ़ी बहस-मुबाहिसा करके तख़मीना किया कि बैजू के खेतों से कम-से-कम पचास मन अनाज प्रतिवर्ष आता था। पाँच सौ मन अनाज में खर्ची-बर्ची काटने की

बात चली तो गाँववाले मुसकराने लगे। सालभर में दोनों लड़कों पर कितना खर्च पड़ेगा। दो मुट्ठी अन्न इस जून, दो मुट्ठी अन्न उस जून। ज़ाहिर था कि उपधिया जी के हिसाब-किताब और गाँव-पंचों के हिसाब-किताब में बहुत अन्तर था।

"हूँ, तो यही है नियाव, गाँव-घर के पंचों का ?" झब्बूलाल का चेहरा तमतमा आया था। वे खूब परेशान-से होकर झल्लाये—"हवन करते हाथ जलता है। आप लोगों के हिसाब से तो हमने इन्हें लूट लिया। सहानुभूति दिखाकर इनका गला काटा। यही है ज़माना आजकल। जब उन्हें कोई पूछनेवाला न था, भूख-प्यास से छटपटा रहे थे, हम इन्हें उठाकर घर लाये। अपने बच्चों की तरह पाला-पोसा। मैंने तो उसी समय बुड्ढे से कहा था कि आफ़त मोल मत लो। नाहक बद्दू बनोगे। पर वे नहीं माने। कहने लगे, हम बद्री भाई के बच्चों को अनाथ की तरह भीख नहीं माँगने देंगे। लो करो उपकार, मिला न फल ?"

"अरे उपधिया जी, नाहक़ मन को दुखी काहे करते हैं।" बैजू के ससुर ने फिर अपनी सहृदयता से सबको मन्त्रमुग्ध करते हुए कहा—"बैजू जग्गन ऐसे नमकहराम नहीं हैं कि सहलानेवाले का हाथ काट लें। दुनिया जो कहे, ये तो जब तक जीयेंगे आप लोगों का यश ही गायेंगे। आप इनके जन्मदाता नहीं हैं तो क्या हुआ, जीवनदाता तो हैं। आपको भी बुरा नहीं मानना चाहिये। नेकी कर और दरिया में डाल। दो रुपया और दो मन अनाज चाहे इस घर में रहा तो, चाहे उस घर में रहा तो, इसमें क्या फ़रक़ पड़ता है।"

इतने दावँ-पेंच का नतीजा यह निकला कि बैजू का खेत वापिस मिल गया। साल की खर्ची के लिए दस मन अनाज भी। ससुर जो बखरी में आये। उनके चेहरे पर महताबी छूट रही थी। आँखें चमक रही थीं, हँसी की फूलझरी से दालान खूब 'मनसायन' हो रही थी।

कुछ वर्षों के बाद ससुर जी की आँखों की यह चमक ज़रूर कुछ धूमिल हो गयी। बैजू भाई उनके अनुमान पर पूरे नहीं उतरे। आवश्यक

देखभाल और परिश्रम के अभाव में खेतों से खाने भर से अधिक अनाज नहीं मिल सका। पुरोहिती भी आमदनी का कोई बहुत अच्छा ज़रिया साबित नहीं हुई। बखरी की दीवालें धीरे-धीरे बूढ़ी होने लगीं। उनके लेवन के चप्पड़ उधड़ने लगे। बइठका खंडहर जैसा हो गया। एक ओर का पाख ढह गया, जिसे फिर से खड़ा करने की नौबत ही नहीं आयी। इसके बावजूद कोई अवरोध न था। गाड़ी खिंचती चली जा रही थी।

शादी के पाँच-छः साल बाद ही आसमान से बिजली टूटी और देखते ही देखते सब कुछ रात की शकल में बदल गया। बैजू भाई नहीं रहे। वे कुछ दिन बीमार रहते, तो भी मन को सन्तोष होता कि दवा-दारू में कुछ तो किया। यहाँ तो वह सन्तोष भी छिन गया। सुबह वे बीमार पड़े, शाम को सभी को छोड़ चल दिये।

उस दिन भी जग्गन मिसिर रोज़ की तरह क़स्बे के हाईस्कूल से लौट रहे थे खूब खुश, खूब प्रसन्न। बैजू भाई यह जानते हुए भी कि उनसे अकेले खेती-गृहस्थी का काम नहीं सँभलेगा, जग्गन को हल में जोतने को तैयार नहीं हुए। मिसिर से भौजी ने कहा—"सुनो बबुआ, घर का हाल-चाल देख ही रहे हो। उनसे खेती-बारी सँभलती नहीं। पर वे तुम्हारी पढ़ाई नहीं छुड़ाना चाहते। कहते हैं कि दस बीघे खेत से उसका भाग्य काहे बाधूँ। पढ़-लिख लेगा तो दो पैसे का आदमी हो सकेगा।"

भौजी ने जग्गन के आगे थाली सरका दी। गरम-गरम रोटियाँ, आलू का भुर्ता और सिरके में डुबोया आम का अचार एक-एक करके वे परोसती रहीं और कहती रहीं—"खूब मन लगाके पढ़ो। धींगा-मुश्ती, खेल-खिलवाड़ छोड़ो।"

जग्गन मिसिर कुछ न बोले। भाभी ने भाई की बात मान ली है और वे भी मेरी पढ़ाई में दिलचस्पी लेने लगी हैं, इस बोध ने जग्गन मिसिर को काफ़ी गम्भीर बना दिया था। वे अपने को पढ़ंकू साबित करने के लिए आज चौके पर ही शरारतों से कुट्टी करने को तैयार हो गये। उनके कृत्रिम गम्भीर चेहरे को भौजी कुतूहल से देखती रहीं। वे न रोटी माँग रहे थे,

न भुर्ता, न अचार। रोज़ के खिलाफ़ उनका यह आचरण देखकर भौजी फिर मुसकरायीं—"मैंने यह सब इसलिए नहीं कहा कि तुम सीधा लड़का बनने के लिए आधा पेट खाना खाने लगो।"

जग्गन मिसिर नाटकीय अन्दाज़ में और भी अधिक गम्भीर होकर बोले—"ज़्यादा खायक खा लेने पर क्लास में नींद आने लगती है।"

उस दिन चौके पर जग्गन मिसिर ने अपने को जितना भी गम्भीर और ज़िम्मेदारी में लीन दिखाया हो, बखरी के बाहर के उनके व्यवहारों में कोई फ़रक़ नहीं पड़ा। क़स्बे जाते वक़्त चरवाहों से छेड़छाड़ करना, किसी मैदान में गुल्ली-डंडा, होला-पाती, कबड्डी या सटर्री खेलते लड़कों को सही ढंग-ढर्रा बताना या एकाध दावँ खुद बतौर उदाहरण लगा देना, छवरे के नीचे ताल के हिलते जल में मेढकों पर ढेले फेंकना और काफ़ी देर तक घायल मेंढक के मरकर उतराने की प्रतीक्षा करना, धान के खेतों की मेंड़ पर चलते-चलते अचानक किसी पतली झनझनाती आवाज़ को सुनकर रुक जाना और वहीं खड़े होकर जाँघ भर ऊँचे पौधों में, लाठी बराबर लम्बे धामिन साँपों के निकलने का अनुमान लगाना, बरुइन के पोखरे पर पहुँचकर बतखों पर ढेले फेंककर उनकी 'कॅक्र-कॅक्र' आवाज़ों को सुनकर आनन्द-विभोर होकर तालियाँ बजाना, आदि-आदि उनके मन-भावन काम थे, जिनको ठीक से पूरा न कर लेने पर स्कूल में भी उनका मन उचाट-उचाट सा होता रहता और उन्हें यह समझ में ही नहीं आता कि पूरे घंटे भर तक कोई मास्टर किस तरह ऐसी फालतू बातें बकता रह सकता है।

सो, उस दिन भी जग्गन मिसिर क़स्बे के हाईस्कूल से लौट रहे थे। खूब खुश, खूब प्रसन्न। अक्तूबर की छुट्टी होने ही वाली थी। दो-चार दिन पढ़ाई और फिर पन्द्रह रोज का मौज। जग्गन मिसिर अचानक स्फूर्ति से भर उठे। उन्होंने धोती-कुर्ता उतारा और लंगोट पहने ताल में हेल गये। कई दिनों से स्कूल आते-आते उन्हें कुईं के सफ़ेद छतनारे फूल खूब लुभाते रहे थे। हरे-हरे गोल तनिक लम्बोतरे पत्तों के पीढ़ों पर बैठे पीले-पीले केशर वाले ये फूल मानो मटक-मटककर उन्हें चिढ़ाते रहे हों। सो उन्होंने आज उनसे पूरी तरह निबटने का फ़ैसला कर लिया था। वे फूलों को मुट्ठी में पकड़-पकड़कर खींचते गये और जड़ के पास से उनकी नालें टूट-टूटकर पानी से उकसती गयीं। जग्गन मिसिर ने धोती-कुर्ता पहना। भींगे लंगोट को खोलकर निचोड़ा और झोला कन्धे से लटकाकर चलने को हुए तो ज़मीन पर बिखरे लम्बी-लम्बी नालों वाले पचासों कुईं-फूलों को देखकर पशोपेश में पड़ गये। उन्होंने उन्हें बारी-बारी से बीन-बीनकर मुट्ठी में कसना शुरू किया और खुशी-खुशी ताल की सारी रौनक़ हाथों में समेटे घर की ओर चल पड़े।

बइठके में काफ़ी भीड़ थी। जग्गन मिसिर को गाँव की गली में भी कोई नहीं मिला कि उन्हें आनेवाले सदमे से आगाह कर सके। दरवाज़े पर भीड़ देखकर वे सकपकाये। उन्हें किसी ने देखा और भरे गले से चिल्लाया 'जग्गन आ गये।' मिसिर चौकठ पर पहुँचे कि आँगन से उठती दर्दनाक रुलाई और दालान में बैठे लोगों की सहानुभूति भरी कातर आँखों की भाषा ने सारा रहस्य एकबारगी उलटकर रख दिया। जग्गन मिसिर ज़मीन पर लिटाये शव को देखकर धाड़ मारकर गिर पड़े। उनके हाथ के कुईं-फूल शव के पास ही ज़मीन पर बिखर गये।

वह पूरा पखवारा जग्गन मिसिर को कभी भुलाये नहीं भूलता। वे देखते ही देखते हँसमुख, शोख खिलंदड़े लड़के से एक सुस्त, कमज़ोर और बेचारे इन्सान में बदल गये थे। सर के बाल मुड़ा दिये गये थे। कमर में घुटने तक की कोरी लुंगी, ऊपर लुंगी के कपड़े से ही फाड़े गये हिस्से का गमछा, हाथ में लोटा और लोहे की पतली छड़ लिये वे बइठके में एक तरफ़ ज़मीन पर कम्बल बिछाकर पड़े रहते। उन्होंने मृत भाई की प्रेतात्मा की शान्ति और सन्तोष देने के लिए अपने को ज़िन्दगी से अलग कर लिया था। नाई, कहार, बाभन इस अशौच को ढोने का तरीक़ा और उससे मुक्ति पाने का उपाय बताते गये और जग्गन मिसिर बिना कुछ सोचे-समझे उसे ज्यों का त्यों करते गये।

इस मशीनी दिनचर्या के बीच उन्हें भाभी की बराबर याद आती रही। पता नहीं किस तरह बिचारी इस विपत्ति को सह सकेगी। जग्गन मिसिर को श्राद्धकर्म के सामान जुटाने, प्रबन्ध करने और कहीं कोई गड़बड़ी न हो—की चिन्ता ढोने से फ़ुर्सत ही नहीं मिली कि वे भाभी से बातचीत करें और उन्हें समझाने-बुझाने का प्रयत्न करें। खैर, किसी तरह ठेल-ठाल कर कारपरोजन पार-घाट लगा और त्रयोदशाह पूरा होने के बाद दो-तीन दिन के अन्दर ही मेहमानों-रिश्तेदारों से फ़ुर्सत पाकर वे निश्चिन्त हुए।

निश्चिन्तता के बाद मन फिर एक बार उसी छिलके में घुसने की कोशिश करने लगा, जिसमें बेफ़िक्री, खुशदिली, छोटी-छोटी मौसमी चीज़ों से लगाव और किशोर दुनिया की रंगीनी के सपने एक में एक मिले-जुले कुलबुला रहे थे। मगर लाख परिक्रमा और चक्कर के बाद भी जग्गन मिसिर उस पुरानी स्थिति में लौट नहीं पाये, क्योंकि हर बार प्रवेश के प्रयत्न के बाद लगता कि वह छिलका किसी मुर्दा पशु की खाल की तरह सिकुड़ गया है कि उसमें जाने के सभी रास्ते बन्द हो गये हैं और फिर यदि चले भी गये उसके भीतर तो वहाँ शायद ही कुछ ऐसा मिले जिसे पाने की लालसा मन को मथती रहती है।

दशमी की छुट्टियाँ श्राद्ध में बीत गई थीं।

"स्कूल नहीं खुला ?" भाभी ने एक दिन अपने आँसुओं से डूबे चेहरे को सतह से ऊपर करके पूछा।

"स्कूल जाना बन्द।" जग्गन मिसिर दृढ़ निश्चय के ढंग से बोले—"यह सब कौन देखेगा ? दरवाज़े पर दो-तीन मवेशी हैं। बुआई शुरू भी नहीं हुई। कितने लोगों के खेत 'हरिया' गये। कल गया था रामसरना को सरेखने तो देखा जूड़ी में गिरा हुआ है। कहने लगा कि कल ही अभी 'जूस' लिया है, दो-एक दिन के बाद ही हल नधेगा।"

मिसराइन कुछ न बोलीं। बोलने को था भी क्या। जग्गन अपना निर्णय सुनाकर काम-काजी आदमी की तरह पटनी से हल, जुआठ, नाधा-पैना उतारने-पतारने लगे।

उसके बाद महीने भर तक जैसे कुछ न हुआ। हल चला। खेत बोये गये। पाँच बीघे खेत में रोपा हुआ धान कटा। घर में ढेंकी चलने लगी। सरना की औरत और बहिन कबूतरी दोनों धान कूटने आतीं। भाभी कौंड़ी के पास बैठी अधकुटे धान को चलाती रहतीं। सूप से पछोर-पछोर कर चावल-भूसी अलगाती रहतीं। यह सब वे इस तरह करती रहीं, जैसे बाहर-भीतर कहीं कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है।

जग्गन मिसिर झूठ नहीं बोलेंगे। भाभी का व्यवहार उनके प्रति हमेशा ही आवश्यकता से अधिक स्नेह और ममता से भरा-भरा रहा। वे तीन चार महीने के भीतर ही जैसे अपने निजी दुःख और ग़म से मुक्त होकर घर के काम काम-काज में लग गयीं। जग्गन ने घर-गृहस्थी को सँभालने के लिए जैसी जी-तोड़ मेहनत की, भाभी वैसी ही सावधानी से उनके खाने-पीने, नाश्ता-पानी आदि का इन्तज़ाम भी करती रहीं। जग्गन को याद है कि उनके खाते समय मिसराइन हमेशा रसोईघर के चौकठ पर बिना नागा बैठी रहतीं और वे बातें चाहे जो करें, उनकी दृष्टि जग्गन की थाली पर ही केन्द्रित रहती। कोई भी चीज़ कम होती, भाभी बिना पूछे थाली में डाल देना अपना धर्म मानतीं और कभी-कभी पेट भरा होने पर भी कुछ और देने का उनका आग्रह इतना सताने लगता कि जग्गन खीझ उठते।

दो साल के भीतर बखरी और मर्दाने बइठके का कायाकल्प हो गया। खंडहर की तरह लगनेवाला बइठका सज-सँवरकर सुघड़ हो गया। ठठरियाँ एकाएक ढँक गयीं और दीवारों के चेहरों पर नहूसत और निराशा की जगह हँसी और मुस्कराहटें खेलने लगीं। जग्गन ने मर्दाने बइठके के सामने हाते में एक तरफ़ केले के पेड़ लगाये और पुराने कुएँ को, जिसका मुँह घास-फूस से ढँककर खालिस गड्ढे की तरह लगता था, साफ़ कराया।

जगत पक्की बनायी और उसी से सटकर छाती बराबर ऊँचे मिट्टी के चबूतरे पर अपना अखाड़ा बनाया।

जग्गन के परिश्रम, लगन और स्वास्थ्य से कोई भी उनकी ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रहा। शादी-ब्याह के पैग़ाम आने लगे। बाहर के लोगों से न तो मिसराइन बात कर सकती थीं, क्योंकि वे औरत थीं और न तो जग्गन ही, क्योंकि बात उन्हीं की शादी की थी। देखनहरू लोग उपधिया जी के पास गये, तो उन्होंने वहाँ से टरका दिया। उखड़कर बोले, हमसे उन लोगों का क्या मतलब? जो कुछ बातचीत चलानी हो, मालकिन से कीजिए। जग्गन की भौजाई के शासन में कौन दखल दे। दूध का जला मठा भी फूंक-फूंक कर पीता है। मिसराइन को उपधिया जी के इस कथन की सूचना मिली तो तिनककर बोलीं—"कैसे मूरख देखनहरू हैं जो दूसरों के दरवाज़े नाक रगड़ते हैं। हमारे बइठका नहीं है क्या कि घर में दो-चार आदमियों के सुआगत-सत्कार के लिए रसद नहीं है?" देखनहरू लोगों को समाचार मिला तो वे चेहरों पर लजीली हँसी का पर्दा डाले जग्गन के दरवाज़े पर आ रहे। जग्गन ने किसी से कोई बातचीत नहीं की। देखनहरू लोग खेत-बारी, पर-पैदावार के बारे में जिज्ञासाएँ करते रहे और जग्गन हूँ-हाँ करके टालते रहे। जल-जलपान, नाश्ता-पानी, भोजन-छाजन में कोई क़सर नहीं हुई।

जग्गन सबेरा होते अपने काम से सिवान की राह पकड़ते और शादी पक्की करने के उतावले देखनहरूओं को पूछताछ के उत्तर में मिसराइन कहार या नाई से कहलवा देतीं—"जाकर कह दो भइया कि यह शादी-ब्याह की बात है। एक पैसे की हाँडी भी आदमी ठोंक-बजाकर लेता है। चट से कैसे जवाब दे दें। हमें भी तो सोचना-विचारना पड़ेगा। वे लोग तो यहाँ आकर सब देख-दाख गये, हमें भी तो कुछ जानने-समझने का मौक़ा मिलना चाहिये। है कि नहीं।" कहार मिसराइन का सन्देश ज्यों का त्यों सुना जाता।

मिसराइन का उत्तर सुनकर देखनहरू एक-दूसरे का मुंह ताकते रह

जाते। एकान्त पाकर वे आपस में फुसफुसाते—"चलो भाई। ई मिसराइन तो मर्दों के भी कान काटती है। मुसम्मात है तो क्या हुआ, यहाँ दाल गलाना मुश्किल है। इतनी आसानी से तो कोई चलता-पुरजा मरद भी नहीं कह सकता कि बिना लड़की देखे शादी नहीं करेंगे।"

देखनहरू चले जाते। मिसराइन आँगन में चारपाई डालकर लेट जातीं। भोजन बनाने की बात को थोड़ी देर के लिए टालकर वे जाने कहाँ खो जातीं। उन्हें लगता कि वे अचानक बूढ़ी हो गयी हैं। अभी उनकी उमर ही क्या हुई। उनकी और जग्गन मिसिर की उमर में शायद ही एकाध साल का अन्तर हो तो हो। मरद की काठी ऐसे भी कड़ी होती है। देखने में तो जग्गन उनसे एकाध साल बड़े ही लगते हैं।

क़िस्मत भी क्या-क्या खेल करती है। एक ही उमर के दो आदमियों में से एक अपना दावँ खेलकर सब कुछ हारकर अँधेरे में बैठ गया और दूसरा अपना दावँ खेलने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है। आज नहीं तो कल वह भी दाँव पर लग ही जायेगा। जग्गन की दुलहिन आ जायेगी।

तभी एक सुन्दर सुघड़ युवती की छाया ठीक उनकी चारपाई के पास खड़ी हो जाती। लाल चूनर में लिपटी, घूंघट काढ़े, हाथों और पैरों में मेंहदी रचाए, वह युवती जैसे उन्हें देखकर कुछ लज्जा, कुछ आदर के भाव के कारण सिकुड़ती-सिमटती चारपाई के पास ज़मीन पर बैठ गयी है। मिसराइन एक क्षण अपनी आँखों में उत्कट प्यास लिये उसे देखती रहती हैं। उनकी इच्छा होती है कि वे धीरे-धीरे उस औरत के पास पहुँच जायें और उसकी पीठ की ओर खड़ी होकर एक झटके से उसका घूंघट खींच दें। भर आँखों एक बार उसका मुंह तो देख लें। जग्गन के तन-मन पर पूरी तरह छा जानेवाली औरत को अच्छी तरह देखने का उनका हक़ तो है ही। मिसराइन को जग्गन की याद आती है तो मन के भीतर सहसा खुशी की हिलोरें उठने लगती हैं। कैसा स्वस्थ, सुघड़, भरा-भरा शरीर है। उन्हें एक क्षण के लिए बेहद खुशी होती है कि इस शरीर-संभार

में उनका पूरा योग रहा है। उन्होंने कितनी सावधानी से जग्गन के खाने-पीने का इन्तज़ाम किया है। तभी मिसराइन को लगता है कि खुशी की हिलोरें लगातार उनके भीतर कहीं टकरा रही हैं और उनके धक्के से कलेजा अचेत-जैसा होता जा रहा है। वे बिना एक क्षण प्रतीक्षा किये अपनी चारपाई से उतरती हैं और उस गठरी की तरह सिकुड़ी-सिमटी औरत के पीछे खड़ी हो जाती हैं।

"हे सुनो तो" वे उसकी पीठ-से सटकर गर्दन में अपनी बाँहों को डाल कर उसका मुँह अपनी हथेलियों में भर लेती हैं और बड़े वात्सल्य के साथ घूँघट के भीतर छिपे उस चेहरे को अपनी ओर उठाने लगती हैं।

तभी वह चेहरा उनके दृष्टि-पथ के सामने आकर झलझला उठता है। रंग बदलता, थरथराता-काँपता है। साँवला, लाल, पीला, और मिसराइन एक अज्ञात धक्के की चोट से आहत होकर जमीन पर बैठ जाती हैं।

हे भगवान्, वह चेहरा तो उन्हीं का है!

जग्गन की दुलहिन—मिसराइन—मृत बैजू मिसिर का पीला चेहरा, जग्गन के लाल स्वास्थ्य से भरे-भरे गाल—मिसराइन हठात् ज़ोर-ज़ोर से रोने लगती हैं। उन्हें याद भी नहीं रहता कि वे निराधार कल्पना के भँवरजाल में फँस गयी थीं, इसमें कुछ भी वास्तविकता नहीं है। फिर रोने की क्या बात! पर वे रोती रहती हैं, देर तक सिसकती रहती हैं।

दोपहर को जग्गन सिवान से लौटकर घर आये। उनके आने के घंटे भर पहले ही मिसराइन ने अपने को दुःस्वप्न के फन्दों से मुक्त कर लिया था। नहा-धोकर वे रसोईघर में चूल्हा जला चुकी थीं। आटा गूंधकर थाली में रखा था।

जग्गन भाभी-भाभी करते रसोई में घुस आये।

"क्या आज अभी तक खाना नहीं बना है?" जग्गन ने पूछा, "तुम्हारी तबीयत तो ठीक है न?"

मिसराइन को डर था कि जग्गन उन पर नाराज होंगे। सुनती रही

हैं कि काम करके मरद जब घर आता है तो चिड़चिड़ाया रहता है। उसे कुछ भी मन के खिलाफ़ दिखा कि तिनक जाता है।

"पर मेरे जग्गन ऐसे नहीं हैं।" मिसराइन ने सोचा और अचानक उनकी आँखों में निर्धूम आग का धुआँ लग गया और वे छलछला आयीं।

"तुम पीढ़ा लेकर बैठ जाओ।" मिसराइन धीरे-धीरे बोलीं—"गरम-गरम रोटी खाने में अच्छी लगेगी।"

"तुम्हारी तबीयत तो ठीक है न?" पीढ़ा पर बैठते हुए जग्गन ने फिर पूछा।

"हाँ, ठीक है। तनिक कपार में दरद था, बस।"

●

उसी साल क्वार में मिसराइन के पिता जी का देहान्त हो गया। खबर चिट्ठी से मिली। मिसराइन काफ़ी रोयीं-धोयीं। मायके जाना जरूरी था। ऐसे मौक़े पर वहाँ न पहुँचे, तो भावजें बोली कसेंगी। मिसराइन का खानदान काफ़ी बड़ा था। इनके पिता दो भाई थे। मिसराइन के सगे भाई सिर्फ़ रामदहिन ही थे, पर चाचा-जात भाई तीन थे। एक चचेरी बहन। चार-चार भावजें। सात-आठ भतीजे। न गये तो सभी चिढ़ेंगे। पर यदि मैं वहाँ जा रहूँ तो मेरे जग्गन को खिलाये-पिलायेगा कौन? दो-एक दिन इसी सोच-विचार में निकल गया। आखिर को मिसराइन ने निश्चय किया कि जग्गन उन्हें पहुँचा दें। जग्गन उन्हें महेवाँ पहुँचा आये।

जग्गन को पहली बार बोध हुआ कि घर में औरत रहने का मतलब क्या होता है। धान-खेतों का पानी तेज़ी से सूख रहा था। इधर-उधर से गड्ढों का पानी उलीचकर खेत पटाना ज़रूरी था। चैती फ़सल के लिए सुरक्षित खेत की माटी 'उठ' रही थी। जल्दी ही हल नधेगा। दिनभर सिवान में खपकर घर लौटो तो खुद चूल्हा फूंको। किसी दिन तेज़ आँच पर खिचड़ी लग जाती, किसी दिन रोटी जल जाती।

तभी महेवाँ से बुढ़ऊ की तेरही का न्योता आ गया। जग्गन ने ओड़ियों में चावल-दाल भरवाया। पाँच रुपये की एक साड़ी ख़रीदी और कहार के माथे यह सामान उठवाकर ससुराल पहुँचे।

कार-परोजन बीता तो कहार लौट आया। पर जग्गन को मिसराइन ने रोक लिया। अतिथि-अभ्यागत जा चुके थे। जग्गन बखरी में खाना खाने जाते। अचानक उन्हें लगा कि बखरी में उनका आना बहुत सहज-स्वाभाविक नहीं रह गया है। घर की औरतें उनके आने पर काफ़ी कोलाहल से भर जाती हैं। 'ठहर' पर बैठकर जग्गन मिसिर खाना खाते हैं तो उनकी बड़ी सलहज पंखा लेकर सामने बैठती हैं। पर बाक़ी सलहजें अपने-अपने घरों में बन्द नहीं रहतीं बल्कि कोई-न-कोई बहाना करके आँगन में आते-जाते कनखी ताकती हैं।

उस रोज़ खाना खाकर वे उठे। मुँह-हाथ धोकर जाना ही जाना चाहते थे कि बड़ी सलहज ने कहा—"बबुआ, ज़रा बैठ जाव। पान-पत्ता खा लो, इतनी जल्दी का है?"

सो बबुआ आँगन में बिछी एक चारपाई पर बैठ गये। बगलवाले घर के दरवाज़े पर ठेला-ठेली मची। दो औरतें, जिनका मुँह जग्गन की ओर था, एक लड़की को जो इनकी ओर पीठ करके सिकुड़ी खड़ी थी, ठेल रही थीं।

"इसमें लजाने की क्या बात है।" सबसे छोटी सलहज ने अपनी ननद को बेमुरव्वती से धकेलते हुए कहा—"सुसिल्ला के देवर ही तो हैं। कोई अनजाने हैं का? आजकल की सालियाँ तो ऐसी होती हैं कि जीजा लोगों के कान काटती हैं और तुम हो कि ठेलने पर रूई के बोरे की तरह मेरे ऊपर भहराती आ रही हो।"

चारों ओर से चक्रव्यूह में फँसी वह लड़की आखिर हारकर जग्गन की ओर बढ़ी। जग्गन अब तक अपने को मुहिम से काफ़ी दूर समझकर निश्चिन्त ढंग से बैठे थे। हल्के-हल्के मुसकराते हुए लड़की की परेशानियों का मज़ा ले रहे थे और अब जब तक लड़की एकदम उनके पास आकर खड़ी हुई

तो उन्होंने ऐसी गर्दन लटकायी कि गोया लड़की पान लेकर नहीं, उनके सिर पर पहनाने के लिए टोपी लेकर आयी हो।

जग्गन का यह लजाधुर स्वभाव सलहजों को बहुत-बहुत पसन्द आया और उन्होंने जग्गन पर बोलियाँ कसनी शुरू कर दीं। छोटी सलहज धीरे से पैर दबाकर खटिये के पास पहुँची और उसने जग्गन की पीठ में उँगली डुबो दी। जग्गन चिहुँककर खड़े हो गये।

"ए बबुआ, पान ले लीजिये न।" खुदक्का लगानेवाली पीछे खड़ी मुसकराये जा रही थी। जग्गन ने हड़बड़ाकर पान ले लिया। लड़की अचानक जैसे बहुत बड़े उत्तरदायित्व के काम से मुक्ति पा गयी थी। राहत की एक लम्बी साँस आयी और गयी। अनजानी लहरों में दचकोलों में उठते-गिरते वक्ष की ओर से पूरी तरह अन्यमनस्क होकर लड़की अपने मुँह पर उभरे पसीने को पोंछती घर में भागी। जग्गन मर्दाने बइठके को आ रहे।

जग्गन को विश्वास न था कि भौजी उनके साथ ही चली चलेंगी। तीन दिन के बाद जग्गन के साथ ही जब मिसराइन स्टेशन आ गयीं तो एक तरह से जग्गन को खुशी ही हुई।

चूल्हा-चक्कड़ से जान बची, उन्होंने सोचा।

पर मिसराइन रास्ते भर चुप रहीं। चचाजात भाई और भौजाइयों से उनकी काफ़ी कहा-सुनी हो गयी। कहा कम, सुना ज्यादा। आदमी भी कैसा आर्त होता है। घर का मालिक मरा। उसका क्रिया-कर्म खत्म भी नहीं हुआ कि हँसी-ठिठोली शुरू हो गयी। ऐसे में सेत-मेत में मिल गये जग्गन। सबको जैसे घर बैठे जुगति सूझ गयी कि कैसे छाती पर सवार लड़की दूसरे के माथे मढ़ दी जाये। मिसराइन को अपनी चचेरी बहन से प्रेम नहीं है, सो बात भी नहीं। पर हर चीज़ का एक सलीक़ा होता है। यह क्या कि अपने स्वार्थ के आगे कुछ सूझे ही नहीं। ऐसे ही करैता में लुगाइयाँ भुनभुनाती हैं कि महेवाँ की शादी सही नहीं। मानो मैं डायन हूँ कि जिसने हाथ का सहारा दिया, उसी को चबा गयी। अब जग्गन का भी

विवाह उसी घर में करा दूँ और ईश्वर न करे कुछ हो-हवाय जाय तो मैं ही दोषी बनूँ। तब तो ये ही भौजाइयाँ कहेंगी कि हमलोग न अनजान थे बाक़ी सुशीला को तो जानते हुए ऐसा नहीं करना चाहिये था। अपने जिस आग-कुण्ड में घिरी, उसी में मनिल्ला को भी झोंक दिया।

"हुँह् !" मिसराइन बड़बड़ायीं—"न हाँ करो तो चैन, न ना करो तो चैन। इससे तो भला है कि शुरू में ही बात टूट गयी। जो मुँह फुलाये, वो अपने घर, मैं अपने घर। मैं किसी के दरवज्जे पर रोटी-टुकड़ा माँगने तो नहीं जाती।"

सो मिसराइन करैता आ गयीं। जग्गन ने चैन की साँस ली और अपने काम में जुट गये।

महेवाँ से लौटकर मिसराइन काफ़ी बदल चुकी थीं। अब वे न तो मन मारे घर में पड़ी रहतीं, न खटिया पर लेटे-लेटे अपने अँधेरे भविष्य से टकरातीं ही। वे मर्दाने बइठके में जाकर झाड़ू-बुहारी करतीं। मवेशियों की देख-रेख करतीं और कभी सिवान से आने में जग्गन को देर हो जाती तो बैल-बछरू हाँककर पानी भी पिला लातीं। उनके शरीर की कान्ति फिर लौटने लगी थी और उनका चेहरा काफ़ी हँसमुख लगने लगा था।

यह ज़रूर हुआ कि जग्गन की शादी की बात चलती, तो वे उदास हो जातीं। इधर-उधर पड़ोसियों के घर या अगुवाई करनेवालों से इस विषय पर चर्चा होते ही वे ख़ूब सचेत-सावधान हो जातीं और इस ढंग से बोलतीं-बतियातीं कि सुननेवाले जग्गन के प्रति उनकी शुभेच्छा से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते।

"अब तो भई माँ-बाप, भाई-भौजाई जो भी कहो, सब मैं ही हूँ जग्गन की। एक देवरान आ जायेगी तो घर मनसायन हो जायेगा। अकेले-अकेले बखरी जैसे काटने दौड़ती है। उसके आ जाने से मेरा भी कुछ काम हल्का हो जायेगा। उसके बेटे-बेटियों को मल-धँस, धो-नहवाकर मेरा भी जनम सुफल-सारथक लगेगा। बाकी बिना जाने माछी निगलने की तो भैया हिम्मत नहीं अपने में। साल दो साल देर भले हो जाये, जानी-पहचानी, देखी-भाली लड़की ही लाऊँगी मैं तो।"

मिसराइन की बातें सुनकर लोग स्वीकृति में सिर हिलाते और उनकी चौकसी और चतुराई की तारीफ़ करते। पर इन प्रसंगों के उठ जाने पर मिसराइन ज़रूर अस्थिर ही रहतीं। मन की धड़कनें बढ़ जातीं। जग्गन के प्रति उदारता और परोपकार की भावना जहाँ मन को थोड़ा उत्साहित और खुश करती, वहीं लगता कि औरत आते ही जग्गन पराये हो जायेंगे, उन पर मेरा अधिकार न रहेगा। और सहसा मिसराइन के सीने में कोई चीज़ सुई की नोक की तरह लगातार टुप-टुप गड़ती चली जाती। उन्हें लगता कि कोई कलेजे को सिलाई मशीन के नीचे रखकर पैडल हिला रहा है और दर्दभरी चुभन की एक अटूट क़तार में बखिया लगती चली जा रही है।

●

कातिक आ गया था। दीवाली के आसपास का समय होगा। जग्गन की अनुपस्थिति में बखरी और बइठके की पुताई-लिपाई का सारा काम मिसराइन ही देखतीं। पिछले तीन दिन से घरों को खाली करने, सामान धूप में रखने, पुताई-लिपाई के बाद उन्हें फिर से झाड़-पोंछकर अपनी जगह करने के कामों से मिसराइन पूरी तरह थक चुकी थीं। पोतने-लीपने का काम तो सरना की औरत और उसकी बहन कबूतरी ही करती थीं, पर गाहे-बगाहे पियरी माटी की बाल्टी या पोतन थमाने का काम मिसराइन को भी करना पड़ता।

बखरी से फ़ुरसत मिली तो बइठके का काम नध गया। दोनों चमारिनें भीतरी दालान को पोत रही थीं। मिसराइन को चुपचाप बैठने या खड़ा होने में भी तकलीफ़ हो रही थी। सारा बदन थकान से बुरी तरह टूट रहा था।

वे चबूतरे पर फैलाई घास पर उठंग कर बैठ गयीं। कातिक की सूखी घासें एक अजीब सोंधी-सोंधी सुवास से भर जाती हैं। पानी सूखने के बाद माटी कड़ी हो जाती है और धूप से पत्तियों का रस गाढ़ा होकर तरह-तरह की खुशबू से भर उठता है। और फिर जब यह लहलही घास काट कर दरवाज़ों पर सूखने के लिए डाल दी जाती है तो लगता है, जैसे किसी ने मीठी-मीठी भीनी गंधों में डूबी गरम क़ालीन ही बिछा दी है। मिसराइन इस बेशुमार गन्ध के बीच जैसे डूबती जा रही थीं। उन्होंने घास का एक तिनका उठाया और मुंह में डालकर दाँतों से कुटकने लगीं। एक हल्की खुशबूदार मिठास से जीभ झनक उठी। तभी मिसराइन को लगा कि उन्होंने महीनों से अपने मुँह और और बाँहों पर हाथ नहीं फेरा है। अपनी हथेलियों का स्पर्श भी कभी-कभी कैसा-कैसा लगता है। मिसराइन हल्के मुस्कराकर अपनी सुडौल साँवली बाँहों को सहलाने लगीं।

तभी माथे पर घास का बोझा उठाये जग्गन दरवाज़े पर आ गये। घास फैलाने की जगह पर पहुँचकर वे एक क्षण के लिए ठिठक गये। फैली हुई घासों के बीच चटक साफ लुग्गा पहने अलस भाव से अधलेटी भौजाई को देखकर वे मुस्करा पड़े। सचमुच उस दिन मिसराइन बहुत अच्छी लग रही थीं।

"अरे बाह।" मिसिर बोझा उठाये-उठाये बोले—"मैंने तो सुना था कि पानी में जलपरी होती है। पर घास की सबुज परी तो पहली बार देखी।"

मिसराइन ने जग्गन की ओर इस ढंग से देखा कि जैसे वे आज सम्पूर्ण सृष्टि का आनन्द लुटाने का निश्चय कर चुकी हों।

"हटो भी जल्दी, नहीं फेंकता हूँ बोझा ऊपर।" जग्गन ने निचले पैरों पर बल देकर बोझे को पटकने की मुद्रा बनाकर कहा।

मिसराइन तिनके से अपने गाल को सहलाती हुई वैसी-की-वैसी बैठी रहीं।

"फेंको तो?" उन्होंने चुनौती दी।

जग्गन ने बदन को उचकाकर बोझा फेंका तो मिसराइन चिहुँककर उठ बैठीं।

"मइय्या रे!" वे भय से चीख पड़ीं। बोझा ठीक उनकी बगल में गिरा था।

भीतरी दालान से सरना बो और कबूतरी दौड़कर बाहर आ गयीं।

"क्या हुआ भौजी?"—कबूतरी ने पूछा। पर सामने मिसिर को देखकर हँस पड़ीं। सरना बो ने आँचल का खूंट मुंह पर लगा लिया।

मिसराइन बनावटी गुस्से से मिसिर की ओर देखे जा रही थीं।

"अभी तो मेरी गरदन ही टूटनेवाली थी।" उन्होंने कहा।

"मैंने कहा न कि जल्दी उठो वहाँ से, मैं बोझा पटकनेवाला हूँ। तुम तो यों पसर गयी थीं जैसे....।" मिसिर सहसा चुप हो गये।

"जैसे क्या?" मिसिराइन ने आँखें तरेर लीं।

कबूतरी और उसकी भौजी हँसते हुए दालान में चली गयीं। मिसराइन एक क्षण जग्गन को देखती रहीं, फिर वे भी लिपाई-पोताई का मुआयने करने दालान में चली गयीं।

मिसिर बोझे से बँधी रस्सी खोलकर उसे अलग कर चुके थे। वे घासों की अँटियाँ उठा-उठाकर धूप में फेंकने लगे। नागरमोथा के बादामी फूलों की गन्ध से फिर चबूतरा गमगमाने लगा। घास फैलाने के काम से फुर्सत पाकर मिसिर ने बोझ-बँधनी रस्सी को लपेटकर दालान की खूंटी पर टाँगी और कोने में लाठी टिकाते हुए बोले:

"बखरी की पुताई का काम सपर गया न?"

"हाँ।" मिसराइन अब एकदम प्रकृतिस्थ हो चुकी थीं—"उसी में तो आज दोपहर तक लग गया। ई कबूतरी है न। उसकी देह ठीक से नमती नहीं। छिन यहाँ, छिन वहाँ। बीच में पोतन रखकर गली में दौड़ेगी। जब तक दो गाल बातें न कर ले, इसके पेट का पानी नहीं पचता। कल इसी के कारण देवकुर वाला घर आधा होके रह गया, नहीं कल ही बखरी का काम सपर गया होता।"

"देखो भौजी।" कबूतरी तिनककर पोतन पर ठुड्ढी टिकाकर बोली—"अब सारा दोस हमरै पर? दिनभर घिसते-घिसते हाथ कट गया,

उसका कुछ नहीं। एक छिन सुस्ताने नहीं दिया आपने। रात को घर लौटती हूँ तो इस हाथ से रोटी नहीं टूटती तुम्हारी कसम, हाँ। मैं मशीन तो हूँ नहीं कि लगाऊँ और ओर-माथे तक खींच दूँ 'हल्' से।"

"ई मामूली लड़की नहीं है। समझ लो कि सारी चमटोल की चौधरानी है कबूतरी।" मिसिर बोले।

"सुन लिया न भौजी।" कबूतरी दीवाल में पोतन दरेरती हुई बोली—"समझ गयू न? मैं सगरी चमटोल की चौधरी हूँ। तोहार भी कोई मामला-मुकदमा होय तो कहना। मैं बिलकुल 'नियाव' करूँगी। दूध का दूध, पानी का पानी, हाँ।"

"अरे पहले अपन मामला को तो देखो भाई।" सरना बो कबूतरी की ओर तिरछे ताककर बोली—"विजयादशमी को ही आने को थे पहुना लिवाने। देवारी आ गयी। बाक़ी अब तक कोई कुक्कुर भी झाँकने को नहीं आया।"

"ऐंह्।" कबूतरी चिढ़कर अपनी भौजाई के मुंह पर पोतन फेंककर खौंखियायी—"तेरे हियाँ ही कुक्कुर-गदहा आएँ। तू ही दिनभर उनके लिए बावरी बनी रहती है। मुझे नहीं फिकिर किसी की। जिसे ग़रज़ होगी माथे के बल आकर लिवा ले जायेगा। समझ्यू।"

जग्गन मिसिर धीरे से चलते बने वहाँ से। मिसराइन को अचानक दलान कुहरीली लगने लगी थी और वे जैसे खुले में साँस खींचने के लिए फाटक की ओर देखने लगी थीं।

दोपहर का खाना खाकर जग्गन बखरी की निकसार में ही लेट रहे। मर्दाने बइठके में पोताई का काम चल रहा था, सो सोचा यहाँ लोट-पोट कर लें। खाना खाने के बाद दिनभर काम से थका बदन टूटने लगा था। पैरों की पिंडली पिरा रही थी। हल्का-हल्का-सा दर्द हाथ-पैर के जोड़ों में भी रेंगता जैसा प्रतीत हो रहा था। जग्गन ने हाथ और पैर को एक-दूसरे से फँसा-फँसाकर तड़काया और शरीर को शिथिल करके आँखें मूंद लीं। पियरी माटी से पुती हुई दीवालें सोंधी-सोंधी महक रही थीं। एक बड़ी अपनपौ-भरी महक सारे शरीर को बेहोश किये दे रही थी। पुरानी माटी पर ताज़ा नई माटी का रोगन भी क्या आभा जगा जाता है? पूरी दालान जैसे खूब उजियाली हो गयी है। जग्गन मिसिर ने बगल के कोने में आँखें गड़ा दीं। एकदम बेदाग़ चटक शालीनता।

उन्होंने गझिन गन्ध से कलेजा भरते हुए करवट ली! तभी उनको लगा कि बदन कुछ गरम-गरम लग रहा है। क्वार भी साला अजीब महीना है। इतनी रौनक़, इतनी गन्ध, इतनी चटक धूप, इतनी मनसायन चाँदनी और जग्गन को लगता है कि हर साल जब वे ये सब बातें सोच-सोचकर क्वार के साथ अपने को घुला-मिला देने का इरादा करते हैं, जुक़ाम हो जाता है।

●

पर इस बार का जुक़ाम काफ़ी भारी है। तेल लगे गोटेवाली रज़ाई में अपने को पूरी तरह तोपकर मिसिर सुस्त हो गये। कितना-कितना प्यार किया है, इस औरत को। कभी अपने पराये का विचार ही नहीं जगा। क्या इसका है क्या अपना, कभी सोचा भी नहीं। पर आज कैसा उखड़कर बोली कि यह मत समझना कि अपना हिस्सा भी उस मुँहझौंसी के लिए छोड़ जाऊँगी। अभी भी उसे विश्वास नहीं हुआ कि कोई दूसरी मुँहझौंसी इस घर में नहीं आयेगी। जिसके चौगिर्द अपने जीवन को इस तरह बाँध लिया कि एक निश्चित वृत्त में घूमने के अलावा कोई उद्देश्य ही नहीं रहा, वही आज बन्धन खोलकर मुक्ति दे रहा है। और जग्गन है कि उन्हें लगता है कि यह मुक्ति उनके गले में फँसरी की तरह झूल रही है और निरन्तर कसती चली जा रही है।

तभी उनकी आँखों में उस दीवाली के दो दिन पहले वाली शाम घुमड़ आती है। तीन बजे के क़रीब मिसराइन पानी का लोटा लेकर दालान में

आयी थीं तो जग्गन का चेहरा देखकर ठिठक गयीं—"आँखें काहे लाल हो गयी हैं ?"

उनकी बेचैनी को वहीं चुप कर देने की ग़रज़ से जग्गन ने चेहरे पर बनावटी मुस्कराहट उभारकर कहा—"थोड़ा दरद है माथे में। शाइत सुबह कुछ ठंड लग गयी।"

"सौ दफ़ा तो मना किया कि उतने सुबेरे उठकर नहाया न करो। कसरत-वसरत से छुट्टी पाकर दाना-पानी करके काम पर जाओ। दोपहर को लौटकर नहाओ-धोओ। पर मेरी बात कौन सुनता है !"

यकायक मिसराइन की ममता पिघलने लगी थी और वे हाथ का लोटा और गुड़ की भेली नीचे रखकर जग्गन के पास बैठ गयी थीं। बाहरी निकसार का दरवाज़ा भिड़ा हुआ था, खुला भी होता तो शायद मिसराइन को चिन्ता न होती, क्योंकि वे एक अबूझ विश्वास के साथ जग्गन के सिर को अपनी दोनों हथेलियों में भरकर दबा रही थीं। जग्गन वैसे ही बैठे रहे। ममतालु हथेलियों के कवच में आते ही सिर का दर्द आश्वस्त होकर ऊँघने लगा था। बाहरी यातना से प्रताड़ित शिशु को जैसे माँ की गोद मिल गयी हो। दर्द की टीस बन्द हो गयी थी, पर अब भी कभी-कभी टपकन हो जाती, जैसे बच्चा ख़ूब आश्वस्त होकर भी बीच-बीच में हुटुक पड़ता है।

उस शाम जग्गन चादर ओढ़कर ही गली में निकल पाये। मिसराइन के हुकुम के आगे खुले बदन बाहर निकलना क़तई मुश्किल हो गया। शाम को तालाब की ओर से घूमकर वे जल्दी ही लौट आये। गरम दूध के साथ दो-चार फुल्के खाये और फिर दालान में उसी चारपाई पर सो रहे। बुख़ार नहीं था। माथे का दर्द भी काफ़ी कम था। फिर भी शरीर पूरी तरह स्वस्थ नहीं था।

पता नहीं 'परस्थ' होने से ही आदमी इतना कमज़ोर क्यों हो जाता है। बीमारी उसके शरीर से रक्षा-कवचों को उतारकर उसे बेसहारा कर देती है। जग्गन रज़ाई से पैर ढँके लेटे थे। सद्यः पुते ताखे में दीये की टेम

झलमला रही थी। खाना-पीना ख़तम करके, रसोईघर का दरवाज़ा बन्द करके, पैर धो, चप्पलें पहनकर, हाथ की कटोरी में तेल लिये मिसराइन जब जग्गन की चारपाई के पास आयीं तो अचानक दीये की रोशनी जग्गन की आँखों में पीली-पीली लगने लगी।

माथे पर तेल लगाना ख़तम करके मिसराइन जब उनके पैरों के पास बैठीं तो जग्गन ने चाहा कि मना कर दें।

"अब रहने दो, मैं ठीक हूँ।" एक दबी आवाज़ उभरी थी।

'ज़रा पैरों में घँस दूँ।' मिसराइन ने कुछ भी सोचने-विचारने का मौक़ा नहीं दिया। वे नंगे पैरों में तेल लगाती रहीं। मिसिर का अंतर्यामी साक्षी है कि मिसिर उस स्पर्श के प्रभावों से बचने के लिए काफ़ी देर तक अपने से लड़ते रहे थे। भौजी ने उनके शरीर को पहली बार नहीं छूआ था। कई बार पहले भी वे समय-कुसमय ऐसी ही सेवा-परिचर्या कर चुकी हैं। शरीर शायद मुर्दा मांसपेशियों का ढेर ही है, यदि उसके पीछे स्पर्श के अर्थों को बिलगाने वाले मनोभावों का योग नहीं हो। कुछ रही होगी सार्थक-विशेषता मनोभावों की, मेरे और उनके दोनों के, कहीं न कहीं, तभी तो वे हथेली से गर्मी का अनुमान करने में अपने को असफल पाती हुई बोली थीं—"मुझे तो गरम नहीं लगता बदन।" उन्होंने हाथ से छू-छू कर कहा।

तभी उन्होंने अपना मुँह जग्गन की जाँघ पर रख दिया था। अजब शरारत से उनके होंठ खिंचे थे और अपने दाहिने गाल को उनकी जाँघ से सटाकर वे ताप का अनुमान करती हुई बोलीं—"मामूली हरारत हो आयी थी शायद।"

जग्गन ने किंचित् खिझलाकर उस मुँह को अपनी जाँघ पर से अलग करने के लिए ही हाथ लगाया था, पर उन्हें बड़ा अचंभा हुआ एक क्षण को जब उनकी दोनों हथेलियों के बीच भाभी का मुँह मासूम बच्चे के समान अँटा-अँटा हुआ रहा और दीपक के हल्के उजाले में काँचल आँखें पुतलियों के हिलने से चमकती-उजलती रहीं। भाभी जाने किस तरह खोई-

खोई बेचारी जैसी ताकती रहीं उन्हें। जग्गन उस स्थिति को झेल नहीं सके और उन्होंने उन मासूम गालों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए उन्हें अपने गालों से सटा लिया।

आग के जलने की प्रक्रिया भी काफ़ी रहस्यात्मक होती है। मुरझाये अंगारों को लाख हवा दो, वे छेड़खानी पर हल्के-हल्के मुसकराकर फिर निराशा की राख में सिर छुपा लेते हैं। पर उन्हीं मुर्दा अंगारों पर ईंधन का एक टुकड़ा, नन्हा काग़ज़, सूखा तिनका, कुछ भी गिर पड़े कहीं से तो अचानक जैसे भीतर छिपी ज्वाला राख के ऊपरी परतों को चीरकर जीभ लपलपाने लगती है।

तभी जग्गन को महसूस हुआ कि उनका बदन फिर तेज़ बुखार में झुलसने लगा है। पर कैसा अजीब है यह बुखार और यह गरमी कि इसे शरीर की प्रत्येक शिरा खूब पी-पीकर भी अघाती नहीं। बार-बार इस झुलसन में डूबने की इच्छा समूचे बदन को थरथराने लगती है! भाभी निश्चेष्ट तकिये की तरह खिंचकर जग्गन से बिल्कुल सट गयी थीं। उन्होंने अपने आँचल को शरीर की लपेट से मुक्त किया और उसे मुट्ठी में भरकर इस तरह झटका दिया कि उसके हिलने से ताखे में जलता दिया बुझ गया। कमरा एक गहन अँधेरे में डूब गया।

एक अँधेरा ऐसा भी होता है जो कुछ समय के लिए ही सही, तन-मन पर इस क़दर छा जाता है कि आदमी उसके भीतर एक विचित्र स्वीकृति और समर्थन का अनुभव करता है, जैसे दीवालें सिर्फ़ सुरक्षा का आधार ही नहीं हैं बल्कि किसी सचेत सत्ता की तरह अपनी भूरी-भूरी अंगुलियों से एक स्याह ममतालु पर्दा उढ़ाकर थके दुःखी लोगों के क्षणिक सुख की चौकसी करने लगी हैं।

अथाह समुद्र में डूबते लोग जैसे एक-दूसरे का सहारा पा गये हों। दोनों जैसे खुद अपनी ही साँसों के उद्वेलन पर झूलते-झूलते एक-दूसरे से टकरा गये हों। बदन के किसी खास हिस्से में कभी-कभी इतनी थरथराहट और कम्प क्यों होने लगती है, मानो कोई बहुत शक्तिशाली वस्तु शरीर

के आवरण को चीरकर बाहर निकल आने को छटपटा रही हो। दोनों एक दूसरे को पागल कुत्तों की तरह चीड़-फाड़ देना चाहते थे।

जग्गन को लग रहा था जैसे भाभी का शरीर ठोस पदार्थ न होकर कोई द्रवित पिंड है, जो पकड़ में बँध-बँधकर भी फिसलकर बाहर हो जाता था। आज तो भाभी सम्बोधन कितना पराया और निरर्थक हो गया है। उस रात जैसे इसी सम्बोधन के अर्थ की खोल को उतारने के लिए वह सारा आयोजन था।

ताप और वाष्प की आँधी के बीच जग्गन को अचानक लगा था कि वे किसी भारी अबूझ पदार्थ की लपेट में फँस गये हैं जो उनके सारे अस्तित्व को निरर्थक और बेबस किये दे रहा है। उन्हें हठात् अपना पुरुषत्व आहत-सा प्रतीत हुआ। इस नई चेतना ने उन्हें एक झटके से भँवरजाल को तोड़कर अलग होने के लिए प्रेरित किया। वे सक्रिय चेतन पिंड की तरह सम स्तर से ज्योंही हटे कि भाभी की भुजाएँ उन्हें पुनः सहारा देती-सी प्रतीत हुईं। उन्हें हल्का आश्चर्य भी हुआ कि कोई अपने को विजित करनेवाली योजना में सहायक कैसे हो सकता है। यह आश्चर्य किंचित् गर्व और विपुल खुशी से भरा-भरा कुछ इस क़दर उनके शरीर से लिपटता गया कि वे सम स्तर से अलग होकर भी अपने को जल के भारी थपेड़ों से अलग न कर सके। नीचे तल में आघात हल्के थे, स्तर से ऊपर उठकर तो जैसे पूरा अस्तित्व ज्वार-भाटे में उलझ रहा था। हरहराहट की आवाज़, सभी दिशाओं से छूटनेवाले, असंख्य तीरों की सनसनाहट, लहरों का अथक क्रम और वे दोनों नंगे शिशुओं की तरह इस प्रवाह में टकराते रहे। जग्गन का सारा बदन जैसे एक दैत्याकार हथेली की तरह भाभी को अपने अन्दर बन्द करने के लिए तड़प रहा था और भाभी थीं कि उनकी पारे की तरह चंचल देह इस सैलाब से मुक्त होने के लिए छटपटा रही थी। तभी एक चिरादिम जल-जन्तु जैसा कुछ धारा में चिलका था और जल की पारदर्शी सतह चीरता अतल में लीन हो गया। एक सुनहरी चादर में थिरकनों की गति बँध गयी और दोनों जलभरे बादलों की तरह परस्पर टकराकर एकाकार

हो गये थे। जग्गन आज जब उस रात के बारे में सोचते हैं तो एक अजब कस्तूरी हँसी उनके अधरों पर छा जाती है। न चाहते हुए भी नियति में विश्वास करना ही पड़ता है।

सुबह जग्गन उठे तो दालान में सबेरे का उजास धीरे-धीरे क़दम रखने लगा था। उन्हें सबेरे पानी पीने की आदत है। मरदाने बइठके में होते तो ख़ुद बाल्टी से खींचकर पीते।

"पानी पीओगे न ?"

जग्गन मिसिर के सामने मिसराइन खड़ी थीं। एकदम नयी। एकदम ताज़ा, किन्तु जैसे चिरपरिचित। उनके भींगे बाल पीठ पर छितराये थे। शायद बहुत सबेरे तालाब से नहाकर लौटी हैं। उनके साँवले माथे पर दशांग की राख का टीका लगा था। शायद मन की कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए देवकुर के सामने माथा झुकाकर आ रही हैं।

"तुम मन की बात पढ़ना भी जानती हो क्या ?" जग्गन मिसिर ने हाथ बढ़ाकर पानी भरा लोटा ले लिया।

"हाँ जानती हूँ। बाकी सबके मन की नहीं। किसी एक के मन की ही।"

वे मुसकराकर चुप कर गयीं।

जग्गन मिसिर ने उस समय इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वे चारपाई से उठकर गली में आ गये। मुँह-हाथ धोने तालाब की ओर चले गये। तालाब से लौटती वक़्त अचानक एक टन् की आवाज़ हुई और जग्गन मिसिर के भीतर कहीं कुछ ऐंठ गया।

तो क्या मेरे मन में पहले से कुछ ऐसा था जिसे भाभी जानती थीं? क्या उसी जानकारी ने उन्हें रात में इतना ढीठ बना दिया? जग्गन ज्यों-ज्यों इन बातों को सोचते, त्यों-त्यों उनके कलेजे को जैसे कोई मुट्ठी में बन्द करके ज़ोर-ज़ोर से मीचने लगता। अपने किये पर एक दारुण पछतावा उन्हें चतुर्दिक् लपेटने लगा और वे एक विचित्र अपराध-भाव से

थककर निढाल जैसे हो गये। तालाब से घर तक के छोटे-से रास्ते में भी कई बार पाँव डगमगाये।

मरदाने बइठके का ताला खोलकर वे दालान में आ गये। दीवालें और फ़र्श सूख गये थे। वही सोंधी गन्ध चारों ओर भरी थी। बन्द दालान के भीतर घुसकर वह पहले से अधिक गाढ़ी और मादक हो गयी थी। जग्गन को यह गंध बहुत दमघोंट लगने लगी। उन्होंने एक-एक करके सारे दरवाज़े और खिड़कियाँ खोल दीं। चारपाई पर लेटकर वे दालान की शहतीरों को देखते रहे। छाजन पर एक सफ़ेद निशान था, ख़ूब उजला और गोलाई में उभरा हुआ। शायद कबूतरी ने खेल-खेल में गीला पोतन उछाल दिया था वहाँ तक। जग्गन मिसिर की एकटक देखती आँखों की पलकें झपक गयी थीं एक क्षण। उसी एक क्षण में वह सफेद निशान एक हँसते हुए चेहरे की तरह लगने लगा था। एक धूमिल, कोहरे में डूबा हुआ, डबडबाया चेहरा। जग्गन को लगा कि छाजन से गर्दन निकालकर बैजू भैया झाँक रहे हैं। जैसे उनका चित्त धक् से करके रह गया। बहुत दिनों के बाद अचानक आज याद आयी है भाई की, जग्गन ने सोचा और उनका मन भारी हो गया।

जग्गन उस दालान में रुक न सके। मन ही नहीं हुआ कि वे एक क्षण और लेटे रहें वहाँ। घर आये तो भौजी दूध गरम करके उनके इन्तज़ार में बैठी थीं।

जग्गन झूठ नहीं बोलेंगे। उनके मन में एक बार भौजी के लिए घृणा भी जगी थी। उनको लगता था कि यह सब 'बुरा काम' उन्हें उनके कारण करना पड़ा। पर भौजी के हाथ से दूध का गिलास थामते वक़्त उन्हें उन पर दया भी आयी। उसमें उनका क्या क़सूर।

"तबीयत कैसी है आज ?" वे बोलीं। सुबह पानी लाते वक़्त वे आमने-सामने ताकती रही थीं पर इस बार जाने क्यों उन्होंने लजाकर गरदन झुका ली थी।

"ठीक है।" दूध का गिलास मुँह से लगाते हुए जग्गन ने कहा। वे भौजी के झुके चेहरे को देख रहे थे। तनिक लज्जा थी। पर इसमें भी कुछ ऐसा

रहस्यात्मक था कि अचानक उनकी ठुड्डी पहले से अधिक नुकीली और सुन्दर लग रही थी, जैसे गेहूँ की बारीक़ भूसी की एक महीन परत सट गयी है वहाँ, जिसे हल्की अंगुली से छूकर साफ़ कर देने की इच्छा होने लगती है मन में।

भाभी ने गर्दन ऊपर की, तो पता नहीं क्यों जग्गन ने गिलास में आँखें डुबो लीं। वे इस तल्लीनता से दूध की ओर देखने लगे, जैसे गिलास पर कहीं कोई निशान ढूँढ़ रहे हों। उनकी आँखें किन्हीं आँखों की ओर से बरजोरी हटाई जाकर भी पूरी तरह वश में नहीं हुई थीं। वे आँखें पता नहीं उन दूसरी आँखों में क्या पढ़ने के लिए बेचैन थीं।

"आज सिवान मत जाना।" भाभी बोलीं।

"क्यों ?"

"क्यों क्या ? तबीयत ठीक नहीं है। देखते नहीं, कैसा विष की तरह घाम है। आज आराम कर लो, कल से जाना।"

"और मवेशी क्या खायेंगे आज ?"

"भूसा।"

"खाली-खाली भूसा खायेंगे रोज़ तो कै दिन चलेगा वह।"

"यह सब मैं नहीं जानती। नहीं जाना है, इतना जानती हूँ।"

जग्गन सचमुच उस दिन सिवान न जा सके। कभी-कभी ज़रूरी कामों से छुट्टी लेकर, बेमतलब आँखें मूँदकर लेटे रहना भी अच्छा लगता है। वह दिन जग्गन के लिए ऐसा ही था। बीच-बीच में उनके दो-एक हम उम्र दोस्त-संगी आते रहे। दालान में बैठकर गप्पें हाँककर चले जाते रहे। जग्गन इन आकस्मिक बाधाओं को खूब रस के साथ झेलते रहे क्योंकि उनका मन एक जिज्ञासु खुशी के उस स्तर को लगातार छूता रहा, जहाँ स्थूल घटना की अपेक्षा उस पर सोचते रहना ज़्यादा गुदगुदी से भरा-भरा होता है। कभी आँगन में आते-जाते मिसराइन की एकाध झलक ज़रूर मिल जाती थी। वैसे सुबह से दोपहर होने को आयी पर वे पता नहीं किन कामों में फँसी थीं कि जग्गन के पास आने की फुर्सत नहीं मिली।

●

कैसी उत्कंठा, आसक्ति और ललक के दिन थे वे। दो-तीन वर्षों तक तो इस जादू से उबरकर कुछ सोचना-विचारना भी कठिन था।

गर्मियाँ निकट आतीं। शादी-ब्याह की बात चलाने के लिए लोग-बाग दौड़-धूप करते। पर बातें चल नहीं पातीं। इतना ज़रूर होता कि बारहों महीने शरीर पर पड़े रहनेवाले पर्दे का एहसास हो जाता। शादी की बात चलने पर ही जग्गन को बोध होता कि भाभी के प्रभाव से वे किस क़दर लिपटे हुए हैं। कई-कई बार मन विद्रोह करता। भाभी अपनी पुरानी अदा में शादियों के पैग़ाम ठुकरातीं, तो जग्गन का मन होता कि वे खुद बीच में पड़कर उनकी योजना को चूर-चूर कर दें। पर ऐसा कर पाना संभव न होता। इन मौक़ों पर भाभी का चेहरा एक अजीब पीड़ा से रँग जाता। वे सहज ढंग से सब काम-धाम करती रहतीं, पर उनको देखते ही मालूम हो जाता कि वे किसी और दुनिया में घूम रही हैं, जो कहीं से भी पकड़ में नहीं आती है, पर हमेशा उनके तन-मन को अपने क्रूर शिकंजे में दबोच कर मसलती जा रही है। अचानक जग्गन के प्रति उनका व्यवहार बदल जाता। वे उस ढंग से खोई-खोई खाना-दाना, नाश्ता-पानी देतीं कि जानो जल्दी ही कोई बहुत प्रिय पाहुना बिछड़नेवाला है। उनका यह रंग-ढंग देखकर जग्गन अपने को ही अपराधी मानकर गहरी चिन्ता से भर जाते।

और अब तो वे क्षण भी किन्हीं प्रवासी पक्षियों की तरह कहीं उड़ कर चले गये। जिस तरह शादी के इच्छुक खोजियों ने जग्गन का नाम उम्मीदवारों की सूची से काट दिया, वैसे ही जग्गन ने भी उस स्थिति से समझौता कर लिया। कभी इस विषय पर न भाभी ने कुछ कहा, न तो जग्गन ने, फिर भी दोनों ने मन ही मन यह तै कर लिया कि एक-दूसरे की खुशी के लिए ऐसे ही रहना अच्छा है।

दिन बीतते गये। ज्यों-ज्यों जग्गन मिसिर बूढ़े होते गये, उनका मन उदास होता गया। रह-रहकर एक सवाल उनकी आत्मा को मथता रहा—क्या बद्री मिसिर का खानदान ख़तम हो जायेगा ? पितरों को एक चुल्लू पानी कौन देगा ? वैतरणी पार कौन करायेगा ? पता नहीं, क्या संस्कार

छिपा था उस खून में कि संतति के अभाव की ये बातें सोच-सोचकर जग्गन मिसिर जैसा मस्त रहनेवाला आदमी भी चिड़चिड़ा हो गया।

उन्हीं दिनों मिसराइन बीमार पड़ीं। न ज्वर, न बुखार। न रोग, न ताप। कुछ भी नहीं। रात को वे अनमनी हुईं; बिस्तर पर छटपटाती रहीं। सुबह जग्गन मिसिर ने देखा कि उनका चेहरा रसहीन नीबू की तरह पीला और निचुड़ा-निचुड़ा लग रहा है। जग्गन मिसिर को आज इस औरत से बहुत घृणा होने लगी।

"क्या खाया था तुमने ?" वे बेमुरव्वती से बोले।

मिसराइन चुप रहीं।

"दो-एक बार पहले भी तुम इसी तरह बीमार हो चुकी हो। जब और किसी काम में लाज नहीं तो इसी में क्यों लगती है।" मिसिर आज जैसे झगड़ा करने पर उतारू थे।

"तो क्या तुम चाहते हो कि सारी दुनिया मुझ पर थूके।" मिस-राइन घायल साँप की तरह आँखों को ललाट में चढ़ाकर बोलीं—"क्या कहेंगे लोग ?"

"मुझे लोगों के कहने की परवाह नहीं है। और क्या बचा है कहने को ? हमारे-तुम्हारे मुँह पर कोई कुछ न कहे, पर पीठ पीछे सभी कहते हैं कि मैंने विधवा भौजाई रख ली है। इतना सुन लिया, दो बातें और सुन लेंगे। क्या करेंगे लोग ? बहुत करेंगे, कुजात कर देंगे। बस। अपने को तो सन्तोष रहेगा। घर में एक बच्चा आ जायेगा तो बुढ़ापे का सहारा हो जायेगा।"

मिसराइन की आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगे। वे हिचक-हिचक कर रो पड़ीं। मिसिर अवाक् ताकते रहे।

"यह नहीं हो सकता।" मिसराइन हुटक-हुटककर बोलीं—"जब क़िस्मत में ही नहीं है, तो झूठा मोह बढ़ाने से कोई फायदा नहीं।"

मिसिर गुस्से में बड़बड़ाते लौट आये। उस दिन उनका कहीं जाने का मन न हुआ। सारी बातें, चाही-अनचाही, दिमाग़ में उठती रहीं और वे

एक-एक करके अपने को, बैजू को, भौजाई को कोसते रहे। जाने कहाँ से इस झमेले में पड़े। शुरू-शुरू में ही उसकी बातें न मानकर शादी कर ली होती, तो इस झमेले से जान बच जाती। बखरी में जाओ तो सन्नाटा, मरदाने बइठके में आओ तो सन्नाटा। और यह ऐसा सन्नाटा है, जिसे मौत तक इसी तरह झेलते रहना होगा। मिसिर को यह बात बिल्कुल समझ में नहीं आती कि रहना तो मर्द औरत की तरह, और दुनिया को दिखाना यह कि विधवा का सारा नेम-धरम निभाते जा रहे हैं।

उस दिन दोपहर का खाना खाने वक़्त मिसिर जब बखरी में गये तो चित्त आशंका से भरा था कि शायद खाना न बना हो। हमेशा की तरह चना-चिवड़ा या गुड़ खाकर पानी पीना होगा और गाँव की गली में चलते वक्त कोई मिल जाये तो यों डकार लेनी होगी कि मानो मनभाता खाना खूब छककर खाने से ऐसी तृप्ति की डकार आ रही है।

पर बखरी में हेलने के बाद यह शंका निर्मूल हो गयी। रसोईघर में पीढ़ा पर मिसिर बैठे ही थे कि उनके सामने खाने की थाली आ गयी। मिसराइन ने उस दिन बड़ा चटक लुग्गा पहन रखा था। उनके खुले हुए बाल पीठ पर छितराये थे। नहा धोकर वे एकदम मासूम लड़की की तरह ताज़ा-ताज़ा लग रही थीं।

"क्यों नहाया ऐसे में ?" मिसिर ने पूछा—"ऐसे ही में तुम बुखार में गिरती हो और चार दिन तक बदन के दर्द से कराहती हो।"

मिसराइन कुछ न बोलीं। उन्होंने हल्के मुस्कराकर मानो अपनी गलती स्वीकार की और इस मौन स्वीकृति ने जग्गन मिसिर को अचानक मिसराइन के प्रति अगाध करुणा से भर दिया।

●

यह सब कुछ झूठ है, फ़ालतू है, बेकार है। अचानक मिसिर को अपना ही शरीर बेगाना जैसा लगने लगा। वे दोपहर से बीमार हैं। बुखार में

पड़े हैं, पर किसी को फ़ुर्सत नहीं कि एक बार आकर उनका हाल-चाल पूछ जाये। सभी मतलब के यार हैं। सारी दुनिया अपने स्वार्थ के लिए दूसरों से आत्मीयता दिखाने का नाटक करती है। यदि सुबह कह दिया होता कि हाँ चलो, चलकर रजिस्टरी कर दूँ सब कुछ बिरिछ के नाम, तो ऐसी ममता उमड़ती कि मामूली सिर दर्द से भी आँखें छलछला आतीं, पर जब 'नाहीं' कर दिया, तो चाहे बुखार से मर भी जाऊँ, कोई पानी तक को पूछनेवाला नहीं है। फिर मैं क्यों ऐसे लोगों के लिए अपनी ज़िन्दगी का बलिदान करूँ? नहीं लिखता मैं ज़मीन बिरिछ के नाम। जायँ साले सब चूल्हे-भाड़ में।

आज मिसिर को अपना ही जीवन एक उल्टी लटकी तस्वीर की तरह लग रहा था। कितनी बड़ी ग़लती की इस औरत पर विश्वास करके। बहुत पहले जब वह दावँ-पेंच खेल रही थी, तभी यदि कड़ाई के साथ पैर अड़ा दिया होता तो यह नौबत ही नहीं आती। आज मिसिर पछता रहे थे। उन्होंने शादी न करके बहुत बड़ी ग़लती की।

दोपहर होने ही वाली थी। जग्गन मिसिर को रज़ाई के भीतर गरमी मालूम होती तो सिर बाहर कर लेते। सिर बाहर रहता तो कुछ देर के बाद ठंड लगने लगती और वे मुँह पर रज़ाई खींच लेते। वे घंटे भर से सोच रहे थे कि सहसा ऐसा सन्नाटा क्यों हो गया है।

"पानी पी लो।"

रज़ाई के भीतर मुँह लपेटकर सोये जग्गन को जैसे कानों पर विश्वास न हुआ।

उन्होंने मुँह बाहर किया।

"पानी लायी हूँ।"

जग्गन चुपचाप बैठ गये। उन्होंने मिसराइन के हाथ से गिलास थाम लिया। उनकी हथेली से मिश्री की डली उठाते हुए जग्गन ने गर्दन झुका ली। वैसे गर्दन ही झुकाये-झुकाये मिश्री खायी, पानी पिया। मिसराइन के हाथ खाली हुए तो उन्होंने आँचल से दोनों हथेलियाँ पोंछ लीं। मिसिर ने नीचे गिलास रखा। मिसराइन सहसा उनके पीछे आयीं और उन्होंने दोनों हथेलियों से सिर थाम लिया।

"बुखार है।" वे भुनभुनायीं—"सिर भी दर्द कर रहा होगा?"

"नहीं, दरद नहीं है। थोड़ा भारी-भारी है बस।" मिसिर ने धीरे से सिर को उनकी हथेलियों की पकड़ से मुक्त किया और रज़ाई ओढ़कर लेट रहे।

"थोड़ा खाना खा लो।" मिसराइन फिर सामने खड़ी थीं।

"नहीं, भूख नहीं है।" मिसिर कहीं और देखते हुए बोले।

"न खाने से कमजोरी बढ़ जायेगी। बस दो फुलके।"

"नहीं, रहने दो। लंघन करने से बुखार ठीक हो जायेगा।" मिसिर किंचित् खिंचे हुए भाव में बोले।

मिसराइन की आँखें छलछला आयीं। मिसिर जानते थे शायद कि लंघनवाली बात यों ही तल पर गिरकर बिना लहर जगाये खो नहीं जायेगी। इसीलिए अन्यत्र देखते हुए भी कही गयी बात का असर जानने के लिए उनकी आँखें मिसराइन के चेहरे पर एक चण के लिए टिकीं, पर वहाँ आँखों में आँसू होंगे, यह उन्होंने नहीं सोचा था। वे एक गहन अपराध का भाव लिये उठ बैठे।

"बुरा लग गया तुम्हें। तो ले आओ खा ही लूँ।"

मिसराइन लौट गयीं। चलते-चलते उन्होंने आँचल का खूँट आँखों से लगाया था। मिसिर फिर चक्रवात में फँस गये। उन्होंने केहुनियों को गोद में अड़ाकर मुँह हथेलियों में डुबा लिया।

'क्या है अपना अब, जिस पर लंगर गाड़कर जहाज रोके रखूँ'—उन्होंने सोचा—'सब कुछ दे दिया। वर्तमान भी भविष्य भी। तो पाँच बीघे खेत के मामूली टुकड़े पर अपनत्व को टाँगे रहना कहाँ की बुद्धिमानी है? यह साला मोह भी पीछा नहीं छोड़ता। जाने कहाँ छुपा रहता है महीनों, बरसों कि कुछ पता नहीं चलता। लगता ही नहीं कि अपना क्या है, पराया क्या है। तभी कहीं अचानक किसी अँधेरी कालियादह से यह

अपनपौ सिर निकालकर फुफकारता है और मज़े से चलते जीवन में विष घोल जाता है। यहाँ की वैतरणी ही पार नहीं होती और यह मन पगला है कि अनदेखी वैतरणी को सोचकर अला नाहक़ सिर धुनता है, कौन किसको पार कराता है वैतरणी ?'

तभी जग्गन को खलील मियाँ की याद आती है। जाने कितनी बार उन्होंने खलील मियाँ से कहा कि तैयार हो जाओ तो लड़भिड़ कर तुम्हारा खेत वापिस करा दूँ। पर खलील मियाँ हैं कि टस से मस नहीं होते। सिर्फ़ तहज़ीब-तहज़ीब चिल्लाते हैं।

"मैं भला इन टुच्चे लोगों के रूबरू अदालत में खड़ा हूँगा।"

मियाँ एकदम भौंचक होकर इस तरह उनकी ओर देखते कि मिसिर को लगता कि सचमुच जैसे उन्होंने कोई अनुचित बात कह दी है।

"नहीं होंगे खड़े तो भूल जाइये सब कुछ। फिर क्यों इन्साफ़ी-बेइन्साफ़ी की बात करते हैं।" उन्होंने बड़ी रुखाई से कहा था।

मियाँ मुस्कराते रहे, बोले—"ज़मीन-जायदाद की बात तो क्या मिसिर जी, मैं खुद को ही भूल गया हूँ। खुदफ़रामोशी ही मेरा ईमान है अब तो।"

मिसिर को उस समय इस टेढ़े शब्द को सुनकर हँसी आ गयी थी। पर अब लगता है कि यह हँसने की चीज़ नहीं है। खुद को भूल जाना भी एक बड़ी बात है। इसमें शान्ति भी है और संतोष भी।

पर मैं खुदफ़रामोश नहीं हो सकता।

"जबर्दस्ती मेरा कुछ कोई छीन ले और मैं भाग्य के नाम पर हाथ पर हाथ धरे बैठा रहूँ। अपने को भूल जाऊँ। यह मुझसे नहीं हो सकता। जग्गन मिसिर उस माटी के नहीं बने हैं कि एक गाल पर चपत मारनेवाले के आगे दूसरा गाल कर दें।"

हाँ, मैं खुद अपना हक़ अपने से ज़रूर छोड़ सकता हूँ। ज़ोर-ज़बर्दस्ती करनेवाले को जग्गन मिसिर मरते दम तक इन्कार करेंगे, पर जिसे अपना सब कुछ दे दिया, उसे इन्कार कैसे करूँ। इसलिए अब खुद को ही इन्कार करना होगा।

खुदफ़रामोशी नहीं, खुदइन्कारी।

मिसिर धीमे-धीमे मुस्करा पड़े। जैसे उन्हें कोई बहुत बड़ा रहस्य सूझ गया हो। तभी मिसराइन हाथ में थाली लिये दालान में आ गयीं। ज़मीन पर एक तरफ कम्बल बिछाकर उन्होंने खाना रख दिया। मिसिर हाथ-मुँह धोकर कम्बल पर बैठ गये।

मिसराइन सामने पंखी लिये बैठी थीं।

"बिरिछ नहीं दीखता ?" मिसिर ने पूछा।

"दोनों बाप-बेटे गाँव चले गये।" मिसराइन धीरे-धीरे बोलीं।

"क्यों ?"

"भइया को काम था। कहने लगे हरज होगी। चले गये। अब तुम खाना खा लो, फिर बात होगी।"

"मुझसे बिना कहे क्यों चले गये ?" मिसिर का हाथ रुक गया। वे एकटक मिसराइन की ओर देखते हुए बोले—"यानी उनका सारा नाता तुमसे है। मैं कौन होता हूँ उनका। यही न ?"

"नहीं, यह बात नहीं है। असल में ग़लती मेरी है। मैं विरोध में जाने क्या-क्या बक गयी। तुम गुस्सा हो गये। ठीक ही था। मैंने जब-जब सोचा तो लगा कि तुम ठीक कहते हो। पराया-पराया ही है। अभी जब हम दोनों हैं ही तो लिखा-पढ़ी का क्या सवाल। आजकल के जमाने का क्या भरोसा। पता नहीं लड़का कैसा निकले, कैसा नहीं। तो झूठे कौन बिपत मोल ले। मैंने भइया से कह दिया कि वे बिरिछ को लेकर चले जायें।"

"तुम महा शक्की हो।" मिसिर बड़े इत्मीनान से बोले—"बिरिछ बहुत अच्छा लड़का है। सीधा, सज्जन और चुप्पा। ऐसा लड़का मिलना कठिन है। मैंने भी बहुत सोचा। मुझे लगता है कि जितनी जल्दी लिखा-पढ़ी हो जाये, उतना ही अच्छा। आदमी का क्या भरोसा। बिरिछ के नाम

रहेगा तो कम से कम 'सरधा' से याद तो करेगा। दूसरे लेंगे तो क्रिया-कर्म करने में भी टाल-मटोल करेंगे। तुम कल ही कमारो भेजकर बुलवा लो बाप-बेटे को।"

मिसिराइन गहन आश्चर्य से मिसिर की ओर ताकती रहीं। उन्होंने उस चिर-परिचित चेहरे पर व्यंग्य-विकृति, छल-छद्म के बारीक़ से बारीक़ भावों को खोजने-ढूँढ़ने की कोई क़सर उठा न रखी। पर मिसिर के चेहरे पर एक ममतालु उदारता और सहजता के अलावा कुछ न मिला। मिसराइन उस चेहरे में इस तरह खो गयीं कि उन्हें याद भी न रहा कि सामने की थाली खाली है और उन्होंने आत्मविभोरता में अपना एक बहुत पुराना नियम तोड़ने का अपराध कर डाला है।

वे अचकचाकर उठीं।

"नहीं, मैं अब नहीं लूँगा कुछ। यह तो मैंने तुम्हारा रुआँसा चेहरा देखकर खा लिया, वरना सचमुच लंघन करने का इरादा था आज।"

मिसराइन दरवाज़े में ठिठककर खड़ी हो गयीं और उन्होंने ग़ुस्से से आँखें तरेरकर मिसिर की ओर देखा। मिसिर मुसकराकर उठ गये।

● ●

अठारह

खलील मियाँ को ये चीज़ें समझ में आयी हों या न आयी हों, उनका आदर्शवाद उचित था या अनुचित, इसके बारे में तो कुछ कहा नहीं जा सकता, पर इतना सत्य है कि जग्गन मिसिर के सामने ये सारी घटनाएँ सूरज की तरह साफ़ थीं।

'रुपये का घमंड है देविया के प्रानियों को।' अक्सर बातचीत चलने पर, चाहे वे उसमें सीधे शामिल रहें या न रहें, यह वाक्य निर्लिप्त भाव से ज़रूर बड़बड़ाते।

जगेसर छुट्टी में घर आया था। पहले वह जौनपुर के किसी थाने में सिपाही था। बीच में कोशिश-पैरवी करके जमानियाँ आ गया। इधर फिर उसका तबादला जौनपुर ही हो गया था।

वह पहले से काफ़ी बदल चुका था। उसका साँवला शरीर पीला हो गया था, और चेहरे पर एक खास तरह की ऐंठ हमेशा छायी रहती थी। उसका सिर किंचित् लम्बोतरा था और जब वह चार अंगुल चौड़ी पट्टी कटा लेता था, तो उसका चेहरा ऐबी शीशे की परछाईं की तरह अजब नुकीला लगता था। इस बार जगेसर काफ़ी दिनों के बाद लौटा था। देवी चौधरी कल शाम स्टेशन से भारी बक्सा सिर पर लादकर

लाये। पीछे-पीछे एक हाथ में झोला और एक काँख में दोफुटा रूल दबाये जगेसर आ रहा था।

गाँव में घुसते वक़्त कटहे कुत्तों ने उसके स्वागत में आवाज़ बुलन्द की, तो जगेसर ने काँख का रूल निकालकर हवा में घुमाते हुए कहा—"भाग ससुर, नहीं देंगे एक 'फैट' बस साले 'डौन' हो जाओगे। इन कठ-पिल्लियाँ के मारे दिमाग़ गड़बड़ा जाता है। भाँव-भाँव-भाँव-भाँव। जइसा ई साला गाँव है, वइसे साले इहाँ के कुत्ते हैं!"

"का हौ जगेसर! अब ई साला गाँव हो गया, ऐं?" हरखू सरदार ने छावनी वाले रास्ते के पास जगेसर को कुत्तों पर गुस्सा करते सुन लिया था—"महावीर सामी कसम भइया, ई गाँव छोड़ के जो भी जाता है, उसकी आँख उलट जाती है। चार ठो रुपिया जहाँ टेंट में आयी कि बस दिमाग चढ़ा सिकहरे। अरे बेटा, इसी गाँव में तुम इत्ते से इत्ते बड़े ज्वान हुए हो, है कि नाहीं। महावीर सामी कसम जनमभूमि को गाली देना ठीक नहीं होता, कहो देवी चौधरी, साँच कि कोनो झूठ?"

"हाँ-हाँ, हरखू सरदार ठीकै है। एमा झूठ का? केहू पढ़-लिख नौकरी करके केतनी बड़ा हो जाये, मगर ई तो जनमभूमि है। अब चाहे अच्छी होय चाहे बुरी, मगर है तो माता समान।"

"ठीक बात है देवी चौधरी, ठीक बात है" हरखू सरदार परम प्रसन्न हो गए कि देवी चौधरी ने बेटे का पच्छ लेकर उनकी बात दोदने की कोशिश नहीं की। इसीलिए निःसंकोच उदारता से आशीष लुटाते हुए बोले—"अरे सरदार आजकल के चाहे पढ़वैया हों, चाहे नौकरिहा, अब पुरानी बातों को नहीं ढोते। का ढोवैं भाई? हमारे तुम्हारे में कम खोट है क्या? ई तो कहौ कि अबहीं संस बाकी है धरती में कि जगेसर जइसे लड़के निकल रहे हैं। महावीर सामी कसम हम तो किसी की बढ़न्ती देखकर रोवाँ नहीं गिराते। अरे, जैसा तुम्हारा बेटा वैसा हमारा। गाँव का गाँव ऊँचा हो बस। महावीर सामी कसम भइया, हम तो रोजीना भगवती

जी से यही मनाया करते हैं कि सबके लड़के जगेसर जैसे कमासुत निकलें। है कि नहीं?"

"हाँ-हाँ, दादा, ठीक बात है।" देवी चौधरी का सिर बक्से के भार से 'पिराय' रहा था। वे दुलकते हुए घर की ओर चल पड़े।

जगेसर हरखू सरदार की बात से बहुत ख़ुश हो गया। सीना फुला-कर यों चलने लगा, जैसे 'स्लो मार्च' का हुकुम हो गया हो। उसने अगल-बगल की दीवालों पर कसकर रूल मारा तो पानी-खाई भीत का लेंवन बिलबिला कर नीचे गिर गया। संधों से नोना लगी मट्टी झरझरा उठी। रास्ते में खड़े बैलों को खोदते, किसी की पूँछ मरोड़ते, किसी को ठोकर लगाते जगेसर अपने दरवाज़े की ओर चलता गया। उसका भारी थूथन वाला जूता गली में मचमचाता और तल्ले की बटनदार कीलों की रगड़ से कंकड़ियाँ छिटककर दूर जा गिरतीं। वह हर दो क़दम चलने के बाद अपने बदन को निहारता और खाकी 'पुलओवर' पर जगह-जगह टुन्ना देते हुए गर्द झाड़ता।

देवी चौधरी ने अपने आँगन में हुमक कर बक्सा उतारा। सिर पर रक्खी पगड़ी को उतारकर अपनी निर्लोम चाँद सहलाने लगे। तभी जगेसर की माई रसोईघर के दरवाज़े पर बैठी दही मथती हुई मुसकरायीं। उसको मुसकराते देख देवी चौधरी ने ऊपर से ग़ुस्सा और भीतर से गर्व भाव उकसा कर कहा—"माथा चरचरा गया। जाने का कुल भरे हैं बक्से में?"

"नज़र मत लगाओ।" देवी बो रउताइन कुछ और कहतीं कि जगेसर मचर-मचर जूता बजाता अँगने में आ गया।

"अब ई पैर-वैर भी नहीं छूता।" देवी बो रउताइन ने मन ही मन सोचा और लजायी हुई सी ज़ोर-ज़ोर से मथनी हिलाने लगीं। जगेसर बो चेहरे पर आधा घूँघट खींचे रसोईघर के दरवाज़े पर पल्ले की आड़ से झाँक रही थी।

जल्दी-जल्दी दही-मक्खन का काम निबटाकर रउताइन उठीं। कोनिया घर से एक कटोरे में चिवड़ा भरकर, ऊपर से नये गुड़ की भेली रखकर

और बहू को एक लोटा पानी लाने के लिए कहकर जगेसर के पास पहुँचीं।

जगेसर उस समय अपना बक्सा खोलकर अपने कपड़े निकाल रहा था। तह करके रक्खी हुई लुंगी, बनियान, कमीज़, लम्बी बाँह का स्वेटर।

"धत् तेरे की, इहै सब जाकड़ी माल भरे हैं साइत।" देवी चौधरी ने मन ही मन सोचा। उनका चेहरा उदासी से तिकोना हो गया।

"पानी पी लो, तो बक्सा खोलना-खालना।" रउताइन ने चारपाई पर कटोरा रखते हुए ममता से गद्गद होकर कहा। जगेसर ने कटोरे पर उड़ती हुई नज़र डाली और बोला—"ई सब का उठा लाई कंडम। ई सब दाना-भूसा हम नहीं खाते।" वह हल्के हँसा।

"ऐं?" आश्चर्य और अपमान से जैसे रउताइन का मुँह खुला का खुला रह गया—"अरे बचवा, ई नया चिवड़ा है और ई नया गुड़।" उन्हें लगा कि उनके सारे प्रेम और उल्लास को जगेसर ने ठोकर मार दी है।

"कौनो बनिया के इहाँ से मिठाई-विठाई नहीं मिली का?" देवी चौधरी मन के भीतर अपनी पत्नी के भावों को ही सहेज रहे थे, मगर ऊपर से लड़के की साहबी को दुलराते हुए बोले—"तू अबहीं उसे उहै जगेसर समझती हो का? अरे भाई, जइसा देस वइसा भेस। जइसा देवता वइसी प्रजा।"

जगेसर ने फिर बक्सा खोला और कोने की तरफ़ कपड़ों के भीतर हाथ डालकर बिस्कुट का डब्बा निकालकर चारपाई पर रखा। दूसरे कोने से चाय का प्याला और तश्तरी निकालकर बोला—"जरा पानी गरम कराओ। कइसे जाहिल लोगों से पाला पड़ा है।" उसने रसोईघर के सामने खड़ी अपनी पत्नी सुभागी की ओर देखकर कहा—"खड़ी-खड़ी का ताक रही हो? झट से पानी खौलाओ एक बटुली।"

सुभागी चिहुँक कर थोड़ा लजाती, थोड़ा हँसती, झपटकर बटुली में पानी डालकर चूल्हे के पास पहुँची।

"हाय मइया....कइसा मरद है। बोलता कैसा है साहब जइसा गिट-

पिट, गिट-पिट।" वह ख़ुशी के मारे बेना पटक-पटककर आग धधकाने लगी।

इधर रउताइन और देवी चौधरी यों खड़े थे भकुवाये जैसे दोनों को बिना अपराध नौकरी से अलग कर दिया गया हो।

चाय पीकर जगेसर ने बक्से से सामान निकाल-निकालकर सबको यों बाँटा, जैसे किसी यज्ञ के अवसर पर मंगनों को बख़्शीश दी जाती है। एक कोरी साड़ी और मोटी छींट का एकगजा कपड़ा माँ को, एक सतरंगी मोरपंखी साड़ी और रंगीन ब्लाउज तथा उठे हुए वक्षवाली नई कट की चोली अपनी पत्नी को, मोटिया की एक मिरजई और भागलपुरी सिल्क का चदरा देवी चौधरी को। एक धारीदार नीले रंग की पूरी बाँह वाली स्वेटर अपने छोटे भाई रमेसर को।

सामान पाकर माँ-बाप सभी मुसकरा उठे। माँ को लगा कि वाकई नया चिवड़ा और भेली देना गलती था। बाप को लगा कि जगेसर उन्हें भी कुछ समझता है, तभी तो बन्दों वाली मिरजई और 'सिल्केन' चदरा लाया, वरना ऐसा पोशाक मलकाने के बुढ़ऊ ठाकुर के अलावा इस देहात में और कौन पहनता था?

जगेसर घर से निकलकर दरवाज़े पर जाने लगा तो उसने ख़ाकी पैंट की जगह चारखाने वाली तहमत डाल ली। ऊपर क़मीज और पुलओवर था ही। लाल इमली का दुशाला कंधे पर रखकर हाथ में उसने एक हाथ लम्बी चोरबत्ती दबा ली। सारी तैयारी करके भी एक क्षण चारपाई पर चोरबत्ती लुढ़काता बैठा रहा। तभी सुभागी चावल धोने बाहर आयी। थाली में पानी डाल चावलों को हथेली से मसलकर थाली के निचले सिरे पर हाथ लगाकर जब वह पानी निथार रही थी तो उसने घूँघट की आड़ से आँखें कनखी कर जगेसर को देखा। जगेसर शायद इसीलिए बैठा था। उसने चोरबत्ती हाथ में लेकर यों दबाया, मानो सुभागी पर वह चाँदमारी का अभ्यास कर रहा हो। रउताइन कोनिया घर के दरवाज़े पर बैठी सूप से छाँटा हुआ धान पछोर रही थीं। उन्होंने सब कुछ देख लिया। साड़ी

और एकगजे छींट के तोहफे के कारण गुस्से से फैलते हुए होंठों को ऐसे बटोर लिया था गोया सामने कहीं मरी हुई छछुन्दर पड़ी हो, जिसे वह चाह कर भी हटा न पाती हों।

"भक्खर में जाव।" उन्होंने सूप को ठाँय से पीटते हुए कहा—"अइसा दरिद्दर सूप नाहीं देखा। सारा चाउर झर-झरकर भूसी में गिर रहा है।"

जगेसर घबड़ाकर उठ गया। सुभागी ने झपटकर थाली उठायी और रसोईघर में भाग गयी।

जगेसर के आने की खबर इतनी ही देर में समूचे गाँव में फैल गयी थी। उसका बइठका इकतल्ला था। अभी-अभी पक्का बनवाया है। एक सिरे से दूसरे तक चार-पाँच चारपाइयाँ पड़ी रहती हैं। एक तरफ़ चौकी है, जिस पर दिन में कम्बल-बिस्तरे आदि लदे रहते हैं। सामने सहन है। परे हटकर बैलों और भैंसों की चरनी। बाहर चौतरफ़ा चहारदीवारी खिंची हुई है। जगेसर बाहरी फाटक से जूते मचमचाता जब सहन में आया तो एक साथ कई लोग बोल पड़े।

"आवो हो सिपाही जी।"

सामने अलाव के चारों ओर प्वाल के बने मोढ़ों पर इन्तज़ार करने वालों की भीड़ जमी थी। सभापति सुखदेव मचिया पर बैठे थे। गोगई उपधिया तीखे धुएँ से परेशान थे। वे अपनी पनीली आँखों को लगातार काछ रहे थे। देवी चौधुरी, मन मारे बड़प्पन का सारा भार झुकी गर्दन पर सँभाले हुक़्क़ा पी रहे थे। सिरिया था जो नयी घटना की खोज में बैठा था और जल्दी ही उठने का मन्सूबा बाँध रहा था, ताकि सारी बातें सुरजू सिंह को भुगता आये। नये स्वेटर को रह-रहकर झाड़ता और प्वाल की झोली को झटकारता रमेसर था, जो मोढ़ा छोड़कर परे हट गया था ताकि 'भइया' को बैठने में दिक़्क़त न हो।

सिपाही जी मोढ़ा खींचकर अलाव के पास बैठ गये।

"का हो जगेसर बेटा!" गोगई महराज अपनी आँखों को मलते हुए बोले—"ई तो भइया सुना ही होगा तुमने कि सुखदेव राम जी सभापति

हो गये हैं इस गाँव के?" उन्होंने मुँह बगल करके ज़ोर से नाक छिनकी—"ई सरवा करसी के धुवाँ के मारे तो हालत खराब हो गयी। हाँ बेटा, तो सुना होगा न?"

"काहे ना उपधिया जी! हम लोगों की सर्विस ही अइसी होती है कि इधर-उधर के बीसों लोगों से मिलना-जुलना रहता है। घूम-फिर के ख़बर पहुँच ही जाती है। सुखदेव काका के जीतने की ख़बर मिली, तो रामदैं (राम कसम) हमने तुरत दो रुपिया का लड्डू चढ़ाया। थाने भर में बाँटा। मुंशी जी बोले, क्यों जी जगेसर सिंह, कोई आमद हुई है क्या? बेटवा है कि बिटिया? मैंने कहा, अरे मुंशी जी, जान लो कि बेटवा ही हुआ है। जिस गाँव में यादववंशी चारपाई पर नहीं बैठ पाते, उहाँ एक यादव मसलंद पर बैठ गया। है कि नहीं बेटवा होने जैसी खुशी की बात? मुंशी जी ताली पीटकर हँस पड़े। बोले, आओ यार, हाथ मिलाओ। आज तो सारा दिन ख़ाली गया। कुछ आमदनी नहीं हुई। अब जाके एक ख़बर मिली है ख़ुशी की!"

"मुंशी जी बेटावढ़ वाले लुटावन चौधरी के लड़के ही हैं न?" सुखदेव राम बोले।

"हाँ काका, अरे शोभाराम हो। तूं तो उन्हें अच्छी तरह जानते होगे?"

"हाँ-हाँ, काहे नहीं जानते। अपने देवीचक के सोमारु चौधरी के भैने हैं सब।"

"ठीक समझे। हाँ, वही हैं शोभाराम। बड़ा तेज मुंशी है। अब आपसे का बताएँ। हम तो बीसों थाने पर रहा। सैकड़ों मुंशी देखा। बाकी वो रोवाँ-पानी का मुंशी मिलना मुश्किल है। थानेदारों को नाच नचाता है। जिधर हल्के में निकल जाय, बस मलाई काटता चला जाता है। माल उड़ाता है। माल। क्या बात है? है भी ज्वान सात फुटा, दैत्य की तरे। पगड़ी में सुनहला झब्बा लगाये, जे बख़त पट्टी और बूट डाँट के चलता था, रोब टपकता था साब, हाँ।"

और एकगजे छींट के तोहफे के कारण गुस्से से फैलते हुए होंठों को ऐसे बटोर लिया था गोया सामने कहीं मरी हुई छछुन्दर पड़ी हो, जिसे वह चाह कर भी हटा न पाती हों।

"भक्खर में जाव।" उन्होंने सूप को ठाँय से पीटते हुए कहा—"अइसा दरिद्दर सूप नाहीं देखा। सारा चाउर झर-झरकर भूसी में गिर रहा है।"

जगेसर घबड़ाकर उठ गया। सुभागी ने झपटकर थाली उठायी और रसोईघर में भाग गयी।

जगेसर के आने की ख़बर इतनी ही देर में समूचे गाँव में फैल गयी थी। उसका बइठका इकतल्ला था। अभी-अभी पक्का बनवाया है। एक सिरे से दूसरे तक चार-पाँच चारपाइयाँ पड़ी रहती हैं। एक तरफ़ चौकी है, जिस पर दिन में कम्बल-बिस्तरे आदि लदे रहते हैं। सामने सहन है। परे हटकर बैलों और भैंसों की चरनी। बाहर चौतरफ़ा चहारदीवारी खिंची हुई है। जगेसर बाहरी फाटक से जूते मचमचाता जब सहन में आया तो एक साथ कई लोग बोल पड़े।

"आवो हो सिपाही जी।"

सामने अलाव के चारों ओर प्वाल के बने मोढ़ों पर इन्तज़ार करने वालों की भीड़ जमी थी। सभापति सुखदेव मचिया पर बैठे थे। गोगई उपधिया तीखे धुएँ से परेशान थे। वे अपनी पनीली आँखों को लगातार काछ रहे थे। देवी चौधुरी, मन मारे बड़प्पन का सारा भार झुकी गर्दन पर सँभाले हुक़्क़ा पी रहे थे। सिरिया था जो नयी घटना की खोज में बैठा था और जल्दी ही उठने का मन्सूबा बाँध रहा था, ताकि सारी बातें सुरजू सिंह को भुगता आये। नये स्वेटर को रह-रहकर झाड़ता और प्वाल की झोली को झटकारता रमेसर था, जो मोढ़ा छोड़कर परे हट गया था ताकि 'भइया' को बैठने में दिक़्क़त न हो।

सिपाही जी मोढ़ा खींचकर अलाव के पास बैठ गये।

"का हो जगेसर बेटा!" गोगई महराज अपनी आँखों को मलते हुए बोले—"ई तो भइया सुना ही होगा तुमने कि सुखदेव राम जी सभापति हो गये हैं इस गाँव के?" उन्होंने मुँह बगल करके ज़ोर से नाक छिनकी—"ई सरवा करसी के धुवाँ के मारे तो हालत खराब हो गयी। हाँ बेटा, तो सुना होगा न?"

"काहे ना उपधिया जी! हम लोगों की सर्विस ही अइसी होती है कि इधर-उधर के बीसों लोगों से मिलना-जुलना रहता है। घूम-फिर के ख़बर पहुँच ही जाती है। सुखदेव काका के जीतने की ख़बर मिली, तो रामदैं (राम कसम) हमने तुरत दो रुपिया का लड्डू चढ़ाया। थाने भर में बाँटा। मुंशी जी बोले, क्यों जी जगेसर सिंह, कोई आमद हुई है क्या? बेटवा है कि बिटिया? मैंने कहा, अरे मुंशी जी, जान लो कि बेटवा ही हुआ है। जिस गाँव में यादववंशी चारपाई पर नहीं बैठ पाते, उहाँ एक यादव मसलंद पर बैठ गया। है कि नहीं बेटवा होने जैसी खुशी की बात? मुंशी जी ताली पीटकर हँस पड़े। बोले, आओ यार, हाथ मिलाओ। आज तो सारा दिन खाली गया। कुछ आमदनी नहीं हुई। अब जाके एक ख़बर मिली है खुशी की!"

"मुंशी जी बेटावढ़ वाले लुटावन चौधरी के लड़के ही हैं न?" सुखदेव राम बोले।

"हाँ काका, अरे शोभाराम हो। तूं तो उन्हें अच्छी तरह जानते होगे?"

"हाँ-हाँ, काहे नहीं जानते। अपने देवीचक के सोमारु चौधरी के भैने हैं सब।"

"ठीक समझे। हाँ, वही हैं शोभाराम। बड़ा तेज मुंशी है। अब आपसे का बताएँ। हम तो बीसों थाने पर रहा। सैकड़ों मुंशी देखा। बाकी वो रोवाँ-पानी का मुंशी मिलना मुश्किल है। थानेदारों को नाच नचाता है। जिधर हल्के में निकल जाय, बस मलाई काटता चला जाता है। माल उड़ाता है। माल। क्या बात है? है भी ज्वान सात फुटा, दैत्य की तरे। पगड़ी में सुनहला झब्बा लगाये, जे बख़त पट्टी और बूट डाँट के चलता था, रोब टपकता था साब, हाँ।"

"तभी न लैन हाजिर हुए जे बा से। हमको सब मालूम है।" सिरिया को ये बातें बहुत नागवार लग रही थीं। इसलिए नहीं कि वह ठाकुर था और उसे यादव पुराण से चिढ़ थी, बल्कि इसलिए कि अब तक उसके बैठे होने की अहमियत से सभी उदासीन से लग रहे थे।

सिरिया की बात सुनकर जगेसर सिंह का चेहरा एकदम लाल हो गया। वह ओठों को विकृत बनाकर बोला—"तोहें कइसे मालूम कि शोभाराम जी लैन हाजिर हुए थे, अयँ ?"

"कहा न कि हमें सब मालूम है। जे बा से बेटावढ़ पलामू थोड़े न है। अरे भाई मनहरिया फूआ के यहाँ गये थे हम। फूफा कह रहे थे कि बड़ा घूसखोर था साला। लेकिन इस बार तो जे बा से बदफेली में पकड़ गया है। अब बचना दुस्वार है।"

"कौन सी बदफेली में पकड़ गये थे ?"

"अरे कौनो मेहरारू का मामला रहा। थाना में बन्द किये रहे ओका लोग रात भर। तू तो सब जानते ही होगे। जे बा से हमसे का कबूलवाय रहे हो ? है कि नाहीं ?" इस बार सिरिया ने कनखी देखकर गोगई महराज की ओर आँख मारी।

"हाँ हो जगेसर बेटा। ऊ बात तो हम भूली गये। सुना वो मेहरुआ वाले मामिला में तोहरो पर कुछ आँच आय गयी रही।"

"कौन साला कहता रहा कि हमारे पर आँच आय गयी रही ? जरा उसका नाम तो बताइये। रामदें, खींच के टाँग न चीर दिया तो असल जदुबंशी नहीं। ई साला गाँव तो बीरबावन पुर है। इहाँ इस लंका में हर साला बावनै हाथ का बनता है। कौन कह रहा है मादर....बोलिये न ?"

"अरे तो तू हमरे पर का भौहाय रहै हो बेटा। हम तो कह नहीं रहे। अरे भइया कान ही । कोई कह रहा था, सुन लिया। तोहरे पर आँच नाहीं आयी तो अच्छै न हुआ।"

"ई गाँव ही अइसा है।" देवी चौधरी गरदन झुकाये-झुकाये ही बोले, "परिआर साल मतहाई में नाती चल बसा, तो लोग फुसुर-फुसुर करके बतिआते कि मियाँ की रेहन दबाय लिया, भरी पंचाइत में झूठ बोलकर नाती की क़सम खा ली। उसका फल है। अरे उस साल की मतहाई में कितने लोगों के लड़के-फड़के उलट गये। उहौ लोग केहू की रेहन दबाये रहे का ?"

"कोई साला हमारे सामने काहे नहीं कहता ? चुटकी पर राखी रख कर सट से ज़बान न खींच दिया तो कहना। बाह रे बाह। ओड़ी भर रुपया गिनकर खेत लिया, तो हम झूठे हो गये। और ई बीरबावनपुर के लुच्चे जो कह दें सो ठीक।" जगेसर की आँखें आलू बराबर की हो गयी थीं, वह सिरिया की ओर घूरते हुए बोला—"तो तुम्हीं ने उड़ाया होगा, बेटावढ़ से आकर कि मेहरारू के मामिले में मुझ पर भी आँच आ गयी रही।"

"अरे हम काहे को उड़ावें, जे बा से, सुन लिया, हो गया। हमसे कोई पूछेगा तो हम कहेंगे। जे बा से तुमने पूछा तो हमने बतलाया। हम कथा-पुरान बाँचते फिरते हैं का ?"

"बाँचते नहीं फिरते हो, तो तुमने कहा कइसे ? तुमने गोगई महराज की ओर आँख मारी तो हमने देखा नहीं ? हम चरायें दिल्ली दिल्ली, हमें चराये घर की बिल्ली ?"

"अरे देखा है देखा सब। जे बा से हमसे मत लगो। बात चली तो कह दिया। हम क्या जौनपुर गये थे ? जब कौनो बात हुई होयगी, तभी न उड़ी है ?" सिरिया चुपचाप अलाव के पास से उठ गया—"मियाँ के न पावौं, तो बीबी के बकोटौं। अरे बाह रे बाह। सारा गाँव कहता है तो किसी का हाथ पकड़ने की मजाल नहीं है जे बा से। निर्बल आदमी को सभी रोब दिखाते हैं, हुँहू।" उसने गमछे को झटकारा और चल पड़ा। जगेसर उसे दहकती आँखों देखता रहा।

"जाने दो भाई।" सुखदेवराम जी बोले—"किसका-किसका मुँह बंद करोगे। ई सब तो जमाने का दोष है। अब पहले वाली बात नहीं रही। तब आदमी एक बात करने के पहले बीस बार तौलता था। अब तो जिसके

मुँह में जो आता है, बोल देता है। ई सब तुम्हारे बड़प्पन का लच्छन है बेटा। जब देखो कि सारा गाँव कटकटा कर तुम्हारी निन्दा कर रहा है तो जानो कि तुम बड़े आदमी हो रहे हो। दूसरे की बढ़न्ती देखकर लोग जलते हैं। का हो गोगई चाचा, है कि नहीं? जब हम पहले-पहल 'आसरम' से गाँव आये, तो आपने देखा कि नहीं कि जिसके मन में जो आता वही बक देता। अयँ?"

"अरे सुखदेव राम जी, अपनी बात छोड़ो बेटा।" गोगई महराज की आँखें अब बिल्कुल दुरुस्त हो गयी थीं। वे हथेली में सुरती मलते हुए बोले—"ऊ और बात थी। सुराजी जमाना रहा। तब की गाली भी भइया फूल की तरह लगती थी। तुम्हें याद है न, जब हम तोहरे सनमान में जलसा कराये रहे, जाने केतने भँडुवे कहते थे कि सुखदेउवा को मक्खन लगा-कर पेन्हाय रहा है। अरे सालो, हमसे कौन मतलब मक्खन आ सक्खन से। हम तो भइया अपने को महात्मा जी का मामूली सिपाही मानते थे। सब कुछ छोड़-छाड़कर हो गये फकीर सुरजवा के कारन। है कि नहीं? दिन-रात बस महात्मा गान्ही जिन्दाबाद। जो है सो, का मतलब दुनिया से? कुक्कुर भौंकते हैं और हाथी चलता जाता है। तो जगेसर बेटा, सुखदेवराम जी बहुत ठीक कहते हैं। ई सब इरखा है इरखा। दूसरों की बढ़न्ती देखकर नीच लोगों को जलन होती ही है। गोसाईं जी कह गये हैं न—

खलन हृदय अति ताप बिसेखी।
जरहिं सदा पर संपति देखी॥"

जगेसर कुछ न बोला। एक अजीब तरह का सन्नाटा चारों तरफ से घिरकर छा गया था। देवी चौधरी हुक़्क़ा गुड़गुड़ा रहे थे। गोगई महराज सुरती ठोंक रहे थे। रमेसर मुँह को बाँह पर टिकाये धुएँ से बचने के लिए आँखें बन्द किये था।

जगेसर गाँववालों की बुद्धि पर तरस खाता गुस्से के मारे भीतर ही भीतर जल-बुझ रहा था। एकदम मुर्दा हैं ये लोग। खलील मियाँ का खेत ले लिया, तो क्या हो गया? उस दिन अभी शोभाराम जी बता रहे थे कि

जाटों ने तो मुसलमानिनों को पकड़-पकड़कर गढ़मुक्तेश्वर में चकरी पर बैठा-बैठाकर ब्याह कर लिया। काहे नाहीं कोई हिन्दू बोल दिया उहाँ मुसलमानों के पच्छ में। तब तो सब मियाँ चिल्ला रहे थे कि पाकिस्तान लेंगे, पाकिस्तान लेंगे। अब तो सालों ने ले लिया न पाकिस्तान। जाओ उहाँ। यहाँ का पड़े हो भाई। रामदैं ऐसा काम किसी और इलाके में हुआ होता, लोग जयजयकार मचा देते। मगर ई गाँव है बीरबावनपुर। जिसे देखो वही रट लगाये है कि बेचारे ख़लील मियाँ के साथ 'अनियाव' हो गया। अरे हो गया 'अनियाव' तो हो गया। तुम्हारे में हिम्मत है तो रोक दो। अब सालों को कुछ नहीं मिला तो जौनपुर की उस हरजाई का मामला लेकर बदनामी कर रहे हैं।

शोभाराम जी लैन हाजिर हो गये तो क्या हो गया। कौन सी नाक कट गयी उनकी। जब तक पट्ठा रहा, शान से रहा। किसी भी दौरे पर बिना खस्सी, मुर्गा काटे-कटवाये मानता था? हज़ारों की रकम चीरी होयगी शोभाराम ने। बेटावढ़ में चौखुंटी हवेली उसी की खड़ी है कि किसी दूसरे की भी है? ई साले मरभुखे, का जानैं कि मौज़-मस्ती क्या होती है। हजारों माल उड़ाया शोभाराम ने। किस मेले-ठेले के मौके पर एक-दो लौंडियाँ नहीं आयीं उसके हाथ। कौन थानेदार था माई का लाल जो शोभाराम की मर्ज़ी के खिलाफ़ एक लाइन भी लिख दे। सबको खुश करके रखता था पट्ठा। जो घोड़े पर चढ़ता है, वही न गिरता है? दुनिया भर के सफेद टोपीवाले सालों ने मिलकर हल्ला-गुल्ला मचाया कि अंधेर हो गया, अंधेर हो गया। अखबार वाले तो अउर खार खाये बैठे थे। दे छापे पर छापा। दनादन खबरें 'औट' होने लगीं। रोज़ एक पन्ना शोभा-राम के खिलाफ़ छापते। शोभाराम और उस हरजाई का फोटो भी साथ-साथ निकलवा दिया। बड़ा वावेला मचा। तब कहीं जाकर बड़ी मुश्किल से सुपरडेन्ट साहब ने लैन हाजिर होने का हुक्म दिया।

मगर उस दिन भी पट्ठे के चेहरे पर ज़रा भी उदासी नहीं थी, हँस कर बोला—"अब हम तो चले यार जगेसर सिंह। बाकी गाँठ बाँध लो।

दो महीने के बाद ही लौटेंगे। तब एक-एक साले से समझेंगे, हाँ। ज़रा भी फिक़िर मत करना।'

वाह-वाह, क्या हिरदा था शोभाराम का। जाते वक़्त बोला—"कोठरी में हमरे वक्सा में ट्राँजिस्टर रेडिग्रो है। छुट्टी होय तो गाँव लेते जाना। एक ठो मियाँ गया रहा हज करने। सरवा अदन से चुरा के लाया था ट्राँजिस्टर। और भी बहुत सा माल उड़ाये था। हमने कहा कि बेटा डाल देंगे हवालात में, साँस नहीं आयेगी, नीचे से ऊपर। लगा गिड़गिड़ाने। वोही दिये रहा। ले जाग्रो प्यारे बजाना और शोभाराम को याद करना!"

शोभाराम की याद आते ही जगेसर हल्के से मुसकरा पड़ा। एक शैतान था सरवा। उसकी कोठरी में एक से एक चीज़ें थीं। नंगी औरतों की तस्वीरें। आसन की किताबें। रखता भी था साला किस तरह छिपा कर। दीवाल में ताखा था और ऊपर महावीर जी का फोटो लगाता था। उसी फोटो के नीचे ताखे में ई सब सामान रहता था। एक दिन जाने क्या मन में आया कि फोटो देखकर मैंने सोचा कि एक ऐसी ही तस्वीर मैं भी खरीदूँ। देखने लगा कि पीछे को तरफ कैसी है। तभी शोभाराम चिल्लाया—"हाँ-हाँ, ई क्या करता है रे जगेसर सिंघवा?" वह चौकी पर से कूदकर मेरे पास आ रहा।

"क्या हुआ?" मैं तो एकदम घबरा गया कि इस तरह चिहुँककर काहे बोल रहा है। मैं तस्वीर से अलग हटकर खड़ा हो गया।

"तूं तो यार हमारे गले में फँसरी डलवा देगा। मार्के की जगह पर हाथ डाल रहा था।"

मैं अचम्भे से उसके चेहरे पर देखता रहा तो वह बोला—"अबे भेड़ों की तरह क्या ताकता है टुकुर-टुकुर?" उसने हँसते हुए महावीर जी के पीछे हाथ डालकर ताखे में से किताबें और तस्वीरें निकालकर दिखलायीं। अरे राम रे! हँसते-हँसते पेट में बल पड़ गया। कैसी-कैसी तस्वीरें थीं। कोई ऊपर तो कोई नीचे, कोई दायें तो कोई बायें। कोई अधलेटी, तो

कोई अधबैठी। बाप रे, उस दिन तो ये सब तस्वीरें देखकर मेरा दिमाग ही फुस्स हो गया। असली रंगीन कोकशास्त्र!!

शोभाराम हँसते हुए बोला, "जाने कहाँ-कहाँ से जुटाया है ई इन्दर का अखाड़ा। समझे? ई सभी किताबें 'बइन्ड' हैं। यानी मना है। कोई खरीद-बेंच नहीं सकता इनको। एक से एक जुगत भिड़ाकर पा सका हूँ। एकदम से 'हाट' किताबें। हाँ। ऐसा सेट बड़े-बड़े अफसरों के पास भी मुअस्सर नहीं होगा। एक सेट और था सो दरोगा जी को दे दिया।"

रात घनी होने चली थी। देवी चौधुरी और रमेसर खाना खाने चले गये थे। कुहरे की झाँप मकानों और पेड़ों को अपने भीतर समेटने लगी थी।

गोगई महराज और सुखदेव खाना खा चुके। दोनों रोज़ ही देवी चौधुरी के दालान में सोते। इसलिए उनके लिए देर-सबेर का कोई सवाल ही न था। जगेसर जानकर देर कर रहा था। वो जानता था कि आज खाना खाने जाकर घर से लौटना न होगा। लोग खा-पीकर निबट लें। तभी जाना ठीक है। रात के सन्नाटे में लोगों की इस तरह की चुप्पी गोगई महराज को बहुत अखर रही थी। पर लाचार थे। जगेसर बहुत अधिक खामोश था। सुखदेव जाने कहाँ-कहाँ चक्कर लगा रहा था। अन्त में नहीं रहा गया तो गोगई महराज ने बात छेड़ी—"का हो नेता जी, एकदम से मुँह सी लिया आपने तो। अरे कुछ कहिये न?" अपने खुरदरे हाथों से अलाव का झोल टालते हुए बोले—"ये राज में तो सुखदेव राम जी अंग्रेजी जमाना से भी ज्यादा बिपत बढ़ गयी। जाने का हो गया है भइया कि कहीं कुछ सूझता ही नहीं।"

"ठीक कहते हो गोगई चाचा, कुछ समझ में ही नहीं आता। उहै धरती, उहै सिवान। सब कुछ वही है। पर कहीं साँस नहीं है। अब यह साल तो और भी फजीहत है। जोन्हरी का लावा और लिट्टी कै दिन चलेगी?"

"सुना रहा सुखदेव बेटा कि नहर आय रही है। कोई कहता था कि

सैयदराज़े तक खन भी गयी। पानी मिल जाता तो शाइत धरती में परान पड़ जाता।"

"राम भजो महराज जी।" जगेसर बीच में बोल पड़ा—"नहर नहीं, दूध की नदी आ जाये तब भी इस गाँव की यही हालत रहेगी। आप का समझते हैं कि नहर आ जाने से आदमियों का दिल बदल जायेगा? अरे ई जाहिल उजड्ड लोग हमेशा ही ऐसे रहेंगे। किसी को किसी का सुख फूटी आँख नहीं सुहायेगा। इधर-उधर बिना चुगली खाये किसी के पेट का अनाज पचता है? मैं जो कह रहा हूँ गाँठ बाँध लो गोगई महराज कि ई गाँव बिला जायेगा। देख लेना, कीनाराम बाबा का सराप सच्चा होकर रहेगा।"

"अरे अइसा असगुन मत कढ़ाओ जगेसर बेटा।" गोगई महराज के चेहरे पर एकाएक एक अजीब तरह की चिकनाहट दौड़ गयी—"आदमी सब जगह ऐसे ही होते हैं भइया। मसल है कि खाली पेट सैतान का डेरा। का करें लोग। दिनरात मर-मरकर कोड़ते-गोड़ते हैं। पसीना बहाते हैं। मरते-जीते हैं। तब भी पेट नहीं भरता। का करें। देखते नाहीं कि तमाम लोग खेखर की तरह हो गये हैं। किसो के चेहरे पर तुमको जरा भी रवन्नक दिखायी पड़ती है? जानो सबको पिशाच लगा है। हमने भी भइया एक से एक जमाना देखा। मगर ऐसा नहीं। भीतर ही भीतर घुन खाये और आदमी कुछ न कर सके।"

जगेसर गोगई महराज की बात से कुढ़ने लगा था। ई बुड्ढा भी अकेले किसिम का आदमी है। दिन भर इधर-उधर बतियायेगा। इससे-उसे लड़ायेगा। रात को कौड़ा पर बैठेगा तो पुराण बघारेगा। अच्छा भाँट खोजा है सुखदेव काका ने भी। दोनों मिलकर करैता गाँव में सरग उतारने चले थे। बस, जब देखो तब झंडा उठा है तिरंगा। गोजी में बाँधकर अकेले सारा गाँव घूम आता था गोगइया। साथ में चार-पाँच ठो चिलबिल्ले लौंडे ताली पीटते चलते थे।

पतली कईन तिरंगा झंडा।
सुक्खू चेला, गोगई पंडा।।

गोगई महराज झंडा उतारकर गरदन में लपेट लेते और गोजी लेकर लड़कों के पीछे कटकटा कर दौड़ते—"रहो ससुर लोगों, आज हम मार-मार के टाँग तोड़ डालेंगे। इन चिलबिल्लों के मारे कुछ नहीं होगा इस चौपट नगरी में। बाप रे बाप। 'ये ही' झंडा पर लाखों लोग कट-मर गये। जान हथेली पर लेकर जाने कितने फैर के सामने कूद पड़े। ओह झंडा की अइसी बेइज्जती। आज हम बिना हाथ-पैर तोड़े इन ससुरों को छोड़ेंगे नहीं।"

गोगई महराज चिढ़ते रहे। किटकिटाते रहे। मगर वे हमेशा सुखदेव राम जी के इर्द-गिर्द सरधावान लोगों को जुटाने के अपने अथक परिश्रम में लगे रहे। मगर उन्हें हमेशा ही कुछ चन्द तमाशबीन छोकरों और निठल्ले बूढ़ों के अलावा किसी की 'सरधा' नहीं मिली।

"सारी दुनियाँ में तिरंगा की बहार है भइया। मगर वाह रे चौपट नगरी, इहाँ केहू से सुराज से कौनो मतलब ही नहीं। सुखदेव राम जी जैसा कौल का पक्का नेता कहीं और होता तो लोग सर पर उठा लेते। बाकी इहाँ तो सब धान बाइस पसेरी। ई गाँव रसातल में जाकर रहेगा, मैं कहे देता हूँ। इसको लिख लो।" गोगई महराज बड़बड़ाते।

गोगई महराज की 'कनवस्सिन' का किसी पर कोई असर पड़ा हो या न पड़ा हो, उनके लड़के शीतलाप्रसाद पर गहरा असर पड़ा। ऐसे बन-बहारक अवारा बाप से बिना बाप का भला। उसने गोगई महराज को घर से मारकर निकाल बाहर किया। गोगई महराज ने अपने 'दुआर' पर बैठना छोड़ दिया। दिन रात बस सुखदेव काका के पीछे लगे रहते। सुखदेव काका चुनावों में लगातार हारते रहे। गोगई महराज उन्हें हमेशा अपने 'जागता जोतिस' का विश्वास दिलाकर परितोखते रहे। अब जाकर जाने किस तरह सुखदेव काका सभापति हुए हैं। गोगई महराज की उमंग का क्या कहना। अब ये सारे गाँव में सरग उतारने का फिर सपना देख रहे हैं। सितलवा ठीक कहता है। एसे बहेतू लोगों की यही दवाई है कि घर से निकाल बाहर किया जाये।

देवी चौधुरी और रमेसर खाना खाकर आ चुके थे।

"जावो हो सिपाही, खाना खा आवो।" देवी चौधुरी ने चीलम की राख कौड़े के पास गिराते हुए कहा—"का गोगई महराज, आज बड़ा रत-जग्गा कर रहे हैं ?"

"चलो हो सुखदेव बेटा, काफ़ी रात ढल गयी।" गोगई महराज ठेहुने पर हाथ रखकर उठे।

जगेसर ने कान पर चदरा लपेट लिया और चोरबत्ती को हाथ में लेकर घर की ओर चल पड़ा। रउताइन खा-पीकर घर में दरवाज़ा बन्द करके सो गयी थीं।

"माई सो गयी का ?" जगेसर ने सुभागी से पूछा।

"हूँ।" सुभागी लोटा में पानी ढालकर ठहर पर रख रही थी। जगेसर ने जूते का फीता खोला और ठहर में हेल गया।

"हाथ-पैर नाहीं धोना है का ?" सुभागी बोली।

"अरे बाह रे पंडिताइन! चलो-चलो, तो जाड़े में हाथ-पैर धुलाना।"

सुभागी ने खायक सामने परस दिया। जगेसर चुपचाप खाता रहा। सुभागी चूल्हे के पास जँभाती रही।

खाना-वाना खाकर जब सुभागी अपने घर में आयी तो जगेसर चारपाई पर रज़ाई ओढ़े लेटा था। चोरबत्ती जला-जलाकर कड़ियाँ गिन रहा था।

चारपाई पर आने के पहले सुभागी ताखे में रक्खे दीये के पास पहुँची। ज्योंही उसने आँचल से हवा करके दीया बुझाना चाहा कि जगेसर बोल पड़ा, "दीया काहे बुझाती हो ? जरा दीये के उजाले में देखूँ तो कि तुझे 'वाडिस' फिट हुई कि नहीं ?"

"क्या ?" सुभागी कृत्रिम गुस्से से बोली, "शहर में जाकर आदमी बेसरम हो जाता है का ?"

"इसमें बेसरमी की कौन सी बात है भाई। हम अपनी मेहरारू को ही देख रहे हैं न कि किसी और को ?"

सुभागी कुछ न बोली तो जगेसर ने उसका हाथ पकड़कर अपने ऊपर खींच लिया।

"हाँ, है तो ज़ोरदार चीज़। हाथ सरक जाता है। हम तो समझे कि साला जट रहा है साटन-वाटन कहकर।"

"अच्छा हटो।" सुभागी ने उसका हाथ बटोरकर एक तरफ कर दिया।

जगेसर मूर्ख की तरह हीं-हीं-हीं हँसने लगा। उसे सुभागी का इस तरह गुस्सा होना अच्छा लगा।

"अम्मा काहे सो गयी इतनी जल्दी ? पहले तो बिना खाना-वाना खिलाये हटती न थीं ?"

"गुस्सा हैं। कह रही थीं जमाना उलट गया है। अपनी मेहरारू को कैसा-कैसा सामान लाया। मोरपंखी साड़ी। साटन की चोली। और बाप-माय को कइसा 'दछिनहीं' चदरा और कोरी साड़ी थमा दिया। इहै है जमाना। मर-मर के लड़कों का गूह-मूत काछो। पालो-पोसो। बड़ा होने पर ठेंगा दिखा देते हैं।"

"अच्छा, तो उनको भी साटन की चोली चाहिए थी का ? बूढ़ भयीं। अब क्या उठान वाली चोली पहिरेंगी ?"

सुभागी खिलखिला कर हँस पड़ी—"बूढ़ी हुई तो क्या मन भी बूढ़ा हो गया ?"

"हुँह !" जगेसर ने मुँह बिचका लिया।

अचानक रात भारी हो गयी। जगेसर चुप हो गया था। मन के भीतर कहीं कुछ मुरझा गया था। उसे लगा कि अचानक चढ़ी हुई रात उतर गयी है।

"अच्छा, छोड़ो ई सब। जिसे जो सोचना हो सोचे। सारी दुनिया की परवाह करें तो जीना मुहाल हो जाय। आवो एक चीज़ दिखायें।"

जगेसर ने अपने कुर्ते के पाकेट से हाथ डालकर एक छोटी सी किताब निकाली।

"यह देखो ।"

"ई का है ?" सुभागी थोड़ा उदास होकर बोली—"हम तो जाने कोई बढ़िया चीज़ निकाल रहे हो। मेरे लिए तो 'करिया अच्छर भैंस बराबर' है। यही जानकर मजाक उड़ाने को लाये हो क्या ?"

"अरे नहीं। ई पढ़नेवाली किताब नहीं है पंडिताइन। ई तमाशा की किताब है। एक से एक तमाशा है इसमें। देखोगी तो तबीयत खुश हो जायेगी। हाँ !"

सुभागी ने किताब ले ली। उलटकर देखने लगी। दो-चार ही पन्ने उलटे होंगे कि उसने किताब झटक कर एक तरफ फेंक दी। उसका चेहरा लाज के मारे लाल हो गया था।

"छिः छिः, दोनों ने ऐसे बेपर्द होकर तस्वीरें खिचवायी हैं। बड़े निर्लज्ज हैं।"

"इसमें लाज-निलाज की क्या बात है ? करते तो हैं सभी ऐसा, मगर ऊपर से मुँह बनाकर छिः छिः करते रहते हैं। ई सब बड़े-बड़े साहब लोगों की तस्वीरें हैं। विल्लाइत में छपी है ई किताब। तू का जानो कि कहाँ का हो रहा है ? दिन भर चूल्हा-चक्की। रात में लाज-सरम। ई भी कोई जिन्दगानी है ?"

"अच्छा तो इहै सब पढ़ते-देखते रहते हो थाने पर बैठकर ?" उसने हँसते हुए कहा।

"तू का समझती हो ?"

"समझती तो नहीं थी, मगर अब समझी। लोग कहते थे कि तूँ जौनपुर की कौनो भटिहारिन के संगे पकड़े गये तो हमें बिसवास नहीं होता था। बाकी लगता है कि बात सही थी।"

"क्या सही थी बात ? तूँ भी साली शोहदों की बातें दुहराती है ?" उसने गुस्सा होकर कहा।

"शोहदों की बात क्यों ? सभी लोग कहते हैं।"

"कौन कहता है ?" अयँ, बोल, कौन कहता है ?"

जगेसर रज़ाई फेंककर तमतमाया हुआ उठ बैठा। उसने सुभागी की पीठ पर ज़ोर का एक हाथ दे दिया—"हरजाई कहीं की। तेरा कोई भँड़ुवा कह रहा होगा। तो तू साली गाँव-गाँव घूमकर हमारी बदनामी सुनती है। अयँ ?" उसने खींचकर एक थप्पड़ उसके गाल पर जड़ दिया।

"काट डाल कसाई।" सुभागी सिसक-सिसककर रोने लगी—"सारी दुनिया कहती है। तेरे लच्छन से लगता है। तू अइसी किताब पढ़ता है। अइसी तस्वीर देखता है। ई का कौनो भलेमानुस का लच्छन है ?"

"साली, ज्यादा जबान मत चला। नहीं सट से खींच लूँगा जीभ राखी लगाकर हाँ।"

सुभागी चुप हो गयी और धीरे-धीरे हुटकने लगी।

जगेसर गुस्से के मारे जलता-उफनता वैसे ही बैठा रहा। सारा गाँव साला दुश्मन हो गया है। ले-देकर एक सुभागी थी जो अपनी थी। ई भी साली बहक गयी।

सब जलते हैं। इन लोगों को हमारा अच्छा खाना-पीना खटकता है। मैं क्या इससे डर जाऊँगा। ई नहीं होगा। मैं इन बेवकूफ़ ज़ाहिल लोगों के सामने माथा नहीं झुका सकता। ई बाबू साहब हैं। ई पण्डित जी हैं। ई मुखिया जी हैं। हुँह ! मैं क्या किसी का नौकर हूँ कि इनके पीछे-पीछे हाथ जोड़कर घूमता रहूँ। कहते हैं कि ऐंठकर चलता है जगेसरा। सिपाही क्या हो गया, अपने को लाट गवर्नर समझ लिया। हाँ, हाँ, समझ लिया। अब ऊ जमाना गया कि ठकुराने के एक अदने छोकड़े को देखकर बड़े-बूढ़े चारपाई छोड़कर उठ जाते थे। अपना राज है। हम किसी से कम हैं क्या ? कोई बस नहीं चला, तो सालों ने झूठ-मूठ का जोड़कर उड़ा दिया कि जौनपुर के मामिले में मैं भी था। था तो तुम्हारे बापों का क्या ?

सुभागी अभी उसी तरह दोनों हाथों में मुँह छिपाये हुटक रही थी। इस बार जगेसर ने खुद उठकर दीया बुझा दिया। सुभागी को पकड़कर उसने रज़ाई के भीतर कर लिया। सुभागी कुछ न बोली। जगेसर ने उसे

खींचकर अपनी बाँहों में भर लिया। वह एक मुरदे के समान उसकी बाँहों में बँधी रही।

•

जगेसर को गाँव आये पाँच-सात दिन बीत चुके थे। उसके दरवाज़े पर दिन भर नवचे लड़कों की भीड़ लगी रहती। हँसी-ठट्ठा, हल्ला-गुल्ला। कभी ताश का खेल, कभी धौल-धप्पा, कभी ट्रांजिस्टर के गाने। वह अपने दरवाज़े से उठकर न किसी से मिलने गया, न कुछ खास लोगों को छोड़-कर, जो उसकी अनुपस्थिति में भी अनेक कारणों से उसके दरवाज़े पर जमे रहते, कोई उससे मिलने ही आया।

सुखदेव राम जी दुनिया से बहुत नाराज़ रहते हैं। नया ज़माना क्या आया, साले सभी चालाक हो गये हैं। कहीं दाल ही नहीं गलती। पहले ज़मींदार था, तो सब सीधे थे, गऊ थे। बड़े प्रेम से माथा झुकाते। कहीं खाले-ऊँचे पैर फँस जाता, तो खुद बिना कहे ज़मींदार की मुट्ठी में रुपये थमा आते थे! ज़मींदार इन्हें सीधे नहीं चाँपता था। बस, औसर खोज कर कहीं फँसा देता था। दो फ़रीक़ लड़ जाते थे और दोनों बारी-बारी से अपना-अपना पच्छ मज़बूत बनवाने के लिए ज़मींदार के पैरों पगड़ी और थैली रख आते थे।

अब साला ई नया राज है कि कुछ न करो तो बद्दू बनो, करो तो बद्दू बनो। साले गला फाड़कर चिल्लाते हैं कि अन्धेर हो रहा है। अपने ही लोग अपने को लूट रहे हैं। जिसे देखो वही गांधी टोपी पर कूड़ा फेंक रहा है। अरे सालो, इसी टोपी का असर है कि थाना, पुलुस, नेता, अफ़-सर सभी को समझा-बुझाकर काम करा लेता हूँ। वरना कहीं न तो स्कूल की इमारत पर छत पड़ती, न चमारों के लिए कुआँ बनता, न गाँव की गलियों में नाबदान बनते। किसका-किसका काम नहीं सलटाया। किसकी गवाही नहीं की। जब भी कचहरी-फ़ौजदारी हुई, पब्लिक के साथ खड़ा

रहा। पर उसका कुछ नहीं। खरच-वरच के लिए जो बीस-पचीस लिया, उसकी खोज सभी साले करते हैं।

अब वह भी गया। अब तो इस गाँव में ऐसी बारदातें होती हैं कि कोई थाना-पुलिस में रपट भी नहीं करता। ऐसा लीचड़ निहंग गाँव शायद ही कहीं हो। एक भी आदमी नहीं जो हाईकोर्ट ठेकाने की बात करे। बस, टुच्ची बारदातें रह गयी हैं। चोरी, चमारी आशनाई। खेत कट जाते हैं रातों रात, मवेशी खूंटे पर से या सिवान में से हाँक दिये जाते हैं दिन-दहाड़े, पर कोई रपट नहीं। कहीं पंचायत नहीं। सबको मालूम है कि किसने क्या किया। चोरी का जवाब चोरी। चमारी का जवाब चमारी। अब वे शानवाले मरद कहाँ रहे कि जोरू के तन को साड़ी बेचकर हाईकोर्ट तक लड़ते रहे।

"सुनो हो बेटा जगेसर।" सुखदेव राम जी यही सब सोचते निराश भाव से बोले—"अभी एक पखवारा पहले फेरू सिंह का बैल खूंटे पर से ग़ायब हो गया। मैंने कहा, बाबू साहब, रपट करा दो। पंचाइत में भी, थाना में भी। बोले, ई सब उपदेश किसी गँवार-बेवकूफ़ को दीजियेगा। बैल तो गया ही, सौ-पचास से पुलिस-दरोगा की टेंट भी गरम करें? दस-पाँच सभापति और सरपंच को भी दें? मुझे मालूम है कि बैल कहाँ गया। पुलुस-थाना में जाकर और जी हलकान करें?"

"फिर क्या हुआ?" सहसा जगेसर को इस केस में दिलचस्पी आने लगी थी।

"हुआ क्या, ई तो हम नहीं जानते, महीने भर के बाद छबिल्ला सिंह की भैंस ग़ायब हो गयी।"

"अच्छा? तो साफ़ है कि उसमें फेरू सिंह का हाथ रहा।"

"अब भाई, ई कौन जानता है? मगर तमाशा तो यह कि छबिल्ला सिंह ने भी रपट नहीं करायी।"

"मत करावें। जो जैसा करेगा वैसा भरेगा।"

"सो तो ठीक है। बाक़ी ऐसा होने लगेगा तो हम क्या करेंगे? नाम के लिए सभापति बन जाने से क्या हुआ, जब कोई पूछेगा ही नहीं।"

"वाह चच्चा !" जगेसर ताली पीटकर हँस पड़ा—"तुम देहाती लोग निरे घोंचू होते हो। किसी ओहदेदार को पब्लिक क्या प्रेम से पूजती है ? अरे, चाहते हो कि कोई पूछे, कुर्सी जगे, तो तिकड़म करो। अब एक आदमी को एक से लड़ाने से कुछ नहीं होता। ऐसी जुगुति बैठाओ कि गोल से गोल लड़े। मार-पीट हो। चन्दा-बेहरी लगे। अब अकेले की आन पर जान लड़ानेवाले कम दीखते हैं, बाकी पार्टी या गोल की आन पर बारी-बारी से जान देने को सब तैयार रहते हैं। है कि नहीं। अकेले-अकेले की लड़ाई में किसी एक के पास से चार-पाँच सौ निकलना मुश्किल होता है। बाक़ी दो गोल में ठन जाये तो देखते-देखते हज़ार रुपये का चन्दा उतर जाता है।"

"इसको कहते हैं अक्किल का खेल।" गोगई महराज अब तक चुप थे। जगेसर की बातें सुनकर उनका चेहरा आश्चर्य और खुशी से चमक उठा। "समझे न सुखदेव राम जी, बिना अक्किल के सोने की लंका जल के राख हो गयी। बाकी अक्किल देखिये कि उसी के बीच विभीषण का घर भी रहा, मगर ऊ बाल-बाल बच गया, हाँ। इसी से कहा है कि नर तो कुछ नहिं होत है अकिल होत बलवान।"

गोगई महराज को लगा कि उन्होंने बहुत बड़ी बात कह दी है। पिछले महीने भर से सुखदेव राम जी ने उन्हें खैनी के लिए इकन्नी रोज़ की दच्छिणा देनी बन्द कर दी थी। जब भी गोगई महराज मुँह उबीसने या ज़बान ऐंठने की बात करके इशारे से खैनी की ओर संकेत करते, सुखदेव राम जी अपना रोना लेकर बैठ जाते ! ग्रामसभा की आमदनी का ज़रिया एकदम निश्चित था। अब सरकारी सेक्रेटरी आ गया है। खुद तनख़ा पाता है। साला एक-एक पाई का हिसाब रखता है। बाहर की आमदमी बिल्कुल बन्द। लड़ाई-झगड़े खूब होते हैं, मगर ग्राम सभापति को कोई साला पूछता ही नहीं ! आठ-नौ महीने हो गये, एक जोड़ी खादी धोती लाये थे। तब से कई बार सोचे कि कहीं से पचीस-तीस रुपये का जोगाड़ हो तो 'डरेस' नया करा लें। दो धोती, दो जवाहिर जाकिट, दो टोपी से काम चल जायेगा। मगर वो भी नहीं हुआ।

सुखदेव राम जी की आँखों के आगे धुँधलका छाया तो गोगई महराज को लगा कि अमावस की रात घिर गयी है। अचानक जगेसर राम की बातें लूक की तरह आसमान से गिरीं, और गोगई महराज नयी आशा से प्रेरित होकर बोले—"अरे ज़रा अपने पौरुख को याद करो सुखदेव राम जी, कहाँ आपका ऊ प्रण और कहाँ ई निराशा। आपका जन्म महान् नेता बनने के लिए हुआ है। अगर आप इतने में ही निराश हो जायेंगे तो भला हम लोगों का क्या होगा ?" हठात् गोगई महराज चुप हो गये। उनका सारा शरीर रोमांचित हो गया। उन्होंने अपनी हथेली सुखदेव राम जी के आगे फैला दी। लंका-दहन की लीला में समुद्र के किनारे निराश बैठे कपि-भालुओं से घिरे हनुमान जी से ओजस्वी बातें करके उन्हें लल-कारते हुए बहुअरा के नगीना महराज जामवन्त का पाठ करते हुए ऐसे ही हाथ फैला देते थे।

जामवन्त कह सुनु हनुमाना। का चुप साहि रहा बलवाना।

"मैंने आपसे कहा न कि मेरे पास कानी कौड़ी भी नहीं।" सुखदेव राम जी तिड़ककर बोले—"और आप हैं कि जब देखो हाथ फैला देते हैं।"

सुखदेव राम जी का यह रौद्र रूप देखकर गोगई महराज बहुत सहम गये। उन्होंने अपने प्रेरणाप्रद हाथ को समेट लिया। अचानक उनका चेहरा उदास हो गया और वे एक तिनका तोड़कर अपना दाँत खोदने लगे।

तभी जैसे गोगई महराज की उदासी को तोड़ते हुए 'डगड़-डगड़-डमक-डमक" डमरू बज उठा। देवी चौधुरी के बइठके के सामने गली से एक बायस्कोप वाला डमरू बजाते, शोर करते लड़कों की तालियों के बीच-बीच में 'अजाब लीला, देख अजाब लीला !!' चिल्लाते चला जा रहा था।

"ए बायस्कोप !" जगेसर ने जोर से हाँक लगायी—"अरे बायस्कोप वाला—चलो, चलो इधर।" लड़के अचानक रुक गये। वे काफ़ी देर से बायस्कोप वाले की चिरौरी-मिनती कर रहे थे। बायस्कोप वाला दक्खिन पट्टी में तमाशा दिखाकर उत्तर पट्टी में आया था। वह चाहता था कि ताली बजाते लड़कों के साथ पूरी पट्टी घूमकर विज्ञापन कर ले तो किसी

ठिकाने पर सन्दूक उतारकर तमाशा दिखायें। लड़के उसकी इस हरक़त से निराश होकर खिजला गये थे। जगेसर ने पुकार लगाया तो लड़के बहुत खुश हुए। उन्होंने चीख-चीखकर बायस्कोपवाले का आगे बढ़ना मुहाल कर दिया। बिना योजना के उन्होंने दो टुकड़ियाँ बना लीं। एक ने बायस्कोप वाले को आगे से, दूसरी ने पीछे से घेर लिया। बायस्कोपवाला जब जगेसर के सहन में घुसा तो लड़कों के चेहरे पर गर्व और खुशी का ऐसा रूप था, मानो उन्होंने किसी बहुत बड़े शातिर चोर को पकड़ लिया है। उनकी थरथराती मुख-मुद्रा कह रही थी कि 'अब बोलो बच्चू'।

क़रीब आधे घंटे तक बायस्कोपवाला अपनी सधी आवाज़ में सन्दूक के भीतर बारी-बारी से आनेवाली तस्वीरों पर 'कमेंटरी' सुनाता रहा।

बायस्कोपवाला पतला-दुबला, छरहरे बदन का आदमी था। उसके मुंह पर चेचक के घने दाग थे और कानों की ललरी से खूब सटी-सटी पतली बालियाँ। वह सिर पर राजस्थानी ढंग का मुरेठा बाँधे था। कमर के नीचे चारखाने की तहमत और पैरों में उलटी मूँछोंवाले जोधपुरी जूते।

"हम लोगों के जमाने में दूसरी तस्वीरें होती थीं। क्यों जी गोगई महराज !" सुखदेव राम जी बायस्कोप के शीशे से आँखें हटाकर बोले—"तब बीस मन की धोबन, हबड़ा पुल, रानी विक्टोरिया का ममीरल, लाल क़िला, ताजमहल, मेम का बच्चा (मरियम और ईशु) वग़ैरह की तस्वीरें रहती थीं।"

"इसमें का का है ?" गोगई महराज अपनी असमर्थ आँखों से पानी काछते हुए बोले।

"आपने सुना नहीं क्या ? ई तो चिल्ला-चिल्लाकर कही रहा है। भगत सिंह को फाँसी दी जा रही है। घोड़े पर सवार झाँसी की रानी की तस्वीर है। लाल किला पर नेहरू जी झंडा फहरा रहे हैं। सेना की परेड हो रही है। गांधी जी की भी तस्वीर है। बग़ल में नेहरू जी बैठकर कुछ पढ़ रहे हैं। रजिन्दर बाबू का भी फोटो है।"

"ऐं, तब तो ई पूरा सुराजी बैसकोप है हो सुखदेव राम जी, इसे देख कर तो जियरा जुड़ा जाता होगा।"

"अरे मारो गोली।" जगेसर राम ने मुंह विकृत करके कहा—"कुल पाँच-सात बढ़िया चीजें हैं। बाकी समूचा सड़ियल। हमको तो भाई नागिन फिल्मवाला फोटो सबसे अच्छा लगा। जौनपुर में लगा था ई सिनेमा। मैंने और शोभाराम जी ने बिला नागा करीब बीस दिन तक देखा था इसे। जवने वक्त गाना गाती है—जादूगर सइयाँ, छोड़ मेरी बइयाँ, हो गई आधी रात....कि क्या बतायें आपको। लगता है कि साली हाथ भर की किरिच धँसती चली जा रही है कलेजे में। हाँ !"

"सरकार मेरी बख्शीश मिल जाये।" बायस्कोपवाला अधीर होकर बोला।

"क्या ?" अचानक जगेसर नागिन फिल्म के जादुई माहौल से निकल कर बोला—"बख़्शीश ? तुम्हें शर्म नहीं आती कि तुम बिना हुक्म के गाँव में घूम-घूमकर लोगों से पैसे और अनाज वसूलते हो। ग्राम-सभापति से 'परमिट' लिया था बैस्कोप दिखाने का ? अयँ कितना कमाया है अभी तक ?"

बायस्कोपवाला धीरे से मुस्कराया। उसे लग रहा था कि सिपाही जी मज़ाक कर रहे हैं। सिर्फ़ मुझे परेशान करने के लिए बन्दरघुड़की दे रहे हैं। जगेसर उसका मुस्कराना देखकर काफ़ी चिढ़ गया।

"तुम हँस रहे हो ? समझते हो कि यह लड़कों का खेल है। बन्द कर देंगे अंधी कोठरी में कि साले तुम्हारा दिमाग़ ठंडा हो जायेगा। कहो सुख-देव चच्चा, आप खेला-मदारी, तमाशावालों से कमीशन नहीं लेते क्या ? आप लोगों ने तो सारा इन्तज़ाम चौपट कर दिया है। बाक़ी मेरे रहते यह नहीं हो सकता। मैं आ गया हूँ। देखते रहिये इन सालों को कैसे ठीक करता हूँ। ग़रीब जनता को लूटते हैं हरामी। सड़ियल तस्वीरें लेकर सिनेमा दिखाते हैं मादर....। चलो निकालो ! खोलो, दिखाओ जेब। कितना पैसा कमाया इस गाँव से ?"

बायस्कोपवाला सहसा रुँआसा हो गया—"क्या कमाया है सरकार !

सुबह से इस वक्त तक माथे पर सन्दूक लेकर घूम रहा हूँ। चिल्लाते-चिल्लाते गला बैठ गया। और मिला क्या ? कुल दस बारह आने पैसे।" उसने जेब में हाथ डालकर पैसों की रेज़कारी बाहर की। सभी छोटे सिक्के थे दो-दो तीन-तीन पैसे वाले। "यही है न दिन भर की कमाई। इसे ही आप लूटना कहते हैं।"

"हमें चराओ मत बैस्कोपवाले। हमें चरका देने की कोशिश मत करो। अभी लेता हूँ तुम्हारी नंगाझोरी। और इस गठरी में क्या है ? यह कमाई नहीं है ? अयँ।"

"इसी के लिए तो सरकार देश छोड़कर विदेश में मारे-मारे फिर रहे हैं। इसी दो मुट्ठी दाने के लिए नहीं तो फिर और क्यों।"

"हमसे इससे कुछ मतलब नहीं। ग्राम सभा का टैक्स दो और जाओ ठाट से तमाशा दिखाओ। लेकिन बिना टैक्स दिये मैं हिलने नहीं दूँगा। इसे जान लो। ज्यादा आनाकानी करोगे तो सन्दूक जब्त। ग्राम सभा के पास रहेगा बैस्कोप और गाँववालों को मुफुत में रोज सिनेमा दिखाया जायेगा। क्यों जी गोगई महराज, है कि नहीं।"

"ठीक कहते हो जगेसर बेटा, ठीक कहते हो। सभी गाँवों में टिक्कस वसूला जाता है। ई तो कहो कि यह सुखदेव राम जी की किरपा थी कि यहाँ किसी को कुछ नहीं कहा जाता। बाकी यह कब तक चलेगा। नेम हैं तो निभाना पड़ेगा। सुनो जो बैस्कोपवाले। सिपाही जी की बात मानकर गला छुड़ाओ। नहीं ऐसा फँसोगे कि छट्ठी का दूध याद आ जायेगा।"

बायस्कोपवाले ने रेज़कारी वाली हथेली फैला दी—"यही है मेरी कमाई सरकार, जो लेना हो ले लो। नया ज़माना है। ग़रीबों को ही लूटते हैं सिपाही-दरोगा भी।"

जगेसर राम ने एक झपट्टा मारा और सारी रेजकारी मुट्ठी में दबोच ली।

"चलो उठाओ यह जाकड़ी सन्दूक़ और भागो।" उसने बायस्कोप पर ठोकर लगाते हुए कहा—"अभी लूटनेवाले तुमने देखा कहाँ।"

बायस्कोपवाले ने आँखें पोंछीं और लम्बी साँस खींचता हुआ बायस्कोप के पास पहुँचा। उसने अन्यमनस्क भाव से सन्दूकचे को उठाया, घुटने का सहारा देकर ऊपर की ओर किया। सर को झुकाकर बक्से को माथे पर रख लिया। एक अजीब मार-खाई दृष्टि से उसने वहाँ खड़े लोगों को देखा और गली में खो गया।

"अब ?" जगेसर ने हँसते हुए सुखदेव राम जी से पूछा। वह रेज़कारी गिन रहा था।"

"कितना है ?"

"पन्द्रह आने। अब कुछ हो जाये नाश्तापानी सुखदेव चच्चा। है कि नहीं ?"

"हाँ-हाँ, जो इच्छा हो तुम्हारी।"

"मेरी खैनी के लिए दो-एक आने दे दो जगेसर बेटा।" गोगई उपधिया अतीव कातर ढंग से बोले।

"आपको तो बस खैनी की रट लगी है।" सुखदेव राम के चेहरे पर घृणा का भाव उभर पड़ा। "दे दो यार इन्हें एक आना पैसा। नहीं जो कुछ खाओगे, पचेगा नहीं।"

जगेसर ने एक पाँच पैसे वाला सिक्का उठाया और उसे गोगई महराज की ओर उछालते हुए बोला—"लीजिए गोगई महराज। बाभन हर पैदावार में जब अगाऊ लेता है, तो कमीशन में क्यों नहीं लेगा।" वह हो-हो करके हँसा।

गोगई महराज ने सिक्का यों पकड़ा जैसे पिंजड़े में बन्द बनमानुख की ओर किसी ने मूँगफली फेंकी हो।

● ●

उन्नीस

नवम्बर का महीना एक अजब दिल-फरेब महीना होता है। रंगारंग क्यारियों का महीना। सुबह के समय गाँव के बाहर किसी भी स्थान में खड़े हो जाइये, आपको लगेगा कि शतरंज के बिसातखाने पर खड़े हो गये हैं। एक तरह की क्यारियाँ नाना तरह की फसलें। कहीं छोटी-छोटी पतली नोकदार पत्तियों वाले गेहूँ के खेत, तो कहीं झाँवरी-पत्तियों वाले चने और तीसी के पौधे। कहीं चिपटी गोल-गोल जोड़वीं पत्तियों वाले मटर के खित्ते तो कहीं गँधीले काँटेदार चौड़े-चौड़े पत्तों वाले सरसों के गोटे। इस पूरे सिवान की समरसता को चुनौती देते ईख के असि-पत्र वन तथा ज्वार और बाजरे के उठती पहाड़ियों जैसे खेत। वह पूरा सिवान जैसे रंगीन कलाबत्तू की ओढ़नी है जिसे अपने सीने पर फरफराती धरती गुम-सुम लेटी किसी की आतुर बाट जोह रही है।

क्वार बीतते-बीतते सारे सिवान की रंगत बदलना शुरू हो जाती है। पानी सूख जाता है। सूरज की किरणें गीली ज़मीन के भीतर घुस-घुस कर लुका-छिपी का खेल खेलने लगती हैं। सहसा एक दिन धरती की

नसें खुशी और आनन्द से ढीली हो जाती हैं। धरती शिथिल होकर अपने सुगन्धित अंगों को बेफ़िक्री से पसारकर मदहोश हो जाती है। लम्बे-लम्बे कड़े फाल उसके जिस्म को चीरते चले जाते हैं। बीज गिरते हैं। सारी की सारी धरती इन बीजों को अपने जादुई उदर में समेट लेती है। एक हफ़्ते के लिए मानो सब कुछ मौन, थका-थका, सुनसान पड़ा रह जाता है। तभी एक दिन किसी अजानी भोर में मिट्टी के ढेलों को हटाकर, धूल की झिल्लियों को तोड़कर अँखुए अपना नुकीला सर उठाकर नये वातावरण को उत्सुक आँखों से निहारने लगते हैं। सफ़ेद-सफ़ेद, कोमल, लोये-पोये जिस्म वाले अँखुए, कहीं कोमल ताँबियाँ अमोले की तरह, कहीं तनिक सन्दली-पीलापन लिये, तो कहीं हरी-धानी कलंगी लगाये। देखते ही देखते धरती की चुप्पी, थकान और पीड़ा जाने कहाँ गुम हो जाती है। चारों तरफ फसलों की बेलबूटेदार चादरें तन जाती हैं। हरित-धानी धारा में जगह-जगह ज्वार-बाजरे और ईख के खेत लहराते हैं, जैसे नीली पाल डाले बड़े-बड़े बजरे समुद्र में तैरते चले जा रहे हों।

करैता में कातिक इस साल भी वैसे ही आया जैसे पहले आता था। फ़र्क़ सिर्फ़ यह था कि मिट्टी पानी के अभाव में अतृप्त थी। सूरज की किरणें उसे सही नहीं जातीं थीं। किसान उखड़ती धरती को जल्दी से जल्दी जोत के अन्दर लेने के लिए आकुल थे। खेत बोये जा चुके थे। पर आधे से अधिक बीये मिनमिना कर भीतर ही रह गये। जो धरती की परत को भेदकर बाहर आये भी, वे कीड़े और फतिंगों के भोजन बन रहे हैं।

"जब धरती खूब लबालब डूबकर उतराती है भइया, तो कीड़े मकोड़े सब बह-दह जाते हैं। फिर ठंढ भी खूब पड़ने लगती है। बचे-खुचे साले मर जाते हैं। वैसा तो अब होता नहीं। बीया खेत में गिरा। नमी कम होने से पौधे मुश्किल से सुगबुगाये कि कटुई-फतिंगों के झुंड पत्तों पर टूट पड़े। अब जो कुछ थोड़ा बहुत बच गया खेत में, बस वही किसान का, बाकी सब भगवान् का।" टीमल सिंह गली में किसी से बातकर रहे थे।

हरिया के जाने के बाद उनका आधा उत्साह तो ऐसे ही टूट चुका है। फिर ऊपर से 'दइब' भी साथ नहीं दे रहे।

मिसिर गली से आ रहे थे। उसके कानों में ये बातें पड़ी न हों, ऐसा नहीं। दुःख भी होता है। किसानों की हालत पर दया आती है। मगर खुद किसानों के भीतर ही यह सब कहने-सुनने के बाद क्या एक अजीब सी विरक्ति नहीं भरी रहती है? मिसिर को बड़ा आश्चर्य होता है कि इस गाँव का हर आदमी शोक, दुख, पीड़ा की बातें इस ढंग से कहता है, जैसे ये बहुत गहराई से सोचने-विचारने की बातें ही नहीं हैं। अब तो किसी से खेती-बारी पर बात करने में भी डर लगता है। अजब प्रेत की तरह ज़िंदगी है यह। श्रोता दिल हिला देनेवाली पीड़ा की दास्तान सुन-कर भुक्तभोगी के प्रति पूर्ण सहानुभूति दिखाने के लिए कुछ कहने को होंगे, संवेदना से झुकी गरदन आश्वासन देने और धीरज बँधाने के लिए ऊपर उठेगी, तभी एक नया सत्य धक्के मारता हुआ कौंध उठेगा कि अरे! हम जिसको पीड़ा से मथित होकर कुछ कहने के शब्द ढूंढ़ रहे थे, उसे तो मेरे उत्तर की प्रतीक्षा भी नहीं। वह तो कहीं और है या फिर बग़ल में बैठे हुए आदमी से कुछ दूसरी बात करने लगा है। हालाँकि इस नई बात के कहने में भी वह बहुत विद्यमान हो, ऐसा नहीं लगता। आखिर क्या हो गया है इन सीधे-सादे, जीवन में डूबे रहनेवाले लोगों को। ऐसी विरक्ति, ऐसी तटस्थता, ऐसा निर्मोही अलगाव क्यों? तभी मिसिर को लगता है कि इस गाँव के हर व्यक्ति की आत्मा में कोई अतृप्त, प्यासा, बेचैन प्रेत हाहाकार कर रहा है।

●

उस दिन क़रीब दस बज रहे थे। धूप में पुआल पर बैठा जगेसर ट्रांजिस्टर से गाने सुन रहा था। वह रह-रहकर गाने के साथ सीटी बजा-बजाकर गर्दन हिलाता जाता। यह नया अन्दाज़ उसने हेड कांस्टिबिल

शोभाराम से सीखा था। उसे इस बात का बड़ा गर्व था कि वह एक साँस में सिटकारी पर पूरी पाँत निबाह ले जाता है।

पहले तो सिटकारी पर गाने की कोशिश करता तो आवाज़ सी-सी करके रह जाती थी। उसे एक बार ऐसी कोशिश करते शोभाराम ने देख लिया।

"यह सब एक दिन में नहीं आता बिरादर!" शोभाराम हँसकर बोले—"थोड़ा रियाज़ करो, और थोड़ा जानकार लोगों का संग। सब हो जायेगा।"

शोभाराम की बात सोचकर जगेसर मुसकरा पड़ा। सच ही उसने शोभाराम से कितना सीखा। शोभाराम न होते तो वह थाने का एक गावदी देहाती भुच्चड़ सिपाही ही होकर रह जाता।

जगेसर ने ट्रांजिस्टर को रूमाल से पोंछा। दो-चार काम-चोर लौंडे उसके पास सटकर बैठे थे। वे उसे आदर और प्रसन्नता भरी आँखों से निहार रहे थे।

तभी बग़ल की गली से मिसिर निकले। मोटिया के मैले से अंगोछे से अपना सर और मुँह ढँके हुए ढुलकते चले जा रहे थे।

जगेसर के दरवाज़े से गाने की आवाज़ सुनकर वे एक क्षण के लिए रुके और पुआल पर बैठी मण्डली को देखकर फिर अपने रास्ते पर ढुलक पड़े।

"का हो पण्डित!" जगेसर बड़ी उमंग में था—"अरे ज़रा रुककर गाना सुन लो महाराज!" उसने ज़ोर से ललकारते हुए कहा।

जग्गन मिसिर एक लमहे के लिए रुके—"अरे बाबू, ई सब गाना-वाना हमारे जैसे हरवाह-चरवाह के लिए थोड़े है भइया। चलें जरा बनि-हारिन सरेख आयें। जोन्हरी पँगुवानी है।"

"थोड़ा मौज-मस्ती भी लिया करो पंडित!" जगेसर ने फिर एक रंदा दिया—"मेहर न लड़िका, चले दुवरिका। ले-देकर दो प्रानी। खटिया पर लादकर जाओगे का?"

"जमाना बड़ा ख़राब है जगेसर बेटा !" मिसिर ने कहा—"दो प्रानी का भी गुज़र-बसर हो जाये, किसी के सामने हाथ फैलाना न पड़े, इहै बहुत है।"

"बाभन की ज़ात बिना हाथ फैलाये मानेगी ?"

जग्गन मिसिर ने गमछा खींचकर कंधे पर रख लिया। जगेसर का वाक्य सीधे उनके कलेजे में उतर गया था। एक क्षण से लिए वे अवाक् ताकते रहे—"तुमने किसी बाभन को कभी एक धेला दिया है क्या ? खाली एक ठो दुकड़हा रेडियो बजाकर बड़े बाबू बन गये ?"

"हमने दिया नहीं तो माँगा भी तो नहीं। माँगते तो भिखमंगा बाभन लोग ही हैं पंडित जी महाराज !"

"तो तुमसे कौन साला माँगने जाता है ? दान देने के लिए भी संस्कार चाहिए, संस्कार। एक पाई देते तो तुम्हारी नानी मर जायेगी। इधर-उधर से घूस-घास लेकर बड़े बाबू बहुत लोग बन गये, मगर किसी को कुछ देने का काम सबसे नहीं होता जगेसर चौधुरी, समझे ?"

"अब आप बहुत बढ़-बढ़ के बोलने लगे। बड़े आये बाभन बनने। हुँह। जैसे तुम्हारा चरित्तर किसी को मालूम नहीं।"

जग्गन मिसिर चबूतरे पर चढ़ आये। पास बैठी मंडली खड़खड़ा कर उठ गयी।

"क्या चरित्तर जानते हो तुम हमारा ?" उन्होंने जगेसर की आँखों में घूरते हुए पूछा।

"सब जानते हैं। कौन नहीं जानता इस गाँव में ? हमको आँख दिखाने की कोशिश मत करो पण्डित। समझे, हमने बड़े-बड़े गुंडों की हैकड़ी निकाल दी है, हाँ।"

"तो हम गुंडे हैं ?" जग्गन मिसिर ने खींचकर एक हाथ जगेसर की कनपटी पर दे मारा—"ससुर हाँ से सिपाहीगीरी का रोब दिखाते हैं, ई हमारा चरित्तर देखते हैं। बाप न मारो मेढ़की, बेटा तीरंदाज़। वाह रे वाह। हमको भी ख़लील मियाँ समझ लिया है क्या ?"

जगेसर मिसिर के झापड़ के साथ ही झलमला कर गिर गया था। उसकी आँखों के सामने तारे टूट रहे थे। सहसा वह झपटकर उठा और मिसिर की कमर में हाथ डालकर झूल गया। मिसिर ने अपनी काँख में उसका माथा दबाकर ऐसा धोबिया पाट मारा कि जगेसर चारों खाने चित्त। लड़के दौड़-दौड़कर चिल्लाने लगे। कई लोगों ने लग-लपटकर मिसिर को अलग किया।

"हम कुछ नहीं करते यार !" उन्होंने छुड़ानेवालों से शान्त होकर कहा—"यही है हमको भिखमंगा कहनेवाला। हमारा चरित्तर देखने वाला। मैं गुंडा हूँ।"

मिसिर कंधे पर गमछा रखे वैसे ही दुलकते हुए चमटोली की ओर चल पड़े, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

मिसिर तो चले गये पर जगेसर ने चिल्ला-चिल्लाकर सारा गाँव सिर पर उठा लिया।

"हम देख लेंगे इस साले को। न भेजा हवालात तो असल यादव नहीं। क्या समझ लिया उस भिखमंगे ने। घर में बेवा भौजाई रखकर चरित्तर वाले बनते हैं ससुर। गवर्नमेंट के आदमी पर हाथ उठाना खेलवाड़ नहीं है। देंगे सब तीन 'डिगरी', बस सारी हैकड़ी भूल जायेगी। हम सत्यानाश करके छोड़ेंगे स्साले का।"

देवी चौधुरी के चबूतरे पर भीड़ जमा हो गयी। जग्गन मिसिर ने जगेसर को मार दिया। दोनों गुंथ गये थे। मिसिर ने ऊ लगाया कालाजंग कि बस....।

गाँवों में ख़बरें भी खास ढंग से दौड़ती हैं। कहीं ख़बर लड़ाई-झगड़े या चोरी-चमारी की हुई, तब तो कहना ही क्या। बेतार का तार लग जाता है। जो ही सुनता है, बेतहाशा दौड़ पड़ता है और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हुए अपने दौड़ने का कारण भी बताता चलता है। उसे इस बात की भी परवाह नहीं होती कि मोड़ घूमते वक़्त जहाँ वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा है कि चोर पकड़ा गया भाई रे भाई, या लाठी बज गयी सुनो हो सुनो,

या तकरार हो रही है दौड़ो रे दौड़ो, वहाँ इसे सुननेवाला भी कोई है कि नहीं। उसे तो शायद इतने से भी खुशी हो जाती होगी कि उसकी हकलाती आवाज़ को सुनकर झब्बूलाल के बँड़वा बैल ने पूँछ हिला दी थी। या दलगंजन चौधरी की मुर्री भैंस जीभ ऐंठकर अ-एँ-एँ-यँ, अ-एँ-एँ-यँ कर रही थी।

का हुआ यारो? अरे भाई कोई बताओ न। मिसिर में और जगेसर में? अच्छा! काहे भाई? अब सबका गला सी गया....। तो मिसिर ने हाथ चला दिया? अरे वाह! ऐसी रहजन्नी....। किसने कहा भिखमंगा और गुंडा? जगेसर ने? अच्छा! मिसिर तो लंठ हैं हो। बाकी जगेसर को भी अइसा नहीं कहना चाहिए। हाँ-हाँ, हम सब समझते हैं। साफ़ कौन कहेगा अब। मिसिर घोर के पी डालेंगे का? तो हम का झूठ कह रहे हैं। अरे जाव-जाव, बड़े आये सत्तवादी हरिश्चन्दर। हमें नहीं देवी चौधुरी का डर लगा है। हमको का मिसिर या जगेसर खायक पहुँचा देंगे?—

चलो लोगो अपने-अपने घर। अब भाई इसमें कौन बोले। ग़लती दोनों ओर की है। एक हाथ से कहीं ताली बजती है?

जगेसर बुरी तरह बड़बड़ा रहा था। देवी चौधुरी गर्दन झुकाये बैठे थे। सुखदेव और गोगई महराज ने सलाह दी कि झगड़ा करने से कोई फ़ायदा नहीं। जग्गन मिसिर से लड़ाई करने में तुम्हारा कोई साथ न देगा। अकेले लड़ना बुद्धिमानी नहीं है। इसलिए क़ानूनी कारवाई ही करना ठीक है।

अगले दिन बड़े सबेरे जगेसर थाने चल पड़ा। सड़क पर आकर उसने बस पकड़ी। इतनी सूचना भी गाँववालों को दिन भर गप्प करने के लिए काफ़ी थी। जो भी इसे सुनता, कोई न कोई बहाना करके जग्गन मिसिर के पास ज़रूर जाता। मिसिर खेत पर हैं। मिसिर खाना खाने आये हैं। मिसिर धूप में बैठे हैं। मिसिर नहा रहे हैं। बस, धीरे से उनके पास जाकर लोग-बाग चेहरे पर अद्भुत सहानुभूति का रंग चढ़ाकर कहते—"सुना आज बड़े तड़के जगेसर सैयदराजे गया है। थाने पर कई आदमी उसके परिचित

हैं। सुना दरोगा नया आया है। ई पहले जौनपुर में था। जगेसर कहता था कि दरोगा उसका लँगोटिया यार है। अरे भाई सिपाही-सिपाही सब एक हो जाते हैं।"

जग्गन मिसिर कुछ न बोलते। इन बातों का जैसे उनके ऊपर कोई असर ही न हो। पर मिसराइन ने यह सब सुना तो खौंखिया गयीं। नहा-धोकर जग्गन मिसिर खाने पहुँचे तो मिसराइन उबल पड़ीं—"हर जगह पहलवानी ही दिखाया करते हैं। खाली नंगई में लात पसारे हैं। थाना-पुलुस का भी कुछ डर नहीं! बाँधकर ले जायेंगे और भीतरघावे ऐसा मार देंगे सब कि सारी मोटाई झर जायेगी।"

"अच्छा चलो खायक दो। झर जायेगी मोटाई, तो अच्छा ही न होगा। तुमको भी शान्ति मिल जायेगी।"

मिसराइन का चेहरा एकाएक उतर गया। आँखें डबडबा आयीं—"अरे तो तू भी अपने बचाव का कौनो उपाय करो। सुखदेउवा भी उन्हीं सबों से मिला है। ऊ तोहार कौनो मदद नहीं करेगा। खिलाफ़ ही करेगा। ये पूरे नगर में शाइत ही कोई तोहार मददगार हो।"

"अब जो कुछ होगा, देखा जायेगा। बस, ऊपरवाला मददगार है। उसके नियाव में कोई दखल नहीं दे सकता।"

मिसिर चुपचाप बैठे खाना खाते रहे। वे खा-पीकर जब चले गये तो मिसराइन ने रसोईघर का दरवाज़ा बन्द कर दिया। उन्हें न भूख थी न प्यास। बाहर का फाटक बन्द करके वे गाँव में निकल पड़ीं। शायद कोई ऐसा उपाय बता दे कि मिसिर बच जायँ। वे दिन भर इधर से उधर घूमती रहीं। मिसराइन को गाँव में घूमने की आदत नहीं। काम से काम। औरतों के पास बैठकर इधर-उधर की बातें करने में उनका मन नहीं लगता। मगर क्या करें बिचारी। जब सर पर आन पड़ती है तो ढोना ही पड़ता है।

धीरे-धीरे एक हफ्ता बीत गया। एक दिन सुबह दस बजे के क़रीब तीन सिपाहियों के साथ सैयदराजे के दरोग़ा करैता पहुँचे। गाँव में आते ही लड़कों और कुत्तों ने उनका हल्ला मचाकर और भौंक-भौंककर स्वागत किया।

दक्खिन पट्टी में सुरजू का दरवाज़ा उधर से गाँव में हेलने पर सबसे नज़दीक पड़ता है। उन्हें ख़बर लगी तो वे धीरे से दरवाज़े पर से सटक गये। पूछताछ हुई तो घर की औरतों ने कहा कि 'अनतै गए हैं'। असल में सुरजू सिंह इस झगड़े से बुरी तरह परेशान थे। ऐसा झगड़ा छावनी वालों से हो गया होता किसी का, तो वे ख़ुशी से थानेदार को अपने दरवाज़े पर उतारते। आवभगत करते। ज़मींदार-घराने के अत्याचारों का नमक-मिर्च लगाकर बयान करते। गाँव के लोगों का समर्थन भी मिलता, ग़रीबों की मदद करने का यश भी। मगर ई झगड़ा तो दो छुटभइयों के बीच हुआ था। थानेदार जग्गन मिसिर की लानत-मलामत ज़रूर करेगा। फिर ऊ क्यों बद्दू बनें। जग्गन मिसिर बड़ा चण्डाल बाभन है। झूठ-मूठ की अदावत लेने से क्या फ़ायदा। यही सब सोचकर सुरजू सिंह सटक गये।

थानेदार वहाँ से निराश लौटा तो थोड़ा सा बौखला गया।

"आप भी हुज़ूर कहाँ उतर रहे हैं, महावीर सामी कसम, थाने के एक भी दरोग़ा बिना छावनी के कहीं और डेरा नहीं डालते।" हरखू सरदार ने हिम्मत करके कहा—"अफ़सरान की ख़ातिर सबके बस की बात थोड़ो है। क्यों जी सिपाही जी ! साँच कि कौनो झूठ ?"

"ठीक बात है हुज़ूर ! छावनी ही चला जाय।"

"चलो।" थानेदार ने कहा। हरखू सरदार का 'हियरा' फूलकर दूना हो गया। बब्बन बेटा सुनेंगे तो गद्गद हो जायेंगे। आगे-आगे दुलकते हुए हरखू सरदार और पीछे-पीछे तीनों सिपाही। अपनी सायकल सहदेवराम चौकीदार को सँभलाकर थानेदार पीछे-पीछे आ रहा था।

कड़बड़-कड़बड़।

बूटों की आवाज़ विपिन ने सुनी। मगर वह चारपाई पर उठँगा वैसे ही पड़ा रहा। हरखू सरदार झपटकर दालान में हेल गये।

"दरोगा जी आये हैं, बब्बन बेटा।" उन्होंने ख़ुशी से बात को चुभलाते हुए कहा।

"बब्बन बेटा नाहीं हैं का ?" निराशा की स्याही सरकाते हुए हरखू सरदार ने विपिन की ओर देखकर पूछा।

"नाहीं, कहीं गये हैं।"

"तो तुम्हीं आओ विपिन बेटा। दरोगा जी आये हैं।"

"आये हैं तो आने दीजिए न ? मैं कहाँ आऊँ।"

हरखू सरदार झपटकर बाहर आये। चबूतरे पर खड़े थानेदार से बोले—"आया जाये हुज़ूर। आया जाय।"

थानेदार दालान में आया तो विपिन चारपाई से उठ गया। मगर न तो उसने नमस्कार-प्रणाम कहा, न तो विह्वल होकर आव-भगत ही की।

"आप कौन हैं ?" दरोगा जी गर्दन हिलाकर बोले। उन्हें यहाँ का माहौल भी बहुत रुचिकर नहीं लगा।

"मलकार के छोटे लड़के हैं विपिन बाबू।" हरखू सरदार बोले।

"बब्बन बाबू नहीं है का ?" झम्मन सिंह सिपाही ने हरखू सरदार से दरियाफ़्त किया—"ज़रा उनको बुलवाइये। इनसे क्या होगा। ई तो कहीं पढ़ते-लिखते होंगे।" उसने मुसकराकर कहा।

हरखू सरदार ने ख़ुद ही तोशक खींच दी थी। थानेदार बैठ गया। उसने अपना बूट उतार कर पैरों को तोशक पर मोड़ते हुए कहा—"अरे मुंशी जी, ज़रा उस बम्भन को बुलवाइये। जगेसर राम को भी ख़बर करवाइये।"

हरखू सरदार को विपिन की उदासीनता बहुत अखरी। लाचार वे ख़ुद ही 'ख़ातिर-तवज्जह में कमी न हो'—की चिन्ता से परेशान बखरी में हल गये।

"बहूरानी, बहूरानी !!" उन्होंने दालान में खड़ा होकर हाँक पर हाँक लगायी। कनिया दरवाज़े के पास आकर बाज़ू से सटकर खड़ी हो गयीं।

हरखू सरदार हकलाते हुए बोले—"बहूरानी, दरोगा जी आये हैं। तीन-चार सिपाही भी हैं साथ में। महावीर सामी क़सम, ऊ लोग तो सुरजू सिंह के बइठका में हेल रहे थे। बाकी मैंने कहा, अरे वाह, मेरे जीवन को धिरकार है कि अफसरान छावनी पर न जाके सुरजू सिंह के बइठका में डेरा डाल रहे हैं। मैं चट बोल पड़ा महावीर सामी क़सम कि हुजूर सैयद-राजे थाने का कोई दरोगा बिना छावनी के कहीं डेरा नहीं डालता। बस, उसको मेरी बात समझ में आ गयी। महावीर सामी कसम चट बोला कि चलो छावनी।"

"तो मैं क्या करूँ?" कनिया ने कहा। हरखू सरदार का सारा जोश ठंडा हो गया।

"अरे उनकी खातिर-तवज्जह न होनी चाहिए बहूरानी। इतना बड़ा नाम था मलकार भइया का। महावीर सामी क़सम, वही सब सुन के तो लोग आते हैं। अब आपको क्या समझाना सरकार, आप तो सब जानती हैं।"

"आपने नाहक़ बुलाया दरोगा को हरखू सरदार।" कनिया ने धीरे-धीरे कहा—"ऊ नाम-गाम ख़तम हो गया। ज़मींदारी थी तो खातिर-तवज्जह भी थी। अब ई सब बखेड़ा कौन सँभालेगा। चार-चार आदमी का खाना बनाने कौन बैठेगा दोपहर को?"

"अरे दोहाई बहूरानी की। हमारी तो जान साँसत में पड़ जायेगी। सरकार महावीर सामी क़सम, हम कान पकड़ते हैं कि अब अइसे फल्लड़ में नहीं पड़ेंगे कभी। इस बार कैसे भी हो हमारी नाक रख लीजिए सरकार।"

"तो जाइये रमचन्ना को कह दीजिए कि पानी-वानी ले जाये। बाकी खाने-पीने के इन्तज़ाम के लिए तो छोटे सरकार से ही कहिए। वही सब करेंगे खातिर-तवज्जह।"

हरखू सरदार ने अपने कान छोड़कर हाथ जोड़ लिये—"हाँ बहूरानी, नाक रह जाय हमारो, बस!"

वातावरण एकाएक गंभीर हो गया था। छावनी में काफ़ी भीड़ थी। चबूतरे पर, बैलों की चरनी पर अनेक लोग कुतूहल के कारण आकर जमा हो गये थे। भीतर दालान में थानेदार बैठा था। उसकी पास वाली चारपाई पर बुझारथ सिंह थे। थानेदार और सिपाही भोजन से पूरी तरह तृप्त होकर इन्साफ़ करने बैठे थे। इसी कारण बुझारथ सिंह का सम्मान एकाएक बहुत बढ़ गया था। खुदाबक्कस बग़ल में मचिया पर बैठा था। वह थाने के एक सिपाही से बातें कर रहा था। बुझारथ सिंह चद्दर की कांखा-सोती करके थानेदार के बग़ल में गर्व-संतुष्ट भाव से बैठे थे। उन्होंने पन-डब्बे से पान निकालकर थानेदार की ओर बढ़ाया, जिसे मुस्कराकर अदा के साथ लेकर मुंह में दबाते हुए वह बोला—"मुंशी जी, ऊ बम्भन नहीं आया अभी तक?"

जगेसर, सुखदेव और गोगई महराज सामने की तरफ़ चौकी पर बैठे थे।

तभी चौकीदार के साथ जग्गन मिसिर आये। चौकीदार ने मुंशी को खबर दी। अलग बुलाकर उनके कान में वह कुछ कहता रहा। मुंशी चौकीदार की बातें सुनकर ख़ुश नहीं था। उसने एक सरसरी नज़र जग्गन मिसिर पर डाली और दालान में घुस गया।

जग्गन मिसिर की बुलाहट हुई। वे दालान में गये। उन्होंने एक नज़र सबकी ओर देखा। फिर धीरे से विपिन की चारपाई पर जाकर पैताने बैठ गये।

"तो तुम्हारा नाम ही जग्गन मिसिर है?" थानेदार ने उनकी ओर देखते हुए पूछा।

"जी हुजूर, जगन्नाथ मिश्र, मेरा ही नाम है।"

"तुमने जगेसर सिंह सिपाही को मारा। क्या यह सही है?"

"हाँ हुज़ूर!"

"क्या?" दरोगा मिसिर की बात सुनकर आश्चर्य से आँखें नचाकर बोला—"तुमने मारा? क्यों मारा?"

"इसलिए हुजूर की जगेसर ने मुझे गुण्डा कहा। भिखमंगा कहा।

कहा कि बाभन की जात ही भिखमंगा होती है। इन्होंने मेरी बेइज़्ज़ती की। मेरा 'चरित्तर' देखने लगे। कहा कि ऐसे गुण्डों की मैं हेकड़ी भुलवा देता हूँ। मैं साहब टुकुर-टुकुर ताकने लगा। आज तक मुझे किसी ने गाली नहीं दी सरकार। मैंने एक से एक ज़माना देखा है। ज़ालिम से ज़ालिम ज़मींदार देखे हैं। मगर आज तक किसी ने जग्गन मिसिर को गाली नहीं दी। भिखमंगा नहीं कहा। गुंडा नहीं कहा। तो हम सरकार जब वैसे लोगों के सामने नहीं झुके तो छुटभइयों के सामने झुकेंगे? मैंने जगेसर से कहा कि गाली मत बको। मगर ये नहीं माने। मुझे गुस्सा आ गया। चूंकि मैं गाली नहीं बकता, इसलिए मैंने मारा। ये मुझसे लड़ पड़े और मैंने पटक दिया।"

"हूँ, तो तुम क़ानून हाथ में लेना चाहते हो बम्भन? जानते हो तुम कि गवर्नमेंट के आदमी पर हाथ उठाने का क्या नतीजा होता है?"

"मैं कानून काहे हाथ में लूं सरकार! दूसरा क़ानून हाथ में लेता है, तो मैं भी लेता हूँ हुज़ूर। हम अपने राह जा रहे थे। पूछिये तो बोलबाज़ी किसने की? किसने कहा कि बाभन भिखमंगा होता है?"

"ई सब झूठ कहते हैं हुज़ूर! मैंने इन्हें कुछ नहीं कहा। ये मेरे चबूतरे पर चढ़ आये। मुझे बिला वजह मारा। आप गोगई महराज से पूछ लीजिये सरकार।"

जगेसर गोगई महराज को पूरी तरह तैयार करके ले आया था। सुखदेव ने कहा था कि गवाही गोगई चाचा से ही दिलाओ। मुझसे पूछेंगे दरोगा तो मैं तुम्हारी ओर से बोलूँगा। मैं सभापति हूँ। इसलिए मेरा नाम गवाही में देना ठीक नहीं होगा।

"कौन गोगई?"

"मैं हूँ हुज़ूर!"

"ए बुड्ढे, तूने जग्गन मिसिर को जगेसर को मारते देखा?"

गोगई महराज घबड़ा गये बोले—"देखा तो नहीं सरकार। मगर सुना कि इन्होंने जगेसर राम को मारा। हम तो सरकार महात्मा गान्हीं के सिपाही हैं। इसलिए झगड़ा-टंटा हमको अच्छा नहीं लगता। गान्ह महात्मा कहते थे, अहिंसा, अहिंसा। कहो सुखदेव राम जी, है कि नहीं।" गोगई महराज बड़े खुश थे कि उन्होंने ऐसे संगीन मौक़े पर भी इतनी बड़ी बात कह दी।

"क्या बकबक करते हो?" थानेदार बिगड़कर बोला—"मैं पूछता हूँ तुमने देखा कि नहीं?"

"मैंने तो देखा नहीं सरकार! झूठ कैसे कहूँ, पर सगरो गाँव कहता है तो बात सच ही होगी।"

"चलो, दूर हो यहाँ से। क्यों जी जगेसर राम, यही जाहिल उजड्ड गवाह मिला तुम्हें?"

गोगई महराज के चेहरे पर उदासी छा गयी। वे चुपचाप उठकर चल पड़े। जाते जाते बोले—"ऐसे झगड़े-झंझट से हमसे का वास्ता? अहिंसा की बात करो तो लोग जाहिल-उजड्ड कहते हैं। ज़माना ही उलट गया है।"

जग्गन मिसिर हँसकर बोले—"गवाही तो हो गयी हुज़ूर!"

थानेदार भद्दा मुँह बनाकर हँसा—"गवाही से क्या होता है बम्भन! तुमने खुद कहा कि मैंने मारा? कहा न? जानते हो गवर्नमेंट के आदमी पर हाथ उठाने का नतीजा क्या होता है?"

मिसिर चुप हो गये। सुखदेव और जगेसर हँस पड़े।

"बोलते क्यों नहीं, जानते हो न, वह सरकार का आदमी है?"

"सरकार के आदमी तो जग्गन मिसिर भी हैं थानेदार साहब।" विपिन ने कहा—"जगेसर सरकार का आदमी है। जग्गन मिसिर सरकार बनानेवाले हैं।"

"माना, माना कि जग्गन मिसिर सरकार बनानेवाले हैं।" दरोग़ा गुस्से से उबला; पर ऊपर से हँसते हुए बोला—"अब तो हर अदना आदमी भी सरकार है। तो इसका मतलब यह नहीं हुआ कि सरकार के रास्ते में रोड़ा अटकाया जाये।"

"हम क्यों रोड़ा अटकायें हुज़ूर! सरकार अपने रस्ते। हम अपने

रस्ते। सरकार जब ऐसे आदमियों को अपना सिपाही बनाती है, जो जबान को लगाम में नहीं रख सकते, शरीफ़ आदमी की बेइज़्ज़ती करेंगे, गाली देंगे, तो यही सब होगा। जगेसर राम का कुछ किसी से छिपा है क्या? इन्होंने हमेशा ग़रीब और कमज़ोर आदमी को सताया है। हम तो सोचते थे हुज़ूर कि ये अपने आदमी हैं। छुटभइयों के बीच में बढ़े हैं, तो नियाव करेंगे। ज़ोर-ज़बर्दस्ती का विरोध करेंगे। हमारे लिए सहारा बनेंगे। बाकी ई तो ऐसा घमंड में आये कि इन्होंने एक शरीफ़ मुसलमान बिचारे की सारी जायदाद लाठी के बल पर छीन ली! ई अपने सामने किसी को कुछ समझते ही नहीं।"

"ठीक न होगा पंडित, ज़रा ज़बान सँभाल के बोलो। कौने मुसलमान की जायदाद हमने छीन ली? ज़रा कहना तो?"

"इहाँ सब लोग जानते हैं। खलील मियाँ की छीनी और किसकी छीनोगे तुम?"

सारे कमरे में सन्नाटा छा गया।

"ई सब पुराने मामलों से हमसे कोई मतलब नहीं।" थानेदार ने कहा।

"तो आपको किस चीज़ से मतलब है हुज़ूर! इन्होंने गाली दी। बेइ-ज़्ज़ती की। गुंडा कहा। इससे भी आपको को कोई मतलब नहीं?"

"नहीं, इससे क्यों नहीं मतलब है। क्यों जी जगेसर, तुमने क्यों गाली दी?"

"सरकार!" जगेसर ने मुस्कराते हुए कहा—"मैंने तो मज़ाक़ में कहा सरकार कि ई अपनी बेवा भौजाई रक्खे हुए हैं।" सभी लोग हँस पड़े। थानेदार भी हँसने लगे।

मिसिर चारपाई से उठकर खड़े हो गये—"देख लिया न हुज़ूर! यह है मज़ाक़।" वे उठकर चलने लगे।

"कहाँ चले उठकर?" थानेदार सहसा एकदम गंभीर हो गया—"मैं इस तरह नहीं छोड़ूँगा मिसिर! खेलवाड़ समझ लिया है क्या?"

"मैं क्यों खेलवाड़ समझूँ। खेलवाड़ तो आपने समझ लिया है। इतने लोगों के सामने उसने ऐसी गंदी और नीच बात कही और आप भी हँस रहे हैं। कौन कर रहा है खेलवाड़, मैं कि आप?"

मिसिर आगे बढ़े।

"झम्मन सिंह।" थानेदार कड़ककर बोला—"पकड़कर बैठा दो मिसिर को।"

"आप दरोगा हैं साहब! हमको पकड़कर हवालात में डाल दो। चाहे जेहल में डाल दो। बाकी हम अपनी बेइज़्ज़ती सहकर माथा झुकाये रहेंगे, यह नहीं होगा। यह जान लो।"

मिसिर एक क्षण ऊपर देखते हुए अपने आत्मबल को तौलते हुए खड़े रहे; फिर चल पड़े।

"आगे बढ़ने की कोशिश मत कीजिये दरोगा जी।" विपिन चारपाई पर से उठकर बोला—"सिपाही से पकड़वाने का आपको कोई अधिकार नहीं।"

"क्या?" एक साथ अनेक लोग चौंक पड़े। थानेदार हक्का-बक्का होकर विपिन के चेहरे पर ताकता रहा। बुझारथ सिंह को तो जैसे लकवा मार गया हो। विपिन ऐसा कहेगा, वे जैसे सोच भी नहीं पा रहे थे। जगेसर गोगई, सुखदेव, सभी घबड़ाकर ताकने लगे।

"विपिन!" सहसा जैसे होश में आकर बुझारथ सिंह बोल पड़े—"तुम क्यों इस बीच में कूद रहे हो? तुमसे का मतलब इन बातों से? जाओ-जाओ, पढ़ो-लिखो उधर।"

"क्यों नहीं मतलब है मुझसे? एक आदमी पर अत्याचार होगा, और मैं देखता रहूँगा। मिसिर पर जो कुछ हुआ है वह सब मज़ाक़ है। और उन्होंने जो कुछ किया है वह मामला है। वाह वाह।"

"आप बहुत बढ़-बढ़ के बोल रहे हैं साहब!" थानेदार ने विपिन की ओर गर्दन हिलाते हुए कहा—"मैं इन्हें पकड़कर हवालात में बन्द कर

दूँगा। आपका सारा रोब धरा रह जाएगा। अब तक मैं बाबू साहब की वजह से चुप रहा। हाँ। मैं करता हूँ इन्हें गिरफ़्तार, आप रोकिये तो ?"

"मेरे दरवाज़े पर तो आप इनको गिरफ़्तार नहीं ही कर सकते थानेदार साहब। और उधर गली-वली में किया भी तो मैं आपको बिना अदालत देखाये छोड़ूँगा नहीं। ज़माना बदल गया, मगर आप लोगों का रवैया नहीं बदला। दस आदमी यहाँ बैठे हैं। आप पूछते कि क्या हुआ, क्या नहीं ? बस, आपने तो आते ही आते 'गवर्नमेंट का आदमी' 'सरकार का आदमी" जपना शुरू कर दिया और तहक़ीक़ात पूरी हो गयी।"

हल्ला-गुल्ला सुनकर ख़लील मियाँ बाहर से भीतर आ गये—"विपिन बेटा।" उन्होंने ज़ोर से कहा—"यह क्या तमीज़ है भइया। आख़िर दरोग़ा जी तुम्हारे दरवाज़े पर बैठे हैं। तुम्हें भला इस तरह बोलना चाहिए। तुम उस शख़्स की औलाद हो बेटे जिसकी तहज़ीब के सामने बड़े-बड़े आला अफ़सर माथा झुका देते थे। न-न-न....ऐसा नहीं करते। मालिक भइया कहा करते थे कि विपिन का दिल आईने की तरह साफ़ है। वह कुछ छिपा नहीं पाता। सो ठीक है। कोई बात हुई होगी, जो तुमको नागवार गुज़री है। मगर ऐसे नहीं बोलना चाहिए बेटे ! बैठ जाओ।"

विपिन ख़लील मियाँ की झुर्रियों में धँसी अगाध आँखों की ओर देखता रहा। उनमें जाने कैसा दर्द था। वह कुछ बोल न सका। चुपचाप बैठ गया।

ख़लील मियाँ मुसकराते हुए थानेदार से बोले—"गुस्ताख़ी माफ़ हो हुज़ूर। एक लमहे के लिए आपके दरम्यान खड़ा होना पड़ा। अब आप अपना काम करें।" उन्होंने दरोग़ा को सलाम किया और मुड़कर चलने लगे।

"रुकिये ज़रा, क्या नाम है आपका ?"

"ख़लील, ख़लील ख़ाँ।"

अचानक दरोग़ा का चेहरा गंभीर हो गया। उड़ती नज़र से उसने जगेसर को देखा, फिर सामने बैठे लोगों को। बोला—"आइये, आइये ख़ाँ साहेब ! बैठिये।"

"मुझे तो अब इजाज़त दीजिए हुज़ूर।"

"इजाज़त तो अब हम भी लेंगे ख़ाँ साहेब।" थानेदार का मन उचाट हो गया था। "हमें भी लौटना है।"

"जग्गन मिसिर !" थानेदार ने कहा—"आप बुज़ुर्ग और समझदार आदमी मालूम होते हैं। आपको ऐसी हरक़त नहीं करनी चाहिए। जगेसर राम की भी ग़लती है कि उसने आपको ऐसे अल्फ़ाज कहे।"

करैता के इतिहास में यह एक अनोखी घटना थी कि थानेदार ने वादी-प्रतिवादी को समझा-बुझाकर अपनी तहक़ीक़ात ख़त्म कर दी। जगेसर राम ने ख़लील मियाँ को देखकर ही मुँह लटका लिया था। विपिन पर वह बुरी तरह कुढ़ रहा था। मगर क्या करता, लाचार था। कुढ़ तो विपिन पर और भी कई लोग रहे थे। मगर सभी चुप थे। बोले सिर्फ़ बुझारथ सिंह। वे भी तब जब थानेदार चला गया—"तुमको एकाएक कैसे जोश चढ़ गया। अफ़सरों के मुँह इस तरह लगा जाता है ?" बुझारथ सिंह ऊपर से जितना भी क्रोध दिखा रहे हों, भीतर ही भीतर बड़े ख़ुश थे। वे सोच रहे थे कि विपिन को पढ़ाना-लिखाना आज सार्थक हो गया। ऐसा डाँटा उसने कि थानेदार की तो सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। पढ़े-लिखे आदमी और जाहिल-गँवार में यही अन्तर होता है।

विपिन कुछ न बोला। मगर ख़लील मियाँ चुप न रह सके—"यह एक नई क़िस्म की आँधी है बब्बन बेटा ! जिसमें ग़र्द नहीं, गर्मी होती है। इसकी आँच में तमाम पुख़्ता दीवालें गल जाती हैं, जो इन्साफ़ के रास्ते में रुकावट बनकर खड़ी होती हैं।"

●

सारे गाँव में चर्चा थी। विपिन बाबू ने वो झाड़ा कि दरोग़ा सरवा दुम दबाकर भाग गया। जग्गन मिसिर से लोग पूछते तो वे हँसकर रह

जाते। जगेसर को समूचा गाँव नीचता और बेवकूफ़ी के धुएँ में लहरता दिखाई पड़ने लगा।

गोगई महराज की गवाही से देवी चौधुरी बहुत चिढ़े।—"बहुरूपिया साला। दिन भर आकर दरवाज़े पर गिरा रहता था। मौक़ा पड़ा तो कैसा बदल गया। आख़िर क्यों न हो ? जिस काठ का बोकला है, उसी में न चिपकेगा। बाभन होकर बाभन की पच्छदारी न करेगा, तो का हमारी करेगा।"

देवी चौधुरी की बातें गोगई ने सुनीं तो हँस पड़े—"अरे वाह रे वाह, हम का उनके दरवाज़े पर बैठने के लिए अपना धरम छोड़ दें ? हमने तो किसी की भी पच्छदारी नहीं की। हम तो गान्हीं महात्मा की ओर से बोले।"

शीतलाप्रसाद बहुत ख़ुश थे। चलो बाबू का दिमाग़ ठिकाने आ गया। अब वे अपना दरवाज़ा छोड़कर अहीरों की गोंठ में 'हिरने' नहीं जायेंगे।

जगेसर किसी-किसी तरह दो-चार रोज़ और गाँव रहा। वह किसी से न बोलता न हँसता। देवी चौधुरी के दरवाज़े पर बिलकुल सन्नाटा रहता। हैज़े की बीमारी में जैसे वातावरण सूँघकर गौरे उड़ जाते हैं, उसी तरह देवी चौधुरी के दरवाज़े पर चहचहानेवाले पंछी सहसा कहीं उड़ गए।

छुट्टी ख़त्म होने के पहले ही जगेसर जौनपुर चला गया। जाते वक़्त उसने किसी से कुछ कहा तो नहीं, पर मन ही मन क़सम खा ली कि अब वह कभी भी इस बीरबावनपुर नगर में लौटकर नहीं आयेगा।

● ●

बीस

नवम्बर के अन्त तक करैता का सिवान पूरी तरह हरियाली की चादर में लिपट चुका था। यह हरियाली नाना मुद्राओं में भूखे और निराश लोगों को धीरज बँधाती। हल्का जाड़ा पड़ने लगा था। लोग गलियों के मोड़ के पास, जहाँ सूरज की किरणें सीधा रास्ता पाकर पहले ही उतर आतीं, घाम में बैठ जाते। जाड़े से काँपता तन धूप खाकर शिथिल हो जाता। पलकें तेज़ रोशनी के भार से आपो-आप मुँद जातीं। ऐसे में बिना यह जाने कि आगे कौन खड़ा है, या बग़ल से कौन गुज़र गया, लोग गमछे की झोली में भरे हुए ज्वार के लावे का बड़ा सा फंका मुँह में डालकर जुगाली शुरू कर देते। जोन्हरी का लावा ! भगवान् जो न दिखाये। करैता में ऐसे दिनों में चिवड़ा और दूध का कलेवा करने वाले गिरहस्थ मनमारे जोन्हरी के लावे को बड़े प्रेम से हथेली में भर-भर निहारते और जाने किन बीते दिनों की स्मृतियों में खो जाते।

गड़ही-गुच्ची में जहाँ बरसाती पानी थोड़ा रुक गया था, कुछ धान

भी हो ही गया था। नये चावल का भात और चने के साग का सालन। बस, यही तो था करैता के तमाम लोगों की कमरतोड़ मिहनत का फल। इसी के लिए क्या-क्या नहीं करना पड़ा है लोगों को।

"बाची!"

मुश्किल से दो घड़ी दिन रहा होगा कि धरमू सिंह के दरवाज़े पर खड़ी होकर सुगनी ने पुकारा। उसकी आवाज़ सुनकर चचिया बाहर आ गयीं।

"क्या है रे, इतनी अबेर को? जिसे साग लाने जाना होता है वह दुपहर को निकल जाता है कि संझा तक घर में बैठा रहता है?" चचिया ने कहा।

"क्या करूँ चाची। एक काम खतम होता है कि दूसरा लग जाता है। फुर्सत मिले तब न। तो जाने दो चाची, आज अबेर हो गयी तो....?"

चचिया का मन नहीं था कि इतनी अबेर को सुगनी के साथ पुष्पा साग लाने सिवान जाये। मगर न जाने देने से कैसे होगा। ख़ाली भात तो गले के नीचे उतरेगा भी नहीं।

"जरा झपट के जाव और जल्दी आ जाना तुम लोग।" चचिया ने कहा। पुष्पा इधर रोज़ ही सुगनी के साथ दोपहर ढले सिवान में जाती रही है। कोई हरज नहीं है। सीपिया नाले के पास से ही तो क़स्बे का रास्ता जाता है। हमेशा लोग आते-जाते रहते हैं।

"पुष्पा!" चचिया ज़रा ज़ोर से पुकारती हैं—"यह देखो, सुगनी आयी है। साग को जावगी कि नहीं?"

पुष्पा भी जानती है कि बिना साग के कैसे चलेगा। धरमू सिंह पहले से ठीक हैं। उनकी खाँसी कम है। मगर जाने क्यों बहुत चिड़चिड़े हो गए हैं। उस दिन 'ठहर' पर उन्होंने थाली पटक दी।

"हमसे माँड़-भात नहीं घोंटायेगा।" वे हाथ धोकर उठ गए थे। चचिया उस दिन दोपहर के बाद से लगातार रोती रहीं। क्या करें वे? कुछ समझ में नहीं आता। क्या है अब जिसे बेचकर वे दाल या तरकारी

का इन्तज़ाम करें। यह भी मिल जाता है, यह भगवान् की दया ही है। किसी तरह लोगों का हाथ-पैर जोड़कर 'खलका' खेत में बीया फेंकवा दिया। दस मन धान हो गया, नहीं किसी प्रानी के मुँह में अन्न जाने का भाग्य न होता।

"जाऊँ अम्मा?" पुष्पी ने यह जानते हुए कि अम्मा उसे भेजने के लिए पूरी तरह तैयार हैं, न जाने से बुरा ही लगेगा उन्हें, पूछा; क्योंकि पूछना ज़रूरी है। इस पूछने का और कोई अर्थ हो या न हो, दिल को इत्मीनान हो जाता है कि रहन-सहन में स्वच्छन्दता कोई जानकर नहीं बरती जा रही है। एक अर्थहीन संतोष का अर्थभरा विश्वास! सिर्फ़ विवशता की नियति की झिझकभरी स्वीकृति!!

पुष्पा सुगनी के साथ निकलकर देवीधाम वाले छवरे पर चल पड़ी। बबुआन की छावनी के पास से मुड़कर वह अभी मुश्किल से वहाँ हो पहुँची होगी, जहाँ डूबते सूरज की रोशनी को रोककर छावनी की 'रेलिंग' ने अपनी कटावदार छाया फ़ेंक दी थी, कि उसे लगा कि ठाकुर के गौसारे के पास कोई खड़ा है।

विपिन इस गौसारे के पास अभी खड़ा हुआ हो, ऐसा नहीं। पर खड़ा होने का सारा अर्थ उसे अभी मिला, यह वह जरूर सोच रहा था। एका-एक सुगनी के साथ पुष्पा को छवरे पर जाते देख वह अचानक लौट आया हो जैसे कहीं से। वह सहसा अपने को एकदम विद्यमान अनुभव करने लगा।

पुष्पी विपिन को देख चुकी थी। तभी उसकी साड़ी में चिचँड़ा फँस गया और वह एकदम रुक गयी थी।

"क्या हुआ बाची!" सुगनी आगे जाकर सहसा अपने अकेलेपन के प्रति सचेत होकर पीछे मुड़कर बोली।

"ये देखो न फँस गया।" पुष्पी बोली। सुगनी ने चिचँड़े के काँटेदार छरके को साड़ी से अलग किया। वह झुककर जगह-जगह फँसे हुए टुकड़ों को नोच-नोचकर अलग करती रही। पुष्पा की गरदन से नीचे तक के सारे हिस्से पर साँवली छाया थी, पर मुख पर ढलते सूरज की गेरुई

रोशनी पड़ रही थी। अँधेरी रंगशाला, नीली यवनिका। और लाइट का यह प्राकृतिक फ़ोकस ! आह, कितने सुन्दर ढंग से हँसी थी पुष्पा। उसकी बुद्धि शायद सुगनी के काम की निगरानी में विद्यमान थी, बच गया था सिर्फ़ नाना रंगों के भावों से भरा हृदय जो अपना सर्वस्व बटोरकर उस हँसी में डूब गया था। हलकी तिर्यक् हँसी, चमकते दाँतों पर ललछौंहे होंठों की रोशनी का मेहराब खींचती हँसी, और नाना अर्थों और यादगारों से भरी-भरी यह हँसी जाने विपिन को अनहेतुक गर्व से भर गयी।

पुष्पा अपनी साड़ी को ठीक करके सुगनी के साथ आगे बढ़ गयी थी। पर एक पुष्पा वहीं छूट गयी थी। लाल चमकदार साड़ी में लिपटी। छुई-मुई सी लजाधुर पुष्पा। वह आकृति एकटक उसे देख रही थी। काँटे से पैर लहू-लुहान हो गया था। मगर चेहरे पर कैसी अद्भुत मुस्कराहट थी। अचानक जाने किस स्मृति-कोश से निकलकर विपिन के मन में ये पंक्तियाँ तैर गयीं :

तीर तरंगिनि कदम्ब कानन, निकट जमुना घाट।
उलटि हेरइत पलट परलौं चरन चीरल काँट॥

विद्यापति की ये पंक्तियाँ जाने कितनी बार पढ़ी थीं, मगर एक-एक पंक्ति साकार, चित्रमय अर्थ लेकर तो जैसे आज ही समझ में आयी। उसके पहले तो यह कविता मानो किताब के पृष्ठों में सीमित अक्षर-समूह भर थी, चित्र से रहित, अर्थ से दूर।

विपिन वहीं खड़ा देर तक पुष्पा को देखता रहा। वह देवीधाम वाले चबूतरे पर कुछ दूर चलकर क़स्बे वाले रास्ते पर मुड़ गयी थी।

'कहाँ जा रही है, इस समय ?' विपिन ने एक क्षण के लिए सोचा। क़स्बे जाने का यह कोई समय नहीं। गंगा नहाने की बेला नहीं। फिर ? और वह चमारिन सुगनी क्यों है उसके साथ ? अनेक प्रश्न। उत्तर किसी का भी नहीं। पर अनुत्तर रहने की परेशानी जैसी कोई चीज़ उसके दिमाग़ में कहीं भी न थी।

●

उस दिन चचिया के साथ पुष्पा छावनी में आयी थी। "चलो अम्मा कि बैठी ही रहोगी ?" किस तरह बनावटी गंभीरता के साथ उसने अपनी उकताहट व्यक्त की थी। जानो छावनी उसे खाने दौड़ती है। लेकिन इस आवाज़ के भीतर का सारा अर्थ समझते क्या विपिन को देर लगी थी। जाने कितनी बार देखा है इस लड़की को। सैकड़ों बार, हज़ारों बार। साल के सभी महीनों में देखा है। दिन के प्रत्येक भाग में देखा है इसे। जाने क्या है ऐसा अधूरा जो कभी पूरा होने का नाम ही नहीं लेता। उसे बार-बार जाने क्यों लगता है, पुष्पा जन्म-जन्मान्तर से उसकी पहचानी है। उसके तन-मन का कुछ भी जैसे अनजाना या अपरिचित लगता ही नहीं। उसने उसके पूरे शरीर को इतने से इतना होते देखा है। उसे तब देखा है जब वह कच्छी लपेटे गन्दी सी कुर्ती पहने छावनी आती थी। ज्यों-ज्यों बड़ी होती गयी, थुलथुलापन लुप्त होता गया। एक बार तो....हाँ। उस दिन तीज थी। अम्मा अभी जीवित थीं। पुष्पा उस समय कितनी बड़ी होगी ? रही होगी करीब ग्यारह-बारह साल की। वह क़स्बे के स्कूल से पढ़कर आया। किताब का झोला उसने कनिया के घर में खटिया पर फेंका। गर्मी के मारे जूतों के भीतर पैर जैसे झुलस रहे थे। उसने एड़ी दबाकर जूतों को हुलसाया और दरवाज़े पर खड़ा होकर बारी-बारी से पैर झटक कर जूतों को फेंका। एक उछलकर वो कोने में गया, दूसरा चारपाई के नीचे कहीं धब्ब से गिरा।

"अरी मइया रे !" पुष्पा कनिया के घर में खटिया के नीचे घुसकर कुछ खोज रही थी। जूता उसकी ठीक पीठ पर गिरा था।

विपिन घबड़ाकर भीतर गया। पुष्पा सामने खड़ी थी। अरे वाह ! आज तो वह पहचान में ही नहीं आ रही थी। गोरा मुँह पीली साड़ी में सूरजमुखी के फूल की तरह तनिक झुका हुआ था। वह बड़ी शरारत से ओठों को बिचकाकर के हँस रही थी।

"ऐसे फेंकते हैं जूता ?"

"मैं क्या जानूँ कि तू यहाँ छिपी बैठी है।"

विपिन पुष्पा के एकदम पास पहुँच गया। उसने उसकी पीठ से हाथ सटाकर पूछा—"घाव तो नहीं लगा ?"

"धेत् ।" पुष्पा एकदम शरमा गयी थी।

पुष्पा वहाँ से हटकर कमरे में इधर-उधर ताकती रही। उसने विपिन के दोनों जूतों को ढूँढ़कर खटिया के तनिक नीचे सजाकर रख दिया। विपिन चुपचाप उसकी ओर ताकता रहा।

"पानी लाऊँ न ?"

तभी कनिया दरवाज़े पर आ गयीं। आज वे भी रंगीन नयी साड़ी में बहुत चटक लग रही थीं। विपिन एक क्षण उनके चेहरे पर ताकता रहा।

"ऐसे क्या देखते हो ?" कनिया हँसती हुई बोलीं—"पानी-वानी पीया कि नहीं ?" उन्होंने पुष्पा की ओर देखकर कहा—"जा बबुई, दौड़कर पानी तो ले आ।"

पुष्पा दौड़कर पानी लायी। कनिया ने दो पुवे विपिन को दिये। एक पुष्पी को। कनिया कमरे से बाहर चली गयीं। विपिन अपने पुवे लेकर बैठा रहा।

"पुष्पी ! एक और ले।" उसने किंचित् रुष्ट होकर कहा। जैसे कनिया से बहुत ख़फ़ा हो।

"नहीं, तुम खाओ।" पुष्पी बोली।

"अच्छा आधा ले।" उसने आधा पुआ तोड़कर पुष्पी को दे दिया। पुष्पी ने इस बार 'नाहीं' नहीं की। कनिया चुपचाप बाज़ू से लगकर यह देखती रही थीं—"हूँ, तो आज ही से पुष्पा को हर चीज़ में आधा मिलने लगा ? वे ज़ोर से ताली पीटकर हँसी। दोनों एकदम सकता गए। जैसे कनिया ने उनका कोई बहुत बड़ा राज़ जान लिया हो। पुष्पी चुपचाप कमरे से बाहर चली गयी। इस बात को कनिया आज तक भी भूली नहीं है। जाने कितनी बार इस क़िस्से को सुना-सुनाकर वे दोनों को चिढ़ाती रही हैं।

विपिन ने चरनी से पैर नीचे हटाया। चुपचाप बग़ल की चारपाई पर आकर बैठ गया। तभी सामने से दयाल पंडित आकर चारपाई के पास खड़े हो गए।

"विपिन बाबू।" उनके चेहरे पर अजीब तरह की दहशत और घबड़ाहट छायी हुई थी।

"क्या हुआ दयाल महाराज, क्या बात है ?"

"ओ....हाँ, एक बड़ी खराब बात है।" दयाल महराज सहसा चुप हो गए।

"कैसी बात ?" विपिन को दयाल महराज की इस आदत पर बेहद गुस्सा आता है—"जल्दी बोलिए न ?"

"इधर से आपने पुष्पा और सुगनी को जाते तो देखा होगा।"

"हाँ, हाँ, हाँ, तो ?"

"बात यह है विपिन बाबू !" दयाल महराज जैसे सोच ही न पा रहे हों कि इस बात को कैसे कहना चाहिए—"बात यह है कि आज दोपहर को मैं चमरौटी से आ रहा था। सुरजू सिंह के दालान के पक्खे के पास सुना। हम थोड़ा ढुक्का लगकर सुन लिया विपिन बाबू।" दयाल महराज अपराधी की तरह बेबसी के साथ मुसकराए—"सुरजू सिरिया से कह रहे थे कि सीपिया नाले के पास आज सुगनी पुष्पा को फिर ले जायेगी। बुझारथ को तो मालूम नहीं है कि हम लोग सब जान गए हैं। चलो हम लोग पुल के ताखे में लुके रहेंगे। ऐन मौक़े पर पहुँचकर बुझारथ को पकड़ लेंगे। हमने इतना ही सुना विपिन बाबू। तभी से मेरा शरीर काँप रहा है। हमको लगता है कि कुछ न कुछ गड़बड़ ज़रूर है।" एक साँस में इतना कहकर दयाल पंडित चुप हो गए।

विपिन दयाल महराज की बात सुनकर भौंचक्का रह गया। उसकी समझ में बात पूरी तरह आयी नहीं। सुगनी पुष्पा को बुलाकर ले गयी है, मगर सुगनी तो सुरजू सिंह की ही मजूरिन है। फिर पुष्पा को किसने बुलवाया सुगनी से ? बुझारथ सिंह को कौन सी चीज़ मालूम नहीं है ? यानी

बुझारथ सिंह कुछ छिपकर करना चाहते हैं, और इस बात को सुरजू सिंह जान गये हैं ? जान तो जायेंगे ही सुरजू सिंह, सुगनी उनसे ज़रूर कह सकती है। मगर सुगनी से बुझारथ सिंह से क्या मतलब ?

"क्यों दयाल महराज, सुगनी तो सुरजू सिंह की मजूरिन है ना ? फिर भइय्या से क्या वास्ता उसका ?"

"आप नहीं जानते विपिन बाबू। आप तो अभी-अभी आये हैं यहाँ। बहूरानी के आने के पहले तक सुगनी रोज छावनी आती रही है। बब्बन बाबू ने उसके लिए कान की ऐरन बनवायी। हम खुद जानते हैं यह बात। सुगनी ने हमको छावनी के सामने रोककर दो रुपिया दिया था कि आप क़स्बे जा रहे हैं, तो गुलरोगन का तेल लेते आइयेगा। फिर आप कैसे कहते हैं कि सुगनी से बब्बन बाबू का क्या वास्ता ?"

"हूँ, तो सुगनी दोनों ओर मिली हुई है। यही मतलब न ?" विपिन चारपाई से उछलकर खड़ा हो गया—"और भी कोई जानता है, इस बात को ?"

"और कौन जानता होगा ?"

"आइये दयाल महराज आप भी।" विपिन चुपचाप देवीधाम वाले छवरे से चल पड़ा। उसके मन में तरह-तरह की बातों का ऐसा तूफ़ान उठ रहा था कि कुछ सोच पाना बिलकुल मुश्किल था। भइया भी जाने काहे पर लात मार दिये हैं। कुर्की के दिन भी पुष्पा की बातों से स्पष्ट हो गया था कि वे पुष्पा की ओर बुरी तरह खिंचे हैं। एक अजीब प्रकार की लहर आग की लपट की तरह कलेजे से उठकर विपिन की कनपटी को जलाती हुई निकल गयी।

बेचारी लड़की की ज़िन्दगी ख़राब कराने के लिए जाने कौन-कौन से षड्यंत्र हो रहे हैं ! पुष्पा के विषय में होनेवाले षड्यन्त्रों को चाहकर भी तो विपिन तटस्थ भाव से नहीं देख सकता। यदि वह पुष्पा का पक्ष लेकर बब्बन से लड़े तो भी, न लड़े तो भी, कहीं से भी कुशल नहीं दिखाई पड़ती। मगर अब तक जो वह सारा धुआँ किसी पर्दे के भीतर बन्द था। अब यदि कहीं पुष्पा का कुछ हो गया ? हे भगवन्, कहीं मुँह दिखाने लायक़ भी नहीं रहेगी वह लड़की। और भाई साहब ! सुरजू सिंह को सारा भेद बताकर सुगनी पुष्पा को लिवा गयी है। भाई साहब ने बुलवाया है। जाने कितने दिनों सोच-सोचकर यह पूरा षड्यंत्र रचाया गया होगा। उस बेचारी को कुछ मालूम नहीं। यदि भाई साहब पकड़ लिये गये तो ? तो ? मालिक काका के नाम पर भरपूर कालिख पुत जायेगी। क्या ऐसा कुछ नहीं हो सकता कि यह सब न हो। मगर कैसे ? दयाल महराज के कान में भनक पड़ गयी तो दौड़े आये, अब भी शायद कुछ बच जाये। पता नहीं क्या हुआ होगा वहाँ ? विपिन क़रीब-क़रीब दौड़ता हुआ सा चला जा रहा था। वह रास्ते भर एकदम चुप था।

"छोटे बाबू !" दयाल महराज फुसफुसाये—"उधर नहीं, उधर नहीं। इस जोन्हरी वाले खेत की आड़ से घूम जाइये। कौन जाने सब बात झूठी ही हो। पहले यहाँ छिपकर देख तो लीजिए।"

विपिन को उस समय कुछ सोचने की फ़ुर्सत न थी। वह चुपचाप दयाल महराज के पीछे-पीछे हो लिया। जोन्हरी वाले खेत के आगे कई खेतों का एक पूरा 'चक' था जिसमें चैती की फसलें बोयी हुई थीं। इस चक के पूरब तरफ सीपिया नाला है। और काफ़ी दूर उत्तर तरफ रेल्वई पुल। यदि दयाल महराज की ख़बर सही है तो सुरजू और हरिया पुल के किसी ताखे में छिपे हैं। खुदाबख़्श और बुझारथ सिंह उधर कहीं नाले में होंगे। तो यही खेतवाही करने आते थे दोनों ? नीच कहीं के। पूरी तैयारी से योजना बन रही थी।

दूर खेत में सुगनी पुष्पा के पास जाकर कुछ कह रही थी। दोनों ने एक मिनट खड़ा होकर बातें कीं। पुष्पा ने अपने आँचल के साग को देखा, फिर आँचल मोड़कर हाथ में दबा लिया। सुगनी आगे-आगे चली। नाले के पास वाला रास्ता पकड़कर घर लौटने की सलाह दी होगी उसने।

पुष्पा सुगनी के साथ नाले पर पहुँची ही थी कि एकाएक चौंककर चीखी। खुदाबख़्श उसे पकड़ने के लिए झपटकर नाले से बाहर आ गया।

सुगनी दोनों हाथ उठाकर भालू की तरह कूद-कूदकर पुष्पा की राह रोक रही थी। तभी खुदाबख़्श की नज़र शायद पुल की तरफ पड़ी। उसने वहाँ कुछ देखा होगा। वह बिदककर नाले में कूदा।

"भागिये छोटे सरकार...!" वह ज़ोर से चीखा—"किसी ने पुल पर से देख लिया है हमें।" खुदाबख़्श की इस चीत्कार को सुनकर पुष्पा बेतहाशा जोन्हरी वाले खेत की ओर भागी। सुगनी भी घबड़ायी थी। वह उसके पीछे-पीछे भाग चली। दयाल पंडित ने विपिन का हाथ पकड़कर खेत के भीतर कर लिया। पुष्पा विपिन के सामने से हाँफती हुई भागती चली गयी। विपिन उसके चेहरे को देखकर सिहर गया। सारा चेहरा गेरू के रंग में रँगा था। आँखें फटी-फटी लग रही थीं उसकी।

दयाल महराज ने विपिन का कुरता पकड़ खींचा—"आइये, भीतर ही भीतर नाले के पास पहुँचकर देखें। सुरजू और सिरिया दौड़कर आ रहे थे। बब्बन बाबू और खुदाबख़्श का क्या हुआ?"

विपिन चुपचाप जोन्हरी के पौधे के भीतर रास्ता बनाता नाले की ओर चल पड़ा।

नाले के भीतर दौड़ने की आवाज़ स्पष्ट सुनायी पड़ रही थी।

"अरे बाप रे!" एक चीख सी उठी। आवाज़ बुझारथ सिंह की थी। विपिन दौड़कर खेत के बाहर आ गया। नाले के पास पहुँच कर नीचे की ओर झाँका तो उसकी साँसें टँगी की टँगी रह गयीं। बुझारथ सिंह की धोती दौड़ते वक़्त शायद उनके पैर में फँस गयी थी। वे खटाक् से लुढ़के होंगे। नीचे भारी सा पत्थर था। उनका सिर पत्थर की नोक पर झटके से लग गया था। सारा पत्थर खून से रँग रहा था। बुझारथ सिंह बिलकुल बेहोश हो गये थे।

खुदाबख़्श उनको सँभालने में असफल होकर, उनकी चीख के साथ ही नीचे झुका हुआ था। उसने उनका हाथ पकड़कर खींचा। खून में सना चेहरा देखकर उसे जैसे लकवा मार गया हो।

"क्या हुआ खुदाबख़्श?"

विपिन की आवाज़ सुनकर खुदाबख़्श यों कूदा जैसे उसके पैर लुत्ती पर पड़ गये हों।

"आप?" उसने आश्चर्य से आँखें फाड़-फाड़कर विपिन की ओर देखा। दयाल महाराज बगल में खड़े थे—"छोटे सरकार के सिर में बहुत चोट आ गयी है।"

"हूँ!"

तभी दौड़ते-भागते सुरजू और सिरिया भी आ पहुँचे। उन सबों को पास आते देख सबने यों गरदन झुका ली, जैसे उनका आना किसी को मालूम ही न हुआ हो।

"कहो खुदाबख़्श मियाँ! सिकार हाथ आया कि नहीं?" सुरजू ने कहा। तभी उसने शायद नाले के करार पर खड़े विपिन को देख लिया।—"अरे ई क्या? बुझारथ बाबू गिर पड़े क्या? दौड़ते वक़्त उलट गए होंगे?"

"नहीं।" विपिन ने गंभीर होकर कहा—"मुझसे झगड़ा हो गया भइया का, बातचीत में हाथापाही होने लगी। वे पीछे हटे, बस नाले में गिर पड़े।"

"अच्छा?" सुरजू सिंह सिरिया की ओर देखकर हँसा—"किस बात पर झगड़ा हो गया भाई?"

"अब आप सब कुछ जानकर क्या करियेगा?" विपिन ने वैसे ही तटस्थ होकर कहा—"दो भाइयों में झगड़ा-झंझट हो ही जाता है। उसमें आपसे क्या वास्ता?"

"हाँ-हाँ, सो तो ठीक है, मगर झगड़ा-झंझट का ई मतलब थोड़े है कि कोई एक भाई दूसरे को मारकर जान ले ले।" सुरजू सिंह ने पैंतरा बदलकर कहा—"अब खड़े क्या हो खुदाबक्कस मियाँ? उठाकर ले चलोगे कि यहीं रखे रहोगे। देखते नहीं कि अभी तक खून का बहना बन्द नहीं हुआ।"

"अएँ, हाँ....हाँ, जरा उठवाइये सुरजू बाबू! विपिन बाबू को भी

जाने आज क्या हो गया। अरे इनकी तो यह आदत है। बड़े भाई हैं। दो ठो कड़ी बातें कह दीं तो क्या हो गया, बस लड़ पड़े।"

"चुप रहो मियाँ मुकुड़ी। तुम बहुत इधर-उधर की लगाते हो।" दयाल महराज ने कहा—"हम और विपिन बाबू तो क़स्बे से आ रहे थे। छोटे सरकार ने तो रोककर इनसे झगड़ा शुरू किया। अरे ज़रा क़स्बे चले गए, बिना पूछे तो भाई कवन अनरथ हो गया ऐसा ?"

"लगाते-बुझाते होगे तुम बुल्लू पंडित।" खुदाबक्कस आँखें नचाकर बोला—"मुझे ऐसी आदत नहीं। हमारे लिए जैसे छोटे सरकार वैसे विपिन बाबू।"

"अच्छा-अच्छा खुदाबक्कस मियाँ। ई सब कहा-सुनी बन्द करो। इन्हें उठाकर ले चलो।" सूरजू सिंह ने हाथ लगाकर बुझारथ सिंह को उठा लिया। खुदाबक्कस सिर थामे था और सिरिया पैर। नाले के ऊपर आकर धीरे-धीरे वे गाँव की ओर बढ़ चले।

"ए दयाल महराज !" सुरजू सिंह ज़ोर से बोले—"अरे हम लोगों की लाठी उठाते आइयेगा।" सुरजू सिंह की बोल-चाल में यहाँ तक कि घायल बुझारथ सिंह को उठाकर ले चलते समय की उनकी मुद्राओं में भी ऐसा कहीं कुछ न था कि जिससे लगे कि उनको घायल के प्रति सहानुभूति है, या कि वे इस पूरे कांड के बारे में थोड़ा भी दुखी हैं।

दयाल महराज ने नाले में उतरकर सुरजू और सिरिया की लाठियाँ उठा लीं।

"विपिन बाबू ! आपने यह क्या किया ?" दयाल महराज बोले।

"तब क्या करता दयाल महराज ! आपने देखा नहीं आते ही सुरजू सिंह ने कहा कि दौड़ते वक़्त उलट गए होंगे। यह तो कहिए अच्छा हुआ कि खुदाबक्कस ने दूर से ही इन लोगों को देख लिया था। वह पुष्पा के सामने से हटकर नाले में कूद पड़ा। कहीं उसने उसे पकड़ा होता, और इसी बीच सुरजू और सिरिया भी आ पहुँचते, तब क्या होता ?"

"खैर, जो हुआ सो अच्छा ही हुआ....बाकी।"

"बाक़ी को अब इस समय कौन सोचे दयाल महराज ! आप बढ़ चलिए। मैं आता हूँ।"

दयाल महराज एक क्षण मौन खड़े होकर विपिन के चेहरे पर ताकते रहे। फिर लाठियाँ उठाये धीरे-धीरे गाँव की ओर चले। वे रुककर पीछे मुड़-मुड़कर देखते कि विपिन बाबू आ रहे हैं या नहीं, फिर निराश होकर आगे की ओर चल पड़ते।

●

बुझारथ सिंह को लादे-फाँदे जब लोग छावनी पहुँचे, तो एक हंगामा खड़ा हो गया। इस तरह से एक आदमी को लादे कुछ लोग आ रहे हैं, यह दृश्य खुद में ही इतना विचित्र था कि जो इसे देखता, इधर-उधर बैठे-घूमते लोगों को अपना अनुमान जरूर सुनाता। धीरे-धीरे इस विचित्र तमाशे के स्वागत के लिए देवी-धाम वाले छवरे के मुहाने पर काफी भीड़ इकट्ठा हो गयी।

"अयँ, ई तो खुदाबक्कस और सुरजू सिंह हैं ?" एक ने कहा। इन दो व्यक्तियों का ऐसा अपूर्व सहयोग गाँव वालों को रहस्य भरे कुतूहलों के हचकोलों से पूरी तरह हिला रहा था। "अरे ई देखो, हरखू दादा ! लगता है बुझारथ सिंह को उठाये हैं सब ? अयँ क्या हुआ रे, बुझारथ को ? अरे बाप रे, सुरजू और खुदाबक्कस दोनों लोहू में डूबे हैं।"

छवरा जहाँ बबुआन की छावनी की ओर घूमता है, वहाँ आते ही सामने खड़े लोगों ने सवालों की झड़ी लगा दी। अब किसका-किसका कौन उत्तर दे। बुझारथ सिंह को लिये-दिये लोग छावनी पर आ रहे। आदमियों का ऐसा कोलाहल सुनकर बुट्टन और शीला दोनों बखरी में से निकलकर बाहर आ गए। कनिया दरवाज़े के पास पल्ले की आड़ में खड़ी इस भीड़ को देख रही थीं। किसी को हाथों में उठाये हैं लोग, मगर किसे ? वे अजीब तरह से घबड़ायी हुई ताक रही थीं।

"आह रे बाबू जी !" तभी शीला खून में सने, बेहोश बुझारथ सिंह को देखकर धाड़ मारकर रो पड़ी।

"अयँ ?" कनिया फाटक लाँघकर बाहर निकल पड़ीं।

"खुदाबक्कस मियाँ। बाहर दालान में नहीं, भीतर घर में करवा दो, वहाँ सब सुविस्ता रहेगी।" सुरजू सिंह ने कहा।

"अच्छा ! हाँ तो ले चलिये।" खुदाबक्कस और सुरजू सिंह बखरी के दरवाज़े की ओर चले। कनिया फाटक से घुसकर पहले ही आँगन में आ गयीं। उनके मन में नाना प्रकार की शंकाएँ एक साथ घुमड़ रही थीं। सुरजू सिंह की उपस्थिति, और उसका इस तरह का सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार उन्हें और अधिक घनी रहस्य-चादर में लपेट रहा था।

"हे भगवान् ।" आँगन की चारपाई पर बुझारथ सिंह को उतारकर रखा गया तो कनिया उनके निढाल शरीर को देखकर बिलख उठीं—"ई का हुआ ? हे ईश्वर ! ई किसने किया ऐसा।"

"खुदाबक्कस मियाँ !" सुरजू सिंह बोले—"यहाँ खड़ा होकर तमाशा मत देखो। झपटकर देबू पंडित को बुलाओ। चोट करारी है। अभी तक होश नहीं आया।"

"का हो सुरजू बेटा।" हरखू दादा को बुझारथ सिंह की इस संगीन हालत पर कुछ सोचने से ज्यादा जरूरी छिपे रहस्य का उद्‌घाटन प्रतीत हो रहा था। बोले—"ई हुआ कैसे सुरजू बेटा।"

"हम लोग तो थोड़ा बाद में पहुँचे, हरखू दादा।" बहुत छिपी हुई हँसी के साथ गर्दन झटककर सुरजू सिंह बोले—"सुना दोनों भाइयों में झगड़ा हो गया। हाथा-पाही होने लगी। विपिन ने धकेल दिया और बुझारथ भाई सीधे मुँह के बल सीपिया नाले में गिर गए। नीचे बड़ा भारी कोराह पत्थर था। जानो कि वही कच्च से धँस गया कपार में। अरे उहाँ की हाथ माने जमीन खून से तर हो गयी है, हाँ ?"

"राम, राम, ऐसा किया जाता है बड़े भाई के साथ।" हरखू दादा ने कहा—"महावीर सामी कसम विपिन बेटा से ऐसी उम्मीद नहीं थी।"

कनिया ने यह सुना तो एक क्षण के लिए जैसे निश्चेष्ट हो गयीं। वे सामने की छत की ओर देखतीं वैसे ही खड़ी रह गयीं। विपिन से झगड़ा हो गया। सीपिया नाले पर। उहाँ ? वे सहसा कुछ सोचने में असमर्थ होकर बावली सी ताकती रह गयीं।

हरखू सरदार को सुराग मिल गया था। वहाँ रुकना उनको बिलकुल बेकार लग रहा था।

"अरे लड़को ! इहाँ का मजमा लगाये हो ? महावीर सामी कसम, तुम लोगों के मारे तो आदमी और भी घबड़ा जायेगा। भागो, भागो यहाँ से। अरे सरवा तेलिया, भाग बे। निकल। सब नान्ह जात के छोरे साले बरतन-बासन छू-छाकर भरभंड कर देंगे। निकलो।" हरखू सरदार दोनों बाँहें फैलाकर अपनी डाँट-डपट के जाल में लड़कों को फँसाये दरवाज़ा हेलते बाहरी चबूतरे पर आ रहे।

"का हो हरखू दादा।" अनेक बड़े-बूढ़े, प्रौढ़-नवचे जो भीड़ के साथ बखरी में न घुसकर वहीं रुके हुए "कुछ बुझात नाहीं" की पीड़ा से छटपटाते, असली भेद को जानने को उत्सुक खड़े थे, हरखू दादा को आते देख, उन्हें घेरकर बोले—'का हुआ हरखू दादा ?'

"अरे भाई, महावीर सामी कसम, कलिजुग में जो न हो जाय। सुना विपिन बाबू ने ढकेल दिया नाले में। नीचे पत्थर था, बस कपार फट गया।"

"अच्छा ! विपिन बाबू तो ऐसे नहीं थे।"

"कुछ नहीं कहा जा सकता भइया किसी के बारे में। चुप्पा आदमी बड़ा खतरनाक होता है, महावीर सामी कसम।"

"अरे भाई, कुछ हुआ होगा, दोनों तरफ़ से।" बहुत से लोग जो सिर्फ़ इतना जानने भर के लिए रुके थे, अपनी तटस्थता को व्यक्त करके घर की तरफ चल पड़े। बुट्टन कभी घर के भीतर जाता, कभी बाहर आता। बुझारथ सिंह बेहोश हैं। चाचा दुश्मन निकल गया। अम्मा पागल की तरह इधर-उधर ताकती खड़ी हैं। शीला बाबू जी के पास बैठी हुटक-हुटक कर रो रही है, इसलिए सारा काम और ज़िम्मेदारी बुट्टन के ऊपर

आ गयी है। जाने ई खुदाबक्कसा कहाँ मर गया? देवनाथ डाक्टर को आने में इतनी देर क्यों हो रही है?

तभी हाथ में आला लिये, देवनाथ लम्बे-लम्बे डग भरता छावनी पर आ पहुँचा। खुदाबक्कस पीछे-पीछे उसका दवाओं का बक्सा लिये चल रहा था।

"इधर आ जाइये डाक्टर साहब।" खुदाबख्श बखरी के भीतर आने का संकेत करके खुद आगे हो गया। देबू उसके पीछे-पीछे चल पड़ा।

डाक्टर को आता देख, घेरकर खड़े लोग इधर-उधर हट गए। देवनाथ ने एक नजर भीड़ पर डाली। फिर चारपाई के पास पहुँचा। उसने बुझारथ सिंह का हाथ पकड़कर नब्ज़ देखी। फिर आँख के पपोटे उघाड़कर पुतलियों की चमक और फैलाव का अन्दाज़ा लिया।

"ज़रा ठंडा पानी।"

कनिया झपटकर गिलास में ठंडा पानी लायीं। देबू ने पानी हथेली में उलीच-उलीचकर आँखों पर छींटा मारा। कपड़ा भींगाकर उसने मुंह पर से खून छुड़ाया। काफी देर तक छींटा मारने पर बुझारथ सिंह की आँखें खुलीं।

"घबड़ाने की कोई बात नहीं है भाभी! ज़रा पानी गरम करवाइये। बस तनिक गुनगुना, जल्दी।"

देवनाथ ने दवाओं का बक्सा खोलकर सूई लगाने का सामान बाहर निकाला। गरम पानी में सिरिंज को धोकर उसने दो दवाओं को एक में मिलाकर कोई सूई लगायी। गरम पानी में एक सफेद पावडर मिलाया और घाव को धोकर देखा! डेढ़-दो इंच लम्बा घाव था। चमड़ा कट गया था। भीतर गहरी चोट मालूम होती थी।

घाव धोते वक़्त बुझारथ सिंह ने सिर हिलाया था। फिर दवा लगा कर पट्टी बाँध दी गयी। अपने काम से निपटकर देबू फिर चारपाई की पाटी पर बैठ गया और उसने नब्ज़ देखी।

"खून ज्यादा निकल गया है भाभी! पर कोई घबड़ाने की बात नहीं। होश आ गया है। नब्ज़ ठीक है। मैंने ए० टी० एस० और एंटी-बायोटिक्स की सूई लगा दी है। सब ठीक हो जायेगा।"

"मगर ये तो न बोलते हैं न कराहते हैं।" सुरजू सिंह ने अपने मन की शंका बतायी।

"चोट काफी है। दिल पर भी धक्का लगा। इतना खून निकला है। ऐसे में आदमी सुस्त तो हो ही जाता है। बोलेंगे बाक़ी ज़रा रुककर। सब कुछ इतनी जल्दी कैसे हो जायेगा?"

"अच्छा खुदाबक्कस मियाँ, अपने तो चले।" सुरजू सिंह ने कनिया की ओर कनखी से देखा। मगर वे कहीं और देख रही थीं।

"क्या औरत है यह भी।" सुरजू मन ही मन बड़बड़ाया—"ज़रा भी शरीर कहीं से उतरा नहीं। गंभीर इतनी कि बड़ी से बड़ी आफ़त भी जैसे हिला नहीं सकती।"

सुरजू सिंह निकसार से होते हुए बाहर निकल गए। खुदाबक्कस मचिया खींचकर बगल में बैठ गया।

कनिया पास ही खड़ी थीं। तभी बाबू बुझारथ सिंह दर्द के मारे ज़ोर-ज़ोर से चीखने लगे। हाथ-पैर झटकते और रह-रहकर घाव के स्थान पर हाथ से टटोलते। उनकी छटपटाहट कुछ इस क़दर की थी कि देबू भी घबड़ा गया।

उसने पास जाकर उनके सिर पर हाथ रखकर पूछा—"क्यों बाबू साहब! ज्यादा तकलीफ है?"

बुझारथ सिंह ने आँखें खोलकर देखा! एक क्षण देबू के चेहरे पर ताकते रहे।

"दर्द हो रहा है क्या?" देबू ने फिर पूछा।

"घबड़ाहट जैसी लग रही है।" वे बड़ी थकी आवाज़ में रुक-रुक कर बोले।

देबू ने बक्स खोलकर एक गोली निकाली। उसे पाउडर जैसा बनाकर उनके पास ले गया।

"यह दवा खा लीजिये आप। अभी ठीक हो जायेगा सब कुछ।"

उनके गले में हाथ लगाकर उसने उठाया और मुँह में दवा डाल दी। कनिया ने पानी की कटोरी मुँह से लगायी। बुझारथ सिंह कड़ुवा मुँह बना कर पानी गटकते रहे। फिर उन्होंने कटोरी छोड़ दी। एक क्षण कनिया की तरफ़ देखा और लेट गए।

दस-पन्द्रह मिनट के बाद वहाँ से चलते हुए देबू ने कहा—"यहाँ ठंढक बढ़ने लगी है। इन्हें घर में करा दीजिये। आराम से सोयेंगे। जगाने या बुलाने की जरूरत नहीं है। अपने से कुछ कहें, या फिर दर्द बढ़े, तो हमें खबर करियेगा।"

"जरा आप मदद कर दीजिये डाक्टर साहब!" खुदाबक्कस ने कहा। बहूरानी घर में बिस्तर लगा रही हैं। आप जरा साथ रहकर उन्हें भीतर पहुँचवा दीजिए।"

बुझारथ सिंह को कमरे में चारपाई पर लिटा दिया गया। वे चुपचाप जैसे सो रहे हों। खुदाबक्कस डाक्टर के साथ ही वहाँ से बाहर आ गया। शीला एक दीवाल से पीठ टिकाये आँगन में ही बैठी थी।

बुझारथ वाले कमरे में अकेले कनिया ही थीं। वे चटाई पर बैठी चुप-चाप दीये की मद्धिम रोशनी में कहीं देख रही थीं। विपिन ने ढकेल दिया, नाले में? रह-रहकर यह बात उनके मन को बुरी तरह मथ रही थी। आखिर दोनों में लड़ाई किस बात पर हुई? विपिन तो अभी चार बजे तक यहीं दरवाजे पर था। उसे सोपिया नाले पर जाकर लड़ाई करने की क्या जरूरत आ गयी? माना दोनों में अचानक भेंट हो गयी। उन्होंने ही कुछ कहा होगा, मगर विपिन हाथापाही करेगा? विपिन ने भाई को नाले में झोंक दिया। मैंने जिस विपिन को अपने बच्चे की तरह पाला-पोसा, बीमार-तीमार होने पर पेशाब और पाखाना तक जिसका फेंकती रही, उस विपिन ने ऐसा कार्य कर दिया? कनिया के मन में तूफान ज्यों का त्यों तेज होता गया, उनके धैर्य का बाँध टूटता गया। विपिन को हम लोगों से घृणा है। विपिन हमारे साथ नहीं रहना चाहता। क्या किया हमने कि

विपिन इतना नाराज़ हो गया। कनिया ज्यों-ज्यों इस मामले पर सोचतीं, एक अजीब तरह की ग्लानि, पीड़ा और अबूझ शून्यता उन्हें अपने गुंजलक में लपेटती जाती।

"किससे पूछूँ?" वे बुदबुदायीं—"क्या बात थी? क्यों झगड़ा हुआ?" वे थोड़ा रुककर बोलीं—"शीला ज़रा यहाँ आना तो।"

शीला सामने आकर खड़ी हुई तो कनिया ने पूछा—"तुमने देखा। सुरजू सिंह और खुदाबक्कस के अलावा भी कोई साथ में था क्या?"

"नाहीं भौजी, मैं तो बाबू का हाल देखकर ही घबड़ा गयी। कोई बात है का?"

"नाहीं। तू ज़रा बैठ, मैं अभी आयी।"

शीला को वहीं बैठाकर कनिया दरवाज़े पर आ गयीं। वहाँ कोई न था। सामने से गाँव की दो-चार औरतें इस घटना का हाल सुनकर अपनी सहानुभूति दिखाने छावनी में आ रही थीं। उनको साथ लेकर कनिया फिर भीतर आ गयीं।

● ●

इक्कीस

विपिन एक क्षण वैसे ही खड़ा सीपिया नाले के पेट में गड़े उस पत्थर को देखता रहा। दयाल पंडित उसे मुड़-मुड़कर देखते हुए चले गए। दयाल महराज शायद सोच रहे हैं कि मैं इधर से ही कहीं भाग न जाऊँ। विपिन को यह पूरी घटना एक विचित्र दुःस्वप्न की तरह लग रही थी। अभी-अभी कुछ देर पहले तक वह एक सज्जन और भला-सा इन्सान था। उसे बड़े भाई का प्यार, कनिया का अमित दुलार, बुट्टन की भय-मिश्रित श्रद्धा और शीला का विश्वास भरा आदर प्राप्त था। अभी कुछ देर पहले तक लोग उसे एक सीधा-सादा व्यक्ति मानते थे। और अब ? वह एक ऐसा व्यक्ति है, जिसने भाई से लड़ाई करके उसे नाले में झोंक दिया। पत्थर से लगकर बड़े भाई का सिर फट गया। जाने क्या हाल होगा भइया का। बेहोश तो यहीं हो गये थे वे। विपिन को याद है कि जब वह नाले के पास पहुँचा और उसने नीचे देखा तो बुझारथ सिंह ने झटके से सिर हिलाया था। वे शायद सीधा होने की कोशिश कर रहे थे। उसी समय....हाँ, उसी समय लगा कि जैसे उन्होंने नाले के कगार पर

खड़े विपिन को देखा है। घायल आदमी की उन आँखों में एक ऐसा भाव था, भय, कातरता, लज्जा और पीड़ा से मिला-जुला कि विपिन के सारे शरीर में पैर से चोटी तक जैसे कंपकपी दौड़ गयी हो। नहीं, उन्होंने देखा नहीं शायद ! क्योंकि गिरने के बाद ही वे तड़पकर बेहोश हो गए थे। मगर तड़फड़ाते वक़्त पलटे ज़रूर थे। शायद देखा हो उस समय....। कनिया जाने क्या सोचती होंगी।

"भगवान् न करे कुछ ऐसा...." उसने अपने गाल पर ज़ोर से थप्पड़ मारा—"हे भगवान्, मैं भी क्या-क्या सोचा करता हूँ। शायद भइया को कुछ हो गया तब तो मेरा कहीं मुँह दिखाना भी मुश्किल हो जायेगा। प्रवादों से भरी यह घृणित काया लेकर मैं कहाँ जाऊँगा। कनिया के वैधव्य का अपराध मुझे ही ढोना पड़ेगा क्या ?" सब सोचने विपिन ने अपने हृदय के भीतर कहीं उबलते धुएँ की कडुवाहट का अनुभव किया और ज्यों ही उसकी आँखों के सामने कनिया की बिना चूड़ी वाली कलाई हिली कि उसकी आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगे।

"नहीं, नहीं। ऐसा कुछ नहीं होगा। भगवान् सब ठीक करेगा।" वह बुदबुदाया और उसने मन ही मन देवीधाम की ओर हाथ जोड़कर मनौतियाँ मानीं। मन को परतोख दिया कि 'माँ' सब ठीक कर देंगी। वह धीरे-धीरे गाँव की ओर चल पड़ा। जब तक वह जोन्हरी के खेत की आड़ में था, तब तक तो चलता रहा। मगर खेत जहाँ ख़त्म हुआ, वहाँ से बाहर निकलकर खुले मैदान में आने की हिम्मत छूट गयी। एक निरर्थक आवरण, जो खुद उसके मन में ही आवरण की संज्ञा पा सकता था, उसे जैसे पूरी तरह हज़ारों हज़ार आँखों की चुभन से बचाये था। वह जानता है कि जो कुछ उसके बारे में कहा जाने को है, कहा जा चुका है। जितना कुछ उसके साथ जुड़ने या कटने को है, जुड़ या कट गया होगा, फिर भी न जाने क्यों अपने और गाँव के बीच किसी आवरण का अभाव उसे पूरी तरह परेशान कर रहा था।

आखिर हारकर वह ज्वार के खेत के कोने पर बैठ गया। क्या कहेंगे

लोग ? कैसे जाऊँ गाँव में ? मगर मैंने किया क्या है ? मैंने तो सिर्फ़ खान-दान की इज़्ज़त बचाने के लिए एक झूठी तोहमत ओढ़ ली । अपने को दोषी तो मैंने खुद बना दिया । मगर, इस पर विश्वास कौन करेगा ? कनिया सोचती होंगी कि इसी दिन के लिए इस आस्तीन के साँप को मैंने दूध पिला-पिलाकर पाला । कनिया बेचारी को क्या मालूम ? शायद कभी मालूम भी न हो । उनकी आँखों के सामने तो विपिन एक भ्रातृ-द्रोही, झगड़ालू नीच इन्सान के रूप में हमेशा-हमेशा के लिए अंकित हो ही गया । सुरजू सिंह जाने क्या कहेंगे । खुदाबक्कस जाने क्या बयान देगा । एक दयाल महराज हैं, जो मेरी ही तरह सब कुछ जानते हुए भी झूठ को ओढ़े रहेंगे ताकि दूसरे लोग कुछ और न सोचें ।

शाम कुछ ज़्यादा घनी हो गयी, तो विपिन को लगा कि अँधेरे ने उसके शरीर में इतनी ताक़त पैदा कर दी है कि वह गाँव जा सकता है । कुछ असामान्य घटना घटने की आशंका एक ओर जहाँ पैरों को शिथिल कर रही थी, वहीं उसे निश्चित रूप में जान लेने की एक घायल ख्वाहिश उसे घसीटती हुई गाँव की ओर लिये जा रही थी । गाँव ज्यों-ज्यों क़रीब आता, हल्के कुहरे का आवरण रहस्य की दुर्भेद्य दीवार की तरह नाना मुद्राओं में आँखों की राह रोककर खड़ा हो जाता । यह रास्ता उसका कितना-कितना पहचाना है । उसे हर मोड़ मालूम है । कहाँ ऊबड़-खाबड़ है, कहाँ गड्ढे हैं, कहाँ धूल है, पाँक है, इसे वह जानता है । मगर आज यह रास्ता भी कितना अजनबी लगता है । केवड़ार के सामने से घूमते वक़्त उसे बगीचे के भीतर पेड़ों की हर डाली-डाली पर चमगादड़ की तरह लटका हुआ अन्धकार कितना डरावना लग रहा था ।

छावनी के चबूतरे पर भीड़ बिल्कुल न थी । बखरी का दरवाज़ा वैसे ही खुला था । मगर उसके भीतर का सन्नाटा अजीब अर्थों से भरा था ।

चबूतरे पर एक चारपाई थी । उसके बग़ल की मचिया पर खुदाबख़्श बैठा था । उसने अपनी दोनों हथेलियों को मिलाकर एक दोना जैसा बना लिया था । उसी में अपना मुँह छिपाये कुछ सोचता सा बैठा था । विपिन के पैरों की आवाज़ सुनकर वह सचेत हुआ ।

"छोटे बाबू ।" वह डूबी-डूबी आवाज़ में बोला—"कहाँ रह गए थे अब तक ?"

विपिन कुछ न बोला । पैर लटकाकर वह चारपाई पर बैठ गया । खुदाबक्कस से बात-चीत करने की कोई इच्छा न थी उसके मन में । भीतर ही कहीं वह अब तक लगातार बातचीत ही तो करता रहा है । यह वार्तालाप बहुत थका देनेवाला था । उसका तन-मन सब कुछ एकदम सुस्त पड़ गया था । मगर रह-रहकर 'भइया' के बारे में कुछ जानने की इच्छा उसके सुस्त शरीर को कँपा जाती थी ।

"क्या हाल है ?" उसने धीरे से पूछा ।

"देबू पंडित आये थे । पट्टी-वट्टी बाँध गये हैं । सूई भी लगायी है । पहले से ठीक हैं । होश में आ गये हैं । मगर लगता है, नींद-वींद की कोई दवाई दी है । सो गुम-सुम पड़े हैं ।"

"हूँ ।"

तभी बगल से बुट्टन आया । विपिन या खुदाबक्कस किसी ने भी उसका आना देखा नहीं । बुट्टन शाम से ही अपने पिता का ख़ून-सना शरीर देख-कर गुस्से से पागल हो रहा था । देबू पंडित दवा-दारू देकर गए तो वह सीधे सिरिया के पास गया । किस बात पर दोनों लड़े यह जानने की आकांक्षा सहज थी, पर सिरिया ने लड़ाई का कोई कारण नहीं बताया । उसने बड़ा सहानुभूतिपूर्ण चेहरा बनाकर कहा—"अरे ससुरे, तेरे बाप को तो विपि-नवा आज पीट-पीटकर मार डालता । जे बा से चलो, उसी बीच हम लोग पहुँच गए । नहीं लाश ही आती आज, हाँ । सुरजू भाई ने दौड़कर विपिन को अलग किया; मगर जे बा से विपिन ने हटते-हटते भी ऐसा धक्का मारा कि बुझारथ भाई एकदम नाले में गिर पड़े । बड़ा भारी पत्थर था नीचे । जानकर ही विपिन ने झोंका होगा नाले में । तड़ाक् की आवाज़ हुई थी । जे बा से जानो बन्दूक छूटी हो । हम लोग तो ई सब देखकर सन्न

रह गये। ऊ तो कहो कि भगवती माई की दया थी कि उनकी जान बच गयी। विपिनवा ने तो जान लेने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी।"

बुट्टन सिरिया की बातें ज्यों-ज्यों सुनता गया, उसका खून उबाल लेता रहा। "मिल जाते आज ससुर कहीं तो...." उसने मन ही मन विपिन को हज़ारों गालियाँ दीं।

चबूतरे पर आते ही बुट्टन ने विपिन को देख लिया। वह चुपचाप दालान में घुस गया। कोने में रक्खी लाठियों में से एक उठाकर छिपे-छिपे विपिन के ठीक पीछे पहुँचा। खुदाबक्कस बुझारथ सिंह की हाल-चाल बताकर फिर वैसे ही मुँह गाड़कर बैठ गया था। तभी बुट्टन ने खींच कर लाठी मारी।

"आह !" विपिन ने चीखकर अपना पखुरा दबा लिया।

खुदाबक्कस तुरन्त उछलकर खड़ा हो गया। उसने बुट्टन की लाठी को बीच ही में पकड़ लिया।

"पागल हो गये हो क्या....? ई क्या कर रहे हो बुट्टन बाबू ?"

"हाँ, हाँ, पागल हो गया हूँ। तुम छोड़ दो मुझे, नाहीं मैं तुम्हारी भी बोटी-बोटी काटकर फेंक दूँगा। ई साले को बिना मारे मैं छोड़ूँगा नहीं। ई कसाई है ! ई बाबू जी की जान ले रहा था आज। कमजोर आदमी को नाले में झोंक दिया। बड़े बहादुर बनते हैं, हुँह।"

"क्या बक-बक कर रहे हो तुम बुट्टन बाबू ! तुम अभी लड़के हो। कुछ नहीं समझते....। चाचा पर इस तरह लाठी मारी जाती है ?"

"कौन चाचा और कइसा चाचा ! ई चाचा है कि दुश्मन है ?"

विपिन बिल्कुल निश्चेष्ट होकर अपने चुटीले कंधे को हाथ से दबाये वैसे ही बैठा रहा।

"यही बाक़ी था शायद।" वह धीरे-धीरे बुदबुदाया।

खुदाबक्कस से बुट्टन अभी भी लड़ रहा था। खुदाबक्कस उसे खींच काफ़ी दूर ले गया था। वह उसे समझाने-बुझाने की कोशिश कर रहा था।

तभी विपिन चारपाई से उठा। उसके पखुरे की हड्डी फूल आयी थी।

चोट की जगह पीड़ा थी, मगर उससे कई गुना चोट कहीं और थी। वह एक क्षण बखरी के दरवाज़े की ओर देखता रहा। फिर धीरे-धीरे चल पड़ा। चबूतरे पर से उतरकर वह अँधेरी गली में खो गया।

●

"जरा पानी...." बुझारथ सिंह ने करवट बदलते हुए कहा।

कनिया ने उठकर कटोरी में पानी ढाला। वे बुझारथ सिंह के पास पहुँचीं। शीला के हाथ में कटोरी थमाकर उन्होंने बुझारथ सिंह की गर्दन के नीचे हाथ का सहारा देकर उठाया। फिर शीला के हाथ से कटोरी लेकर उनके हाथों में थमा दिया। बुझारथ सिंह पानी पीकर लेट रहे।

"कैसा जी है ?" कनिया ने पूछा।

"ठीक है।"

कुछ देर मौन छाया रहा। बुझारथ सिंह को पहले से ठीक देख कनिया के हृदय में छिपे प्रश्न फिर नाना मुद्रा बनाकर उनकी आँखों के आगे नाचने लगे।

"एक बात पूछूँ ?" उन्होंने धीरे से कहा।

"क्या बात है, पूछो।" बुझारथ सिंह भीतर ही भीतर परेशान होकर बोले। एक हल्की उदासी और लज्जा का भाव उनके चेहरे पर छा गया था। मगर दीये की मद्धिम ज्योति इसे पूरी तरह छिपाये रही। कहीं सब कुछ खुल तो नहीं गया ? हे भगवन्, कहाँ से कहाँ जा फँसा मैं। बुझारथ सिंह ने ऐसे काम पहली बार नहीं किये हैं। इतना होने पर भी, यही अन्तिम है, यह भी कहा नहीं जा सकता, पर उनकी ऐसी हालत हो जायेगी, इसका तो उन्हें स्वप्न में भी अनुमान न हुआ होगा। वे अशक्य पड़कर कनिया की कृपा के पात्र होंगे, यह तो उनके दुख की बात थी ही। कहीं यह औरत असली भेद जान गयी होगी, तो पता नहीं कितनी घृणा से इसका हृदय भरा होगा !

"विपिन से आपकी लड़ाई क्यों हुई ?"

"अयँ....?" बुझारथ सिंह ने आश्चर्य से आँखें फाड़कर कनिया की ओर देखा।

"विपिन से ही तो हाथापाही हो रही थी न, जब आप नाले में गिर पड़े ?" कनिया ने उनके चेहरे पर एकटक ताकते हुए कहा।

"ओह।" बुझारथ सिंह एक क्षण खामोश रहे। तो विपिन ने सारे भेद को छिपाने के लिए लड़ाई की बात कही है। उन्होंने सोचा।

अचानक उनकी आँखों के सामने एक हल्की सी छाया उभरी। नाले में गिरने के पहले उन्हें पूरा होश था। उनके कानों में एक पहचानी आवाज़ आयी थी। स्वर विपिन का था। उन्होंने गरदन उठायी थी। नाले के कगार पर विपिन के साथ दयाल पण्डित खड़े थे। उन्हें एक साथ ही ग्लानि और लज्जा ने अपने भीतर समेट लिया था। विपिन कैसे आ गया यहाँ ? क्या उसे सब कुछ मालूम हो गया था ? पुष्पा से विपिन का कुछ न कुछ सम्बन्ध ज़रूर है। खुदाबक्कस कह रहा था कि कुर्की के दिन धरमू सिंह को रुपए कनिया और विपिन ने दिये थे। ये हज़ारों-हज़ार मिले-जुले भाव तो बुझारथ सिंह के दिमाग़ में अब उठ रहे थे। उस समय तो उन्हें लगा कि कहीं दूर लाखों मधुमक्खियों के भनभनाने की आवाज़ उठ रही है। एक बड़ा सा आग का गोला पिघलकर उनके शरीर पर गिरा है। और वे तड़पकर उस आग के समुद्र में डूब गए हैं।

"विपिन कहाँ है ?" बुझारथ सिंह ने कहा।

कनिया को लगा कि बुझारथ सिंह ने उनके प्रश्नों का सीधा उत्तर नहीं दिया। विपिन से लड़ाई वाली बात से उन्हें अचम्भा क्यों हुआ था। बुझारथ सिंह के चेहरे पर जो कुछ था, वह लोगों के बयान से कहीं न कहीं बेमेल था। कनिया की परेशानी और भी अधिक बढ़ गयी।

"तब से तो मैं यहीं हूँ, पता नहीं। अभी देखती हूँ।"

कनिया कमरे से उठकर बाहर आयीं। उनका हृदय सहसा नाना प्रकार की आशंकाओं से भर उठा। विपिन से लड़ाई की बात शायद झूठ

है। वे धीरे-धीरे फुसफुसायीं। फिर विपिन ने यह सब क्यों कहा ? विपिन शायद कुछ छिपा रहा है। आखिर मामला क्या है ? विपिन गया कहाँ ? कनिया का हृदय बुरी तरह धड़क उठा। हे भगवान् ! शाम से ही विपिन को कहीं नहीं देखा। क़रीब-क़रीब दौड़ती हुई सी दरवाज़े को पारकर छावनी के चबूतरे पर जा पहुँचीं।

खुदाबक्कस वैसे ही मचिया पर बैठा था। वह पास ही चारपाई पर बैठे बुट्टन को समझा रहा था। मगर समझाये क्या, सारी बात कही नहीं जा सकती। बुट्टन अपने पिता का खून देखकर बौखला उठा है। खुदाबक्कस सिर्फ़ पारिवारिक तहज़ीब की बात करके बुट्टन को शान्त करने के अलावा और कर भी क्या सकता है।

"कौन है ?" कनिया ने पूछा। सामने खुदाबक्कस को देखकर वे बोलीं —"विपिन दिखाई पड़ा कहीं ?"

खुदाबक्कस मचिया छोड़कर खड़ा हो गया। उसने कनखी से बुट्टन की ओर देखा और लम्बी साँस खींचते हुए बोला—"अभी तो यहीं आये थे। लेकिन....।"

"लेकिन क्या ?"

"थोड़ी देर पहले छोटे बाबू यहाँ आये। इसी चारपाई पर बैठे। फिर उन्होंने धीरे से पूछा कि भाई साहब की तबीयत कैसी है। तभी पता नहीं किधर से बुट्टन बाबू आये। मैंने भी नहीं देखा। छोटे बाबू तो ख़ैर गर्दन नीचे किये बैठे ही थे। बुट्टन बाबू ने खींचकर एक लाठी मार दी।"

"क्या ?" कनिया का सारा शरीर जैसे खड़खड़ाकर हिल उठा— "बुट्टन ने विपिन को लाठी मार दी ! और तुम क्या कर रहे थे ?"

"ऐसा हुआ बहू जी कि मैं उन्हें देख न सका। वे चुपचाप आये और उन्होंने जब पहली लाठी चला दी और छोटे बाबू ने 'आह' करके अपना कंधा पकड़ लिया तो मैं कूदकर खड़ा हुआ। मैंने दूसरी वार को रोक लिया। बुट्टन बाबू मानते ही न थे। मैं उन्हें पकड़कर उधर ले गया

समझाने-बुझाने । छोटे बाबू ने कुछ नहीं कहा । चुपचाप वैसे ही बैठे रहे। मैं इनको उधर करके जब लौटा तो देखा कि वे कहीं उठकर चले गए हैं।"

बुट्टन सब बातें सुनता चुपचाप बैठा था । कनिया उसके सामने जाकर खड़ी हो गयीं ।

"तुमने विपिन को लाठी मारी ? तुम्हारी यह हिम्मत ?" और वे बुट्टन के गालों पर दोनों हाथों से तड़ातड़ पीटने लगीं—"नीच, कमीने, तुम्हारी ऐसी हिम्मत ? हरामी कहीं के ! यह सब नीचों के साथ का असर है। मैं मार-मारकर तुम्हारा खून पी जाऊँगी ।"

"जाने दीजिये बहूरानी ।"

"तुम इस बीच में मत बोलो । मैं ऐसी औलाद से बेऔलाद रहूँगी। इसने मुझे कहीं का न छोड़ा ।" पीटते-पीटते थककर कनिया सिसकने लगीं —"आह, जाने कहाँ गया विप्पी ।"

वे दौड़ती हुई सी बखरी में घुस गयीं ।

बुझारथ सिंह वैसे ही लेटे हुए विपिन के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कनिया हाँफती हुई कमरे में आयीं ।

"सुना आपने ? अभी कुछ देर पहले विपिन आया था । चबूतरे पर बैठा था कि बुट्टन ने पीछे से आकर उस पर लाठी छोड़ दी ।"

"क्या ?" बुझारथ सिंह उठकर बैठ गये—"बुट्टन ने विपिन पर लाठी छोड़ दी ! कहाँ है बुट्टन ? कहाँ है बुट्टन ? अभी बुलाओ । अभी लाओ मेरे सामने। मैं उसको गोली से उड़ा दूँगा । मैं उसको काटकर फेंक दूँगा । उसकी ऐसी हिम्मत ! हमारे खानदान में ऐसा कभी नहीं हुआ। हे भगवान्, विपिन कहीं चला न जाय ।"

"आप चुपचाप लेट जाइये ।" कनिया बिल्कुल प्रकृतिस्थ होकर बोलीं—"आपका घाव गहरा है। अभी बहुत कमजोरी है। मैंने बुट्टन को खूब पीटा है। आप लेट जाइये । विपिन कहीं नहीं जायेगा। मैं उसे जहाँ भी होगा खोजकर लाऊँगी ।"

"दयाल पंडित भी शायद थे विपिन के साथ ।" बुझारथ सिंह झटके

में कह गए—"उनसे पूछने से शायद कुछ पता चले ।" बुझारथ सिंह के मन में रह-रहकर यह शंका उपज रही थी कि विपिन सारा अपराध अपने सिर ओढ़कर और बुट्टन के व्यवहार से अपमानित होकर कहीं चला न जाये।

कनिया एक क्षण भी वहाँ रुकीं नहीं । दरवाज़े पर आकर उन्होंने चन्ना को बुलाकर सरेखा कि वह जैसे भी हो, दयाल पंडित को साथ लेकर आये ।

खुदाबक्कस दयाल पंडित का नाम सुनकर ही घबरा गया । दयाल पंडित के बारे में बहू जी को कैसे मालूम हो गया । कहीं छोटे सरकार ने सब बातें बता तो नहीं दीं। जरूर बता दी होंगी । तभी तो बुट्टन को मारते वक्त बहूरानी बड़बड़ा रही थीं कि इसने मुझे कहीं का न छोड़ा । खुदाबक्कस को बड़ा ताज्जुब हो रहा था कि छोटे सरकार ने ऐसी मूर्खता कैसे कर दी । अपने तो शायद सफाई देकर बरी हो जायेंगे, सारा गुनाह मेरे मत्थे थोप दिया जायेगा ।

"मैं देखूँ क्या ? शायद चन्ना के जाने से दयाल पंडित कुछ हीला-हवाला करें ।" खुदाबक्कस ने धीरे से पूछा ।

"नहीं, चन्ना के बुलाने से दयाल महराज नहीं आयेंगे तो मैं खुद जाऊँगी ।"

खुदाबक्कस चुप हो गया । उसका हृदय आशंकाओं से तड़फड़ा रहा था । बहूरानी वहीं चारपाई पर बैठ गयीं । यानी अब यहाँ से किसी बहाने भी खुदाबक्कस का जाना मुमकिन नहीं ।

•

थोड़ी देर बाद ही दयाल महराज आ गये थे । उनका चेहरा देखने लायक था । वे पूरे अपराधी की तरह हाथ जोड़कर खड़े हो गए—"मुझे बुलाया है सरकार ने ?"

"हाँ, दयाल महराज ! आप जरा मेरे साथ आइये ।" कनिया चुप-

आये हैं। चलें तो मैं फिर पीछे लगूँ। पर बड़ी देर हो गयी। वे वैसे ही बैठे रहे। मैं लाचार होकर घर आ गया। अभी गइया को कोयर डाल ही रहा था कि चन्ना पहुँचा कि बहू जी बुला रही हैं। मैं खाँची रखकर चला आया।"

कनिया ने अपनी आँखें आँचल से पोंछ लीं—"आइये दयाल महराज, आप मेरे साथ महावीर जी के मंदिर तक चलिये।"

कनिया ने चन्ना से लालटेन लेकर आगे-आगे चलने को कहा। बुट्टन को सरेखा कि यहीं रहे और बाबू जी को देखे। फिर दयाल महाराज के साथ वे गाँव के बाहर चल पड़ीं।

●

विपिन महावीर जी के मंदिर में सीढ़ियों के पास ही खंभे से पीठ टिकाये बैठा था। उसके सामने अँधेरे कुहरे में लिपटे केले के पेड़ थे। बग़ल में कुआँ। ढेकुल के बाँस का एक सिरा दूसरे सिरे पर बँधी पत्थर की चाकी के भार से उठकर काफ़ी ऊँचाई पर शून्यता में खोया था। यह भार कितना कृत्रिम और कितना बाहरी है, जो बाँस के व्यक्तित्व पर बिलकुल ऊपर से आरोपित है, फिर भी क्या ऊपर से आरोपित भार भी सन्तुलन खोने के लिए विवश नहीं करता? किन्तु इस विवशता में भी शायद एक सन्तुलन है, तभी तो बाँस भार से दबकर अपना सिर उठाये खड़ा है।

मगर विपिन तो एक ऐसे कृत्रिम भार से दब रहा है, जिसके चलते वह अपना सिर उठाये खड़ा भी नहीं हो सकता। यह सब सोचना कितना-कितना दमघोंट है। मगर विपिन को लगता है कि जब तक वह सोचता रहता है, कलेजे का भार कुछ हल्का सा लगता है। खुदाबक्कस ने कहा था कि भाई साहब को होश आ गया है। वे ठीक हैं और यह सूचना विपिन को काफी ढाढ़स बँधा गयी थी। तभी अचानक अँधेरे से वह आघात हुआ। लाठी की चोट का स्थान अब भी झनक रहा है। बुट्टू ने विपिन को मारा

है। यही है इज़्ज़त और प्रतिष्ठा, जिसे बचाने के लिए उसने अपना सर्वस्व दावँ पर लगा दिया था। आज तक भाई साहब ने भी कभी कोई कड़ी बात नहीं कही। मीरपुर के बबुआनों के परिवार में कभी भी छोटा व्यक्ति बड़े के सामने खड़ा नहीं हुआ। बड़ा भाई मार भी दे, तो उसका कुछ भी जवाब न देने की परम्परा आज अचानक भहराकर गिर गयी थी। बुट्टू तो भाई भी नहीं, लड़का है। यह घटना स्वयं में उतनी बड़ी नहीं, जितनी बड़ी वह पारिवारिक व्यवहार के इस संदर्भ में लगती है।

आज अचानक विपिन को 'माई' याद आ रही है। इतने बड़े परिवार में माई ही ऐसी थी, जो उसके मन की हर पीड़ा को बिना बताये समझ जाती थी। आज विपिन अकेला है। उसने इस अलगाव के लिए कुछ किया नहीं। कुछ कारण नहीं। पर अचानक उसे लगा कि जैसे वह एक अथाह समुद्र में डाल दिया गया है। घर-द्वार, छावनी, आँगन कोई भी उसका नहीं। इस मंदिर की निरर्थक शून्यता ही उसकी शरण है। बुट्टन हिम्मत देखो? उसने मुझे लाठी मारी। मुझे दुश्मन कहा। क़साई कहा।

तभी विपिन को लगा कि सामने अँधेरे के भीतर कुहरे के जाल में फँसी एक धूमिल रोशनी लड़खड़ा रही है। चलती हुई जीवित रोशनी का यह खेल उसकी आँखें बाँधे था, मगर मन अब भी एक निश्चित लम्बाई के बाँस पर नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे, चढ़ने-उतरने की नट-लीला में खोया हुआ था। एक जाना हुआ अन्त और एक चिर पहचाना आरंभ; फिर भी इस मन में आज इतनी तड़प थी कि वह इन्हीं दो छोरों के बीच निरन्तर चक्कर काटे चला जा रहा था।

रोशनी पास आ रही थी। विपिन का मन एक अजीब संशय में डूबा जा रहा था। क्या भाई साहब की तबीयत ज़्यादा ख़राब तो नहीं हो गयी। उन्हें कुछ....नहीं, नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है। खुदाबक्कस ने कहा था कि होश आ गया है। देवनाथ ने दवा भी दे दी थी।....तब....मगर यहाँ मेरे होने का पता कैसे चला इन लोगों को।

रोशनी मंदिर के एकदम पास आ गयी थी। आगे वाले व्यक्ति के

हाथ में लालटेन थी। जब वह चलता था तो उसके शरीर की हरकत से रोशनी का घेरा दो फाँकों में बँट जाता था। बीच में कोई औरत है क्या ?

"विप्पी...." कुएँ के पास आकर कनिया ने पुकारा। आवाज़ में अजीब तरह का भय और पीड़ा थी। विपिन कुछ न बोला। वह वैसे ही खंभे से पीठ टिकाये बैठा रहा। चन्ना पास आकर खड़ा हो गया। दयाल महराज मुँह फेरकर पीछे खड़े हो गए। कनिया सीढ़ियाँ चढ़कर खंभे के पास आ गयीं।

"विप्पी।" वे उसके पास बैठकर बोलीं—"यहाँ क्यों बैठे हो सर्दी में ? कोई गरम कपड़ा भी नहीं डाल लिया, आओ चलो।"

विपिन कनिया से चिढ़ा न था। उसके मन में कोई रूठने का भाव भी न था, पर कनिया के सामने ताकने की हिम्मत उसमें नहीं थी।

"क्या सोच रहे हो ?" कनिया परेशानी की अवस्था में भी हल्के से मुस्कराकर बोलीं—"मुझे सब मालूम हो गया है। काजल की कोठरी में घुसकर बाहर आने में भी कालिख लगती ही है। मगर उसे अपनी ही कालिख मान लेना तो बुद्धिमानी नहीं है न ? एक तो यह कि उसमें तुम्हें घुसना ही नहीं चाहिए था। जिन लोगों को तुम उबारने गए, उन्होंने ही हाथ पकड़कर तुम्हें भी दलदल में खींच लिया। मैंने बुट्टन की भी अच्छी मरम्मत कर दी है। इस कमीने छोकरे ने तो ख़ून ही लजा दिया। मेरी कोख से ऐसा भी कोई जनम ले सकता है, यह सोच-सोचकर ही मैं लाज से गड़ी जा रही हूँ। सच विप्पी, बाबू जी के मरने पर भी मैं ऐसी टूटी नहीं, पर अपनी आँख से आज यह सब देखकर मैं सोचती हूँ कि यह ज़िन्दगी भार ही है।" हँसती हुई कनिया इतना कहकर सिसकने लगीं।

विपिन उनके मुँह से ये बातें ज्यों-ज्यों सुन रहा था, उसे लग रहा था कि भीतर कहीं कुछ टूट रहा है। मेंड़ें धसक रही हैं। अवरोध ढीले पड़ रहे हैं। सहसा कनिया को रोते देख, रहा-सहा बाँध भी टूट गया। गरम-गरम आँसू बेरोक बह चले।

"चलो विप्पी, अभी बहुत बातें हैं। बहुत-कुछ कहना-सुनना है। लेकिन यहाँ नहीं।" कनिया ने उसका हाथ पकड़कर खींचा। जाने कब उनका हाथ उसके बायें पखुरे पर पहुँच गया था और वे सहलाती-सहलाती ही मानो चोट का अनुमान कर रही हों।

विपिन उठा और चुपचाप उन लोगों के साथ चल पड़ा।

विपिन के साथ जब सभी लोग छावनी पहुँचे, तो वहाँ सन्नाटा वैसे ही विद्यमान था। रास्ते में किसी ने इन लोगों को देखा नहीं। जाड़े में सभी लोग घरों में ढुके हैं। विपिन ने सोचा, चलो यह अच्छा ही है। दालान के पास खुदाबक्कस वैसे ही मचिया पर बैठा ऊँघ रहा था।

"बुट्टन कहाँ गया ?" कनिया ने पूछा।

"शायद सो रहे हैं दालान में ?" खुदाबक्कस बोला। विपिन भी साथ है, यह वह कनखी से देख चुका था। कनिया विपिन को लिये बखरी में चली गयीं। भाई साहब के पास जाना ठीक न होगा। विपिन सोच रहा था। कनिया घर में हेल गयीं, पर बुझारथ सिंह को सोया देख चुपचाप चली आयीं। शीला उनकी पाटी के पास बैठी-बैठी सो गयी थी।

विपिन को बगल वाले कमरे में बैठाकर कनिया दूध गरम करके ले आयीं।

"रहने दो भाभी, कुछ मन नहीं कर रहा है आज।"

"नहीं, यह दूध पी लो, तबीयत ठीक हो जायेगी।" कनिया बोलीं। विपिन ने गिलास थाम लिया।

थोड़ी देर बाद ही वे आग से भरी बोरसी और कटा हुआ बैंगन लेकर फिर लौट आयीं। आग पर तवा रखकर, सरसों का तेल डालकर, वह कटे हुए बैंगन को गरम करके बोलीं—"विपिन, जरा कुर्ता उठाओ तो पखुरा सेंक दूँ।"

विपिन को यह सब कराते जाने कैसा-कैसा लगता। सोचा मना कर दूँ। पर मना करने से ही वे कब मान जायेंगी। लाचार कुर्ते को खींचकर गले में फँसाकर, उसने एक हाथ बाहर कर दिया। कनिया उसके पँखुरे पर देर तक लोथा करती रहीं। इस बीच दोनों बिल्कुल ख़ामोश थे।

विपिन सोने के लिए दरवाज़े पर जाने लगा तो कनिया भी साथ-साथ गयीं। विपिन की चारपाई पर बिस्तरा उन्होंने आज खुद बिछाया।

"रहने दो न भाभी। चन्ना बिछा देता है।"

"ठीक है, हो गया, आओ, सो जाओ।"

विपिन सो रहा, तो कनिया बखरी में चली गयीं। विपिन बड़ी देर तक रज़ाई में लिपटा जगता रहा। नींद जाने कहाँ खो गयी थी। मन जल-भौंरी की तरह एक ही बिन्दु पर घूमने लगता। ज्यों-ज्यों वह बीती घटनाओं को भुलाने की कोशिश करता, त्यों-त्यों, वे वेश बदलकर नई शक्लों में आँखों के सामने नाचने लगतीं। बिस्तर पर रज़ाई के भीतर एक शून्यता थी। वहाँ उसे कोई देखनेवाला न था। यह चेतना एक ओर जहाँ आश्वस्त करती, दिल को थाम लेती, वहीं सबेरे की रोशनी में जड़ी हज़ारों हज़ार प्रश्नाकुल आँखों की आशंका उसे बेधती सी लगती। जाने कब आँखें झपकने लगीं। उसे लगा कि एक क्षण के लिए वह कहीं खो गया है। नींद के प्रभाव से टीसता दर्द बेहोश हो गया था। तभी पुनः वह जग गया। लगा जैसे हज़ारों लोगों का कोलाहल उसके कानों में अचानक भर गया है। आँखें खुल गयीं। मगर सामने दालान में घोर अंधकार के अलावा कुछ न था। उसे सहसा लगा कि दालान के दरवाज़े पर कोई खड़ा है। उसने चित्त लेटकर रज़ाई को मुँह पर से हटाकर काफ़ी ज़ोर लगा दरवाज़े की ओर देखा। भ्रम भी हो सकता है। क्या जाने सही ही हो। उसे लगा कि एक छाया अभी-अभी दरवाजे से हटकर बखरी की ओर गयी है।

वह उठकर बैठ गया। जूते डालकर बाहर आया।

बखरी का दरवाज़ा पूरा बन्द न था। एक दरवाज़ा दूसरे के पास लगा हल्का तिर्यक् होकर जुड़ा था।

"तो भाभी ही थीं।" उसने सोचा। उन्हें नींद नहीं आयी। शायद सोचती हों कि विपिन सोये में कहीं उठकर चला न जाय। बेचारी....।"

विपिन पेशाब करके लौट आया। वह फिर रज़ाई ओढ़कर सोने की कोशिश करने लगा।

बाईस

पुष्पी को रात भर नींद नहीं आयी। बुझारथ सिंह को विपिन ने सीपिया नाले में ढकेल दिया। उसका सिर फट गया। वहाँ सुरजू और सीरी भी पहुँच गये थे। ये खबरें बारी-बारी से उसके पास पहुँचती रहीं। इन खबरों का सिलसिला पुष्पी के मन पर सिलाई की मशीन की तरह बखिया मारता रहा, किन्तु यह एक अजीब सिलाई थी, जिसमें एक परत पर जो सबके सामने थी, बुनावट कुछ थी और दूसरी परत पर जो आँखों से ओझल थी, बुनावट कुछ और थी।

चचिया शाम को कहीं से घूमकर आयीं तो उन्होंने मसाला पीसती पुष्पी के पास बैठते हुए कहा—"सुना विपिन और बुझारथ सिंह में झगड़ा हो गया। झब्बू लाल के मकान के पास किसी से हरखुआ कह रहा था कि विपिन ने बब्बन को नाले में झोंक दिया। उनका सर फट गया है। हरखुआ तो कह रहा था, हालत ख़राब है। अभी तक होश नहीं आया।"

पुष्पी चुप रही। साग में डालने के लिए मसाला पीस रही थी वह।

जाने कहाँ से आज साग लाने गयी। बुझारथ नाले में दौड़ रहे थे, गिरे होंगे वहीं। मर जाता तो छुट्टी हो जाता, मगर विप्पी कैसे पहुँच गये उहाँ। ऊ मियवाँ चिल्लाते हुए दौड़ा था कि भागिये छोटे सरकार कोई पुल पर से आ रहा है। हे भगवान्, तब तो विप्पी ने मुझे भी देख लिया होगा। उनको सब कुछ पहले से मालूम था क्या? साग को जाते वक़्त तो देखा था वे चरनी के पास खड़े थे। फिर एकाएक वहाँ कैसे पहुँच गये? उनसे और बुझारथ सिंह में झगड़ा क्यों हुआ?

चचिया पुष्पी को चुप देख रसोई में चली गयीं। पुष्पी सिल पर लोढ़ा रगड़ती रही....खड़र, खड़र, खड़र। एक आवाज़ जो जानी-पहचानी थी, रेलगाड़ी की तरह खड़खड़ाती हुई जैसे उसके ऊपर से निकल गयी। उसका शरीर दो टुकड़ों में बँट गया। सिर और कबन्ध अलग-अलग होकर तड़पने लगे।

विपिन ने सब कुछ जान लिया। सोचा होगा कि मैं रोज़ साग लाने शायद इसीलिए जाती थी। पुष्पी के मन में अचानक आँधी सी घुमड़ी, उसने दाँतों से निचले होंठ को पूरी तरह दबा लिया। आह मइया, क्या सोचते होंगे अपने मन में वे?

"पुष्पी!" चचिया आकर फिर उसके पास बैठ गयीं—"तुम लोग भी तो सीपिया नाले के पास ही साग लाने गयी थी न? तुम लोगों ने तो झगड़ा-झंझट होते नहीं देखा?"

पुष्पी के हाथ में जैसे लोढ़ा सट गया हो। वह एकटक चचिया के चेहरे पर देखती रही। चचिया के चेहरे पर उदासी ही थी, कोई भेद नहीं। पुष्पी को थोड़ी राहत मिली। एकाएक लोढ़ा फिर फिसलने लगा; खड़र खड़र खड़र खड़र....।

"हम लोग तो उधर 'इँकटिहवा' में गये थे। वहाँ से तो नाला कुछ दूर है।" उसने कहा और अपने झूठ बोलने पर खुद सोचती हुई-सी गंभीर बनी रही।

"हुई होगी कोई बात?" चचिया स्वयं को समझाती हुई सी बोलीं—

"विपिन बचवा तो वैसे आदमी नहीं हैं। जब बहुत भारी लगा होगा तभी कुछ कह-सुन दिया होगा। नाहीं झगड़ा तो ऊ अपने दुश्मन से भी नहीं करते। बड़े भाई से कैसे लड़ पड़े?"

पुष्पा कुछ न बोली। सीपिया नाले से लौटे क़रीब दो-तीन घंटे हो गये हैं। तब भी अचानक जैसे दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगता है। लगता है, कोई डरावने चेहरे वाले भूत अपनी ख़ूनी अंगुलियाँ फैलाकर उसका गला घोंट रहा है। सुगनी भी कितनी नीच है, हरामज़ादी। बुझारथ से मिली थी। कैसा ममतालु चेहरा बनाकर आती थी। 'वाची.... साग को नाहीं चलोगो?' मैं तो उसके साफ़ लुग्गे और मीठी बातों में ही भरम गयी। साथ-साथ छाया की तरह लगी रहती। मेरा साग कम होता तो खुद खोंट-खोंट कर आँचल भर देती। खेत में जल्दी-जल्दी चलने लगती तो कहती, "हाय री मइया, अइसे मत चलो वाची। सुकुवाँर पैर है। कचट लग जायेगी।" उस दिन देवी-धाम वाले छवरे पर साड़ी में चिचड़ा फँस गया तो कैसी बैठकर छुड़ाती रही। जानों मैं उसकी सगी बहन हूँ। लेकिन अब लगता है कि ऊ सब मुझे फँसाने की चाल थी। मीठी-मीठी बात करके गले पर छुरी चलाने की तैयारी कर रही थी चुड़ैल। मियवाँ ने जबै नाले में से कूदकर मुझे पकड़ना चाहा, तो ऊ भी आगे से छेंक रही थी कि कहीं मैं अगल-बगल से निकलकर भाग न जाऊँ। ऊ तो कहो कि पुल पर से कोई आय रहा था। नहीं तो....हे भगवान्, आज जाने क्या होता। मैं कहाँ मुँह दिखाती।

पुष्पी सोचती-सोचती जाने किस अतल तल में डूब गयी थी। वह देख रही थी कि खुदाबक्कस की काली-काली भयानक अंगुलियों के चंगुल में उसकी कलाई बँध गयी है। उसने झपटकर एक हाथ से उसका मुँह दबा दिया है। सुगनी उसे पीछे की ओर से पकड़े है और दोनों जबर्दस्ती उसे नाले में ढकेल रहे हैं। वह उनसे लड़ते-लड़ते पूरी तरह बेबस हो गयी और उसके शून्य मुर्दे से शरीर पर बुझारथ सिंह....। सहसा पुष्पी बुरी तरह चीख उठी।

"क्या हुआ रे ?" चचिया जैसे नींद से उठकर बोल पड़ी हों।

पुष्पी ने आँसू भरी आँखों को छिपाते हुए कहा—"उँगली कचट गयी, अम्मा।"

"जरा देखकर चलाओ बेटी, अभी हुआ नहीं का ?"

"अब हो गया।" पुष्पी ने लोढ़ा खड़ा करके मसाले को काछा और कटोरे में उठाकर रसोई में चली गयी।

कढ़ाई में मसाला छनछनाया तो वह हिचक-हिचककर रो पड़ी। वह साग चलाती रही और सीपिया नाले में मुर्दे की तरह पड़े हुए अपने शरीर को देखती रही।

अपने बारे में ही ऐसा सोचना कितना अजीब है। मगर क्या सचमुच पुल पर से कोई न आता, तो वह ऐसी ही साबुत बचकर चली आयी होती। विपिन के अलावा आज तक जिस शरीर को कोई छू भी नहीं सका है, वह गीध-कौवों का भोजन हो गया होता। यह सोचते-सोचते पुष्पी सिहर उठी।

उसने चूल्हे की आँच से गरम हाथ से अपने मुँह को सहलाया। ठंडी पलकें सूख गयीं। यह मेरे प्यार का ही फल था, उसने सोचा और हल्के-हल्के मुसकरायी। उसे कोई नहीं छू सकता ! कोई नहीं। वह बस एक की अमानत है। उसका सब कुछ बस एक के लिए है। सिर्फ़ एक के वास्ते।

मसाले की ख़ुशबू रसोई में भर गयी थी। पुष्पा को लगा कि वह पूरी तरह लौट आयी है। उसका शरीर और वह दोनों जुड़ गये हैं। वह पूरी तरह से विपिन के बारे में सोचने के लिए स्वतंत्र है।

खा-पीकर सब लोग सो गये थे। रात पूरी तरह गझिन होती जा रही थी। एक सुस्त सन्नाटा पूरे गाँव को अपनी गेंडुर में लपेटकर लम्बी-लम्बी साँसें खींच रहा था। पुष्पा को नींद नहीं आ रही है। कभी उसका सारा शरीर अकड़ जाता है। अँगुलियाँ लोहे की मुड़ी हुई छड़ की तरह कड़ी हो जाती हैं। वह सोचती है कि यदि सुगनी मिल जाये तो मैं उसका गला टीप दूँ। हरामी कहीं की, कुतिया ! मुझे भी दलदल में डुबो रही थी।

एक दृश्य ख़त्म होता है कि दूसरा उसकी आँखों के सामने नाच

उठता है। विपिन के बारे में जब भी वह सोचती, एक शंका लहरकर सारे बदन को घेर लेती। कहीं उन्होंने मुझे कुछ और न समझ लिया हो। इतनी बड़ी बात हो गयी, तो क्या यह आदमियों के उथले मन के भीतर ही छिपी रह जायेगी ? पुल पर से कौन आया था। पुल पर से किसने देखा....? उसे अपने भागने की स्थिति का दृश्य बड़ा बेहूदा लग रहा था। तीन-चार बार तो पैरों में धोती फँसी थी। कभी दौड़ी होऊँ तब न ? जोन्हरी के खेत के पास दौड़ते वक़्त जैसे पौधे खड़खड़ाये थे, लगा कि कोई भीतर घुसा हो। नहीं, यह सब बहम है। जोन्हरी के खेत के पास कौन रहा होगा भला ? पर खड़खड़ाहट तो बिल्कुल साफ़ सुनाई पड़ी थी। तो क्या विपिन के अलावा भी ई सब बातें किसी को मालूम थीं ? हे भगवान्.... जाने कल क्या होगा ?

सुबह को मुँह अँधेरे उठकर पुष्पा चचिया के साथ तलैया की ओर गयी थी। वहाँ औरतें धीरे-धीरे फुसफुसाकर विपिन और बुझारथ के झगड़े पर बातें करती रहीं। चचिया ने जानकर इन बातों के सुनने में उत्सुकता नहीं दिखाई। पुष्पा मुँह-हाथ धोकर लौट आयी थी। अभी अँधेरा था। उसे यह कालिमा अच्छी लगती थी। सूरज निकला नहीं कि सभी बातें साफ़ हो जायेंगी। पर मैंने किया क्या है ? मैं ख़ुद जानकर तो वहाँ गयी नहीं। मगर जा तो मैं वहाँ कई दिन से रही हूँ।

नौ-दस बजे के क़रीब चचिया फिर गाँव में निकल गयीं। चचिया का गाँव में घूमना कोई नई बात नहीं थी, पर पुष्पा को आज जाने क्यों उनका यह जाना ठीक नहीं लगा। जाने क्या ख़बर लेकर आयेंगी।

दोपहर का खाना बनाते वक़्त भी पुष्पा निरन्तर विपिन के बारे में ही सोचती रही। कैसे मिलूँ मैं उनसे। एक बार मिल जाते तो दिल को चैन हो जाता। सारी बातें साफ़-साफ़ कह देती। सब कुछ सुनकर वे सही बात जान लेंगे। पर मिलूँ कैसे ?

चचिया गाँव में से लौटकर आयीं तो उनका चेहरा लाल था। उनसे किसी ने पूरी बात कही नहीं, पर बात पूरी कही न जाकर भी क्या बहुत

कुछ कह नहीं देती। वंशी सिंह की बखरी के पास गली के मोड़ पर दो-तीन औरतें मुंह में मुँह डालकर फुसफुसा रही थीं।

"ई मामला बहुत पुराना है।" एक ने सारी जानकारी का विश्वास दिलाते हुए कहा—"सारा गाँव जानता है बहिनी, कि सुगनी चमारिन को बुझारथ सिंह रक्खे थे। जो उनके साथ अपनी जवान बेटी को कहीं भेजती थी, उहै आन्हर होने का नाटक कर सकती है। हमारे-तुम्हारे आँख में धूल झोंकना बड़ा मुश्किल है।"

"अच्छा तो सुगनी उस छोरी को बहका के ले गयी वहाँ?" एक ने पूछा।

"अवर का? बहका के ले गयी होगी या लालच देकर ले गयी होगी। बाकी ले गयी, ई सही है।"

"ई तो ठीक है कि ले गयी। पर विपिन और बुझारथ में झगड़ा काहे हुआ?"

"अब इहै बात पूरी खुल नहीं रही है। सीरी देवर झूठ नहीं बोलेंगे। मैंने पूछा तो उन्होंने हँसकर टाल दिया। कहा, चुप रहो, दो-तीन दिन में अपने आप मालूम हो जायेगा।"

चचिया गली के मोड़ के दूसरी ओर खड़ी होकर इतना ही सुन पायीं। गली में से कोई 'मनसेधू' गुज़रा। औरतें छितराकर इधर-उधर हो गयीं। इतना सुनना भी चचिया के लिए सिर थामकर बैठ जाने के लिए काफ़ी था। वे झपटकर घर चल पड़ीं। रास्ते में इधर-उधर देखने की उनकी सारी हिम्मत ही खो चुकी थी जैसे।

जिस समय वे आँगन में आकर दक्खिन वाले घर के चौकठ पर बैठीं, उनका सिर चकरा रहा था। बिना कुछ कहे भी उनके मन में पहले से ही खुदबुदी हो रही थी। क़ुर्की के समय भी औरतें फुसफुसाकर ऐसे ही बतियाती थीं। बुझारथ सिंह ने रुपये के लिए नहीं, किसी और बात के लिए क़ुर्की बुलायी है। चचिया ने उस समय इसे सुनकर अनसुनी कर दिया था। कोई उनसे साफ़ बात नहीं कहता था। चचिया खुद बहुत सावधान रहती

थीं। छावनी पर औरतों का रहना बन्द हुआ नहीं कि उन्होंने छावनी से मुँह फेर लिया। धरमू सिंह तब भी सीरवाह बने रहे, मगर चचिया ने तै कर लिया कि जब तक फिर से छावनी पर औरतें नहीं रहने लगेंगी, तब तक वे चौकठ हेलकर भीतर नहीं जायेंगी। पर इतना बचाने पर भी क्या हुआ! आखिर को दाग़ लगा ही। यदि इसी तरह हो-हल्ला मच गया तो जवान लड़की का विवाह करना भी मुश्किल हो जायेगा। ऐसे ही पास में कौड़ी-छदाम नहीं। फिर कहीं कलंक का टीका भी लग गया, तब तो राम ही मालिक हैं।

पुष्पी किसी काम से बाहर आयी तो चचिया को गाल पर हाथ धरे उदास बैठे देखा। वह चुपचाप मुँह लटकाकर गगरी से पानी ढालती रही।

"तुम तो कहती थी कि 'इँकटिहवा' में गयी थी और गाँव भर में हल्ला है कि सीपिया नाले पर गयी थी।" चचिया आगे न बोल सकीं। अपने तन से जन्मी लड़की पर गुस्से में भी लांछन लगाते समय उनकी जबान सट गयी।

पुष्पा कुछ न बोली। पानी ढाल चुकने पर भी वह वैसे ही बैठी रही। चचिया चौकठ से उठकर उसके पास आ गयीं।

"क्या हुआ था?" वे फिर भी अपनी बात साफ़-साफ़ पूछ न सकीं।

पुष्पा अचानक रोने लगी। अब तक वह किसी तरह ग्लानि, पीड़ा और दर्द को छिपाये थी। छिपाने की यह क्रिया जैसे उसके आँसुओं को भी रोके थी, पर जब अब भेद खुल ही गया तो छिपाने के लिए मन पर इतनी कड़ाई क्यों? मन शिथिल हुआ कि आँखों से बरसात उमड़ पड़ी।

"मैं कुछ नहीं जानती थी अम्मा!" पुष्पा ने मुड़कर चचिया के चेहरे की ओर देखते हुए कहा—"सुगनी मुझे वहाँ ले गयी।"

चचिया एक क्षण पुष्पा के चेहरे पर आँखें गड़ाये देखती रही—"क्यों ले गयी थी सुगनी तुझे?"

पुष्पा चुप हो गयी। क्या बताये वह?

"बोलती क्यों नहीं?"

"मुझे कुछ नहीं मालूम।" पुष्पी हुटक-हुटककर कहने लगी—"मैं साग खोंट रही थी कि अचानक सीपिया नाले में से निकलकर खुदाबक्कस मेरी ओर दौड़ा। मैं उसे देखते ही चीखकर भागी। सुगनी मेरे आगे कूद-कूदकर मुझे छेंक रही थी।" यह सब कहते पुष्पी को लगा कि उसका सारा शरीर किसी चौमुहानी पर नंगा किया जा रहा है। अचानक उसके गले में जैसे कुछ अटक गया।

"तब....?"

"तभी खुदाबक्कस चिल्लाते हुए नाले में कूदा कि भागिए छोटे सरकार, किसी ने हमको पुल पर से देख लिया है।"

"फिर ?"

"फिर मैं वहाँ से भागती हुई घर आ गयी।"

चचिया ने तभी खींचकर एक चाँटा पुष्पी के गाल पर जड़ दिया—"तूने आते ही यह सब मुझसे क्यों नहीं कहा ? तू रोज वहाँ यही करने जाती थी ?"

"मैं सच कहती हूँ अम्मा, मुझे कुछ नहीं मालूम था। मुझे कुछ नहीं मालूम था। उस दिन उतनी देर को सुगनी बुलाने आयी तो तुमने ही न भेजा।"

पुष्पा अपने को अनकिये अपराधों से बरी करने के लिए सफ़ाई दे रही थी, पर चचिया को लगा कि इस सारे सत्यानाशी कर्म के लिए वह उन्हें उत्तरदायी बना रही है। उनका गुस्सा एकाएक भड़क उठा। और वे पुष्पा को पकड़कर तड़ातड़ पीटने लगीं।

"मैंने भेजा था। मैंने कहा था कि तू शोहदों और लुच्चों के पास जा ? मैंने कहा था, अयँ ?" पुष्पा पिटती रही और रोती रही।

उसे पीटते-पीटते थककर चचिया खुद रोने लगीं।

"मुझे क्या मालूम था बेटी कि सुगनी हमारी इज्जत पर हाथ डालेगी। भगवान् गरीबी न देता तो मैं काहे को उतनी अबेर को तुझे साग के लिए भेजती। काहे को मुझे आज यह दिन देखना पड़ता।"

चचिया दोनों हाथों से अपना मुँह तोपकर रोती रहीं।

पुष्पा बग़ल में बैठी सिसक रही थी।

धरमू सिंह बड़े सबेरे सिवान चले गये थे। घूम-फिरकर दोपहर के क़रीब घर लौटे। दालान में उनके पैरों की आहट सुनकर चचिया उठ गयीं। उन्होंने आँचल से आँखें पोंछकर अपने को सँभाल लिया। पुष्पी रसोई में चली गयी। माँ-बेटी के बीच का राज़ फिर भी राज़ था, किन्तु वे किसी भी प्रकार इसमें धरमू सिंह को हिस्सेदार बनाना क़तई नहीं चाहती थीं। नारी की समझ और पुरुष की समझ का यह अन्तर ऐसे ही मौक़ों पर शायद पूरी तरह स्पष्ट होता है। पता नहीं धरमू सिंह इस बात को किस रूप में ग्रहण करें। और गुस्सा होकर जाने क्या-क्या कर बैठें।

धरमू सिंह ने हाथ-पैर धोकर खाना खाया। खा-पीकर वे दालान में बैठकर हुक्का पीते रहे। उनके लिए गाँव, गलियाँ, दीवालें सब वैसी ही थीं। तटस्थ और मौन, ये उनके दुःख में किसी प्रकार का हिस्सा नहीं बँटा सकतीं, पर उनके अकेलेपन में डूबे रहने में कोई बाधा भी नहीं डाल सकती थीं। पुष्पा और चचिया के लिए ये चीजें तटस्थ नहीं थीं, नाना प्रकार की शंकाओं और सन्देहों से भरी थीं। इसीलिए वे पूरी भयानकता के साथ उनके ऊपर हावी थीं और उनको भीतर-बाहर से इस तरह दबोच रही थीं कि थाली से उठाया हुआ कौर मुश्किल से गले के नीचे उतर पाता।

चचिया मुँह-हाथ धोकर दालान में आकर बैठ गयीं। पुष्पी आंगन में अकेले रह गयी। धूप में मूँज की चारपाई बिछी थी। पुष्पी एक तरफ़ पाटी पर बैठ गयी। विपिन से एक बार मुलाक़ात हो जाती, किसी तरह। रह-रहकर पुष्पी के मन में एक ही खयाल उठता है। बस, विपिन से मुलाक़ात ! वह उन्हें एक बार सारी बातें बता देना चाहती है। इसके बाद वे जो चाहे सोचें। बहुत सोचने पर भी पुष्पा को कोई उपाय न सूझा। दयाल पंडित से सन्देशा भिजवा सकती है, मगर उसके लिए भी अवसर चाहिए। कई दिन चिरौरी-मिनती करके जब वह अम्मा को राज़ी करेगी

कि उसका ब्लाउज फट गया है, या चोटी पुरानी हो गयी है, या गरी का तेल खत्म हो गया है तो वे किसी प्रकार कुछ अनाज बेचकर इनमें से एकाध सामान क़स्बे से मँगा लेने को तैयार होंगी। फिर दयाल पंडित को बुलवाया जायेगा। तब कहीं वह मौक़ा देखकर दयाल पंडित से अपनी बात कह सकेगी। दयाल पंडित पर उसे पूरा विश्वास है। पिछली बार कुर्की वाले दिन की पहली रात को उन्होंने कितनी चतुराई से विपिन को संदेशा दिया था। फिर वह विपिन से बिना दिक़्क़त भेंट कर सकी थी। उसी रात मुँह अँधेरे विपिन उसकी दालान में आया था। आज भी जब उन क्षणों के बारे में सोचती है, केवड़े की गंध उसके दिल और दिमाग़ में तैर जाती है। विपिन ने उसके आँसुओं से तर मुँह पर अपने होंठ रख दिये थे। रेशमी आँचल जैसे कपोलों पर से सरकता हुआ निकल गया था। एक सर्द-गुनगुने स्पर्श से रोयें भरभरा आये थे। वह एक क्षण उसके जीवन को जैसे कुछ का कुछ बना गया था। तलैया में झलकनेवाली चाँद की छाया जैसे सदा सदा के लिए उस अकिंचन की निधि बन गयी थी। उसे लगा कि वह अपने सारे सपनों को साकार कर सकती है। विपिन उसके हो जायेंगे। आह मइया, यह सुख उस नन्हे से शरीर से सँभाले कैसे सँभलेगा भला!

और आज? आज विपिन और पुष्पा के बीच एक अभेद्य दीवार खड़ी हो गयी है। यह दीवार दोनों में से किसी ने भी जानकर खड़ी नहीं की। किन्तु दीवाल तो है और अपनी पूरी निर्ममता के साथ दोनों को दो हिस्सों में बाँटकर अडिग खड़ी है। आज तो पुष्पा को खुद अपनी देह ही तिरस्कृत और निरर्थक लगती है, फिर इसे सजाने-सँवारने के लिए बाज़ार से कुछ ख़रीदने की बात अम्मा से किस मुँह से कही जा सकती है।

तो क्या वह विपिन को चिट्ठी लिखे। मगर ले कौन जायगा उसे? बहुत सोच-विचारकर पुष्पा ने तय किया कि वह चिट्ठी लिखेगी। धरमू सिंह कभी छावनी के कामों का पूरा विवरण लिखा करते थे। बनिहारों की बनी का हिसाब। काग़ज़ तो है, किलिच का पुराना कलम भी उनके बस्ते से मिल जायेगा, मगर स्याही? एक दावात है कहीं काली स्याही

की। लत्ता सूखकर टूटे हुए कोयलों जैसा लगता है। अभी दीवाली के अवसर पर घर साफ करते देखा था कहीं, पटनी पर। पटनी पर चढ़कर दावात उतार लायी। पानी भरकर रख दिया। काफी देर तक कलम से चलाती रही, पर पानी काला होने का नाम नहीं लेता। मगर लिखेगी इसी से किसी तरह....।

धरमू सिंह हुक्का पीकर सिवान चले गये थे गाय के लिए घास लाने। चचिया आँगन में धूप में बिछी चारपाई पर सोयी थीं। पुष्पा कोनिया घर में बैठकर विपिन को चिट्ठी लिख रही थी।

मेरे····।

आज तक कभी चिट्ठी नहीं लिखी। आज ऐसे भँवर में पड़ी हूँ कि बिना लिखे कोई बचाव नहीं। मेरी लाज तुम्हारे हाथ है। शाम ढले केवड़ार में मिलने की कृपा करना। मेरी क़सम आना ज़रूर!

तुम्हारी दासी
पुष्पा

काग़ज़ को उसने चौपर्त कर ब्लाउज के भीतर रख लिया। मगर भेजे कैसे? वह उतावली होकर कभी घर में जाती कभी आँगन में आती। उसका कलेजा धड़क रहा था। साँसें उठती-उठती बैठ जातीं, जैसे समुद्री लहरों के सामने से चाँद बादलों में छुप गया हो।

विपिन के हाथ में मुड़े-मुड़ाये काग़ज़ को देकर दयाल पंडित यों लजाकर पीछे हटे, जैसे उन्होंने खुद यह चिट्ठी लिखी हो।

दयाल पंडित रात से ही पुष्पी के बारे में सोच रहे थे। महावीर जी के मन्दिर से लौटने के बाद खा-पीकर जब चारपाई पर पड़े तो बरबस उनकी आँखों के सामने पुष्पी का लाल आरक्त चेहरा नाच उठा, जो लज्जा, ग्लानि और पीड़ा से थरथरा रहा था। जोन्हरी के खेत में खड़ा होकर उन्होंने यह चेहरा देखा था। दयाल महराज अक्सर ही छावनी में जाते। उस समय विपिन और पुष्पा दोनों ही छोटे थे, मगर इनकी जोड़ी उस समय भी दयाल महराज के मन को विचित्र आनन्द से भर देती थी।

दयाल महराज के मन की यह कमज़ोरी होगी, पर उन्हें यह कभी कमज़ोरी नहीं लगी। उनके मन में जिसके प्रति स्नेह या श्रद्धा होती, चाहे वह उनसे कहे या न कहे, उसकी सेवा-सहायता करना वे अपना फ़र्ज़ मानते। इन सब कामों से उनका निजी फ़ायदा कुछ न होता, उलटे समय बरबाद होता और नुक़सान भी होता। उनकी बुढ़िया माई गाय को ठीक समय पर दाना-पानी, घास-भूसा न मिलने पर नाराज़ होती।

दयाल महराज घर में घुसते कि बुढ़िया चिल्ला-चिल्लाकर सारा गाँव सिर पर उठा लेती—"इस घर-घुसना के मारे जीना मुहाल हो गया है। ले-देकर एक ठो गाय है। ऊ भी खूँटा पर पड़ी-पड़ी डँकरती रहती है। ई गाँव-गाँव घूमकर 'मउगई' करता है।"

दयाल महराज कुछ न बोलते। उनकी ऐसी आदत ही नहीं है। कोई कुछ कह दे, बस सुन लो। ऐसी स्थिति में यदि वे अपने मन माफ़िक कोई काम कर लेते, और उन्हें लगता कि उन्होंने एक मुरझाते पौधे में पानी डाल दिया है, एक उदास चेहरे पर हँसी ला दी है, या किसी सत्य पर चलनेवाले व्यक्ति की सेवा कर दी है तो वे ख़ुशी से विह्वल हो जाते।

सारी दुनिया के लिए जो राज या रहस्य होता, वह दयाल महराज के लिए अपनी जानी-पहचानी दुनिया का सीधा-सादा काम-काज लगता और वे अपनी भावनाओं के इस लोक की सुरक्षा और विकास के लिए प्राण-पण से लगे रहते।

"बेचारी लड़की कहीं की न रही।" दयाल महराज पुष्पी के बारे में लगातार सोच-सोचकर परेशान हो गये। मगर उन्हें कुछ न सूझा कि वे इस 'बेचारी लड़की' के लिए क्या कर सकते हैं।

दयाल महराज अपनी शक्ति की सीमा जानते हैं। बुझारथ बाबू भी कह दें कि दयाल महराज, ज़रा बाज़ार से यह सामान तो ला दीजिए तो यह जानते हुए कि यह सब कुछ सामान सुगनी के लिए, या इस या उस हरमज़ादी के लिए मँगाया जा रहा है, वे चुपचाप ला देंगे। हालाँकि उनका मन उस समय उन सभी 'हरजाइयों' के लिए घृणा से भरा

रहेगा। क्या करें बेचारे। इसका-उसका ऐसा ही काम कर देने से तो उनका और बूढ़ी माँ, इन दो प्रानियों का गुज़र-बसर हो जाता है। यह भी सही है कि यह सारा जलता हुआ धुँधुवाता राज़ वे अपने सीने में छिपाये रहेंगे। किसी से कहीं कुछ कहेंगे नहीं। मगर ये सब काम दयाल महराज नहीं, उनका बाहरी शरीर कर रहा होता है, इसे भी वे अच्छी तरह जानते हैं। ये काम सही हैं या ग़लत, इस पर अब कौन सोचे-विचारे? ऐसे ही कामों में कभी-कभी वे थोड़े से काम भी आ जाते हैं, जिनकी ख़ुशबू दयाल की आत्मा में बस जाती है। तब उन्हें लगता है कि इन पौधों की ख़ुशी और सुरक्षा के लिए, वे सब कुछ कर सकते हैं।

दयाल महराज विपिन से बहुत प्रसन्न रहते। उन्हें लगता कि यह लड़का कुछ करेगा। बड़ा तेज 'रोवाँ-पानी' का आदमी है। सत्य पर अडिग रहने वाला मरद है यह। उस दिन दरोग़ा को ऐसा झाड़ा कि उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। दयाल महराज को जाने क्यों अच्छा लगता है कि यदि विपिन किसी लड़की की ओर खिंचे, सो वह ज़रूर पुष्पी ही होनी चाहिए। बचपन का 'नेह' है दोनों में।

मगर कल शाम की घटना ने दयाल महराज को बुरी तरह विचलित कर दिया है। पुष्पी के बारे में वह ख़बर सुनकर वे इसीलिए तो परेशान हुए थे कि यह बात पुष्पी और विपिन दोनों के लिए ही ख़राब होगी। उन्होंने विपिन को सब कुछ बता दिया। मगर अब मामला 'चौड़िया' गया है। विपिन बाबू, पुष्पी, बुझारथ, खुदाबक्कस—सभी एक दूसरे के बारे में क्या-क्या सोच रहे होंगे। सोचें जो सोचना हो। दयाल महराज से इससे क्या मतलब? लेकिन हाँ, ई बात ज़रूर है कि विपिन और पुष्पी में कोई फ़रक़ नहीं पड़ना चाहिए।

दयाल महराज गाय के लिए घास-पात इकट्ठा करके गाँव में निकल पड़े। दोपहर से लेकर शाम चार बजे तक उन्होंने धरमू सिंह की बखरी के सामने से चार-पाँच चक्कर लगाये। शायद पुष्पी को कुछ पूछना हो उनसे। कोई ज़रूरत पड़े मेरी....और ज़रूरत पड़ी ही। पुष्पी ने दयाल महराज को

देखा और दालान में दरवाज़े के पास लगकर उसने इशारे से उन्हें बुलाकर काग़ज़ दे दिया कि वे किसी न किसी तरह इसे विपिन के पास पहुँचा दें।

विपिन ने चिट्ठी पढ़ ली थी। उसने आँखें उठायीं तो वहाँ कोई न था। दयाल महराज के बारे में सोचते हुए विपिन हल्के मुसकरा पड़ा। दयाल महराज ने यह चिट्ठी पढ़ ली होगी। वे सारा राज़ जान चुके हैं। इन बातों से परेशानी का जैसे कोई प्रश्न ही नहीं था। दयाल महराज से कोई अहित होगा, यह प्रश्न उठ ही नहीं सकता। यह भी दयाल महराज की एक ख़ूबी ही है कि वे लोगों के बीच में सारी शंकाओं से परे माने जाते हैं। मनुष्यों से परे, पशुलोक का या देवलोक का, दुनिया की भाषा न समझनेवाला कोई प्राणी, जिसके सामने बेपर्द होने में भी किसी को परेशानी नहीं होती।

बुझारथ सिंह की हालत ठीक थी, पर अभी भी वे बखरी में ही पड़े थे। दरवाज़े पर छाये सन्नाटे से बचने के लिए खुदाबक्कस सिवान में चला गया था। बुट्टन रात से अब तक किसी अबूझ रहस्य-लोक में खोया हुआ था। विपिन पर लाठी चलाकर वह सबकी आँखों से उतर चुका था। बखरी में जाते डर लगता। दोपहर को शीला ने बुलाकर उसे खाना दे दिया था। कनिया कुछ पूछने भी नहीं आयीं। जिन लोगों की मोह-ममता में पड़कर उसने यह काम किया, उन्होंने उसे दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दिया। सीरी, कल्पू या ऐसे ही किसी और के पास जा कर बैठना उसे ठीक नहीं लगा। जाने क्या कहें। फिर पता नहीं मुँह से क्या निकल जाये। इसलिए वह स्कूल के पास तालाब के किनारे एक पेड़ के नीचे चुपचाप बैठा शाम होने की प्रतीक्षा कर रहा था।

विपिन केवड़ार वाले रास्ते से सीधा निकलकर उत्तर तरफ़ रेलवे-लाइन के पास तक घूमने चला गया। शाम होने पर उधर से ही केवड़ार में आना ठीक रहेगा। उसने सोचा। ज्यों-ज्यों शाम आती गयी, दिल की धड़कनें बढ़ती गयीं। पुष्पा के सामने खड़े होने की कल्पना से ही वह सिहर उठता। पुष्पा के सामने वह अनेक बार खड़ा हुआ है। मगर ये पहले की

बातें हैं। जब से गाँव आया है, रामनवमी वाली रात को और बाद में उस दिन भी चचिया के साथ पुष्पा छावनी आयी थी, वह उससे मिल चुका है। गाँव में ऐसे भी कई मौक़ों पर पुष्पा उसके पास से गलियों में गुज़र गयी है, मगर आज का मिलना कुछ और ही तरह का होगा। हर बार से अलग, बिलकुल भिन्न।

•

केवड़ार में पूरबी चहारदीवारी के पास जामुन का एक बड़ा सा पेड़ है। बरसात में सारा पेड़ काली-काली खटमिट्ठी जामुनों से भर जाता है। इसी पेड़ के नीचे बचपन में विपिन जाने कितनी बार बैठा है। एक शाखा चहारदीवारी के ठीक ऊपर लटकी हुई है। चहारदीवारी पर चढ़कर वह इस पर जा बैठता था। ज़ोर से लचकाने से डाल हिलती थी। तब विपिन को लगता था, वह किसी 'उड़न घोड़े' पर बैठा आसमान की सैर कर रहा है। पुष्पी पेड़ के नीचे खड़ी होकर ललचायी आँखों से जामुनों को देखती थी। विपिन उसे डरवाने के लिए डाल को ज़ोर-ज़ोर से हिलाने लगता था।

"हँ-हँ-हँ-हँ, ऐसे मत हिलाओ विप्पी! नहीं गिर जाओगे।" पुष्पी गंभीर चेहरा बनाकर नीचे से कहती।

"तो उतर आऊँ?" वह पूछता।

"जामुन तो तोड़ लो।" पुष्पी कहती।

पुष्पी जामुन भी चाहती और विपिन की सुरक्षा भी। एक साथ दोनों—वाह!

विपिन को याद है जब माई ज़िन्दा थी तो रात को विपिन को सुलाने के लिए एक कहानी कहती थीं। एक राजा था। उसके एक लड़का था। राजकुमार बड़ा सुन्दर था। उसका ब्याह हुआ। राजकुमारी तो जैसे चन्द्रमा की बेल थी। पानफूल सी सुकुवाँर। असली फूलकुंवर। गोरा-गोरा बदन, पाँखुरी की तरह पतले-पतले होंठ। राजकुमार ने बुरे लोगों की

सोहबत में बुरी आदतें सीख लीं। वह जुआ खेलने लगा। राजा के दरवाज़े पर काँच की सीढ़ियों वाला एक भारी सा सगरा (तालाब) था। उसी के भीतर पानी के नीचे एक डोम रहता था। एक बार उसके साथ जुआ खेलते हुए राजकुमार सब कुछ हार गया। आख़िरी दावँ पर अपनी रानी को भी लगा दिया। उसे भी हार गया।

डोम ने कहा, रानी को मेरे पास भेज दो। डोम के जादू से सगरा के बीच एक अनोखा कँवल खिला। उसका रंग सुनहला था। गंध लुभानी। इस टटके फूल को देखकर फूलकुंवर ललच उठी।

उसने अपने पति से कहा—"राजा मुझे वह फूल ला दो।"

"जा, चली जा, थोड़ा-सा तो पानी है, फूल तोड़ ला।" कुमार बोला।

रानी पानी में उतर गयी। घुटने बराबर पानी में पहुँची कि डर कर लौट आयी।

"ठेहुन भर पनियाँ में अइलीं राजा, गइलीं राजा,
तबो न मिले कँवल के फूल।
रानी आगे जा।"

राजकुमारी आगे बढ़ी। पानी कमर से बढ़ते-बढ़ते छाती बराबर आ रहा।

"छाती भर पनियाँ में अइलीं राजा, गइलीं राजा।
तबो न मिले कँवल के फूल।
रानी आगे जा।"

राजकुमारी ऐसी ही बढ़ती रही और डर-डरकर लौटती रही। राजकुमार उसे पुनः आगे बढ़ने को कहता रहा। राजकुमारी ज्यों ही गरदन से ऊपर पानी में, कँवल के पास पहुँची कि कँवल-नाल से सटकर बैठे डोम ने उसे नीचे खींच लिया। कँवल मुरझा गया! राजकुमारी डूब गयी।

●

तभी चहारदीवारी के एक गिरे हुए भाग से दुबककर पुष्पी केवड़ार में आ रही। विपिन जामुन की जड़ में बैठा था। पुष्पा उसके सामने आ कर खड़ी हो गयी। उसकी साँसों की गति काफ़ी तेज़ थी। वह विपिन के पास खड़ी होकर उसे देखती रही।

"क्या बात है पुष्पा, तूने मुझे बुलवाया?" विपिन ने बिल्कुल तटस्थ होते हुए पूछा।

"हाँ।" वह धीरे से बोली।

"क्या बात है?" विपिन ने यों पूछा, जैसे वह कुछ जानता ही नहीं।

"तुमने बड़े भाई साहब को नाले में झोंका?" पुष्पी ने बिना किसी भूमिका के पूछा।

"हाँ।" विपिन ने गर्दन झुकाये हुए कहा।

"मगर तुम यह झूठ किसलिए बोल रहे हो? वे तो नाले में दौड़ रहे थे।" वह आगे न बोल सकी।

"जब तुम जानती ही हो तो मुझसे ही क्यों कहवाना चाहती हो?"

"मैं सब कुछ कहाँ जानती हूँ? तुम तो शाम को चरनी के पास खड़े थे। फिर सीपिया नाले के पास कैसे पहुँच गये?"

"क्या वहाँ जाना तुम्हें बुरा लगा?"

विपिन ने विनोद में ही कहा था, मगर बात सीधे कलेजे में चुभ गयी! पुष्पी झर-झर रोने लगी—"हाँ, हाँ, मुझे बुरा लगा।" वह रोते-रोते बोली—"मैं तो मरने के लिए गयी थी। मुझे मर जाने दिया होता। मुझे बचाने जाकर सारा दोष तुमने अपने माथे क्यों ले लिया?"

विपिन एकटक पुष्पा के चेहरे पर देखता रहा—"तुम क्यों गयी थी मरने?"

"अपनी-अपनी किस्मत। हम गरीब हैं। बिना साग-पात के जी नहीं सकते। मुझे जाना पड़ा। मुझे क्या मालूम था कि गले पर छुरी चलाने की तैयारी हो रही थी।"

विपिन की आँखें पुष्पी के चेहरे पर गड़ी थीं। विपिन तभी से सोच

रहा था कि पुष्पा शायद कुछ नहीं जानती होगी कि उसके लिए कैसे-कैसे फन्दे बिछाये जा रहे हैं। विपिन को पुष्पा पर ज़रा भी शंका न थी, पर वह क्या कर सकता था। विपिन कुछ न बोला।

"विप्पी।" पुष्पा उसके पास सटकर बैठ गयी—"तुम मुझे कुछ और तो नहीं समझ रहे हो ?" विपिन जानता था कि पुष्पा यही पूछने के लिए उसके पास आयी है। बेचारी लड़की ! कल तक यह कुछ थी, आज कुछ और हो चुकी है। उसे खुद अपने अनकिये पाप के लिए सफ़ाई देनी पड़ रही है।

"बोलो न।" पुष्पा ने विपिन का हाथ पकड़ लिया। यह एक ऐसी चेष्टा थी, जो शायद स्वस्थ मन की पुष्पा इतनी आसानी से कभी न करती, मगर आज पुष्पा किन्हीं अदृश्य लहरों में इतनी झकझोरी जा चुकी थी कि वह अपनी किसी भी चेष्टा के साथ जुड़े हुए अनेक-अनेक अर्थों पर विचार और निर्णय की शक्ति खो चुकी थी। किसी दूसरी स्थिति में पुष्पा की यह हथेली विपिन को अपने प्रेम का एक मधुर प्रतिदान लग सकती थी, किन्तु आज यह हथेली विवशता की निशानी ही लगी। यह भावबोध खुद विपिन के लिए इतना दुःखद था कि उसने पुष्पा की हथेली को अपने दोनों हाथों में दबा लिया।

"तुम ऐसा क्यों समझती हो पुष्पी, कि मैं तुम्हें कुछ और समझ लूंगा।" उसने कहा। मगर एक क्षण के लिए ही वह इतना विश्वासपूर्ण रह सका। दूसरे ही क्षण उसका समूचा दर्पभाव किसी आँधी के हचकोले में कराह उठा। किसका-किसका मुँह बन्द कर सकेगा वह ?

"क्या सोच रहे हो ? मेरी क़सम विप्पी, मुझे सारी बातें साफ़-साफ़ बता दो। यदि तुमने भी मुझे बुरी मान लिया तो मैं मुँह काला करके किसी पोखर-कुइयाँ में डूब मरूँगी। मैं कभी भी अपनी गन्दी परछाईं तुम्हारे ऊपर न डालूंगी। मगर एक बार मुझे तुम अपने मन की बात ज़रूर बता दो।" पुष्पी के चेहरे पर एक अजीब घिनौनी दयनीयता छा गयी। विपिन ने सारी बातें बता दीं। दयाल पंडित से समाचार मिलने से लेकर महाबीर

जी के मन्दिर से वापस लौटने की सारी घटनाएँ एक-एक करके उसने कह दीं। पुष्पा चुपचाप मुँह लटकाये यह सुनती रही।

"इतने लोग जानते हैं यह सब कुछ ?" उसने अजीब निराशा से कातर होकर कहा—"तुम्हें यह सब कुछ मेरे लिए सहना पड़ा विप्पी।" पुष्पा हिचक-हिचककर रो उठी। उसने विपिन के घायल कंधे को सहलाते हुए कहा—"मैं ऐसी अभागिन हूँ ही। मेरी सहायता करनेवाला भी कभी खुश नहीं रह सकता। हे भगवान्, जाने कनिया क्या सोचती होंगी ? सुरजू और सिरिया ऐसे ही चुप थोड़े रह जायेंगे....।" उसकी कंजई आँखें छल-छला आयीं।

"जो कुछ होना था, वह हो चुका पुष्पा। अब इन बातों को सोचने से कोई फ़ायदा नहीं।" विपिन उसे बहलाने के लिए जो कुछ भी कहना चाहता, वह उसे खुद उसका ही मज़ाक़ उड़ाता सा लगता। फिर भी पुष्पा को समझाना ज़रूरी था, इसलिए उसने कहा—"देखो पुष्पा, कनिया के जानने से कुछ नहीं होता। दयाल पंडित को तुम जानती ही हो। रहे सुरजू और सिरिया। वे भी बिना सबूत के कोई बात नहीं कहेंगे। यह सब कुछ मामला धीरे-धीरे पुराना हो जायेगा और लोग भूल जायेंगे।"

"तुम तो नहीं भूल जाओगे ?"

"किसको ?"

"मुझको। मैं बिल्कुल निर्दोष हूँ विप्पी। मुझे चरणों से अलग न कर देना।"

विपिन को लगा कि वह रो पड़े। कैसी कातरता थी पुष्पा के चेहरे पर। विपिन अचानक ममता से भर उठा। उसने पुष्पा के हाथ को बड़े प्यार से खींचा। वह उसकी गोद में गिर गयी। विपिन ने उसका मुँह चुम्बनों से भर दिया।

"अब चली जा पुष्पी, नहीं देर हो जायेगी।" विपिन ने उसे छोड़ते हुए कहा।

पुष्पी चुपचाप उठी। काफ़ी आश्वासन देने पर केवड़ार से बाहर

चली। कुछ दूर चलकर सहसा वह लौट आई—"विप्पी, मुझे डर लगता है।"

विपिन ने गिरी हुई चहारदीवारी की संध से झाँककर देखा। "कोई तो नहीं है, चली जा।" पुष्पा चली। दो डग चलकर फिर लौट आयी।

"शायद कोई उधर से आ जाये। मुझे डर लगता है।"

पानी निरन्तर बढ़ रहा था। फूल कुंवर डर-डरकर राजा के पास आ जाती।

विपिन हल्के मुसकराया—"कोई नहीं है, पुष्पा! तू जा तो।" उसने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा।

पुष्पा ने बड़ी कातर आँखों से विपिन को देखा और केवड़ार के बाहर चली गयी। विपिन संध से झाँककर उसे बड़ी देर तक देखता रहा।

विपिन हारा-थका सा जामुन की जड़ में पीठ अड़ाकर बैठ गया।

उसके मन में एक अजीब तरह की मिली-जुली आवाज़ अंधड़ की तरह हरहराती गूंजने लगी थी। जैसे कोई बहुत बड़ा भयानक जानवर किसी ताल के पानी को अपने विशाल शरीर से मथ रहा है।

एक सन्नाटा, एक थकन भरी शान्ति।

डोम ने राजकुमारी को पकड़ लिया। राजकुमारी उसके कठोर हाथों से अपनी कलाई छुड़ाकर भागना चाहती थी। उसने अपनी नाजुक कलाई को कई बार झटका, पर डोम की लोहे जैसी सख्त अँगुलियों से छुड़ा न सकी। उसकी इन कोशिशों से डोम को बड़ा गुस्सा आया। उसने राजकुमारी को बेदर्दी से खींचा। खींचता चला गया और अपनी बत्तीस खंभों वाली बारादरी के भीतर ले जाकर उसे फ़र्श पर फेंक दिया।

वह उसे रस्सी से बाँधने लगा।

"कोई बचाओ! कोई बचाओ!!" राजकुमारी चिल्लाती रही।

घना अँधेरा छा गया। डोम का विकृत चेहरा खुशी से और भी भद्दा लगता। वह थाली में खाना लेकर राजकुमारी के पास आया।

"ले खा ले।" कनस्तर में मुँह डालकर बोलने जैसी आवाज़ गरगरायी।

राजकुमारी ने अपने बँधे हुए हाथों की ओर देखा। डोम मुसकराया। उसने रस्सी खोल दी। वह अपना तेज बंका हाथ में लिये दरवाज़े पर बैठ गया।

राजकुमारी बेचारी खाती तो क्या। वह अपने छूटने की तरकीब सोचती रही। पर कोई उपाय न सूझा। अथाह जल, घना अन्धकार, मज़बूत दीवालें, फाटक पर दैत्याकार डोम। वह धीरे से उठी और दबे पैरों दरवाजे के पास पहुँची। धड़ से दरवाज़े बन्द कर उसने कुंडी लगा दी। राहत की साँस आयी। राजकुमारी ने सोचा, अब वह सुरक्षित है।

मगर कब तक?

डोम ने अपना बंका उठाया और जल में बनी उसी बारादरी के दरवाजों को चीरने लगा। सारी बारादरी डोलने लगी।

"बचाओ! बचाओ!!" फूलकुंवर चिल्लायी, डगमगायी।

डोम केवारा चीरेला, चीरेला।

बत्तीसो खंभा हीलेला, हीलेला॥

डोम केवाड़ा चीरता रहा, बत्तीसों खंभे हिलते रहे।

कौन बचाये, कौन बचाये फूलकुंवर को?

तालाब के अछोर जल के भीतर चीत्कार गूंजता रहा।

● ●

तेईस

शाम हो रही थी। झब्बूलाल उपधिया के दरवाज़े पर दिन भर का शोर-शरापा बन्द हो चुका था। गाँव और आस-पास के मरीज़ धीरे-धीरे जा चुके थे। देवनाथ सामने चबूतरे पर डूबती धूप में कुर्सी खींचकर बैठा हुआ था। उपधिया जी एक कोने में अलग चौकी पर कम्बल बिछाये सुरती मल रहे थे। उन्हें देवनाथ की 'डागडरी' से पूरी नफ़रत हो चुकी हैं। पहले तो सोचा था कि डागडरी जैसा व्यापार कोई है ही नहीं। लड़का कहीं शहर-वहर में किसी सरकारी अस्पताल में डाक्टर हो जायेगा। हज़ारों रुपये का वारा-न्यारा करेगा। घर में रौनक़ आ जायेगी। पूजा-पाठ, जजमानी से छुट्टी लेकर ठाट से भजन-भाव करेंगे। पलंगड़ी पर बैठकर नाती-पोतों के संग मन बहलाया करेंगे। मगर बात बिल्कुल उल्टी निकली। लड़के ने ज़िद करके घर पर ही अस्पताल खोल लिया। सारा गाँव ससुरा सुबह से शाम तक टूटा रहता है। चमार-सियार, डोम-दुसाध, मियाँ-मुकुरी—सभी दलान में हेल आते हैं। सारा 'भरभंड' करके रख दिया। एक मिनट पूजा-पाठ के लिए भी शान्ति नहीं मिलती। दालान में कोने की तरफ़ चौकी रखवा ली कि वहीं सुबह बैठकर गीता-रामायण पढ़ूँ। मगर बड़े भिनुसारे 'अरिकात-करियात' के मरीज़ आकर घेर लेंगे।

"उपधिया जी, आप तो 'छछात्' भगवान के औतार हो। कैसा लड़का जन्मा आपके घर महराज कि सारा दिहात असीस की बरखा कर रहा है। पढ़गित हो तो ऐसी। अब सुना है कि छावनी वाले मलिकार के लड़िका भी बहुत पढ़े हैं। ओर-माथे तक। बाकी ओह पढ़गित से का फ़ायदा। होंगे भाई बहुत पढ़वैया। बाकी हाथ का ई हुनर उनके पास कहाँ? देवनाथ बचवा तो धन्वन्तरी हैं। छू दें तो रोगी चंगा। आधा रोग तो रामदैं उनकी 'मधुरी बात' से ही छूट जाता है। वाहबा, बाह, का जस है उपधिया जी? हाथ-हाथ का फ़रक़ होता है महराज जी। अइसे तो टीसन में भी बहुत "वइद-डागदर" हैं। मगर ऊ सरवा तो खाली रोगी को मूसना जानते है। चाहते हैं कि कइसे रोगी का ख़ून चूस लें। देवनाथ बेटा को कोई नहीं पायेगा। हाँ महराज जी!"

"दरिद्दर ससुर हियाँ से नाहीं।" उपधिया जी ये बातें सुनकर पिच से थूँकते और मन ही मन कहते—"एक पइसा से भेंट नाहीं, बात बड़े बाबू की। हुँह। ई जस लेकर हम चाटेंगे। बिना पैसा रोगी देखकर ऊपर से फोकट की दवाई दे-दे डागदर तो सारी दुनिया जस गावेगी। टीसन पर जाते थे तो कइसा टेंट में से रुपिया निकल जाता था। झख मारते, अनाज-पानी बेचते या इससे-उससे हथफेर माँगते, तभी जाते थे लोग टीसन। नाहीं तो इन फोकटिहों को उहाँ कोई वैद डाक्टर दूकान में हेलने देता? बाकी इहाँ? बस, हाथ हिलाते चले आते हैं। जैसे इनके बाप-दादों का करज़ खाया है हमने।"

उपधिया जी दो-एक महीना चुपचाप देखते रहे। सोचा कुछ मरीज़ ठीक हो जायेंगे। मुफ़्त में ही सही, तो चारों ओर घूम-घूमकर ढिंढोरा पीटेंगे। पहले हल्ला मचाना ज़रूरी होता है। आज की सारी दुनिया साली हल्ला मचाने पर ही टिकी है। यह नया ज़माना है। बिना हल्ला के तो खाँटी घी भी नहीं बिकता। अब तो शुद्धता ही शक की चीज़ हो गयी है। जब ईमानदार को हल्ला मचाने की ज़रूरत पड़ने लगे तो जान लेना चाहिए कि धरम चौराहे पर टँग गया! यही है नया ज़माना!

दो-तीन महीना बीतते-बीतते उपधिया जी ने चौकी उठवाकर बाहर लगवा ली। पूजा-पाठ गया भाड़ में। घर देखें कि परलोक देखें। वे सुबह ही हाथ-मुँह धोकर चौकी पर आ जमते।

रोगी आते और उपधिया चौकन्ने हो जाते।

"पालगी महराज !"

"जीवो, जीवो, कहो भाई कैसे चले ?"

आगन्तुक उनकी ओर टुकुर-टुकुर ताकने लगता। "जरा डागदर बाबू से मिलना था।"

"हाँ-हाँ, तो इसमें लजाने की बात क्या है ? डागदार बाबू आय रहे हैं। बैठो। क्या बात है ?"

"अब ऊ आ जायें तो उन्हीं से कहें।" रोगी कहता। उसे थोड़ा मज़ाक़ भी सूझता कि शायद 'डागदर' का बाप होने से उपधिया जी भी अपने को नबुज़-नाड़ी का जानकार मानने लगे हैं।

इस बेतुकी हँसी से घबड़ानेवाले झब्बूलाल नहीं थे। गुस्से को छिपाकर कहते—"सो तो ठीक है। बाकी, अब पद्धती बदल गयी है।"

"जी, का बदल गयी है ?"

"पद्धती ! पद्धती बदल गयी है। पहले आपको हमसे टिक्कस लेना होगा।"

उपधिया जी कम्बल के नीचे से दफ्ती के चौकोर टुकड़े निकालते।

"देख रहे हैं न। ई हैं टिक्कस। इन पर नम्बर छपा है। इससे मालूम होगा कि आप कौन नम्बर के रोगी हो। डागदर साहब अब बरमदा की कोठरी में बैठेंगे। उहाँ से आपके नम्बर की पुकार होगी, तब आप जाइयेगा।"

"अच्छा, तो हमारे नम्बर की पुकार होगी ? ई तो बहुत अच्छा है महराज जी।"

"हाँ भाई, इसी से तो किया है। वहाँ भीड़ लग जाती है। हल्ला-गुल्ला में रोगी की बात भी ठीक समझ में नाहीं आती। ई डागदरी का मामिला है। अंग्रेजी दवाई में जरा भी इधर-उधर हुआ कि बस लेने के देने पड़ जाते हैं। ई कोई वैद जी की फंकी थोड़े है कि सब रोग में काम करेगी। अरे भाई, इसमें तो बड़ा दिमाग़ लगाना पड़ता है। एक बात और है। रोगी बैठ जाते हैं ससुरे, हम तुमको नहीं कह रहे हैं, बुरा मत मानना, भाई बहुत से अइसे उपरफट्टू रोगी आते हैं साले, लगते हैं दुनिया भर की बातें करने। अब तीन साल पहले तोहें मलेरिया हुआ था कि हैजा, इससे डागदर बाबू से का वास्ता ? तोहें आज जो हुआ है ऊ कहो। बाक़ी कौन सुनता है, लगेंगे फसोटने।

"दूसरे बेचारे ग़रीब रोगी बिना खाये-पीये बैठकर टुकुर-टुकुर ताकेंगे। सो यह ठीक नहीं है। इसीलिए ई टिक्कस हैं। एक रोगी को पाँच मिन्ट से अधिक टाइम नहीं मिलेगा। पाँच मिन्ट हुआ नाहीं, कि डागदर घंटी बजा देंगे। दूसरे नम्बर की पुकार हो जायेगी।"

"वाहवा, वाहवा।" रोगी ताली पीटकर हँस पड़ता—"ई है दिमाग़ का खेल। वाह महराज जी। आपने तो बड़ा बढ़िया रस्ता निकाला !"

"तो लो भाई अपना टिक्कस।" हाथ में 'टिक्कस' लेकर उपधिया जी रोगी की ओर ताकते। न ये देते न वह लेता। बस, उपधिया जी की ओर नज़र लगाये याचना के भाव से मुस्कराता। "निकालो रुपया भाई। एक रुपया टिक्कस की फ़ीस है, बस। टीसन वाले दो रुपिया लेते हैं। इहाँ गाँव-घर का मामिला है तो एक ही रुपया सही। है कि नहीं।"

रोगी शरम और ग्लानि से नीचे ताकने लगता। थूक का एक बड़ा सा डला उसके गले में अटक जाता—"तो महराज जी, एही टिक्कस पर दवाई भी न मिली ?" वह हकलाते हुए पूछता।

"का ? दवाई का हिसाब-किताब डागदर बाबू करेंगे। ऊ पता नहीं तोहें सुई देंगे कि गोली देंगे कि मिच्चर ? अब ई तो ऊ जानैं। उसका जो दाम होगा ऊ कहेंगे। ई तो निदान की फ़ीस है, निदान की। नाहीं समझे ? अरे भाई, डागदर तोहें देखभालकर दवा-दारू का थाह लगायेगा न ? उसकी फ़ीस। समझे न ? कनटलेसन की। जानो ? हाँ....!" उपधिया जी

हँसते—"ई ज़रा नया ज़माना देखो अब, कि अपनी मतारी-भाखा में लोग बात नहीं समझते, कनटलेसन कहो तो पट्ट से समझ लेते हैं। हाँ भई, तो निकालो एक रुपिया !"

"अच्छा महराज जी। तो अभी रखा जाये। लछमिनिया की माई भी आय रही है। वो भी आ जाय तो एक बारै टिक्कस की बात हो....।"

अपनी आधा-तिहा बात कहकर रोगी धीरे से खिसक जाता।

"भाग सरऊ हियाँ से।" उसे गली में मुड़ते देख उपधिया जी बुदबुदाते—"आये थे फोकट में दवाई कराने। अरे हम एक-एक की हुलिया टाइट कर देंगे। ई कौनो अनाथालय है का ?"

रोगी उपधिया जी की बातों को बीसों बार दुहराते घर पहुँचता।

"का हो लछिमन चौधुरी, करैता से आ रहे हो का ?" उसका कोई गँवई-बन्धु पूछता—"दवाई ले आए ?

"अरे गोली मारो चाचा। पंडितवा दुआरी पर बइठके टिक्कस बाँट रहा है। कहने लगा कि निकालो एक ठो रुपया और लो ई टिक्कस। बिना टिक्कस के 'डागदर' के पास नहीं जाने पाओगे। बड़ा लालची है सरवा ई बाभन। भँजाय रहा है समझ लो। लड़के को पढ़गित का कराया, सगरो दिहात को चूस कर रख लेगा !"

"तो वो ही एक रुपया में दवाई भी तो मिलती ?"

"अरे राम भजो चाचा, कहने लगा कि 'कनटलेसन' की फ़ीस है। दवाई का दाम ऊपर से, हाँ।"

"अच्छा। हाँ भई, जब रुपिया लगाकर पढ़ाया है तो मुफ़ुत में थोड़े देंगे।"

"अरे तो जब रुपया लगाकर ही दवाई करानी है तो टीसन के डागदर-वइद का खराब हैं ? उस दिन लाला डागदर कहने लगा कि पानी की सूई लगाता है पंडित का लड़का। ठीक कह रहा था, हाँ। जिसका बाप ऐसा लालची है, उसका बेटवा का घीव की सूई लगायेगा ?"

उपधिया जी की 'पद्धती' से और कुछ हुआ हो या न हुआ हो,

मरीज़ों की बाढ़ रुक गयी। डाक्टर देवनाथ बरामदे की कोठरी में बैठे-बैठे मक्खी मारते।

"अवराईं का लछिमन नहीं आया आज ?" वे बाहर निकलकर अपने पिता जी से पूछते।

"आया काहे नहीं। टिक्कस का नाम सुनकर लछमिनिया की माई को खोजने गया।" वे मुस्कराते हुए कहते।

"तो आप उसे अपना टिक्कस काहे थमाने लगे ? वह क्या कोई नया रोगी था ?" डाक्टर थोड़ा उखड़कर कहते।

"अरे नवा नहीं था, तो जब नवा आया तब क्या टिक्कस लिये था ?"

"अब आपको कौन समझाये। स्पेशल केस था, आपने उसे भी भगा दिया। कुछ न कुछ तो दे ही रहा था बेचारा।"

"तो सिपेसल केस है तो मुफ़त में होगा का भाई ? और दे का रहा था, जरा ऊ भी सुनें। दो बार एक-एक दँहेड़ी दही दे गया। दो बार एक-एक ठो लौकी। यही न ? यही सिपेसल केस है। तब तो हो गया।" उपधिया जी अचानक उदास हो जाते।

डाक्टर बरामदे से हटकर कोठरी में घुस जाते। बाप-बेटे में एक अन्दरूनी खिंचाव पैदा हो जाता। बेटे को लगता कि बाप उसे पूरी तरह जमने देने के पहले पैसे का हिसाब करके सारे रोगियों को खदेड़ रहा है। बाप कों लगता कि बेटा डागदर तो हो गया, मगर दुनिया से पूरी तरह नावाकिफ़ है। इस तरह करता रहा तो जो कुछ है, वह भी बिला जायेगा।

दो-चार साल पहले क़स्बे में एक आँख का डाक्टर आया था, किसी दानवीर की ओर से मुफुत इलाज करने। एक महीने का कैम्प रहा। उपधिया जी ने इस सेवा-कार्य की जितनी भी हो सकी, तारीफ़ की। गाँव के दो-एक ग़रीब बुड्ढों की आँखें वहाँ ले जाकर बनवायीं भी। वहीं उन्होंने रोगियों को दिया जानेवाला 'टिक्कस' देखा था। एकाएक एक दिन वे देवनाथ की घर-फूंक डागदरी पर सोचते-सोचते उछल पड़े। "ओम्मारा.... वाह !" ऐसा ही टिक्कस यहाँ भी क्यों न चलाया जाये। मैं करके दिखा

दूँगा इस छोकरे को कि कैसे रुपया कमाया जाता है। इतनी मेहनत से किये गये अपने इस अपूर्व ईजाद की टीका-टिप्पणी उपधिया को असह्य हो जाती। आज भी शायद बाप-बेटे में कुछ ऐसा ही हुआ होगा। देवनाथ बाप से काफ़ी दूर हटकर जाड़े की आख़िरी धूप से खिलवाड़ कर रहा था और उपधिया जी लड़के की इस उदासीनता से परेशान होकर हथेली में खैनी को मसल रहे थे।

तभी शशिकान्त आकर खड़ा हो गया।

"नमस्कार डाक्टर बाबू।"

"अरे मास्टरसाब, आइये, आइये।" देवनाथ झुकी गर्दन उठाकर शशिकान्त की ओर देखकर मुसकराया। उपधिया जी ने देखा कि लड़के से बोलने-बतियाने वाला एक आदमी आ गया है, तो खुश हो गए। अकेले बैठकर पता नहीं कब तक उनकी बातें सोच-सोचकर मुँह फुलाए रहता। वैसे ये बातें हम क्या अपने फ़ायदे के लिए कहते हैं? अरे अब साठ के पार हुए। चली-चला की बेला है। खटिया पर लादकर तो ले नहीं जायेंगे। इन्हीं लोगों के लाभ के लिए कह देते हैं।

"आइये मास्टर जी, इधर बैठ जाइये।" उपधिया जी ने सुरती ठोंककर ओठ में दबायी और सिर पर गमछा बाँधकर 'बाहरी' ओर चल दिये।

देवनाथ लोहे की कुर्सी खींचते हुए चौकी के पास आ गया—"बैठिये मास्टर साहब।"

"ठीक है।" कहते हुए शशिकान्त चौकी पर बैठ गया।

"आपने तो इस सड़ियल गाँव में नई जान डाल दी।" देवनाथ हँसा—"सुना आपकी आसन-टीम ज़िला टुर्नामेंट में पहुँच गयी?"

"यह सब आप लोगों की दया है डाक्टर बाबू, और क्या कहूँ। जहाँ आप और विपिन बाबू जैसे पढ़े-लिखे लोग हैं, वह सड़ियल जगह कैसे है। मुझे तो, सच कहिए, ऐसी जगहों में ही अच्छा लगता है। एकदम कोरी माटी, मुलायम और ताज़ा। ऐसी माटी से ही मन-माफ़िक मूरतें गढ़ी जा सकती हैं। मैं तो नहीं मानता कि यह सड़ियल जगह है। हाँ, यह ज़रूर

है कि यह उपेक्षित जगह रही है। किसी ने छिपी चिनगारियों को जगाने की कभी कोशिश नहीं की, बस।"

"तो आपका ज़िला-टुर्नामेंट भी हो गया?"

"हाँ, अभी दो-तीन दिन पहले ही तो लौटे हैं हम लोग। उसी में पता नहीं सरद-गरम लगा या क्या, कुछ ज्वर जैसा लगता है।" शशिकान्त ने अपनी बाँह बढ़ा दी। देवनाथ नब्ज़ देखने लगा।

"हाँ, हाँ, हो गया होगा कुछ सरद-गरम। तीन दिन हो गये लौटे आपको।" देवनाथ ने हँसते हुए कहा—"तीन दिन तक शायद प्राकृतिक चिकित्सा होती रही?"

"प्राकृतिक चिकित्सा तो क्या! सोचा शायद ऐसे ही ठीक हो जाये।" झेंपते हुए शशिकान्त बोला।

"हाँ, थोड़ा टेम्परेचर है तो, ठीक हो जायेगा। अभी देता हूँ मिक्सचर।"

तभी सामने से विपिन आकर डाक्टर की कुरसी के पास खड़ा हो गया—"कहो डाक्टर!"

"अरे वाह, आइये विपिन बाबू।" देवनाथ कुरसी से उठकर खड़ा हो गया—"चल करके बरामदे में ही क्यों न बैठें। यहाँ तो कुछ सर्दी भी है।"

"हाँ-हाँ, चलो वहीं।"

तीनों बरामदे में बैठे ही थे कि कम्बल की घोघी ताने, जग्गन मिसिर चबूतरे पर आ रहे।

"झब्बू भइया हैं कि नहीं?"

"आओ चाचा, अभी तो बाबूजी यहीं थे, लगता है तालाब चले गये।"

"हूँ, तो ठीक समय पर ही आया हूँ।" जग्गन मिसिर ने बरामदे में हेलते हुए कहा—"ऐसा करो देऊ बेटा कि ज़रा मेरी नाड़ी तो देखो।" उन्होंने खड़े-खड़े कम्बल में से हाथ निकालकर देऊ के सामने कर दिया।

"क्या बात है?" देऊ हल्के मुसकराया।—"बैठ तो जाइए।"

"बात-वात क्या है। पट से देखो और चट दवाई दो। नहीं झब्बू भइया आये कि मुफ़्त में दवाई लेनेवालों को एक 'लीक्चर' पिला देंगे।

हमसे और कुछ तो नहीं कहेंगे। बस, चुटिया बाँधते हुए बड़बड़ायेंगे कि तुलसी-पत्ता का काढ़ा पीकर दादा अपना चपरपट्टू मलेरिया छुड़ा लेते थे। अँग्रेजी दवाई में दारू मिली रहती है मगर कौन सुनता है। अब भई नये लोगों का ज़माना है जो न करें। पैसे देनेवाला मरीज़ अगर अँग्रेज़ी दवा में दारू की बात कहकर बिदके तो भाई साहब उसकी मूर्खता पर हँसेंगे और कहेंगे—"अरे वाह रे बाबू साहब, घर में तो उठानवाली चोली का फिस्सन चलाते हो, दो दिन की बेटियों को शहर ले जाकर सिलेमा दिखाते हो, और अँग्रेजो दवाई के नाम पर नाक सिकोड़ते हो। वाह, वाह—तो ज़रा जल्दी करो बेटा, नहीं आये ही बोलते हैं बुढ़ऊ।"

"अरे वैठिये भी मिसिर जी, आ जायेंगे तो कौन सा डर पड़ा है आप को। सबको उपधिया जी एक ही लाठी से थोड़े हाँकते हैं। वे जग्गन मिसिर को नहीं जानते क्या?" विपिन हँसते हुए बोला—"सबसे ज़्यादा गुस्सा तो उनका मेरे ऊपर है। मेरे ही कहने से देऊ ने यहाँ डिस्पेंसरी खोली। कुछ कहते तो नहीं, मगर मैं समझता हूँ कि वे मन ही मन कोसते ज़रूर हैं कि हम दोनों ने मिलकर सारा बंटाधार कर दिया।"

देवनाथ हँसते हुए कोठरी में चला गया और मास्टर और जग्गन मिसिर के लिए दवा बनाने लगा।

दवा की शीशियाँ मास्टर शशिकान्त और जग्गन मिसिर को थमाकर देऊ चारपाई पर बैठ गया। शशिकान्त ने देऊ की ओर बड़ो संकोच भरी दृष्टि से देखते हुए पूछा—"कितना हुआ डाक्टर साहब?"

"अरे रहने दीजिए।" देऊ ने गरदन झुका ली—"अब आपसे दवा का दाम लेंगे?"

"नहीं, यह तो ठीक नहीं है।" शशिकान्त ने गम्भीर होकर कहा—"मैं चाहता हूँ कि आपकी डिस्पेंसरी चलती रहे।" फिर अचानक, जैसे अपनी बातों की गम्भीरता से उसे खुद परेशानी सी हुई हो, ठठाकर हँस पड़ा—"मुफत की दवा, सुनता हूँ, असर नहीं करती डाक्टर साहब! और फिर मिथ्या शील का बोझ हमीं आप ढोते रहेंगे तो कैसे चलेगा? कभी-कभी ऐसे शील का सोमेंट ऊपर से तो टुकड़ों को मिलाकर जोड़ता सा नज़र आता है, पर कहीं भीतर अनजाने दरारें भी पड़ जाती हैं....।"

देऊ एक क्षण चुप रहा। शशिकान्त की आँखें उसके चेहरे पर प्रतीक्षा के भाव से टिकी हुई थीं। जग्गन मिसिर इस बात-चीत से अचानक कट-कर अपने कम्बल की घोघी में सिमट गये थे।

"दे दीजिए बारह आने।" देऊ ने कहा।

शशिकान्त से एक रुपए का नोट थामकर वह चार आने पैसे लाने कोठरी में चला गया। वातावरण एकाएक थोड़ा गंभीर हो आया था। शशिकान्त की बातें ठीक हैं। विपिन सोच रहा था। अनेक आवरण हैं, जिन्हें हम शराफ़त, बड़प्पन और उदारता के स्नेहन से चिकनाते-सँवारते रहते हैं। ऐसा शायद इसीलिए होता है कि आदमी अपने भीतरी 'मैं' को पिघलाकर सबके ऊपर उढ़ा देने में थोड़ी खुशी और सन्तोष का अनुभव करता है, पर दूसरे लोग जब पास में नहीं होते, बाहरी व्यक्ति की आँच कम होती जाती है तो वह 'मैं' इतना सिमट जाता है कि उसे अपनी वदान्यता पर खीझ सी होने लगती है। मैंने भाई साहब को सभी प्रकार की आफ़तों से बचा तो दिया, मगर मिला क्या? पुष्पा की याद आते ही विपिन को लगा कि हृदय के भीतर से कुछ चमकीला आबदार, पदार्थ निकलकर शून्य में खो गया है। वह मणिहीन साँप की तरह चादर में सिमटकर सुस्त हो गया।

तभी देवनाथ शशिकान्त को पैसे लौटाकर चारपाई पर बैठा। बैठते ही उसने वातावरण की संजीदगी में एक लम्बी सी साँस ली और कहा—"विपिन बाबू, बड़े चुप हैं आप?"

"नहीं तो।" विपिन उदास हँसी हँसते हुए बोला—"मैं तो मास्टर शशिकान्त की बातों पर सोच रहा था। असल में बात तो बहुत छोटी है। मगर इसका दायरा बहुत बड़ा है। सब लोग एक-दूसरे के बारे में ठीक से ख्याल रक्खें, तो शायद बहुत से मामले सुलझ जायें? क्यों मिसिर जी?"

"तो बद्दू मैं हूँ।" मिसिर हँसे—"आपका मतलब है विपिन बाबू कि

मुझे भी जेब से निकालकर पैसा दे देना चाहिए। हाँ, चाहिए तो। मगर, इस देऊ से पूछिये कि लेगा ?"

"अरे नहीं मिसिर जी। मैं दवा के बारे में नहीं कह रहा आपसे। मैं तो इस पूरे गाँव के बारे में सोच रहा हूँ। कहिए मास्टर साहब, आपको भी तो इस गाँव में आये करीब पाँच-छः महीने हो गये। क्या लगा आपको ?"

"क्या लगा ?" शशिकान्त धीरे से हँसा। "लगा बहुत, पर कुछ पकड़ में नहीं आया। बात यह है विपिन बाबू कि अब हमारे गाँव उस स्थिति में पहुँच गये हैं, जहाँ दर्द की इन्तहा ही दवा बन जाती है। दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना....। हमारी मानसिक स्थिति धीरे-धीरे इस ढंग की हो जाती है कि लगने लगता है कि जो है वही ठीक है, क्योंकि वे-ठीक मानने से चित्त को दुख ही होगा। फिर जब पता नहीं कि काँटा कहाँ चुभा है, तो फिर तलवे के चमड़े को पूरा का पूरा उधेड़ देना भी बुद्धिमानी नहीं ही होगी। मैं अक्सर इस काँटे की जगह को टटोलने की कोशिश करता रहा हूँ। जानकार लोग कहते हैं अशिक्षा, ग़रीबी ही मूल कारण हैं। पर मैं तो जिस जगह दबाता हूँ, वहीं लगता है कि भीतर कुछ करक रहा है। अब तो रोगी की यह हालत है कि उल्टे उपचार करनेवालों से ही डर लगने लगा है। ग़लत या सही उसका विश्वास दृढ़ हो गया है कि इससे दुख का काँटा तो निकलेगा नहीं, उन्हें टीसती जगहों को छेड़छाड़ कर लोग सोया दर्द ज़रूर कुरेद देंगे। इसलिए अब वह अपनी ओर उठे उपचारक के हाथ को ही पकड़ लेता है।"

"लगता है मास्टर साहब पर भी दवा की दूकान का असर पड़ गया है।" जग्गन मिसिर हो-हो करके हँसे। "अरे भइया, जहाँ काँटा चुभता है, वहाँ जगह करकती है। गोखरू बँध जाता है। मांस में गाँठ पड़ जाती है। चमड़ा काला हो जाता है। इसलिए जगह पहचानने में क्या कठिनाई होगी भला। हाँ, ई ज़रूर है कि हिम्मत हार चुका आदमी काँटा निकालने वाले को देखकर घबराता है। डरता है कि ई और दुखा देगा खोद-खाद कर। बाकी अगर काँटा निकालनेवाला सचमुच में शुभचिन्तक है, खैरख्वाह है, तो उसे चाहिए कि रोगी पर चढ़ बैठे। उसके हाथों को काँख में दबा ले। ज़बर्दस्ती घुसेड़ दे सूई साले के तलुए में और नोक से उकसाकर फट से खींच दे काँटे को टोक पकड़कर बाहर ! दो-एक घरी चिल्लायेगा, चिल्लाए। फिर तो आराम हो जायेगा। है कि नहीं ?"

"सो तो ठीक है मिसिर जी।" विपिन कहने लगा—"ज़बर्दस्ती चढ़ बैठने और सूई घुसेड़ने का अधिकार आप सिर्फ़ इसलिए ही तो लेना चाहते हैं कि आप शुभचिन्तक हैं, मगर आप सचमुच शुभचिन्तक हैं, इसका सबूत क्या है ?"

"सबूत तो उसको तभी मिलेगा, जब उसे आराम हो जायेगा। मिसिर ने कहा।

"और जब तक आराम न हो, वह शुभचिन्तक को गाली देता रहेगा। यही न ? और मिसिर जी यह ऐसा काँटा है कि सुई घुसड़ने पर भी उसका टोक हुलसकर बाहर ही नहीं आ जाता, ऐसी हालत में उसे पकड़कर फट से खींच देना ही मुश्किल है। अब देखिए न, खलील चाचा का ही उदाहरण लीजिए। आज से बीस साल पहले क्या थे वे। आज क्या हैं। अपनी ज़मीन थी, अपनी जायदाद थी। और आज यह हाल है कि वे खाने-पहनने के लिए मोहताज हैं।"

"खलील मियाँ का मामला दूसरी तरह का है विपिन बाबू। खलील मियाँ के पैर में काँटा चुभे और वे उसे डरकर न निकलवायें ऐसी बात नहीं। खलील मियाँ अपने फोड़े में खुद नश्तर लगानेवाले आदमी हैं, मगर वे उस नमकहरामी और धोकेबाज़ी का क्या करें, जो उनकी मिहरबानी से ही पैदा हुई है। खलील मियाँ अपनी शराफ़त से मारे गए। एक बार भी वे शराफ़त के पर्दे को चीरकर अपनी चीज़ को पाने के लिए खड़े हो जाते, तो उसे पा जाते। इसमें सन्देह नहीं। बाक़ी खलील मियाँ ई सब नहीं कर सकते। ऊ तो खाली पेट खटिया पर लेटकर बड़बड़ायेंगे—'तहज़ीब, मिसिर जी, तहजीब।' ई तहज़ीब भइया कौन सा पदारथ है, ई हमको समझ में नहीं आया। तेरी 'तहजीब' की ऐसी की तैसी। पेट में दाना

रहता है तो ई साली तहजीब भी कुत्ते की तरह दुम हिलाती है। अगर घर में चूहे दण्ड पेल रहे हों तो तहजीब कटही कुतिया की तरह गुर्राकर अलग हो जाती है। मैंने कहा कि मियाँ साहेब! हो हिम्मत तो निकालो लाठी, चलो मेरे साथ। तुम्हारे पूरे खेत पर कब्जा न दिलवा दूँ तो मेरी असलियत में फरक। यही न होगा कि कुछ खून-खराबा होगा। तो आधी ज़मीन बेचकर लड़ते रहना हाईकोर्ट तक। मगर ऊ तहजीब का बच्चा टस से मस न हुआ। बोला, मिसिर जी, हम क्या अपने हलवाहों-चरवाहों के रूबरू अदालत में खड़े हों? नहीं होगे खड़े तो जाओ चूल्हे भाड़ में। अरे भाई, रास्ते तो दो ही हैं। या तो पंचाइत करो। न्याव-न्याव चिल्लाओ। या फिर हो जाय महाभारत। पंचाइत कुछ करेगी नहीं, क्योंकि वह तहजीब का चबेना करनेवाले छुटभइया-गुंडों का अखाड़ा हो गयी है। तो फिर एक ही रास्ता है—महाभारत। अब तुम्हें महाभारत भी तहज़ीब के खिलाफ़ लगने लगे, तो हे करम निखट्टू! जाओ लड़का-प्रानी लेकर रेल से कट मरो। और क्या?''

मिसिर अचानक चुप हो गए। उनके कलेजे से एक लम्बी साँस निकली और खो गयी, मगर वहाँ बैठे हर व्यक्ति को वह कहीं न कहीं छू भी गयी। मिसिर खलील वाले मामले को लेकर कितना मथते रहे हैं, यह किसी से छिपा नहीं रहा। विपिन को बहस का यह अन्त पसन्द नहीं था। मगर वह यह भी जानता था कि अब मिसिर इस मामले पर शायद ही कुछ कहें। मिसिर की यह एक अजीब आदत है। जब तक बातचीत सतह पर चलती रहेगी, वे एक कुशल तैराक़ की तरह धक्के दे-देकर लहरों के ऊपर लेटकर लहरों से खिलवाड़ करते रहेंगे, मुँह में पानी भर-भर कर कुल्लियाँ छोड़ते रहेंगे। मगर सहसा कहीं बातचीत का कोई अंश गले के नीचे उतर जाय तो मिसिर सुस्त होकर किनारे पर आकर बैठ जायेंगे। फिर न तो वे पानी की बात करेंगे, न तो तैराकी की। ऐसी स्थिति में बातचीत को चालू रखने के लिए जरूरी होता कि उसका रास्ता ही मोड़ दिया जाए।

''कहो जी देऊ।'' विपिन ने हंसते हुए पूछा—''क्या हाल है तुम्हारी

दूकान के। दवा-दारू की क़ीमत निकल आती है कि अभी 'वन-वे ट्रैफिक' ही जारी है। यह इकतरफा कारोबार कब तक चलेगा?''

''इसी बात पर आज मेरा बाबू जी से झगड़ा हो गया है विपिन बाबू। आप लोगों की बातें मैं सुन रहा था, मगर सच कहिए तो मैं अपने भीतर चलते हुए उस वार्तालाप में ही ज्यादा खोया-खोया रहा।''

झगड़ा का नाम सुनते ही मिसिर की समाधि टूट गयी—''तो तुझसे भइया का झगड़ा हो गया। बहुत अच्छे। बाहबा, ई तो बहुत ही बढ़िया बात हुई।''

सब लोग चेहरों पर जिज्ञासु मुस्कराहट लिये मिसिर जी की ओर देखने लगे—''क्यों? बढ़िया क्यों हुई?''

''कुछ आदमी ऐसे स्वभाव के होते हैं विपिन बाबू कि वे सारी दुनिया को अपने हिसाब से चलते देखना चाहते हैं। झब्बू भइया ऐसे ही आदमी हैं। उनको लगता है कि यह दुनिया सर्कस है और उन्हें हंटर देकर भगवान् ने इसके बीचोंबीच खड़ा कर दिया है। इसलिए उनका 'धरम' है कि वे कहीं कोई हरकत देखें तो फटाफट हंटर फटकारें। अनजाने-बेगाने लोग या तो यह फटकार चुपचाप सिर झुकाये सुन लेते हैं या फिर खौखिया कर अलग हट जाते हैं। देऊ के साथ मुसीबत यह है कि न तो यह फटकार सहेगा, न तो परे हट सकेगा। इसलिए झगड़ा हो जाना अच्छा है। क्योंकि कुछ दिन झब्बू भइया अपने हंटर की जाँच-परख करते हुए नये तरीक़े सोचेंगे और देऊ को फुर्सत रहेगी कि वह अपने हिसाब से अपना काम करता रहे। है कि नहीं।''

''मगर यह सब कब तक चलेगा।'' देऊ गंभीर साँस खींचकर बोला—''मैं मानता हूँ कि बाबू जी का सोचना भी ठीक है। क़स्बे में दूकान खोलता तो आमदनी ज़्यादा होती। अब यहाँ वह संभव नहीं है। गाँव घर की बात है। बेमुरव्वत होकर न तो रोगी से फ़ीस ही माँगी जा सकती है, न दवा का दाम ही। दवा का दाम सुनते ही रोगी के प्रिय जनों के चेहरों पर जो भाव उठता है, वह ज़हर खा लेने के लिए काफ़ी है।

कमर की टेंट खोलकर मुड़े-तुड़े नोट और साथ में बँधी थोड़ी सी रेज़गारी वे इस भाव से निकालते हैं मानो विवश होकर ठगे जा रहे हैं। कभी आँखें भरभरा आती हैं; क्योंकि वह समूची पूँजी इतनी भी नहीं होती कि एक दिन की दवा का दाम भी पूर सके। फिर एक चिन्ता यह भी कि कल की दवा के लिए क्या इन्तजाम हो सकेगा। न हुआ इन्तजाम तो....? तो शायद उनकी आँखों में बीमार बच्चे या बच्ची की मासूम दर्द से भरी आँखें नाच जाती होंगी—मैं सच कहता हूँ विपिन बाबू, यह दृश्य जब भी सामने आता है, लगता है मैं वहाँ से भागकर कहीं छिप जाऊँ। बाबू जी इससे चिढ़ते हैं। कहते हैं यह भावुकता है। डाक्टर को यह सब नहीं सोचना चाहिए। यह सब सोचेगा तो दूकान बन्द करनी होगी। उनका कहना भी ठीक है। मगर भावुकता कोई टोपी तो नहीं कि सिर पर से उतारकर खूँटी पर टाँग दूँ।"

"आज क्या हुआ ?" जग्गन मिसिर ने मुस्कराते हुए पूछा।

"हुआ क्या। अवराँई का अहीर है लछिमन। महीने भर से दवाई चल रही है उसकी। कमर में दर्द है। उठा-बैठा नहीं जाता उससे। इधर गाँवों में जलवायु के कारण यह रोग बहुत होता है। सोचा कि इसकी दवाई भी होगी, और मैं भी इस रोग का कुछ अध्ययन करूँगा। बाबू जी ने उसे अपना 'टिक्कस' थमा दिया और भाग खड़ा हुआ। मैंने पूछा कि लछिमन कहाँ गया तो कहने लगे, लछमिनियाँ की माई को खोजने गया है। उनको लौकी और दहेंड़ी-भर दही फ़ीस में लेना कबूल नहीं है। वह तो कहिए कि इतना भी वह दे जाता है। दूसरों के घर तो न दही है, न लौकी ही। देहात का कोई भी आदमी खुशी-खुशी दवा कराने नहीं आता। दोनों जून खाना भी नसीब नहीं होता। उससे कुछ बचे तो बदन का चीकट-फटा कपड़ा बदलें कि दवा में पैसा लगाकर नंगा औघड़ बनें।"

विपिन चुपचाप ये बातें सुन रहा था। यद्यपि देवनाथ ये सारी बातें इस ढंग से कर रहा था कि जैसे तटस्थ द्रष्टा हो, मगर विपिन जानता है कि देवनाथ जैसे भावुक और उदार व्यक्ति के लिए भी इस स्थिति को दूर तक खींच ले जाना बहुत मुश्किल है। देवनाथ को गाँव में डिस्पेंसरी खोलने की सलाह उसी ने दी और यह सच है कि उस समय उसे यह अनुमान नहीं था कि इस हालत का सामना करना होगा। यह सब कुछ काफ़ी भारी हो रहा था।

"क्यों जी देऊ।" विपिन इस भारीपने को स्थगित करने की ग़रज़ से बोला—"कल्पू भाई का क्या हाल है ? आजकल उनकी दवा तो तुम्हीं कर रहे हो ?"

कल्पू के लिए बातचीत के दौर का यह बदलाव कोई ज़्यादा संतोषदायक नहीं लगा। उसने गंभीर साँस ली—"दवा पड़ रही है विपिन बाबू ! मगर बंजर में बीज डालने की तरह ही समझिए।"

"हुआ क्या है ?"

"एक-दो रोग हों तो न नाम गिनाऊँ। बहरलाल तिमंज़िले पर तपेदिक़ है। सारा फेफड़ा ख़राब हो गया है।"

"दो-मंज़िले पर क्या है भई ?" जग्गन मिसिर बोले।

"दो मंज़िले पर बेहद कमज़ोरी और उसके चलते जीने की अनिच्छा।"

"और पहली मंज़िल पर ?"

"बुरी सोहबत से भयानक कमजोरी और नपुंसकता। फिर पढ़ी-लिखी बीबी के कारण उत्पन्न हीनता-ग्रन्थि और उसके कारण उत्पन्न दुःस्वप्नों के भीतर लम्बे अरसे तक स्वास्थ्य का टूटना।"

"तो मतलब यह कि साले सिरिया-छविलवा जो कहते थे, वही ठीक है। यानी यह कि उसकी औरत ने साले को झोंक दिया था।" जग्गन मिसिर गर्दन झुकाये-झुकाये कह गए।

"नये लोगों में यह आम रोग होता जा रहा है मिसिर जी।" काफ़ी देर की चुप्पी के बाद शशिकान्त बोला—"अख़बारों, दीवारों, सार्वजनिक स्थानों, मकानों, गलियों के मोड़, सड़कों के किनारों, बाज़ारों, चौराहों, सर्वत्र, सब पर आपको नाना आकार और रंगों वाले अक्षरों में लिखा मिलेगा—नामर्दी, कमज़ोरी, नपुंसकता का शर्तिया इलाज। या फिर नाना

प्रकार की आंगिक बीमारियों की अचूक चिकित्सा के इश्तहार !! ग़नीमत कहिए कि एक ख़ास तरह का वातावरण होने के कारण गाँव की दीवालें इस बदसूरत हमले से बची हुई हैं। ऐसा नहीं कि गाँवों में ऐसे इश्तहारों से फ़ायदा या नुकसान उठानेवालों की संख्या कम है। बल्कि ज़्यादा ही है, पर यहाँ वैसी दीवालें कम हैं और उन पर बेपर्दगी के साथ इलाज का साक्षी बननेवालों में हिम्मत भी। दस-बारह साल से लेकर अठारह-बीस तक के गँवई नवयुवकों के चेहरों पर अचानक मकड़ी के जाले इतने घने क्यों हो रहे हैं ? साफ़ हवा-पानी में पलनेवाली स्वच्छ चमकीली आँखों में सहसा स्थिर बलगमी सफ़ेदी और निराशा की बेबसी क्यों आ रही है ? ताज़े ख़ून के हिलोरों से खिलनेवाले गुलाबी गालों पर बरसाती मेढ़कों की खाल की तरह की सड़ी-सड़ी पियराई क्यों छा रही है ?''

''आपका कहना बिलकुल सच है मास्टर साहब !'' देवू बोला—''मैं भी पहले यही समझता था कि इस तरह के रोगों से हमारे ग्रामीण भाई बचे रहते हैं। पर मैं तो यहाँ एकदम उल्टी स्थिति ही देख रहा हूँ। यह ज़रूर है कि यहाँ लज्जा अब भी बची है। इस कारण यहाँ के रोगी ऐसी बातें छिपा लेते हैं। अब कल्पू को ही देखिए। मेरे पास जब पहली बार आये तो बाक़ी सब दुख-सुख तो सुना गए, पर इन सबके मूल में जो बात थी, वही छिपा गए।''

''यह छिपाना और दुराव ही यहाँ सबसे बड़ी बीमारी है डाक्टर साहब !'' शशिकान्त के शब्दों में एक ख़ास तरह का विश्वास था, जो सत्य को प्रायः नजदीक से देखनेवालों की वाणी में अनजाने आ जाता है। उसने कहा—''गाँवों के जीवन का आधा से अधिक हिस्सा इस दुराव की गुफा में खो गया है। अधेड़ और बड़े-बूढ़ों के जीवन का अधिकांश खेतों, खलिहानों, दरवाज़ों और घरों में खुला रहता है। उनका बहुत कम ऐसा है जो छिपा रहता है, और उतना हर सभ्य समाज में छिपा रहना भी चाहिए, पर किशोर और नवयुवकों के जीवन का काफ़ी कुछ अँधेरी चादर में लिपटा रहता है। यह अँधेरी चादर लगातार घनी होती रही है। इसमें

लोग नाना कारणों से लिपटते रहे हैं, कुछ जानकर, कुछ बेबसी से और कुछ फँसकर। फँसने के बाद कुछ निकलना भी चाहते हैं, पर उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। ये तन और मन को इस अदृश्य प्रेत के हाथों सौंप कर बेबस घुल-घुलकर अपना सब कुछ गँवा बैठते हैं।''

''कुछ और साफ़-साफ़ कहिए मास्टर साहब।'' जग्गन मिसिर ने कम्बल की घोघी ठीक की—''बुझव्वल मत बुझाइए। कम से कम आप तो दुराव की गुफा से बाहर आइये।'' मिसिर हो-हो करके हँसे। ''अरे भाई, इसमें लजाने की क्या बात है ?''

शशिकान्त धीरे से मुस्कराया—''मैं आपको अपना एक अनुभव सुना रहा हूँ। इससे अधिक शायद मैं नहीं कह पाऊँगा। मैं चार वर्षों तक बजरडीहा के आदर्श बेसिक स्कूल में रहा। वहाँ कक्षा चार का एक विद्यार्थी था गोपाल। वह एक बहुत सम्पन्न गृहस्थ परिवार का लड़का था। काफ़ी लाड़-प्यार में पला। दस-ग्यारह की उम्र में भी वह बारह-चौदह का किशोर मालूम होता। बहुत आकर्षक लड़का था। मेरा मतलब आप समझ गये होंगे। एकाध लड़के किसी गाँव में कभी-कभी ऐसे निकल आते हैं, सुन्दर, सुघड़, चंचल कि बरबस आपकी आँखें खिंच जाती हैं। एक अजीब तरह का मिला-जुला भाव उठता है; कुछ वात्सल्य, कुछ पवित्रता, कुछ स्पर्शेच्छा का, जैसा किसी बहुत ख़ूबसूरत, गँधीले, मांसल पंखुड़ियों वाले फूल को देख कर उठता है। एक अजीब लुनाई होती है ऐसे बच्चों में, जो किस अंग में कहाँ है, यह तो समझ में नहीं आती, पर वह चारों ओर से मिल-मिला कर इस कदर उभरती है कि देखनेवाले के मन-प्राण को एक शीतलता से नहला जाती है।''

''आपने कल्पू को बचपन में नहीं देखा पांडे जी। वह भी ठीक वैसा ही लड़का था जिसे देखकर आँखें जुड़ा जाती थीं। बहुत सुन्दर बहुत नटखट। हाँ।'' मिसिर बोले।

शशिकान्त मिसिर की बात पर एक बेबस आत्मस्वीकृति की हँसी हँस कर बोला—''उस लड़के के प्रति मेरे मन में बड़ी आत्मीयता थी। मुझे

लगता था कि यह बड़ा होनहार बालक है। और एक अध्यापक के लिए इससे बढ़कर खुशी की बात क्या हो सकती है कि नियति किसी बहुत बड़े इन्सान के निर्माण के बीज-बिन्दु उसके हाथों सौंप दे। एक बेशकीमत कच्ची मिट्टी को रूप देने का सौभाग्य किसी-किसी अध्यापक को ही मिलता है। बड़ी-बड़ी संभावनाएँ थीं मुझे उस बालक से। उसने कच्चा पाँच पास किया। बजरडीहा में ग्रैंड ट्रंक रोड के एक तरफ प्राइमरी स्कूल है, दूसरी तरफ जूनियर हाईस्कूल। गोपाल ने सिर्फ़ सड़क पार किया था। मैं जूनियर स्कूल के अध्यापकों से भी उसकी गतिविधि के बारे में हमेशा पूछता रहा।

"आपको आश्चर्य होगा मिसिर जी कि जब वह कच्चा सात में था, एक बार पन्द्रह रोज तक स्कूल नहीं गया और मेरे एक परिचित अध्यापक ने, जो उसके बारे में मेरी दिलचस्पी से अभिज्ञ थे, बताया कि वह लड़का बुरी सोहबत में पड़कर बिल्कुल ख़राब हो गया है। अब तो शायद आप उसे देखकर पहचान भी नहीं पायें। उस रात मैं बहुत परेशान रहा। मुझे लगता है कि यह मेरी एक बुरी आदत है। मैं इसे अब रोग कहने लगा हूँ। इस दुनिया में सिर्फ़ अच्छी और मेरी मनचाही बातें ही हों, यह कोई ज़रूरी तो नहीं है। जो होता है, हो। मैं एक अदना मास्टर दुनिया को अपनी गति से चलने से रोक सकता हूँ क्या? पर मेरा मन नहीं मानता और मैं वाहियात बातें सोच-सोचकर मुफ़्त में सिरदर्द लेकर बैठ जाता हूँ। मैं गाँव जाकर उस लड़के से मिला। बड़ी देर तक उसकी आँखें ही नहीं उठीं मेरी ओर। और जब उठीं तो सच में रोने-रोने को हो आया। उसका चेहरा बिलकुल पीला पड़ गया था। आँखों के कोटर उभर आये थे। निचले पपोटे के पास अंगुली बराबर मोटी सियाही फैल गयी थी। उसकी आँखें निश्चल और चमकहीन हो गयी थीं।

"मैंने पूछा—भइया ई का कर लिया तुमने?

"वह कुछ नहीं बोला। मैं सारी संभावनाओं की स्मृति-चर्चा करने लगा तो वह रो पड़ा।

"बड़ी देर के बाद बोला—पंडित जी, आप नाहक दुखी होते हैं, मान लीजिए कि आपका गोपाल मर गया।

"मैं कलेजे में घाव लिए उसकी ओर देखता रहा। मैंने कहा, आओ चलो स्कूल की ओर हो आएँ। बहुत घुमा-फिराकर मैंने उसका भेद जानना चाहा और जो कुछ जान सका, वह मनुष्यता के प्रति निराश होने के लिए काफी था।

"उत्तरी टोले का एक लड़का था शिवराम। बी० ए० पास। पढ़ना वह आगे और भी चाहता था। पर माँ-बाप उसे अपनी मशक्कत की कमाई आवारागर्दी के लिए देने को तैयार न थे। बहरहाल वह पढ़ा-लिखा स्नातक अपने अहं को तुष्ट करने के लिए गाँव का इस्तेमाल करने लगा। अपनी उमर के दो-चार क्रुद्ध नवयुवकों को मिलाकर उसने एक दल बनाया। इस दल का मुख्य कार्य था चोरी-चोरी पकी फसलें काटना, लोगों के खलिहानों से अनाज के बोझ उठवाना, अपने घरों में चोरियाँ करना, और फिर इस तरह जो कुछ मिले, उससे नशा करना और जुए खेलना। वे शराब नहीं पीते थे, पर गाँजे की गंध से उनके मुँह और नथुने महँकते रहते थे। शिवराम कुछ पढ़ा-लिखा था इसलिए वह शहरी रुचि से भी वाक़िफ़ था। साबुन, ब्लाउज, पीतल के झुमके और बुन्दे, लेमनजूस की मिठाइयाँ, बालों के पिन, और कुछ इस तरह की और छोटी-मोटी चीज़ों के द्वारा गाँव की बहू-बेटियों का फुसलाना-फँसाना उसका सर्वप्रिय कार्य था। जो इनसे खिंचकर उसका मन-चाहा पूरा नहीं करतीं, उनके साथ दूसरे तरीक़ों का प्रयोग होता। यानी बदनामी, खुराफ़ात और स्कैंडलबाजी। और जो एक बार इस दल के चंगुल में फँसा, वह अपनी इज़्ज़त और भय के कारण कभी उस अंध गुहा से बाहर नहीं आ सका।

"बातचीत के सिलसिले में मेरी किसी बात ने शायद गोपाल के भीतर सोई आग को कुरेद दिया था। वह बोलने लगा तो राख की परतें बिखर-बिखरकर हटती गयीं और वह सब कुछ, जो जानता था, कह गया। मैंने उस लड़के को कभी ग़लत नहीं समझा था। उसके भीतर एक अजीब तरह

की तड़प थी। यद्यपि वह बीच के अरसे में मसलकर मौन हो गयी थी, पर ज़रा सा स्पर्श पाते ही फिर कौंध गयी।

"शिवराम अचानक गोपाल की ओर ममता से भर गया था। उसने उसके दिमाग़ की तारीफ़ की। उसके होनहार होने की भविष्यवाणी की। कथा-कहानियों की किताबें, उपन्यास पढ़ने को दिये। घनिष्ठता बढ़ती गयी और गोपाल को लगता रहा कि शिवराम से बड़ा उसका कोई दूसरा शुभचिन्तक ही नहीं है। मिठाइयाँ और साबुन की ख़ुशबू शिवराम की उदारता, मित्रता और प्रेम के प्रतीक के रूप में गोपाल की आत्मा, प्राण, मन पर छाती रही। अक्सर स्कूल से ख़ाली होने पर गोपाल शिवराम के साथ रहने लगा और उसके विकृत अहं और दानवी भूख का शिकार हो गया। ज्यों-ज्यों वह इस दलदल में धँसता गया, गन्दे कीड़े उसके तन-मन पर रेंगते रहे और धीरे-धीरे वह उस दल का एक नियमित सदस्य बन गया। शिवराम की सारी आदतें उस दल का उद्देश्य थीं और उसके सारे हथकंडे गुप्त विधान। गोपाल को तो न अपने शरीर की चिन्ता रही, न मन की, न आत्मा की। कच्ची मिट्टी और कच्चा रस, दोनों कितनी सावधानी की अपेक्षा रखते हैं, पर यह सब गोपाल की बुद्धि के परे का प्रश्न था, और अब वह इस हालत में पहुँच गया है कि चलने पर आँखों के आगे चिनगारियाँ टूटती हैं। कमर में दर्द होता है। दुःस्वप्नों ने रात की नींद छीन ली और असामाजिक कार्यों ने दिल का चैन। वह एक प्रेत की तरह जी रहा है। दुःख और चिन्ता से टूटकर ही आदमी प्रेत बनता है। पर जब हो जाता है तो उसकी बुद्धि का रहा-सहा संतुलन भी हवा हो जाता है। गोपाल ने अपने साथ हुए अन्याय और अपमान का बदला लिया, अपने से छोटे मासूम छोकरों और लड़कियों से। पहले वह सिर्फ़ प्रेत ही था, अब वह प्रतिकार की भावना में जीनेवाला आत्म-हत्यारा भी बन गया।

"मैं यह सब सुनकर उस छोकरे की ओर देखता रह गया। मैं जानता था कि आज उसके अन्तर्तम का कोई भाग, ताज़ा ज़ख्म, कोई सचेत हिस्सा छू गया है, इसलिए इसने बड़ी आसानी से उस वीभत्स अदृश्य पर्दे को

चीर दिया, जो इसके समूचे अस्तित्व को लपेटे हुए था। पर हवा थिर होगी, फटा कुहरा फिर घना होगा तो थक्के पर थक्का जमा हुआ, कुछ न होकर भी सब कुछ सा लगनेवाला, अदृश्य रूपाकार उसकी आत्मा को फिर दबोच लेगा। तब वैतरणी से निकला हुआ गोपाल पुनः उसी मगर-मच्छों से भरी दरिया में गिर जायगा। बचाव सिर्फ़ एक है कि इस लड़के को कहीं और भेज दिया जाए, पर क्या उसके माँ-बाप इसके लिए तैयार होंगे?"

शशिकान्त के इस बयान ने झब्बूलाल के बरामदे में मौन का एक अजीब चँदोवा टाँग दिया था, जिसके नीचे बैठे हुए लोग इस डर से गर्दन नहीं उठा रहे थे, मानो ऊपर टँगा आवरण किसी समय भी किसी के सिर पर गिर सकता है।

"मुझे तो लगता है मास्टर साहब।" मिसिर ने लम्बी साँस खींचकर कहा—"यह क़िस्सा बजरडीहा का नहीं, करैता का है, लग रहा है आप विवाह के पहले वाले कल्पू की ही कहानी सुना रहे हैं। कल्पू के बारे में मैंने उस तरह से तो कभी नहीं सोचा, जैसा आप बजरडीहा वाले लड़के के बारे में बता रहे थे। पर इतना मैं ज़रूर जानता हूँ पाण्डेय जी, कि कल्पू कि ज़िन्दगी ख़राब करने में उसके घर वालों का भी काफ़ी हाथ रहा। नये रईसों को पैसा ख़र्च करने नहीं आता। लड़के को दुलार करने का मतलब यह नहीं होता कि उसे आवारों के साथ धमा-चौकड़ी करने को छोड़ दिया जाय। मैं हमेशा कल्पुआ को हरिया, सिरिया और छबिलवा के साथ देखता था, तभी मैं जान लिया कि यह लड़का गया काम से।"

"सवाल ख़ाली कल्पू या हरिया-सिरिया-छबिलवा का नहीं है मिसिर जी, सवाल तो पूरे वातावरण का है।" विपिन ने कहा—"समझ में नहीं आता आख़िर गाँवों में इतनी गन्दगी कहाँ से आ गयी? ऐसा दमघोंट वातावरण क्या पहले भी था, या अभी हो गया है। जिधर देखिए, बस अनैतिक सम्बन्धों की ही चर्चा है। आख़िर लोगों को क्या हो गया है?"

"कुछ न कुछ ऐसा तो हमेशा ही था विपिन बाबू।" मिसिर बोले—"मगर उस समय का तरीक़ा कुछ अलग था। ऐसा टुच्चापन और बेहूदगी

नहीं थी। लोग मुहब्बत करते थे, ख़ूब जमकर, और उसके लिए सब कुछ करने-सहने को तैयार भी रहते थे। गला भी कट जाये तो पीछे नहीं लौटते थे। इसी गाँव में लोगों ने औरतें लाकर घर में बैठा लीं। बिरादरी से लड़े, कुजात हुए, फिर धीरे-धीरे मामला दब-दबा गया। भोज-भात देकर हुक्का-पानी ज़ारी हो गया। जो ऐसा नहीं कर सके, उन्होंने आत्म-हत्याएँ कर लीं। लड़कियाँ कुएँ-पोखरों में डूबकर, रसरी का फन्दा लगाकर मर गयीं। कितने आदमी रेल के नीचे कट गए। यही उस समय का चलन था। जो किया, उसे अन्त तक स्वीकार करने को तैयार रहना, चाहे जो बीते। ई नहीं कि खेखर की तरह मुँह बनाये, बीड़ी सुड़कते मजनू बने गली-गली घूम रहे हैं। दुअन्नी-चवन्नी लेकर 'इशक' कर रहे हैं। ये साले दुकड़हे क्या ऐयाशी करेंगे। किसी के बदन में एक तोला ख़ून नहीं, हाड़ पर छँटाक भर गोश्त नहीं। ये तो कुत्ते हैं ससुरे, बिना कुछ सोचे-समझे इधर-उधर 'कुकरलेढ़' लगा लेते हैं। ये तो कुछ समझते ही नहीं। न अपने को, न दूसरे को।"

"यही तो अवमूल्यन का रूप है। ग़रीबी हर चीज़ का अवमूल्यन कर देती है।" शशिकान्त बोला—"पहले शोषण था, अत्याचार था, गरीबी और जहालत थी। पर दिमाग़ में कुछ ऐसा भी था, जो इन्सान को सीमा लाँघने से रोकता था। अब वह अंकुश नहीं रहा। न ईश्वर का डर है, न इज़्ज़त और प्रतिष्ठा के जाने का ख़तरा है। न ज़मींदार का डर है, न समाज का। अब आदमी सचमुच स्वतंत्र है। बिल्कुल स्वतंत्र। पर लोग यह भूल जाते हैं कि बन्दर के हाथ में चाकू का रहना कितना ख़तरनाक है। स्वतंत्रता बिना अक़ल के आदमी के हाथ में दुधारी तलवार की तरह होती है मिसिर जी, जो दूसरे पर वार कम करती है, अपने पर ज़्यादा। ग़रीबी पहले से भी बढ़ गयी, आबादी की ही तरह। इन्सान है कि पहले से तंग हो गया; दिमाग़ से, मन से, तन और कर्म से। जिधर देखिये आपको दमघोंट सन्नाटा मिलेगा। सभी जैसे ऐंठनों को बीच में डाल दिये गये हैं। और कसते चले जा रहे हैं, मगर न तो उन्हें कहीं परेता दीखता है

और न तो ऐंठनेवाला व्यक्ति ही। इस स्थिति में टूटे-हारे लोगों को क्षणिक मन-बहलाव के लिए कुछ चाहिए। बीमार आदमी को सहज सामान्य खाना अच्छा नहीं लगता। उसे चटपटी चीज़ें चाहिए। वह चाट खायेगा, मिर्चे से जीभ जलायेगा। और इस जलन और लार से संतुष्ट होगा। यही हाल नये लोगों का समझिये। अनैतिक अमानवीय सम्बन्धों से इन्हें इसी तरह की तुष्टि मिलती है, जैसे कुत्ता सूखी हड्डी चचोरता है। जीभ कट जाती है, और उसे अपना ही ख़ून स्वादिष्ट लगने लगता है। वह समझता है कि यह स्वादिष्ट तरल पदार्थ हड्डी से ही निकल रहा है और वह घंटों बैठकर इसे चूसता रहता है।"

"अच्छा भाई, हम तो अब चले। झब्बू भइया आते ही होंगे। घर में भी धीरज का पानी उबाल ले रहा होगा।" जग्गन मिसिर उठे और अपना कंबल ठीक करके बरामदे के दरवाज़े पर आ गये।

महफ़िल ख़ूब जम गयी थी। पर जग्गन मिसिर को रोकने की उत्सुकता किसी ने न दिखायी। शशिकान्त शीशी को हाथ में लिये उलट-पुलट रहा था।

"कहिए पांडे जी।" देवू बोला—"आप भी चले?"

"हाँ, अब चलूँ। मेरे तो न घर है न द्वार, पर घर-द्वारवालों के बीच में अड़े रहा भी तो ठीक नहीं।" वह मुसकराते हुए चारपाई से उठ गया।

"अच्छा जी देवू।" विपिन भी उठ पड़ा—"तो मैं भी चलूँ अब।"

● ●
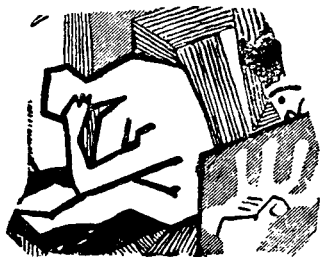
चौबीस

गाँव से बाहर, तालाब की ओर जानेवाले रास्ते पर घना अँधेरा था। सन्नाटा ऐसा कि अपने को ही अपनी साँसें अशान्त करने लगें। शरीर में ज्वरांश होने पर जाने हवा कैसी-कैसी लगती है। एक अजीब तरह का बेगानापन अपनी ठंढी उँगलियों से सारे बदन को छूने लगता है। ज्वर हमेशा ही शशिकान्त को अनुभवी गुरु के समान कई-कई अबूझ रहस्य समझा जाता है। ताप के कारण या शरीर की चेतना से चंचलता का अंश बुझ जाने के कारण बुद्धि प्रश्नों के तल से टकराने लगती है। मन की उलझी बातें भाषा और शब्दों में अपने आप बँधती चली जाती हैं। एक हल्का सा आवेश भी हो आता है शायद, वरना वह देवू के दरवाज़े पर इतना कुछ कैसे बक जाता। यह सारा कुछ उगल देने के बाद जैसे पित्त शान्त हो जाता है। मन की गति थम जाती है।

सामने ही स्कूल की इमारत है। रात को स्कूल पर हमेशा सन्नाटा रहे, यह शशिकान्त को अच्छा लगता है। लालटेन की हल्की रोशनी में अख़बार बाँचना या फिर कोई पुस्तक खोलकर लेटे रहना, खुद में जैसे बहुत बड़ी उपलब्धि हो, क्योंकि यह क्रिया इतने सचेत ढंग से होती है कि

अचानक मनुष्य अपने को ही प्यारा-प्यारा लगने लगता है। शशिकान्त इस स्वयंकृत स्वयं के प्यार से इतना सन्तुष्ट होता है कि अँधेरे उठकर फुलवारी में टहलने लगता है।

जब से वह आया है, स्कूल की फुलवारी का नक्शा बदल गया है। मुंशी जवाहिरलाल का प्रभाव उत्तरवाली तीन क्यारियों पर स्पष्ट अंकित है जिनमें से एक में मिर्चे के पौधे लहराते हैं। दिन होता तो शायद हरी-हरी मिर्चों की फलियाँ भी नज़र आतीं। दूसरी क्यारी में गोल बैंगन हैं, जिनका भुरता जवाहिरलाल जी का प्रिय पदार्थ है। और तीसरी क्यारी में बालिश्त बराबर ऊँची-ऊँची मेड़ों के भीतर लहसुन की पोटियाँ छिपी हैं, जिनका प्रचुर सेवन करके मुंशी जी झब्बूलाल उपधिया की 'बैदगीरी' का बखान करते रहते हैं।

मुंशी जी का बस चलता तो वे शशिकान्त के सारे श्रम के साथ पूरी फुलवारी को तीन ही क्यारियों में बँटवा देते। पर शशिकान्त ज़िद पर अड़ गया कि बाक़ी हिस्से में वह अपने मन के फूल लगायेगा।

"आप क्या पूजा-पाठ करते हैं जो फूल के लिए व्याकुल हैं?" मुंशी जवाहिरलाल ने अफसोस का इज़हार करते हुए कहा था—"आप लोगों के लिए भगवान् से क्या वास्ता। फिर फूल के लिए इतनी ज़िद क्यों?"

अब मुंशी जवाहिरलाल को कौन समझाए कि फूल का मतलब क्या है। फिर इसके लिए जवाहिरलाल को ही दोष देने से क्या फ़ायदा? अक्सर ही लोगों को अब फूलों से कोई प्रेम नहीं रहा। शायद वर्ष में एकाध बार देवी-पूजा के अवसर पर ओड़हुल या कनेर की एकाध इकहरी माला मल-होरी दे जाता है। वरना फूल अलग और इन्सान अलग। फूल रहे भी कहाँ? तालाब के भीटे पर दो-चार पेड़ कनेर हैं। उधर हनुमान जी के पास केले की गाछों के साथ शायद एक पेड़ सहजन का है। भीटों पर खेलनेवाली लड़कियाँ कभी कनेर के फूलों को कान-नाक में ज़रूर खोंस लेती हैं, वरना वे उपेक्षित झर जाते हैं। तालाब की लहरें उन्हें काई के साथ धकेलकर किसी कोने में लगा आती हैं। यह तो अपनी प्रकृति है,

रस-गंधा धरती, जहाँ फूलों का खिलना बन्द ही नहीं होता। सिवान में फसलों के रंग-बिरंगे फूलों की तो बात ही अलग, छवरों, मेड़ों और भीटों पर फैली झरबेरी की गंध से भी नाक भर जाती है। मगर सुगंध की चेतना बची हो तब न। फूलों के बारे में तो जैसे लोगों ने अब सोचना ही बन्द कर दिया है।

बहरहाल, शशिकान्त ने ज़िद करके गुलमेंहदी और गेंदे के पौधे लगवाए थे। गुलमेंहदी के पौधे तो खूब फूल-फूलकर सूख गये। कुछ फलियाँ ज़रूर बची हैं, जिन्हें बच्चे तोड़कर हथेली पर रखते हैं तो वे ऐंठकर फूट जाती हैं। उनकी यह करतूत देखकर मासूम चेहरे हँसी से खिल जाते हैं, गेंदे ज़रूर हैं, अभी भी फूल रहे। मगर जो फूल शशिकान्त को पागल कर जाता है, वह है मोगरा। इसकी झाड़ों से दो क्यारियाँ ठसाठस भरी हैं।

वह जब भी फुलवारी में टहलता है, मोगरे की मादक मीठी गन्ध कलेजे में उतर जाती है। पता नहीं कब का अनुराग है इस फूल से उसका। हर इन्सान का शायद अपना एक फूल होता है, पर अपने अस्तित्व की ही तरह अपने फूल को भी अक्सर लोग अलगा नहीं पाते।

एक दिन सुबह उठा तो देखा, मुंशी के सिरहाने टीन की कटोरी में मोगरे के फूल रखे हैं।

"क्यों मुंशी जी ?" उसने हँसते हुए पूछा—"आपके सिरहाने मोगरे का फूल ?"

"क्यों नहीं पाँड़े जी।" मुंशी होंठों को पूरी तरह फैलाकर बोले—"आपका कुछ तो असर होना ही चाहिए। लेकिन भाईजान, मैं इन्हें सिरहाने इसलिए नहीं रखता कि अच्छे-अच्छे ख़्वाब आयें।" उन्होंने फूलों की कटोरी उठायी—"देखते हैं न आप यह कटोरी ? इसमें पानी है ठीक फूलों के नीचे। यही पानी चुनौटी में डाल लेता हूँ। इससे सुरती थोड़ी ख़ुशबूदार हो जाती है।"

"हूँ।" शशिकान्त की इच्छा हुई कि वह मुंशी के मुँह पर थूक दे।

मुंशी जवाहिरलाल की याद आते ही शशिकान्त को लगता है कि

अचानक उसका बुख़ार बढ़ गया है। इस मुंशी के मारे रात को भी चैन नहीं। कच्चा पाँच के हर लड़के से महीने में एक रुपया वसूल लेंगे, किरासन तेल के लिए। दो-दो रुपया शुरू में लिया था लालटेन और शीशे के लिए। घर से खा-पीकर लड़के सात बजे ही आ जाते हैं। बीचोंबीच बरामदे में एक के ऊपर एक, तीन ईंटें रखकर लालटेन को आवश्यक ऊँचाई दी जाती है। फिर लड़के चारों ओर टाट बिछाकर बस्ता लिये बैठ जाते हैं। मुंशी जी उस समय या तो बट्टी सेंकते हैं या भुरता बनाने की तैयारी करते हैं। बीच-बीच में बैंगन का छिलका उतारते-उतारते वे इन छोकरों को पढ़ाई की सारी पेचीदगियाँ भी समझाते जाते हैं। उनके बार-बार समझाने पर भी जब कोई गावदी छोकरा (अक्सर वही, जो किरासन तेल का पैसा या फिर मुंशी की फ़रमाइश का कोई सामान घर से लाने में देरी करता है) उनकी बात समझ नहीं पाता, तो उसका भी भुरते के साथ-साथ ही भुरता बनता चलता है।

मुंशी जी खा-पीकर बग़ल वाली कोठरी में अपनी चारपाई पर अंडस-मंडस करते हैं। उनका रमचेलवा खैनी मलकर उनके सामने पेश करता है। वे एक ही साँस में उसे असीसते हैं, साथ ही फुसुर-फुसुर बात करने वाले किसी छोकरे को सम्बोधित करके उसकी माँ के साथ अपने सम्बन्धों का नया पुराण भी बाँचते चलते हैं। यह सब कुछ इतने सधे ढंग से होता है कि इसमें किसी भी प्रकार का कोई अनौचित्य नज़र नहीं आता। पर ऐसे मौक़े पर पता नहीं क्यों शशिकान्त को लगता है कि उसे बरामदे से अपनी चारपाई उठाकर कुछ देर फुलवारी के पास बिछा लेनी चाहिए। और जब लड़के अपनी योग्यता को बढ़ाते-बढ़ाते थककर सो जायँ तो फिर ओस से बचने के लिए बरामदे में आ जाना चाहिए। कल बुख़ार होने से वह ऐसा नहीं कर सका था, पर आज चाहे टायफ़ायड या निमोनिया ही क्यों न हो जाय, वह बरामदे में नहीं सो पायेगा।

एक हाथ में टार्च और दूसरे में दवा की शीशी लिये जब शशिकान्त स्कूल के बरामदे में घुसा तो उसने राहत की साँस ली, क्योंकि अपनी योग्यता-वृद्धि के बारे में आज लड़के काफ़ी जल्दी सन्तुष्ट हो गये थे और आधे बरामदे में टाट बिछाकर वे जाड़े के ओढ़नों में पूरी तरह खो गये थे।

शशिकान्त एक क्षण इन जीवित ताबूतों को देखता रहा। उसने एक लम्बी साँस ली और अपनी चारपाई के पास आकर खड़ा हो गया। दवा की शीशी उसने सिरहाने की नंगी आलमारी में टिकायी और बिछौने को ठीक किया। चारपाई पर बैठकर उसने पैताने रखी रज़ाई को ओढ़ने के लिए तैयार किया। तभी उसे लगा कि बिना पानी पीये नींद नहीं आयेगी। उसे बहुत तेज़ प्यास नहीं थी, पर इतनी चटक ज़रूर थी कि लाख सोने की कोशिश के बावजूद भुलाई नहीं जा सकती। वह ज्यों-ज्यों अपने प्यासे होने के ख्याल को दिमाग़ से अलग करने लगा त्यों-त्यों प्यास बढ़ती लगी। हारकर उनसे रज़ाई को ज्यों-त्यों रहने दिया और बरामदे के कोनों पर टार्च की आँख गड़ा-गड़ाकर देखता रहा। कहीं बाल्टी न दिखी। यह मुंशी भी एक शंकालु आदमी है। पता नहीं तीन टके की पुरानी बाल्टी चुराने की किसने क़सम खायी है।

"अरे भाई, कोई जग रहा है क्या?" उसने ज़ोर से आवाज़ दी—"ओ सोनेवालो!"

सोनेवालों में से कोई भी हिला-डुला नहीं। शशिकान्त को लगा कि तेज़ आवाज़ के सर्द झोंकों से बचने के लिए एक छोकरे ने सिर के पास उठी रज़ाई को धीरे से समेट लिया है। सोचने पर उसे ख़ुद लगा कि सोये लड़कों को जगाना ठीक नहीं है। रात का समय है। वह ख़ुद कुएँ से पानी काढ़ लायेगा, पर बाल्टी तो मिले। बाल्टी मुंशी ने अपनी कोठरी में बन्द कर रखी है।

'हे मन, अब सोओ।' उसने सोचा और तकिये के सहारे उठंग कर हथेलियों को एक में एक मिलाकर सर के पीछे टिका लिया। कुछ

क्षणों तक वैसे ही पड़े रहने से मानो गला और भी चटकने लगा और वह कूदकर खड़ा हो गया—"अब जगाना ही होगा मुंशी को।"

एक हाथ में टार्च पकड़े, लड़कों के सर्प-व्यूह के बीच रास्ता निकालते वह कोठरी के पास पहुँचा, तो सहसा रुक गया। फिर हिम्मत की और कुंडी खटखटा दी। कुछ भी न हुआ। इस बार कुंडी जोर से खटकी पर भीतर की चेतना अबुद्ध ही रही।

"हुँह, घोड़ा बेचकर सोते हैं मुंशी जी भी।" वह बुदबुदाया और कुंडी पकड़कर पीटता रहा—"अरे मुंशी जी! मुंशी जी!!"

मुंशी जी बहुत दूर से लौटते हुए बोले—"क्या आफ़त है।" दरवाज़ा खुला तो उसकी संध में अपनी गर्दन डालकर मुंशी किटकिटाये—"एक क्षण चैन से सो पाना भी मुश्किल है। कौन सा पहाड़ टूट रहा है आप पर कि सारे गाँव को जगाने की कोशिश कर रहे हैं।"

शशिकान्त अपराधी की तरह खड़ा रह गया—"ज़रा बाल्टी चाहिए मुंशी जी! माफ कीजियेगा, बहुत तेज़ प्यास लगी है।"

मुंशी बुदबुदाते हुए पीछे हटे तो शशिकान्त उन्हें अँधेरे में बाल्टी टटोलने की ज़हमत से बचाने के लिए टार्च लिये कमरे में घुस आया।

टार्च की रोशनी से मुंशी अचानक बिदककर बोले—"यह क्या करते हैं आप? मैं बाल्टी दे रहा हूँ। मेरी आँखों को अन्धी बनाने की मिहरबानी मत कीजिए।"

तभी हड़बड़ाकर वह लड़का मुंशी की चारपाई से कूदकर खड़ा हो गया। टार्च की रोशनी ठीक उसके चेहरे पर पड़ी और दीवाल पर पड़ते प्रकाश के गोले में ठिठकी खड़ी लड़के की परछाईं का जैसे सिर ही नहीं था।

गर्दन झुकाये लड़के की ओर घूरकर देखते हुए शशिकान्त बोला—"यह कौन है?"

मुंशी हाथ में बाल्टी लिये निश्चेष्ट खड़े रहे। एक विचित्र तरह की अपचेतना अपराध की मुरदा-गन्ध से भरी-भरी कमरे में फैल गयी।

शशिकान्त एक क्षण थथमा खड़ा रहा, फिर उसने मुंशी के हाथ से बाल्टी छीन ली और कमरे के बाहर हो गया।

बरामदे को लाँघकर जब वह स्कूल के लान में आया तो मोगरे के फूलों की गंध उसे अजब बेहूदी सी लगी। क्यारी की मेड़ से टकराकर वह उभकते-उभकते बचा।

कुएँ के तल में पानी की सतह से जब बाल्टी टकरायी तो शशिकान्त को लगा कि उसके भीतर भी कहीं किसी ने भारी पत्थर फेंक दिया है, जो मन को हलकोरता डूबता चला जा रहा है। मुंशी को वह नापसन्द करता था, पर दूसरे कारणों से। मुंशी नैतिक दृष्टि से भी इतना नीच है, उसे नहीं मालूम था।

बाल्टी का पानी लिये वह बरामदे में लौट आया। चारपाई के पास पानी रखकर वह धम्म से बैठ गया। अचानक उसे लगा कि उसका सारा बदन पसीने से चिपचिपा हो आया है। तकिये पर उठंग कर उसने मन की घबराहट को शान्त करने की कोशिश की।

अब तक इतनी तेज़ प्यास थी, गला सूख रहा था। अब जब पानी सामने है, तो उसे लगता है कि पानी पीने की इच्छा मर गयी है।

उसने लोटे में पानी भरकर मुँह-हाथ धोया। फिर पानी पीया। चारपाई पर लेटकर बरामदे की कड़ियों की ओर आँखें गड़ाये ताकता रहा। बहुत कोशिश करने पर भी अँधेरे के स्तर को भेदकर उसकी दृष्टि छाजन के अस्तित्व को पकड़ नहीं पायी।

तभी उसे लगा कि उसकी चारपाई के पास कोई खड़ा है। वह सचेत होकर अँधेरे में देखता रहा। काली छाया हल्के भूरे, फिर मटमैले-उजले रंग में बदल गयी।

"पांडेय जी!" मुंशी जवाहिरलाल उसकी चारपाई पर गिर पड़े। उन्होंने टटोलकर उसके पैर पकड़ लिये और उन पर माथा रखकर सिसकने लगे।

"अरे-अरे मुंशी जी!" वह धीरे से बुदबुदाया—"ई क्या कर रहे

हैं आप? इतने लड़के सोये हैं बगल में, हो सकता है कि कोई जग रहा हो।"

"मुझे माफ कर दीजिये पांडेय जी।" मुंशी वैसे ही गलगलाते रहे—"यह मेरी इज़्ज़त का सवाल है। मैं आपसे भीख माँगता हूँ।"

"मैं किसी से कहूँगा नहीं, आप विश्वास रखिये।" उसने धीरे से कहा। फिर रुककर बोला—"आप बुजुर्ग हैं, समझदार हैं। आपको ऐसा काम नहीं करना चाहिए।"

"मुझ पर दया कीजिये पांडेय जी!" मुंशी उसके पैर को पकड़े-पकड़े बोले—"मैं लाचार हूँ। बीमार आदमी ठहरा। घर से कितना दूर रहता हूँ। फिर मैंने किया ही क्या। लड़के हैं। मास्टर लोग जाने कितनी सेवाएँ लेते हैं। मैंने भी थोड़ी सेवा ले ली, तो इससे क्या बिगड़ गया।"

शशिकान्त ने धीरे से अपना पैर खींच लिया। मुंशी की इन बातों से सहसा उसके मन के भीतर कुछ ऐंठन सा लगा—'साला हरामी। ऐसे लोग सहज मन से प्रायश्चित्त भी नहीं कर सकते।' उसने सोचा।

वह मुंशी की आवाज़ की नाटकीयता पर ज्यों-ज्यों सोचता रहा, उसे लगा कि इसमें कृत्रिमता नहीं है। अधिक से अधिक इसे एक घिनौनी बेबसी कह सकते हैं।

"आप जाकर सोइये मुंशी जी।" उसने कहा—"जो कुछ हुआ है, उसे भूल जाइये।"

मुंशी चले गए। आध घण्टे के अन्दर ही कोठरी से बेफ़िक्र सोये आदमी की नाक से निकली घर्र-घर्र की आवाजें उठने लगीं।

'मैंने भी थोड़ी सेवा ले ली, तो इससे क्या बिगड़ गया।' रह-रह कर यह वाक्य उसके दिमाग़ में 'चक्कर घिन्नी' खाता रहा।

शशिकान्त के लिए यह तर्क अश्रुतपूर्व था। प्रायमरी पाठशालाओं में सेवा का रवाज़ है। बच्चों के माँ-बाप तक अध्यापकों का ख्याल करते हैं। अनेक लोग चावल-दाल तक गुरु-दक्षिणा में भेजते रहते हैं। प्राचीन गुरु-कुलों की पद्धति का यह सौवाँ अंश ही सही, अब भी इस आधुनिक युग

में भी, जीवित है। अभिभावक समझते हैं कि सेवाभाव बच्चों को स्वावलंबी बनाता है। इसलिए बड़े-बड़े घरों के लोग भी अध्यापक का चौका-बर्तन करने से अपने लड़कों को रोकते नहीं। कुछ विश्वास शायद गुरुजनों के आशीर्वाद में भी बच रहा हो। पर मुंशी जवाहिरलाल ने 'सेवा' का जो अर्थ लगाया है, उसने तो जैसे समूची अध्यापक जाति के मानसिक पतन और कृतघ्नता पर मुहर लगा दी है।

इतना होने पर भी हठात् जाने क्यों शशिकान्त को लगता है कि मुंशी की दयनीयता का उपहास करना उचित नहीं है। यह भी अजीब बेबसी है....।

उसे याद आ रहा है, एक प्रसंग में विनोबा ने लिखा था—"मैंने देखा है कि शिक्षकों के साथ उनकी पत्नी नहीं रहतीं। लेकिन गुरुपत्नी के बिना कैसे चलेगा?" शायद वैसे ही जैसे जवाहिरलाल चलाते हैं। और अगर गुरुपत्नियाँ गाँवों के स्कूलों पर रहने लगें तो? तो क्या?

बुखार से या पता नहीं दवा की गर्मी से, चित्त उखड़ा-उखड़ा सा लगता है। शशिकान्त करवट बदलकर आँखों को बन्द कर लेता है, यदि वह ऐसे ही कुछ देर और सोचता रहा तो निश्चय ही उसके मस्तिष्क की कोई शिरा दबाव से टूट जायेगी। "हे भगवान्।" वह बुदबुदाया, "मुझसे मेरी सोचने को ताक़त छीन क्यों नहीं लेते?" वह देर तक जलते ललाट को सहलाता रहा, तब कहीं नींद आयी।

• •

पच्चीस

गाँव के पुरनियाँ लोग कहते हैं कि मकर-संक्रान्ति का दिन बिना बारिश के नहीं जाता। पता नहीं कि सूर्य के मकर-राशि में प्रवेश करते समय उसका वर्षा से क्या सम्बन्ध होता है, पर यह सही है कि शायद ही कोई ऐसी मकर-संक्रान्ति आयी हो, जो अपने पहले या कुछ बाद आकाश को ज्यों का त्यों रहने दे। इस बार पानी मकर-संक्रान्ति के एक दिन पहले बरसा। चौदह जनवरी की वह सुबह ऐसी थी कि धरती से आकाश तक कुहरा ही कुहरा। हाथों को हाथ नहीं सूझता था। मुँह की भाप घने धुर्वे की तरह अपने आप लक्षित हो जाती थी।

करैता गाँव के लिए खिचड़ी के त्योहार का कुछ ख़ास महत्त्व था। इस दिन छावनी की ओर से एक घरो रात रहे ही बाँस के बड़े-बड़े ओड़ों में चिवड़ा भरकर कहारों के सिर पर उठा दिया जाता। बाद में एक आदमी एक ओड़ी में लड्डू, तिलौरे और गुड़ की भेलियाँ लिये चलता। गंगा जी के तट पर एक बहुत बड़े जाजिम पर यह सब सामान डाल दिया

जाता। गाँव के जितने लोग नदी में नहाकर निकलते, वे उस जगह पर ज़रूर पहुँचते। ज़मींदार खुद अपने हाथ से लोगों को चिवड़े, मिठाई और तिलौरे बाँटते। लोग अपने-अपने परिवार के वयस्कों-बच्चों के साथ गमछा फैलाकर बैठ जाते और कलेवा करते। फिर जिसकी इच्छा होती, गाँव लौट जाता। शेष लोग पास के क़स्बे की ओर मेला देखने चल देते। ज़मींदार अपने घोड़े पर सवार, प्रजा उनके पीछे-पीछे उमंगों से भरी हुई। अभी जैपाल सिंह के जमाने तक यह रस्म निभाई जाती रही है।

सारा गाँव इस उत्सव को अपनी शक्ति भर रंगीन और चटक बनाने की कोशिश करता रहा है। और किसी त्योहार को कुछ हो या न हो, इस दिन बच्चों को जाड़े के नये कपड़े ज़रूर चाहिए। औरतें नदी-तट के जलसे में कभी शरीक नहीं होती थीं, पर लड़कों को नहला-धुलाकर ठीक से कपड़े पहना, उन्हें घर के बड़े-बूढ़ों के हाथ सौंपने का काम वे वहाँ जाकर जरूर करती थीं। ठीक से रहना, चुल-चुल मत करना, बाबू की उँगली मत छोड़ना, थकने पर भइया के कंधे पर चढ़ जाना—ये हिदायतें देकर, स्त्रियाँ कनखी से उस नवान्न-वितरण के कार्य को देखतीं, गाँव लौट आती थीं। फिर बच्चों को कलेवा कराने से लेकर क़स्बे के मेले से सकुशल घर लौटाने का सारा उत्तरदायित्व प्रौढ़ों के सिर होता।

बुझारथ ने नदी-तट का यह 'वाहियात झमेला' बन्द करा दिया। "मारो गोली।" उन्होंने काफ़ी घृणा से मुँह विदोरकर कहा—"क्या रखा है इस दिखावे में ? सारा रस्म-रिवाज़ हमी निभाते चलें ? जब गाँव के लोगों ने सलामी, नज़राना बन्द कर दिया तो हम यह सब काहे करते फिरें।"

बहरहाल रात एक घड़ी शेष रहे जो 'परजा-पौनी' सदा की भाँति 'चिवड़ा मिठाई' नदी-तट पहुँचाने के लिए आये, वे चुपचाप भेद-भरे ढंग से हँसते हुए चले गये।

●

दरवाज़े पर 'बोल-बद' सुनकर कनिया ने बखरी के फाटक की संध से ताककर मामले की थाह ली और फाटक बन्द कर लिया। अनायास उसकी गर्दन झुक गयी। रस्म तोड़ने के इस काम में उनकी उदासीनता भी कम सहायक नहीं थी। विवशता के कारण ही सही, पर कनिया की इस मामले में बुझारथ से पूरी सहमति थी।

कनिया बुट्टन और शीला के साथ गंगा जाने के लिए तैयार बैठी थीं। विपिन ऊपरी मंज़िल से सोकर नीचे आया तो वे बोल पड़ीं—"विप्पी, गंगा जी नहीं जाना है क्या ?"

"नहीं भाभी, मैं तो नहीं जाऊँगा। इस जाड़े-पाले में धरम-करम मेरे बस का रोग नहीं। तुम जा रही हो न ?"

"हाँ, हम तीनों ही जा रहे हैं। सुनो, कोनिया घर में कटोरे में तुम्हारा 'खरमेटाव' रखा है। खा लेना।"

"और भाई साहब ? वह जा रहे हैं कि नहीं ?"

"मुझे का मालूम ? उनकी गोल अलग है। उससे मेरा क्या वास्ता ?"

"अब गोल कौन सी बची है। खुदाबक्सा रहा नहीं। बाक़ी गँजेड़ी यार किसके, दम लगाकर खिसके। रहा ही गोल बनाने को कौन अब ?"

"जो हों, और कोई नहीं तो रमचन्ना है, उनका घोड़ा है।" वे किंचित् मुसकराते हुए बोलीं—"वे भाई घोड़सवार ठहरे। हम पैदल-पायक। फिर क्या संग ? अच्छा तो यह चाबी सँभालो। हम हो आएँ जल्दी।"

विपिन ने चाबी ले ली थी। कनिया, बुट्टू और शीला—केवड़ार वाले रास्ते से निकल गये। बाबू बुझारथ सिंह सब तरह से तैयार होकर मचिया पर बैठे अलाव को कुरेद रहे थे। रमचन्ना ने घोड़े को खरहरा करके दाना-भूसा डाल दिया था। हाथ धोकर गाँजा बनाये, तो दम लगे। फिर 'खिचड़ी के मेले' की तैयारी हो।

"का रे चन्ना, जल्दी कर भाई ! तू तो यहीं दस बजायेगा।" बाबू

बुझारथ सिंह ने जँभाई लेते मुँह के पास चुटकी बजायी—"भगवन्त हो, भगवन्त हो।'

तभी उनकी नज़र विपिन पर पड़ी—"विप्पी ! मेला नहीं जाओगे?"

"नहीं।"

बुझारथ सिंह चुप हो गये। दोनों भाइयों में शायद समझौता था कि तथ्य जान लेना मात्र काफी है। एक दूसरे से कारण जानने की उत्सुकता उचित नहीं है।

"और भी कोई जा रहा है या नहीं?"

जब से खुदाबक्सा वाला कांड हुआ है, बुझारथ एकाएक कनिया के प्रति ज़्यादा जिज्ञासा दिखाने लगे हैं। अचानक छावनी के वातावरण में कुछ पारिवारिकता बढ़ गयी है। विपिन इस परिवर्तन को लक्ष्य न कर सका हो, ऐसी बात नहीं, पर बुझारथ की जिज्ञासा का उसने कोई उत्तर नहीं दिया। बुझारथ चुप रहे। उनके चेहरे पर अपने कार्यक्रम की चिन्ता ही अधिक थी, जिज्ञासा के अनुत्तरित रहने का भाव नहीं।

विपिन चुपचाप तालाब की ओर चला गया। सारा गाँव मेला देखने जा रहा है। क्या पुष्पा भी जायेगी? शायद नहीं। लगन निश्चित हो जाने पर लड़कियाँ मेले-ठेले नहीं जातीं। वरपक्ष की ओर के किसी आगन्तुक द्वारा पहचान लिये जाने की आशंका होती है। पुष्पा की याद आते ही विपिन को लगता कि एक अदृश्य रज्जु उसके पैरों में लिपट गयी है। अचानक एक लम्बी सांस निकलती है और हृदय के भीतर की चाबी को कोई ऐंठ देता है। एक अजीब तरह की झनझनाहट से कान भर जाते हैं, मानो कहीं सुदूर एक अप्रतिहत नाद लगातार गूँज रहा हो।

गाँव के बाहर तो जैसे कुहरे का पहाड़ फूल रहा है। पूरा तालाब इस विराट सफेद महाजन्तु के मुँह में समा गया था। भीटे के पेड़, नीम-गाँछ, कनेर और पाकड़ सभी धुंध में छिप गए हैं। एक ऐसा ही धुंध विपिन के भीतर भी है। बहुत घना, बहुत दमघोंट। उसके अन्दर क्या-क्या छिपा है? एक बीस-बाईस साल लम्बी डगर। उसके दोनों तरफ़

बहुत कुछ था। खेत, क्यारियाँ, पेड़, घर, मकान, रेल, यात्रा विश्वविद्यालय —सभी कुछ। पर एक और चीज़ थी, जो मधुमास की तरह इस डगर पर छा जाती थी। अचानक फसल, फूल, फल, ममता, सुरक्षा और आत्मविश्वास की मिली-जुली गंधों से भूत और भविष्य नहा जाते थे। मधुमास और भविष्य? मधुमास की विपिन ने खुद जैसे अपने हाथ से हत्या कर दी। और भविष्य?

पुष्पा पर क्या उसे सन्देह था? क्या वह नहीं जानता कि वह मासूम लड़की चील-कुत्तों की मांस-लोलुपता का शिकार बनी है। और फिर, यह क्या कोई कम भाग्य की बात थी कि पुष्पा उस अन्धघाटी में जाकर भी सकुशल लौट आयी। एक अदृश्य कीटाणुओं से भरी हवा ने भले ही उसे अपनी लपेट में ले लिया हो, उसके तन-मन पर उसकी कोई छाप नहीं पड़ी।

फिर भी विपिन ने पुष्पा को अपने से अलग कर दिया। आख़िर क्यों? विपिन को लगता है कि पुष्पा के बारे में कुछ न सोचने में ही आराम है। जो अपने से हो रहा है, वह बहुत मन-चाहा न होकर भी, उद्वेग से बचा लेता है। फिर उसे वैसे ही क्यों न होने दिया जाये। पुष्पा को विपिन अपना नहीं सकता।

●

सीपिया नाले वाली घटना पहले गुपचुप ढंग से ही चर्चित होती रही है! कुछ ख़ास तरह के साझीदारों को, जो सिरिया और सुरजू के भेद भरे कर्मों के साक्षी हैं, या आधार या आलंबन, इस घटना की ख़बर थी। उनके सामने अपने को नंगा करके जिन औरतों ने विश्वास पाया है, उन्हें यह भेद बतौर तोहफ़े के दिया गया। ऐसी औरतों द्वारा यह बात जितनी दूर तक फैल सकती थी, फैली। फिर भी कुछ 'धरान' तो थी ही। सारे गाँव में ढिंढोरा तो नहीं पिटा। गुपचुप बात फैलते-फैलते बुझारथ सिंह के कान में पहुँची।

"तो उस मादर........सिरिया की ऐसी हिम्मत ?" बुझारथ का सारा बदन सूखे रेंड़ की तरह खड़खड़ा उठा।

खुदाबक्सा के साथ वे कई रोज़ तक मंत्रणा करते रहे। एक दिन क़रीब दस-ग्यारह बजे खुदाबक्सा झपटकर छावनी आया ! बुझारथ सिंह दालान में तोशक के सहारे उठंगे हुए अपनी ज़िन्दगी का तख़मीना कर रहे थे।

"सिरिया पोखरे में मछली मार रहा है।" खुदाबक्सा मचिया खींच कर पलंगड़ी के पास बैठ गया। दोनों ने साँय-साँय बातें कीं। बुझारथ ने रमचन्ना को बुलाया और लाठी लेकर साथ चलने का हुक्म दिया। खुदाबक्स, रमचन्ना और बुझारथ तीनों तालाब पर गये। भीटे की आड़ में छुपकर वे सिरिया के पास पहुँचे और उन्होंने झपट्टे से दौड़कर सिरिया को घेर लिया।

"यही है स्साला, रोज मछली मारता है, जैसे पोखरा इसके बाप का है।" बुझारथ ने किटकिटाकर कहा—"पकड़ लो स्साले को।"

"हम मछली-वछली नहीं मार रहे हैं।" सिरिया हक्का-बक्का होकर उन्हें देखता रहा।

"तब क्या कर रहे हो ?"

वह कुछ न बोला। खुदाबक्सा ने आगे बढ़कर उसकी काँख में दबा लाल गमछा खींच दिया। दो छोटे-छोटे पहिने थे, एक टेंगरा मछली। तीनों मछलियाँ जमीन पर गिर पड़ीं।

"यह क्या है, साले चोर ?" बुझारथ के जबड़े गुस्से के भार से विचल रहे थे।

"गाली मत बको बुझारथ भाई, जे बा से हम नान्ह जात नहीं हैं। ज़मींदारी टूट गयी। पोखरा पंचायत का है।"

"तुम्हारे बाप का है। तुम आये बड़े जज बनकर फैसला करने। रमचन्ना, मार साले को।" बुझारथ इसीलिए आये थे। सो यही हुआ।

रमचन्ना और खुदाबक्सा ने मिलकर सिरिया को खूब मारा। मछली छीन ली। कटिया पकड़कर तोड़ दी और छावनी लौट आये।

सिरिया मुँह में गाज भर-भरकर गालियाँ देता सुरजू के बइठके में पहुँचा। सुरजू थे नहीं। उसी दिन पुष्पा वाली घटना अचानक रहस्य की झिल्ली को फाड़कर रोशनी में आ गयी। सिरिया चौराहे पर खड़ा होकर चिल्लाता रहा।

"मछली तो बहाना है जे बा से, मियवाँ के साथ गाँव की बहू-बेटियाँ की इज़्ज़त लूटते हैं। मैंने अपनी आँख से देखा नहीं है क्या ? सीपिया नाले पर धरमू सिंह की....।"

"क्या बक-बक करते हो। पागल हो गये हो क्या।" किसी रहस्य-भेद में मज़ा लेनेवाले प्रौढ़ ने बीच ही में टोक दिया—"आओ चलो, सुरजू के बइठके में। वहीं बात होगी।"

और तब कई लोग उत्तेजित सिरिया के साथ हो लिये। सिरिया सुरजू के बरामदे में बैठकर खूब नमक-मिर्च लगाकर पुराण बाँचता रहा। लोग खूब मज़ा ले-लेकर सुनते रहे। चौराहे की तथा बरामदे की नैतिकता और शिष्टता में कितना अन्तर होता है। सिरिया को लगा कि उसने अपने सारे अपमान का खूब बदला ले लिया है। एक अजीब तरह की तामसिक तृप्ति से उसका चेहरा खिल गया।

और जब पुष्पा को सारे गाँव ने जलते अंगारों पर खड़ा कर दिया, तो विपिन भाग खड़ा हुआ। वह सोचता है कि जो हो रहा है, वही हो। इस होने को रोकने की कोशिश में वह भी बेदाग़ नहीं बचेगा।

●

अचानक विपिन की आँखें छलछला आती हैं। कुहरा भी नमक की तरह आँखों को आँसुओं से भर देता है। विपिन सूखी हथेली से नम आँखों को काछ देता है। सफ़ेद रुई के गाले की तरह फैला कुहरा जैसे एक

फलक है, कैनवैस। पुष्पा उसके सामने खड़ी है लांछित....प्रताड़ित....। लाखों-लाख आँखें उसकी ओर देख रही हैं हिक़ारत से। "जा बाची···· हैं–हैं–हैं····! क्या कर लिया तूने ? बाप-दादे की पगड़ी उतार ली।" नहीं, नहीं, चाचा-चाची, बाबा-आज़ी, भाई-भौजी ! घर-परिवार, पुरजन !! इतने कठोर न बनो, मैंने कुछ नहीं किया। सुनो धरती की क़सम है, मेरे आँचल में कोई दाग़ नहीं लगा।" पुष्पा चीखती है, चिल्लाती है, विसूरती है, पर कोई नहीं सुनता।

"दिव्य ! दिव्य !!" एक साथ लाखों मुट्ठियाँ हवा में लहराती हैं— "यदि अपने सत्त पर ऐसा विश्वास है तुझे, तो दिव्य उठा ले। उठा दिव्य।"

उत्सुकता से, घृणा से, तामसिक ख़ुशी और प्रसन्नता से चमकती हजारों हजार आँखें, लगता है जैसे बाँस-बन जल रहा है। चिनगारियों से नीला आसमान भर गया है। सारा गाँव देव-स्थान में एकत्रित है। बीचों बीच लकलक जलते चूल्हे पर भारी सा कड़ाह धरा है। तेल से भरा। खौलता हुआ।

उसके पास एक पतली-दुबली, गोरी सी लड़की खड़ी है। सफेद साड़ी में लिपटी। भीगे हुए खुले-खुले बाल उसकी पीठ पर लहराते हैं। गले में कनेर की माला झूलती है। चेहरे पर अजीब तरह की विश्वासमयी मुसकराहट उभरती है। वह सहसा आँखें बन्द करके गाने लगती है—

ऊँचे-ऊँचे बइठें मोरे गउवाँ के लोगवा रे ना-ा-ा-ा
रामा खलवा में बइठें मोरे बाबा रे ना-ा-ा-ा
बड़ी-बड़ी पाग बाँधें गउवाँ के लोगवा रे ना-ा-ा-ा
रामा भइया-बाबा बाँधै अगँउछवा रे ना-ा-ा-ा
रामा तेही बीच चढ़ी है करहिया रे ना-ा-ा-ा
रामा तेही ढिग ठाढ़ी रानी चन्दा रे ना-ा-ा-ा

[गाँव के लोग ऊँचे-ऊँचे आसनों पर बैठे हैं। मेरे बाबा (पिता) नीचे बैठे हैं। गाँव के लोग बड़ी-बड़ी पाग बाँधे हैं, मेरे भाई-बाप अँगौछा बाँधे हैं। तेल का कड़ाह चढ़ा है। पास में रानी चन्दा खड़ी है।]

आह ! सती चन्दा ने, खौलते हुए तेल में अपनी दोनों हथेलियाँ डाल दीं। लाल-लाल कमल के फूल कड़ाही में तैर गये।

सती चन्दा की जै, रानी चन्दा की जै ! ! कैसा भयानक अन्ध-विश्वास था !

चन्दा....पुष्पा। पुष्पा....चन्दा !........पु....न्दा....ष्पा....च। पुष्पा भी दिव्य उठा सकती है, अगर विपिन चाहे।

मगर विपिन नहीं चाहता। सिर्फ इसलिए नहीं कि वह इसे अन्ध-विश्वास मानता है। विपिन जानता है कि पुष्पा पवित्र है, पर विपिन उसे अपनाना नहीं चाहता।

●

कापुरुष !

विपिन को लगता है कि उसके सिर की कोई शिरा टूटनेवाली है। वह कुहरे में छिपे, ओस-सने कनेर की जड़ में पीठ टिकाकर बैठ जाता है। उसने सब कुछ गँवा दिया। वह सोचता है। यदि उसने साफ कह दिया होता, कुर्की की रात को ही कि यह सब नहीं होगा। पुष्पा मेरी है। मैं उससे विवाह करूँगा। तो कुछ नहीं हुआ होता। न कुर्की, न सोपिया नाले का कांड, न गाँव भर में हँसाई। मगर विपिन चुप रहा। मान-मर्यादा, झूठी शान, अपने को खतरे के सामने ढँके रहने की प्रवृत्ति— सभी ने मिलकर उसके गले को रूँध दिया। वह जाब लगे बैल की तरह हाँफता रहा और अशक्य बैठा रहा।

●

भावनाओं का कुहरा मामूली कुहरे से भी कमज़ोर होता है शायद। विपिन कुछ देर बाद अपने बालों पर, मुँह पर हाथ फेरता है तो लगता है

कि सब कुछ छँट गया है। वह मुँह-हाथ धोने की क्रिया से निवृत्त होकर अपने को ताज़ा-ताज़ा अनुभव करता है। पूरब में सूरज ऊपर खिसक रहा है। कुहरे के जाल में उलझकर दपदप सूरज चाँद की तरह मासूम और बेचारा सा लगता है। विपिन छावनी लौट पड़ता है।

गलियों में कितना सन्नाटा है। अधिकांश लोग गंगा-स्नान को चले गये। जो बचे, वे हमेशा ही हर चीज़ से बचते रहते हैं। उनके लिए न सावन सूखा, न भादों हरा। सुबह उठे। मुँह-हाथ धोया। बैलों का गोबर-मूत काछा। हाथ-पैर धोकर गमछे में दाना-गुड़ बाँध सिवान चल दिये।

विपिन के पास कोई काम नहीं। वह न गंगा-स्नान को ही गया, न उसे सिवान ही जाना है। गली के मोड़ पर धरमू सिंह की बखरी के सामने एक क्षण उसके पैर ठिठक गए। आँखें उठने-उठने को हुईं। शायद पुष्पा दालान में बैठी हो। एक क्षण के लिए भूत-भविष्य टकराने के लिए व्याकुल हो उठे। हो सकता है कि दो चमकती आँखें दरवाज़े की संध से दिख जायँ। परन्तु ...यदि दिख गयीं तो ? यदि पुष्पा सामने आ गयी तो ....तो ? एक अजीब क़िस्म की ग्लानि भरी कँपकपी विपिन के शरीर को दबोच लेती है। उसकी आँखें उल्टी बगल को मुड़ जाती हैं। जैसे वह मुँह चुरा रहा हो। अचानक पैरों की गति तेज़ हो जाती है और वह हड़बड़ाकर छावनी की ओर बढ़ जाता है। बरामदे में चारपाई पर बैठते उसे लगता है कि बहुत दूर से दौड़ता हुआ आ रहा है।

विपिन वैसे ही पड़ा रहा। उठा। बखरी का दरवाज़ा खोलकर भीतर गया। कोनिया घर में कटोरे में चिवड़ा और मिठाई थी। मिठाई खाकर उसने पानी पी लिया। शेष वैसे ही रख दिया। पता नहीं क्यों कटोरे में चिवड़ा देखकर उसका मन फिर शिथिल होने लगा।

●

तब माई थी। पुष्पा उसके स्कूल से लौटने पर इसी कटोरे में शाम को नाश्ता और पानी उसकी चारपाई के पास रख जाती थी। इस बार

वह उस पुष्पा के बारे में सोच रहा था, जो पाँच-सात साल की गुड़िया थी, पर आँखों के आगे जो पुष्पा उभर रही थी, वह लगातार मन को मथ रही थी। गदराये शरीर वाली मांसल, गुदकारी पुष्पा, जिसके लाल-लाल अधर अजीब जादू-टोनों में लिपटे हुए थे। एक थर-थर काँपता स्पर्श, गर्म-ठंडा कोमल-कोमल कि विपिन को लगा कि अचानक उसके नथुने केवड़े की मादक गंध से भर गये हैं। एक खूब भारी साँस आयी और यह मानुषी गंध गले से उतरकर समूचे अन्तः को नखशिख भर गयी। विपिन की पलकें मुँद गयीं। मन के भीतर एक केवड़ार थी, फूलों के बीच पुष्पा थी। उसके आँसू में डूबे-डूबे लाल-लाल होंठों को उसने चूम लिया था।

विपिन को लगा कि उसका शरीर काफ़ी गरम हो रहा है। अचानक साँस पहले से हल्की और उष्ण हो गयी है। रह-रहकर उसे ज़ोर से खींचना होता है, ताकि कलेजे के भीतर घुमड़ती गाँठ खुल जाए।

कितना मूर्ख है वह। पुष्पा सदा ही उसकी थी। पर उसने कभी अपने अधिकार का उपयोग नहीं किया। जिसे पाने के लिए बुझारथ सिंह को ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिलाकर भी असफल होना पड़ा, वही पुष्पा एक इशारे से उसकी गोद में लुढ़क सकती थी। पुष्पा कभी भी, उसकी किसी इच्छा को अस्वीकार नहीं कर सकती। वह अपने मोह और हृदय के राग को पुष्पा के शरीर पर उड़ेल सकता था। पुष्पा को पाकर वह तृप्त और प्रसन्न हो सकता था। पर उसने अपनी मूर्खता के कारण कुछ भी नहीं किया।

ज्यों-ज्यों कुछ न कर पाने की यह लहर विपिन को अपने आगोश में लपेटती रही, त्यों-त्यों उसका शरीर आहत वासना की अग्नि में झुलसता रहा। वह कोनिया घर की चारपाई पर लेटा, द्वार पार आँगन को एकटक देखता रहा।

●

तभी बाहरी दरवाज़े की सिकड़ी खटखटायी। दरवाज़ा खुला था, किसी के शरीर से लगकर पल्ला उढ़का।

"दिदिया ! दिदिया !"

पटनहिया भाभी आँगन में आकर लोगों के होने की आहट लेती रहीं। फिर वे धीरे-धीरे कोनिया घर के दरवाज़े पर आकर रुकीं। खुले दरवाज़े का अबूझ निमंत्रण उन्हें चौकठ तक खींच लाया।

"दिदिया !"

वे चौकठ हेलकर कोनिया घर में घुसीं तो ठिठकी खड़ी रह गयीं।

विपिन उनकी ओर एकटक देखता मुस्करा रहा था।

"दिदिया नहीं हैं ?" उन्होंने गर्दन झुकाये-झुकाये पूछा।

"भाभी तो गंगा-नहान करने गयी हैं।" विपिन ने ठीक से बैठते हुए कहा—"कोई काम है ?"

"मुझे भी नहाने जाना था बबुआ जी।" पटनहिया भाभी मुस्करायीं—"दिदिया के साथ ही जाने का हुकुम मिला था। दिदिया चली गयीं तो अब कहाँ जाती हूँ अकेले।" वे सहसा निराश हो गयीं। विपिन ने कनखी से देखा कि पटनहिया भाभी के चेहरे का आधा हिस्सा, जिसे कि दरवाज़े से आती रोशनी उजागर कर रही थी, भुवनेश्वर की पत्र-लेखिका के मुखमंडल की तरह सुडौल, चिकना और बारीकी से कोरा हुआ लग रहा था। कान, कपोल और चिबुक की यह भंगिमा खुद में इतनी पूर्णकाय थी कि उस पर संक्रान्ति के नहान, या जीवन के दूसरे ऐसे ही महत्त्वपूर्ण कामों के होने, न होने की कोई छाया नहीं पड़ सकती थी ! विपिन को एकटक अपनी ओर ताकते देखकर पटनहिया भाभी किंचित् मुस्करायीं। मुस्कराने से होंठों की स्थिति में थोड़ा-बहुत फ़र्क़ भले ही आया हो, चेहरे की मुद्रा वैसे ही अपरिवर्तनीय बनी रही।

"तो चलूँ बबुआ जी।" उन्होंने वैसे ही गर्दन झुकाये कहा।

"क्यों, सारा काम दिदिया से ही रहता है, या कहीं मेरे पास खड़ा होने में डर तो नहीं लग रहा है ?" विपिन कह गया। इस प्रसंग के बाद

विपिन ने इस वाक्य के पीछे की वाचालता और साहसिकता पर जो भी सोच-विचार किया हो, उस समय उसकी स्थिति ने इसे कहीं से भी अनुचित नहीं माना था।

अचानक पटनहिया भाभी की मुद्रा कुछ तरल, कुछ शिथिल, कुछ कोमल हो गयी और वे शरारत से हँसती हुई बोलीं—"कौन जाने बाबा ! मैंने ऐसा मरद नहीं देखा है, तो थोड़ा-बहुत तो डर लगना ही चाहिए।"

"मैंने तो सोचा था कि आपने मुझे माफ़ कर दिया है।" सहसा विपिन के चेहरे पर ग्लानि और बेचारापन का भाव घना हो गया—"पर लगता है आप अभी भी नाराज़ हैं।" विपिन ने शायद सोचा नहीं कि वह इतने सहज प्रायश्चित्त के ढंग से ये बातें कर रहा है। पर अनजानी सहजता का भी एक प्रभाव होता है और उसे सचमुच ही हल्का-सा अचम्भा हुआ कि यह सब कहते उसकी आँखें जाने क्यों भर-भर आयीं।

उसकी मुखाकृति ज़रूर दयनीय हो गयी होगी, तभी तो पटनहिया भाभी उसकी चारपाई पर झटके से बैठ गयी थीं। उन्होंने उसके हाथ को अपनी हथेलियों से पकड़कर कहा था—"आप बुरा मान गये।"

कल्पू की सुनी हुई क्लीवता और नपुंसकता को आधार बनाकर जिस दिन उसने कनिया के सामने अभद्र मज़ाक किया था, तब से अनेक बार पटनहिया भाभी उससे मिली हैं। अक्सर किताबें माँगने वे आती रही हैं। अक्सर वह उनके साथ ऊपरी मंज़िल के अपने कमरे में क्षण दो क्षण बोलता-बतियाता रहा है। अक्सर उसे लगा है कि यह औरत अपने दुख और सामाजिक उपहास से इतनी परेशान है कि इसे किन्हीं दूसरी बातों पर सोचने-विचारने से शायद ही मतलब हो। आज अचानक जब पटनहिया भाभी ने उसका हाथ पकड़ लिया तो वह उनके प्रति सहानुभूति और करुणा से भर उठा। उसने अपना दूसरा हाथ उन सहानुभूति भरी हथेलियों के ऊपर रख दिया।

सचेत भाव से गर्म ख़ून पर रखे अनजाने गर्म ख़ून ने एक दूसरे से चिरादिम स्वभाव में बातचीत करना आरंभ कर दिया था। विपिन को

लग रहा है कि शायद पटनहिया भाभी को मालूम था कि आज कोई भी छावनी में नहीं है, विपिन को छोड़कर। बंशी काका के घर भी सभी लोग स्नान करने चले गये होंगे। तो क्या सचमुच वे यह सब कुछ जान-समझ कर यहाँ आयी हैं। यह सोचना उसे बहुत अच्छा लगा। उसने पटनहिया भाभी की हथेलियों को अपने हाथों में ज़ोर से दबा लिया। कदाचित् आज का कुहरीला मौसम बहुत अच्छा है! विपिन एक क्षण किसी परम आनंद की वर्षा में जैसे झूमने सा लगा। उसकी इच्छा हुई कि वह पटनहिया भाभी को अपने दोनों हाथों में भर ले। इच्छा का ज्ञान होने के पहले ही उसके हाथों के बन्धन से वे हथेलियाँ छूटने लगी थीं। और पटनहिया भाभी अपने हाथों से उन उद्यत हाथों को बटोरने की कोशिश कर रही थीं। हाथ छूट गये। विपिन ने ज्यों ही मुक्त हाथों से उन्हें पकड़ना चाहा, वे चारपाई पर से उठकर खड़ी हो गयीं।

"क्यों बबुआ जी, आज पुष्पा की बहुत याद आ रही है क्या?" वे मुस्करायीं।

विपिन हतप्रभ उनकी ओर देखता रहा। उनके चेहरे पर कोई व्यंग्य नहीं था। कोई गुस्सा या खिंचाव भी नहीं था, किन्तु विपिन को लगा कि जैसे उसके ऊपर घड़ों पानी पड़ गया हो।

"रउवाँ तो उस बेचारी की सुध-बुध ही भूल गये, बबुआ जी।" वह फिर बोलीं—"ऐसे भी कोई किसी का हाथ पकड़कर छोड़ता है? ऐसे ही मरद हैं आप?"

विपिन एकदम सन्न रह गया। पटनहिया भाभी उसे शायद इस तरह नंगा करने के लिए ही आयी थीं।

वह कुछ कहता-कहता कि वे कोनिया घर से निकलीं और झटके से आँगन पार करके निकसार हेल गयीं।

●

विपिन चुपचाप बैठा रहा। उसके मस्तिष्क के भीतर जैसे कोई चकरी-भौंरा का खेल खेल रहा हो। एक अजीब तरह की निरर्थक अनुगूँज लगातार उठती रही। उसका सारा शरीर अनुशोचना की लपटों में झुलस रहा था। वह चारपाई पर निढाल गिर पड़ा। जैसे पुंजीभूत राख का ढेर हो वह।

उसे खुद नहीं मालूम कि वह इस तरह कब तक पड़ा रहा। एक थकान भरी बेहोशी उस पर छा गयी थी। उसे यह भी पता नहीं लगा कि कनिया कब आयीं। शीला-बुट्टू की बातचीत की आवाज़ें मानो किसी गहरे कुएँ के भीतर से आती हुई लगतीं। धीरे-धीरे वह गहराई से उबरता गया और जब आँख खुली तो देखा कनिया कोनिया घर के दरवाज़े पर मटर की फलियाँ छील रही थीं। शीला बुट्टू आँगनवाली चारपाई पर बैठे चिवड़ा मिठाई का कलेवा कर रहे थे।

"क्यों विपिन, तबीयत, तो ठीक है न?" कनिया ने पूछा—"दुबारा क्यों सोने लगे?"

विपिन ने बनावटी ढंग से, कच्ची नींद से उठे आदमी की तरह जँभाई ली। उँगलियों को एक दूसरे में फँसाकर चटकाया।

"कब आयीं भाभी?"

"अभी चले आ रहे हैं, क्यों पानी पीओगे। शीला! ज़रा काका को पानी दे।" वे उसी प्रकार गर्दन झुकाये फलियों से गुदरे निकालती रहीं। विपिन चारपाई पर से कूदकर उनके पास आ रहा।

कनिया ने बग़ल में रखी गंगाजली उठाकर कहा—"लो गंगाजल, सिर से लगाकर पी लो।"

विपिन ने हथेली फैला दी। कनेर के फूल और तुलसी की पत्ती के साथ गंगाजल उसकी हथेली को भर गया।

उसने उसे सिर से लगाया, कनेर के फूल को अलग किया, और पी गया।

"चलो, मैं भी पाप-मुक्त हो गया।" उसने हँसते हुए कहा।

कनिया ने उसकी ओर तिरछी आँखों से देखा और हँस पड़ीं।

शीला पानी का गिलास थमा गयी। और एक बड़ा सा लड्डू भी।

"आज तो खिचड़ी ही बनेगी।" कनिया कह रही थीं—"तुम्हें तो खिचड़ी अच्छी ही नहीं लगती।"

"क्यों मटर के दानेवाली तो अच्छी लगती है।"

"वह खिचड़ी कहाँ हुई। वह तो पुलाव हुआ।"

"तो उसी को खिचड़ी मान लो न भाभी। नेम निभ जायेगा। इसमें क्या धरा है।" विपिन ने नाटकीय ढंग से बड़े विनम्र भाव से कहा। कनिया खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

दोपहर को खा-पीकर विपिन दरवाज़े की चारपाई पर आकर लेट रहा। आलस के कारण आँखें झपने लगी थीं।

"छोटे बाबू! छोटे बाबू!!"

तभी रमचन्ना बरामदे में घुसा।

विपिन हड़बड़ाकर उठ बैठा। चन्ना बड़ा घबराया हुआ और उत्तेजित सा लग रहा था। वह कुछ कह रहा था, पर कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

"क्या है? साफ़-साफ़ कहो न?"

उसने जो कुछ कहा, उसका पूरा मतलब समझ पाना फिर भी मुश्किल ही रहा। पर जितना समझ में आया, वही हृदय को बेचैन, मन को चिन्तित और माथे को शर्म से झुका देने के लिए काफ़ी था।

बुझारथ सिंह गंगा-स्नान के बाद हमेशा की तरह क़स्बे पहुँचे। चन्ना उनके पीछे-पीछे चला। चौक में पहुँचकर उन्होंने हलवाई की दूकान पर मिठाई खरीदी। पानी पीया। तभी जमनिया का थानेदार दो सिपाहियों के साथ आया और उसने बुझारथ सिंह को गिरफ्तार कर लिया। चौक में हल्ला मच गया। बहुत से लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। थानेदार जाने क्या कहता रहता। चन्ना की समझ में पूरी बात नहीं आयी। उसने इतना ही सुना कि रेल की चोरी का कोई मामला है।

विपिन की आँखों के आगे पाँच-छः महीने पहले अख़बार में पढ़ी एक ख़बर नाच उठी। जमनिया के पास मालगाड़ी रोककर किसी ने किशमिश, लौंग और काली मिर्च के कई बोरे चुरा लिये थे। रेलवे पुलिस का ख़याल था कि यह डकैती पहली ही बार नहीं हुई है। सीपिया नाले के इसी पुल के पास दो-एक बार और भी गाड़ी रोककर सामान उतारे गये हैं। काटन मिल के कपड़े की पाँच बड़ी-बड़ी गड्डियाँ ग़ायब मिलीं। पुलिस को सन्देह है कि रेलगाड़ी का कोई ड्राइवर चोरों से मिला हुआ है। इस मामले की छानबीन हो रही है।

तो रेल की इस चोरी के मामले में भाई साहब भी शामिल थे। विपिन का मुँह ग़ुस्से और ग्लानि से विद्रूप हो जाता है।

चन्ना बता रहा था कि बुझारथ सिंह को चारों ओर से घेरकर पुलिस चौक के गोकुल पंसारी की दूकान पर ले गयी थी।

गोकुल ने बुझारथ सिंह को देखकर गर्दन झुका ली। दरोग़ा ने कड़ककर पूछा—"यही हैं?"

"जी हाँ।" उसने धीरे से कहा—"ये सामान बाबू साहब ने ही बेचे थे। छोटे सरकार का चेहरा एकदम काला पड़ गया था। वे थानेदार से कुछ कहना चाहते थे। पर उसने एक न सुनी। कपड़े का व्यापारी सरदार हरजीत सिंह, हलवाई रतनलाल, और बेटाबढ़ के पंडित जिनकी चौक में पान-ज़र्दा की दूकान है, सभी थानेदार को समझा-बुझाकर मामला सलटाना चाहते थे।

"अरे दरोग़ा जी, बड़े आदमियों की इज़्ज़त का भी कुछ ख़याल करिये साहब! बुझारथ बाबू इस इलाके के नामी रईस हैं। कुछ तो मुलाहिज़ा कीजिए।" सरदार जी ने बहुत कहा, पर दरोग़ा कुछ सुनने को तैयार न था।

"क़ानून बड़े-छोटे का ख़्याल नहीं करता सरदार जी!" वह बंदर की तरह खौंखियाया और उसने इक्के पर छोटे सरकार को बैठा लिया। मैं घोड़े की बागडोर पकड़े एक तरफ़ खड़ा था। छोटे सरकार ने मेरी ओर देखकर आँख मारी। मैं उसका कुछ मतलब नहीं समझ सका। पुलिस

उनको लेकर चली गयी थी। सरदार हरजीत सिंह मेरे पास आकर बोले—"अब क्या तमाशा देखते हो। दौड़कर जाओ, छावनी में खबर करो। यह सारी गड़बड़ी खुदाबक्सा ने मचायी है।"

विपिन दरवाजे से उठकर बखरी की ओर चला। ये सारी बातें वह कनिया से कैसे कहेगा। एक न एक बखेड़ा खड़ा हो जाता है। अभी पुष्पा वाली घटना से ही साँस लेने की फुर्सत नहीं मिली थी कि यह एक दूसरा झमेला आ गया।

कनिया आँगन में धूप में चारपाई डालकर लेटी थीं। गंगा की बालू से मिसे-धोये बाल पाटी से नीचे लटके हुए थे। धूप की कुनकुनी उनके सारे बदन को सुखदायक आलस में लपेटे हुए थी।

विपिन चारपाई के पास जाकर खड़ा हो गया। कनिया निश्चिन्त सोई थीं। विपिन को इस कनिया पर अचानक बहुत दया हो आयी। एक क्षण का चैन भी इस औरत के भाग में नहीं बदा है।

"भाभी!"

कनिया हड़बड़ाकर उठ बैठीं—"जरी नींद लग गयी थी।" वे बहुत बेचारी सी हँसी में डूबी-डूबी बोलीं, जैसे उनसे कोई बहुत बड़ा अपराध हो गया हो।

विपिन चुपचाप उन्हें देखता खड़ा रहा। उसकी समझ में नहीं आता था कि बात कहाँ से शुरू करे। एक उलझे हुए तागे का गोल बंडल उसके गले में अटक गया था, जिसका सिरा पकड़ने की कोशिश में जीभ लटपटा रही थी।

"क्या बात है विपिन?"

कनिया का सुषुप्त अवचेतन शायद संकटों को भाँप लेने की अद्भुत शक्ति से भरा था। उनसे एक क्षण के लिए भी कुछ छिपा पाना विपिन के लिए हमेशा ही असंभव सा रहा है।

"भाई साहब को जमनिया की पुलिस पकड़कर ले गयी।" विपिन को लगता है कि सोच-समझकर तौल-तौलकर बात कहने से कोई फ़ायदा

नहीं। आँख मूँदकर परिणाम की बिना चिन्ता के फर्र से नश्तर खींच देना ही एकमात्र दवा है।

"क्या?" कनिया की आँखें ललाट में सट गयीं। भयभीत आँखों को शायद उस अभेद्य दीवाल में ही कोई संध मिल जाए।

"अभी-अभी चन्ना आया है घोड़ा लेकर। कहता है कि चौक में हलवाई की दूकान से मिठाई खरीदकर पानी पीया और ज्यों ही चलने को हुए, थानेदार ने उन्हें पकड़ लिया। सुना सीपिया नाले पर ट्रेन रोककर सामान चुराने के मामले में गिरफ़्तारी हुई है। सरदार हरजीत सिंह, रतनलाल मिठाई वाला और बेटाबढ़ के पंडित जयकिसुन ने बहुत कोशिश-पैरबी की, मगर कोई नतीजा नहीं निकला। खुदाबक्कस ने पुलिस को खबर की है।"

"हे भगवान्!" कनिया के होंठ अचानक काँपकर वक्र हो गए—"यह आदमी तो सारा कुछ मेटकर जायेगा। क्या कहेंगे लोग। जवान बेटी सर पर है। इसने तो हमें किसी ओर का नहीं छोड़ा। मैं भी सोचती थी कि गाँजा-भाँग, कलिया गोश्त, छर्रा-बारूद के लिए पैसा कहाँ से आता है। आग लगे उस शोहदे की शौक़ीनी में।" वे क्रोध के मारे तूफ़ान में पड़े पेड़ की तरह गनगना रही थीं और हिलती डाल से महुवे के फूल की तरह टप-टप आँसू बरस रहे थे।

"अब क्या होगा?"

"होगा क्या, काटने दो जेहल। पड़ने दो डामल-फाँसी। जो जैसा करे वैसा भरे।"

विपिन जानता है कि इस समय कनिया से बात करने का कोई नतीजा नहीं निकलेगा। वह जितना ही समझा-बुझाकर उन्हें राह पर ले आने की कोशिश करेगा, वे बिदककर दूर भागेंगी, और स्थिति जितनी ही लम्बी होगी, उनके आत्मपीड़न की क्रिया बढ़ती जायगी। विपिन चुपचाप बखरी के बाहर आ गया।

बरामदे के खंभे से पीठ टिकाये रमचन्ना वैसे ही बैठा था। घोड़ा

चबूतरे के किनारे जमी दूबों को निचले होंठ की ठोकर से कुरेद-कुरेदकर चबा रहा था ! बीच-बीच में फुर्र-फुर्र की आवाज़ से घास में दुबके कीड़े-मकोड़ों को उड़ाने की कोशिश भी करता जाता। चन्ना ने अभी उसकी पीठ से पलानी उतारी नहीं थी। विपिन घोड़े के पास पहुँचा। उसने लगाम पकड़कर उसे चरनी के पास लगाया और चढ़ गया।

"चन्ना। कहीं जाना मत। यहाँ देखते रहना, मैं अभी आया!" घोड़ा फिर क़स्बे की ओर चल पड़ा।

• •

छब्बीस

सरदार हरजीत सिंह बुझारथ सिंह का दोस्त है। उसे वे अक्सर गाँव के मौसमी तोहफ़े भेजते रहते हैं। चिवड़ा, मटर, होरहा, हरा चना, गन्ने और ईख का रस। हरजीत सिंह बुझारथ के लिए क्या करता है ? कुछ भी नहीं। वह सिर्फ़ उनकी 'बड़वरगी' बखानता है। उनकी शाह-ख़र्ची का रुतबा बुलन्द करता है। अनजान लोगों से बात करते वक़्त 'भाई, रईस हो तो ऐसा' के नारे लगाता है। वैसे वह आदमी अच्छा है, क्योंकि वह भाई साहब के गाँजे के शौक़ में उनका साथ नहीं देता। ख़ुदा-बक्सा से सरदार जी को सख्त नफ़रत थी। वह उसके नाम पर थूक देता। गोया पंजाब के साम्प्रदायिक दंगों के लिए ख़ुदाबक्सा ही जिम्मेदार है। उसी की वजह से सरदार का घर जला; उसी की वजह से उसके बीबी-बच्चे बिछड़ गए। उसी की वजह से....इस क़ौम की वजह से !....

"हरामी !" सरदार की आँखें ख़ून से भर जातीं—"मैं इस क़ौम से

नफ़रत करता हूँ।" बुझारथ ने हरजीत सिंह को दावत दे रखी थी। छावनी पर। वहीं वह विपिन से पहली बार मिला।

"अरे सरदार जी!" विपिन ने गुस्से से काँपते सरदार से कहा था—"वहशत किसी क़ौम की ख़ासियत नहीं होती। वह तो एक जनून है, जिसे चन्द लोग अपने स्वार्थ के लिए क़ौम को पिलाते हैं।"

"हमने यह सब फलसफा बहुत सुना है बाश्शाहो।" हरजीत सिंह ने थका चेहरा बनाकर कहा—"जिस पर गुज़रती है, वही जानता है। देख लेना, यह खुदाबक्सा एक दिन दग़ा देगा, हाँ।"

और आज हरजीत सिंह की वह बात विपिन को बार-बार याद आ रही है।

●

जिस दिन खुदाबक्स, रमचन्ना और बुझारथ सिंह ने तालाब पर जाकर मछली मारते सिरिया को पीटा, उस दिन से खुदाबक्स के व्यवहार में एक नया परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा! शाम हो रही थी, विपिन दरवाज़े पर चारपाई डालकर बैठा था। खुदाबक्स मचिये पर बैठा रमचन्ना से बातें कर रहा था। बुझारथ सिंह कहीं गये थे।

"चन्ना!" विपिन ने पुकारा।

चन्ना बातचीत में वैसे ही लगा रहा। पता नहीं, कौन सी दिलचस्प कहानी सुन रहा था वह कि उसने विपिन की बात सुनी-अनसुनी कर दी। विपिन के सर में बहुत दर्द था। उसे हठात् चन्ना पर बहुत गुस्सा आ गया।

"सुनते नहीं हो?" विपिन उसकी ओर मुड़कर काफ़ी तेज़ होकर बोला—"ज़रा होश में रहा करो। मैं कब से चिल्ला रहा हूँ और तुम कान में तेल डाले बैठे हो।"

चन्ना सकपका गया। खुदाबक्सा कुटिल ढंग से हँसा।

"जाओ, देवू से कहना कि मेरे सर में बहुत दर्द है, कोई गोली-वोली दे दें।"

चन्ना चलने को हुआ तो खुदाबक्सा ने टोका—"रे चन्ना, पहले भूसा करमोय (हल्का आर्द्र) कर घोड़े के नाद में डाल ले। चना भिगोया है न? भाई, ठीक से दाना मिलाया कर। देख रहा है घोड़े की कोख खपची है। छोटे सरकार देखेंगे तो बहुत बुरा मानेंगे।"

चन्ना पेशोपेश की मुद्रा में खड़ा रहा। वह सोच ही नहीं पा रहा था कि वह क्या करे। उसने बड़ी विवशता के साथ विपिन की ओर देखा।

"जो मैं कह रहा हूँ वह करो। यहाँ सभी मालिक ही बन जाते हैं। सबका दिमाग़ सातवें आसमान पर चढ़ा रहता है।"

"मैंने तो इसलिए कहा कि छोटे सरकार नाराज़ होंगे।" खुदाबक्सा खीझकर बोला।

"तो तुम कह देना छोटे सरकार से। वह मुझसे नाराज़ होंगे, तो मैं देख लूँगा। तुम क्यों बीच में कूदते हो?"

खुदाबक्सा कुछ नहीं बोला। चन्ना चला गया।

विपिन चारपाई पर लेट गया। खुदाबक्सा की उस पर हावी होने की यह पहली कोशिश थी। विपिन सोच नहीं पा रहा था कि आख़िर उसकी ऐसी हिम्मत हुई कैसे?

पता नहीं, उसने बुझारथ सिंह से इस सम्बन्ध में कुछ कहा या नहीं। यह ज़रूर था कि वह काफ़ी उखड़ा-उखड़ा रहने लगा। विपिन से उसकी बातचीत क़रीब-क़रीब बन्द सी हो गयी थी।

खुदाबक्स को बुझारथ सिंह ने ही रखा था। वैसे जैपाल सिंह ने उस नियुक्ति का कभी विरोध नहीं किया, पर वे खुदाबक्सा के साथ बुझारथ सिंह की घनिष्ठता पसन्द नहीं करते थे। खुदाबक्सा बखरी में ही खाता था। उसे बखरी का खाना बहुत पसन्द नहीं था और न तो कनिया को खुदाबक्स और बुझारथ का मन-पसन्द खाना बनाना ही पसन्द था। इसीलिए हफ़्ते में एक रोज़ खुदाबक्सा दरवाज़े पर गोश्त या मछली ज़रूर बनाता। दोनों

के लिए बखरी से खाना यहीं मँगा लिया जाता। बुझारथ को खुदाबक्सा के साथ खाने में कोई एतराज़ नहीं था। कनिया को ऐसे 'म्लेच्छों' से नफ़रत थी, मगर वे बिना शिकायत के, मरते हुए ससुर को दिये अपने वचनों को निभाती रहीं।

उस दिन रोज़ की ही तरह शीला खाने की थाली लिये, निकसार में आयी और खुदाबक्सा की थाली में खाना रखने लगी। खुदाबक्सा, पता नहीं उस दिन चिढ़ा था या क्या, खाना देखकर भड़क उठा।

"मैं बैल नहीं हूँ, जो सानी-भूसा खाकर पड़ा रहूँगा।" उसने तिनककर कहा।

शीला बेचारी क्या बोलती। वह चुपचाप थाली कटोरा लिये भीतर चली गयी। उसने सारी बातें कनिया से कह दीं।

कनिया दालान के बाजू से सटकर खड़ी हो गयीं।

"क्या बात है खुदाबक्स मियाँ, खायक ठीक नहीं बना है क्या?"

खुदाबक्सा थाली में रखे भात को ठीक से सजा रहा था। कनिया की बात सुनकर उखड़ गया—"यह कौन सी नई बात है। मुझे आँख नहीं है क्या? मैं कई दिन से देख रहा हूँ।"

"क्या देख रहे हो?"

"यही कि मुझे उपरफट्टू समझकर टाल दिया जाता है।"

"मेरे घर में दो तरह का खाना नहीं बनता। जो सबके लिए बनता है, वही तुम्हारे लिए भी आता है। तुमको यह पसन्द नहीं तो कोई दूसरा इन्तज़ाम कर लो।"

खुदाबक्सा ने खाने की थाली पटक दी। गुस्से से काँपता हुआ बोला—"आपकी ज़बान बहुत चलती है। आप खुदाबख्श मियाँ को नहीं जानतीं। मैं छोटे सरकार की तरह नहीं हूँ कि सारा जुल्म सहता रहूँ।"

"छोटे सरकार ही तुमको अपने से बड़ा समझते होंगे, क्योंकि तुम उनके ऊँच-नीच कामों में उनका साथ देते हो। मैं तुमको वही समझती हूँ, जो तुम हो। मुझे आँख दिखाने की कोशिश मत करना मियाँ साहेब।"

कनिया की आँखें एकाएक भरभरा आयीं। "अपनी-अपनी क़िस्मत है। वरना मीरपुर के बाबुओं की ड्योढ़ी में तुम्हारे जैसे लोग हेलने की हिम्मत नहीं करते थे।"

"यह सब ज़बानदराज़ी कहीं और दिखाइयेगा।" खुदाबक्सा किटकिटाकर बोला—"नहीं, ठीक नहीं होगा।"

"क्या ठीक नहीं होगा?" एक तेज़ आवाज़ पीछे से आयी। बुझारथ सिंह दरवाज़े पर खड़े थे। उनके हाथ में चाबुक थी। चन्ना को घोड़ा थमाकर वे बखरी में घुसे ही थे कि खुदाबक्सा की आवाज़ सुनकर दरवाज़े पर ठिठककर खड़े रह गए। उन्होंने पूरी बातचीत सुन ली थी। वे एकटक खुदाबक्स की ओर देख रहे थे। कनिया बाज़ू से सटी हिचक रही थीं।

"तुम्हारी ऐसी हिम्मत कि तुम उन्हें आँख दिखाते हो?" बुझारथ सिंह दाँत पीसते हुए बोले—"नीच आदमी को सिर चढ़ाने का यही नतीजा होता है। जिस औरत को मैंने कभी कोई कड़ी बात नहीं कही, उसी को तुम ज़लील कर रहे हो!"

"आपकी इसी कमज़ोरी का यह नतीजा है छोटे सरकार कि उनकी हिम्मत बढ़ गयी है और इसी वज़ह से वे आपको ज़र्रे बराबर भी नहीं समझतीं।" खुदाबक्सा बुझारथ सिंह की ओर चुनौती भरी नज़र से देखते हुए बोला।

पता नहीं, कौन-सी सोई लहर अचानक जगी कि बुझारथ का चेहरा बिल्कुल लाल हो गया। उन्होंने आव देखा न ताव, खींचकर चाबुक जमा दी—"साले हरामी, तुमसे क्या मतलब? तुम कौन होते हो मेरे-उनके बीच पड़नेवाले?"

चाबुक की चोट खुदाबक्स के बाज़ू और पीठ के हिस्से में लपट की तरह उपट गयी थी। वह उस चुनचुनाती पीड़ा से तिलमिलाकर बोला—"मैं कोई जुलाहा-धुनिया नहीं हूँ बाबू साहब! पठान का बच्चा हूँ। इस बेइज़्ज़ती का बदला मैं लेकर रहूँगा खातिर जमा रखिए।"

बुझारथ इस धमकी से और भी उबल पड़े। जब बदला लेगा ही तो

कचोट क्या रह जाए। उन्होंने ताबड़तोड़ पिटाई शुरू कर दी। चाबुक के लाल निशान खुदाबक्स के बदन पर छा गए। कनिया ने दौड़कर उनका हाथ पकड़ लिया।

"लोगों को सिर चढ़ाते हैं, तो सहना भी सीखिए।"

बुझारथ कुछ बोलना चाहते थे पर बोल न सके। कनिया के हाथों से उन्होंने अपनी कलाई छुड़ा ली। खुदाबक्स दालान से बाहर जाने लगा तो बुझारथ एकाएक उदास हो गए। गुस्से की आग धीमी पड़ गयी थी। मगर उस रोशनी में भी इतना तो देखा ही जा सकता था कि बुझारथ के चेहरे पर दहशत और निरर्थक आवेश के प्रति ग्लानि का भाव घना हो रहा है। इसे कनिया के हाथ के स्पर्श से उत्पन्न आत्मविश्वास और अबूझ स्नेह की चिकनाई भी मिटा सकने में असमर्थ थी।

खुदाबक्स बाहरी बइठके में आ गया था। पूरब वाले पक्खे की आलमारी से उसने अपने सामान निकाले थे। कपड़ों को लपेटा था और पंद्रह-बीस मिनट के भीतर ही सब कुछ समेटकर वह करैता से चला गया था।

●

खुदाबक्स चला गया। उस समय बुझारथ सिंह ने इस घटना पर ऊपर-ऊपर से काफी सन्तोष व्यक्त किया। बिना देर किये नहा-धोकर खाना खाया। बइठके में लेटकर चैन की साँस ली। रमचन्ना चीलम भरकर ले आया और गुड़गुड़ी पर रख गया। बड़े इत्मीनान से नैचे को मुँह से सटाकर उन्होंने अलसाये कश खींचे। बग़ल वाली चारपाई पर विपिन लेटा था। बुझारथ सिंह ने उसकी ओर देखते हुए कहा—"सुना तुमसे भी एक दिन लड़ गया था?" विपिन कुछ नहीं बोला।

बुझारथ अपने मन को सभी तरह के औचित्य का विश्वास दिलाने की गरज़ से कहते गये—"सोचा था, छावनी है। यहाँ गाँववाले हम लोगों को पराया ही समझते हैं। इनके लिए कुछ भी करो, इनके बीच परदेशी

की तरह रहना होता है। मालिक,काका ने वंशी सिंह, फिर धरमू सिंह को सीरवाह बनाया। क्या हुआ? नतीजा सामने है! वंशी सिंह ने खुद हवेली खड़ी कर ली। धरमू सिंह रुपये दाबकर बैठ गये। इसीलिए इस खुदाबक्सा को ले आया। घोड़ा फेरने का तो एक बहाना था। खुदाबक्स का न तो गाँव-घर से कोई नाता था, न तो बिरादरी से कोई शील-मुरव्वत। ऐसे लोग बड़े काम के होते हैं। इसीलिए इसको हम इतना मानते थे जैसे घर का आदमी हो। मगर इस साले को न देखो। कैसा आस्तीन का साँप निकला। हाथ चाटते-चाटते गर्दन पर सवार हो गया।"

"आदमी अच्छा नहीं है, यह तो कई लोगों ने कितनी बार कहा, पर आप कुछ सुनते नहीं थे।" विपिन बिना बुझारथ सिंह की ओर देखते हुए बोला।

बुझारथ सिंह चुप हो गए। उन्हें यह जानकर बहुत सन्तोष हुआ कि खुदाबक्स से विपिन भी नाराज़ है।

मगर उनका सन्तोष स्थायी नहीं रहा। उस शाम गाँजे की दम लगाकर बुझारथ सिंह मौन बैठे रहे। न पहले वाली हँसी, न ठहाके और न तो पिछली मनोरंजक बातों की यादें ही। वे अँधेरे में तकते खोये रहे। कह रहा था, बदला लेगा। क्या बदला लेगा साला। बुझारथ सिंह के चेहरे पर अचानक धुएँ की पर्त छा गयी। जाने कितने राज़ों को जानता है वह। कहीं किसी से कुछ कह दे? वे ज्यों-ज्यों इन बातों को सोचते गये त्यों-त्यों उनका चेहरा नीले जल में डूबी लाश की तरह पीला पड़ता गया। मगर कह कैसे देगा। वह खुद उन कामों में शामिल नहीं था क्या?

धीरे-धीरे मन को समझा-बुझाकर उन्होंने इस लायक़ कर लिया कि उस दिन बिना सुस्त हुए खाना खाया जा सके। शीला खाना खाने के लिए बुलाने आयी तो बुझारथ सिंह यों उठे, जैसे बहुत थके हों। दिमाग़ के भीतर भी कोई यात्रा होती है, यह शायद उन्होंने पहली बार जाना था और सहारा लेने के लिए बोल पड़े—"भगवन्त हो, भगवन्त हो।"

दिन पर दिन बीतते गए और बुझारथ को लगने लगा कि वे अला-

नाहक़ परेशान थे। झूठे तमाम बातें सोच-सोचकर मन को खराब कर रहे थे। उन्होंने लम्बी साँस खींचकर सब कुछ को वहम कहकर अपने को स्वस्थ करना शुरू कर दिया। उनकी बखरी में आना-जाना बढ़ गया। कनिया के प्रति उनके मन में एक नई आत्मीयता जग गयी। तिरस्कृत पत्नी के सम्मान की रक्षा के लिए उन्होंने जो कुछ किया था, वह एक अदृश्य कवच की तरह उनका सहारा बन गया। वे इस विश्वास से काफ़ी खुश नज़र आने लगे कि कनिया उन पुरानी बातों को भूल जायेंगी, जिनकी वजह से उनसे खिंची-खिंची रहती थीं।

अचानक कनिया के चेहरे का खिंचाव भी कम हो गया था। उनका चेहरा बहुत आकर्षक और मासूम लगने लगा था। जो शायद हमेशा के लिए खो गया था, उसे अचानक उपलब्ध करने की कृतविद्यता के कारण उनकी आँखों का उजाड़पन समाप्त हो गया था और उनकी ढेले की तरह बड़ी-बड़ी लगनेवाली आँखें कुछ छोटी, कुछ मुंदी-मुंदी, सजीव तथा अपनत्व भरी लगने लगी थीं।

●

विपिन को यह परिवर्तन बड़ा प्रीतिकर लगा। एक दिन सुबह-सुबह जब वह मुँह-हाथ धोकर नाश्ता करने आया तो कनिया उसकी चारपाई के पास आकर, हाथ में कटोरा थमाते हुए बोलीं—"विप्पी, तुम अपने लिए कपड़े क्यों नहीं खरीद लाते क़स्बे से?" विपिन उनकी ओर किंचित् आश्चर्य से देखता रहा। महीनों बाद उन्होंने 'विप्पी' कहा था। उनके स्वर की आर्द्रता भी अनपहचानी नहीं रही। विपिन को उस दिन कनिया का चेहरा बड़ा नन्हा और टटका धोया-धोया सा लग रहा था। किसी पुरुष को निवेदित की जानेवाली भावनाएँ जैसे सद्यः सार्थक होकर चुक गयी हैं, इसलिए विपिन के प्रति अर्पित स्नेह में वात्सल्य के अंश की मात्रा अधिक हो गयी है।

विपिन को यह सब बहुत अच्छा लगा। वह सोचता था कि एक प्रकार से खुदाबक्सा का कनिया से झगड़ा करना शुभ ही हुआ। अब घर में अनजानी सीलन हर कहीं फैली-फैली नहीं रहेगी।

●

और आज यह कांड हो गया। घोड़ा स्टेशन के फाटक को पार करके क़स्बे में हेल चुका था। थाना उत्तर तरफ बसस्टैंड के पास है, क़स्बे से थोड़ा दूर।

विपिन बुझारथ सिंह से मिल नहीं सका। थानेदार ने बड़ी आत्मीयता से बातें कीं। एक हज़ार रुपए घूस देकर इस पूरे मामले को दबा देना कोई मँहगा सौदा नहीं है। उसने भाई साहब से मिलने की जिज्ञासा दिखाई तो थानेदार हँसते हुए बोला—"विपिन बाबू! अब जो करना हो, जल्दी कर डालिए। मिलना-जुलना तो कल भी हो जायेगा। रेल के डाके का यह मामला बहुत फँसावट वाला है। मेरे तईं मामला होता तो मैं कभी बुझारथ बाबू को गिरफ़तार करता भला? बात ऊँचे पहुँच चुकी है। मुझे इसी वक़्त कुछ न कुछ करके इसे सलटाना होगा। आप कल दस बजे तक नहीं आयेंगे तो समझ लीजिए, चालान हो गयी। फिर बात मेरे वश के बाहर हो जायेगी।"

"आप इत्मीनान रखिये इंस्पेक्टर साहब, मैं दस बजे के पहले ही यहाँ हाज़िर हो जाऊँगा। उस समय तक आप बात बिगड़ने नहीं देंगे, इसका मुझे पूरा भरोसा है।"

"आप खातिरजमा रखिये भाईजान, मेरे मुँह में दो जुबान नहीं हैं। जो कह दिया, वह कह दिया। जो बात से बदले, समझ लीजिए, उसके खून में दोगलापन है।"

विपिन थानेदार से हाथ मिलाते वक़्त इस ढंग से हँसा, जैसे उस पर कृपा कर रहा हो। उसकी हँसी में एक हल्का रंग विवशता का भी था

कि यदि खून में दोगलापन सिद्ध भी हो गया तो वह क्या कर लेगा। दोगलापन किसी अफ़सर के लिए अयोग्यता तो है नहीं।

●

घर लौटकर विपिन ने जब सारी बातें कनिया को बतलाईं तो वे एक क्षण मौन ताकती रह गयीं। शीला बग़ल की चारपाई की पाटी से सटकर ज़मीन पर बैठी थी, गर्दन झुकाये, पर उसकी मुद्रा से स्पष्ट था कि वह बाबू जी के बारे में समाचार जानने के लिए कितनी उत्सुक थी। बुट्टू चारपाई पर, हथेली में गाल टिकाये उदास बैठा था।

इन बच्चों की भंगिमा देखकर विपिन समझ गया कि गाँव की गलियाँ तीखे-कड़वे बदबूदार धुएँ से भर गयी हैं। इस तरह की कातरता सिर्फ़ वैसे ही अदृश्य धुएँ से टकराकर चेहरे पर छाती है। भाई साहब जैसे भी रहे हों, अच्छे-बुरे, थे और उस रूप में होना इनके लिए एक भूमिका थी, जिस पर खड़े होकर ये गाँव की गलियों में निर्द्वन्द्व घूमते थे। आज वह भूमिका सहसा पैरों के नीचे से हट गयी है। उसने क़स्बे जाते वक़्त चन्ना को इसीलिए मना किया था कि वह दरवाज़े से कहीं जायेगा तो ख़ामखा बात फैलेगी। पर बातों का प्रचार किसी एक के मौन की मेड़ से ही कहाँ रुकता है। उस समय क़स्बे की चौमुहानी पर करैता का केवल चन्ना ही तो नहीं था। अनेक थे। प्राचीन परम्परा का निर्वाह करने गए थे लोग, आगे-आगे घोड़े पर ज़मींदार, पीछे-पीछे उनके प्रजा-परिजन। गाँव का मालिक डकैती में पकड़ा गया, यह सब देखकर उन लोगों को कैसा-कैसा लगा होगा? पहले ज़माने में ऐसी घटनाओं को देखकर लोग यों बरतते थे कि जैसे न कुछ देखा है, न सुना है। अनजाने में कभी संगी-दोस्तों के बीच अचानक कुछ मुँह से निकल जाए तो हाथों से कान पकड़कर दाँतों से जीभ काट लेते थे। ज़मींदार के प्रति सहानुभूति औसत से ज़्यादा कुछ विशेष तरह की, न उन्हें तब थी, न अब है। हाँ, यह ज़रूर है कि उनके

भीतर का वह 'स्प्रिंग' अचानक टूट ज़रूर गया है, जिसकी ऐंठन से कसकर वे कान पकड़ लेते थे, या जीभ काट लेते थे। अब वे बड़े रस के साथ नमक-मिर्च लगाकर बड़े लोगों के करतब सुनाया करते हैं।

"एक हज़ार लेगा थानेदार।" विपिन ने कहा। मुँह-हाथ धोकर चैन से बैठते ही जैसे यह वाक्य बिना भूमिका के पेट से बाहर आ गया हो। इस नटखट वाक्य के हाव-भाव, अंग-चालन को देखकर कनिया की आँखें ललाट में धँसने लगीं। विपिन को एक क्षण के लिए कनिया निहायत भद्दी-भद्दी सी लगने लगीं। उनकी आँखें फिर फैलीं-फैलीं, ढेले की तरह उभरी हुई लगने लगी थीं।

काफ़ी देर तक रुकी साँस को फेफड़े ने बाहर झोंक दिया और कनिया बोल पड़ीं—"एक हज़ार!" विपिन कुछ न बोला।

कनिया पता नहीं उसकी चुप्पी से या साँस लेने में हो रही परेशानी से घबराकर बिफर पड़ीं—"जाने दो, काटें जेहल। मैं कहाँ से लाऊँगी एक हज़ार। जो कुछ था वह तो बेच-बाचकर किसी तरह चलाती रही घर का ख़रच, कि कोई मीरपुर के बबुआनों की हालत देखकर हँसे नहीं। अभी जवान लड़की सर पर है। उसकी शादी में आठ-दस हज़ार लगेगा कि नहीं? उसी के लिए जो-जो न करना पड़े। बीच में एक ठो नया बवेला खड़ा हो गया। सोर में पैर डालकर तोड़ना इसी को कहते हैं। डकैती करके धन्ना सेठ बनने चले थे। आदमी को कुछ लाज-शरम भी होती है। ठौर-कुठौर पाँव रखते सोचता-विचारता है। मगर मैं तो ऐसे के पाले पड़ी कि सरे बाज़ार नव हँसाई हो गई।"

"जो होना था वह तो हो गया, अब जो करना है उसको सोचो। कल सुबह अगर दस बजे तक दरोगा को रुपये नहीं मिलेंगे तो वह चालान कर देगा।"

कनिया ने ग़ुस्से में पास रखी सील पर अपना हाथ पटक दिया। चूड़ियाँ खनखनाकर टूट गयीं—"चलो छुट्टी हुई।" वे मुँह विकृत करके बुदबुदायीं, "ऐसे मरद से रँडापा ही अच्छा।"

विपिन ने कनिया को ऐसी हालत में कभी नहीं देखा था। वे विकट से विकट स्थिति में भी अपना धीरज नहीं खोती थीं। आज की कनिया जैसे घरफूंक पागलपन में एक मिथ्या ख़ुशी और राहत खोजने की कोशिश कर रही थीं। वे जानती थीं कि यह ख़ुशी सचमुच ही ख़ुशी नहीं है, इसी कारण ग़ुस्से में भी उनके चेहरे पर हार और निराशा के भाव ही ज्यादा साफ़ उभर रहे थे।

खटिये की पाटी से सटी शीला और खटिये पर मुँह लटकाये बैठा बुट्टन—दोनों ही अजीब तरह की मुद्रा में उन्हें देख रहे थे। बच्चों के चेहरे की यह दयनीयता देखकर विपिन काँप उठा।

"भाभी, यह सब सोचने-विचारने का समय नहीं है। रुपया का इन्त-ज़ाम कहीं से करना ही होगा। बुरा न मानो तो एक बात कहूँ।"

"कैसी बात ?"

"माई के पास एक कंगन था।"

"सुन लो विपिन बाबू।" कनिया गर्दन झटककर बोलीं—"मैं टुकड़े-टुकड़े बिक जाऊँगी। पर वह कंगन नहीं दूँगी। मरते समय अइया ने उसे मेरे हाथ में देकर कहा था कि यह कंगन विपिन की बहू को दे देना। मैं पुरखों से दग़ा नहीं कर सकती।"

उन्होंने एकदम निःस्पृह होकर मुँह फेर लिया। विपिन कुछ न बोला।

"फिर तुम्हें कैसे मालूम उस कंगन के बारे में ?" ग़ुस्से की लहर फिर तड़पकर उछली—"मैंने तो तुमसे कभी कहा नहीं।"

विपिन चुप रहा।

●

बहुत पहले की बात है। तब वह क़स्बे के हाईस्कूल में पढ़ता था। अक्टूबर में दशहरे की छुट्टी थी। खूब बढ़िया धूप थी। माई अपने बक्सों का सामान निकालकर आँगन की चारपाइयों पर पसार रही थीं। चटक

साड़ियाँ, ब्लाउजें, ऊनी कपड़े, पिता जी का एक पुराना फोटो, कुछ कच-हरी काग़ज़ात—यानी यह कि आँगन बक्से में देर तक रखी चीज़ों की गंध से भर गया था। और सूरज की किरणें रेशमी कपड़ों से टकराकर आँखों को नाना रंगों से भर-भर जाती रहीं। विपिन को धराऊँ चीज़ों का इस तरह सुखाया जाना बड़ा अच्छा लगता था। परिग्रही वृत्ति का भी एक अजीब खटमिट्ठा स्वाद होता है। वह खाना खाकर पूरी दोपहरी इन चीज़ों को माई के साथ उलटता-पुलटता रहता। फिर शाम होते-होते धूप दिखाई चीजें फिर अपने-अपने घरों को लौट जातीं। उसी बार विपिन ने बक्से में देखा था कि कुछ ऐसी भी चीजें हैं, जिन्हें माई धूप में रखने से बचाती रहती थी। काठ की एक सन्दूकची थी, जिस पर हाथीदाँत की कल्पलताएँ बनी थीं। विपिन ने अम्मा की आँख बचाकर उसे खोल लिया था। उसमें एक जोड़ी कंगन था। सोने का। उसके बारीक़ रवे बहुत लुभाने थे। बीच-बीच में गुलाबी मीने जड़े थे। विपिन एक कंगन को उठाकर अंगुली में फँसाकर नचाने लगा था।

तभी अम्मा बाहर से कुछ सामान लिये बक्से के पास आयीं। विपिन के हाथ में कंगन देखकर मुस्करायीं—"तेरी बहू के लिए है।" उन्होंने धीरे से कहा और कंगन ले लिया था, फिर सन्दूकची में बन्द करके बक्से के तल में डाल दिया था।

आज विपिन को अपने परिवार की इज़्ज़त तराज़ू पर चढ़ी देख, उन्हीं कंगनों की याद आयी थी, पर कनिया का यह नया रूप देखकर वह इस तरह सहम गया कि उसको कुछ भी कहने की हिम्मत न पड़ी।

●

उस रात जैसी रात शत्रुओं के भाग्य में भी न आये। विपिन पूरी रात सो न पाया। वह क्या-क्या मनसूबे लेकर गाँव आया था। अपनी जन्मभूमि को मृत केंचुल से निकालने की सारी तमन्नाएँ एक-एक करके

ख़त्म होती गयीं। गाँव को वह क्या ठीक करेगा, क्या सुधारेगा। जब घर ही ऐसे बवंडर में पड़ा है कि इससे बचने का कोई रास्ता नहीं सूझता। आज मालिक काका नहीं हैं। भाई साहब हवालात में बन्द हैं। सारी जिम्मेदारी अनचाहे विपिन के कंधे आ गयी है। और वह ज्यों-ज्यों इस चक्रव्यूह से निकलने की कोशिश करता है त्यों-त्यों उसे लगता है कि मीरपुर के बबुआनों का पुण्य क्षय हो चुका है। कुकर्मों के बीहड़ सर्प उसके परिवार के हर अंग को जकड़ रहे हैं। दस बजे तक रुपये थाने न पहुँचे तो दरोगा भाई साहब की चालान कर देगा। फिर चौगुनी दौड़धूप, ज़मानत-जहालत, मुकदमा कचहरी—जाने किस भँवरजाल का चुम्बक उसके परिवार की डोंगी को अपनी ओर खींच रहा है।

सुबह होने ही वाली थी। विपिन को लगता है कि यह सुबह उसके ख़ानदान के चेहरे पर कालिख की अन्तिम कूँची फेरने के लिए आ रही है। रात भर जागते रहने से आँखें बुरी तरह जल रही थीं। पुरवैया हवा से शरीर का हर जोड़ टभक रहा था। बिस्तरे पर यों ही इधर-उधर करवटें बदलकर मन को थकाते रहने में भी एक सुख है, झूठा सा सुख, जो कुछ देर के लिए जख्म की टीस को भुला देता है। पर इस सुख में पड़े रहने का भी धैर्य कहाँ ?

हाथ मुँह धोकर विपिन बखरी के आँगन में आया तो उसने कनिया को ज़मीन पर बैठी देखा। वे चारपाई पर सिर रखकर झुकी बैठी थीं। विपिन उसी चारपाई के पैताने जाकर खड़ा हो गया। आहट पाकर कनिया ने गर्दन उठायी। उनकी आँखें सूजी-सूजी और लाल थीं।

उन्होंने खटिये के नीचे से कुछ खींचा। वह उनके गहनों का डब्बा था। उसे धीरे से उन्होंने चारपाई पर रख दिया।

विपिन डब्बे को ताकता खड़ा रहा। पर इस तरह खड़ा रहकर बिसूरने का यह समय नहीं है। उसने मन को कड़ा किया और डब्बे को उठा लिया। कनिया ने सिर फिर से खटिये पर झुका लिया था। जैसे उनकी गर्दन में माथे को सँभालने की ताक़त ही न बची हो।

चन्ना घोड़ा कसकर ले आया। विपिन क़स्बे चल पड़ा। पुरानी डगर, पुराने पेड़, खेत, मैदान। नयी सिर्फ वह स्थिति थी, जो उसे और उसके परिवार को दोनों छोरों पर दोमुँहे साँप की तरह पकड़कर झूल रही थी।

●

जब बुझारथ सिंह बखरी के आँगन में घुसे, तो दोपहर ढल रही थी। दक्षिण तरफ़ की ओरी के नीचे, जहाँ पक्खे की आड़ में छिपे सूरज की रोशनी ने कटावदार छाया डाल दी थी, चारपाई बिछाकर बुट्टू और शीला लेटे थे। कनिया ओरदवानी की ओर पैर-सिर एक में समेटे शिथिल गठरी की तरह पड़ी हुई थीं।

"शीलू ! बाबू जी !" बुट्टू खुशी से चीखता उठ बैठा। शीला और वह चारपाई से कूदकर खड़े हो गए। दोनों के चेहरों पर अजीब खुशी थी, जिसे देखकर विपिन को लगा कि वह अचानक प्रौढ़ हो गया है। कनिया ने कनखी से सब कुछ देख लिया था। वे चुपचाप चारपाई से उठकर कोनिया घर में चली गयीं।

बुझारथ चारपाई पर बैठ गए। विपिन बग़ल की माची पर बैठ रहा।

थोड़ी देर बाद कनिया ने शीला को हाँक दी। वह माँ से मिलकर आयी और लोटा-गिलास धोकर पानी भर लायी।

खिचड़ी की बनी मिठाइयों का कटोरा चारपाई पर रखकर कनिया कोनिया घर के चौकठ पर जाकर बैठ गयीं।

बुझारथ ने यों पानी पीया, जैसे कुछ हुआ ही न हो। मुँह-हाथ धोकर लोटा लुढ़काते हुए बोले—"जो काम आज हुआ है वही कल भी तो हो सकता था कि मुझे हवालात में देखकर तुम देवर-भाभी को खुशी हुई थी ?"

लक्ष्य कनिया की ओर था, इसलिए लुत्ती-छूने जैसे भाव में चमककर

वे ही बोलीं—"हमारे भीतर की शरम अब भी बची है कि देर-सबेर हमसे जो कुछ हो सका, कर दिया। आपने कुछ करने लायक़ छोड़ा भी है किसी को ?"

बुझारथ सिंह एक क्षण कनिया की ओर देखते रह गए। कनिया की मुद्रा देखकर बुझारथ को लगा कि किसी ने दहकते अंगारों पर भरी बाल्टी छपाक् से उड़ेल दी हो। उनका चेहरा घनी भाप में डूब गया।

उन्होंने पाकेट से बीड़ी निकाली और बंडल को हथेलियों से मसलकर ढीला करते हुए बोले—"भगवन्त हो, भगवन्त हो।" बीड़ी निकालकर होंठों में दबा लिया। फिर उन्होंने पाकेट टटोली। माचिस नहीं मिली तो शीला की ओर दयनीय भाव से देखकर बोले—"ज़रा सलाई तो ले आ बिटिया।"

••

सत्ताईस

विपिन, जगन मिसिर और देबू से मिलकर शशिकान्त लौट आया। शाम जाने कब की खत्म हो गयी थी, पर गरमी ज्यों की त्यों थी। जलते अंगारों पर स्याह पर्दा पड़ गया था। ताप में खुश्की की जगह दमघोंट ऊमस ने ले ली थी।

दालान से चारपाई खींचकर उसने सहन में कर लिया। मुंशी जवाहिरलाल ने एक बार पूछा भी था, "क्यों पाँड़े जी, भोजन नहीं बनाइयेगा क्या ?"

"मन नहीं है आज।" उसने धीरे से कहा और सिरहाने रखे बिस्तरे को बिना बिछाये, बिना कुर्ता निकाले चारपाई पर गिर पड़ा।

मुंशी जी के प्रश्न में मात्र जिज्ञासा थी या कुछ और, यह सोचने का उसे अवकाश ही नहीं था। उसकी आँखें बुरी तरह जल रही थीं। हजारों-हजार कंकड़ियाँ जैसे पलकों के नीचे सट गयी हैं। वह जानता था कि लोशन डाल देने से सब धुल-पुंछ गया है, पर वह चुभन मिटती नहीं। चुभन आँखों में ही समाई हो, तो उन्हीं पर सोचे-बिचारे, उन्हें दुलराये-

सहलाये और दर्द को भुलाने या कम करने की कोशिश करे! पर चुभन कहाँ-कहाँ है, उसका भेद वह क्या कहे और क्या जाने। यह सब कितनी कुछ जल्दी हो गया था।

बेतरतीब को तरतीब देने में भी तो राहत नहीं। शशिकान्त को लगता है कि जो कुछ बीता है, उसे आँखों के आगे एक-एक करके खड़ा करने से ही वह कुछ हल्का हो जायेगा, ऐसी बात नहीं; पर टूटे हुए दाँत की खाली जगह पर अगर जीभ बार-बार पहुँचती है तो इसका क्या इलाज?

पर अब क्या हल्का होगा वह? कितनी कोशिश के बाद तिल-तिल करके उसने यह इमारत बनायी थी। अगरचे उसे यह कभी नहीं लगा कि वह कोई बेहद अजीब तरह की, सबसे अलग क़िस्म की कोशिश कर रहा है। पर लोग कहते हैं तो शशिकान्त को भी लगता है कि वह एक अलग विशिष्ट व्यक्ति है। ऐसा न होता तो उसने भी जाने कब का ज़िले के हजारों अध्यापकों की तरह मुर्दनी और 'जस की तस' स्थिति से समझौता कर लिया होता। मगर उसने वैसा नहीं किया। कहीं सतह के भीतर, लहरों के जल को चीरकर अजीब तरह की हरी-पीली आभावाली एक कली रह-रहकर तन उठती थी। निराशा दीनता और जहालत के कीच को फोड़कर निकले हुए अद्भुत कोमल-कोमल हाथीदाँत के बने छत्रक और जब ये उगते थे तो एक एहसास नसों में पारे की तरह दौड़ने लगता था कि ज़मीन कोई बुरी नहीं होती, इन्सान के अन्दर सिर्फ़ विश्वास और आस्था चाहिए। आराम और सुरक्षा की खोल हमें हमेशा तंग घेरे में बन्द करती है।........और शशिकान्त का अन्तर्यामी साक्षी है कि उसने इस कस्तूरी गंध को झुठलाने की कभी कोशिश नहीं की। करैता नाम हर अध्यापक के दिल को भय से भर देता था। बड़े बाबू के शब्द उसके कानों में आज भी किसी तिलस्मी कुएँ के भीतर बजनेवाले घण्टे की आवाज़ की तरह गूँज उठते हैं—"एक ज़हीन आदमी को किसी मुर्दा जगह में 'डम्प' करना कोई बुद्धिमानी तो नहीं है....?"

बड़े बाबू के ये शब्द शायद एक लमहे के लिए ही आग को ढँक सके थे। हवा का एक झोंका गुमरकर उठा था और राख केंचुल की तरह झड़ गयी थी। शशिकान्त आफिस से बाहर आ गया था। आधे आस्तीन के नीचे केहुन पर जिला परिषद् की इमारत की दीवाल को सफेदी घिस कर चुपड़ गयी थी। दाहिने हाथ की हथेली से उसे रगड़कर छुड़ाते हुए वह एक क्षण के लिए अन्तस्थ हो गया था। शंका की परत रगड़कर साफ हो गयी। उसे लगा कि ये बातें सिर्फ़ रोड़ा बनकर उन लहरों में कूदने से उसे रोकना चाहती हैं, जो उसे बहाकर उस तट पर ले जाने को हैं, जहाँ पहुँचने की तमन्ना हर इन्सान की आत्मा में बीज मन्त्र की तरह छिपी रहती है।

उसने दुखती पीठ को अपनी चेतना से अलग कर देने के लिए करवट ली। मूंज की चारपाई चरचरायी। शशिकान्त को लगा कि स्कूल की इमारत जैसे बैठ गयी है।

●

मुंशी जवाहिर लाल दालान में लेटे थे। भरपेट छककर भोजन करने के बाद वे अंडस-मंडस कर रहे थे। मगर शशिकान्त को लगा कि मुंशी जी के दिमाग़ में कोई ख़ुशी कहीं अटकी है, जिसे ख़ूब अच्छी तरह घुलाने के लिए उसे वे अपने हिसाब से मनचाही जगह पर फिट करना चाहते हैं। तो क्या मुंशी को इस घटना का पता है।

मुंशी जवाहिरलाल के बारे में शशिकान्त ने जब भी सोचने की कोशिश की है, उसे उबकाई आने लगती है। अजब आदमी है यह भी। बाहरी लोगों से ख़ूब मिठबोला और नरम, पर भीतरी लोगों से ख़ूब नाराज़ और गरम। पर वह जो भी हो, शशिकान्त ने उसे कभी भी अपने घेरे से बाहर का नहीं समझा। उसकी लिजलिजी देह से उसे सख़्त घृणा थी। ख़ास तौर से तब और भी जब मुंशी खाना खाने के बाद उभरे हुए पेट पर हाथ फेर-फेरकर डकार लेता है। किन्तु शशिकान्त ने कभी भी अपने

चेहरे पर नफ़रत का कोई भाव आने न दिया। अक्सर ऐसे भाव आए, तो वह घंटों अपने से ही लड़ता रहा। भोजन ही तो एक रह गया है, जिसे अपने हिसाब से पूरा करके मुंशी संतोष पाता है। फिर उसके उस छोटे से सन्तोष से भी खिंचने की क्या ज़रूरत है। अपने से अपने द्वारा की गयी लड़ाई का इतना असर ज़रूर हुआ कि धीरे-धीरे शशिकान्त ने जवाहिर-लाल की उपस्थिति से समझौता कर लिया। उनके तौर-तरीक़े उसे अक्सर नापसन्द आते, पर कभी भी उसने विरोध नहीं किया। मुंशी जी के खानगी व्यवहार से उसका क्या मतलब। वे कहाँ जाते हैं, कहाँ बैठते हैं, क्या-क्या बातें करते हैं, इनमें उसकी कतई दिलचस्पी न थी। उसका सीधा साबका स्कूल के ही कार्यों से था। यहाँ भी अक्सर मुंशी जी बात की बात में टाँग अड़ाते। उनकी लंघी भी कभी सीधी और साफ़ नहीं होती। मसलन वे शशिकान्त की रहन-सहन को 'नये ज़माने' की हवा कहकर हँसी की चीज़ समझते, विरोध की नहीं। शशिकान्त का खुद बर्तन धोना, अपने से पानी लेकर पीना, धोती छाँटना, और अपने दूसरे छोटे-मोटे कामों को खुद कर लेना उन्हें बहुत बुरा लगता। क्योंकि वे इसे 'ग़लत रवाज' समझते, पर उसके बारे में शशिकान्त से सीधे बातचीत कर लेना उन्हें पसन्द नहीं आता। बड़े लड़कों या परसोतम सिंह या फिर गाँव के किसी आदमी के सामने अलबत्ता ये चीजें बेतरह खटकतीं और वे मज़ाक के ढंग में कहते—"अब तो नये ज़माने के कपिल-कणाद खुद बर्तन मलते हैं बाबू साहब! लड़कों की सेवा लेना पाप समझते हैं। ऐसे में भी अगर लड़के गदाई रह जाएँ तो उनके भाग का ही दोस है, और क्या?"

गोया लड़कों से अपने काम कराना उनके तेज़ होने की गारन्टी थी। इस सेवा के बदले में अध्यापक की आत्मा से जो आशीर्वाद बरसता था, उसी का जादू था कि लड़के तेज़ निकलते थे।

ऐसे मौक़े पर शशिकान्त कुछ न बोलता, पर जब वे इकन्नी का जीरा कम लाने के अपराध में किसी लड़के को पीटते और विफरकर बड़बड़ाते "ससुर हियाँ से, तुम सब लोगों पर सुराजियों का असर पड़ रहा है। ईमानदार बनते हो सरऊ, तुम काहे को घालू माँगोगे?"—तो शशिकान्त को सहन न होता।

"अरे जाने दीजिए मास्टर साहब।" वह गुस्से को बहुत सँभालकर कहता।

"देखिए पाण्डेय जी।" मुंशी जवाहिरलाल तेवर बदलते। शशिकान्त को उम्मीद होती कि आज मुंशी जी से सीधा सवाल-जबाब हो जायेगा, पर तभी जवाहिरलाल लड़के को अपनी गिरफ्त से मुक्त कर देते—"जाओ भाई, तुम तो देश की आशालता हो। अब तुमको कौन महान् बनने से रोके!"

शशिकान्त कुढ़कर रह जाता। मुंशी उसकी बातों को इस तरह छिछोरे ढंग से दुहराता कि उसे खुद लगने लगता कि ये बातें वाकई निरर्थक हैं। शशिकान्त जानता है कि मुंशी के इन व्यवहारों से कुछ होने-जाने का नहीं। उसे यहाँ आये अभी हुए ही कितने दिन। किन्तु इन्हीं दिनों में उसने जो लहर जगायी है, उसमें जवाहिर लाल तो क्या बड़े-बड़े दिग्गज बह सकते हैं। नई बाढ़ को रोकना मुश्किल है। पर जवाहिर-लाल बाढ़ का सामने से विरोध कब करते हैं। वे तो इस बाढ़ की तारीफ़ करते हैं। ऐसे शब्दों में और ऐसी मुद्रा के साथ कि इसमें बहने-वाला हर आदमी अपने को निकृष्ट मानकर आत्मग्लानि में डूब जाए।

●

मुंशी जवाहिरलाल की दिनचर्या काफी रंगीन रहती। वे सुबह सो कर उठते। एक चेला हथेली पर सुरती मलकर उनके सामने पेश करता। वे उसकी तारीफ़ में खींसें निपोरकर मुस्कराते—"का रे चेलवा, मौज-पानी है न? कर सेवा तो खा मेवा। देख लेना, भगवान की दया से···· हाँ....।" चेला सुरती ठोंकते हुए उनके आशीर्वाद के भार को सँभालने में परेशान गर्दन झुकाये धीरे-धीरे मुस्कराता। वे खटिया के नीचे से बासी

पानी का लोटा उठा लेते । जँभाई लेते घोड़े की तरह निचले जबड़े को हिलाते हुए ऊपर लोटे से धार में गिरते पानी को गट-गट करके पीते । मुंशी जवाहिर लाल को देखकर हमेशा लगता कि वे अपने लोटे को मुंह से, अंगोछे को बदन से, और सुरती को दाँतों से ज़्यादा महत्त्व देते हैं । वे बड़ी बेरहमी से दाँतों से कुछ कम इत्तफाक रखनेवाले होंठ को खींचकर उसमें सुरती ठूँस देते, और गमछे को सर पर लपेटकर, लोटा उठाये तालाब की ओर निकल जाते ।

मुंशी जवाहिर लाल तालाब से लौटकर सीधे स्कूल नहीं आते । जाने कितने लोगों से मिलते-जुलते, कितने दरवाज़ों पर हाज़िरी देते वे जब स्कूल पहुँचते, तो प्रार्थना हो चुकी होती और उनके दरज़े के लड़के इस मनचाही अनुपस्थिति का फ़ायदा उठाकर काफ़ी शोर-गुल करते रहते । शशिकान्त को अपने लड़कों को ठीक से पढ़ाने में कठिनाई होती, मगर उसने कभी भी मुंशी जी से इसकी शिकायत नहीं की । चूँकि यह रोज़ का ही कार्य-क्रम था, इसलिए उसने इसे अपनी आदत में शुमार कर लिया था कि अपने दरज़े में जाने के पहले मुंशी जी के कमरे में जाकर लड़कों को हिदायतें दे दे ताकि वे तब तक किसी न किसी काम में मशगूल रहें जब तक मुंशी जी खुद आकर उन्हें सँभाल न लें ।

कभी-कभी मुंशी जी जल्दी आ जाते । किसी लड़के के हाथ लोटा थमाकर कुएँ से पानी लाने का हुक्म देकर वे कमरे में घुस जाते । शशिकान्त उस समय उनके दरज़े के लड़कों को कोई पाठ याद करने को कहता होता और सहसा उन्हें दरवाज़े पर देखकर हल्के मुस्कराते हुए बाहर जाने को होता कि मुंशी जी टोकते—"अरे वाह पाँड़े जी, मुझी से आपका बैर है क्या ? आया नहीं कि आप चल दिये । भई, नायब मुर्दरिस हो तो ऐसा कि कभी हेडमास्टर को कोई फ़िकर ही न करनी पड़े । अभी कल ही की तो बात है, बाबू सुरजू सिंह कहने लगे कि अरे बैठिये मुंशी जी, कौन सी देर हुई जाती है । लड़कों को ज़रा हिल-मिलकर सुस्ता तो लेने दीजिए । और फिर पाण्डे जी तो हैं ही । सँभाल लेंगे सब कुछ ! मैंने कहा कि हाँ

बाबू साहब । यह तो कहिये कि भगवान् की कृपा है । वरना ऐसा फरमा-बरदार नायब कहाँ मिलता है । पाण्डेय जी तो बस हीरा हैं हीरा । देखते नहीं आप इस मुरदा जगह में कैसी जान फूँक दी है उन्होंने ? बड़ी तारीफ़ है आपकी मास्टर साहब, हाँ । मैं सुनता हूँ तो बस तबीयत बाग़-बाग़ हो जाती है ।"

जाने क्यों इन बातों को सुनकर शशिकान्त की गर्दन झुक जाती है । वह अपनी प्रशंसा सुनने का आदी नहीं । पर ये शब्द बहुत अच्छे लगते हैं । वह इन्हें हमेशा गर्दन झुकाकर ही सुनता आया है । उसे कभी नहीं लगा कि ये शब्द उसके लिए अपरिचित हैं । पर हर बार ये सुने हुए शब्द नये-नये से लगते हैं और मन के भीतर कहीं किसी जगह को ये इस तरह सहलाने लगते हैं कि लगता है, आज नियति सभी कामों पर मुहर लगाने की फुर्सत पा गयी है, और तभी अचानक अदृष्ट के सामने उसका माथा झुक जाता है ।

यह भी क्या कमज़ोरी है कि इन शब्दों का जादू उसे इस तरह मोहित कर लेता था कि उसने कभी मुंशी जवाहिरलाल के चेहरे को देखने का प्रयत्न नहीं किया । बहुत चतुर और चालाक आदमी का चेहरा भी मन के भावों को पूरी तरह छिपा नहीं पाता । यदि उसने प्रशंसा के उन शब्दों को सुनते वक़्त मुंशी जी की ओर देखा होता तो क्या उसे पहचानते देर लगती कि चेहरे पर छाई लतरें तो जूही की हैं और फूल धतूरे के ।

यह भेद तो उसे बहुत बाद को सूझा । शाम का समय था । मुंशी जी और सुरजू सिंह स्कूल के बाहर चबूतरे पर कुर्सी डाले बैठे थे । वह खेल के मैदान से लड़कों को छुट्टी देकर थका-थकाया लौटा था । सुरजू सिंह को नमस्कार करके वह बरामदे में हेल गया था और डोर-बाल्टी लेकर कुएँ की ओर चल पड़ा था । भरी बाल्टी लिये जब वह लौट रहा था तो अचानक सुरजू सिंह ताली पीटकर ठहाकों में खड़खड़ा उठे थे—"कहिए पांड़े जी, ई तो भाई मुझे आज ही मालूम हुआ, अरे वाह, वाह ।" बातों का आधा हिस्सा वे तेजी से बाहर-भीतर होती साँस के साथ चुभलाकर

थूक चुके थे। वह आश्चर्य के साथ बाल्टी लिये खड़ा हो गया था। निरन्तर प्रतीक्षा में था कि अपनी अर्थवान् हँसी का सुरजू सिंह मतलब समझायेंगे। मगर वे बिल्कुल चुप थे और ज़ोर से हँसने के कारण आँखों में उछल आये आँसू को हथेली से पोंछ-पोंछकर अपने को शान्त कर रहे थे। मुंशी जवाहिरलाल ने जो जमीन में गर्दन गड़ाई तो सर उठा नहीं। वे शशिकान्त की ओर देखकर किसी अनचाही जिम्मेदारी में फँसने को तैयार नहीं थे।

उस दिन शशिकान्त परेशान रहा। किस बात पर मेरा मज़ाक बनाया जा रहा था। यह कोई मासूम मज़ाक भी नहीं लगता था। सुरजू सिंह की हँसी में उसकी कदर्थना थी। शशिकान्त ज्यों-ज्यों इन सवालों से उलझता, त्यों-त्यों परेशानी बढ़ती जाती। घूम-फिरकर उसका मन एक जगह आकर रुक जाता। नहीं, वह बात नहीं हो सकती। सुरजू सिंह को वह कैसे मालूम और फिर उसमें है ही क्या?

•

तीन चार रोज़ पहले जगजीत के लड़के भुल्लन ने उससे कहा था कि आपको चाची ने बुलाया है। उस समय पास की कुरसी पर जवाहिरलाल बैठे थे। लड़के से बात करते समय शशिकान्त ने एक बार मुंशी जी की ओर देख लिया था। मुंशी ने चेहरा यों बनाया था, जैसे उन्होंने उन दोनों की बात सुनी ही न हो। पर शशिकान्त को उस बरबस सपाट किये जाते चेहरे में कुछ दिख ही गया था, जो मरे गोजर की तरह मुंशी के दोनों गालों में कनपटी के पास सटा था। तभी उसे याद आया, जब दिवाली की छुट्टियों के पहले भी उसे ऐसे ही बुलाया गया था। उसने लड़के से खोद-विनोद किया था। तुम्हारी चाची मुझे कैसे जानती हैं? क्यों बुलाया है उन्होंने? लड़का सिर्फ हँसता रहा था। पता नहीं क्यों? शायद उसका अकबकाना और परशानी देखकर।

"मुझे नहीं मालूम।" भुल्लन शशिकान्त की परेशानी पर तरस खाकर

बोला था—"मेरी चाची बहुत अच्छी हैं। किताबें पढ़ती हैं। गीत गाती हैं। बहुत अच्छे खिलौने बनाती हैं।" शशिकान्त यह परिचय पाकर भी कुछ समझ न सका था।

शाम को स्कूल खत्म होने पर वह भुल्लन के साथ हो लिया था। भुल्लन अपनी चाची का परम भक्त भतीजा था। वह बिना शशिकान्त को साथ लिये घर लौटने को तैयार ही नहीं हुआ। जब थोड़ा खीझकर शशिकान्त उसके साथ चलने लगा तो भुल्लन का चेहरा गंभीर हो गया। उस गंभीरता में खुशी थी, साथ ही जिम्मेदारी निभाने का एक अजीब बोध भी। उसके कारण लड़के का चेहरा थोड़ा लम्बोतरा लगता था। आँखें चमक रही थीं और बहुत रोकने की कोशिश पर भी पैर दौड़ लगाने के लिए मचलते से लगते थे।

बाहरी निकसार में मचिया रक्खी थी। रोज़ ही रहती होगी या हो सकता है कि भुल्लन की चाची को अडिग विश्वास रहा हो कि मास्टर आयेंगे इसलिए यहाँ मचिया होनी चाहिए।

शशिकान्त को बड़े आग्रह से मचिया पर बैठाकर, झोले को हाथ से नचाते हुए भुल्लन दौड़ता हुआ आँगन में घुस गया था। उसने अपनी जिम्मेदारी निभा दी थी, गंभीरता का बन्धन एकदम टूट गया था। वह बहुत खुश था। तुरन्त हाथ में कटोरा लिये वह लौट आया।

"चाची ने कहा है कि आप पानी पी लीजिए।" उसने शशिकान्त के हाथ में कटोरा थमाते हुए कहा। तभी वंशी बो काकी दालान में हेल आयीं। शशिकान्त हड़बड़ाकर उठ बैठा।

"बइठीं मास्टर जी!" वंशी बो काकी धीरे-धीरे बोलीं—"आपका बहुत नाम है बचवा! कुछ हमरौ उपकार कर दो।"

शशिकान्त एक क्षण मौन रहा। वह अपनी तारीफ़ से इस बार झुका नहीं। भुल्लन को आजी उसकी तारीफ़ क्यों करने लगीं। मैं उनका भला क्या उपकार कर सकता हूँ।

"कहिए माता जी, मुझसे जो कुछ हो सकता है, मैं ज़रूर करूँगा।"

तभी चौकठ की आड़ से एक गोरा हाथ हिला। फूल के लकदक साफ लोटे में पानी रखा गया। मास्टर शशिकान्त ने झटके से देखा था और तुरन्त आँखें मोड़कर वंशी बो काकी की ओर देखने लगा। दो झटकों के बीच की संधि पर एक सफेद साड़ी थी, जिसकी सफेदी में भी एक खासियत थी। एक पतली-दुबली आकृति थी, जो छुपकर भी एक लय में तिर गयी थी। दो लाल चूड़ियाँ थीं, जो समानान्तर रहकर भी झनक गयी थीं। इस दृश्य से छूकर पूरी दालान जैसे अपने केन्द्र पर एक बार घूमकर ठहर गयी थी।

तो ये हैं भुल्लन की चाची। शशिकान्त ने सोचा और भुल्लन ने उसी समय बाहर खड़ी आकृति के इशारे पर लोटा उठाकर शशिकान्त के हाथ में थमा दिया। शशिकान्त पानी पी चुका तो वंशी बो काकी बोलीं :

"आपकी दया से सब कुछ है मास्टर जी। रुपया-पइसा, जगह-जमीन अनाज-पानी सब कुछ, हाँ। तकदीर खराब है। गोसैंयां की मरजी। हमरे कल्पनाथ को तो आपने देखा न होगा।"

"देखा तो नहीं माता जी, पर सुना कि वह बीमार हैं।"

"हाँ, हाँ, मास्टर जी, बहुत वेराम। समझ लें कि अब उठा-बइठा भी नहीं जाता।" वंशी बो काकी ने आँचल से डबडबाई आँखें पोछीं, "पान-फूल सा रखे रहीं मास्टर जी। हीरा जस लड़का कोइला हो गया, हाँ। कहाँ-कहाँ के डगदर वैदों की दवाई करायी। बाकी कुछ बीच नहीं पड़ता। जाने का हो गया मेरे लाल को।"

"अब तो माता जी, घर ही में अच्छे डाक्टर आ गये हैं।"

"देवनाथ बेटा को कह रहे हैं न? हाँ, मास्टर जी, देवता हैं बेचारे। खुद ही आकर देख-दाख जाते हैं। रोज़ सूई लगती है। देह छलनी हो गयी हाँ, बाक़ी ओहू से कुछ फँदा नहीं।"

"क्या कहते देवनाथ बाबू?" शशिकान्त सब जानता है। सुन चुका है। मगर इस दुखियारी माँ से वह और पूछे भी क्या?

"देरी हो गयी। देवनाथ बेटा का कहनाम है कि देरी हो गयी। दू साल से रोग रहे, मगर कलपनाथ केहू से कुछ नहीं बताये!"

वंशी बो काकी की सहन-शक्ति जैसे टूट गयी थी। आँखों से लोर झरने लगे। एक क्षण के लिए दालान फिर अपने केन्द्र पर घूम गयी, और जब रुकी तो सामने दरवाज़े की आकृति का आँचल भी आँखों पर चिपका था।

"मास्टर जी, हम तो आपके एक अउर काज से बुलाये हैं।" वंशी बो काकी ने आँखें पोंछकर दुख को अलग रखती हुई-सी मुद्रा में कहा—"भुल्लन की चाची हमें कल नहीं लेने देतीं। बहुत समझाया, बाकी मानतीं नहीं। कहती हैं कि इनटरेंस का इम्तहान देंगी। देस-दिहात में ऐसा कौन करता है? लोग लिहाड़ी लेंगे। बाकी हमने भी सोचा कि लड़की का दिल काहे दुखावें। इनकी तकदीर में अवर कुछ नहीं तो इहै सही। आपसे हमार इहै प्रारथना है मास्टर जी कि कुछ मददगार हो जायँ।"

"हम क्या मदद कर सकते हैं माता जी, हमें तो इण्टर पास किये कई साल हो गया। बाद में छोटे लड़कों को पढ़ाने का काम किया, वह सब भूल-भाल गया। यहाँ तो और भी पढ़े-लिखे लोग हैं। विपिन बाबू, देवनाथ बाबू। ये लोग अलबत्ता मदद कर सकते हैं।"

"गाँव की बात ठीक नहीं होती मास्टर जी, आप बाहर के आदमी हैं। ठीक हैं। जो थोड़ा-बहुत आप मदद कर देंगे वही बहुत है। का हो दुलहिन!" वंशी बो काकी ने पल्ले से सटी हुई आकृति की ओर मुंह करके कहा—"भई, अपनी अरज-गरज खुद ही कह लो। अब हम मास्टर जी से का-का पूछें। करिया अच्छर भइँस बरोबर। मो को तो इहौ नहीं मालूम कि का-का पढ़गित करना है इन्टरेन्स में।"

तभी भुल्लन की चाची दालान में आ गयीं। धीरे-धीरे चलती अपनी सास के पास जाकर वे सटकर बैठ गयीं। उनका मुंह न ढँका था, न खुला। सफेद साड़ी की काली किनारियों के बीच ढँका-खुला वह मुँह कुछ ज्यादा लम्बा लग रहा था। भाल पर काफी बड़ी लाल बिन्दी थी, पर

वह ईंगुर जैसी द्रवित लाल नहीं, रोरी जैसी भुरभुरी लगती थी। उस औरत को देखकर शशिकान्त के मन में ख़ुशी हुई, साथ ही थोड़ा दुःख मिश्रित आश्चर्य भी। सेवाग्राम में एक बहन आती थीं, इलाहाबाद से। ऐसी ही सफेद साड़ी वे भी पहनतीं। ऐसा ही किंचित् लम्बा मुखड़ा उनका भी था। दो बड़ी-बड़ी सफेद आँखें बिल्कुल तिरती, हिलती, सजीव आँखें। उनसे बातचीत करने में अजीब ख़ुशी होती। खूब आत्मविश्वास और चेतना से भरी-भरी ऐसी औरत उसने दूसरी नहीं देखी। उनका सब कुछ जैसे महीनों-बरसों की लम्बी साधना से बना हुआ था। अपने बारे में उनके मन में कुछ ऐसी जागरूकता थी, जिसमें लापरवाही और सावधानी का अनुपात समझ पाना बहुत मुश्किल होता। ऐसी औरतों में अपने ढंग से जीवन जीने की बेइन्तहा तमन्ना होती होगी। शशिकान्त उन बहन को देखकर हमेशा ही यह सोचता रहा है और भुल्लन की चाची को देखते उन बहन की याद तो निश्चय ही उदास कर गयी। वैसी ही रुचि और सलीक़े वाली यह औरत और वह भी ऐसे वज्र देहात में।

शशिकान्त एक क्षण गर्दन झुकाये चुप रहा। पटनहिया भाभी भी चुप थीं, पर उनकी आँखों में सामने बैठे व्यक्ति को पूरी तरह जानने-परखने की कोशिश जारी थी। वे गर्दन झुकाये मास्टर की ओर कनखी देख हल्के मुसकरायी थीं। बहुत हल्के। खूब ध्यान से देखने पर ही उनके होंठों में कुछ पढ़ा जा सकता था।

"पूछ लो।" वंशी बो काकी को यह चुप्पी बहुत अच्छी नहीं लग रही थी।

"बाकी तो मैं कर लूँगी, आप थोड़ा अंग्रेजी में मदद कर दीजिए।" आँखों से ज़मीन को देखती, बहुत आहिस्ते से पटनहिया भाभी बोलीं।

उस दिन का यह परिचय किसी भी प्रकार विशेष नहीं कहा जा सकता। शशिकान्त ने न चाहते हुए भी, एक दुखी औरत को सहायता देने की इच्छा से यह सब स्वीकार कर लिया था। दूसरे, चौथे या कभी-कभी सिर्फ रविवार को ही वह वहाँ जा पाता। पटनहिया भाभी के साथ

शुरू-शुरू में दो-एक बार उनकी सास भी आकर बैठीं। बाद में उस लम्बे अँधियारे दालान में शशिकान्त भुल्लन की चाची के साथ अकेले बैठने लगा। निकसार से घर के लोग, पुरुष-लड़के, आते-जाते रहते। स्त्रियाँ भी आतीं। दूसरे घरों की भी। आँचल में मुँह लपेटे, दीवाल से सटती, दरेरती आँगन की ओर बढ़तीं। शशिकान्त के मन में ऐसी औरतों की आँखें आज भी उभर आती हैं। सारा मुंह और ललाट का हिस्सा मैले आँचल से छिपा होता, सिर्फ दो प्रौढ़, काँचल, बड़ी-बड़ी थालूनुमा आँखें उसे हैरत और व्यंग्य से देखती गुजर जातीं। शशिकान्त इन आँखों से टकराकर थका सा लगता। वह वहाँ से लौटने के बाद घंटों सोचता रहता कि उन आँखों में क्या उसके चरित्र को नापने की कोशिश भी नहीं थी? वह अपने मन को समझाता। साँच को आँच क्या? पर दर्जनों जोड़ी आँखों में जो अक्स पड़ रहा है, वह ऐसा तो नहीं जिसकी एकदम से उपेक्षा कर दी जाए।

और फिर भुल्लन की चाची। शशिकान्त के दिमाग़ में भुल्लन की चाची का कोई अक्स नहीं पड़ रहा था, ऐसा भी नहीं। जितनी भी बार उसने उस औरत से बातें कीं, जितना ही वह उसे नज़दीक से देखता रहा, उतनी ही परेशानी, और बेचैनी उसके जिस्म को अपनी हद में लपेटती रही। कितनी अजनबी, पर कितनी परिचित। हर बार बताई हुई बात को वह ग़लत लिखती या बताती। शशिकान्त खीझता, फिर बताता, फिर खीझता। भुल्लन की चाची पर इसका जैसे कोई असर ही नहीं होता। उसके खीझने पर वह सिर्फ मुसकरा देती। ग़लती भी करती और मुस्कराती भी। और शशिकान्त जानता है कि उस मुस्कराहट से वह स्कूल के बरामदे में लेटा-लेटा कितना लड़ता रहा है। लाल-लाल होंठ कुछ लाज, कुछ-कुछ शरारत, कुछ ग़लती करने के बोध, कुछ शशिकान्त की खीझ के मिले-जुले भावों से थरथरा कर फैल जाते और होंठों के दोनों छोरों पर सफेद दाँतों की पंक्ति सिर्फ़ एक क्षण के लिए कौंधकर छिप जाती। शशिकान्त वह हँसी देखकर मौन हो जाता। उसकी आँखें उपरले होंठ के

ऊपरी हिस्से में चमकते सुनहले रोयें और उनकी जड़ों में चुहचुहाये पसीने के बारीक कणों पर टिकी रह जातीं।

"चलिए फिर से लिखिए !" वह अपने को इस स्थिति से उबारने की कोशिश करता हुआ कहता।

भुल्लन की चाची मचिये से उठ जातीं—"जरा ठहरिये। आप एक गिलास ठंढा पानी पी लीजिए।" वह हँसती हुई कहतीं—"बड़ा गुस्सा आ रहा है आज आपको।"

क्या यह सचमुच इम्तहान देना चाहती है, क्या यह पढ़ने के लिए ही मुझे बुलाती है, क्या पढ़ने में इसका जी लगता है ?

इन सवालों से शशिकान्त अक्सर टकराता रहा है। और जितनी भी बार उसने इन प्रश्नों पर गहराई से सोचा है, उतनी बार कोई न कोई बहाना करके वह नागा करता गया है। भुल्लन चाची की ओर से बार-बार आग्रह करता रहा है, और शशिकान्त अपनी परेशानियों का इज़हार।

चलो अच्छा ही किया कि वहाँ का आना जाना खुद ही बन्द कर दिया। वरना सुरजू सिंह का बेलौस हँसना आत्म-ग्लानि में डूबने के लिए काफी हो जाता। मुंशी ने सुनी-सुनाई बातें नमक-मिर्च लगाकर बतायी होंगी।

●

ये बातें सोचते-सोचते अचानक शशिकान्त सिहर उठा। आज जो कुछ हुआ है, उसमें क्या इन बातों का भी कोई योग है ? कहीं ऐसा हुआ, तब तो मरने के बाद भी कालिख नहीं धुलेगी। उसके मन में सहसा एक नई दहशत और परेशानी उभर गयी। कौन है वह, जो इस तरह हमला करके भी सामने नहीं आना चाहता। वह ज्यों-ज्यों अपने अपमान, ग्लानि और पीड़ा के बारे में सोचता, त्यों-त्यों उसकी आँखों के सामने भुल्लन की चाची का चेहरा नाचने लगता। क्या मालूम वह औरत किसी और के साथ भी घुली-मिली हो। हो सकता है कि मेरा उसके यहाँ उठना-बैठना उस आदमी

को खटकता रहा हो। मगर वह आदमी है कौन ? जहाँ तक वह जानता है, भुल्लन की चाची कभी-कभी छावनी जाती हैं। कहीं सुना था उसने कि बुझारथ सिंह का चाल-चलन अच्छा नहीं है। तो क्या यह सब कुछ बुझारथ सिंह ने करवाया ? मगर मैंने क्या किया था ? मैं खुद उस औरत के पास गया नहीं। मैंने उसे फँसाने की कोशिश नहीं की। मैं चाहता तो ऐसा ज़रूर कर सकता था। वह मेरे कितने निकट आ जाती थी। ग़लत हिज्जे लिखते समय मैंने कई बार रोका है, एकाध बार उसके हाथ से कलम छीन कर खुद लिखने लगा हूँ। अचानक मेरे हाथ से अपना हाथ छू जाने पर वह गर्दन घुमाकर मेरी ओर देखने लगती थी। उस समय उसकी आँखें शोखी और शैतानी से कैसी थिरकने लगती थीं। पर मैंने अपने को ऐसे मौक़े पर सदा बचाया है। इसी तरह की गड़बड़ियों की आशंका से मैंने वहाँ जाना छोड़ दिया। बीस तरह के बहाने करके मैं उधर से बचता रहा। फिर कोई मेरे ऊपर क्यों चिढ़ेगा ? बुझारथ सिंह क्या इतना उल्लू है कि वह किसी बात को बिना समझे-बूझे दूसरे से लड़ पड़े ? उसे खुद भी तो चिन्ता होगी कि इस भेद के खुल जाने पर उसकी हँसाई होगी।

ख़ाक चिन्ता होगी उसे। क्या उसने उस चमारिन के मामले में सोच-विचार किया था ? मैं तो सारा क़िस्सा भी नहीं जानता। कभी जानने की कोशिश नहीं की। उस दिन अलबत्ता तालाब पर नहा रहा था। घाट से थोड़ी दूर हटकर सीरी सिंह मछली मार रहा था। वह बड़ी देर तक वहाँ कगार के नीचे बैठा रहा। यह तो मैंने स्कूल के बरामदे से ही देखा था। नहाने आया तो भी वह वहीं बैठा था। उसकी दृष्टि वंशी के तागे पर टिकी थी। मुझे नहीं मालूम कि उसने कितनी मछलियाँ पकड़ी थीं। खुदा-बक्स ने जब उसका गमछा खींचा था तो अलबत्ता मैंने देखा कि उसमें कई मछलियाँ थीं। खुदाबक्कस के साथ एक आदमी और था। उसे मैं पहचानता नहीं। उन दोनों ने मिलकर सीरी सिंह को मारा था। तालाब के किनारे काफी गुत्थम-गुत्था हो गयी थी। साथ वाले आदमी ने लाठी चलायी थी। यह सब कुछ मैं उड़ती नज़र से ही देख सका था।

दूसरे दिन स्कूल खतम होने पर मुंशी जवाहिरलाल मेरे पास आए थे। उन्हीं से मालूम हुआ कि सुरजू सिंह ने मुझे बुलवाया है। मुंशी जी ने इसका कोई कारण नहीं बतलाया। कहा कि कोई बहुत जरूरी काम है। मुझे भी चलना है। साथ ही चले चलेंगे। मैं खेल के मैदान से लौटकर मुंशी के साथ वहाँ गया था।

●

सुरजू सिंह के बइठके में मैं पहली बार गया हूँगा। काफी बड़ा दालान है। मैं मुंशी के साथ ही एक चारपाई पर बैठ गया था। वहाँ कई जन थे। एक दूसरे की गर्दन में गर्दन डाले बातें कर रहे थे। हमें देखकर लोग चुप हो गए थे।

"अरे आइये पांडे जी !" सुरजू सिंह ने बड़ी नम्रता और भलमन-साहत के साथ कहा था—"इधर आ जाइए।"

"ठीक है।" मैंने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा था।

"ठीक कैसे है ? हम लोग सिरहाने बैठें और आप पैताने—यह ठीक है ? अरे महाराज जी, आप हमें नरक में डाल रहे हैं। उठिये-उठिये। इधर आ जाइये।" उन्होंने भीतर से एक तोशक मँगवाकर सिरहाने रखवायी थी।

"आप थके होंगे पांडे जी !" सुरजू सिंह ने अपने चरवाहे से कहा था—"जरा दौड़कर मास्टर साहब लोगों के लिए कुछ नाश्ता-पानी ले आ।"

मैंने कई बार मना किया था। मुझे यह सब तकल्लुफ़ वैसे भी पसन्द नहीं। सुरजू सिंह की आत्मीयता का अतिरेक तो मुझे और भी खल रहा था। कुछ रोज़ पहले यही आदमी मेरा मज़ाक बना रहा था। मज़ाक कौन नहीं करता ? मैं खुद हास-परिहास का प्रेमी हूँ। मगर मज़ाक में चेहरा न तो विकृत होता है न तो क्रूर। और उस दिन सुरजू सिंह का चेहरा

ऐसा ही था। एक अजीब क़िस्म की आक्रामक घृणा उसके चेहरे पर खेल रही थी। ऐसा आदमी इतनी आत्मीयता क्यों दिखा रहा है ? सीरी सिंह बगल में ही बैठा था। इसलिए मुझे यह समझते तो देर नहीं लगी कि कल सुबह की घटना से ही सम्बन्धित बात है, मगर वह बात ऐसी तो क्या हो सकती है, जिसके लिए सुरजू सिंह को आत्मीयता की दुहरी-तिहरी खोल ओढ़नी पड़े।

हम लोग जलपान कर चुके। एक क्षण बेहद खामोशी हो गयी। ऐसी खामोशी मुझे अक्सर आतंकित कर देती है। सहजता को बेधनेवाला ढोंगी ही ऐसी खामोशी जगाता है, जिसमें हमेशा ही अपने भोलेपन से दूसरे को ठगने का मनसूबा छिपा होता।

यह चुप्पी अब अखरने लगी थी। सबसे अधिक सुरजू सिंह को। इसी वजह से वे इधर-उधर हिलने-डुलने लगे थे। उन्होंने अन्तिम उचटती नज़र सीरी पर डाली। वह हल्के मुसकराया तो सुरजू सिंह मेरी ओर मुड़कर कहने लगे—"बात है पांडे जी कि कल एक बहुत संगीन मामला हो गया। ऐसा इस गाँव में कभी नहीं हुआ था। उस समय भी जब ज़मींदारी की धाक थी, तब लोग ज़मींदार के दरवाज़े पर मुर्गा बनाकर लटका दिये जाते थे। सज़ा दी जाती थी। क्योंकि ज़मींदार राजा था और गाँव उसकी रियासत। परजा ठीक से रहे, अमन-चैन रहे, इसलिए ज़मींदार जो चाहे करता था। वह पुलिस भी था और कचहरी भी। मैंने जैपाल सिंह का ज़माना भी देखा है। वे चाहे और जो कुछ करें, उन्होंने कभी भी किसी राजपूत बच्चे पर हाथ नहीं उठाया। ज़मींदारी तो बिला गयी, मगर हेकड़ी नहीं गयी। रस्सी जल गयी, मगर ऐंठन बाकी है। अब देखिये, कल आपके सामने सीरी भाई को बुझारथ ने गुंडे भेजकर पिटवा दिया। ऐसा जुलुम हो गया। और इसके लिए बहाना भी कैसा टुकड़हा खोज लिया। वह जुलहकट्टी खुदाबक्स कहता था कि सीरी ने तालाब से मछली मारी। तालाब पर साहब खुद झगड़ा चल रहा है। गाँव सभा कहती है कि यह गैरमजरुआ ज़मीन में है इसलिए गाँव पंचायत का है, बुझारथ सिंह कहते

हैं कि नहीं, उनकी काश्त में है। पटवारी के नक्शे में तालाब का रक़बा खेत की तरह दर्ज है। ख़ैर जो है सो है, वह तो बाद में होगा। अभी तो एक भाई-विरादर पर जो ज़ुलुम हुआ है, उससे निबटना है।"

"यह तो वाकई संगीन मामला है। जनता के राज में ऐसी राहज़नी राम ! राम !" मुंशी जवाहिरलाल ने कहा—"इस तरह तो किसी की आबरू उतर सकती है।"

"आप भी मुंशी जी क्या बात करते हैं ?" सुरजू सिंह ने चेहरे को काफी गंभीर बनाकर कहा—"आबरू किसकी बची है ? आप क्या समझते हैं, वह मामला खाली मछली का है। अरे साहब, इसके पीछे भी आबरू का ही मामला है। अब क्या-क्या बताएँ आप लोगों से। गाँव की इज़्ज़त की बात है। सबको तोप-ढाँककर रखना चाहिए। वैसे आप लोग कोई बेगाने तो हैं नहीं। समझ लीजिये कि खुदाबक्सा बुझारथ का बहेलिया है, बहेलिया। एक ही चिड़ीमार है यह मियाँ भी, हाँ ! बुझारथ तो खाली इशारा कर देता है। कम्पास लगाकर बहू-बेटियों को फँसाने का काम तो खुदाबक्कस ही करता है। ऐसी ही कोई बात थी। मामला खुल गया। सीरी भाई दिल के साफ आदमी ठहरे। कहीं मुँह से कुछ निकल गया होगा। बस आग लग गयी बुझारथ को। मछली का बहाना करके बदला लिया है उन्होंने। मगर मैं कहूँगा कि बुझारथ बहुत उल्लू हैं। इस बार ऐसा फँसे हैं कि बचना मुश्किल है। बच्चू को न हो गयी छः महीने की जेल तो कहियेगा। यह कोई लड़कों का खेल है कि किसी को पीट दो। किसी की इज़्ज़त उतार लो और अपने चौधुरी बने रहो। सब कुछ ठीक से हो गया है। चोट का मुआयना हो गया है। थाने में रपट भी लिखा दी गयी है। बस एक बात है।" सुरजू सिंह इतना कहकर चुप हो गए।

"क्या बात ?" मुंशी जवाहिरलाल ने पूछा।

"बात यह है मुंशी जी कि मामला तालाब पर हुआ। और खुदा न ख़ास्ता उस समय वहाँ एकदम सन्नाटा था। ख़ाली एक पांडे जी थे वहाँ। इसलिए मुक़दमे का सारा दारोमदार पांडे जी की गवाही पर मुनहसर करता है।"

शशिकान्त के चेहरे पर अचानक चिन्ता का रंग गाढ़ा हो गया था। वह कुछ कहने के लिए उकसाया ही था कि सुरजू सिंह ने हाथ हिलाकर उसे बरज दिया—"सीरी भाई उदास हो गये थे मुंशी जी। कहने लगे मेरी तक़दीर ही ख़राब है। वरना ऐसा मामला हो और तालाब के किनारे दस-बीस आदमी न रहें। मगर मैंने इन्हें समझाया। हर बात का कोई न कोई अच्छा मतलब होता है। गाँव के दो कोड़ी गवाह हुए तो क्या, न हुए तो क्या। कल बुझारथ से डरकर गाँव के गवाह बिदक सकते हैं। दबाव से, घूस से, कसम खाकर भी झूठ बोल सकते हैं। ईश्वर को यह मंजूर नहीं। इस बार भगवान् सचमुच में कुछ करना चाहते हैं। शायद इसीलिए वहाँ पांडे जी जैसा सच्चा और नेक इन्सान मौजूद था। एकदम बाहर का आदमी। न किसी से राग-द्वेष, न किसी का भय-दबाव। ऐसे आदमी की गवाही को कौन तोड़ सकता है साहब।" सुरजू सिंह पुनः एक क्षण के लिए चुप हो गए। फिर उन्होंने लम्बी साँस लेकर शशिकान्त की ओर देखते हुए कहा—"अब पांडे जी ! सीरी भाई आपके चरणों में आ गए हैं। इनके साथ अन्याय हुआ है। एक ग़रीब भाई की इज़्ज़त उतारी गयी है। आगे ऐसा ज़ुलुम और अत्याचार न होने पाये, यह सब देखना अब आपका काम है।"

एक क्षण के लिए मौन छा गया। पर यह बिल्कुल भिन्न क़िस्म का मौन था। इसमें नक़ली इन्सानियत के मोह को तोड़ते वक़्त की उदासी न थी जो, शशिकान्त को अपने आगोश में बुरी तरह जकड़ रही थी। इन्सान कितनी आसानी से अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए दूसरे व्यक्ति के भीतर अपना विश्वास आरोपित कर देता है, वह भी इसलिए कि मैं बाहरी आदमी हूँ। भुल्लन की आजी ने भी यही कहा था और अब सुरजू सिंह भी यही कह रहे हैं। इस मिथ्या विश्वास को झुठलाते समय भी आदमी एक अकृत-

विद्ध ग्लानि से झुक जाता है। मगर शशिकान्त एक उदासी और ग्लानि के नक़ली आवरण में बहुत देर तक फँसा न रह सका।

"देखिए बाबू साहब।" एक अतिरिक्त शक्ति उसे परिस्थितियों के भँवरजाल से उबार चुकी थी—"मैं यह मनाता हूँ कि अत्याचार और अन्याय का विरोध होना चाहिए। मगर विरोध कौन कर सकता है? वे जो इससे सीधे टकराते हैं। मैं एक बाहरी आदमी हूँ। आपने ठीक कहा कि हम बाहरी हैं। बाहरी आदमी के साथ ही साथ हमारी स्थिति और कर्तव्य भी हमें आप लोगों से अलग करता है। हम सबके साथ मिल-जुल कर ही रह सकते हैं। तभी हम अपना काम ठीक ढंग से कर पायेंगे। स्थानीय मामलों में उलझना हमारे लिए ठीक नहीं है। इसलिए मैं चाहकर भी इस मामले में कुछ नहीं कर सकता। मुझे आप क्षमा कीजिएगा।"

"आपको इसमें उलझने के लिए कौन कहता है पाण्डे जी" सुरजू सिंह का स्वर अचानक उतर गया था। सारी लफ्फाजी बेकार जाने से वे तनिक कुढ़ते हुए बोले—"आपको तो पक्षपात करने या झूठ बोलने को कहा नहीं जा रहा है। आपने जो कुछ देखा, वही कह दीजिए। हम खुद नहीं चाहेंगे कि आप इस गाँव की पार्टीबन्दी में शामिल हों या उलझें।"

"सो तो ठीक है। मगर सच्ची बात के कह देने से ही तो मामला ख़तम नहीं हो जायेगा। तारीखें पड़ेंगी। मुझे गवाही देने के लिए जाना होगा। मेरी गवाही से जिसका नुकसान होगा, वह नाराज़ होगा। इस तरह से तो बात बढ़ती ही जायेगी। मैं यहाँ नौकरी करने आया हूँ कि कचहरी करने? ग़रीब शिक्षक हूँ, मेरा इन सब मामलों में पड़ना कहाँ तक ठीक रहेगा?"

"मैं तो आपको बहुत सत्याग्रही और साहसी आदमी समझता था पांडे जी। आप क्या दूसरों के नाराज़ होने के डर से सत्य को दबा देंगे? आप इस गाँव को जगा रहे हैं। आपने यहाँ एक नई जान डाल दी है, तो क्या जुलुम और अत्याचार के सामने आप माथा झुका लेंगे?"

"देखिए साहब, सत्य वही नहीं होता जो दिखाई पड़ता है। और जो

दिखाई पड़ता है, उसको भी पूरा का पूरा कौन स्वीकार करता है। आप कहते हैं कि सीरी सिंह नहाने गए थे और उनको घेरकर मारा गया। दूसरी पार्टी कहती है कि मछली मार रहे थे। अब आप मुझसे सत्य के नाम पर यह कहलाना चाहते हैं कि मैं कह दूँ कि सीरी सिंह नहाने गए थे। कैसे कह दूँ मैं यह सब? मैंने खुद देखा कि ख़ुदाबक्स के खींचने पर सीरी सिंह के गमछे से मछलियाँ गिरकर ज़मीन पर बिखर गई थीं।"

सुरजू सिंह गंभीर होकर ज़मीन की ओर देखने लगे।

"का हो सीरी भाई?" उन्होंने लम्बी साँस खींचकर कहा—"तुमने नहीं बताया।"

सीरी भाई अब तक सताये हुए इन्सान के मुखौटे को बड़े धीरज के साथ ढो रहे थे। शशिकान्त की बात से यह मुखौटा उतर चुका था। सुरजू सिंह के सवाल ने तो जैसे उसकी ईमानदारी पर ही चोट कर दी थी।

एक क्षण के लिए सीरी का चेहरा स्याही में डूब गया था। तभी वह विफरकर बोला—"क्या बतावें आपको हम। जे बा से कौन सी बात थी जो बतावें। दो ठो मछली मार लिया, यही न? तो इसके लिए क्या हमारी गर्दन काट लेंगे? कौन नहीं मछली मारता उहाँ। बिस्सू हाथ में कटिया और मेटा लिये दिन भर घूमता है। चमार-सियार, धोबी-जुलहा मछली मार ले तो कौनो साले नहीं बोलते और जे बा से भाई-बिरादर ने एक ठो मछली मार ली तो लठैत लेकर चढ़ आये। असली बात तो कुछ और है। मछली का तो बहाना मिल गया। ई सब आपको नहीं मालूम क्या? हम तो भाई जिसका हाथ पकड़ते हैं 'ओरे माथे तक' उसका साथ देते हैं। चाहे ऊ डाका डाल के आवैं तो, चाहे क़तल करके आवैं तो।"

सुरजू सिंह को यह समझते देर नहीं लगी कि सीरी सिंह आज दोस्ती और गठबन्धन के फायदे-नुकसान का सारा खाता खतियाने पर उतारू हैं। उन्होंने बाहरी आदमियों के सामने अपने को इन मामलों से अछूता और अलग दिखाने के लिए सीरी सिंह पर आक्षेप कर दिया था, पर सीरी सिंह

इसे विश्वासघात मान बैठा। अब वह बेमुरव्वत होकर आपसी सम्बन्धों को जाँचने-परखने की कोशिश कर रहा था।

"इसमें साथ देने न देने का सवाल कहाँ है सीरी भाई !" सुरजू सिंह ने अपनी उदार मुस्कराहट से सीरी को नहलाते हुए कहा—"जिसे साथ देना है, वह अन्तिम दम तक साथ देगा। और देता रहा है। इसके लिए अब सफाई देनी होगी क्या ?"

"मैं सफाई-वफाई क्यों माँगू। आपने शंका की तो मैंने भी जे बा से एक बात कह दी।"

"शंका की बात मैं नहीं भाई, पांडे जी कह रहे हैं।

"पांडे जी धरमराज बने हैं तो रहें। ई सब मैं खूब समझता हूँ। किसी का मुझसे कुछ छिपा नहीं है। जे बा से किस्सा है कि नाई-नाई कितना बाल तो साहब, आगे ही आयेगा। पांडे जी, विपिन, देऊ, जग्गन मिसिर की 'पाल्टी' में हैं, ऊ काहे हमारा साथ देंगे ? मैं तो जे बा से पहले ही जानता था कि पाँडे जी विचल जायेंगे तो आप लगे संतोषने कि नहीं-नहीं पांडे जी सत्य पर अडिग रहनेवाले आदमी हैं। ऊ नहीं विचल सकते। देख न लिया जे बा से कैसे सत्तवादी हैं लोग।"

"मैं किसी की पार्टी-वार्टी में नहीं हूँ।" शशिकान्त चारपाई से उठकर खड़ा हो गया था—"मैं तो अपने काम से वास्ता रखता हूँ। न तो मेरे आप दुश्मन हैं, न तो वे। मैं इन सब मामलों में क्यों पड़ूँ ?"

"ठीक है, ठीक है। इस गाँव में ऐसा कौन है जिसका किसी से वास्ता न पड़े। जे बा से आदमी साथ-साथ रहता है तो वास्ता पड़ता ही है।"

शशिकान्त ने सुरजू सिंह को नमस्ते किया और चुपचाप चला आया। उसने चलते वक़्त मुंशी जवाहिरलाल को भी इशारा किया था, मगर वे उठे नहीं।

"आप अभी रुकियेगा ?" उसने अकेलेपन को झटकते हुए पूछ लिया था।

"हाँ, भई पांडे जी, अभी मुझे कुछ काम है।"

●

शशिकान्त गलियों से गुज़रता गाँव के दक्खिन तरफ़ निकल गया था। महावीर जी के मंदिर के खंभे से पीठ टिकाये बहुत देर तक बैठा रहा था। अचानक उसका मन बहुत ख़राब हो आया। वह चाहता था कि उससे सब लोग खुश रहें। न सही खुश तो नाराज़ तो नहीं ही हों। मगर सबको खुश रखना भी कितना टेढ़ा काम है। वह न तो किसी से ग़लत आशा करता है, न चाहता है कि लोग उससे गलत आशा करें। इस तरह का सहज व्यवहार भी लोगों के मन में कितनी ग़लत धारणाओं को जन्म देता है। सुरजू सिंह और सीरी से तो कभी उसने बहुत बातचीत भी नहीं की। वह मुंशी जवाहिरलाल की तरह हर मामले में राय देता भी नहीं फिरता। विपिन, देवू या जग्गन मिसिर से ही उसकी क्या निकटता है ? वे लोग शराफ़त से बातचीत करते हैं। वह भी कर लेता है। उसने स्वभाववश हमेशा ही प्रत्येक इन्सान के साथ एक निकटतम दूरी बनाये रखा। कोई दुख में हो, उसके लिए कड़ा से कड़ा काम कर सकता है। किसी को मदद की ज़रूरत हो, वह अपने को निःसंकोच समर्पित कर सकता है।....मगर आदमी को आज शायद इन सबकी ज़रूरत नहीं। ज़रूरत है एक ऐसे हाड़-मांस के यंत्र की, जो दिल और दिमाग़ न रखता हो, जो दूसरों की हाँ में हाँ मिलाया करे। और उनके गन्दे स्वार्थों का साधन बन जाए। हमारे जैसे लोगों की यही नियति है।

वह ज्यों-ज्यों इन बातों को सोचता, त्यों-त्यों उसका मन भीतरी बोझ से दबता जाता। खासे हँसते-बोलते इन्सान से वह अचानक बदलकर एक शिफर हो गया था, जो किसी न किसी 'पाल्टी' से जुड़कर ही जैसे अपना व्यक्तित्व पा सकता है। उसने ऐसा यदि किया तो क्या वह 'व्यक्तित्व' होगा ? तभी शशिकान्त को लगा कि अचानक कहीं भीतर कोई ऐसा टूट गया है और उसके अंग-प्रत्यंग शिथिल होते जा रहे हैं।

●

बाहर वैसा ही अँधेरा था। शशिकान्त ने चारपाई पर करवट ली तो

उसे लगा कि उसके सिर के पास कोई द्रव सी चीज़ पिघलकर रेंगती हुई उसके गाल को पार करती बाँह पर सरक रही है। उसने उसे छुआ। पसीना है या आँसू—कुछ कहा नहीं जा सकता। उसने हल्के से उसे पोंछ दिया था। तभी महावीर जी के मंदिर के खंभे से पीठ टिकाये बैठी अपनी ही आकृति उसकी नसों में गर्म पारे की तरह पिघलने लगी थी। उसने बहुत ज़ोर लगाकर उस धूमिल काँपती आकृति को पकड़ने की कोशिश की थी। दिमाग़ के भीतर कहीं फुलझड़ी जैसी कोई चीज़ 'फुस्स' करके जली थी और उसी की रोशनी में उसने देखा—सीरी सिंह! ओफ़! तो वह सीरी सिंह था। सीरी सिंह........!!

शाम साढ़े पाँच बजे से ही लगातार जिस चीज़ को वह जानने की कोशिश कर रहा था, वह अचानक सामने अपनी पूरी वीभत्स छाया में लिपटी खड़ी हो गयी थी। इस घृणित छाया को पकड़ने के लिए उसने कितनी मंजिलें पार कीं। समूचे जीवन की नाना अंध घाटियों की यात्राएँ कीं। एक-एक घटना के पीछे छिपे अनचिन्हें को कुरेद-कुरेदकर देखता रहा। जाने कितने लोगों के साथ बिताये हुए क्षणों को कितने-कितने अर्घ देता रहा। और उसकी परेशान दृष्टि इस एकदम निकट में स्थित कुरूपता की ओर नहीं गयी।

●

और अब तो वह अपने दुःस्वप्न के बारे में सोचता है तो उसके हर रंग के साथ सीरी सिंह की घिनौनी आकृति साफ़-साफ़ जुड़ी नज़र आ रही है। आज सबेरे मुंशी जवाहिरलाल ने उसे जगाया। यह शायद पहला अवसर था कि उसके जगने के पहले मुंशी जी जग गए थे।

"अरे भाई पांडे जी, उठिए, आप तो घोड़ा बेचकर सो रहे हैं जैसे।" मुंशी की आवाज़ उसके अवचेतन में भी शायद नफ़रत का कारण बन गयी थी, क्योंकि वह पहली हाँक पर ही उठ बैठा था। उसने आँखें खोलीं तो चारपाई की पाटी के पास मुंशी जवाहिरलाल का चेहरा देखकर फिर आँखें मूँद लीं। पर अब मूँदने से क्या होता है? जो चेहरा दिख गया, वह क्या अपना असर समेट लेगा। वह मुँह विचकाकर उठ बैठा था।

"अरे पांडे जी, आज मंडल के मिडिल स्कूल पर आप को तनख़ा लाने जाना है भई। कल शाम को ही चेता दिया था कि जल्दी उठियेगा, नहीं बस छूट जायेगी। जाइये, जाइये, जल्दी कीजिये। उधर तालाब की ओर फ़राग़त होकर मुँह हाथ धो लीजिएगा। सारे काग़ज़ात सँभाल लिये हैं न?"

"जी हाँ।" उसने दालान की खूँटी पर से अपना कुर्ता उतारकर गले में डालते हुए कहा।

पर जब तैयार होकर जाने लगा तो मुंशी जी चारपाई पर लेट गए थे और कम्बल खींचकर अर्धचेतन अवस्था में उतरने लगे थे। वह जानता है कि मुंशी जी दो-चार मिनट के अन्दर ही फिर सो जायेंगे और बड़े मज़े से सूर्योदय तक घंटे-डेढ़ घंटे की नींद हासिल कर लेंगे। उसे किसी एक चीज़ पर नफ़रत हो तो उसे दूर भी करे। अब मुंशी जी का सोना ही देखिए। बात करते-करते अचानक खर्राटे लेने लगेंगे। क्लास में कुर्सी पर बैठे-बैठे सो जायेंगे। गाड़ी में बैठे नहीं कि नींद आयी। भगवान् ऐसे लोगों को कितनी सावधानी से बनाता होगा। शशिकान्त हमेशा ही घंटों इसरार करता है। तब कहीं चार-पाँच घंटे के लिए नींद बुला पाता है। बस और ट्रेन में तो आती नींद भी रफ़ू-चक्कर हो जाती है।

गाँव के बाहर निकलते ही फागुनी हवा बदन में चुभने लगी थी। शशिकान्त ने हथेली से मुँह और गालों को रगड़ा था। एक हल्की गर्मी सर्दी में घुलकर उसे अजीब अहसास से भर गयी थी। वह क़ाफ़ी ख़ुश था। अँधेरी सुबह का भी एक अपना मज़ा है। इसका छककर उपभोग करने में उसने कभी कोताही नहीं की। सड़क पर पहुँचकर वह पाँचेक मिनट सुस्ता सका होगा कि बस आ गयी थी।

मंडल के मिडिल स्कूल के हेडमास्टर सदाफल पांडे शशिकान्त को

पुत्रवत् मानते। मुंशी जवाहिरलाल को यह बात भी अखरती—"पांडे पांडे एक हो गये। हाँ भई, यह ज़माना ही ऐसा है। मैं जाता था तनखा लाने तो बैठाकर साँझ कर देता था वाभन। बीसों बार हाथ जोड़कर हें-हें करने पर भी टस से मस नहीं होता था। 'बैठिये मुंशी जी, आपने तो नाकों दम कर दी। अब एक यही काम तो अपने को है नहीं।' कई-कई बार शाम वाली बस छूट गयी। पैदल घिसटना पड़ा यहाँ तक। शशिकान्त को देखते ही सदाफल पांडे की बाँछें खिल जातीं—'आओ-आओ बरखुरदार....।' घण्टों बैठकर गर्दन में गर्दन डाले बतियाते। दोपहर का खाना भी खिलाते। 'तुमने भाई अपने मंडल का नाम रोशन कर दिया। भगवान् करे तुम्हारा यश ऐसे ही बढ़े, खूब चमको। इन्सान के अन्दर उत्साह हो तो वह क्या नहीं कर सकता।"

•

आज शशिकान्त जब उन बातों को सोचता है तो लगता है कि कोई काँटेदार चीज़ उसके गले में अटक रही है। साँसें घुटने लगती हैं। इतने इतने लोग जानते थे उसे। क्या सोचेंगे सभी लोग। असलियत जानने की कोशिश कौन करता है? सारी दुनिया शशिकान्त को चोर, बदमाश, बद-चलन मानकर थूकेगी।

•

शाम को वह बस से उतरा था। उस समय उसकी बंडी की जेब में कुल दो सौ दस रुपये, नब्बे नये पैसे थे। तीनों अध्यापकों की तनखा के। बस स्टाप से करैता के बीच मुश्किल से दो मील की दूरी होगी। कई बार वह इस रास्ते से आया गया है। इधर तो अक्सर ही मुंशी जवाहिरलाल तनखा लाने के लिए पुर्जा लिखकर भेज देते थे। उसने कभी भी इस रास्ते

के बारे में नहीं सोचा। वैसे बस शाम पाँच बजे पहुँच ही जाती है। किसी भी हालत में वह छह बजे तक स्कूल पहुँच जाता था। उस दिन भी बस से उतरा तो अभी काफ़ी रोशनी थी। सूरज डूबनेवाला ही था। वह पैर बढ़ाते चल पड़ा था। करैता के इस रास्ते पर चलते उसे हमेशा ही हँसी आ जाती है। ऊँट की पीठ की तरह ऊँची-ऊँची मेड़ों पर घूमता हुआ रास्ता। देखने में गाँव कितना नज़दीक लगता, पर चलने लगो तो राह खतम होने को न आती। आधे रास्ते के बाद झाड़ियों से घिरा बगदैयाँ का सिवान आ जाता है। काफी ऊँची-ऊँची झाड़ियाँ, शाम के सन्नाटे में झन्न-झन्न करती झाड़ियाँ। वह हमेशा ही की तरह इस बार भी झाड़ियों वाला रास्ता पार कर रहा था कि एक ओर हल्की सरसराहट हुई थी। सरसराहट हुई थी—यह बात तो शायद वह काफी सोचने पर अब समझ रहा है।

उस समय तो वह बस चीखकर तड़पता रह गया था। जाने कब इन झाड़ियों से निकलकर कोई आया था। उस आदमी का चेहरा याद नहीं। सारा मुँह कपड़े में लिपटा था। सिर्फ़ दो आँखें ही उसने खुली-खुली देखी थीं। तभी उस आकृति का हाथ हिला था। शशिकान्त चीखकर पीछे हटा कि सिर पर एक भारी सी चीज़ सख्त ईंट की तरह टकरा गयी थी। वह घुटने के बल बैठ गया था। वह आदमी उसे ताबड़तोड़ पीटे जा रहा था।

उसने हाथ-पैर झटके थे। वह उस आदमी को पकड़ना चाहता था, पर उसकी आँखें काम नहीं दे रही थीं। आँखों में अजीब क़िस्म की करक हो रही थी। बालू का बहुत सा हिस्सा उसके नाक-मुँह में भी घुस गया था। दाँतों के नीचे बालू की रगड़ से या जाने क्यों शरीर सिहर गया था।

उस आदमी ने उसे ज़ोर से पकड़ लिया था। तभी उसके हाथ बंडी में कुछ टटोलते हुए लगे थे। तो यह सारे रुपये छीनने की कोशिश कर रहा है। शशिकान्त ने घूमकर उस आदमी के हाथ से अपने को मुक्त करने की कोशिश की, तभी फिर कोई सख्त सी चीज़ उसके सिर से

टकरायी थी। तो यह अकेला नहीं है, उसके साथ कोई और है। शशिकान्त की पकड़ ढीली हो गयी थी। उस आदमी ने बंडी की जेब से रुपये निकाल लिये थे और जब तक शशिकान्त अपनी बालू भरी आँखों को बेरहमी से फाड़-फाड़कर देखने की कोशिश करता, वे दोनों नौ-दो ग्यारह हो चुके थे।

शशिकान्त छवरे पर बैठ गया था। धोती के खूंट से काफी काछने के बाद आँखें हल्का-हल्का देखने लगी थीं। पर रह-रहकर पलकें झप जातीं और पपोटों के नीचे कोई चीज़ चिनगारी की तरह जल उठती।

"यह सब क्या हो गया, हे भगवान् !" वह अचेत की तरह बड़बड़ा रहा था।—"पता नहीं ये कौन थे ? डाकू या चोर। इन्हें कैसे मालूम कि मैं रुपये लिये आ रहा था।" वह आँखें मलता रहा और बड़बड़ाता रहा —"मैंने इनका क्या बिगाड़ा था ?"

बड़ी देर के बाद वह उठा और धीरे-धीरे गाँव की ओर चल पड़ा। गाँव में घुसते वक़्त उसने जी को काफी कड़ा किया। चेहरे पर से उस दुःस्वप्न की हर शिनाख़्त को मिटाने की कोशिश की। चलो अच्छा है। थोड़ा अँधेरा हो गया है। लोगों को मेरा चेहरा दिखाई न पड़ेगा। उसने सोचा और राहत की साँस ली।

देवनाथ के दरवाज़े पर काफ़ी सन्नाटा था। देवनाथ एक तरफ कुरसी डाले लालटेन की रोशनी में आज का अख़बार देख रहा था। शशिकान्त सीधे उसके पास पहुँच गया।

"कौन ? पांडे जी, आइये, आइये।" देवनाथ ने अख़बार समेट लिया—"चलिये भीतर ही।"

दोनों दालान में आकर चारपाई पर बैठ गए।

"कहिए ?"

"जरा मेरी आँखों को देखिए डाक्टर साहब।"

"क्या बात है ?" देवनाथ पांडे की आवाज़ से बुरी तरह चौंक उठा था—"सब ठीक तो है ? आप इतने घबराये हुए क्यों हैं ?"

शशिकान्त के भीतर यह सब छिपाने की भी ताक़त नहीं रह गयी थी जैसे। वह धीरे-धीरे बोला—"क्या बताएँ डाक्टर साहब, मैं तो किसी तरफ़ का नहीं रहा। सुबह गया था मिडिल स्कूल पर तनखा लाने। बस से उतरकर आ रहा था कि कुछ लोगों ने मिलकर मुझे बुरी तरह पीटा। आँख में बालू डाल दी और सारे रुपये छीन ले गए।"

"क्या ?" देवनाथ आश्चर्य से फटी-फटी आँखों उसे देखता रहा।

"यह चोर-डाकू की करतूत नहीं पांडे जी, इसमें कोई राज़ है। इस गाँव में कभी भी ऐसा नहीं हुआ। जब से बस चली है, रोज़ ही कोई न कोई उस रास्ते से आता-जाता है। मैंने कभी भी ऐसा वाक़या नहीं सुना। आइये, भीतर आपको दवा दे दूँ तो विपिन बाबू को बुलाऊँ। यह तो अंधेर है, भला बताइये ? क्या हालत कर दी है लोगों ने आपकी।"

देवनाथ ने आँखों में लोशन डालकर साफ किया था। सिर पर बाईं कनपटी के पास एक गुल्टा निकल आया था। उस पर उसने पट्टी साटी थी। वह शशिकान्त को वहीं बैठाकर विपिन के पास गया था।

विपिन शशिकान्त के बारे में सारी बातें सुनकर गहरी चिन्ता में डूब गया था। वह तुरन्त देवनाथ के साथ चल पड़ा। रास्ते में जग्गन मिसिर को भी उसने बुलवा लिया था। सभी लोग देवनाथ की दालान में आकर बैठ गए थे।

शशिकान्त आगन्तुकों के पैरों की आवाज़ सुनकर बैठ गया था। अब तक वह देवनाथ की चारपाई पर लेटा आँखों को बन्द किये पड़ा था। लोशन के कारण आँखों से पानी बह रहा था। शशिकान्त जानता है कि इन आंसुओं में सिर्फ लोशन के कारण ही गर्मी नहीं उपजी है। एक अन्दरूनी गर्मी और है, जो दवाई का बहाना बनाकर लगातार पिघल-पिघल कर बह रही है।

सभी लोग दालान में शशिकान्त को घेरकर चुप बैठे थे। वह गर्दन झुकाये था। विपिन और देवनाथ ने भी ज़मीन में आँखें गड़ा ली थीं।

"आपने उस आदमी को पहचाना नहीं ?" जग्गन मिसिर ने बात छेड़ी थी—"देवू की बात से लगता है कि अकेला नहीं था।"

"उसका मुँह कपड़े से ढँपा था मिसिर जी !" शशिकान्त गहरी अन्तर्व्यथा से अभिभूत होकर बोला—"यह सब तक़दीर का खेल है और क्या कहूँ। जाने कितनी जगहों में काम किया, मगर ऐसी हालत कहीं नहीं हुई। मेरा तो माथा ही शरम से झुक गया।"

"यह सब तो हमारे लिए शरम की बात है पांडे जी, आप काहे सोचते हैं ऐसा। यह तो हमारी नालायक़ी है कि हम एक ईमानदार नेक आदमी को ठीक से रख नहीं सकते।" जग्गन मिसिर ने लम्बी साँस खींची—"आपका किसी पर सन्देह भी नहीं है ?"

"मैं किस पर सन्देह करूँ ? मैंने तो किसी का कोई नुकसान भी नहीं किया। भरसक सबके साथ मिल-जुलकर ही रहा।"

"हूँ।" जग्गन मिसिर अचानक गम्भीर हो गए थे—"आपको किसी पर भी सन्देह नहीं है। खैर देखा जायेगा। तो विपिन भैया, अब कुछ आगे की बात भी सोचो। मास्टर साहब तनखा लेके आ रहे थे। कितने रुपये थे पांडे जी ?"

"कुल दो सौ दस रुपए कुछ पैसे थे।"

"इस रुपये का तो इन्तज़ाम होना ही चाहिए ! नहीं कल सुबह मुंशी और बाबू परसोतमसिंह हल्ला-गुल्ला मचायेंगे।"

विपिन कुछ न बोला। देवनाथ भी चुप रहा। शशिकान्त प्रतीक्षा में था कि शायद कुछ इन्तज़ाम हो जाये। अगर ऐसा हो गया तो खुले-आम बेइज़्ज़ती से तो वह बच जायेगा। जो कुछ हुआ है, वह उसे अकेले सहेगा। उसमें दूसरों को हिस्सेदार क्यों बनाये। और फिर कौन बनता है हिस्सेदार किसी के दुख में !

"कुछ बोलिए विपिन बाबू !" जग्गन मिसिर ने फिर कहा।

"क्या बोलूँ मिसिर जी, मेरे हाथ में रुपये हैं नहीं। कनिया से कह सकता था। पर उनकी भी हालत छिपी नहीं है। घर का काम-धाम चलाना भी मुश्किल हो रहा है। आपसे तो हाल छिपा नहीं है। नाम को बड़े आदमी हैं, मगर घर में खाने भर को भी अनाज नहीं। मुझसे तो कुछ कहते नहीं बनता।"

एक क्षण के लिए बिल्कुल सन्नाटा छा गया। फिर कोई कुछ न बोला। शशिकान्त धीरे से उठा।

"तो अब चलूँ मैं भी।" उसने कहा और सबको हाथ जोड़कर विदा हो गया।

●

तब से करीब तीन घण्टे हो गए हैं। दस बजे वाली पैसेंजर सारे गाँव को झकझोरती निकल गयी है। शशिकान्त को किसी भी करवट चैन नहीं। हर करवट के साथ शरीर के किसी हिस्से से निकलकर व्यथा की लहर उसे भँवर में समेट लेती है। मुंशी जवाहिरलाल बग़ल की चारपाई पर लेटे खुर्राटे भर रहे हैं। आज वह तनखा लेने जा रहा है। यह बात सिर्फ़ एक आदमी को मालूम थी। मुंशी जवाहिरलाल को। सुरजू सिंह के दरवाज़े पर उसे बुलाकर मुंशी जवाहिरलाल ही ले गये थे। जवाहिरलाल ने ही उन लोगों के मन में विश्वास दिलाया होगा कि शशिकान्त उनकी गवाही जरूर करेगा। शशिकान्त ने जब उस जाल को काट दिया और सुरजू सिंह के दरवाज़े से उठ आया तो मुंशी जवाहिरलाल ही थे, जो किसी काम का बहाना करके वहीं रुक गये थे। क्या था काम वह ? शायद उसी दिन मेरी ज़िन्दगी को तबाह करने का षड्यंत्र रचा गया था। रुपये चोरी चले जाने की आशंका मुंशी को क्यों नहीं हुई ? उसने आते ही मुझसे अपनी तनखा के रुपये क्यों नहीं माँगे ? या तो इसे कुछ मालूम नहीं, या तो फिर यह अद्भुत नाटकीय आदमी है। कौन जाने सीरी सिंह ने मुंशी से कह रखा हो कि उसकी तनखा के रुपये वह चुपके से दे जायेगा।

शशिकान्त ज्यों-ज्यों इन प्रश्नों से उलझता, उसके सिर का अगला भाग दर्द से सुन्न सा होने लगता।

"अब जो हो, मेरा तो कहीं निस्तार नहीं।" वह धीरे से बुदबुदाया। विपिन बाबू से उसे बड़ी उम्मीद थी। पर क्यों कोई दो-तीन सौ रुपया किसी को देने लगा। हो सकता है विचारे लाचार हों। कुल चार-पाँच घंटे के अनन्तर ही सूरज निकल आयेगा। तेज रोशनी में उसकी आँखों की ललाई और सर का गुल्टा किसी से छिपे न रहेंगे। आते ही बाबू पुरसोतिम सिंह तनखा का तगादा करेंगे। फिर क्या कहेगा वह? उसकी बातों पर किसे विश्वास होगा? यानो मैं अपनो सारी बेइज़्ज़ती और व्यथा के बावजूद बेईमान और फरेबी के रूप में लांछित हूँगा।

"नहीं नहीं।" वह चारपाई पर तड़पते हुए बदन के हिचकोलों को बरबस रोकने की कोशिश करता हुआ बड़बड़ाया—"मैं यह सब सह न सकूँगा।"

रात आधी के क़रीब बीत चुकी थी। बनारस जानेवाली पैसेंजर तीन बजे भोर में छूटती है। शशिकान्त अपनी चारपाई से उठा। मुंशी जवाहिरलाल वैसे ही निश्चिन्त खुर्राटों में अचेत थे। उसने खूंटी पर से अपनी टोपी उतार ली। सारा सामान उसी तरह चारपाई पर छोड़कर वह स्कूल की इमारत से बाहर निकल आया।

एक क्षण के लिए रुककर उसने धुंध में लिपटी पाठशाला को देखा और फिर मुँह मोड़कर चल पड़ा।

सूरज की रोशनी में शशिकान्त करैता आया था। आज वह रात की अँधेरी में अपने सारे हौसले लुटाकर लौट रहा है। स्टेशन का रास्ता गाँव के भीतर से जाता है, मगर वह गाँव की गली से होकर गुज़रना नहीं चाहता। वह सिवान का चक्कर काटकर जायेगा। पहचान की हद से परे, स्याही में डूबा, बेशिनाख़्त।

● ●

अट्ठाईस

"क्या मुश्किल है? इस खिड़की ने तो नाक में दम कर दिया।" खलील मियाँ भुनभुनाये और ग़ुस्से में चारपाई से कूद पड़े। एक हाथ से उन्होंने तहमत की मुर्रियों को पकड़ा और दूसरे की मुट्ठी बाँधकर इस ढंग से खिड़की की ओर बढ़े, जैसे मुक्केबाज़ो का पैंतरा ले रहे हों। उन्होंने खिड़की के पल्लों को सिरे से पकड़कर झोंक दिया। सिटकनी की कील ढीली हो गयी थी, वह अकुंसी में फँसकर भी बाहर से आती हवा के धक्के से खुल-खुल जाती थी।

मियाँ को न तो हवा की यह शरारत पसन्द आयी और न तो सिटकिनी की ये अठखेलियाँ। उन्होंने खींचकर लात मारा। खिड़की का पूरा ढांचा खड़खड़ा उठा। बाजुओं के पास ही संध से नोनी लगी दीवाल की माटी भरभराकर गिर गयी। कई जगह लेवन के चप्पड़ उधड़ गए।

"जा जहन्नम में।" उन्होंने तहमत की मुर्रियों को फिर से ऐंठकर कमर में कसा और चारपाई पर आकर उलट गए। कुछ देर ही लेटे होंगे कि फिर खिड़की से हवा का एक तेज़ झोंका आया और उन्हें सिहरा गया।

उनकी दाढ़ी के लम्बे-लम्बे खसखसे बाल उलटकर उनकी नाक खुजाने लगे।

इस बार खलील मियाँ ने खिड़की की ओर नहीं देखा। चारपाई उठायी और बरामदे से दालान में चले आ रहे।

दालान में हल्का सा अँधेरा था। ऐसी अँधेरी जगहें खलील मियाँ को रास नहीं आतीं। गर्मी के दिनों में भी जब बरामदा लू से झुलसने लगता, वे भीतर दालान में जाना पसन्द नहीं करते। उन्हें लौंडियों की तरह दरवाज़ा बन्द करके अँधेरे में सोना क़तई पसन्द नहीं।

चारपाई बिछाकर फिर लेट गए वे। दालान में अँधेर जरूर था। पर फागुन की उस कँटीली हवा से यहाँ पूरा बचाव था, जो पता नहीं क्यों खलील मियाँ के बदन में अलानाहक़ कँपकपी जगा रही थी। उन्होंने दो-एक बार एक हाथ से दूसरा हाथ भी छुआ। सहलाकर देखा। फिर कुर्ता उठाकर पेट छुआ। माथा छुआ। कुछ भी गरम नहीं है। पता नहीं कमबख्त फागुन की यह हवा उन्हें क्यों इस तरह चिढ़ा रही है। बदन बिल्कुल ठीक है। बुख़ार होता, भीतर ही से सही, तो कुछ तो मालूम होता।

"अब्बा!" सदरुल था।

"अब्बा!" वह दौड़कर आ रहा था कहीं से। चारपाई पर बैठकर उसने खलील मियाँ का हाथ पकड़ लिया था।

"अब्बा, बड़ा मज़ा आया। साफ बच गए।" वह हाँफते हुए बोला।

"क्यों, कैसा मज़ा, क्या हुआ था भला?" उन्होंने लड़के की गर्दन पकड़कर अपनी ओर खींचते हुए कहा। "किसी से झगड़ा-फसाद करके तो नहीं आ रहा है?"

"अरे नहीं अब्बा। यह बात नहीं, वो हैं न? वो वंशी सिंह के घर?"

"कौन भाई?"

"अरे वही भुल्लन की चाची! बाप रे एक बाल्टी कीचड़ घोल रखी थी उन्होंने। मैं भुल्लन के साथ मदरसे से आ रहा था मेरी एक कापी भूल कर उसने अपने झोले में रख ली थी। जब वो अपने मकान की ओर मुड़ा तब याद आई मुझे। मैं कापी माँगता दरवाज़े से गुज़रकर अन्दर चला गया, सहन में। पता नहीं किधर छुपी थीं उसकी चाची। हम लोगों को देखते ही बाल्टी उठाकर दौड़ीं और जो फेंकी छपाक् से कीचड़ कि पूछो मत। कई लड़के तो बिल्कुल सराबोर हो गए।" सदुरुल अपनी कमीज़ और पायजामे को बड़े ग़ौर से तके जा रहा था और हँस रहा था।

खलील मियाँ को उसकी कमीज़ पर एक जगह कीचड़ का दाग़ दिख गया।

"यह तो है?"

"ऐसे तो कई जगे हैं।" उसने इत्मीनान से कहा—"लेकिन साफ़ बच गए।"

"हूँ। पर पिछली होली पर तो तुम बहुत खफा थे। फेरु सिंह को गालियों से नवाजते रहे।"

"अम्मी को गालियाँ जो दे रहा था। पर इस बार देखिएगा, मैं उसे कुछ न कहूँगा।"

"क्यों?"

"क्यों क्या? वह तो सबकी अम्मा को वैसे ही गालियाँ देता है।"

सदरुल ने अपना झोला लटकाया और बइठके के दरवाज़े से होता भीतर चला गया।

●

खलील मियाँ बहुत उदास हो आए। सदरुल ने उनके भीतर कहीं मधुमाखी के छत्ते को छेड़ दिया था। एक तेज़ भनभनाहट, डंक लगने के तीखे दर्द, और उनके बीच-बीच में शीरे सी टपकती कोई मीठी-मीठी चीज़। होली के मौक़े पर 'मियाँ का हाता' शाम होते-होते आदमियों से खचाखच भर जाता था। तब यह अहाता अहाता था। खूब कुशादा और

साफ़-सुथरा। ऐसा ऊबड़-खाबड़ नहीं हुआ था। सामने की चहारदीवारी इतनी बूढ़ी न थी। उसके अंजर-पंजर इस तरह ढीले नहीं थे। यह बइठका भी तब इस क़दर मनहूस नहीं था। इसमें इस बेचारे का क्या कसूर। सालों से सफाई नहीं हुई। मियाँ का बइठका वैसे मिट्टी का ही था। लेकिन करीगरों ने मिट्टी को भी बड़प्पन देने में कोई कसर उठा नहीं रखी थी। खिड़कियों पर उभरी हुई नक़्क़ाशीदार कार्निशें थीं। ताकों के इर्द-गिर्द मिट्टी के बने बेल-बूटे। पूरे बरामदे में इस छोर से उस छोर तक दीवालों पर हरी लाल बाँड़ियाँ लगी थीं। होली के दिन दालान और बरामदे को लीप-पोतकर खूब साफ़ कर लिया जाता। अहाते के सहन को खरहरे से साफ करके उस पर पानी छिड़क दिया जाता। बड़ी दरियाँ और जाजिमें बिछ जातीं। इस तैयारी से पूरी तरह खुश होकर खलील मियाँ देवो चौधुरी और उनके खानदान के दूसरे नवचों को बुलाकर अहाते के एक कोने में बड़ा सा कंडाल रखवाते। उसमें पानी भरने, चीनी मिलाने, ठंढाई घोलने और भाँग पीसने का सारा काम ये ही लोग करते। सब कुछ तैयार है—की खबर पाकर खलील मियाँ बरामदे की आलमारी खोलकर गुलाब-जल की शीशी निकालते।

"देखा भाई, जरा सँभालकर डालना।" शीशी देवी चौधुरी के हाथ में थमाकर वे बड़ी सी तश्तरी में पान, इलाइची, खुशबूदार जर्दा और मीठी सुपारियाँ सजाते रहते। बगल की दूसरी तश्तरी में बढ़िया अबीर भरी होती जिसमें अभ्रक के चूरे जगमग-जगमग करते रहते। एक खास चीज और होती जिसे खलील मियाँ बड़ी हिफ़ाज़त से अपने तंजेबी कुर्ते की जेब में डाल लेते। खस के इत्र की शीशी।

इसे भी तश्तरी में रखना इन्हें गवारा न होता। जाहिल लोग बड़ी बेमुरव्वती से शीशी का मुंह खोलकर हथेली में ढरका लेते। गोया इत्र न हुआ, सरसों का तेल है कि हथेली भर लेकर काकुल में चुला लेंगे। दो-एक बार शीशी भी सरेआम तश्तरी में रख छोड़ी थी। छावनी के मालिक भैया को बड़े चाव से इत्र लगाने चले थे खलील मियाँ, मगर रुई थी सालो

कि शीशी के मुंह पर घंटों रखने पर भी तर नहीं हुई और जैपाल सिंह के हाथ पर वे उसे रगड़ा किये, पर चमड़े पर एक कतरा भी इत्र नमूदार नहीं हुआ। बढ़ी खीझ हुई थी खलील मियाँ को।

"या अल्ला तोबाह। कैसे उजड्ड दहकानी लोगों से पाला पड़ा है।" वे भुनभुनाये और जैपाल सिंह की ओर देखकर शर्माये-शर्माये हँसते रहे।

"अरे हटाओ भी खलील।" जैपाल सिंह बोले थे—"काहे परेशान हो रहे हो। ठीक है भाई।"

"खाक ठीक है।" खलील मियाँ का खिसियाना गुस्सा ज्यों का त्यों बरक़रार था—"देखिये इन सबों का अहमकपना, इत्ती बड़ी शीशी का इत्र साले मिनटों में चाट गए, हुँह्।"

तब घण्टों होली होती थी खलील मियाँ के दरवाजे। चाहे पेट कैसा भी भरा हो, या नशा कितना भी चढ़ा हो, कोई यह कहने कि हिम्मत नहीं करता था कि ठंढाई नहीं पीयेगा। मियाँ खुद बुक्के के बुक्के अबीर उड़ाते रहते। सबके चेहरे, बाल और कपड़े जब तक पूरी तरह रंग नहीं जाते, उन्हें चैन ही नहीं मिलता।

आज जब खलील मियाँ उन दिनों की खुशग़बार यादों में उलझते हैं तो उन्हें साफ लगता है कि उस ज़माने में गाँव के हर वाशिन्दे को जैसे एहसास था कि चूँकि खलील उनकी जात या क़ौम का नहीं है, इसलिए उसकी होली में किसी को भी रोड़ा डालने या मज़ा किरकिरा करने का कोई हक़ नहीं है। इस एहसास के पीछे जैपाल सिंह का दबदबा भी एक मानी जरूर रखता था। मगर यह तो कोई बात नहीं हुई कि जैपाल सिंह नहीं रहे याकि जमींदारी खत्म हो गयी तो गँवई ज़िन्दगी के जो ऊँचे वसूल थे वे भी आपोआप खत्म हो जाएँ।

कैसी बेफ़िक्री की ज़िन्दगी थी वह। मगर देखते-देखते ही हमने कितना लम्बा फ़ैसला तै कर डाला। आज कहीं कुछ नहीं है। पिछले चार-पाँच सालों से, जब से जैपाल सिंह चले गए, फिर खलील के दरवाज़े

कभी होली नहीं हुई। देवी चौधुरी ने मेरे साथ दग़ा की, फिर किस मुँह से बुलाता उन सबों को ?

मैंने तो होली बन्द नहीं की।

मियाँ जैसे दर्द से तिलमिलाकर चारपाई पर तड़पने लगे थे। कई बेवक़ूफ कहते सुने गए कि होली मैंने बन्द की। बकने दो लोगों को। मैं किसी की ज़ुबान तो नहीं पकड़ सकता। माना कि मेरी हालत पहले सी नहीं रही। हो सकता है कि अब मैं उतनी चीज़ें मुहइया न कर सकूँ जितनी होली के मौक़े पर किया करता था, मगर ऐसी तो खटिया नहीं कटी मेरी कि मैं दस-पाँच लोगों की खातिर-तवाज़ा न कर सकूँ।

हाँ, यह सही है कि खलील की रूह तो ज्यों की त्यों है, मगर मन बहुत बदल गया है। मुझे नये ज़माने से कोई गिला नहीं। सच तो यह है कि मैं इस बदलते मंजर का अरसे से मुन्तज़िर था, मगर यह नया दौर खलील को पस्त हिम्मत बनाने आ रहा है, इससे मैं जरूर नावाकिफ़ था।

●

ख़लील मियाँ ज्यों-ज्यों इन मामलों पर सोचते रहे, त्यों-त्यों उनकी परेशानी बढ़ती गयी और उन्हें लगने लगा कि बरामदे की कटीली हवा ज़ियादा अच्छी थी। इस दालान में तो जैसे दम घुट रहा है।

तभी दालान का दरवाज़ा खुला और सदरुल की अम्मा ने चौखट पर रुककर इधर-उधर देखा। जब उन्हें पूरा भरोसा हो गया कि बइठके में कोई नहीं है तो वे दालान में आ रहीं। वे एक दुबली-पतली औरत थीं। यद्यपि उनकी कनपटी के पास बाल कुछ-कुछ सफेद हो गए थे, और चेहरे पर सलवटों का जाल सा छाया था, पर उनको देखकर कोई यह सोच भी नहीं सकता था कि यह औरत थक गयी है। उनके पूरे बदन में सिर्फ हाथ ही खुले थे और इन हाथों की उभरी-उभरी नीली नसें इस बात का सबूत थीं कि इस औरत को अपने हाथों पर पूरा भरोसा है।

ख़लील मियाँ ने सदरुल की अम्मा को खड़ी देखा तो वे एक लमहे के लिए यों पड़े रहे, जैसे उन्हें किसी का आना मालूम ही नहीं हुआ। उन्होंने अपनी खुली आँखें झपका लीं।

"बैलगाड़ी का कोई इन्तज़ाम हुआ ?" सदरुल की अम्मा चारपाई के पास आकर बोली—"आँखें बन्द करने से आफ़त नहीं टलेगी।"

"कैसी आफ़त ?"

"मैं ही हूँ आफ़त आपके लिए कि और कौन आफ़त।"

खलील मियाँ उठकर बैठ गए। वे एकटक सदरुल की माँ की ओर देख रहे थे। उनकी मुद्रा में एक अजीब अपराध-भाव था, किंचित याचना से मिला-जुला। वे बड़ी देर तक ऐसे ही ताकते रहे। शायद इस उम्मीद से कि बेगम उनके जज़्बातों को समझकर कुछ देर बाद अपना यह गुस्सा थूक देंगी। मगर जब सदरुल की माँ के चेहरे में काफी अरसे इन्तज़ार के बाद भी कोई फ़र्क़ नहीं आया तो खलील मियाँ परेशान होकर इधर-उधर देखने लगे।

"तो आपका इरादा नहीं बदल सकता। यही न ?" उन्होंने काफी उदास होकर कहा।

"इरादा बदलने से कोई फ़ायदा होता तो मैं अलानाहक क्योंकर ज़िद करती ? मुझे क्या आपको परेशान देखना अच्छा लगता है। आख़िर आप यहाँ क्यों पड़े रहना चाहते हैं। अब पहले वाला ज़माना नहीं रहा। शादी करने लायक़ एक लड़की सिर पर सवार है। हम यहाँ बेगाने लोगों के बीच कब तक रह सकते हैं ? खेती-बारी का लगाव था, वह भी सब ग़ारत हुआ, फिर यहाँ रहने से आपको क्या सकून मिलता है, मेरी समझ में नहीं आता।"

खलील मियाँ एक लमहे के लिए घायल की तरह अपनी बीबी की ओर देखते रहे—"तो आप भी बदरुल की तरह सोचने लगी हैं। कई पुश्त इस मिट्टी में गल गए। इसी खाक़ से हम जन्मे। इसी में लोट-पोटकर बड़े हुए। अब यह सब आपके लिए बेगाना हो गया। अगर यह बेगाना है

तो अपना क्या है ? समझती हैं कि मायके में जाकर सुख से रहेंगी। यह गाँठ बाँध लीजिए बेगम कि गुरबत के दिन बेगानों में काट लेना ज़ियादा अच्छा है। कोई हँसने तो नहीं आयेगा। हमारी परेशानियों पर लोग तरस तो नहीं खायेंगे। वहाँ सभी अपने हैं, रिश्तेदार हैं, उनके सामने फटेहाल रहने में बेइज़्ज़ती से गर्दन झुक नहीं जायेगी क्या ?"

"अब आपको कौन समझाये। वहाँ लोग हमारी हालत से नावाक़िफ हैं ! गोया वे जानते ही नहीं कि हम किस मुफलिसी में दिन काट रहे हैं !"

"वे सब जानते होंगे। मगर एक जानना होता है और एक दीदे फाड़-फाड़कर देखना। कोई हमारे बारे में जानता है, इससे हम अनजान रह सकते हैं। मगर कोई हमारी चिन्दी-चिन्दी उड़ते देख रहा है, यह सहना मुश्किल होता है। जानना दिल के अन्दर छुपा रहता है, मगर देखना देखे जानेवालों के जख़्म पर हरचन्द नमक छिड़कता रहता है। मैं यह नहीं कहता कि मैं जाने को तैयार नहीं हूँ, पर उजलत में कोई काम कर बैठना ठीक नहीं होता। इत्मीनान से सोच-समझकर कोई फ़ैसला करना चाहिए। अभी खेतों में फसल लगी है, यह सब कुछ छोड़कर चल देना कोई अक़्ल-मन्दी तो नहीं कही जायेगी।"

"कौन सी फसल है, जरा मैं भी सुनूँ ? फसल के आसरे रहें तो खाना मुअस्सर न हो। औरतों की ब्लाउज़ें, लड़कों के गुलूबन्द और स्वेटर सिल-बुनकर किसी तरह रोटी जुटाती रही हूँ। ऐसी फसल से तो बिना खेती भला। इससे तो अच्छा है कि किसी को अधिया-बटाई दे दीजिए। जो मिल जाये खुदा का करम, जो न मिले अपनी बदकिस्मती। रही बात जग-हँसाई की तो मैंने तो देखा नहीं कभी वहाँ किसी को हँसते।" सदरुल की अम्मा को अपने मायके के लोगों की भलमनसाहत का पूरा भरोसा था। इसलिए वे मियाँ की लगती बातों पर तनिक तिनककर बोलीं—"हँसेंगे वे ही जिनके ऊपर भरोसा करके हम किसी ओर के नहीं हुए। अभी उस रोज़ देवी का छोटा लड़का मुझे देखकर बोलियाँ कस रहा था कि अब नवाब-ज़ादियाँ भी गोबर पाथने लगीं। कितनी बार सदरुल को उन सबों ने बिला

वजह पीटा है। मैंने आपसे इसलिए नहीं कहा कि क्यों बेमतलब परेशानी बढ़ायें। ऐसे ही कहाँ चैन की नींद मयस्सर होती है। फिर एक बवेला यह भी मोल ले लें।"

इस बार सदरुल की अम्मा का तीर ठीक निशाने पर लगा था। खलील मियाँ सदरुल के पीटे जाने की बात सुनकर गुस्से से लहर उठे।

"उन कमीनों की यह हिम्मत ? आपने पहले ही क्यों नहीं कहा। मैं बोटी-बोटी नोच लूँगा। क्या समझ रखा है हमें। पठान हूँ, पठान। अभी मेरी रगों का खून पानी नहीं हुआ है सदरुल की अम्मा। मुझे इस पर ताज्जुब है कि आप कैसे पी गयीं यह सब।"

"जाने दीजिए, बात बढ़ाने से क्या फायदा ? नीच क़ौम के मुँह नहीं लगा जाता। उनकी कौन सी इज़्ज़त है जो जाया होगी। हर तरह से नुक़-सान तो अपना ही है।"

"मैं गया था अभी जग्गन मिसिर के हियाँ, वो हैं नहीं। मिसराइन से कह आया हूँ कि आएँ तो जरी कह दीजियेगा कि खलील मियाँ याद कर रहे थे।"

"जग्गन मिसिर ?"

"हाँ भई, फेरु सिंह की बैलगाड़ी है। मिसिर से उनकी खूब पटती है। दे तो वो मेरे माँगने पर भी देते, पर सोचा क्या मुह खोलूँ। कहीं नहीं कर दिया तो नाहक़ मलाल होगा। मिसिर की बात वो नहीं टालेंगे।"

सदरुल की अम्मा के चेहरे पर हल्की सी रौनक़ दौड़ गयी। जैसे तमाम परीशानियाँ एक-ब-एक हवा हो गयी हैं।

खलील मियाँ का चेहरा देखने लायक था। जमनिया जाने को वे तैयार तो हो गए, लेकिन काफी ऊँची क़ीमत पर। अचानक उन्हें लगा कि उनकी आँखों के आगे अँधेरा घना हो गया है।

वे आहिस्ते से चारपाई पर लेट गए। दीवालों के चप्पड़ उधड़ गए थे। एक तरफ कोने में मकड़ी ने भारी सा जाला टाँग रखा था। तभी एक ललछौंही मकड़ी एक सिरे से दौड़ पड़ी। कोई कीड़ा फँस गया था

शायद। झटके की वजह से सँभल नहीं पायी और नीचे झूल गयी। काफ़ी नीचे से फिर ऊपर को हुमस चली। हाथों लम्बे तार जैसे वह मुख में पिरोती जा रही है। सारा फन्दा खाकर वह फिर उसी ऊँचाई पर पहुँच कर घात में बैठ गयी।

"या खुदारा!" खलील मियाँ बड़बड़ाये—"खुद तार उगलती है, निगलती है और खुद-ब-खुद उसी में फँस भी जाती है।"

खलील मियाँ को नहीं मालूम कि आखिर वे इतने बेचैन क्यों हैं। जमनियाँ तो वे अक्सर जाते रहे हैं। काफी लम्बे-लम्बे अरसे तक वहाँ रहे भी हैं। गाँव के शोहदे उन्हें चिढ़ाते भी रहे हैं इसी बात पर। मगर अब की बार का जाना कुछ और ही तरह का है। शायद अब करैता आना न हो। बेगम किसी भी हालत में यहाँ लौटने को तैयार नहीं होंगी। वे ज्यों-ज्यों इस बात पर ग़ौर करते, उन्हें लगता कि हलक़ के नीचे कुछ बुरी तरह जल रहा है।

खलील मियाँ पस्त होकर लेटे रहे। तभी भीतर से दौड़ता हुआ सदरुल आया और उनके बदन से चिपट गया।

"अब्बा।" उसने उन्हें खींचते हुए कहा—"अबकी होली में क्या हम यहाँ नहीं रहेंगे? अम्मी कहती हैं कि हम परसों मामू के यहाँ चले जायेंगे।"

खलील मियाँ कुछ न बोले। सदरुल को उनकी यह चुप्पी काफी अखर गयी थी। वह और ज़ोर-ज़ोर से उन्हें खींचने लगा। मियाँ ने अपना सर हाथों में लपेटकर छिपा लिया था। सदरुल उनके सर को ठेल रहा था। उसे लग रहा था कि अब्बा उसे परेशान करने के लिए ऐसा कर रहे हैं।

उसकी खींचतान में सहसा खलील मियाँ का औंधा मुंह सामने आ गया।

सदरुल सहमकर खड़ा रह गया। जैसे उसे काठ मार गया हो। खलील मियाँ की आँखें आँसुओं से भरी हुई थीं।

"अब्बा! आप रो रहे हैं?" लड़का एकदम रुआँसा होकर उन्हें देखता रहा।

"नहीं तो।" खलील मियाँ ने रूखे हाथों से आँखें पोंछ लीं। फिर उन्होंने बिखरी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—"ग़र्द भर गई होगी बेटे आँख में।" उन्होंने हँसने की कोशिश की। लड़के को अब भी तस्कीन नहीं हुई तो मियाँ ने उसे खींचकर अपने बाजुओं में भर लिया और उसके ललछौंहें घुंघराले बालों को आहिस्ते-आहिस्ते सहलाने लगे।

"खलील मियाँ। अरे भाई कोई है?"

सदरुल अब्बा की बाँहें छुड़ाकर फुदकते हुए बरामदे में आ रहा। सामने जग्गन मिसिर खड़े थे।

"सलाम वालेकुम मिसिर चाचा।"

"जीओ, जीओ, क्यों जी सदड़ू तुम्हारे अब्बा हैं?"

तभी खलील मियाँ दालान से निकलकर बरामदे में आ गए। मिसिर बरामदे की चारपाई पर बैठ गए। एक लम्बी साँस ली जैसे बहुत थके हों। फिर बोले—"यह गाँव साला हरामियों से भर गया है। दौड़ते-दौड़ते तबियत हलकान हो गयी।"

"क्या बात हुई?" खलील मियाँ ने पूछा।

"दयाल की गाय लगा दी सालों ने कांजीहौद में। आजकल बुलुवा है नहीं। धरमू सिंह ने भेजा है कहीं। उनकी लड़की की शादी है न परसों। सो उन्होंने किसी काम से उसे अपनी ससुराल भेज दिया है। आज सुबह दीपू बो भौजी आयीं।

"जगरनाथ, ए जगरनाथ....। बुढ़िया डंडा टेक-टेक कर जाने कैसे डुगरती-डुगरती आ गयी मेरे निकसार में।

उसे सहारा देकर दालान में ले आया!

"गइया....।" वह रो-रोकर बोली—"दो दिन से गइया नहीं आयी। बुलुवा को दूसरों की ताबेदारी से ही फुरसत नाहीं मिलती। एक तो वही

आसरा थी। लगता है कोई हाँक ले गया। मैं आन्हर कहाँ-कहाँ टक-टोरूँ। सगरी गाँव घूम आयी। कहीं कोई सुराग नहीं मिला।

"सो खलील मियाँ। मैंने उसे समझा-बुझाकर रवाना किया और सुबह से कंधे पर गमछा डाले सारा देहात छान मारा। मैंने सोचा था कि कहीं बहक गयी होगी। अपनी मूर्खता क्या कहूँ आपसे। सीधे क़स्बे गया होता तो इतनी हलकानी न होती। किसो साले ने गाय कांजीहौद में लगा रखी है।"

"या अल्ला! उस ग़रीब के साथ ऐसा किसने किया?"

"किसने किया यह मुझे मालूम है। और मैं आपसे कह देता हूँ कि देखते रहिए दो-एक दिन के भीतर उस साले की टाँग तोड़ता हूँ कि नहीं। लड़ाई का हौसला है तो समरथ के साथ करो। ग़रीबों को सताकर हेकड़ी दिखाना तो टुच्चापन है। आजकल इस गाँव का अजब हाल है। कोई तुम्हारे साथ नहीं है तो जरूर तुम्हारा दुश्मन है। अरे भाई दयाल से क्या मतलब पार्टीबन्दी से। वह ग़रीब तो इतना सीधा है कि कोई अदना भी कुछ कह दे तो हुकुम बजाने चल देगा। न उसकी कोई पार्टी, न उसकी कोई गोल। वह छल-प्रपंच भी तो नहीं जानता। अब सालों ने मान लिया कि चूँकि दयाल उनकी तरफ नहीं है, इसलिए खिलाफ पार्टी का है। बस चलो, लगा दो गाय मवेशीखाने। पाँच-सात रुपये तो गल ही जायेंगे। अब पाँच-सात कहाँ से लायेगा बेचारा। हो जायेगी गाय नीलाम।"

"फिर क्या हुआ?"

"हुआ क्या? मैं तो जेब में पैसे रखकर गया नहीं था। बड़े असमंजस में पड़ा। छुड़ाने को पैसा नहीं। न छुड़ाऊँ तो जुरमाना बढ़े। फिर क्या करता। वो रतनलाल है न हलवाई, चौक में, उसी से हथफेर लिया। सात रुपये। कांजीहौद का बाबू सब जुरमाना जोड़-जाड़कर दस रुपये बता रहा था। मैंने कहा, भइया एक ग़रीब बुढ़िया की गाय है। किसी शोहदे ने बेचारी को परेशान करने के लिए लगा दिया यहाँ। कुछ दया करो। सो किसी क़दर सात रुपये में गाय छूटी। अभी हाँककर बाँध आया हूँ दयाल की चरनी पर। नहा-धोकर खाने बैठा, तो पता चला कि आप आये थे। सच मानिये ठीक से खाया भी नहीं गया। मैं सोचने लगा कि खलील मियाँ क्यों आये थे? आजकल मन बड़ा शंकालु हो गया है खाँ साहेब! इस गाँव में कुछ भी हो सकता है।" जग्गन मिसिर उदास ढंग से हँसे—"बस मुँह-हाथ धोकर भागा आ रहा हूँ। अब कहिये क्या हुकुम है?"

खलील मियाँ हँस पड़े—"अरे हुक्म क्या मिसिर जी। अरज कहिए। सदरुल की अम्मा ज़िद कर रही हैं जमनिया जाने के लिए। वैसे खाली-खाली जाना होता तो मैं इक्का मँगवा लेता। अबकी कुछ सामान ज़ियादा है, इसलिए सोचा कि अगर कोई बैलगाड़ी मिल जाती तो सुभीता होता।"

"तो यह कौन सी बात है। मैं फेरूसिंह से कह देता हूँ। उनका चर-वाहा गाड़ी भी हाँक लेता है। वह पहुँचा आयेगा।" अचानक जग्गन मिसिर गंभीर होकर बोले—"कुशल-मंगल तो है? यह सब सामान-वामान लेकर जानेवाली बात समझ में नहीं आयी इस बार। बहुत दिनों तक ससुराल में रहना है क्या?"

खलील मियाँ का चेहरा जैसे बुझ गया हो। वे एक क्षण मिसिर की ओर देखते रहे। फिर उन्होंने आँखें फेर लीं। वे सच कहना नहीं चाहते थे, झूठ बोलना नहीं चाहते थे। इस खींचातानी में उनकी आँखें चिलक उठी थीं। मिसिर कहीं यह सब देख न लें। इसलिए उन्होंने गर्दन झुका ली।

मिसिर को समझते देर नहीं लगी। उनकी आँखें सामने फर्श के किसी अदृश्य बिन्दु पर टिक गयीं। एक विवश असंतोष की एक लम्बी साँस खींचकर वे उठ गए।

"अच्छी बात है, खलील मियाँ।" वे चलने को हुए—"गाड़ी चाहिए कब?"

"परसों सुबह।" खलील मियाँ चारपाई से उठकर मिसिर को अहाते के बाहर तक पहुँचा आए।

• •

उनतीस

फागुन सुदी नवमी को पुष्पा की शादी थी। गाँवों में शादी प्रायः वैशाख से आसाढ़ के बीच होती है। इसलिए कि लोग खाली होते हैं। घरों में नई फ़सल का अनाज होता है। फिर गर्मी में बारातियों या आगन्तुकों के लिए ओढ़ने जुटाने की भी दिक़्क़त नहीं होती। धरमू सिंह इस लगन के पक्ष में नहीं थे। फागुन में शादी? कहाँ से गेहूँ लायेंगे, कहाँ से दाल-बेसन? पर चचिया को फागुन की लगन खूब पसन्द थी। बल्कि यों कहें कि उन्होंने ज़िद करके फागुन में ही लगन धरवायी। यदि माघ में खरमास न होता तो शायद वे माघ में ही शादी कर डालतीं। उन्होंने सीपिया नाले वाले कांड के बाद हफ़्ते भर के भीतर अपने भाई को बुलवाया और सारी बातें समझाकर लड़का ठीक करके सगाई पक्की करने का आग्रह किया। लड़का बड़ी जल्दी मिल गया। क्योंकि उसे खोजना नहीं था।

पुष्पा के मामा के किसी रिश्तेदार का लड़का था। साल भर पहले उसकी औरत मरी थी। अच्छे खाते-पीते गिरहस्थ हैं। लड़का भी खूब

हट्टा-कट्टा और कमासुत है। फिर क्या चाहिए। शादी पक्की हो गयी। कोई तूल-ताल नहीं। बस लड़का, नाऊ, बारी, बाभन और समधी। पाँच जन आयेंगे। आराम से शादी करके चले जायेंगे। न इनका खर्च, न उनका खर्च। दोनों ओर की बचत। आज के ज़माने में ऐसी ही शादी शोभती है। पुष्पा के मामा की ये बातें सुनकर चचिया हँस देतीं। एक अजीब बुझी-बुझी, रहस्य में डूबी हँसी।

"क्यों दिदिया!" मामा ज़रा शंकित होकर पूछते—"काहे हँसी? कोई खुटका हो तो साफ़ कहो! अभी बात चली ही है। शुरू में तोड़ लेना ठीक रहता है। बात आगे बढ़ जाने पर नाहीं-नुकुर करना ठीक नहीं होता। तुमको ई रिश्ता पसन्द नहीं है?"

चचिया उन्हें थकी-थकी-सी देखती रहतीं—"पसन्द-वसन्द का सवाल क्या है भइया। किसी तरह निस्तार हो जाय यही बहुत है। जिसके भाग में जो रहता है, वही मिलता है।"

उन्हें मन मारकर चुप होते देख पुष्पा के मामा भी एक क्षण चुप रहते। औरतें ऐसी ही होती हैं। उन्हें कोई घर-बार पसन्द ही नहीं आता। शादियों में मीन-मेख चलती ही रहती है। मामा जी बखरी से उठकर बइठके में आ रहते। शादी की तैयारी की बातें चल निकलतीं।

और अन्त में वह दिन भी आ गया कि पुष्पा एकाएक सबकी सहानुभूति की पात्र बन गयी। सब को भीतर ही भीतर खुशी है कि आज चिन्ता का बोझ उतर जायेगा। चचिया खुश हैं, धरमू सिंह खुश हैं, पुष्पा के मामा जी खुश हैं, फिर गाँव के लोग-बाग ही खुश क्यों न हों?

विपिन भी खुश है? अभी दो दिन पहले चचिया आयी थीं छावनी। कनिया को बुलाने।

"आना ज़रूर बहूरानी!" चचिया बोलीं—"पुष्पी ने कहलाया है कि कनिया को ज़रूर बुला लाना।"

कनिया कृतज्ञता से हँसी थीं। आने का विश्वास दिलाया था। उनके

होंठ कुछ सूखे-सूखे से हो गए थे अचानक। जैसे महीनों बीमार रहकर उठी हैं।

विपिन पास ही चारपाई पर बैठा था। औरतों की बात से अलग होने का नाटक करते हुए वह चचिया से बहुत कुछ पूछना चाहता था। घर कैसा है? वर कैसा है? पर उसे लगा कि वह कोशिश करके भी ये बातें पूछ नहीं पायेगा। इसीलिए जब चचिया चलने लगीं तो विपिन नाटकीय ढंग से बोला—"हम लोगों लायक़ भी कोई काम हो चचिया, तो बिना संकोच कहना।"

चचिया के पैर रुक गए। मुड़कर विपिन की ओर देखती रहीं। फिर मुस्करायीं। झुर्रियों से भरे पीले मुंह की उस अबूझ मुस्कराहट को देखकर विपिन कांप सा गया। उसकी गर्दन झुक गयी। गर्दन का झुकना कनिया देख न लें, इसलिए उसने हँसने की कोशिश करके जो गर्दन उठाई तो उसके चेहरे पर बनावटी भावहीनता का एक भोंडा मुखौटा झूलने लगा।

"क्यों नहीं बेटा।" चचिया उसे पूरी तरह आश्वस्त करती हुई बोलीं—"ज़रूरत हुई तो कहूँगी ही। और कौन है अपना यहाँ जिसके सहारे पार उतरने का मनसूबा बांधती।"

चचिया चली गयीं। विपिन एकदम खामोश हो गया। भीतर की भी हलचलें धीरे-धीरे मौन होने लगीं। कनिया सामने ठिठकी उसकी ओर देख रहीं थीं। विपिन को इस तरह से देखे जाने का पात्र बनना शायद पसन्द नहीं था। उसने पैरों में जूते डाले और बाहर बइठके में आ गया।

फागुन की साँझ उतरने लगी थी। तेज़ और झकझोरती हवा चलने लगी थी। विपिन को लग रहा था कि अचानक तकिये पर सर रखना सुखद लग रहा है। एक उचटी-उचटी नज़र उसने सामने की केवड़ार पर डाली। नीम की डालियाँ नंगी हो रही थीं। हल्के झोंके से भी सूखी पत्तियाँ झुमर-झुमरकर नीचे गिरने लगी थीं। आम के पेड़ों में काले-नीले पत्तों के बीच छोटे-छोटे मोजर झांकने लगे थे। एक झुण्ड पच्छी समूचे बगीचे के ऊपर से चहचहाते निकल गए। अन्तिम सिरे के पास पहुँचकर फिर मुड़े और मँडराने लगे। मँडराते रहे।

●

विपिन काफी सुस्त हो गया। बखरी के भीतर से वह आया था। उसे लग रहा है कि वहीं है। चारपाई बिछी है। सामने उसकी ओर ताकती कनिया खड़ी हैं। बगल में चारपाई पर गर्दन लटकाये बैठे हैं बुझारथ। वातावरण एकाएक सघन हो गया है।

"तुम धरमू सिंह की लड़की से शादी करोगे?" बुझारथ सिंह गर्दन उठाकर, आँखों में घृणा और ग्लानि भरे उसकी ओर देखते हैं।

"हाँ, हाँ, हाँ, मैं उससे शादी करूँगा।" विपिन का गला भर आता है। चेहरा गर्मी से झुलसने लगता है। उसे लगता है कि यह गर्मी कितनी आत्मीय है। जलते हुए बदन के भीतर जैसे कुछ टूट-टूटकर पिघल रहा है और उसकी आत्मा एक अबूझ शीतलता में डूबती जा रही है।

बुझारथ का मुंह खुला का खुला रह जाता है। उन्हें शायद उम्मीद नहीं थी कि विपिन इस तरह निःसंकोच यह बात कह देगा।

कनिया ज्यों की त्यों खड़ी हैं, जैसे पत्थर की मूरत हों। बुझारथ एक बार उनकी ओर देखता है, कुछ सहारा, कुछ समर्थन पाने की मुद्रा में, पर कनिया कुछ नहीं बोलतीं।

बुझारथ के चेहरे से साफ है कि वे परेशान हैं। पर कुछ कर भी नहीं सकते। विपिन को रोकने की ताक़त उनमें नहीं है।

अचानक जैसे वे कुछ सोच रहे हों, शायद उन्हें सीपिया नाले के पास चने के खेत में भयभीत हरिणी के समान काँपती पुष्पा की आँखें याद आ रही हैं। उन्होंने दोनों हाथों की अंजुलि में अपना मुँह छिपा लिया है। फिर वे धीरे से उठते हैं। कनिया को देखते हैं। चलते हैं।

"तुम्हारी जो इच्छा।" वे हारे हुए आदमी की तरह लड़खड़ाते हैं और निकसार की ओर चल पड़ते हैं।

विपिन को लगता है कि एक कसकती-टीसती साँस उसके कलेजे से बाहर निकल गयी है। सहसा वह बहुत उपकृत सा अनुभव करता है। पैरों को पूरा फैलाकर मुक्ति को स्वीकृति देता हैं। ऐंठते बदन को करवट बदल कर तोड़ता है। उँगलियाँ चिटकाता है और फिर शिथिल होता जाता है।

पीले रेशम की साड़ी में लिपटी पुष्पा कोनिया घर में दुबकी हुई बैठी है। वह इस कदर सिमटती जा रही है, जैसे आसपास की खाली जगहें उससे छेड़खानी करने के लिए तत्पर हों। तभी विपिन धीरे पैरों उसके पास पहुँचता है। लाल रेशम का कुर्ता, पीली धोती, पैरों में काम किया जोधपुरी जूता। वह पुष्पा के एकदम पास पहुँच जाता है। पुष्पा अपना आँचल खींचकर और भी अधिक सिमट जाती है।

विपिन उसके एकदम पास पहुँचकर रुक जाता है। पीली चूनर में लिपटा उसका गात, उसका वह सब कुछ, जो विपिन के सामने है, उसी का है, उसी के लिए है। विपिन दूसरे के अस्तित्व को इस तरह स्वीकृत करते एक क्षण के लिए काँप उठता है। वह झुककर अपने दोनों हाथों से पुष्पा के मुँह को थाम लेता है। धीरे-धीरे झुका हुआ, घूंघट से ढका मुँह, ऊपर उठने लगता है। एक क्षण और—और सूरजमुखी का फूल मध्य आकाश के सम्मुख था। पुष्पा के गोल सुघड़ मुँह पर भौंहों के पास बनी पत्रावली कितनी सुन्दर लग रही थी। विपिन की आँखें डबडबा आयीं। सहसा उसके चेहरे पर भोलापन छा गया। हल्की उदासी और बेशुमार खुशी से थरथराती आँखें पुष्पा की बड़ी-बड़ी कजरारी आँखों में डूबने लगीं।

●

"विपिन बाबू।"

जग्गन मिसिर बिल्कुल चारपाई के पास खड़े होकर बोले—"क्या सोच रहे हैं इस तरह?"

"ऐं....मिसिर जी!" विपिन जैसे किसी वर्जित क्षेत्र की यात्रा करते पकड़ गया हो—"आइए, आइए।"

वह झटके से पैरों को समेटकर बैठ गया। मिसिर एक क्षण वैसे ही खड़े रहे।

"अब बैठेंगे नहीं विपिन बाबू।" उन्होंने कुछ सोचते हुए कहा—"ज़रा फेरू सिंह के वहाँ जाना है। खलील मियाँ परसों जा रहे हैं जमनिया। बैलगाड़ी चाहिए।"

विपिन अभी भी पूरी तरह प्रकृतिस्थ नहीं हुआ था। खलील मियाँ के बारे में मिसिर की सूचनाएँ कहीं सुदूर बजती घंटी की तरह लग रही थीं।

"खलील मियाँ इस बार हमेशा के लिए जा रहे हैं विपिन बाबू।"

"क्या?" विपिन अब एकदम निकट आ गया था—"आपको कैसे मालूम? उन्होंने कहा? जमनिया तो वे अक्सर जाते रहते हैं।"

"कहा तो नहीं। पर कभी-कभी ऐसा होता है न कि किसी को देख-कर भीतर का बरम बोलने लगता है। खलील मियाँ के यहाँ से ही आ रहा हूँ। मेरा बरम कहता है कि मियाँ अब लौटेंगे नहीं। बड़े थके-थके से लग रहे थे विचारे।"

जग्गन मिसिर चले गए। तलैया के जल में एक भारी सा पत्थर लुढ़क गया। स्थिर पानी में सूरज का डूबता बिम्ब काँपता रहा। विपिन की आँखें एक जगह ठहर नहीं पातीं। वह सचमुच कायर है। पुष्पा के लिए सब कुछ कर सकता था, पर कुछ नहीं कर सका।

'खानदान, इज़्ज़त, झूठी प्रतिष्ठा के लिए तूने अपनी आत्मा का खून किया है?' एक छाया विद्रूप करती हुई उसके भीतर से पूछती।

'इतनी बेइज़्ज़ती हो चुकी है उसकी। फिर मैं उसे कैसे स्वीकार कर लूँ।' वह अपने मन को प्रबोधता।

"बेइज़्ज़ती किसके कारण हुई? उसमें उस निर्दोष ग़रीब का क्या अपराध था?" छाया बिलकुल आँखों के सामने हाथ हिला-हिला कर कहती।

'क्या कहेंगे लोगबाग? पिछली सारी घटनाएँ अब तक ढँकी-तोपी हैं। क्या पुष्पा के बारे में कहने से वे फिर खुलकर नये-नये अर्थों में सामने

नहीं आ जायेंगी ?' वह फिर हिम्मत करके अपने को समझाता—'चुप रहने में ही भलाई है। जो हो रहा है, वही ठीक है। ग़लत को भीतर-भीतर बिना प्रकट किये ही भोग लेने में राहत है। मैं क्या कर सकता हूँ ?'

विपिन बेचैन होकर चबूतरे पर घूमता रहा।

•

फागुन सुदी नवमी का सूरज किसी अलग ढंग से नहीं उगा। पर विपिन को दिन की शुरुआत बहुत भारी-भारी लग रही थी। सबेरे-सबेरे चन्ना को कनिया ने बुलाया। चचिया के घर न्यौता जा रहा था। बड़े-बड़े डालों में चावल, दाल, आलू-बैगन। एक पीली साड़ी, ब्लाउज का कपड़ा। चोटी, कंघी, शीशा और बड़ा सा सिन्होरा। आलता और नाखून-रोगन की शीशियाँ।

विपिन ने आँगन में रखे उस सामान को उचटती निगाह से देखा था।

फागुनी सुबह अपने पूरे सौन्दर्य के साथ उतर आयी थी। सबेरे के समय हवा मन्द थी, सूरज की रोशनी काफ़ी कोमल। पेड़ बहुत शान्त थे, जैसे अपने भीतर दौड़ते नये खून की हरकत को सचेत भाव से अनुभव कर रहे हों। नीम, पीपल और पकड़ी के पेड़ों में लालछौंहें ताँबिया पल्लव निकल आये थे। अचानक प्रकृति बहुत जीवित और जागृत लगने लगी थी।

विपिन केवड़ार के पास चारपाई खींचकर बैठा था। तभी पूरबी छवरे पर फेरू सिंह की बैलगाड़ी दिखी, मियाँ के सामान से भरी हुई। आस-पास के एक झुण्ड लड़के उस तमाशे के पीछे-पीछे चल रहे थे। बैलगाड़ी में सदरुल, जुबैदा और उसकी माँ बैठी थीं। माँ बुरके में लिपटी निश्चेष्ट थीं। रह-रहकर जुबैदा, अपनी ओढ़नी ठीक करती अन्यमनस्क बैठी थी और सदरुल बैलगाड़ी के मेंडर के सहारे उठंगा नाना प्रकार की शरारती चेष्टाओं में मशगूल था। वह गाड़ी पर चढ़ने के इच्छुक पीछे के हिस्से में लटकने की कोशिश करते लड़कों को अँगूठा दिखा-दिखाकर हँस रहा था।

ख़लील मियाँ गाड़ी के पीछे, थोड़ा हटकर, गर्दन झुकाये चल रहे थे। विपिन उन्हें देखकर चारपाई से उठकर लपकते हुए उनके पास पहुँच गया।

"नमस्कार ख़लील चाचा।"

"नमस्ते विपिन बेटे ! कहो क्या हाल है ?" ख़लील मियाँ थोड़ा परेशान होकर बोले—"बड़ी बेहूदा क़िस्म की हवा चल रही है। अभी भी सर्दी है। है न ?"

विपिन इस बेमौसमी सवाल पर चुप रहा।

"अममियाँ जा रहे हैं ?" जानते हुए भी अनजान जैसा होकर विपिन ने पूछा। ख़लील मियाँ हवा की बेरुख़ी पर अपना गुस्सा व्यक्त करके काफ़ी चुप हो गए थे।

"हाँ भई, सदरुल की अम्मा ज़िद करने लगीं। लाचार जाना ही पड़ रहा है।" मियाँ दूसरी ओर देखते हुए बोले।

"कब तक लौटेंगे ख़लील चाचा ?" विपिन के इस आत्मीय सवाल से ख़लील मियाँ को फिर बेहद परेशानी महसूस होने लगी।

वे उसकी ओर एक क्षण देखते रहे। बोले—"जब भी बुला लो बेटे, हाज़िर हो जाऊँगा। मैं क्या कोई बाहर जा रहा हूँ ? तुम बुलाओ और मैं न आऊँ, ऐसा तो कभी हो ही नहीं सकता। ग़ालिब का एक शेर है :

मेहरबाँ होके बुला लो मुझे चाहो जिस वक़्त।
मैं गया वक़्त नहीं हूँ कि फिर आ भी न सकूँ।।"

ख़लील मियाँ हो-हो करके हँस पड़े। उन्हें ख़ुद लग रहा था कि इस नाटकीय अन्दाज़ के पीछे कोई ग़ैर-सचाई तो नहीं, मगर मजबूरी ज़रूर है।

"विपिन बेटा अब लौटो।" ख़लील मियाँ ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"काफ़ी दूर आ गए।"

"अच्छा।" उसने ख़लील मियाँ को प्रणाम किया।

"आदाब अर्ज़ बेटे ! ख़लील तुम्हारी तरक़्क़ी की ख़बरें सुनने के लिए हमेशा बेताब रहेगा । ख़ुदा तुम्हें बरक़तें और शुहरत दें ।"

ख़लील मियाँ विपिन से विदा होकर गाड़ी पर बैठ गए । गाड़ी चल पड़ी । सीपिया नाले के पुल पर गाड़ी चढ़ी तो विपिन को लगा कि यह गाड़ी नहीं, एक ऊँचे मंच पर रखा हुआ ताज़िया है । गये वक़्त का ताज़िया । ग़म और शहादत के भावों में लिपटा हुआ ताज़िया !

•

छवरे पर चलते हुए विपिन के सामने उसका गाँव था, बंसवारियों, पेड़ों और परिचय की उदासीनताओं में लिपटा हुआ गाँव । पता नहीं क्यों सहसा विपिन को लगा कि करैता आज उसके भीतर के तंतुओं से निकल कर अलग खड़ा हो गया है । विपिन अलग है, उसका गाँव अलग । अलग-अलग होने की यह भावना कुछ इस क़दर मोहहीन थी कि विपिन चुपचाप खड़ा होकर एक क्षण सामने स्थित गाँव को देखता रह गया । वह, जहाँ आम के पल्लवों का सेहरा बाँधे बाँसों का मंडवा है, पुष्पा का घर है । हवा के झोंके से बाँसों के पतले सिरे हिलते हैं तो लगता है जैसे नौ अनुभवी बुज़ुर्ग किसी एक बात पर सहमति व्यक्त करने के लिए गर्दनें हिला रहे हैं । कौन सी बात है, किस पर ये सभी इस तरह आश्चर्यजनक रूप से सहमत हैं ? 'शायद मेरी कायरता'—विपिन सोचता है और उदास हो जाता है ।

विपिन धीरे-धीरे गाँव की ओर बढ़ता है । छवरा गाँव में आकर के छावनी वाली गली में मिल जाता है । दायें चलें तो गली में सौ डग आगे पुष्पा का घर है, बायें चलें तो पचास डग आगे बाबू की केवड़ार । एक ओर आँगन में मंडवा है, दरवाज़े पर चावल पीसकर लाल सफ़ेद रंगों में बना कोहबर है, गेरू के सातिये हैं, दूसरी ओर छावनी का सन्नाटा और केवड़ार का अबूझ मौन । विपिन दूसरी ओर ही जा सकता है । वह

दरवाज़े पर आकर केवड़ार के पास बिछी चारपाई पर बैठता है । पैरों से जूते निकालकर एक क्षण इधर-उधर देखता है, फिर चारपाई पर लेट जाता है ।

शिथिल लेटे रहना, लेटे-लेटे सोचना, सोचते-सोचते कुछ प्रीतिकर दृश्यों को याद करना—यह खुद में कोई महत्वपूर्ण काम नहीं है, पर विपिन को यह अच्छा लगता है । माना कि यह एक प्रकार से मन को भूलभुलैया में फँसाये रहने का बहाना है, पर इसमें भी एक मज़ा है । ज़्यादा खुजलाने से ज़ख्म फूट सकता है, बाद में इससे ज़्यादा दर्द भी भोगना पड़ सकता है, पर तलफते हुए ज़ख्म को खुजलाते रहने का मज़ा विपिन छोड़ नहीं पाता । वह बीच में सिर्फ़ खाना खाने के लिए उठा । सो भी इसलिए कि कहीं कनिया खाना न खाने की बात का कुछ ग़लत-सही अर्थ न लगाने लगें । चारपाई को खींचकर छाया में किया और फिर उसी तरह लेटकर पड़ा रहा ।

चार बजे के क़रीब दयाल महराज आकर उसकी चारपाई पर बैठ गए । दयाल महराज काफ़ी चुप-चुप थे । उन्होंने यह जानने की कोशिश नहीं की कि विपिन सोया है या जगा ।

"विपिन बाबू ।" उन्होंने फुसफुसाकर कहा ।

"हाँ ।"

"उन्होंने एक सन्देश भेजा है ।"

विपिन कुछ न बोला ।

दयाल महराज कहते रहे—"कहलाया है कि कल सुबह बिदाई है । क्या वे मेरे डोले के पास एक मिनट के लिए आ सकेंगे । यह मेरी आख़िरी विनती है । कहियेगा कि उसे ठुकरायेंगे नहीं । मैं एक बार देखना चाहती हूँ ।"

विपिन को लग रहा था कि दयाल महाराज अपने मुँह पर लोककथाओं के जादुई कमल का पत्ता लगाकर बोल रहे हैं, जिससे छनकर आती आवाज़ एकाएक मोटी और रहस्यात्मक हो गयी है । दयाल महराज मात्र

संदेशिया भर नहीं हैं कि वे आवाज़ के उपहार को ज्यों का त्यों पहुँचा आएँ। वे अपने सहज स्वभाव के कारण ऐसे अबूझ नाटकों के पात्र, भोक्ता और दर्शक भी हो जाते हैं, इसलिए ज्यों का त्यों पहुँचाये जानेवाले पदार्थों से भी उनकी अपनी अनुभूतियाँ अनजाने लिपट जाया करती हैं।

"चले जाइयेगा विपिन बाबू।" दयाल महराज एकाएक बहुत कातर हो गए—"आखिरी बार देख-दिखा लेने से कुछ नहीं बिगड़ेगा। हाँ, उस ग़रीब को एक सहारा ज़रूर मिल जायेगा।"

विपिन केहुनी के बल उठकर बैठ जाता है। वह एक अजीब आश्चर्य, जिज्ञासा और खिंचाव के भावों में डूबा-डूबा दयाल महराज की ओर घूर-घूरकर देखने लगता है। दयाल महराज एक क्षण विपिन की ओर सीधे देखते रहे, फिर उन्होंने आँखें झुका लीं और बिना कुछ कहे-सुने उठकर चल दिए।

विपिन को रह-रहकर दयाल महाराज की वे छोटी-छोटी, धूमिल, उदास आँखें याद आती रहीं और वह जब भी उनके भीतर की लिखावट को पढ़ने की कोशिश करता, अचानक उसके शरीर के रोंवे भरभरा आते और वह एक अजीब सिहरन से काँप जाता।

शाम को कनिया ने कहा था—"क्या चेहरा बनाये हो। अरे भाई, तुम्हें याद नहीं क्या? आज धरमू सिंह के यहाँ शादी है। द्वारपूजा का समय हो रहा है। कपड़े-वपड़े बदलोगे कि नहीं? सबको न्यौता भी आया है। वहीं खाना-खाना है।"

"तो शाम को अपने घर खाना नहीं बनेगा?"

"बनेगा क्यों नहीं। तुम जानते ही हो, मैं कहीं खाती-पीती नहीं।"

"तो मेरे लिए भी बना लेना, मैं भी कहीं नहीं जाऊँगा।"

"हूँ। 'वे' जायेंगे नहीं। तुम जाओगे नहीं। तो बचा कौन? सिर्फ़ बुट्टू न्यौता निभायेगा?"

विपिन चुप रहा। कनिया ने भी बात आगे नहीं बढ़ायी। विपिन पानी पीकर बाहर आ गया। सामने की गली से निकल चलने की जैसे हिम्मत ही न हो। वह मिसिर के मकान के पास से घूमकर पूरी पच्छिम पट्टी की परिक्रमा करते हुए गाँव के बाहर आ गया। मन में कोई गन्तव्य न था। पर पैर अनायास महाबीर जी के मंदिर की ओर खींचते गये। अच्छा है। वहीं बैठेंगे घरी दो घरी।

विपिन कुएँ की जगत से पीठ टिकाये बैठ गया और बैठा रहा।

●

बारात स्कूल में टिकी थी। बरामदे में दरी बिछा दी गयी थी। पाँच-सात बारातियों के लिए परेशानी ही क्या? द्वारपूजा, गुरहथी और अब विवाह। तीन बार बाजे बजे। तीन बार स्कूल से लेकर धरमू सिंह के मकान तक जुलूस आया। जुलूस! बड़े-छोटे, प्रसन्न-उदास जुलूस भी इन्सान के भाग्य-अभाग्य की पहचान होते हैं।

"ज़रा भी शादी-ब्याह जैसा लग रहा है कहीं?" गली की मोड़ पर खड़ी एक औरत कह रही थी—"बह विवाह नहीं बहिनी निवाह है।"

"क्या करे बिचारी। रिन-करज लेकर लड़की को पार करा दिया, यही बहुत है। 'एह जमाने' में विवाह ऐसे ही होता है।" दूसरी बोली।

विपिन ने अपने को सब कुछ से अलग कर लिया। घरी भर रात गए वह महावीर जी के मंदिर से लौटकर घर आया। खाना-खाया। चारपाई बिछाकर लेट गया। हल्का जाड़ा था। पर बरामदे में जाने का मन नहीं होता था। बरामदे में बुझारथ सिंह थे। चन्ना था। एकाध और नये बैठक-बाज भी, जो बोलते कम थे, बुझारथ की बातों पर सिर्फ़ हँस देते थे। गाँजा पीने के लिए दरबारदारी कौशल सीखने की अब ज़रूरत नहीं थी; क्योंकि बुझारथ सिंह को अकेलापन इस क़दर परेशान करता था कि कोई अन-बोलता संगी भी काफ़ी प्रीतिकर लगने लगता। विपिन अपने को इस वाता-वरण में शामिल करने के पक्ष में नहीं था। आज उसे एकान्त बहुत अच्छा लग रहा था। वह चाहता था कि अपने को सब ओर से समेटकर अपने ही भीतर खो जाये।

नवमी का चाँद काफ़ी उजला था। कुहरीली परतों के भीतर वह थोड़ा फीका-फीका ज़रूर लग रहा था, पर सब मिलाकर रात काफ़ी अच्छी लग रही थी। केवड़ार से भीनी-भीनी खुशबू उठकर हवा में तैर रही थी। विपिन तकिये पर सर टिकाये सिवान को देख रहा था। साफ़ चाँदनी भी दृष्टि से परे फीकी स्याही का समुद्र ही लगती है। पेड़-पत्तियाँ, खेत सभी इस सफ़ेद अँधेरे में एक में एक मिले खोये-डूबे से रहते हैं। अँधेरे समुद्र के तट पर जहाँ तक दृष्टि जाती है, एक सीमा है, हल्के शनैः शनैः विरल होते प्रकाश की, वहीं विपिन दृष्टि टिकाये लेटा है। कुछ छायाएँ हिलती हैं। जानवरों के पैरों की आवाज़ें हल्के टकराती हैं। ऊबड़-खाबड़ रस्ते पर पैर रपटते हैं। और तभी विपिन को लगता है कि तेज़ आलाप के साथ, किसी थके गले की कम्पन दिशाओं को चीरने की लगातार कोशिश कर रही है :

आ ऽऽ आ ऽऽऽ रे ऽऽ
आ ऽऽऽ आ ऽऽऽ रे ऽऽ

सुर जितवा नदी से लौट रहा है।

विपिन सोचता है। सोचना और सचेत होने का क्रम जैसे आवाज़ के कम्पनों से बचाने का बहाना है। गायक को पहचान लेने भर से शब्द अर्थों के प्रभाव से मुक्त नहीं हो जायेंगे। विपिन को लगता है कि वह गाने का तटस्थ श्रोता मात्र है, पर सुरजितवा ज्यों-त्यों नज़दीक आ रहा है, उसके गले की थरथराहटें एक दूसरे को धक्का देती लहरों की तरह लगातार टकराने लगती हैं :

सजन सकारे जायेंगे
प्रान मरेंगे रो-ो-ो-ो-य।
विधना ऐसी रैन कर
भोर कभी ना हो-ो-ो-ो-य॥

एक मसोसने वाली खुशी, एक गर्म हवा का झोंका, एक अवसाद की रहस्यमयी चादर। और विपिन को लगता है कि साँस भीतर ही भीतर रुँध रही है। एक क्षण कोई क़ैद प्राणों को उठाकर अछोर गगन में मुक्त कर रहा है, दूसरे क्षण कोई फड़फड़ाते हुए प्राणों को पकड़कर किसी अंध गुफा में फेंक सभी द्वार बन्द कर देता है।

"तुम सिर्फ़ मन के गुबार को धुनते रहोगे।" दुखती रगों को सहलाते हुए जब उसने अपना सिर दबाया तो जैसे भीतर कोई सन्नाटे में बोल पड़ा—"तुमसे कुछ नहीं हो पायेगा। तुम अपने ही बनाये जाल में उलझी मकड़ी की तरह छटपटाते रहोगे और चारों तरफ से कटकर उसी में क़ैद होकर मिथ्या शान्ति पाने का नाटक करते रहोगे! यही तुम्हारी नियति है!'

"बकवास है।" वह बुदबुदाया और चारपाई से उठकर खड़ा हो गया।

लाख मनाने पर भी कभी भोर नहीं रुकती। विपिन की नींद उस भोर में काफ़ी पहले उचट चुकी थी। बरामदे से वह टुकुर-टुकुर बाहर की ओर देखता रहा। वह सोचता था कि रोज की तरह सूर्योदय के आस-पास वह उठेगा। पर नींद काफ़ी पहले खुल गयी। उसे लगा कि उसके गले के भीतर कोई खट्टी सी जलती चीज़ भर गयी है। आँखें दुख रही थीं। बुझारथ सिंह अभी भी सोये थे। चन्ना बैलों को दाना-भूसा डालकर घोड़े की चरनी के पास खड़ा था। विपिन चुपचाप उठा। उसने लोटा लिया और तालाब की ओर चला गया।

रह-रहकर एक ही बात दिमाग़ में कौंध रही थी।

"उन्हें अन्तिम बार देखना चाहती हूँ।" पुष्पा ने दयाल महराज से कहलाया था।

"क्या रखा है इस देखने में"—विपिन ने सोचा। अनायास उसके गले से एक लम्बी साँस साँप की तरह रेंगती निकल गयी।

वह मुँह-हाथ धोकर बहुत जल्दी आ गया। दूर जाना है, विदाई काफ़ी भिनुसारे हो जाती है। कहीं डोला उठ न जाये।

दरवाज़े पर भरा लोटा रखकर वह चबूतरे पर घूमता रहा।

धरमू सिंह के दरवाज़े पर बाजा बज रहा था। डोला लगा हुआ था। भीतर वह सबसे मिल-भेंट रही होगी। डोले पर बैठते वक़्त उसकी आँखें ज़रूर इधर-उधर उठेंगी। नहीं जाना था, तो दयाल महराज को साफ़ कह

देना चाहिए था। जैसे इतना किया, वैसे एक नकार और सही। चुप रह जाना ठीक नहीं हुआ। वह चुपचाप धरमू सिंह के दरवाज़े की ओर चल पड़ा। धरमू सिंह की बखरी में जैसे कुहराम मचा था। औरतों की रुलाई काफ़ी दूर से सुनायी पड़ रही थी।

विपिन की हिम्मत नहीं पड़ी कि वह दरवाज़े के पास पहुँचे। वह एक मकान की आड़ में खड़ा रहा। बखरी के दरवाज़े पर औरतें आ गयीं। आगे आगे पुष्पा थी। लाल चूनर में लिपटी हुई। मुँह घूँघट से ढँका था। निउनिया उसे अँकवार में थामे थी। पीछे रोती, आँखें पोंछती औरतें। उनके बीच दो-एक बहुएँ भी थीं। हँसती-किलोलें करतीं। विपिन की दृष्टि सहसा कल्पू बो भौजी पर पड़ गयी। वे लाल किनारी की पीली साड़ी पहने थी। ललाट पर बड़ा सा बुन्दा था।

पटनहिया भाभी एक औरत के कंधे पर हाथ रखे गा रही थीं—

उनके अँखिया से लोरवा गिरत होइहैं ना।
उनके गजमोती अँचरा भिजँत होइहैं ना।
फूल परिजतवा झरत होइहैं ना।
लरिकइयाँ के नेहिया टुटत होइहैं ना।

विपिन को लगता है कि उसके भीतर भी कहीं कुछ टूट रहा है। वह यहाँ एक क्षण भी और रुका तो बेतहाशा रो पड़ेगा।

वह देखता है, पुष्पा डोले के पास खड़ी है। वह घूँघट उठाकर इधर-उधर देखती है। विपिन उलटे पाँवों लौट पड़ता है। पता नहीं, पटनहिया भाभी को इस मौक़े पर इस गीत की कैसे याद आ गयी। यह दूसरा मौक़ा है जब छावनो को गाँव ने अस्वीकृत कर दिया था।

पर इस बार गाँव ने कहाँ अस्वीकृत किया? अस्वीकृत तो विपिन की कायरता ने किया।

पुष्पा चली गयी। पारिजात-हरण हो गया। विपिन अचानक लड़खड़ा जाता है।

• •

तीस

चैत की सुबह करैता की चमरौटी में अजीब ढंग से आती। तीन-चार बजे शुकवा उगने के साथ ही झोपड़ियों की यह बस्ती तरह-तरह की आवाज़ों से भर जाती। हर झोपड़ी में पतली मोटी, भारी-धीमी आवाज़ों की शहनाई छिड़ जाती। लड़के-लड़कियों की तेज़ झनझनाती आवाज़ें, औरतों की ज़िम्मेदारी से भरी धीमी आवाज़ें और इन सबके ऊपर मर्दों की थकी-थकी भारी आवाज़ें। सभी को जल्दी है। दिन निकलने के पहले गृहस्थों के खेतों पर पहुँचना ज़रूरी है।

"तुम लोग यहीं मेला लगाये रहो।" सरूप भगत की भारी आवाज़ सभी आवाज़ों को ढँक लेती है—"चार मील दूर है सिवान। भोर होते-होते सैकड़ों 'कटनी' टूट पड़ेंगी। क्या करेगा गिरहस्थ। जो देर से पहुँचेगा छाँट देगा। चौदह बिगहे के टपरे में चौदह सौ कटनी तो लगा नहीं सकता।"

इस साल फिर देवीचक के चमारों की गोल झिनकू के खंडहर में उतरी है। झिनकू अपनी मड़ई में लेटा-लेटा सब सुन रहा है। उसके घर में कोई

शोर नहीं। कोई छीना-झपटी नहीं। घुरबिनवा बगल में सोया है। अब यह लौंडा भी कैसा काहिल हो रहा है। एक खुदक्का लगते ही जगजितवा के डर से उठकर बैठ जाता था। तीन बार हाँक लगा चुका हूँ; पर ऊँ-ऊँ करके करवट बदल लेता है। उसकी माई भी कान में तेल डाले पड़ी रहती है। पहला जमाना होता तो वह सबके पहले तनतनाकर खड़ी हो जाती। मड़ई में आकर टट्टर पीटने लगती।

'सगरो गाँव खेत पर पहुँच गया।' इसके गले में तो बारहो मास जुकाम ही रहता है। ऐसा फटे गले से बोलेगी कि सुबह की सुहानी नींद उचट जायेगी। अरे पहुँच गया 'सगरो' गाँव, तो जाये चूल्हे भाड़ में। मैं का करूँ? तब झिनकू को अपनी स्वामिभक्ति पर विश्वास था। देर-सबेर भले हो जाये, जगजीत सिंह अपने खेत से निकाल नहीं सकते। हम कोई मौसमी अलानिया कटनी नहीं है। पुस्तैनी बनिहार हैं। इस जमाने में कटनी सरेखने का काम भी झिनकू ही करता था। आसपास के गाँवों की 'कटनी' उसकी चिरौरी करतीं। लगती भी थी भाई फसल बंशी सिंह के खेत में कि दिखवैया लग जायें। यह-यह पोरसे बराबर गेहूँ कि आदमी डूब जाएँ। ऐसे गिरहस्थ की कटिया करने के लिए काहे न हो चढ़ा उपरी। एकदम छाँटकर 'कटनी' लगता था झिनकू। वह जमाना होता आज तो देवीचक वालों को भला इतना सबेरे उठना पड़ता? बड़के भिनुसारे जग जाते हैं बिचारे। तसला-बर्तन माँजने-धोने की आवाजें उभरने लगाती हैं। चीलम चढ़ जाती है। सरूप भगत एक-एक का नाम पुकारकर जगाते हैं। क्यों न करें यह सब। उन्हीं के आसरे इतने घरों के लोग जाने कहाँ-कहाँ की 'जात्रा' करते हैं। सरूप भगत, दुलरिया और उसका मरद, अपने तो कुल तीन ही जन हैं। दुलरिया भी 'बिअहुता' हो गयी।

कैसी चिलबिल्ली लड़की थी वह जब पाँच साल पहले आयी थी। इसी खंडहर में रात को मजलिस जमती थी। दुलरिया तो जैसे सरूप भगत की 'आतमा' हैं। पतली छरहरी छड़ी की तरह लचकदार। पर काम पड़े तो लोहे की तरह कड़ेर! विवाह के बाद देह थोड़ी भर गयी है। एक छौना

भी है गोद में। पर उसके चिलबिल्लेपने में कहाँ फरक आया? चमारों की जिन्दगी में जो नहीं है, और जिसे हर औरत-मर्द रात में गीले नैनों को मूँदे-मूँदे सपने में देखता है, वही जैसे दुलरिया बनकर सामने खड़ा है।

साँझ को गिरहस्थ के खलिहान में आखिरी बोझा पटककर जब वह खण्डहर में आयी थी तो देह सुस्त थी। काफी थकी थी शाइत। पर चेहरे पर सदाबहारी मुस्कान ज्यों की त्यों थी। रोजीना की तरह बोझा पटक कर वह कपड़ा उठाये तालाब की ओर नहीं गयी। नीम की जड़ में पीठ टिकाये बैठी रही।

"हो दुलारी, बहुत थक गयी का? आज नहाने भी नहीं गयी?" घुरबिनवा की माँ ने पूछा।

"जाती हूँ भौजी।" दुलरिया मुस्कराकर बोली—"ज़रा सुस्ता लूँ। देखो न नीब की मोजर से कैसी सुबास निकल रही है।" उसने ज़ोर-ज़ोर से साँसें खींची, जैसे सारी खूशबू को कलेजे में भर रही हो। घुरबिनवा की माई उसकी ओर टुकुर-टुकुर ताकती रही। यह कौन-सा काम है भाई जिसे दुलारी इतनी गम्भीरता से कर रही है। अजब विश्वास है इन चमारिनों में दुलारी के लिए कि उसके 'ऊटपटांग' कामों को भी वे 'सरधा' से देखतीं। यही बात यदि झिनकू ने कही होती तो उसके गले का पुराना जुकाम-खरखराने लगता और वह तिनककर बोलती—"अरे कुछ पेट की फिकर करो। ई भरा रहेगा तो कूड़े से भी सुबास निकलेगी। समझे? नीम की मोजर सूंघने से पेट नहीं भरेगा। ई सब बहेतूपना मुझे नहीं सुहाता।"

"तुझे क्या सुहायेगा? सूअर की तरह बेमतलब हर जगह में थूथन मारना भर जानती है। तुझे क्या मालूम कि जिन्दगी क्या है। हर साल एक ठो मेमना जन देगी। साले मरभुखों की पलटनें खड़ा कर दी घर में। दिन भर पेट-पेट! तेरे पेट की ऐसी-तैसी।" इस एक साल ने झिनकू को क्या से क्या बनाकर छोड़ दिया। चमरौटी में घूमना-फिरना, किसी के दरवाजे पर बैठकर हुक्का-चिलम पीना, किसी से कुशल-मंगल करना—

सब तो मुहाल हो गया। कहीं भी जी नहीं लगता। गाँव-घर का काम कुछ दूसरा ही होता है। सड़क का काम कुछ दूसरा है।

फुट से नापकर माटी खुद रहीं है। इतनी जगह की माटी इतनी हुई। जानो कि माटी नहीं, सोना है। ओभरसियर ससुरा खाली लम्बाई-चौड़ाई नापकर माटी कूत लेता है। उसके कूतने में सेर भर का भी फरक शायद ही कभी पड़े। मेरे कुल तीन आदमी काम करते हैं। दो 'सोगहग' दो अद्धा। इतने मजूरों के लिए इतनी माटी। चलो अब दिन भर के लिए हो गया बन्धेज। सुस्ताओ तो माटी को देखो, फेंको तो माटी को देखो।

करीमन मेठ अपना ही जात-विरादर है। मगर 'पढ़गित' किये हैं। रजिट्टर भर लेता है। सबका नाम उसके 'रजिट्टर' में दरज है। उसी में वह रोजीना हाज़िरी लगाता है। भारी-भारी अफसरान से बतिआता है। मगर ई ज़रूर कहेंगे कि उसने आज तक मुझको कोई 'बदजबान' नहीं कहा। नहीं तो वह सड़क पर काम करनेवाले मजूरों को 'नंगियाय' कर रख देता है। ऊ कड़ककर बोलता है कि पसीना चलने लगे।

सब है भाई, रुपया भी है, मगर गाँव-घर की बात कहाँ? किसी के ऊपर आफत-विपत आ जाये तो उसे कौन देखता है। डेढ़गाँवा का चरित्तर दुसाध ठीक कहता है कि भगत ई जानो रेल है। बस पटरी-पटरी चली जा रही है। सैयदराजा से चली है। दोनों पटरी में मजूरे भरे हैं। ई दानवा-दूत है। इसको खोराक देते जाओ। अपनी मजूरी लेते जाओ। जहाँ चूके नहीं, खोराक कम हुई तो, चाहे तू नागा किये तो, बस यह तुम्हारी छाती पर चढ़ जायेगी—धक् धक् धक् चीरतो निकल जायेगी। इसे तुम्हारी कोई परवाह नहीं। तुम आज बेराम हो, लड़का-प्रानी के ऊपर कोई आफत-विपत आ गयी, तो तू जानो तुम्हारा काम जाने। कोई सुननेवाले नहीं। पहले की मजूरी में से काट-कूटकर बचाये हो तो कर लो गुज़ारा, नहीं चलो फिर पटरी पर, झोंको खोराक!

या तो खोराक झोंको या खोराक बनो। यहाँ यही सब काम चलता रहता है। इसमें कहीं 'लसावट' नहीं है। धनेसरी चाची कहती है कि

रोज़ीना की मजूरी से आदमी 'छुट्टा' रहता है। किसी की फ़िकर नहीं करनी पड़ती! किसी की धौंस नहीं सहनी पड़ती। ठीक है। मगर हर रोज़ सबेरे गाँव से मेहर-लड़िका लेकर सड़क की ओर चलने पर लगता है कि हमी बेगाने हैं। इतने बड़े राज में हमारे लिए कोई जगह नहीं। खेतों के बीच से तिरछे रास्तों पर पग धरते कैसी हूक उठती है।

हर सिवान की माटी अपनी पहचानी है। करइल की काली माटी नागरमोथा की ललछौंही जड़ों से गुंथकर कैसी बादामी हो जाती है। हल चलने पर फाल से दरककर जब माटी का हिरदा खुलता है तो सोंधी-सोंधी गंध से कलेजा हुलस जाता है। बरसात में यही माटी कड़ी हो ऐसी पत्थर हो जाती है कि टूटने का नाम नहीं लेती। खूब गहागह बरखा के बाद वही माटी नैंनू की तरह फिसलने लगती है। यह सब गया। अब तो खेत में चलने से ही लगता है कि गुनाह कर रहे हैं। कोई टोक न दे। सिवान से अब हमारा क्या वास्ता! इतने बड़े सिवान में एक बित्ता भी ज़मीन नहीं जो 'अपनी' हो। एक बीघा का भी टपरा होता तो हम लोग उसी में लोट-पोटकर अपना दिन गुज़ार देते। मन में संतोष तो रहता कि धरती-माता ने दुतकारा नहीं। गाँव से 'बहरिआए' नहीं गए। मगर अभागे झिनकू के भाग में ई सब कहाँ?

झिनकू अपनी मड़ई में लेटा यही सब सोच-गुन रहा था। झिनकू बो दोपहर के लिए कपड़े में लिट्टी 'गँठियाय' चुकी थी। मझली लड़की को सरेख रही थी कि वह बाकी लड़कों को किस तरह दिन भर सँभालेगी। झिनकू मड़ई से निकलकर बाहर आ गया था, और चबूतरे पर गोड़ टिकाये देह तोड़ रहा था। घुरबिनवा अभी भी वैसे ही लेटा था।

"अब तुम्हीं जाकर उठाओ उस पिल्ले को!" झिनकू अपनी घरवाली को देखकर भुनभुनाया—"हम तो चार खुदक्का लगाकर हार गए। सरवा कूँ-कूँ करके करवट बदल लेता है।"

झिनकू बो मड़ई में यों घुसी, जैसे उसने उसकी बात ही न सुनी हो। वह सीधे सोये हुए लड़के के सिरहाने जाकर बैठ गयी।

"घुरबिन।" लड़के के सिर पर उसकी हथेली सहलने लगी। उँगलियाँ बालों में चिपक गयीं।

"घुरबिन।" दर्दीली आवाज़ में प्यार का ऐसा असर था कि लड़के की सुगबुगाती चेतना मानों तंद्रा और थकावट की लहरों को परत पर परत चीरती ऊपर चली आ रही है। दो बार की हाँक में घुरबिन सिहर कर उठ बैठा।

"का माई, सबेर हो गयी?" घुरबिनवा कमासुत लड़के की तरह विलंब से उठने के लिए पछता रहा था। उस समय उसका मासूम चेहरा अजीब तरह की उदास मुस्कराहट में डूब गया था।

"चल तनिक खरमेटाव कर ले।" घुरबिनवा की माँ लड़के के कन्धे पर गमछा रखती हुई मड़ई से बाहर आ गयी।

"कैसा चहक रहा है सरवा।" माँ बेटे को संग-संग जाते देख झिनकू बोला—"हम जगाते थे तो मानो माहुर पिलाते थे। कड़वा मुँह करके कर-वट बदल लेता था। अब कैसा चटक उठ बैठा, जानो पेड़ा खिलाने ले जा रही है। हूँह।" झिनकू बो ने कुछ कहा नहीं। स्वभाव के विरुद्ध हल्के मुसकरा दी। आज अनजान में ही सही झिनकू ने यह मान लिया था कि कुछ मामलों में घुरबिनवा की माँ के आगे वह कुछ भी नहीं है।

लड़का-लड़की और पत्नी को लेकर झिनकू गाँव से बाहर आ गया। पूरबी आकाश में हल्का-हल्का उजास फूट रहा था! थोड़ी देर में रोशनी और साफ़ हो जायेगी। सारा सिवान खेतों में फसल काटनेवाले मजूरों से भरा है। खेतों की मेड़ पर गिरहस्थ घूम रहे हैं। सभी जाने-पहचाने हैं। ऐसे में झिनकू को बड़ी शरम आती है। वह कैसे बगल के रस्ते सबकी उठी आँखों का निशाना बनता गुज़र जाए? सड़क पर जानेवाले ठीक रस्ते पर बगदैयाँ में 'कटनी' लगी है। इसी में सरूप भगत और उनकी गोल के लोग भी हैं। हालाँकि वह रस्ता थोड़ा घूमकर है, पर झिनकू को लगता है कि उधर से जाया जा सकता है। सरूप भगत की आँखों में हमेशा एक

'अपनपौ' रहता है। उनके साथ वाले चमारों में भी झिनकू की हालत पर व्यंग्य करनेवाला कोई नहीं।

"का बब्बू, तिरछे निकल चलो इधर से।" घुरबिनवा ज़िद करता है—"कितना घूमकर चलोगे?"

"जैसे चलते हैं वैसे चला चल!" झिनकू उसकी ओर बिना देखे बोलता है।

घुरबिनवा चुप हो जाता है। आजकल बाबू बहुत बदल गये हैं। हमेशा गर्दन झुकाये चलते हैं। कई बार तो ठोकर भी लगी। बात-बात में 'गुसिया' जाते हैं।

"का हो झिनकू!" रस्ते से उन्हें गुजरते देख सरूप भगत हँसिया थामे खड़ा हो गए—"अरे आव, जरा खैनी खाते जाव बेटा!"

झिनकू सरूप भगत की ओर बढ़ आया। झिनकू बो देवीचक की चमारिनों से बोलने-बतियाने लगी।

"ए दुलारी फुआ!" घुरबिनवा कुहक रहा था—"तोहें एक बात बतायीं?"

"बोल बोल।" दुलरिया उसके पास आकर खड़ी हो गयी। उसने घुरबिनवा का हाथ पकड़ लिया था। दोनों जाने क्या साँय-साँय बतियाते रहे।

"अच्छा!" दुलरिया की दोनों आँखें अचंभे से लिलार पर चढ़ गयीं। "आज संझा को दिखाना मुझे। दिखायेगा न?"

"हूँ!"

झिनकू होंठ में खैनी दबाये सरूप भगत को पाँवलगी करता चल पड़ा। उसका परिवार उसके पीछे-पीछे हो लिया।

●

चैत की शाम करैता की चमरौटी में हमेशा ही गुलज़ार और 'मन-सायन' लगती है। आधी रात तक चमारिनें फसलों के डाँट को, जो उन्हें

बनी में मिलता है, लबेदे से पीट-पीटकर दाना-भूसा अलग करती हैं। हर गली फूली हुई नीम की तेज़ गंध में डूबी रहती है। नई फसल की महक इस गंध को हल्के गुलाबी रंग में रँग देती है। घरों में, खंडहरों में, चबूतरों पर लकड़ी या उपले को आग में सिंकी जाती 'हथुई' लिट्टियों की सोंधी गंध से चैती हवा 'बौरा' जाती है। लाल-लाल अंगाकड़ी, प्याज-मिर्चा और नमक—खाने के बाद भर लोटा ठंडा पानी—बस, इतने से ही संतोष के लिए यह दिन भर की 'जांगरतोड़' कमाई। सरूप भगत हुक्का हाथ में लिये झिनकू के चबूतरे पर बैठे थे। नारियल सुड़ककर धुआँ घोटते यही सब मन ही मन सोच रहे थे।

रात के मुश्किल से नौ बज रहे थे। तभी करैता की चमरौटी एक अजीब क़िस्म के कोलाहल से चिलक उठी। गाँवों में कोलाहल भी कई सूरत धरकर आता है। उसकी अदृश्य काया को छूकर ही यह बोध जग जाता है कि यह कोलाहल किस क़िस्म का है। खेल-तमाशे का कोलाहल कुछ-कुछ कम्प और खुशी की हिलोरें लिये होता है। उसका हर धक्का आदमी को गुदगुदाता है कि अपने ज़रूरी कामों को जैसे-तैसे निबटा कर उधर की ओर बढ़ चले। एक कोलाहल मकान गिरने, आग लगने का भी होता है। एक छप्पर उठाने, कीचड़ में धँसे मवेशी को निकालने का भी, जिसे सुनकर अपने आप इन्सान सहायता करने के लिए चल पड़ता है। पर एक कोलाहल और भी होता है। सबसे अलग, सबसे रहस्यात्मक। इस कोलाहल का स्पर्श मन को मथ जाता है। शिथिल सजगता शरीर को बाँध लेती है। एक जिज्ञासा जो उठकर भी उठना नहीं चाहती, पर लोभ ऐसा कि बिना कुछ जाने चैन नहीं मिलता।

"ई कैसी 'बोलबद' मची है हो झिनकू ?" सरूप भगत ने टट्टर से सटाकर हुक्का रखते हुए कहा—"चमरौटी में लगता है जैसे 'बलवा' हुआ हो।"

"लगता तो चमरौटी में ही है भगत। आव जरा देखें। पूरब टोला में कुछ बात है शाइत।" दोनों उठकर गली में चल पड़े। एक झपट्टे में

वे गली के उस छोर पर जा पहुँचे। दुक्खन के खंडहर के पीछे से वे पूरब के टोले वाली गली में मुड़े तो हल्ला और भी तेज़ हो गया।

"डोमन कक्का के दरवाज़े पर ई कइसा कुहराम मचा है ?" झिनकू ने दुलकी भर ली। दोनों तेज़ डग भरते भीड़ के पास जा पहुँचे।

डोमन के दरवाज़े पर ख़ासा मजमा था। पचासों आदमी खड़े थे। लड़के और औरतें थोड़ा हटकर, मर्द ऐन मोर्चे पर चीखते और चिल्लाते हुए। पूरब टोला का एक नवचा चमार रामकिसुन डोमन को पीछे से पकड़े था। तीन-चार चमार उसके मकान से सटी गुमटीनुमा कोठरी के दरवाज़े पर पीठ अड़ाए खड़े थे। जैसे वे कोठरी में घुसनेवालों से लोहा लेने के लिए सन्नद्ध हों।

"बुलाओ सारे गाँव को।" धनेसरी बुढ़िया सोंटा हिला-हिलाकर चिल्ला रही थी, "बिना सबको दिखाये दरवज्जा न खोलो। बाप रे बाप ! अइसा 'निलाज करम' मैंने नाहीं देखा। हम गरीब-गुरबा हैं तो का, एही से रंडी पतुरिया होय गए ? ई चमटोल न हुई, रंडीखाना होय गयी।"

धनेसरी बुढ़िया क शायद ही कुछ दिखाई पड़ रहा हो। सबके आने पर जिस 'ख़ास चीज़' को वह दिखाने की चुनौती दे रही थी, वह तो उसे शायद ही दिखे। किन्तु इस सारे मजमे में उसकी आवाज़ की धाक से यह कोई भी समझ सकता था कि भीड़ को बटोरने का कार्य उसी के गले ने किया होगा। डोमन अब भी रामकिसुन के हाथ से अपने को मुक्त करने के लिए असफल कोशिश किए जा रहा था। उसका सारा वदन गुस्से से थरथरा रहा था। उसकी बातें उसके मुँह में लड़बड़ाकर बेमतलब हुई जा रही थीं।

"का बात है भौजी ?" सरूप भगत धनेसरी बुढ़िया को पुकारकर बोले—"कुछ हम लोगों को भी बताव भाई। कौन सा सिलेमा दिखाये रही ही सबको बुलाय के।"

"मोंसे हँसमुसनी न करो भगत। हाँ, क देती हूँ। मैं काहे को सलीमा-फलीमा दिखराऊँ। सिलेमा दिखरावै ऊ, जो 'फ़िस्सन' के पीछे इज्जत

घोर के पीती है। मों को तो ऐसे ही न आँख न दीदा। भगवान् की दया है कि ई सब करम देखने के पहले दीदा खो बैठी। सुना डोमन की छोरी कवनो रजपुत को कोठरी में घुसाये है।"

"हूँ, तो यह बात है ?"

●

सरूप भगत अचानक बहुत गंभीर हो गए। अब तक जिस कोलाहल को उन्होंने बात की बात से उठा कोई आपसी झगड़ा समझा था, वह अपने असली बदसूरत शक्ल में उभरकर सामने आ गया है। झिनकू भगत की बग़ल में चुपचाप खड़ा था। वह सामने की किसी खास बात को देखकर भगत से कुछ कहना चाहता था, पर हर बार उधर ताकने पर उसे लगता कि भगत का चेहरा अपनी सारी इन्सानी कोमलता को छोड़कर धीरे-धीरे खुरदरे पत्थर की निर्जीव मूरत में बदलता जा रहा है। सरूप भगत ने दोनों हाथों की मुट्ठियों को काँखों में दबा लिया था। वे एक दीवाल से पीठ अड़ाकर गुमसुम खड़े थे।

ऐसी घटनाएँ सरूप भगत ने पहली बार नहीं देखी हैं। जब पहली बार देखी थी तो शायद वे भी ऐसी ही भीड़ का एक हिस्सा भर बने रहे थे। उस समय उनके भी गले से ऐसे ही चीखते शब्द लगातार निकलते रहे थे। बीच-बीच में कोई मज़ाक कर बैठता, तब सभी के साथ उस मज़ाक का मज़ा लेने में भगत ने भी कभी कोताही नहीं की। ऐसे ही क्रूर अट्टहास उनके गले से भी फूटकर दीवालों से टकराते रहे थे। इस घटना का मनोरंजन से अलग भी कोई अर्थ होता है, यह भगत ने कभी नहीं सोचा था।

यही घटना थोड़ा रूप बदलकर, कुछ दूसरी हुलिया के साथ, कई बार घटी। देवीचक में, उनकी अपनी ससुराल बजरडीहा में। कोइलर में, दोघा में, जाने कहाँ-कहाँ ? जब भगत धीरे-धीरे इस घटना की आवृत्ति

पर सोचने लगे तो उन्हें लगा कि हर बार यह घटना जैसे बहुरूपिये का बाना धारण करके उन्हें ही छलने की कोशिश करती है।

●

देवीचक के केशो बाबू को कौन नहीं जानता। राजपूत सरूप ने बहुत देखे हैं मगर आज तक केशो बाबू की सरवरि करनेवाला कोई नहीं मिला। क्या रोबीला चेहरा था। क्या आन-बान थी। शोभनाथ उनके सगे भाई थे। दोनों की उमर में काफ़ी फरक था। केशो बाबू के चेहरे में जो नहीं था, जानों उसी को लेकर विधाता ने शोभनाथ को बनाया था। लम्बा गोरा चिट्टा बदन। चेहरे पर अजब सुकुँवारी और लुनाई। बस मसें भीन रही थीं। कहाँ पढ़ता था छोरा मुझे याद नहीं, पर पढ़गित जरूर करता था। गर्मी की छुट्टी रही, तो गाँव आया। लोग-बाग कहते हैं कि सोनवाँ से उसकी पहली मुलाक़ात सगरा पर हुई थी।

सोनवाँ की जब भी याद आती है, सरूप भगत की आँखें छलछला जाती हैं। सोनवाँ सरूप से पाँच साल छोटी थी। दद्दू का स्वभाव ही कुछ और था। उन्होंने कभी भी हम लोगों को दबकर रहने का पाठ नहीं पढ़ाया। वे शिवनारायण गुरू के चेला थे बड़े नेम-धरम से रहते। घर में कलिया-गोश्त बन्द हो गया। गो-मांस तो दूर की बात! शिवनारायनी तो खोर वाले रामचरन भी थे। घर-द्वार से कोई मतलब नहीं। घूम-घूम कर चेलहाई करते। लड़के परिवार वाले दाने-दाने को मोहताज थे। दद्दू ई सबको फरेब कहते, ढोंग। कहते कि ज्ञान मिला है, दुनिया से भागने के वास्ते कि दुनिया से जूझने के वास्ते। दद्दू मन के बहुत कड़े थे। वे कभी ग़लत रास्ते पर नहीं चले। पर कभी ग़लत बात के सामने झुके भी नहीं। केशो बाबू कभी उन्हें 'रेरी पार' कर नहीं बोले। खुद गुड़गुड़ी पर से चीलम उतारकर थमाते थे उन्हें। दद्दू का प्रताप था कि सोलखा ने पहलवानी में नाम किया। सुबह-शाम डंड-बैठक करता। आधी रात गए अखाड़े में से झूमता हुआ लौटता। माई कुड़बुड़ाती। पर दद्दू डाँट देते।

"जो करता है कर लेने दो भाई, तू काहे सरापती हो उसे। 'जाँगर-तोड़' मजूरी करने के लिए इतने प्रानी तो हैं ही। का हम सब एक आदमी का 'सवख' भी नहीं पूरा करा सकते ?" तो कुछ रही भी दम-पूँजी, तब न दद्दू ई सब कहते थे। गाँव के ठीक गोंइड़े में चार बीघे के टपरे की काश्तकारी थी। केशो बाबू के ताऊ बड़के मलकार के ज़माने की बात है। गाँव के अहीरों से झगड़ा चला था। दद्दू के बाबू भानचन्द और उनके चार पट्ठे भाई लोग रात को रात और दिन को दिन नहीं जाने। हमेशा लाठी लिये आगे खड़े रहे। तब की मिली थी ऊ ज़मीन। हमरे होश में भी उसमें चालीस मन से ज़ियादा धान होता था। घर में मुर्री भैंस थी। सोलखा आधा दूध दूनो जून अकेले चढ़ा जाता था।

सोनवाँ दद्दू की इकलौती बेटी थी। सोलखा से तीन बरस छोटी ऊ लड़की नहीं थी। चमारों के खानदान में कौनो "सराप लगी" देवी जनम गयी थी। दद्दू के गुरू सोबरन भगत कहते कि 'भइया, ई सुमती है, सुमती। शिवनरायन गुरू की 'सुमति'। भगत आँख बन्द करके झूम-झूम कर गाने लगते :

> सूतल रहलीं मैं नींद भरि हो, गुरू देहलैं जगाइ।
> गुरू के सबद रंग आँजन हो, लेलों नयना लगाइ॥
> पेन्हेलों में सुमति कँगनवा हो, देलों कुमति हटाइ।
> सबद के माँग सवारों हो, दुरमति दहवाइ॥

हर हाल बैसाख की पूरनवाँसी को गादी लगाती। दूर-दूर के भगत लोग आते। बहादुरपुर से, ससना-डिहवा से, भेलसरी से। दुखहर्ता भगवान् की तस्वीर चौकी पर पधरायी जाती। बगल में 'गुरु अन्यास' की पोथी रख दी जाती। तखतपोश सज जाता। ऊपर बाँस की कइन का मँडवा होता और उसमें रंग-बिरंगी झंडियाँ होतीं। बाहरी दालान में फरस पर जाजिम बिछ जाती। सारा कमरा लोहबान और अगरबत्ती के धुएँ से भर जाता।

उस साल की गादी सरूप को कभी नहीं भूलती। दद्दू को कुछ मुँही खबर लगती थी। शोभनाथ रोज़ तालाब पर जाता है। सोनवाँ से बातें करता है। केशो सिंह बहुत चिढ़े हैं। इन खबरों को सुनकर दद्दू ने कुछ नहीं कहा। माई बहुत पीछे पड़ी तो झिड़ककर बोले—

"हमारी सोनवाँ ऐसी नहीं है। वह ऐसा कुछ न करेगी कि मेरे मुँह में कालिख लगे।"

उन्होंने ये बातें इस तरह के भाव से कहीं कि हम सभी चुप रह गए। सोनवाँ के चेहरे को देखकर भी कभी नहीं लगा कि उसके पैर कहीं 'खाल-ऊँच' में पड़ रहे हैं। वही भोलापन, वही हँसमुख बान। एकाध बार माई ने दद्दू के मुँह के पीछे सोनवाँ को समझाया ज़रूर था—"देख सोनवाँ, हम लोग नान्ह जात हैं। ऊ लोग बड़े हैं। भला हमारी उनकी क्या मेल-जोल"

सोनवाँ माई की बात सुनकर 'बाउरी' की नाई हँसती रही। माई ने धमकाया भी—"बिटिया, ये लोग बड़े जालिम हैं। तनिक दया ममता नहीं। ऐसों की संगत से भगवान बचाये। कब हँस के बतियायेंगे, कब छुरी घोंप देंगे, कोई नहीं जानता। इनसे दूर रहने में ही भलाई है।"

सोनवाँ चुप रह गयी थी। एक छिन के लिए उसका चेहरा जरूर उतर गया था। पर एक छिन के लिए ही। तभी वह हल्के हँसो भी। और उसकी आँखें चमक गयी थीं। सरूप भगत को सोनवाँ की वह हँसी नहीं भूलती।

उस रात गादी लगी तो सोबरन भगत ने सोनवाँ को बुलाकर अपनी बगल में बैठा लिया था। वे बड़ी देर तक उसके सर पर हाथ फेरते रहे।

"सुमती बिटिया, तू भी कोई भजन सुना दे।" उन्होंने कहा।

सरूप भगत के सामने ही बैठा था। सोनवाँ एक चाण गरदन झुका कर बैठी रही। उसके गले में जादू था। ऐसी पतली और काँपती आवाज थी उसकी कि जानो कोई दूर सन्नाटे में बाँसुरी बजा रहा हो। सारी दालान आदमियों से खचाखच भरी थी। सोनवाँ गा रही थी तो उस कमरे में ऐसा सन्नाटा छा गया था, जैसे कोई साँस ही नहीं ले रहा हो।

> पिअलों में प्रेम पिअलवा हो, मन गइलैं बउराइ।
> आगि लगहु तन जरि जाहु हो, मोरा कछु न सुहाइ॥

बइठलीं मैं ऊँची चउरिया हो, जहाँ चोरो न जाइ।
शिवनरायन गुरू समरथ हो, देखि काल डेराइ॥

सरूप ने गाती हुई सोनवाँ के चेहरे को कनखी से देखा था। क्या ग्रोप थी, जैसे सचमुच में उस दिन उसके भीतर कोई देवता उतर ग्राया था।

मगर क्या हुग्रा? काल को डरवाने वाला शिवनारायण गुरू का 'सामरथ' भी सोनवाँ को कहाँ बचा सका? वह काल के गाल में समा गयी। शोभनाथ पर उसका ऐसा नशा छाया कि उसने छुट्टी खतम होने पर भी पढ़ने जाने से इन्कार कर दिया। ज़बर्दस्ती केशो बाबू उसे शहर ले गए। सात रोज बीतते-बीतते वह भागकर गाँव ग्रा गया। उसे शहर भेजने की बहुत कोशिश हुई मगर वह ग्रड़ गया।

इसके तीन-चार रोज बाद ही सगरा में सोनवाँ की लाश मिली थी। शाम को वह वहाँ गयी तो लौटी नहीं। काफी रात गए तक हम सब उसे जोहते रहे। फिर भी नहीं ग्रायी। मैं, सोलखा ग्रौर दद्दू उसे चारों तरफ ढूँढ़-ढूँढ़कर हलकान हो गए। दूसरे दिन दोपहर बाद हल्ला हुग्रा कि सगरा में कोई लाश उतरायी है।

वह सोनवाँ ही थी। सारा बदन काला पड़ गया था। जीभ बाहर निकल ग्रायी थी। उसे 'ढाठी' देकर मारा गया था। गले के नीचे ऊपर लाठी रखकर दबाया था कसाइयों ने। गले में लाठी का निशान तब भी था। दद्दू तो जैसे सुन्न हो गए। लाश के पास बैठकर टुकुर-टुकुर ताकते रहे। साँझ को जाकर थाने में रपट की। थानेदार मौक़ा मुग्राइना पर ग्राया। पर केशोसिंह के ग्रागे थानेदार की क्या बिसात थी।

दद्दू ने कहा—"हुजूर, मेरी बिटिया को 'ढाठी' देकर मारा गया है। ग्रपनी इज़्ज़त बचाने के लिए दूसरे का घर उजाड़ा गया है। सरकार, ग्राप 'न्याव' कीजिए।"

"जब तुम्हारी बिटिया रईसों के छोकरों को फँसाती थी बुड्ढे, तब तुम्हें चेत नहीं ग्रायी?" थानेदार ग्रपनी मूछों को ऐंठते हुए बोला—"ले जाकर लाश जला दो। नहीं ज्यादा 'न्याव-न्याव' चिल्लाग्रोगे तो ऐसा फँसोगे कि छट्ठी का दूध याद ग्रा जायगा।"

थानेदार खौंखियाता रहा ग्रौर दद्दू 'न्याव' की रट लगाते रहे। माई की मदद से मैं उन्हें जैसे-तैसे पकड़कर घर ले ग्राया था। वे पागल की तरह गाँव की गलियों में चिल्लाते रहे—"जागो जागो दुखहर्ता भगवान्। कहाँ सो गये दीनबन्धू, गरीबों की सुध लो।"

मगर दुखहर्ता भगवान् बहरे बने रहे। उन्होंने कुछ भी सुध न ली। दद्दू ने खाना-पीना छोड़ दिया। क्वार में 'कफजर' में पड़कर खटिया पर गिरे तो फिर नहीं उठे। मैंने ग्रौर सोलखा ने केशोसिंह की हलवाही छोड़ दी। चार बीघे खेत का ही ग्रासरा था। यह खेत माफ़ी था। मैंने दद्दू से कितेक बार कहा होगा कि तुम भी इसकी 'भुंइधरी' ले लो। मगर ऊ कब मानते थे। बोले—"काग़ज़ में का धरा है भाई। मालिक की नियत पर सुबहा करने का पाप मैं नहीं करूँगा।"

केशोसिंह ने दद्दू के मरते ही खेत पर कब्जा कर लिया। मुझमें मुकदमा करने की ताकत नहीं थी। मन मारे पड़े रहे। सारा परिवार उजड़ गया। बाद में तो सोलखा घर छोड़कर कलकत्ते भाग गया। तब दुलरिया सिर्फ पाँच साल की थी। मैं, माई ग्रौर दुलरिया की माँ, साथ में एक नन्हीं जान लिए, जाने कहाँ-कहाँ मजूरी की खोज में घूमते रहे। इसी 'भँवरजाल' में एक दिन दुलरिया की माँ भी छोड़कर चली गयी।

सरूप की ग्राँखें छलछला ग्रायी थीं। उन्होंने गमछे से उन्हें पोंछ लिया।

●

सरूप भगत जानते हैं कि 'परेम' कोई बुरी चीज़ नहीं। मगर ई कैसा 'परेम' भाई! ग्राज तक किसी रजपुत-बाभन की लड़की के साथ चमार-दुसाध का परेम काहे नहीं हुग्रा? ग्रौर फिर करते हो 'परेम' तो उसे झेलो। 'परेम' करनेवालों को किसी की कब परवाह होती है? 'परेम' का

सारा संकट गरीबों के सिर पर डालकर भागते काहे हो ? अब शोभनाथ का ही क्या हुआ ? दो-चार दिन मन मारे घूमता रहा । लोगों ने समझाया-बुझाया । सब ठीक हो गया । कहाँ गयी सोनवाँ और कहाँ गया उसका परेम । ई सही है कि ऐसे भी लोग हैं, जिन्होंने जात-कुजात की परवाह न करके चमारिनों के साथ घर बसा लिया । मगर ऐसे लोग हैं कौन ? वे जिनकी जात में नहीं चलती । वे जो अपने को जात से बहरियाये जाने से बचा नहीं सकते । डिहवा के सेवा उपधिया का लोग 'परमान' देते हैं । सेवा जनम के कुजात थे । कहीं विवाह नहीं हुआ । उन्हें मेहरारू चाहिए थी। चाहे ऊ जात की हो तो, कुजात की हो तो। बस, लेकर बैठ गए। दो, एक 'करिया बाभनों' ने चमारिनें रख लीं तो 'परमान' हो गया ।

ज्यादातर तो किस्सा 'चोरी-लुक्का' का ही होता है। ग़रीब की लड़की या पतोह की इज्ज़त क्या ? पेट का जलना सहा नहीं जाता । जैसे भी ई पापी पेट भरे वैसे ही सही । हाँ, तब एक बात ज़रूर थी कि मामला खुल जाने पर गिरा से गिरा चमार भी लाज से गरदन झुका लेता था । उसकी लड़की-पतोह ने कुछ कर दिया तो वह उस पर लीपापोती करने की जुर्रत नहीं करता था ।

अब यह न देखो डोमना का ? लड़की बदफेली में पकड़ गयी है तो भी उसे शरम नहीं । उल्टा भाई-बिरादरों से लड़ाई कर रहा है ।

●

किसी चमारिन के साथ किसी 'रजपुत' के पकड़े जाने की खबर गाँव में घुमड़ रही थी। जो भी सुनता, कंधे पर गमछा डाले चल पड़ता । कुछ जो ज्यादा समझदार थे, कोने से लाठी भी उठा लेते । डोमन के दरवाज़े पर भीड़ बढ़ती जा रही थी । अब धनेसरी के साथ-साथ दूसरे लोग भी ज़माने को कोस-कोसकर मन का ग़ुबार निकाल रहे थे ।

"जिस साल इस गाँव में देवीचक के चमार आते हैं, जे बा से कौनो

न कौनो बारदात ज़रूरत होती है ।" सिरिया छबिलवा का हाथ थामे भीड़ में धँस रहा था । उसने सरूप भगत को दीवाल से पीठ टिकाये खड़ा देखा और बोली कस दी ।

सरूप भगत धीरे से हँस दिये ।

"ठीक कहते हो बाबू ! ग़रीबी और बारदात जोड़ुवाँ बहनें हैं । जिधर चलती हैं, साथ-साथ चलती हैं ।"

"तू सार हमेशा 'उलटबाँसी' ही बोलते हो ।" सिरिया बिना भगत की ओर देखे धीरे से भुनभुनाया । फिर भी भगत ने उसकी बात सुन ली थी । वे हल्के मुसकराकर रह गए । सिरिया को अपनी बात का असर जानने की फुर्सत न थी । वह भीड़ में धँस रहा था । ढँकें को उघाड़कर देखने की इच्छा उसके बदन को थरथरा रही थी ।

चलते वक्त सीरिया का गोड़ भचक जाता ।

●

अभी मुश्किल से एक पखवारा हुआ होगा । रात हो गयी थी । सिरिया सुरजू सिंह के दरवाज़े से लौट रहा था । यह उसका रोज़ का नेम था । वंशी सिंह के मकान के सामने वह गली से मुड़ा कि एक काली छाया पक्के से उभरी । एकाएक सामने ऐसी भयानक आकृति देखकर सिरिया चीख पड़ा । उसके सामने एक लम्बा-तड़ंगा आदमी था । उसका सारा बदन काले कम्बल से ढँका था । आँखों के पास उसने 'घोघी' को घूँघट की तरह यों लटका लिया था कि मुँह ढँका रहे, पर वह सब कुछ बखूबी देखता भी रहे । मोटे कम्बल का यह घूँघट आगे निकलकर किसी भयानक जानवर के थूथुन की तरह हिल रहा था ।

सिरिया इसे देखकर 'धक्' से हो गया और जोर से चीखा । तभी उस नक़ाबपोश ने खींचकर लाठी मारी और सिरिया आह करके जमीन पर बैठ गया । उसकी चीख-चिल्लाहट सुनकर जब तक लोग आयें-आयें कि वह आकृति बग़ल की गली में मुड़कर ग़ायब हो गयी ।

बड़ा हल्ला मचा। कई लोग इधर-उधर दौड़े, पर कई गलियों में दूर-दूर तक झाँकने पर भी सन्नाटा के अलावा कुछ न मिला।

सिरिया को उठाकर लोग देवनाथ डाक्टर के बइठके में ले गए। गनीमत थी कि उसकी टाँग टूटी नहीं। घुटने और घुट्टी के बीच हड्डी पर करारी चोट थी। बड़ा-सा गुल्टा निकल आया था। ऊपर का चमड़ा फट गया था और गाढ़ा कत्थई खून निकल रहा था। देवनाथ ने घाव धोकर मलहम-पट्टी कर दी थी।

उसके बाद कई दिन तक सिरिया चारपाई से उठ न सका। बाद में वह भचक-भचककर गलियों में चलता और किसी बेशिनाख्त आदमी को हज़ारों गालियाँ देता फिरता।

●

सिरिया जानना चाहता था कि आखिर पकड़ा कौन गया है। उसकी नजर बराबर भीड़ में खड़े लोगों को जोह रही थी, थाह रही थी।

मगर इस बार मामला बड़ा अबूझ था। उसे अबूझ बनाया गया था। सुगनी के साथ इस गुमटी में कौन गया है, इस बात को शायद पूरी चमरौटी में दो ही आदमी जानते थे। एक तो डोमन दूसरा घुरबिनवा। अब भी दुलारी और धनेसरी के अलावा शायद ही कोई जानता हो। घुरबिनवा सड़क पर काम करने लगा तो उसकी ओर से सुगनी खिंच गयी। अब उसे 'खरमेटाव' कहाँ मिलता था कि उसके लिए सुगनी उसे अँकवारी में बाँध ले। सुगनी का यह व्यवहार घुरबिनवा को बहुत खला। उसे जाने क्यों सुगनी की अंकवारी में बँधना अच्छा लगता था। उसके बालों की खुशबू उसे अपनी ओर खींचती थी।

देवीचक के चमारों ने उसके खंडहर में डेरा डाला। 'दुलारी फुआ' जब भी कुछ खरीदतीं, एक हिस्सा घुरबिनवा की थैली में ज़रूर डालतीं। घुरबिनवा शाम को थैली में खजुली, या ककनी या गुड़ की पट्टी छिपाये डोमन के मकान की ओर दौड़ लगाता। दरवाज़े से थोड़ा हटकर अपनी जेब की चीज़ें निकाल-निकाल खाता रहता। खाता कम, दिखाता ज़्यादा। सुगनी उसके चटपटाने मुँह को देखकर ही दुलकती आ गयी थी। अँकवारी में बाँधकर घुरबिनवा को प्यार जताना वह एकदम से नहीं भूल गयी थी। कुछ दिन नागा हो जाने से प्यार पहले से शायद कुछ ज़्यादा गाढ़ा ही हो गया था। जितनी कड़ी अँकवारी होती, घुरबिनवा के इर्द-गिर्द, उतनी ही तेज़ उसकी थैली को टटोलती सुगनी की अँगुलियाँ भी।

उस रोज़ घुरबिनवा की थैली कुछ देर से भरी। इसी कारण सुगनी के दरवाज़े तक दौड़ लगाने में भी देरी हो गयी। सुगनी नहीं दिखी। घुरबिनवा धीरे-धीरे दरवाज़े के पास पहुँच गया था।

गुमटी की खिड़की के पल्लों की संध से झाँककर उसने देखा। सुगनी को एक आदमी वैसे ही पकड़े था, जैसे सुगनी उसे पकड़ती है। घुरबिनवा साँस रोककर देखता रहा।

"आज नहीं।" सुगनी उस आदमी के हाथ को छुड़ा रही थी।

"तो कल?" उस आदमी ने पूछा।

"हाँ, अगर मेरी चीज मिल गयी तो।" सुगनी ने कहा।

"अच्छा भाई, कल इसी वखत आऊँगा। तुम्हारी चीज़ भी दयाल महराज से मँगवा लूँगा।"

वह आदमी दरवाज़ा खोलने को बढ़ा कि घुरबिनवा फुर्र से गली में ग़ायब हो गया।

●

घुरबिनवा ने यह बात अपनी 'दुलारी फुआ' को बतायी थी। दुलारी के कहने पर उसी ने आज गुमटी के दरवाज़े की बाहरी सिकड़ी भी चढ़ायी थी। इसके बाद वहाँ न तो दुलारी दिखी और न तो घुरबिनवा ही। बाक़ी सब कुछ तो रामकिसुन और धनेसरी ने किया। धनेसरी ने

भीड़ इकट्ठा की और रामकिसुन अपने दूसरे हमजोलियों की मदद से मुज़रिमों को फांसे रहा। सारा गाँव जब तक इकट्ठा न हो जाये, पकड़े गए आदमी का नाम न बताया जाए। यह हिदायत दुलारी ने धनेसरी को और धनेसरी ने रामकिसुन को दी थी।

इसी का नतीज़ा था कि भीड़ बराबर बढ़ती जा रही थी। एक काँटेदार जिज्ञासा सबके गले में अटक रही थी, जिसे न तो निगलते बनता था और न तो थूकते बनता था।

"अब खोलते क्यों नहीं तुम लोग।" जग्गन मिसिर रामकिसुन की ओर देखते हुए बोले—"सारा गाँव तो बटोर लिया। अब क्या मवेशो भी हाँककर लाये जायेंगे?"

"हाँ, हाँ, खोलो जल्दी।" एक साथ कई आवाज़ें घुमड़ीं।

तभी बगल वाली गली से चमारों के दो लड़के जलती मशालें लिये सामने बढ़ आये। किरासन तेल के बोतल के मुँह पर कपड़े की ठेंपी लगी थी, जिसमें सलाई लगा दी गयी थी। इस तरह की मशालें चमार अक्सर नाचों में ही जलाते हैं। नचनिया के दोनों तरफ मशाल हाथ में लिये एक-एक मशालची खड़ा रहता है। नचनिया जिधर घूमे, मशालची भी उधर ही घूम जाते हैं।

"बाह बा, ई देखो!" जग्गन मिसिर ताल पीटकर हँसे—"कवे चमरनटुवा का नाच है का? समझ लो, इस बार कौनो बहुत बड़ा शरारती है इस सबके पीछे।"

मशाल वाले लड़के डोमन की कोठरी के दरवाज़े पर अलग-अलग बाजू से लगकर खड़े हो गए। सब लोग हैरत से यह तमाशा देख रहे थे। मशालों का बदबूदार धुआँ आदमियों की भीड़ पर तम्बू तान रहा था। मशालों की हिलती रोशनी में लोगों के चेहरों का रंग डूब-उतरा रहा था।

तभी रामकिसुन ने इशारा किया। कोठरी के दरवाज़े पर खड़े चमारों में से एक ने कुंडी खोल दी। दूसरे ने बन्द किवाड़ों पर एक लात मारी और वे धड़ाम् की आवाज़ के साथ भीतर की ओर खुल गए।

एक क्षण बिल्कुल सन्नाटा रहा। जैसे कोठरी में कोई है ही नहीं। सभी लोग साँस रोके द्वार पर आँखें लगाये खड़े थे।

"अरे निकलिए सरकार बाहर।" रामकिसुन डोमन को दोनों हाथों से बाँधे-बाँधे चिल्लाया—"सगरो गाँव' 'दरसन' के लिए खड़ा है हुजूर!"

फिर सन्नाटा रहा।

"ऐ चरना!" रामकिसुन फिर चिल्लाया—"पहले ओह रंडी को झोंटा पकड़कर खींच ले आ बाहर। रंडीपना करते लाज नहीं आती थी। बाहर निकलते लाज आती है? हुँह्।"

"निकल आओ कल से।" चरना चिल्लाया—"नहीं जो बाकी है, वही होगा!"

एक क्षण बाद कोठरी में हरकत हुई। सुगनी कोठरी से बाहर निकली। उसने साड़ी के घूंघट में मुँह ढाँप लिया था। ज्योंही चौकठ पार हुई कि चरना ने साड़ी पकड़कर खींच दी। माथ उघर गया। उसका चेहरा मशाल की रोशनी में आधे पीले, आधे काले हिस्सों में बँटा लग रहा था। पसीने से सने उसके मुंह को देखकर लगता, जैसे वह कोई जिन्दा लाश है। वह एक क्षण ठिठकी खड़ी रही। फिर हाथों से मुँह ढँके अपने घर की ओर भागी।

सुगनी के साथ जो कुछ हुआ, उसे कोठरी के भीतर वाले व्यक्ति ने पता नहीं देखा या नहीं, पर उसके बाहर निकलने में देर बिल्कुल नहीं हुई। उसने चौकठ पर पैर रखा ही था कि भीड़ में फुसफुसाहट की लहरें तैर गयीं।

"सुरजू सिंह।"

सुरजू सिंह ने एक लमहे के लिए कनखी ताककर भीड़ को देखा और गर्दन झुकाये खड़े रहे। पर सिर्फ़ एक लमहे के लिए। इतनी देर तक शायद वे अपने भीतर के टुटे-थुरे साहस को बीन-बटोर रहे थे। जो कुछ हाथ लगा, वह उनके चेहरे पर बेशर्मी की चादर की तरह फैल गया! भीड़ ने

उनके चेहरे का यह रंग देखकर खुद गर्दन झुका ली। सिरिया बढ़कर उनके पास पहुँच गया।

"आओ सुरजू भइया।" वह बड़ी नफ़रत से सबकी ओर देखते हुए बोला—"अपना ढेंढ़र कोई नहीं देखता। दूसरे की फुल्ली देखने जे बा से, सभी चले आते हैं।"

सुरजू सिंह के होंठ हँसने की कोशिश में विथुर गये। बेशर्मी की चादर ने हजारों चिनगारियों को अपने ऊपर झेल लिया।

कोई कुछ न बोला। एक चुप्पी सब जगह छायी थी। अब तक सभी जिसे देखने के लिए हो-हल्ला मचाये थे, चीख-चिल्लाहट थी, अब वही सामने था, तो सभी खामोश थे। लगता था जैसे भीड़ की ताक़त को अपनी बेशर्मी से सुरजू सिंह ने सोख लिया है और सुरजू सिंह की शरम और ग्लानि को भीड़ ने अपने ऊपर ओढ़ लिया है।

"ई भी कुदरत का खेल है हो झिनकू बेटा!" सरूप भगत गंभीर हो कर बोले—"साँच को देखने का होसला सबमें है। उसके वास्ते कितनी 'बोलबद' मची थी। अब साँच उघड़ गया तो सब चुप्पी साध गए। मौक़े पर ऐसे कतराना ही अब दुनिया में चालाकी कहा जाता है। है कि नहीं?"

झिनकू कुछ न बोला। वह सुरजू सिंह का हाथ पकड़े भीड़ को चीरते जाते सीरी को देख रहा था।

भीड़ धीरे-धीरे खिसकने लगी।

"आओ हो झिनकू चलें।" सरूप भगत को लगा कि दीवाल से पीठ हटाते ही उसमें चुनचुनी उपट गयी है। सारी पीठ एक अजीब दर्द से चिलक रही है।

"का भगत?" रामकिसुन लपककर सरूप के पास आ रहा—"सगरो गाँव तो तमाशा देखकर चल दिया। आप भी जा रहे हैं का?"

"का करें बेटा बताओ।" भगत किसुन की आँखों में झाँकते हुए बोला—"जो कहो। अब ई मामला तो तुम्हारे गाँव का है। उसको सल-टाना भी तुम्हारा काम है। हम तो भइया बिना घोंसले के पंछी हैं। जहाँ

दो-चार दिन के लिए दाना-पानी दिखा, उतर गए। चुग्गा चुका कि पंख झाड़कर चल पड़े। उसी सुनसान रस्ते। है कि नहीं।"

"यह नहीं होगा भगत, सुन लो, हाँ बात बढ़ गयी है। इसे निपटा कर जाना होगा। आप जैसे दो ही चार लोग तो हैं इस जात में कि इसका बेड़ा पार लगा सकते हैं। आप ही मझधार में छोड़ देंगे तो कैसे होगा?"

"मैं तुमसे बाहर कहाँ हूँ बेटा, जो कहोगे, करेंगे। हम पुराने लोग ठहरे। सिगरी जिन्दगी बड़े लोगों का तलवा चाटते बीत गयी। तुम लोग नये खूनवाले हो। हम लोग सहते रहे हैं। सहने की बान पड़ गयी है। तुम लोग सहोगे तो अपने को बड़ी कचोट होगी, पर हमसे कुछ मदद की आशा मत करो। आखिर तुम करोगे क्या?"

"करेंगे का? बटोर करेंगे। बारहों गाँवों के चौधुरियों को बुलाकर तै करेंगे कि हम लोग मेहनत-मजूरी करके जिएँ कि बहन-बेटी से पेशा कराके दिन काटें।"

भगत को लगा कि किसी ने पेट में लोहबन्ना हूल दिया है। वे राम-किसुन के चेहरे को एकटक ताकते खड़े रहे।

"ठीक है, तो करो बटोर। अबहीं तो एक सतवारा रहना ही है हियाँ।"

भगत झिनकू के कंधे का सहारा लिये अँधेरी गली में चल पड़े।

● ●

इकतीस

भीड़ के सामने से सुरजू सिंह लौट आए। उन्होंने काफ़ी हिम्मत की थी। मुस्कराये थे। सब कुछ, जो अनचाहा सामने था, उसे ठेलकर मन को कड़ा किया था। सिरिया के साथ दरवाज़े पहुँचे तो भी मन में कुछ न कुछ ऐंठ बाकी थी। वैसे अँधेरे में चलते-चलते अचानक कुछ खुलकर ढीला भी होने लगा था, जैसे किसी ने भरी बाल्टी ऐंठी गरारी से कुएँ की ओर झोंक दी हो। सिरिया उनके साथ चारपाई पर बैठ गया था। उस समय दोनों चुप थे।

"घबड़ाव मत सुरजू भइया।" सिरिया सुरजू सिंह के पसीने-सने चेहरे को देखकर सहानुभूति में पुचकारते हुए बोला—"ई सारी करतूत देवीचक के चमारों की है। जेबा से उन्हीं लोगों ने ई बखेड़ा खड़ा किया है।"

सुरजू सिंह कुछ न बोले। वे धीरे से सिरहाने रखे बिस्तरे पर उठंग गए थे। सहानुभूति के बदले मिली चुप्पी ने सिरिया के उत्साह को ठंढा कर दिया था। रात गहरा रही थी। उसने अभी खाना भी नहीं खाया था। अतः वह चुपचाप चारपाई से खड़ा हो गया।

"तो चलूँ सुरजू भइया।"

"अच्छा!" सुरजू सिंह अनमने होकर बोले।

सिरिया के चले जाने पर सुरजू सिंह अकेले रह गए। अकेला अनुभव करने लगे। ज्यों-ज्यों वे अपने को कड़ा करने की, पकड़ने की कोशिश करते, त्यों-त्यों लगता कि मजबूत जगह पर पैर पड़ने के पहले ही कगार धसक रही है। उन्होंने चारपाई से उठकर लालटेन की बत्ती नीचे सरका दी। अब लालटेन सिर्फ अपना मुँह देख रही थी। वे ओसारे के खंभे की आड़ में, चारपाई पर, पैर लटकाये बैठ गए।

सुरजू सिंह ने एक लम्बी साँस ली। लालटेन की रोशनी उन्हें बहुत परेशान कर रही थी। अँधेरा हो गया तो उन्हें लगा कि राहत मिल गयी है। उन्होंने अभी तक भोजन भी नहीं किया था। देर से खाने की आदत थी। सुगनी के पास से लौटने पर उनकी भूख बहुत बढ़ जाती थी। आज खाने को मन नहीं कर रहा है। शायद बखरी में भी पता चल गया हो। चला ही होगा। यह क्या कोई दो चार लोगों के बीच गुपचुप बात थी? सारे गाँव में ढिंढोरा पीटा जा रहा था।

सुरजू सिंह का मन बखरी में जाने का नहीं हुआ। अपनी लज्जा को वे गले की साँसत बनाने को भी तैयार नहीं थे। देवल की माँ सुनेगी तो क्या सोचेगी। वैसे वह सुरजू सिंह से थरथर काँपती है।

•

एक बार दयाल महराज से सुगनी के लिए बाज़ार से सामान मँगवाया। सुरजू सिंह कहीं गए थे। बहुत देर तक जोहने पर भी जब वे नहीं

मिले तो दयाल महराज ने सामान देवल की माँ को सौंप दिया। सुरजू सिंह के आने पर देवल की माँ साबुन, तेल, पौडर का डिब्बा उनके आगे रखकर बोलीं—"दयाल महराज दे गए थे।"

सुरजू सिंह की आँखें सहसा ललाट में सुराख बनाने लगी थीं। दयाल महराज ऐसी ग़लती कभी नहीं करते। पता नहीं आज क्या हो गया था बाभन को। सुरजू सिंह ने एक क्षण बाद ही होंठों पर हँसी का सफ़ूफ बुरकाते हुए कहा था—"तुम उस रोज कह रही थी न कि जाने कैसा तेल देते हैं सरसों का कि बाल लटिया जाते हैं। सो मैंने मँगा लिया था यह सब तुम्हारे लिए।"

सुरजू सिंह की थकी आँखें जमीन पर लुढ़क गयी थीं। देवल की माँ हँसी थी। बहुत हल्के। उस हँसी में कोई व्यंग्य नहीं था, कोई गुस्सा न था। पर उसे देखते ही सुरजू सिंह के शरीर में एड़ी से चोटी तक आग लहर उठी थी।

"तुम क्या समझती हो कि मैं झूठ बोल रहा हूँ?" उन्होंने थोड़ा कड़ा, थोड़ा नरम होकर यह सवाल किया था। देवल की माँ को उनके चेहरे का यह भाव काफ़ी खला होगा। वह तिनककर बोली थीं—"किसके लिए मँगाया है, इसे आप भी जानते हैं, मैं भी जानती हूँ। सगरो गाँव जानता है।"

अपने और देवल की माँ के बीच की बातचीत में गाँव के ज़िक्र ने सुरजू सिंह के भीतर कहीं ज़ोर से आघात किया। भरी चाबी खुल गयी। मुँह से निरर्थक शब्दों की झड़ी लग गयी। देवल की माँ ने पता नहीं और क्या-क्या कहा। इतना सभी जानते हैं कि उस दिन सुरजू सिंह ने उसे झोंटा खींच-खींचकर मारा। उसका सर दीवाल से टकरा गया था। ललाट से ख़ून निकल आया था।

●

बखरी में खाने न जाऊँ, सुरजू सिंह सोचते। तभी उनकी आँखों के आगे देवल की माँ का मुखड़ा कौंध जाता। एक देहाती औरत का गोल, मासूम, अपने काम से काम के भाव में डूबा चेहरा, पर होठों की वक्र हँसी सुरजू सिंह को बिच्छू के डंक की तरह बींधती जाती। न जाऊँ तो जाने क्या-क्या सोचेगी, हरामजादी। सुरजू सिंह इस साँसत को ढोने के लिए तैयार नहीं थे। मनमारे बखरी की ओर चल पड़े।

●

हरखू सरदार अचानक बहुत खुश हो गए थे। वैसे तो वे अक्सर ही बीच-बीच में खुश होते रहते थे, पर आजकल उनकी खुशी काफी छतनार होकर उनके ऊपर छा गयी थी। सुरजू सिंह के बइठके पर उनका आना-जाना तभी से शुरू हुआ था, जब उनकी आशा के खिलाफ कनिया तक ने थानेदार की आव-भगत करने से इनकार कर दिया था। उस दिन हरखू सरदार को बहुत दुख हुआ। उन्होंने किसीसे कहा तो नहीं, पर मन ही मन दुहराया कई बार कि अब छावनी की संस निकल गयी। मारो साले टुक-ड़हों को। घेर-घार कर किसी तरह थानेदार को उहाँ लाये, तो लगे सब बनने। अरे हमें क्या पड़ा था भाई। सोचा कि छावनी से बड़ा सरोकार रहा है अपना। बड़कवा कहे जाते थे तो जरा सँवार दी उनकी भी इज़्ज़त। पर बाप रे, ऊ कनिया तो एक पटाखा है। लगी कहने हटाइये, हटाइये, ई सब बखेड़ा। किसको फुर्सत है ई सब करने-धरने की। बहुत कहा-सुना तो नाश्ता-पानी भेजा। और उसका देवर तो एक कटहा कुत्ता है। बिना हवा-बताश के भौंकता है। बिना बात की बात में बेचारे थानेदार से उलझ गया। ऊ तो कहो कि शरीफ आदमी है दरोगवा कि सह गया, नहीं दूसरा कोई होता तो मारे हंटर खाल खिंचवा लेता।

हरखू सरदार उस रात पूरी तरह सो न सके। मन में कोई चीज़ चुभती रही। उन्होंने छावनी पर पैर न धरने की क़सम ले ली। पर

जायेंगे कहाँ ? रात भर वे चारपाई की इस पाटी से उस पाटी करवटें लेते रहे।

●

दूसरे दिन शाम को जब वे सुरजू सिंह के बइठके पर पहुँचे तो उन्हें देखते ही सिरिया चिल्लाया—"अरे जे बा से आज इधर कैसे चाँद उग आया हरखू सरदार ? आवो चाचा, आवो आवो।" सिरिया चारपाई से उठ गया था। उसने बड़े सत्कार से हरखू सरदार को अपनी जगह बैठाया। ताज़ी चिलम भरवायी। हरखू सरदार की साफगोई की तारीफ़ हुई। हरखू सरदार उस दिन बहुत खुश हुए थे। हँसते-हँसते उनकी बूढ़ी आँखों से आँसू गिरने लगे थे। चलते वक़्त सुरजू सिंह ने खुद दगाकर बीड़ी दी थी।

पर हरखू की खुशी सदा एक सी नहीं रही। उनको बार-बार लगता कि सुरजू सिंह तो रईस हैं, पर उनके अन्दर आदमी पहचानने की वह ताक़त नहीं है, जो जैपाल सिंह में थी, या थोड़ी-बहुत बुझारथ में है। सुरजू सिंह सिरिया और छबिलवा को हमेशा कान से लगाये रहते हैं। हरखू सरदार यह तो नहीं कहते कि कोई गुप-चुप बात करे ही नहीं। पर बैठी मजलिस में इस तरह का सलूक ठीक नहीं होता। सिरिया या छबिलवा इधर-उधर से घूमकर आयेंगे। चबूतरे पर चढ़ते ही बोलेंगे—'सुरजू भइया, जरा एक मिनट, सुनियेगा।' जानो सारी दुनिया की नकेल इन्हीं लोगों के हाथ में है। साले उपरफट्टू। सुरजू सिंह भी हैं एक ही भकुआ, ढुलककर पहुँच जायेंगे हरामियों के पास। फुसुर-फुसुर बतियायेंगे। इससे आदमी हल्का हो जाता है। इज़्ज़त पाना आसान है, उसे सहेजकर रखना कठिन होता है।

इन बातों से हरखू सरदार की खुशी थोड़ी कम हो जाती। ऐसे में वे थोड़ा चुप-चाप रहने लगते। उस बार जब तालाब पर सिरिया की पिटाई हुई थी, तो हरखू सरदार बड़े खुश हुए। उन्होंने ऊपर से बड़ा ग़मगीन चेहरा बनाया। बारहाँ सहानुभूति दिखायी। अफसोस भी जाहिर की; पर मन ही मन बहुत खुश थे। और करो फुसुर-फुसुर। अब पड़ गया है काम। ऊँट तभी तक बलबलाता है जब तक पहाड़ की तलहटी में नहीं पहुँचता। हरखू सरदार को पूरा विश्वास था कि इस बार हारकर सुरजू सिंह और सिरिया दोनों को उनसे राय-बात करनी होगी। पर ऐसा कुछ न हुआ। हरखू की खुशी भीतर ही भीतर मुरझा गयी। वे बीच-बीच में सुरजू सिंह को टोकते—"का हो सुरजू बेटा। अरे, आँख मूँदकर मत बैठो बाबू, महाबीर सामी कसम, सिरिया वाले मामले में कुछ नहीं होगा, तो बड़ी नंवहसाई होगी भइया राजा !"

"हाँ दादा, कुछ न कुछ तो करना ही होगा।" सुरजू सिंह टालने की ग़रज़ से कहते।

"बाँह गहे की लाज तो निभानी ही पड़ती है बेटा। है कि नहीं ?"

सुरजू सिंह हूँ-हाँ करके बात खतम करने की कोशिश करते। हरखू सरदार को संतोष न होता। बुझी राख कुरेदने की उनकी आदत थी। काफी कोड़ने पर राख और झोल के नीचे से जब ज़िन्दा आग निकलती है, बदन दंदा जाता है, उसे हरखू सरदार अच्छी तरह जानते हैं।

पर जहाँ नीचे से ऊपर तक झोल ही झोल भरा है वहाँ क्या किया जाए। हरखू सरदार को यह स्थिति बहुत अखरती और वे ठेहुने पर ताल देते हुए उदास होकर गुनगुनाने लगते—

बड़ी देर भई, बड़ी देर भई, अब तो खबर लो हो राम, बड़ी देर भई।

●

आखिरकार राम ने खबर ले ही ली। हरखू सरदार को चमरौटी में रात को हुए वाक़ये की खबर मिली, तो एक लमहे के लिए संवाददाता के चेहरे पर हक्का-बक्का ताकते रह गए। सहसा उनका पोपला मुँह आश्चर्य से खुला और लार टपककर कुर्ते के आस्तीन पर अटक गयी।

"अच्छा।" वे बच्चे की तरह मासूम हँसी में हचकोले खाते हुए बोले—"तो दोनों तरफ़ से दो मशालची आये और डोमना के दरवाज़े पर खड़े हो गए। अरे वाह, अरे वाह....!" और वे ज़ोर से ताली पीटकर चिल्ला उठे—"ई तो भई, खूब लीला हुई। हम तो ससुरों की अकल की बलिहारी जाते हैं। महाबीर सामी कसम, अइसा 'सिलेमा' तो कभी नहीं देखा हमने अपनी जिन्दगानी में।"

संवाददाता हरखू सरदार की छुतही हँसी से वाक़िफ़ था। वह किसी तरह पिंड छुड़ाकर चलता बना। हरखू सरदार एक क्षण ठगे से खड़े रहे। उन्हें सख्त अफसोस हुई कि वे उस मौक़े पर चमरौटी में नहीं पहुँचे। उन्होंने अपनी बूढ़ी पत्नी को जी भरकर कोसा—"मरती भी नहीं भलेमानुस। संझा होते ही चिल्लायेगी, खा-पीकर जाया करो रतजग्गा करने। तुम्हें तो अपने द्वार पर बैठते कुक्कुर काटता है। सगरी दुनिया का तलवा चाटे बिना नींद नहीं आती।"

एकदम से नट्टिन है। पता नहीं कौन सा मालपूआ खिलाने को उतावली रहती है। आधी कच्ची, आधी जली लिट्टियाँ डाल देगी आगे। बूढ़ी हो गयी, कबर में टाँग डाले है, पर गले का फँटा बाँस वैसा ही चरचराता है। एक छिन कहीं बैठकर 'मनफेरवट' भी नहीं करने देती। गया तमाशा। ऐसी लीला रोज़-रोज़ होती है कहीं?

हरखू सरदार की तबीयत एकाएक 'डौन' हो गयी। चटक को और भी विस्तार से जानने की प्यास से उनका गला चटकने लगा। उन्होंने खैनी मुँह में डाली और आँखें मुलमुलाने लगे।

•

संझा को सुरजू सिंह के दरवाज़े पर कोई गहमागहमी नहीं थी। एक चारपाई पर सुरजू सिंह बैठे थे, बनियान पहने। उन्होंने धोती घुटनों पर खींच ली थी और गमछे से हवा कर रहे थे। बगल में सिरिया और छबिलवा मन मारे बैठे थे। हरखू सरदार 'कुछ अजूबा, कुछ अदेखा' देखने की गरज से दुलकी हुए आ रहे थे, सामने इन तीनों को कान में कान डाले खुसुर-फुसुर करते देख उनका उत्साह जाता रहा। वे चुपचाप सुरजू सिंह की चारपाई के पैताने बैठ गए। उनकी उपस्थिति ने चुप्पी की प्रतियोगिता करा दी थी। हरखू सरदार इस तरह की पर्दा-प्रथा के विरोधी थे। उन्होंने बैठते ही कहा—"का हो सुरजू बेटा, कहा है कि बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेउ। महाबीर सामी कसम इस तरह निश्चिन्त होकर बैठे रहना बड़ा 'खतरनाक' होता है। कोई खबर लगी कि नहीं?"

सुरजू सिंह हरखू सरदार के चेहरे पर देखने लगे। उनकी मुद्रा में खीज और दुत्कार का भाव स्पष्ट था—"कैसी खबर?"

हरखू सरदार ने यों हाथ हिलाया गोया वे सुरजू सिंह के चेहरे से मक्खी उड़ा रहे हों—"हम तो पहले ही जान गए महाबीर सामी कसम कि यहाँ लोग कान में तेल डालकर सोए होंगे।"

सिरिया मुँह विकृत करके बोल पड़ा—"अपनी 'बड़वरगी' आप बहुत बखानते हैं जे बा से कौन सा मोर्चा जीतकर आये हैं जरा सुनें तो?"

हरखू सरदार ने 'पिच' से खैनी थूकी और हथेली को रगड़ते हुए बोले, "अरे भाई तुम ही मोर्चा जीतकर आये तो तुम्हीं बताओ न। महाबीर सामी कसम ई राज तो खाली 'चढ़ा उपरी' में बिला रहा है।"

हरखू सरदार ने चेहरे पर ऐसी विवशता और निराशा का भाव उभारा कि सुरजू सिंह सहज ग्लानि में डूबने-उतराने लगे। फिर एक लम्बी साँस खींचकर, बीच ही बोलने को उद्यत सिरिया को बरजते हुए बोले—"अरे छोड़ो हरखू दादा, तुम भी क्या लड़कों-फड़कों से होड़ बदने लगते हो। मैं क्या नहीं जानता कि तुम्हारे हृदय में हमारे लिए कितनी दया-मया है?"

हरखू सरदार के रोंगटे भरभराने लगे। उनकी आँखें पुलक से गीली होने लगीं। वे गला खँखारकर धीरे-धीरे बोले—"खबर तो बड़ी खराब है सुरजू बेटा। सुना है बारहो गाँव के चमारों की बटोर होनेवाली है।"

"क्या ?" सिरिया अचंभे से बोला—"बारहों गाँव के चमारों की बटोर ? हूँ, तो जे बा से साले तिल का ताड़ बना रहे हैं। कौन करा रहा है यह बटोर ?"

"ई सब तो मुझे नहीं मालूम। मगर सुना है कि अगले सनिच्चर को ही बटोर होगी। बारहों गाँव के चमारों की बड़की बटोर के लिए मुनादी हो रही है।"

सुरजू सिंह के चबूतरे पर सहसा ही हवा का दबाव बढ़ गया था। एक मुरदा चुप्पी सभी को दबोचकर बैठ गयी थी। एक क्षण बिल्कुल खामोशी रही।

सुरजू सिंह निढाल से होकर तकिये पर उठंग गए। उनकी आँखें सामने के छाजन की खपरैलों में अटक गयी थीं। उनके चेहरे पर थकान और बेवसी का रंग गाढ़ा हो गया था।

●●

बत्तीस

उस दिन शनिवार था।

गाँव में उत्सुकता के उफान की भी विचित्र गति होती है। वैसे एक खास तरह की हरारत तो हमेशा ही रहती है, थोड़ी आँच बढ़ी नहीं कि गाज-फेन उबल-उबलकर मुँह से बाहर गिरने लगता है। उस दिन सुबह से ही करैता में काफ़ी उत्तेजना थी। सभी लोग अपने-अपने तयशुदा कामों में लगे थे, पर उनका कितना हिस्सा कामों को अदा कर रहा है और कितना किसी अनजानी स्थिति के उभरने की प्रतीक्षा, इसे ठीक-ठीक बता पाना मुश्किल होगा। चमरौटी में गर्मी निश्चित ही ज्यादा थी। बारहों गाँवों के चौधरियों की बटोर कोई खेल नहीं है। कई साल पहले ऐसी ही एक बटोर हुई थी।

तब जैपाल सिंह का सितारा उठान पर था। रामकिसुन का बड़ा भाई देवकिसुन चमरौटी का नेता था। उसे कब और किसने नेता बनाया, यह किसी को नहीं मालूम। पर वह नेता हो गया। खद्दर के साफ कुरते, धोती और टोपी के कारण उतना नहीं, जितना अपने 'मधुरिया सुभाव' के कारण। धनेसरी बुढ़िया कहती कि देवकिसुन का मन गंगाजलि की नाईं निरमल है। उस साल चमारों ने हड़ताल बोल दी। चार सेर से कम रोज़ीना मजूरी के बिना कोई हल नहीं जोतेगा। जैपाल सिंह कहते कि यह सब देवकिसुन की शरारत है। चढ़ते आषाढ़ पानी बरसा। औंधी झड़ी लगी। धरती गहगहाकर खिल उठी। पर उस साल करैता में बहुतों के हल नहीं नधे।

ऊपर-ऊपर से सब कुछ शान्त रहा। पर नीचे आग धुंधुवा रही थी। गाँव के उपरले और निचले हिस्सों के बीच के सम्बन्ध-सूत्रों में अनजानी ऐंठन पड़ती रही। और एक दिन सहसा अन्तिम छोर पर पहुँचते-पहुँचते धैर्य का 'स्प्रिंग' टूट गया। ठकुराने से पचीसों लाठियाँ निकल पड़ीं। तालाब, सिवान, रास्ते, सभी तो ठाकुर के ही थे। इनका उपयोग करने का चमारों को क्या हक़ भला? चमार और चमारिनों पर बेहद मार पड़ी। तालाब में नहाती औरतों को झोंटे पकड़कर खींचा गया। खेत से घास-पात, सागसालन लाती चमार-लड़कियों को दौड़ाकर बेइज्जत किया गया। लाठे-डाँड़ पर चलते चमारों के बदन लहूलुहान हो गए। देवकिसुन का सर फट गया। सबकी घृणा का वह इकलौता पात्र बना।

यह सारा जुल्म बरपा करके सभी लठैत छावनी पर लौट आए। जैपाल सिंह ने यह सब सुना तो एक क्षण चुप रहे। फिर बोले—"ठीक हुआ।" उन्होंने लोगों को जलपान कराया। बीड़ी बँटवायी।

उसी समय बारहों गाँवों के चमारों की बड़की बटोर हुई थी। दीघा, कोइलर, देवीचक, भेलसरा, बेटावढ़, डेढ़गँवा आदि गाँवों से चौधुरी लोग आये थे। साफ धोती, बन्दोंवाली मिरजई और भारी-भारी मुरेठा बाँधे। कोइलर के मँगरू चौधुरी जिनके कानों में बित्ते भर के बाल थे। दीघा के

बचऊ राम जो बात-बात में रामायन की चौपाइयाँ सुनाते थे। भेलसरा के रामदास भगत, जो बिल्कुल मौन रहते थे, बेटावढ़ के जिउतराम जो गले में दो अंगुल चौड़ी सोने की 'महबीरी' पहनते थे। ये सभी चौधुरी अपने-अपने गाँव के चार-चार नवचे चमारों से घिरे दल बाँधे करैता पहुँचे थे। सारी चमरौटी में 'बेहरी' लगी थी। सूअर कटा था। भात के हंडे चढ़े थे। रात भर बटोर चलती रही थी।

इधर बटोर होती रही, उधर जैपाल सिंह कान में तेल डाले मज़े से सोते रहे। अगले दिन सुबह जैपाल सिंह ने दयाल महराज को बुलाकर कहा कि ओसारे में एक तरफ चारपाइयाँ लगवा दीजिए। दूसरी तरफ दरी बिछवा दीजिए। दयाल महराज जिज्ञासा से ठाकुर के चेहरे को देखा किये; पर ठाकुर मौन रहे। टकटकी लगी आँखों को सहज करने के लिए वे हल्के मुसकरा दिये। दयाल महराज निहाल हो गए। जैपाल सिंह की ऐसी मुसकराहटों का वे सही अर्थ जानते थे। इसका मतलब यह था कि देखते चलो। यह बात गोपनीय है। इसी से यह कार्य दयाल महराज को सौंपा गया है।

सुबह आठ बजते-बजते चमरौटी से चौधुरियों की शोभायात्रा निकली। आगे-आगे कोइलर के मँगरू चौधुरी थे। बगल में बेटावढ़ के जितऊराम। दोनों सायँ-सायँ बातें कर रहे थे। पीछे थे बाकी चौधुरी लोग। फिर उनके पीछे गर्दन लटकाये करैता के प्रायः सभी चमार जो गृहस्थों के खेतों में काम करते थे। उनसे थोड़ा हटकर चमारिनों और चमरौटी के लड़के-लड़कियों का दल था, जो हटक-हटककर आगेवाली गोल के तेवर देखता रुक-रुककर झाँव-झाँव करता चल रहा था।

यह शोभायात्रा चमरौटी और गाँव के बीचवाले छवरे पर आयी तो घरों, दरवाजों से निकलकर कुत्ते भौंकने लगे। लड़के 'चिहा-चिहा' कर कुछ अजूबा घटने का ऐलान करने लगे। गाँव के बूढ़े हथेली से सूरज की रोशनी को आड़कर अपनी कीचरीली आँखों को मुलका-मुलकाकर यह

अद्भुत दृश्य देखने लगे। चमरौटी से जुलूस आ रहा है—यह खबर जंगली आग की तरह इस छोर से उस छोर तक फैलती गयी।

तब गाँव के सभी रस्ते ठाकुर जैपाल सिंह की छावनी की ओर ही जाया करते थे। जुलूस पहुँचने के पहले छावनी पर लोगों का मजमा इकट्ठा हो गया था। इस भारी भीड़ में वे लठैत भी शामिल थे, जिन्होंने कुछ दिन पहले चमारों को चूहों की तरह चारों तरफ से घेर-घेरकर मारा था। इस समय वे लोग ठाकुर की चरनी पर पैर लटकाये, गंभीर मुद्रा में चुपचाप बैठे थे। ठाकुर जैपाल सिंह ओसारे में एक भारी पलंग पर, सिरहाने रखी तोशक के सहारे उठंगे गुड़गुड़ी पी रहे थे। दूसरी चारपाइयों पर ठकुराने के बड़े-बूढ़े लोग गरदन झुकाये मौन भाव से विराजमान थे।

जुलूस छावनी के चबूतरे पर आ गया तो भी जैपाल सिंह वैसे ही लेटे के लेटे गुड़गुड़ी खींचते रहे। जैसे उन्हें कुछ भी मालूम नहीं।

भीड़ चबूतरे पर रुक गयी। चौधरी लोग आगे बढ़ आए।

"मलिकार!" मँगरू चौधुरी ने कमर को झुकाकर पूरी कसरत के साथ फैले हुए दाहिने हाथ को सिर से लगाकर फर्शी सलाम किया।

"अरे वाह मँगरू चौधुरी!" जैपाल सिंह ने गुड़गुड़ी का नैचा खड़ा कर दिया और तोशक पर दोनों केहुनी टिकाकर चौधुरी का स्वागत किया। चौधुरी ने 'मलिकार' की स्मरण-शक्ति की बलैया ली और खीसे काढ़कर दरी पर बैठ गए। फिर तो एक-एक करके चौधुरी लोग ओसारे में आते रहे और झुक-झुककर सलाम करके दरी पर बैठते रहे। जैपाल सिंह ने जब जान लिया कि सभी आ गए तो उन्होंने हाँक देकर दयाल महराज को पुकारा।

"अरे दयाल महराज।" जैपाल सिंह ने हँसते हुए कहा—"कुछ धुआँ-धक्कड़ का भी इन्तजाम किया है? इतने लोग आये हैं, कुछ खातिर तवज्जह भी तो होनी चाहिए।"

दयाल पण्डित दालान में से चीलमें, तम्बाकू और बंडलों में बँधी बीड़ियों वाली टोकरी उठा लाये। कई आदमी बाहर इसी काम के लिए बैठे थे। चीलमें भरी गयीं। बीड़ियाँ दगीं। धुएँ का चाँदना ठाकुर के ओसारे में झूलने लगा। लोग धुआँ उगलते रहे और चुप रहे। काफी देर की चुप्पी के बाद दीघा के बचउराम ने दो एक बार उमाच बाँधी और फिर बोले—

"सरकार!"

उनकी आवाज जैसे सरकार ने सुनी न हो। बगल ही में बैठे हरखू सरदार ने हाथ जोड़कर कहा—"मालिक भइया। चौधुरी कुछ कह रहे हैं?"

"ऐं····?" मालिक भइया जैसे नींद से जगे हों। वे करवट बदलकर चौधुरी की ओर मुखातिब हो गए।

चौधरी अपनी दोनों हथेलियाँ रगड़ने लगे, मानो उन्हें साफ़ करने का इतना अच्छा मौका फिर शायद ही मिले।

"बचऊराम जी कुछ कह रहे थे शायद।" मालिक ने टिटकारी दी।

बचऊराम ने हथेलियों की हरकत बन्द की। उन्हें एक में सटाकर कहा—"बात है सरकार कि हम आपकी 'परजा' की ओर से गुहार करने आये हैं। परजा और सन्तान एक समान हैं। गोसाईं जी ने कहा है कि मुखिया मुख की तरह होता है, देह के सभी हिस्सों का सरकार वह एक जैसा पालन-पोषन करता है।"

मालिक चुप रहे। हरखू सरदार एक अद्भुत विश्वास से प्रेरित होकर बोले—"तो मालिक कहाँ दोरुखी करते हैं बचऊराम जी। महाबीर सामी कसम ऐसा सरदार तो आपने देखा न होगा। दुक्खन राम को तो जानते हैं न? छोटे सरकार से कुछ सरबर कर बैठे। छोटे बाबू को किरोध आ गया और उन्होंने लाठी चला दी। मगर मालिक भइया ने क्या किया? मालूम है आपको? दवा-दारू का इन्तजाम किया। रुपये दिये। परजा को तकलीफ न हो, इसलिए मीरपुर में रहने के लिए घर बनवाया। ऐसा हिरदा कहाँ होता है आज के जमाने में? परजा सन्तान के समान है, ई

बात ठीक है। मगर परजा को भी मालिक के सर पर नहीं चढ़ना चाहिए। सबको अपने-अपने धरम-करम का खियाल हो तब तो बात ही न बिगड़े।"

मालिक हरखू सरदार की ओर देखकर मुसकराये। कितनी हल्की कृतार्थ करनेवाली मुसकराहट थी वह। हरखू सरदार ने लजाकर गर्दन झुका ली। मारे गर्व और खुशी के उनके बदन में फुरहरी दौड़ने लगी थी।

"परजा की गलती न होती सरकार! तो हम दसों नख जोड़कर इहाँ क्यों आते?" बचऊराम जी ने हरखू सरदार की चुनौती स्वीकार कर ली थी। उदारता और नम्रता की प्रतियोगिता में बचऊराम से एक लंठ गँवार भिड़ जाए, यह उन्हें सह्य न था, बोले—"गोसाईं जी ने कहा है सरकार :—

नाथ प्रभुन कर सहज सुभाउ।
साँसति करि पुनु करहिं पसाऊ॥

जो कसूर करे, उसकी साँसत तो होगी ही। पर मालिक तो वह है सरकार कि साँसत भी करे और फिर दया भी। चोट करे, तो मरहम भी लगाए। परजा ने गलती की। अब सरकार से अर्दास है, उसे माफ किया जाए।"

ऐसा कहकर बचऊराम हाथ जोड़े उठे और जैपाल सिंह के पैरों को पकड़कर बैठ गए।

हरखू सरदार भौंचक देखते रह गए। उन्होंने मन ही मन बचऊराम का जवाब सोच लिया था। इस बार बोला चौधुरी तो ऐसी देंगे चौपाई की लघी कि हाँ। पर····

"बड़ा नाटकी है ई चौधुरी।" वे मन ही मन भुनभुनाये और अचानक उदास हो गए। जैपाल सिंह ने बचऊराम जी के हाथों की पकड़ से अपना पैर छुड़ाते हुए कहा—"हैं-हैं, अरे बचऊराम जी, भाई ई क्या कर रहे हो? आप तो भगत आदमी हो। मैं आप लोगों से कहीं बाहर थोड़े हूँ। आप लोग जो कहेंगे, वह तो करना ही होगा।"

बचऊराम 'धन्न-धन्न' कर उठे। दूसरे चौधरियों को भी उत्साह आया और वे मालिक की विरुदावली का बखान करने लगे। देवकिसुन को सभी लोगों ने टिटकारा—"उठकर जाओ किसुन और मलिकार से माफी माँग लो। ऐसे औघड़दानी स्वामी भाग्य से मिलते हैं।"

देवकिसुन एक क्षण टुकुर-टुकुर ताकता रहा। क्या इसी सबके लिए बारहों गाँवों के चौधुरियों की बटोर हुई थी? इसी के लिए गरीबों से बेहरी वसूल कर उसने इन लोगों की खातिर-तवज्जह की थी? बटोर में तो बड़ी हेकड़ी दिखाते रहे ये लोग। यहाँ आकर कैसी भींगी बिल्ली बन गए। माफी माँगने के पहले एक बार ठकुराने के अत्याचारों का बयान तो कर देते। हमें किस तरह बेजुबान जानवरों की तरह पीटा गया, किस तरह बहू-बेटियों की बेइज्जती हुई, इसका हिसाब-किताब करने तो आये थे न ये चौधुरी लोग? मगर क्या हो। सभी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं।

"अरे उठो भाई।" मँगरू चौधुरी ने उसकी ओर आँखें गुड़ेरकर देखा। किसुन घबराकर उठ गया। वह क्यों नाहक अपनी बात पर अड़कर बद्दू बने। जब सबकी यही राय है तो फिर यही हो। वह हाथ जोड़कर जैपाल सिंह के सामने बैठ गया। चारों तरफ खुशी की लहरें मचल उठीं। चरनी पर बैठे, ठकुराने के लठैत एक दूसरे की ओर कनखी ताककर मुसकरा उठे। उन्हें हँसते देखकर भी घायल चमारों के मन में उद्वेग नहीं आया। चौधुरी लोगों को प्रसन्न देख, चमारिनें भी अपनी बेइज्जती करनेवालों की ओर लाज भरी चितवनों से देखने लगीं। जैसे उन्हें बलात्कार को स्वीकार करने में भी खुशी हो रही हो। चारों ओर शान्त रस की अद्भुत शीतल धारा बह उठी!

● ●

तैंतीस

आज फिर चमरौटी के दक्खिन तरफ खलिहान में बारहों गाँवों के चौधुरियों की बटोर शुरू हुई। करैता, दीघा और भेलसरा के आठ-दस लठैत चमार सभा-स्थल को चारों तरफ से घेरकर पहरा दे रहे थे। एक आदमी जूतों को बटोर-बटोरकर एक जगह क्रम से रख रहा था। रामकिसुन चौधुरियों के सामने घुटना मोड़कर हाथ जोड़े बैठा था। उसके मन में पहली बटोर की तमाम यादें ताज़ी थीं। तब और अब में कितना अन्तर है! अब वे चौधुरी नहीं रहे। न वह गलगुच्छा, न वह मिरजई, न वे सोने की बालियाँ। कुछ भी नहीं। अब न तो बात-बात में चौपाइयाँ सुनाई पड़ती हैं और न तो मालिक की दुहाई।

रामकिसुन के बगल में डोमन बैठा था। डोमन ने कई बार बुलाने पर भी आने से इन्कार कर दिया था। उसे लाने को बल्लमदार भेजे गए थे। कुछ देर ही पहले उसे पकड़कर लाया गया था। डोमन को शायद विश्वास था कि बाबू सुरजू सिंह उसे जाने से रोक लेंगे। इसीलिए वह घर

में घुसा रहा। उसने एक छोकड़ा भेजकर खबर भी करायी थी, पर सुरजू सिंह की ओर से कोई उसे बचाने नहीं आया। जब बल्लमदार घर में घुस कर उसे पकड़ने लगे तो वह उनके हाथों से छूटने के लिए रोहू मछली की तरह तड़पा ज़रूर। हारकर बोला—"मैं तो खुद ही चल रहा हूँ। मुझे बटोर से डर पड़ा है क्या?" बल्लमदार उसे घसीटकर ले आये थे। चौधुरियों के सामने उन्होंने उसे ढाह दिया था। वह गलागला कर अपने पर होनेवाले अत्याचारों के लिए दुहाई देता रहा, पर किसी का दिल न पसीजा और उसे मुर्ग़ा बनाकर लटका दिया गया। डोमन की घर वाली अपने बारह साल के लड़के को आगे करके बटोर की जगह पर आयी थी। चौधुरियों के पाँव पर गिर-गिरकर दया की भीख माँगती रही। पूरी जमात के खाने के लिए एक मन चावल और एक पट्ठे सूअर की फ़रमाइश पूरी करने के बाद डोमन मुर्ग़-फाँस से मुक्त हुआ। सभा-स्थल से पूरब तरफ ज़मीन को खोदकर बड़े-बड़े दो चूल्हे बने, जिन पर भारी-भारी हंडों में चावल और सूअर का गोश्त पकने लगा।

पकते हुए भात और गोश्त की गंध को हलक़ में अच्छी तरह भरकर भेलसरा के नवचे चौधुरी लच्छीराम ने कहा—"भाइयो, रामकिसुन जी की अरज-गरज आप लोगों ने सुन ली। यह कोई इनका अकेले का मामला नहीं है। यह सारी क़ौम की इज़्ज़त का सवाल है। हम लोगों को इनका शुक्रगुज़ार होना चाहिए कि इस कौम में अभी भी ऐसे नौजवान जन्म लेते हैं, जो मुर्दा नहीं हैं। जो बेइज़्ज़ती को चुपचाप सहने के लिए तैयार नहीं हैं। अब वह ज़माना गया कि हम बड़े लोगों की जूती चाटने को ही अपना धर्म मानते थे। सारा मामला आप लोगों के सामने है। अब इसका जवाब आपको सोचना है।" लच्छीराम जी मशहूर कांग्रेसी नेता थे। उनको गाज़ीपुर के मज़दूर संघ में बोलने का खूब अभ्यास था। उनके 'भाषन' से रामकिसुन का "रोवाँ भरभराने" लगता था। उनको बटोर में ले आने के लिए उसने कितनी दौड़-धूप की, यह तो उसकी आत्मा ही जानती है।

भेलसरा के अपने बहनोई धरभरन राम को लेकर वह गाजीपुर गया। वाह-वाह क्या रुतवा है लच्छीराम जी का। कोठरी तो छोटी ही है। बाक़ी खूब साफ-सुथरी। ऊपर पंखा चलता है। कुशल-मंगल के बाद धरभरन राम जी ने बात चलायी। सारी दास्तान सुनकर लच्छीराम जी ने मुँह लटका लिया, बोले—"बात ई है धरभरन चच्चा कि इहाँ के काम से एक मिनट फुर्सत नहीं मिलती। अफीम कोठी के मजदूरों की आजकल हड़ताल चल रही है। मझधार में उन्हें छोड़कर कैसे जा सकता हूँ भला। आप ही बताइए?" धरभरन पाहुन क्या बोलते। लच्छीराम जी ने जेब से डब्बा निकाला। खूब चमकीला डब्बा था। भीतर कसकर बीड़ी भरी थी। उन्होंने एक बीड़ी जला ली। मनमारे सोचते रहे।

मैंने बहुत विनती की, कहा—"आप जात के नेता हैं। आप ही हमारा उद्धार न करेंगे तो कौन करेगा भला।" मुझ पर तो जैसे कोई देव उतर आया था। मेरी आँखें भरभरा आयीं। गला रुँध गया। जाने क्या-क्या कहता रहा।

लच्छीराम जी धीरे से हँसे। फिर बोले—"अच्छा भाई, जब ऐसी बात है तो चलूँगा। पर हमारी फीस तो आप जानते हैं न?"

मैं तो उनका चेहरा ही ताकता रह गया। फीस तो डाक्टर-वैद्य लेते हैं। मुझे परेशान देखकर बोले—"सुनो भाई, मामला परेशानी का है। पचास रुपये से कम पर मैं नहीं जाता ऐसी बटोरों में। कुछ कुघट घट गया तो अखबारों में नाम तो मेरा छपेगा। बदनामी मेरी होगी। औरों को कौन जानता है ऊपर। ऐसी हालत में इधर-उधर लोगों को पान-पत्ता के लिए कुछ चाहिए कि नहीं।"

बात ठीक थी, पर अपने पास तो कानी कौड़ी न थी। खैर, जब ओखली में सिर पड़ गया तो मूसलों का क्या डर? बातचीत चली। भाव-ताव हुआ। मामला तीस रुपये पर पट गया।

उस शाम जब रामकिसुन करैता लौटा तो उसके पैर धरती पर नहीं पड़ते थे। घर में आकर वह हाँथ-मुँह भी न धो सका। मन के भीतर जैसे

कोई भारी सी चरखी नाच रही थी। उसका सारा बदन क़ाबू के बाहर हो रहा था। उसने झटपट संगी-दोस्तों को बटोरा। सरूप भगत के पास पहुँचा। बिना भूमिका के उसने सारी दास्तान सुना दी। इतने पिछड़े गाँव में लच्छीराम का आना कितनी बड़ी बात थी, पर सरूप भगत कुछ न बोले। जाने क्यों सरूप भगत को यह सब कुछ 'बखेड़ा' लग रहा था। रामकिसुन का मन उदास हो गया। पर वह हिम्मत हारनेवाला आदमी न था। उसकी आत्मा के भीतर एक सिहरन जैसी कौंध जाती। आज कहीं देवकिसुन भइया होते तो खुशी से पागल हो जाते। यह बूढ़े, 'हाँ में हाँ मिलानेवाले' चापलूस चौधुरियों की बटोर नहीं है। यह आग है, लपट है। इस बार इसमें ठकुराने की सारी हेकड़ी जलकर राख हो जायेगी। जैसे अगिया बैताल भेलसरा के लच्छीराम हैं, वैसा ही पटाखा बेटावढ़ का सूरजभान भी है।

•

लच्छीराम जी का 'भाखन' आज कुछ जमा नहीं। दो अच्छर बोल कर बैठ गए। तीस रुपया लेंगे, कोई मुफुत की बात तो थी नहीं। रामकिसुन को लच्छीराम जी की 'कसरियाहो' अखर गयी। बटोर है। इतने लोग बैठे हैं। क्या कहे। वह चुप मन मारे बैठा रहा। पर सूरजभान ने बात सँभाल ली। वह तो जैसे मौक़ा ही देख रहा था। लच्छीराम ने 'संछेप' मारा तो उसकी गोटी लह गयी। उसने एक न छोड़ी। 'बड़ी जात' का सारा भंडा-भोड़ कर रख दिया। ग़रीबों पर उनके जोर-जुल्म की एक से एक कहानियाँ उसे याद थीं कि मुरदे भी सुनें तो उनका खून खौल जाए। उसका 'भाखन' खतम होते-होते तो जैसे चमारों के बदन में आग लग गयी। चारों ओर उसकी जय-जयकार गूँज उठी।

"विसविद्याले में अंग्रेजी पढ़ता है। कौलजिया लड़का है सूरजभान, कोई कुली-मजूरों का मेठ नहीं है। हाँ।"

कई आँखें लच्छीराम जी की ओर उठीं। लच्छीराम जी हल्के से मुस्कराये। कुछ देर खुद ही में खोये रहे। धीरे से कनखी मारकर उन्होंने रामकिसुन को बुलाया।

बटोर की जगह से थोड़ा हटकर वे जाने क्या-क्या बोलते रहे। रामकिसुन ने जेब में से रुपये निकालकर उन्हें थमा दिये।

"देखिए लच्छीराम जी, जिसका हाथ पकड़ा जाता है, उसे पार लगाया जाता है। गाड़ी तो सबेरे भी मिल जायेगी। नहीं फिर बस तो है ही। ज़मनिया से ताड़ीघाट कितनी दूर है भला।"

"मैं अभी जा कहाँ रहा हूँ, प्यारे भाई। बात ई है कि तुम काम-धाम से फँसे हो। चलती बेला देर न हो, इसीलिए सोचा कि एक काम निबट जाए।"

रामकिसुन कुछ न बोला। दोनों आकर अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए।

"ई रात भर 'भाखन' से क्या होगा भाई।" एक बुड्ढा बोला—"सोचो-गुनो कि आगे क्या हो। सगरी दुनिया जानती है कि बड़ा जुलुम हुआ। इस पर कौन हुँकारी न भरेगा। सोचना तो ई है कि इससे निस्तार कैसे हो।"

निस्तार के उपाय पर काफ़ी देर चुप्पी रही। लच्छीराम कनखीं से सूरजभान की ओर देख रहे थे। सूरजभान चुपचाप बूढ़ों की ओर देख रहा था। लच्छीराम जी ने ऐसे बातूनी छोकरे बहुत देखे हैं। खूब जमा-जमा कर बातें करते हैं। पर मामला 'चौंड़िया' जाता है तो हाथ-पैर फूलनें लगते हैं।

"अब सूरजभान जी बतायें कि क्या किया जाए।" लच्छीराम ने चेहरे को गंभीरता और उदारता के रंग में डुबोकर कहा।

सूरजभान उनकी ओर देखकर मुस्कराया। फिर एक क्षण रुककर बोला—"मेरी राय पंचों को पसन्द नहीं आयेगी। यहाँ सभी समझौता-वादी हैं। बटोर करेंगे। खायेंगे-पीयेंगे। बेहरी लगाकर पंचों की खातिर-

तवज्जह होगी। रात भर 'झाँव-झाँव' करके फैसला करेंगे कि भाइयो, जो हुआ सो हुआ। बात बढ़ाने से क्या लाभ। चलो मिल-जुलकर ऐसा कुछ करें कि न साँप मरे न लाठी टूटे। मैं उस तरह के ख्यालों का मुरीद नहीं हूँ। इसलिए आप लोग मुझसे कुछ न पूछें। आपका काम लच्छीराम जी से बनेगा। ये ठहरे कांग्रेसी नेता। राम की जय, रावण की जय। दोनों ही एक साथ बोल देंगे। मामला हँसी-खुशी निबट जायेगा।"

बटोर में एकदम से सकता छा गया। कभी-कभी आदमी चुप इसलिए होता है कि उसे कुछ साफ़ सूझता नहीं। सब कुछ पिघलकर एक में गड्डम-गड्ड हो जाता है। उसे अलगाना-बिलगाना मुश्किल हो जाता है। मगर चुप्पी एक और भी होती है। वह तब उपजती है जब कुहरा छँटते ही दिखता है कि उसके भीतर तो चितकबरा साँप फन फुलाकर झूम रहा है। तो इसी की आवाज़ थी वह? सहसा सभी तरह की जिज्ञासाएँ एक झटके से मर जाती हैं और जोश ठहर जाता है। अचानक आदमी को लगता है या कम से कम इसी तरह वह अपने मन को परतोख देता है कि यहाँ न तो कहीं कुहरा है और न तो उसने कभी कोई अजीब आवाज़ ही सुनी है।

रामकिसुन को लगा कि बटोर अनचाहे रास्ते पर जा रही है। उसने हाथ जोड़कर सरूप भगत की ओर मुँह करके कहा—"भगत, आप क्या एकदम मौनी बाबा ही बने रहेंगे। कुछ तो कहिए।"

जैसी पहली बार बटोर में बैठे लोगों को लगा कि यहाँ एक ऐसा भी शख्स है जिसने इस तरह के मामले देखे ही नहीं हैं, बल्कि उनकी लपटों के भीतर से आया-गया भी है। अनजान लोग सरूप भगत के बारे में जिज्ञासा की फुसफुसाहटों में डुबकियाँ लगाकर कुछ तलाश रहे थे। सभी गोताखोरों की कोशिशों को विराम देती हुई एक आवाज़ उभरी थी—"देवी-चक!" और इस एक शब्द ने ही पूरी सभा को समझा दिया था कि जुल्म का मतलब क्या होता है, और उससे इन्सान कैसे जूझता है।

"कुछ बोलो भगत।" लच्छीराम सूरजभान सभी उत्सुकता से सरूप की ओर देखने लगे।

"मैं क्या बोलूँ पंचो।" सरूप भगत ने खँखारकर गला ठीक किया —"हम ठहरे पुराने लोग। अब ज़माना नवचों का है। भोगना भी उन्हें ही है, फ़ैसला भी उन्हें ही करना होगा। अपनी ज़िन्दगानी अब किनारे आ लगी। बहुत कुछ देखा। बहुत कुछ सहा। अब तो भइया अपने को मौनीबाबा बनना ही सुहाता है। आप लोग जो फ़ैसला करो, वही ठीक। बाकी एक बात हम ज़रूर कहेंगे। फ़ैसला चाहे नरम हो या गरम, अपने को देखकर करना चाहिए।"

"आपका मतलब ?" सूरजभान बीच ही में बोल पड़ा। उसे लगा कि यह भगत भी, जिसे वह हिम्मतवाला आदमी समझता था, समझौता-वादी ही निकला—"आप क्या समझते हैं, इस तरह के ज़ुल्म होते रहें और हम उसे आँख मूँदकर सहते रहें।"

भगत मुसकराये और कहने लगे—"हम का क्या मतलब है बेटा। इस पर भी कुछ सोचो। हम माने कौन ? किसी की बेइज़्ज़ती हो, पगड़ी उतर जाये और आस-पास के लोग दौड़ें कि भाई बिरादर की इज्जत बचाना अपना फ़र्ज है। सब लोग जुटकर आयें और वह भाई-बिरादर सबकी ओर नफ़रत से देखकर बोले कि यह तो तिल का ताड़ बनाना है। झूठ-मूठ का हल्ला मचाना है। बिना बुलाये दूसरे के मामले में टाँग अड़ाना है तो क्या होगा ? ई कैसा 'हम' भाई ?" भगत एक क्षण चुप होकर सामने की ओर देखते रहे—"बड़े से बड़े ज़ुल्म का निस्तार मिल सकता है बेटा, मगर उस ज़ुल्म से कोई निस्तार नहीं जिसे भोगनेवाला उसे ज़ुल्म माने ही नहीं। आप सब लोग डोमन भाई से पूछें कि क्या उनके साथ जो कुछ हुआ है, उसे वे बुरा मानते हैं और उससे निस्तार पाना चाहते हैं ?"

सूरजभान अजीब तरह से भौंचक होकर सरूप भगत की ओर देखने लगा। सरूप भगत उसकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखते हुए बोले—"तुम लोग बेटा विदवान हो। पढ़े-लिखे हो। खून में गर्मी है। ई सब बहुत अच्छी बात है। बाकी यदि इस क़ौम को उठाना चाहते हो तो गाँठ बाँध

लो कि अब लड़ाई भीतर है, बाहर नहीं। सहते-सहते यह क़ौम अब वहाँ पहुँच गयी है, जहाँ उसे जहालत में ही आराम मिलने लगा है।"

"क्यों जी डोमन भगत।" सूरजभान के चेहरे पर अचानक खिंचावट आ गयी थी—"तुम्हारे साथ जो कुछ हुआ, उसके लिए तुम क्या कहते हो ?"

"मैं क्या कहूँगा।" डोमन भगत विफरकर बोले—"मुझे कुछ नहीं बोलना। बोलने के लिए तो बारहों गाँवों के चौधुरी लोग आए ही हैं। वही बोलें।"

"तो चौधरी लोग जो कहेंगे, वह करोगे न ?"

"मैंने तो चौधरी लोगों को बटोरा नहीं। डाँड़ जरूर भरना पड़ा कि घर में जो खर्ची-वर्ची थी, वह भोज-भात में चली गयी।"

"तो तुमको भाई-बिरादरों को खिलाना ज़बुन लग रहा है।"

"हमारे घर फाका होगा तो क्या भाई-बिरादर खायक पहुँचायेंगे ?"

"तुम्हें कुछ शरम हया भी है कि नहीं डोमन भगत, सरे आम तुम्हारी पगड़ी उतर गयी और तुम्हें ऐसे बोलते लाज नहीं लगती ?"

"मैं सबकी पगड़ी देख चुका हूँ।"

डोमन फुसफुसाकर चुप हो गया। पंच लोग एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे।

"पहले इन्हीं से निबटना होगा।" सूरजभान बोला—"सरूप भगत का कहना ठीक है। यह लड़ाई अब बाहर नहीं, भीतर आ गयी है।"

"इसमें सोचना-विचारना क्या है सूरजभान।" लच्छीराम जी ने अचानक सूरजभान से समझौता कर लिया था—"अगर डोमन भगत को लगता है कि उनके साथ जो हुआ है ठीक है, तो उन्हें बिरादरी से बाहर करो और यदि उन्हें लगता है कि उनके साथ अन्याय हुआ तो उससे निबटने का उपाय सोचो।"

डोमन बो दूर खड़ी-खड़ी यह तमाशा देख रही थी। वह नज़दीक आकर बोली—"यह क्या बोलेंगे पंचो। जिसको तलवा चाटने की आदत

है वह चाटेगा। दिन भर कोठरी में बैठकर हुक्का पीने से ज़िन्दगानी नहीं चलती। जिसे मसक्कत करना है, वही जानता है। मेरे चार ठो लड़के-लड़कियाँ हैं। बिरादरी से बाहर जाकर मैं क्या कुइयाँ-पोखर में डूब-धँस कर मरूँगी ? भाई-बिरादरों को भोज-भात मैंने दिया है खुशी, खुशी। इसमें जबुन लगने की क्या बात है ?"

डोमन बो की बातों ने बटोर की दिशा ही बदल दी। डोमन की कदराई और उसकी घरवाली की हिम्मत का चौधुरियों पर क्या प्रभाव पड़ा, ये तो वे ही जाने, मगर दो घंटे की बहस के बाद जो कुछ तै हुआ, उससे साफ़ था कि नवयुवक चौधरी लोग क़ौम की इज़्ज़त बचाने के लिए सुरक्षात्मक तरीक़े से ही संतोष करनेवाले नहीं थे, बल्कि अत्याचार के मूल पर भी कुठाराघात करने को तैयार थे। बटोर ने सर्व-सम्मति से फ़ैसला किया कि सुरजू सिंह कल सुबह सुगनी को अपनी पत्नी समझकर खुद आकर चमरौटी से ले जाएँ, नहीं कल शाम को चमार लोग सुगनी को ले जाकर उनके घर बैठा आयेंगे।

●

मनुष्यों के कामों, निर्णयों आदि से प्रकृति का कुछ सम्बन्ध होता है या नहीं, यह एक बारीक़ और काफ़ी गंभीरता से सोचने-विचारने का प्रश्न हो सकता है, किन्तु उस रविवार की सुबह करैतावालों को ज़रूर रोज से काफ़ी भिन्न लग रही थी। बहुत सुबह चमारों की ओर से एक संदेसिया आया था और वह सुरजू सिंह को बटोर का फ़ैसला सुना गया था। यह बात वहाँ उपस्थित सिरिया, छबिलवा और हरखू सरदार के अलावा किसी ने सुनी नहीं थी। मगर ज्यों-ज्यों पूरबी आसमान पर सूरज क्षितिज से ऊपर की ओर खिसकने लगा, गाँव के भीतर, चौराहों पर, गलियों में, बइठकों में, घरों में यह समाचार फैलता रहा कि दोपहर के पहले-पहले यदि सुरजू सिंह सुगनी को चमरौटी में जाकर ले नहीं आते, तो शाम होते-होते चमार लोग उसे बखरी में ज़बर्दस्ती घुसा देंगे।

यह एक ऐसी अश्रुतपूर्व बात थी कि जो भी सुनता, एक क्षण मौन रहता, फिर धीरे से मुसकराने लगता। मुसकराहटों के भीतर भी क्या-क्या छिपा होता है, उसे जानना आसान नहीं है। दयाल महराज जानते हैं कि सुगनी के लिए सामान केवल सुरजू सिंह ने ही नहीं मँगाये हैं। कई मुसकराने वाले भी जब एक क्षण के लिए गर्दन झुकाकर अपने गरेबान में झाँकते तो सहसा भयभीत और उदास हो जाते। फिर अपनी तक़दीर को सराहते कि चलो यह घटना उनके साथ नहीं हुई। बेचारा सुरजू सिंह !

सिरिया और छबिलवा तो चुप थे ही। हरखू सरदार को भी आज जैसे साँप छू गया था। कुछ भी कहते नहीं बना। गाँववालों की अन्तर्ज्ञानशक्ति भी अजीब होती है। वे तमाशा के शौक़ीन होते हैं। हर मौक़े पर जहाँ कहीं भी तमाशा की गुंजायश हो, बिना बुलाये पहुँच जाते हैं। मगर किस तमाशा में ख़तरा है, यह जानने का उनका विवेक भी कम प्रशंसनीय नहीं होता। सुबह के दस बजने को आ गए, मगर कोई भी ऐसा आदमी सुरजू सिंह के बइठके पर नहीं पहुँचा, जिसको अहमियत दी जा सके।

सुरजू सिंह का चेहरा आज बिल्कुल श्रीहीन लगता था। वे होठों को बरजोरी दबाकर चेहरे को कितना भी सँभालने की कोशिश कर रहे हों, उनका मुख झुर्रियों से भरा-भरा लग रहा था।

"अब क्या होगा हरखू दादा ?" सुरजू सिंह हताश होकर बोले।

हरखू सरदार जैसे इसी अवसर की प्रतीक्षा में थे, धीरे से बोले—"घबराव मत बेटा। ई कोई हँसी-मज़ाक नहीं है कि नान्ह जात की लड़की को कोई किसी ठाकुर के घर घुसेड़ जाए। महाबीर सामी कसम, ऐसे ही मौक़ों पर जैपाल भाई की याद आती है। आज अगर ऊ होते तो चाहे लाख तुमसे दुश्मनी हो, भाई-बिरादर की इज़्ज़त को नीलामी पर हर्गिज़ चढ़ने नहीं देते। ई मामला अब सुरजू सिंह का नहीं है। ई पूरे ठकुराने का मामला हो गया। एक बात मानो तो कुछ कहूँ।"

डूबते को तिनके का सहारा कुछ भरोसा दे रहा था, पर हरखू सरदार के चेहरे को देखकर सुरजू सिंह एक क्षण चुप रह गए थे। फिर

बोले—"जो कुछ कहना हो कह दो दादा, अब इससे बुरा क्या होनेवाला है।"

"बुझारथ भी जैपाल सिंह का ही बेटा है। सुरजू बेटा, तुम बुझारथ के पास चलो। बस इतना कह दो कि बुझारथ भाई अब हमारी इज्ज़त तुम्हारी इज्ज़त है। मुझे पूरा भरोसा है कि बुझारथ नाहीं नहीं करेंगे। उत्तरपट्टी और दक्खिनपट्टी के ठाकुर यदि मिल जाएँ तो चमारों की हिम्मत नहीं है कि वे छवरे पर कदम धरें।"

इतना कहकर हरखू सरदार चुप हो गए। सिरिया एक-दो बार कसमसाया, पर सुरजू सिंह का रुख देखकर चुप रहा।

"चलो दादा, ई भी दिन देखना बदा था मेरी क़िस्मत में। जिस खानदान से पुश्तैनी दुश्मनी है, हाड़ पड़ा है, उसी के आगे हाथ फैलाने की नौबत आ गयी।"

"विपदा में सब करना पड़ता है सुरजू बेटा। उसमें लाज क्या? घर में आग लगने पर घूरे पर खड़े होने में भी कोई बेइज्ज़ती नहीं। आओ चलें।"

●

शाम के क़रीब तीन बज रहे थे, जब एकाएक ऊँघता हुआ करैता गाँव चिहुँककर जग गया था। चमरौटी से जुलूस चलनेवाला है। दुखन के खंडहर के पास मजमा लगा हुआ है। करीब बीस-पचीस चमार लाठियाँ लिए तैयार हैं। रामकिसुन सबको बीड़ी बाँट रहा है। सूरजभान एक पक्खे से पीठ टिकाये खड़ा है। सरूप भगत काफ़ी गुमसुम हैं। पास में एक टूटी दीवाल का सहारा लिये सुगनी खड़ी है। इस मौक़े पर भी वह सिंगार-पटार से बाज नहीं आयी। चटक साफ़ लुग्गा पहने है। झिनकू के दरवाजे पर चमारिनों की भीड़ है। दुलारी कमर पर हाथ धरे सबको कुछ समझा रही है। घुरबिनवा गली की मोड़ से सुगनी की ओर झाँक रहा है। सुगनी की आँखें ऊपर नहीं उठतीं।

"लच्छीराम कहाँ हैं हो रामकिसुन।" सूरजभान पक्खे से पीठ हटाता है।

"ऊ तो सबेरे ही चले गए। कह रहे थे कि उनके न जाने से मामला बिगड़ जायेगा। अफीम कोठी के मजूरों ने हड़ताल की है।"

"हूँ। और बाकी चौधुरी लोग? उन लोगों का भी मामला बिगड़ रहा होगा?"

"जो हैं ऊ सब सामने ही हैं। क्या कहा जाए।"

●

सुरजू सिंह का चबूतरा आदमियों से भरा हुआ है। रस पानी, बीड़ी-सिगरेट की धूम है। सुरजू सिंह इसमें इस तरह व्यस्त हैं, जैसे आज उनके यहाँ लड़के की शादी है। दोपहर से ही बरामदे में चारपाइयों पर बिछौने डाल दिए गए हैं। सारे गाँव में खबर दौड़ गयी कि सुरजू सिंह ने बुझारथ के पैरों पर पगड़ी डाल दी है। दक्खिन-उत्तर पट्टी एक हो गयी। जैसे दोनों को मिलानेवाली बीचवाली गली के सारे अवरोध अचानक खुल गए हों। बुझारथ भी तो बाप ही का बेटा है? ऐसे समय क्या कोई पुरानी दुश्मनी याद करता है? ई तो सारी ठाकुर क़ौम की इज्ज़त का सवाल है।

"हमने तो पहले ही कह दिया फेरू भइया कि जे बा से यह सारी कर-तूत देवीचक के चमारों की है।" सिरिया हाँफता-भचकता आया और चारपाई पर बैठते हुए बोला—"पूरा मजमा है दुखना के खंडहर के सामने।" मैंने छिपकर देख लिया है। बीस-पचीस आदमी हैं कुल। जे बा से बेटावढ़ वाला सूरजभनवा सरूप के कान में मुँह डालकर फुस-फुसाय रहा था।"

फेरू सिंह ने अपनी मूँछों को गुर्‌ही देकर कड़ा किया—"आने दो सालों को। बहुत दिनों से लोहबन्ना धरे-धरे मुर्चाय रहा था। बाकी बुझारथ कहाँ हैं? हम लोगों को चलाकर बैठ गए का?"

"अरे नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है फेरू बेटा।" हरखू सरदार बोले—"आ रहे होंगे बुझारथ बेटा भी। खुदाबक्स अब है नहीं। कब की रखी-रखी बन्दूक जकड़ गयी है। हमारे आगे उन्होंने कोने से उठाकर खोली में से बाहर निकाली थी।"

"अच्छा!" फेरू सिंह प्रसन्न भाव से हँसे—"अरे तो आकर यहाँ दो-चार 'फैर' करना था कि अभी तक बन्दूक ही साफ करते रहेंगे?"

"तभी 'दाँय-दाँय' दो बार बन्दूक छूटी और उत्तर पट्टी के पेड़ों, मकानों, छज्जों के ऊपर से चीत्कारते-उड़ते पक्षियों से आकाश भर गया।

सुरजू सिंह के चबूतरे पर बैठे लोग खुशी के मारे तालियाँ पीटकर चिल्ला उठे—"ये हैं बुझारथ, अब जाकर बन्दूक दगी है। हैं-एँ एँ एँ।"

•

"रमचन्ना!" बुझारथ बाबू ने बन्दूक को खटिया के पैताने रखते हुए कहा—"अरे ज़रा जल्दी हाथ चला। साफी भिगो लाया कि नहीं? बाधी ला। हम जलाएँ।" रमचन्ना हथेली में गाँजे को मसलते हुए बोला—"बाधी बनाकर रखे हैं, ऊ उधर सुतली वाली पलंग के सिरहाने, हाँ, उधर, उधर, हाँ वही है।"

"भगवन्त हो! भगवन्त हो!!" बुझारथ सिंह ने बाधी उठाकर ज़मीन पर रखी और सलाई से तीली निकालकर बड़े तृप्त और संतुष्ट मन से गुनगुनाने लगे। जैसे उन्हें आज ज़िन्दगी का परम लाभ मिल गया है। "साधो, करमगति टारे नाहीं टरी।" उन्होंने बाधी में सलाई घँसकर लगा दी।

विपिन सामने की चारपाई से उठा और बखरी में जाकर कनिया के आगे खड़ा हो गया—"मेरा कहना वे सुनते नहीं। बन्दूक-वन्दूक तैयार है। अब वे जा रहे हैं चमारों से मोर्चा लेने। अभी एक मामले में फँसे थे तो किसी तरह निस्तार हुआ। अब की कुछ हो गया तो फिर बंटाधार ही

समझिए। यह आदमी तो जैसे बिल्कुल पगला गया है। बस एक ही रट लगाये हैं—जो काम मालिक काका या ददुआ नहीं करा सके, वह हो गया। आज मेघन सिंह के खानदान की पगड़ी बबुआनों के पैरों पर गिर गयी है। आज कहीं बुढ़ऊ होते तो जानते हो क्या करते। सुरजू को छाप लेते। कहते बेटा, घबराओ मत। समझ लो कि तुम्हारे बाप की जगह मैं हूँ। मेरे जीते जी तुम्हारा कोई बाल बाँका भी नहीं कर सकता।"

कनिया ने यह सब सुना। एक क्षण शून्य में तकती रहीं। फिर वे उठीं और सीधे बइठके की ओर चल पड़ीं। विपिन पीछे हो लिया।

रमचन्ना ने गाँजे की चीलम पर जलती हुई बाधी जमाकर बुझारथ सिंह की ओर बढ़ा दिया था।

कनिया बरामदे में हेल गयीं।

"कहाँ जा रही है यह बन्दूक? अभी एक मामले-मुक़दमे से पेट नहीं भरा? जो कुछ दो-चार थान गहना-गुरिया था घर में, वह पुलिस-दरोगा के पेट में गया। सिर पर जवान लड़की खड़ी है। आप उसके लिए कुछ नहीं कर सकते तो न सही, लोगों को चैन से साँस तो लेने दीजिए।"

बुझारथ अचकचाकर कनिया को देखते रहे। उन्हें अचंभा हो रहा था कि पिछले बीस वर्षों से चुप रहनेवाली औरत इस तरह कैसे बोल रही है। उसके मन के भीतर अहं का सर्प कुलबुला रहा था। हिलते हुए फन की कम्पन में गाँजे की चीलम भी काँप गयी थी।

बुझारथ सिंह कनिया के इस नये रूप को कुचलकर अट्टहास करने के लिए उद्यत हो रहे थे। मगर पता नहीं क्यों उनके भीतर कुछ अपने आप शिथिल होकर उन्हें असहाय भी बनाता जा रहा था। बुझारथ सिंह ने गाँजे की दम में इस ग़म को घुलाने की कोशिश की। चीलम में लपटें उठने लगीं। बदबूदार धुएँ से बचने के लिए कनिया ने आँचल मुँह पर लगा लिया। वे एक क्षण चुपचाप वैसे ही खड़ी रहीं। चीलम को रमचन्ना के हाँथ में थमाकर बुझारथ ने बन्दूक उठा ली।

"आप नहीं मानेंगे ?" कनिया बुझारथ के सामने आकर खड़ी हो गयीं।

"सबको चलाकर मैं खुद बैठ रहूँ। क्या कहेंगे लोग ?" बुझारथ की गर्दन नहीं उठी।

"जब थानेदार ने पकड़कर बन्द कर दिया था हवालात में, तो क्या कहा था लोगों ने ? लोग तो चाहते हैं कि बबुआनों की बोटी-बोटी बाजार में बिक जाए। उनकी मंशा पूरी करने के लिए आप जैसा आदमी भी मिल गया है भाग्य से। लेकिन सुन लीजिए, यदि आज मेरा कहना टालकर आप गये, तो इस छावनी में मेरी लाश ही मिलेगी आपको।"

बुझारथ कनिया की ओर घूरकर देखते रहे। बीसों बार इस औरत की आँखों को देखा है उन्होंने। मगर ऐसी चमक शायद ही कभी दिखी हो।

"लाइए बन्दूक इधर।" कनिया बोलीं।

बुझारथ के मन के भीतर फन फुलाकर नाचता सर्प जैसे बीन की आवाज़ से बेहोश हो रहा हो। उन्होंने बन्दूक कनिया को दे दी। और हारे हुए आदमी की तरह चारपाई पर गिर पड़े—"भगवन्त हो, भगवन्त हो।"

●

विपिन बाबू ! विपिन बाबू !!

दौड़ते हुए जग्गन मिसिर छावनी में आ रहे थे। बुझारथ मन मारे चारपाई पर तोशक के सहारे उठंगे थे। विपिन चुप खड़ा था। कनिया बन्दूक हाथ में लिये बखरी में जा रही थीं।

"अरे आप यहाँ खड़े हैं ?" जग्गन मिसिर हड़बड़ाकर बोले—"करैता की नाक कट जाएगी विपिन बाबू। जाने कितनी लाशें गिर जायेंगी आज। यह बड़ा भयानक सैलाब है भइया, इसे रोको। तुम्हीं रोक सकते हो इसे। तुम्हारी बात सभी मान लेंगे। जल्दी करो।"

कनिया के पैर रुक गए।

"विपिन नहीं जायेंगे कहीं। उन्होंने मुड़कर कहा और बखरी में चली गयीं। जग्गन मिसिर को अचानक खलोल मियाँ की सफ़ेद मुर्गी याद आ गयी। वह अपने चूजों को घेरकर घात लगाकर पैंतरा बदलते कुत्ते या बिल्ली की ओर मुँह करके बड़े विश्वास के साथ ऐसे ही घूरती रहती थी।

जग्गन मिसिर एक लमहे के लिए चुप खड़े कुछ सोचते रहे। वे जानते हैं कि अब कुछ न होगा। कनिया के फैसले को टालने की ताक़त विपिन में नहीं है। जग्गन मिसिर को हल्का सा धक्का लगा।

"किस्मत ही रूठी है, इस गाँव की।" वे भुनभुनाये—"जब बहूरानी अपना-पराया देखने लगीं, तो भगवान् ही मालिक है, इस गाँव का।" वे धीरे से मुड़े और गली में खो गए।

●

जग्गन मिसिर को वहाँ पहुँचने में देर हो चुकी थी। सुरजू सिंह के बइठके के सामने गली के नुक्कड़ पर दोनों दल भिड़े हुए थे। सिरिया तो चाहता था कि आगे बढ़कर जुलूस को कुचल दिया जाए। मगर एक जानकार ने सुझाया कि दरवाज़े पर आ जाने दो। मुक़दमे के लिए यह अच्छा रहेगा। चमारों का जुलूस सुगनी को आगे लिये हुए जब गली के मोड़ पर आया तो ठकुराने के लठैत बिना कुछ कहे-सुने उन पर टूट पड़े।

"अरे बाबू फेंकू सिंह।" जग्गन मिसिर चिल्लाए—"पागल हो गए हो क्या भइया।" जग्गन मिसिर की आवाज़ किसी के कानों तक नहीं पहुँच रही थी। एक तरफ़ चीख मचाती चमारिनें और उनके छोटे-छोटे लड़के-लडकियाँ थीं, तो दूसरी ओर अपने स्वजनों की खैर-कुशल मनाती ठकुराने की माताएँ-बहिनें। सबके चेहरों पर घबड़ाहट फैली हुई थी।

देवल की माँ इस तरह बिना घूंघट के शायद पहली बार गली में निकली थीं। पसीने से सने उनके होंठ थरथरा रहे थे।

"हे काली माई, हे ईश्वर, रच्छा करो परमात्मा।" औरतें जैसे पागल होकर अपने ही बालों को नोच रही थीं।

"अरे कोई रोको, अरे कोई बचाओ।" बूढ़ी औरतों की हकलाती आवाज़ों के गुब्बार में लिपटा जैसे पूरा माहौल किसी अनजाने कांड के जन्म देने के लिए प्रसव-पीड़ा से छटपटा रहा था।

जग्गन मिसिर धोती का खूँट कमर में खोंसते हुए इस छोर से उस छोर की बेताबी से परिक्रमा किये जा रहे थे। उन्हें बड़ा बुरा लगा कि वे लाठी लेकर नहीं आए। इन जानवरों के झुंड में निहत्थे घुसना कितना मुश्किल है।

"फेरू सिंह ! सिरिया !! अरे रमकिसुना !!! अरे भागो साले !!!!" जग्गन मिसिर के चीत्कारों के बीच लाठियों की तड़तड़ाहट बढ़ती जा रही थी।

सिरिया सरूप भगत के ठीक पास पहुँच गया था।

"हम तुम्हीं को ढूंढ़ रहे थे साले।" वह मुँह से गाज उगलता बड़बड़ाया, "जे बा से सारी खुराफात की जड़ तुम्हीं हो। तुम साले कमनिस्ट बनते हो।" सरूप भगत हाथ में एक छोटा सा डंडा लिये लड़ाई करनेवालों से थोड़ा दूर खड़े थे। सिरिया को अपनी ओर झपटते उन्होंने देखा था। वे फुर्ती से कूदकर अपनी जगह से हटना ही चाहते थे कि एक भारी लोहे की तरह ठोस चीज उनके सिर से टकरायी। वे एक क्षण के लिए हक्का-बक्का ताकते रहे। सामने के दृश्य धुएँ के बादलों में लिपट गए। धरती झूले की तरह डोली। अंधकार का एक सैलाब उमड़ा और वे उसी में डूब गए।

"हो गया खून।" जग्गन मिसिर की आवाज़ एक भयानक दर्द और दहशत के साथ छटपटायी। उसमें एक भयावना कम्प और चीत्कार था। हठात् लाठियाँ रुक गयीं। बहुत से लोग इधर-उधर भाग खड़े हुए।

"कौन गिरा ?" अपरिचय के जंगल में किसी बेतहाशा दौड़ते आदमी ने पूछा।

"देवीचक का सरूप।" एक हकलाती आवाज़ उभरी और काँपकर गले में ही घुट गयी।

"आह रे मइया ! अरे मोरे बप्पा !!!" चीखती-चिल्लाती चमारिनें सरूप को घेरकर खड़ी हो गयीं। तीन-चार जन और गिरे थे। किसी का हाथ टूटा था, किसी का पैर। मगर सभी बोल रहे थे। कराह रहे थे। छटपटा रहे थे।

बिल्कुल मौन, अबोला, अचेत सिर्फ़ एक ही व्यक्ति था, जिसको घेर-कर खड़े सभी लोग नाना प्रकार की आवाज़ों के कफन में उसे लपेट रहे थे। जग्गन मिसिर घुटना मोड़े उस लाश के पास बैठे थे। उन्होंने नाड़ी देखी, साँस टटोली, आँखें खोलकर उनमें झाँकने की कोशिश की। फिर लम्बी साँस छोड़ते खड़े हो गए। उनकी आँखें भर आयीं और आँसू के कतरे सरूप के गालों पर लुढ़क गए।

तभी चीखती-चिल्लाती दुलारी आयी और भीड़ को चीरती हुई सरूप के मृत शरीर पर धाड़ मारकर गिर पड़ी।

"बाबू ! बाबू !! कहाँ चले गए बाबू ! !"

नारी-कंठ की दर्दनाक रुलाई में सभी आवाज़ें डूब गयीं और एक मुर्दा खामोशी सबको घेरकर छा गयी।

●

शाम हो गयी। बैशाख के शुरू हफ़्ते की शाम बियाबान खेतों पर, कटे हुए पौधों की सफ़ेद खुत्थियों पर, मटमैली बंसवारियों पर, सीवान के हाशिए पर, टँकी कँटीली झाड़ियों पर एक अजीब तरह की उदासी में डूबी-डूबी फैल गयी। सारा गाँव सहमा-सहमा सा अचेत था। दक्खिन-पट्टी से उत्तर-पट्टी को जानेवाली गली से निकलिए, तो बैलों की टुनटुनाती घंटियों के

अलावा कहीं कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता। वैसे लोगों के दरवाज़ों पर, बइठकों में इक्के-दुक्के लोग बैठे हुए जरूर मिल जायेंगे, मगर कोई किसी से कुछ बात नहीं कर रहा है। कभी-कभी सिर्फ़ फुसफुसाहटें उभरती हैं, वे भी किसी आगत भय की आशंका से गले में ही घुटककर रह जाती हैं।

मैं बार-बार सोचता हूँ कि कहीं झगड़े के बीच मौत न हुई होती, तो तब भी लोग क्या ऐसे ही चुप रहते। अलग-अलग दरवाज़ों पर बैठकर गप्प करनेवाली मजलिसों में शायद ही कभी किसी बात पर मतैक्य होता हो। इसलिए नहीं कि वे सचमुच अलग-अलग धारणाएँ रखते हैं; बल्कि इसलिए कि मतैक्य का अर्थ चुप्पी है, बहस का अन्त, जो उन्हें पसन्द नहीं। ऐसा हुआ तो फिर शाम 'मनसायन' कैसे होगी। पर आज सभी उदास शाम को ही छाती से चिपकाये खामोश हैं। मौत का एक रहस्यभरा आतंक सभी तरह के संचार-साधनों को तोड़कर सबके ऊपर छा गया है। मौत पर किसी का मतभेद नहीं। आज जैसे करैता शान्ति पर्व में डूबा हुआ था।

●

सुरजू सिंह का बइठका एकदम अन्धकार में लिपटा है। इस बइठके के ठीक पिछवाड़े दोनों दलों का संग्राम हुआ था। वह पूरा युद्ध-क्षेत्र अँधेरे में खो गया है; पर अब भी वहाँ जैसे कोई जीवित सत्ता है, जो रह-रहकर साँस लेती है, और अचानक हवा साँय-साँय की आवाज़ करती सामने की बँसबारियों से टकराने लगती है। चमरौटी से गाँव आनेवाला छवरा एकदम सुनसान है। इस रास्ते पर पाँव रखने की आज किसी में हिम्मत नहीं।

सुरजू सिंह के बरामदे में दो आकृतियाँ हिलती हैं।

"मेरा क्या होगा, सुरजू भइया ?" एक आकृति फुसफुसाती है—"जे बा से कोई रास्ता नहीं सूझता। सगरो गाँव जानता है कि सरूपवा मेरी लाठी से मरा।"

"घबराव मत।" सुरजू सिंह समझाते हैं। आगे की बातें उनके गले में हकलाकर रह जाती हैं।

●

झिनकू के खंडहर में, चबूतरे के पास, नीम के नीचे अनेक जन मन मारे, सर को हाथों के गेंडुर में लपेटे मौन बैठे हैं। सामने बीचो-बीच चबूतरे पर सरूप की लाश रखी है। एक गेरुवे रंग की चादर, जो सतगुरु की गादी में सिंहासन पर बिछायी जाती थी, सरूप के शव पर डाल दी गयी है। पूरा वातावरण बिल्कुल शान्त और संजीदा है। हवा के झोंके के साथ नीम की डालियाँ खरखराती हैं और पकी हुई निबौरियाँ डालों से छूटकर ज़मीन पर बिखर जाती हैं। तभी एक हुटकती हुई, दर्द भरी आवाज़ उभरती है।

दुलारी को झिनकू बो अँकवार में भरकर बैठी है। वह पीड़ा से टूटते उसके बदन को सहलाती है। दुलारी यों ही रो रही है। रोने का यह काम अनजाने हो रहा है, क्योंकि उसकी सारी चेतना ग्लानि की लहरों से जूझने में लगी हुई है। दुलारी को लगता है कि 'बाबू' की हत्या के लिए वही जिम्मेदार है। यदि हल्की सी चुहल के बस में होकर वह सुगनी के मामले में न पड़ती, तो यह दिन काहे को देखना पड़ता। घुरबिनवा ने सुगनी का सारा भेद सिर्फ़ उसी को बताया था। उसी ने उस छोरे को दरवाज़े की कुंडी बन्द करने के लिए उकसाया था। उसी ने धनेसरी बुढ़िया का कान भरा था। बाद में जो कुछ हुआ, उसके लिए ज़िम्मेदार कौन है ? प्रश्नों के ये काँटे अचानक दुलारी के गले में अटक जाते हैं। उसे लगता है कि मुँह से लेकर कलेजे तक काँटों की चुभन भरी हुई है। वह इस अबूझ पीड़ा को सहने में असफल होकर चीख उठती है।

"हाय रे बप्पा, बाबू हो बाबू !!!

●

बगल में झिनकू बैठा है। वह सरूप भगत की लाश को एकटक देखता है। अभी भगत बोलते-बतियाते थे। हँसते-गाते थे। आज सो गए। पिछले कई बरसों से सरूप भगत झिनकू की आत्मा में बस गए थे। झिनकू चाहे कितना भी परेशान हो, कितना भी दुखी हो, सरूप की याद आते ही मन में एक नया उत्साह आ जाता था। कितने गंभीर थे भगत। एक लम्बा-चौड़ा ताल होता है। ऊँचे-ऊँचे भीटों से घिरा। ठहरे-बँधे पानी का भारी अथाह ताल। इसमें कोई कंकड़ फेंके या ईंट-पत्थर। ताल में कोई फरक नहीं आता। ऐसे थे हमारे सरूप भगत।

न किसी से बोलना न चालना। न किसी से 'मैं-मैं' न किसी से 'तू-तू'। एकदम छुट्टा। अपने मन के मालिक। न गाँव का मोह, न झोपड़ी की माया। जहाँ रात तहाँ विहान। रमता जोगी थे। बहते पानी की नाईं निरमल। गाँव में रहो तो भोगो, गाँव छोड़कर जाओ तो भोगो। कहीं भी गुज़र नहीं!

"दुनिया भले लोगों को सह नहीं पाती।" झिनकू बड़बड़ाया—"क्या किया था बिचारे भगत ने। ऊ तो झगड़े-फसाद के खिलाफ थे। भरी सभा में कह दिया कि लड़ाई बाहर की नहीं, भीतर की है। ऊ किसी से डरने वाले भी नहीं थे। जब बटोर ने फ़ैसला कर दिया तो कर दिया। अब उसमें छेड़-भेड़ नहीं। इसीलिए डंडा लेकर चले आये सबके साथ। ऊ लड़ाई की मुहिम पर भी नहीं थे। लमहर खड़े देख रहे थे सब कुछ।

"ऐसे आदमी की भी जब यह गत हो गई तो दुनिया में क्या है? कहाँ है धरम? कहाँ है नियाव? दुनियादारी के चक्कर में फँसो तो मुश्किल, लमहर खड़े रहो, अलग होकर, तो मुश्किल।"

● ●

चौंतीस

मौत, कारण और न्याय। इन शब्दों के असली अर्थ में शायद ही किसी को सन्देह हो। पर दूसरे दिन सुबह जब सैयदराजे का थानेदार चार सिपाहियों के साथ करैता पहुँचा तो सभी को लगा कि न तो वे मौत के बारे में कुछ जानते हैं और न तो उसके कारण के। फिर न्याय? उसका सबके मन में एक ही अर्थ उठता है कि बेमतलब कौन बखेड़े में पड़े। न्याय तो बस अंधी सुरंग है। इसमें कोई किसी भी मंशा से घुसे, बाहर आने का रास्ता नहीं मिलता। करैता गाँव में दो दलों में झगड़ा हुआ है। इसे सभी जानते हैं। लाठियाँ चलीं। यह भी सबको मालूम है। एक व्यक्ति की जान गयी। यह भी किसी से छिपा नहीं है। पर थानेदार के आने की खबर लगते ही सारा गाँव क़रीब-क़रीब खाली हो गया। घरों में औरतें और बच्चे बच गए। दरवाज़ों पर अपाहिज और बूढ़े। जिसको जहाँ ठौर-ठिकाना मिला, वहीं का हो रहा। ऐसे लोग सिर्फ़ गिनती के ही बच गए जिनके बारे में सभी लोग जानते थे कि झगड़े की जगह से काफ़ी दूर थे। छावनी में विपिन और बुझारथ दोनों मौजूद थे। गाँव के

चौकीदार को यह मालूम था। उसने दरोगा जी से यह कहा भी होगा। पर दूध का जला मट्ठा भी फूंक-फूंककर पीता है। थानेदार ने इस बार प्रायमरी स्कूल पर डेरा डाला।

स्कूल सबका है और किसी का नहीं। इसलिए थानेदार को ऊँच-नीच का ख्याल करने के लिए कोई बन्धन न था। चमारों ने रपट लिखायी थी। रामकिसुन की दोनों बाहों, सिर पर पट्टियाँ बँधी थीं। वह अपने दल के निर्दोष होने के प्रमाण के रूप में हाथ जोड़े थानेदार के सामने खड़ा था।

"तो सरूप सीरी सिंह की लाठी की चोट से मरा ?" थानेदार ने किसुन की ओर देखकर दहाड़ ली—"कहाँ है वह मादर....? झम्मन सिंह, दो-एक कांस्टिबुल साथ लेकर जाओ और जो स्साले मिलें सबको हाँक लाओ। ऐसा हरामी गाँव पूरे हल्के में खोजे नहीं मिलेगा।" झम्मन सिंह सिपाही लोहबन्ना सँभालकर आगे बढ़ा तो दरोगा फिर उबला—"और सुनो, जग्गन मिसिर और हरखू सिंह को भी हाज़िर करो।"

"जी हुज़ूर।"

●

करीब दस बजे तक स्कूल पर खासी भीड़ लग गयी। गलगलाती हुई चमारिनें, घायल बदन पर पट्टी लपेटे नवयुवक, सारे तमाशे को सहमे-सहमे देखते स्कूली बच्चे, लड़कों को छुट्टी देकर थानेदार की खातिर-तवज्ज़ह में लीन मुंशी जवाहिरलाल, स्कूल के ओटों से पीठ टिकाये, खाकी पोशाक पहने, ऐंठकर बैठे हुए बाकी सिपाही और थानेदार के सामने पेड़ की जड़ में बैठे गाँव के लोग, जिन्हें झम्मन सिंह 'हाँक' कर ले आया था।

"सरकार, आपको मुझ पर यक़ीन नहीं रहा ?" काँपती आवाज में हरखू सरदार बोले—"मैं तो ग़रीब-परवर तीन रोज से बुखार में गिरा हूँ। अभी तक मुंह में एक दाना भी नहीं गया। चलने पर आगे अँधियारा

छा जाता है। दीवान जी गये तो मैंने कहा कि हज़ूर का हुकुम सर माथे। चलने में क्या उजुर। बाक़ी हम क्या सेवा कर पायेंगे। गवाही-शहादत तो वे करें जिसने वह सब देखा हो।" हरखू सरदार को जोर से खाँसी आयी, गला खरखराया, जैसे साँसें सूखे हुए बलगम को खँराचने की बेइन्तहा कोशिश कर रही हों। अचानक उनका शरीर पस्त हो गया। उन्होंने हाथों को समेटकर खोल के भीतर कर लिया।

थानेदार ने उनकी ओर घृणा से देखा—"अच्छा-अच्छा, चलो, यहाँ से। ऐन मौके पर तुम्हें जूड़ी आ गयी। मैं तुम्हारी नस-नस पहचानता हूँ ! जाकर कह देना सुरजू सिंह के घर कि यदि जल्दी से जल्दी हाजिर न हुए तो सारी जायदाद नीलाम हो जायेगी। समझे और उस सिरिया के घर भी।"

"अच्छा हुज़ूर !" हरखू सरदार ने बड़े उत्साह से दोनों हाथ जोड़कर थानेदार को सलाम किया। खोल ओढ़ी। काँपते पैरों धीरे-धीरे घर की ओर चल पड़े।

●

"का हो हरखू !" गली के मोड़ पर बंशी सिंह ने टोका—"स्कूल पर से आ रहे हो का ?"

हरखू सरदार ने खोल को उतारकर चौपत लिया। उसे कंधे पर रखते हुए हँसे—"अरे राम भजो बंसू भइया, सस्ते छूटे। पुलुस वाले एक नमकहराम होते हैं साले। पिछली दफ़ा आया था तो मैंने कितनी आव-भगत की थी। साले को अब कुछ भी याद नहीं। कहने लगा कि तुम सुरजूसिंह का पता बताओ। सरूपवा किसकी लाठी से मरा ? महाबीर सामी कसम, मैं क्या जासूसी करता फिरता हूँ।....होंगे कहीं चूल्हे भाड़ में सुरजू। हमें क्या मालूम ? सारी दुनिया जानती है कि सुरजू आधी रात को ही अपने ननिहाल खिद्दिरपुर चले गए। अब साला हमसे कबूल-

वाता है। हम काहे को नाहक बद्दू बनें। हम तो ऐसे ही झगड़ा-झंझट से दूर रहते हैं।"

बंशी सिंह विश्वास-अविश्वास की मिली-जुली हँसी में झूमते हुए से बोले—"बाकी एक बात तो है हरखू कि तुमने काम बड़ा जोरदार किया। बुझारथ और सुरजू में मेल कराना कोई खेल नहीं है। हम तो दोनों खानदानों को खूब नज़दीक से जानते हैं। जो काम जैपाल भाई नहीं कर सके, ऊ काम तुमने कर दिया।"

"अब मारो गोली।" हरखू सरदार मारे कृतज्ञता के पानी-पानी हो गए। वे उचककर दालान के भीतर आ गए और खटिया पर बैठते हुए बोले—"काम तो किया वंसू भाई, मगर उस कनियवा के सामने एक न चली। पूरी काइयाँ है वह औरत। सुना बुझारथ के हाथ से बन्दूक छीन ली। ऐसी डाँट पिलाई कि बच्चा की सिट्टी-पिट्टी गुम। महाबीर सामी कसम अगर बुझारथ आ गए होते बन्दूक लेकर, तो आज मामले का रंग दूसरा होता। है कि नहीं?"

"होता तो।" बंशी सिंह हरखू सरदार की ओर से तटस्थ होते हुए बोले—"अपना नफा-नुक़सान सभी देखते हैं। कनिया को तुम समझते क्या हो? जैपाल भाई तक उसकी राय के बिना एक काम नहीं करते थे। बन्दूक लेकर आ जाते बुझारथ तो होता क्या? आज ऊ भी फँसते, यही न? इस गाँव की तो यही मंशा है कि दो आदमियों को लड़ाकर लोग तमाशा देखें। कैसा कहा तुमने कि सुरजू जायँ चूल्हे भाड़ में। ऐसे तो कान में मुँह सटाकर, फुसफुसाने वाले बहुत थे; पर मौक़ा पड़ने पर आज कोई साथ देनेवाला नहीं रहा।"

हरखू सरदार आश्चर्य से बंशी सिंह की ओर ताकते रह गए। आज तक उन्हें इस तरह बेमुरव्वत बात करते हरखू ने देखा न था। उनकी एक-एक बात जैसे हरखू सरदार को ही लक्ष्य करके कही गयी थी। हरखू एक एक क्षण गुस्से से उबलते चुप रहे। फिर उनकी बातों को आयी-गयी

करने के लिए कृत्रिम ढंग से मुस्कराते हुए बोले—"वाह बंशू भाई, तुम्हारी सीनियरी अभी भी नहीं गयी। तुम तो भइया यों कह रहे जैसे मैं नारद होऊँ और सारी दुनिया में झगड़ा लगाकर तमाशा देखता होऊँ।"

"अब साँच को आँच क्या?" बंशी सिंह हरखू सरदार के 'सत्संग' से ऊब चुके हों जैसे—"मैंने जो देखा, वह कह दिया।"

"अरे आए बड़े सत्तवादी हरिश्चन्दर। हुँह।" हरखू सरदार ने खोल झटकी और होठों को विदोरकर बोले—"अरे अपनी पतोहू को काहे नहीं सत्त का रास्ता दिखा दिया। उधर लड़का मरा, उधर वह भाई के साथ पटना भाग गयी। महाबीर सामी कसम कोई अपना ढेंढ़र नहीं देखता, दूसरे की फुल्ली सब देखते हैं। जैसे कोई जानता ही नहीं कि झब्बू उपधिया के लड़के और तुम्हारी पतोहू में क्या लसड़-फसड़ चलता था। हुँह।"

बंशी सिंह को लगा कि अचानक जैसे बाहर का चबूतरा लपटों से भर गया है। पूरा दालान तूफ़ानी दरिया में पड़ी नाव की तरह डगमगा रहा है। एक खालीपन उनकी जीभ पर इस तरह बैठ गया है कि भीतर के तमाम दबावों के बावजूद ज़बान हिल नहीं रही है। वे फटी-फटी आँखों हरखू को देख रहे थे। हरखू चौपती खोल में गुस्से से काँपते हाथ को घुसेड़कर जलती आँखों में पूरे दालान को राख बनाने का मन्सूबा लिये वहाँ से चलते बने।

●

गली में अचानक कंकड़ बढ़ गये थे। हरखू सरदार का जूता रपट-रपट जाता।

'थूह'! वे सोचते रहे—अब किसी साले के पास नहीं बैठेंगे। जिसके पास बैठो, वही गला नापने की तैयारी करने लगता है। छावनी में बैठते थे। जैपाल सिंह समझते थे कि मैं उनका नौकर हूँ। हरखू आज बाजार चले जाओ। आज ई घट गया। कल ऊ घट गया। चले जाते थे भाई।

आखिर को जैपाल उमर में बड़े थे। मानते भी थे। खिलाना-पिलाना। स्वागत-सत्कार। सभी था। काम पड़ने पर दो मन अनाज और दस रुपए भी मिल जाते थे। झूठ क्यों बोलूँ। महाबीर सामी कसम हरखू ने नमक-हरामी तो सीखी ही नहीं। मालकिन खुद अपने हाथ से 'खरमेटाव' दे जाती थीं। जैपाल मरे तो बुझारथ भी नेम निबाहता रहा। मगर ऊ कनियवा समझती थी कि बुझारथ को मैं मटियामेट कर रहा हूँ। अरे मैं काहे को किसी को बनाऊँ-बिगाड़ूँ। मैं क्या कहता था कि स्साले तुम गाँजा पीओ। गाँजे का तो वहाँ पहले से ही परवेश था। हाँ, ई बात है कि हमको भी चिलम मिल जाती थी तो नाहीं नहीं करते थे। उसी खातिर तो छावनी की इज्जत बढ़ाने के लिए तीन-पाँच करते रहते थे। तुम ससुरी क्या समझोगे हरखू को। 'दरबारदारी' भी इलम है। बैल की पूँछ मरोड़ने से ऊ विद्या नहीं आती। जैपाल भाई जानते थे उसका मोल। बारहों गाँवों के चमारों की बड़की बटोर का मोर्चा किसने सँभाला था? बचऊ-राम की सिट्टी-पिट्टी किसने गुम की? बुझारथ के लिए तो बस खुदाबक्स ही बीरबल था। साला मियाँ-मुकरी, देखकर जलता था मुझको। दरोगवा के बुलाने पर उस कुतिया ने मुझे फटकारा न होता, तो काहे को जाते हम सुरजू के पास। सुरजू को भी मैंने कितना सँभाला। एकदम लौंडे-लफाड़ियों से घिर गया था बेचारा। बड़का बनना सभी चाहते हैं, बाकी बड़का कोई अपने से नहीं बनता। सत्संग से बनता है। कैसा लगे थे रोने उस दिन। 'कच्च' से गोड़ पकड़ लिया। दादा अब तुम्हीं सँभालो।

अब ई बंसुआ कहता है कि मैंने लड़ाया। अरे साले मैं क्यों लड़ाऊँ किसी को। महाबीर सामी जानते हैं। कहने से क्या फ़ायदा। मैंने कहा था कि ससुर चमटोल में जाकर रंडीबाज़ी करो। बिला गए ससुर तो अपनी बदफेली से। हर चीज़ को करने का सलीका होता है। काहे नहीं कोई पकड़ लेता बुझारथ को। या किसी और को, हाँ?

गया चूल्हे भाड़ में तो मैं का करूँ। आधीरात को आया था मेरे घर। कहने लगा हरखू दादा अब तो हमारा गाँव छूटा। हम तो जा रहे हैं

ननिहाल। जरा घर-बार देखना। और दरोगा से मिल-जुलकर मामला रफा-दफा कराने की कोशिश करना। हमको सिखाते हो बेटा। खून के मामले में हरखू फँसे। अरे जाओ-जाओ। ऐसी कच्ची गोली नहीं खेली हमने।

देखा, कैसा फाँसा दिया दरोगवा को। बुझारथ और सुरजू के बाद इस गाँव में एक ही आदमी थे बंशी सिंह। सोचा अब शाम वहीं कटा करेगी। बाकी वाह रे वाह! पहले चुम्मा गाल कटउवल। लगे उपदेश देने। जनम दरिद्री ससुर इहाँ से! बड़कवा बनते हैं। नहीं जाते हम साले किसी के दरवाजे पेशाब करने।

बखरी के निकसार में पैर धरते ही हरखू को लगा कि उनका माथा तड़क रहा है। एकाएक बदन में कँपकपी जैसी होने लगी। वे धम्म से मचिया पर बैठ गए।

"आ गए कचहरी से?" आँगन में बरतन-बासन बटोरती उनकी घरवाली ने टोका—"अब तो उतारकर धर दो ई खोल-दोहर। नहीं देखनेवाले सोचेंगे कि साचों तोंहे तीन महीना से तिजरिया बोखार पकड़े है। कोई नया जजमान मिला कि नहीं अभी? अब तो सुरजू भी गये, आयँ?"

"तू साली चमरपिल्ली हमेशा बेबात की बात बोलती है। हम का कोई भिखमंगा हैं कि जजमानी खोजते हैं? देख लेना, अब कभी नहीं जाऊँगा किसी साले के दरवाजे पेशाब करने। मेरे लिए गाँव में आना-जाना बन्द।"

हरखू सरदार की घरवाली अचंभे से उनकी ओर देखती रह गयी।

●

थानेदार शायद जग्गन मिसिर के नाम का अर्थ भूल गया था। पर उसकी उपलब्धि कहीं न कहीं उसकी आत्मा में एक लकीर ज़रूर बना गयी थी। इसी कारण सहसा उन्हें सामने देखकर वह एक क्षण भौंचक ताकता रह गया।

"आपने मुझे बुलवाया है ?" जग्गन मिसिर ठीक उसके पास जाकर बोले।

"हाँ, हाँ, कहो पंडित, क्या हाल-चाल है ?"

"सब कृपा है।"

"बैठो भाई, बैठ जाओ।" थानेदार ने कुछ इस आत्मीयता से बात की कि मुंशी जवाहिरलाल कुर्सी से उठकर खड़े हो गए।

"आइए आइए मिसिर जी।" उन्होंने थानेदार से भी अधिक आत्मीयता के साथ जग्गन मिसिर को बुलाकर कुर्सी पर बिठलाया।

थानेदार दूसरी कुर्सी पर बैठे ग्राम सभापति श्री सुखदेव से बात कर रहा था।

"कहो पंडित।" उसने शायद जग्गन मिसिर को सुखदेव की ओर रहस्यपूर्ण ढंग से ताकते देख लिया था। "अभी मैं सुखदेवराम जी से इसी मामले पर बात कर रहा था। यह आपके गाँव के लिए कितने शर्म की बात है कि एक बदफ़ेली के वाक़ये को लेकर इतना बड़ा हंगामा उठ गया। दोनों ओर से गोल बाँधकर झगड़ा हुआ और क़तल हो गया। अपने हल्के में मैं करैता गाँव को बहुत शरीफ़ और बड़े लोगों की बस्ती समझता था। मगर इस वाक़ये ने तो नाक काटकर रख दी। सुना छावनीवाले भी सुरजू सिंह के साथ हो गए थे ?"

"साथ होना चाहते थे, मगर हुए नहीं।" जग्गन मिसिर धीरे-धीरे बोले—"बात ई है दरोगा जी कि जब मामला आदमी-आदमी के बीच से उठकर क़ौम से जुड़ जाता है तो ऐसा ही होता है। एक आदमी ग़लती करता, उसको सज़ा देने के लिए जब एक क़ौम उठती है, तो दूसरी क़ौम उसे अपनी इज्ज़त पर खतरा मानकर उसका जवाब देने चलती है, बस, कहाँ की बात कहाँ पहुँच जाती है। क़ौमी जोश और उमंग में लोग यह भी भूल जाते हैं कि ग़लती किसकी थी और नियाव क्या हो।"

"मतलब ?"

"मतलब यह कि एक आदमी ने बुरा काम किया। अब उस बुरे काम के लिए उसको दंड मिलना चाहिए। मगर दण्ड कौन दे ? सरकार दे। ग्राम-पंचायत दे। यह तो हुआ नहीं। चमारों ने बटोर करके एकतरफ़ा फ़ैसला कर दिया कि सुगनी को सुरजू सिंह के घर बैठा आयेंगे। यह फ़ैसला बुरा नहीं था। सुरजू सिंह ने जो कुछ किया, उसका यही सही नतीजा होना चाहिए। बाकी फ़ैसला करना एक बात है। उसको मनवाने के लिए गोल बाँधकर चल पड़ना एक बात है। ऐसा मत समझियेगा कि मैं सुरजू सिंह की तरफ़दारी कर रहा हूँ। मैं इस बात पर खूब सोचता-गुनता रहा हूँ। तब कह रहा हूँ कि चमारों का फ़ैसला ठीक था। उसको मनवाने का ढंग गलत था। ठाकुरों ने सोचा कि एक भाई को बेइज्ज़त किया जा रहा है। बस दोनों ओर से गोल-बन्दी हुई। दोनों दल भिड़ गए। बीच में मारा गया बेचारा सरूप, जो चमारों के फ़ैसले के बिल्कुल खिलाफ था। वह हीरा आदमी था सरकार हीरा। बाक़ी अब क़िस्मत के आगे किसकी चलती है। खा गया गच्चा।"

"तो आपका मतलब है कि लड़ाई की पहल चमारों ने की थी ?"

"सुगनी को लेकर सुरजू सिंह की बखरी की ओर चमार लोग ही आये थे। क्यों जी रामकिसुन, है कि नहीं ?"

"ई तो बारहों गाँव के चौधुरियों का फ़ैसला था।"

"जो रहा हो। जब चमार लोग गली की मोड़ तक आ गए, सुरजू की बखरी के ठीक सामने, तो सुरजू सिंह और उनकी गोल उन पर टूट पड़े।"

"और आप कहते हैं कि उस गोल में छावनी के लोग नहीं थे ?"

"बिल्कुल नहीं थे। बुझारथ सिंह आनेवाले थे। मगर आ नहीं सके। उनकी औरत ने उनको रोक लिया।"

"मगर सुखदेवराम कह रहे हैं कि बुझारथ सिंह ने बन्दूक से फायर किया था।"

"हाँ किया था, अपने चबूतरे पर बैठकर। शायद बन्दूक जाँच रहे

थे। मगर जब चलने को हुए तो उनकी औरत ने बन्दूक पकड़ ली, और उनको आने नहीं दिया।"

"आपको ये सब कैसे मालूम ?" थानेदार ने किंचित् गुस्से से पूछा।

"मैं वहाँ मौजूद था। मैं विपिन बाबू को बुलाने गया था कि मिल-जुलकर झगड़ा शांत करा दिया जाए। वहीं मैंने बहूरानी को देखा कि वे हाथ में बन्दूक लिये बखरी में जा रही थीं। मैंने विपिन बाबू को कहा कि वे चलकर झगड़ा बचायें तो बहूरानी ने खर्रा जवाब दे दिया कि विपिन नहीं जायेंगे।"

सुखदेवराम ज़मीन की ओर देखने लगे। फिर कुछ देर बाद चेहरे पर उदारता और सदाशयता का रोग़न चढ़ाते हुए बोले—"मैं तो समझता था मिसिर जी कि आप ग़रीबों के तरफ़दार हैं। और रहा भी अब तक का आपका इतिहास ऐसा ही। आप हमेशा जुलुम-अत्याचार के खिलाफ लड़ते रहे। जब ज़मींदारी का बोलबाला था तब भी आप छावनी पर कभी कोर्निश बजाने नहीं गये। हमेशा गरीबों की ओर से आप ज़ालिमों से लोहा लेते रहे। अब आप अचानक ग़रीबों का साथ क्यों छोड़ रहे हैं ? कुछ समझ में नहीं आता।" सुखदेवराम जी के चेहरे पर संदेह परेशानी विराजमान हो गयी थी। वे रह-रहकर गर्दन झटकते और आश्चर्य से आँखें मुलमुलाते।

जग्गन मिसिर हल्के मुस्कराये—"बात ई है सुखदेवराम जी कि मैं अदना आदमी हूँ। अपनी बिसात जानता हूँ। इसीलिए बड़ी-बड़ी बात भी नहीं करता। मैं खुद ग़रीब आदमी हूँ। इसीलिए यह कहना कि मैं ग़रीबों के खिलाफ़ हूँ, बेमतलब बात है। मैं अपने को, अपनी आत्मा को नहीं छोड़ सकता। फिर ग़रीबों को कैसे छोड़ सकता हूँ ? पैसे वाले, जोर वाले, कोशिश-पैरवी करनेवाले लोग ग़रीबों को सताते हैं, मुझे भी सताते हैं। मैं भरसक हार नहीं मानता। अपने हक़ के लिए अन्तिम दम तक लड़ता रहता हूँ। ज़मींदारी थी तब भी लड़ता था। अब भी लड़ता हूँ। पहले गाँव में जुलुम ज़मीदार के लोग करते थे। कारिंदा, सीरवाह, पट-

वारी, अमीन, क़ानूनगो सबकी मिली भगत थी। उस वक़्त जो कुछ मुझसे बना, किया। ज़मींदारी टूट गयी। उस समय जिन पर जुलुम होता था, वे उससे बरी हो गए। अचंभा ई देखकर होता है सुखदेवराम जी कि जिन पर उस वक़्त जुलम होता था, वे ही आज ज़ालिम बन गए हैं। छुट-भइये लोग दो पैसे के आदमी हो गए, तो आँख उलट गयी। आज जुल्म कौन करता है गाँवों में ? वही छुटभइये जो पहले ज़मींदारी के बूटों से रौंदे जा रहे थे। अब छुटभइये गोल बनाकर अपने से कमज़ोरों, ग़रीबों को सताते हैं। लूटते हैं। आप ही बताइए न, खलील मियाँ की जमीन किसने छीनी। ज़मीदार ने ? धनेसरी का खस्सी कौन खा गया, ज़मींदार ? झनकू चमार को गाँव-निकाला किसने दिया ? ज़मींदार ने ? गाँव की बहू-बेटियों को भद्दी-भद्दी बातें ज़मींदार कह रहा है ? बेचारे शशिकान्त मास्टर की आँख में बालू डालकर उनका रुपया ज़मींदार ने छीना ? लोगों की खड़ी फसल चोरी से ज़मींदार काटता है ? बोलिए, यह सब कौन करता है ? वही छुटभइये, जो कभी ग़रीब थे सताये हुए थे। और आज चूँकि उनके ऊपर कोई अंकुश नहीं है, इसलिए वे जो भी करें, कोई पूछनेवाला नहीं है। ज़मींदार था तो एक खोल थी। जो कुछ होता था, उसकी खोल के साथ नत्थी कर दिया जाता था। इसलिए उस वख़्त में लड़ाई बड़ी साफ़ थी। अब किससे लड़ें। अपने ही भीतर के लोग खोल ओढ़कर डाकू, लुटेरे और ज़ालिम बन बैठे हैं।"

एक साँस में इतनी सारी बातें कहकर जग्गन मिसिर चुप हो गये। वे खुद लजा गए थे कि आज अचानक इतने तैश में कैसे आ गए। यदि सुखदेवराम ने छेड़ा न होता तो छाती में भरा हुआ ग़ुबार शायद ही कभी बाहर आता।

थानेदार चुप सभी बातें सुन रहा था। उसे खुद बेहद अचंभा था कि यह उजड्ड देहाती इतने उलझे हुए मामलों को इतने साफ़ ढंग से कैसे देख रहा है। जग्गन मिसिर की बातों का एक प्रभाव था, जो जाने-अन-जाने सबको कहीं न कहीं छू रहा था। इस बात को सुखदेव ताड़ गया।

उसने खोखली हँसी हँसते हुए कहा—"चलिए मिसिर जी आपकी ही बात सही रही। मान लिया कि छुटभइये बड़ा अंधेर कर रहे हैं। मगर चमारों ने तो अन्धेर नहीं किया। ये तो दोहरी मार के शिकार बने। ज़मींदार था तो वह पीटता था, अब छुटभइये हैं तो वे पीटते हैं। फिर आप इन विचारों का साथ क्यों नहीं देते ?"

"देखिए सुखदेवराम जी, आप फिर टाँग ऊपर सिर नीचे करके सब कुछ देखना चाहते हैं। मैं कहाँ कहता हूँ कि चमारों की बेजायें है। मैं उनको दोष कहाँ दे रहा हूँ। मैं भी चाहता हूँ कि जुलुम-अन्याय न हो। मैं भी चाहता हूँ साँच-साँच हो, झूठ-झूठ। दूध अलग, पानी अलग। मैं क्या कहता हूँ कि दूसरे की बहू-बेटी की इज्ज़त पर डाका डालनेवाला बेदाग़ बच जाये ? जहाँ गड़बड़ी हो, वहाँ उसको रोकने का उपाय करना पड़ेगा। मगर ई सब तैश से नहीं होगा। डोमन चमार की लड़की के साथ सुरजू सिंह ने जो किया, उसका बदला लेने के लिए डोमन यदि सुरजू को सोये-सोये गड़ासा से काट देता तो मैं उसको खूब शाबासी देता। दरोगा जी उसको पकड़कर ले जाते। डामल-फाँसी दे डालते, यह अलग बात है। बाकी मैं मन ही मन उसकी तारीफ़ करता।" जग्गन मिसिर थानेदार की ओर कनखी देखकर हँसे—"ऊ तो हुआ नहीं। चमारों ने बटोर करके फ़ैसला दाग दिया। उस छोकड़ी को लेकर चल पड़े सुरजू के घर बैठाने। हो न गया फ़ैसला। एक गरीब निर्दोष की जान गयी। या तो बटोर और पंचायत ही करो। या झगड़ा ही करो। पंचायत से करना था, तो सारे गाँव को बुलाकर चौधरियों का फ़ैसला सुनाते। गाँववालों को जो नीच-ऊँच समझ में आता, करते। वैसे मैं जानता हूँ कि पंचायतें साली बिलकुल गंडगोल करती हैं। वहाँ भी नियाव की आशा करना पत्थर पर माथा पटकना ही है। पर एक रास्ता वह है ज़रूर। दूसरा रास्ता वह है, जो मैंने डोमन के लिए बतलाया। ई बीचवाला रास्ता मेरी समझ में तो भइया आता नहीं। इससे तो साँच भी झूठ हो जाता है। सब कुछ एक में

मिल-जुलकर गड्डमगड्ड। न इधर, न उधर। इससे तो लोगों को गोल बाँधकर अन्याय और बदमाशी करने के लिए शह मिलती है।"

"आजकल तो पार्टीबन्दी और गोलबाजी का ही ज़माना है मिसिर जी !" सुखदेव राम बोले—"रास्ता तो इसी के भीतर से खोजना होगा।"

लगता था आज सुखदेव राम मिसिर की अक़्ल की पूरी थाह लेने पर उतारू हैं।

"उसका भी रास्ता है सुखदेव राम जी।" मिसिर बोले—"गोल हमेशा बदमाश लोग बनाते हैं। भलेमानुसों की गोल नहीं होती। पर बदमासों से निबटने के लिए उन्हें भी गोल बनानी पड़ जाती है। इसी से तो कह रहा हूँ कि जब अपनी गोल में ऐसी ताक़त न हो कि दुश्मन की गोल को अच्छी तरह पीट सके, तब तक खुले आम गोल बाँधकर लड़ाई नहीं करनी चाहिए। दुश्मन पार्टी के गुंडों से अकेले-अकेले अँधेरे में निबटना चाहिए। जब अपनी गोल में ताक़त आ जाये, तब खुले आम सूरज की रोशनी में भिड़ जाओ। और ऐसा मार दो बदमाश लोगों को कि कुछ दिन के लिए ठंडे हो जायँ।"

अचानक सुखदेव राम ने झेंपकर गर्दन झुका ली। उन्हें लगा कि मिसिर ये बातें उन्हें सुनाकर कह रहे हैं।

"खैर भाई, ये सब बहस-मुबाहिसा छोड़िए।" थानेदार स्पष्ट ही इस अबूझ पहेली से ऊब गया था—"मुझे इससे कोई सरोकार नहीं। आप ये बताइए कि सरूप को लाठी किसने मारी ?"

जग्गन मिसिर फिर मुस्कराये—"यही तो कठिनाई है दरोगा जी कि आप आधी गवाही चाहते हैं। मैं पूरी सुना रहा था।"

"तो क्या आपको नहीं मालूम कि सरूप सिरिया की लाठी से मरा।"

"देखिए मैं गवाही करूँगा तो मुसल्लम। चुप रहूँगा तो मुसल्लम। अब जिस भइया राजा को मेरी गवाही की ज़रूरत हो, वो मुझे बुलाये। मगर ई जान ले कि मैं वही कहूँगा जो मैंने देखा है। मैं तोता रटन्त गवाही नहीं करता।"

सभी लोग सहसा चुप हो गए।

"तो मैं जाऊँ।" काफ़ी देर बाद जग्गन मिसिर बोले।

"हाँ-हाँ, जाइये।" थानेदार बोला—"ज़रूरत पड़ी तो फिर बुला लूँगा।"

"सेवक को जब हुकुम हो, हाज़िर हो जायेगा।" जग्गन मिसिर हाथ जोड़कर उठे और घर की ओर चल पड़े।

"एक छँटा बदमाश है ई पंडित।" थानेदार सुखदेवराम से बोला—"ज़रा भी लिहाज नहीं। ख़ैर ये बताइए कि क्या हो। छावनीवाले तो लगता है बरी हो गए। न भी होते तो वहाँ से कुछ निकाल पाना मुश्किल ही था। सारी मलाई तो रेलवे सामानों की चोरी वाले वाक़ये में जमनिया के थानेदार ने काट ली।"

"वे अकेले तो उड़ा नहीं गये होंगे दरोगा जी ?" शुखदेव राम ने रहस्य भरी दृष्टि से थानेदार की ओर देखा।

"अकेले क्या उड़ायेगा ?" दरोगा हँसा—"मगर पूरी मलाई अपनी तो हुई नहीं। मामला उसके हाथ में चला गया। जो दे दिया, ठीक ही है। ख़ैर अब बताइए आगे क्या हो। यहाँ तो देख रहा हूँ पान-पत्ता की गुंजायश नहीं हुई, अब तक ? अब कौन बचा ?"

"चमार लोग।" सुखदेवराम जी ने धीरे से कहा—"सुरजू सिंह के दरवाज़े चढ़कर तो साले वही आये थे। सुना कि बारहों गाँवों के चौधुरियों को भी पान-पत्ता के लिए मिला था, फिर आप तो सरकार हैं, आप को क्यों न मिलेगा ?"

"वाह रे सुखदेव राम जी, वाह।" थानेदार का चेहरा ख़ुशी से खिल गया—"यह तो मेरे फ़रिश्ते भी सोच नहीं पाते। बुलाइये साले रमकिसुना को। ले जाकर उधर बात कीजिए और जल्दी निबटाइए। तब तक मैं लाश का मुआयना करके उसे भेजने-भाजने का इन्तज़ाम करता हूँ। कह दीजिएगा साले से कि सौ-दो सौ के लिए मामला ख़राब न कराये।"

"झम्मन सिंह।"

"जी हुज़ूर।"

"मुरदा डोली आयी है न ? भाई उठवाओ लाश। बसिरना कहाँ है ?"

"ऊ जमनिया चला गया हुज़ूर। कह रहा था चार बजे करैता के सामने सड़क पर आ जायेगा।"

"तीन-साढ़े तीन तो हो भी रहा है। जाइए लाश उठवाइए। बसिरना के इक्के पर लादकर थाने ले चलिए। मेरी साइकिल कहाँ है ?"

"स्कूल में है। मँगवाऊँ ?"

"ले लूँगा मैं। पहले ई सुखदेउवा लौटे तब तो चलूँ।"

●

सिपाहियों ने सरूप की लाश उठाकर मुरदा डोली में रख दी। झिनकू के दरवाज़े पर भीड़ फिर गझिन हो गयी। दुलारी धाड़ मारकर रोने लगी थी। सरूप का दामाद श्यामलाल चुपचाप खड़ा था। उसके कानों में लगातार दुलारी की रुलाई के स्वर गूँजते रहे। वह रह-रहकर घबड़ाकर इधर-उधर देखने लगता। कलेजे में हूक जैसी उठती। पर बरजोरी सँभाल लेता।

"हुज़ूर ! सिपाही जी !" उसने झम्मन सिंह से हाथ जोड़कर कहा—"ई चादर डलवा दीजिए।"

"चादर कैसे पड़ेगी ?" झम्मन सिंह मुरदा डोली को उठवाने के इन्तज़ाम में बिला वजह इतना मशग़ूल था कि उसे श्यामलाल पर ग़ुस्सा आ गया। "लाश जैसी गिरी थी, वैसी ही जायेगी। क़तल का मामला है। खेल है क्या कि जो चीज़ चाहो रख दो इसके ऊपर। चलो हटो उधर।"

श्यामलाल चुप हो गया। दुलारी बगल में खड़ी थी। वह फटी-फटी आँखों मुरदा डोली को देख रही थी। उसने अपनी ज़िन्दगी में सिर्फ़ एक मौत देखी थी। अपनी माँ की। बाबू ने ख़ुद उस लाश को नहलाया धुल-

वाया। लाल चूनर में लपेटा। गले में मालाएँ डालीं। टिकठी पर ढेरों चमकीले ज़री के तार पोह दिये गये थे। अगरु और लोबान की गन्ध से गलियाँ महमहा उठी थीं। पीछे-पीछे ढोलक, झाल, मज़ीरे बज रहे थे। खूब कीर्तन होता चला। शिवनारायनी भगत लोगों की लाशें ऐसी ही उठती हैं।

"पर हाय दइया। बाबू की लाश को तो लोग नहलाने भी नहीं देते। न माला-फूल। न अगरबत्ती, न लोबान। कुछ भी नहीं।" दुलारी का मन भीतर ही मसोसकर रह गया।

तभी बगल से अपना सोटा ठुकठुकाते धनेसरी बुढ़िया आयी। उसके हाथ में महुए के पत्ते के दाने में कनइल के फूल की माला थी। वह डुगुरते-डुगुरते मुरदा-डोली के पास आ गयी। सरूप की लाश के पास बैठकर वह माला सुरझाने लगी।

"ए बुढ़िया!" झम्मन सिंह चिल्लाया—"ई क्या कर रही है?"

"देखते नाहीं हो का सिपाही जी।" धनेसरी बोली—"मेरे जैसे तोहूँ आँख के कमज़ोर हो का? सरूप भगत की लाश बिना माला-फूल के जायेगी? अरे दीवान जी, ई भगत की लाश है भगत की। भगत लोग की लाश नंगी जायेगी तो भगवान क्या कहेंगे?"

झम्मन सिंह गुस्से और आश्चर्य से बुढ़िया की ओर देख ही रहा था कि उसने लाश के गले में माला पहना दी। दोनों घुटने मोड़कर हाथ जोड़कर बोली—"गरीब-गुरबों की इज़्ज़त का खियाल करते रहना भगत।" और हुटुक-हुटुक कर रो पड़ी।

तभी झम्मन सिंह ने इशारा किया। सिपाहियों ने मुरदा-डोली उठा कर कंधे पर रख ली। अचानक दुलारी को लगा कि कोई चीज़ उसके कलेजे के भीतर टकरा रही है। वह उसका मुंह एक अजीब पीड़ा में लहरने जैसा लगा। वह सिपाहियों के पीछे खड़ी हो गयी। उसके आँसुओं से गीले ओंठ थरथराए:

निरगुन से जीव आइल सरगुन समाइल हो।
काया गढ़ कइल मुकाम त माया लपटाइल हो॥
हंस कहै सुनु सरवर मीता, हम उड़ि जाइब हो।
मोर तोर एतनै दिदार बहुरि नहिं आइब हो॥

तभी थरथराते होंठ, दुःसह पीड़ा को सँभालने में असमर्थ होकर मुरके, काँपे और दुलारी फूट-फूटकर रो पड़ी।

"बाबू! बाबू!!" घायल दर्दनाक चीत्कार से चमरौटी थरथराकर रह गयी।

"बिटिया!" धनेसरी ने अपने काँपते हाथों से दुलारी को अँकवार में भर लिया—"सबर करो रानी। रोना नहीं चाहिए। भगत का हिरदा लोहे का था बिटिया! रो-रोकर अपने आँसू से उन्हें दुख न पहुँचाओ।" चमारिनें दुलारी को पकड़-घेरकर झिनकू के घर में ले गयीं।

● ●

पैंतीस

ग्रीष्म पुनः ग्रा गया। सभी कुछ को धूल के बवंडरों में लपेटती हवा चलने लगी। सुबह होती कि गर्मी शुरू हो जाती। बाहर निकलना मुश्किल हो जाता। ज्यों-ज्यों सूरज ग्रासमान में ऊपर चढ़ता त्यों-त्यों हवा में ताप बढ़ने लगता ग्रौर दोपहर होते-होते हवा बदहवास होकर चारों ग्रोर दौड़ने लगती। उसके धक्के से दरवाज़े ग्रौर खिड़कियों के पल्ले तड़तड़ाने लगते। टीन की छाजनें धड़धड़ करने लगतीं। जानों कोई ग्रदृश्य जन्तु भारी-भारी पैरों से इन्हें पीटता-उछलता चला जा रहा हो। हवा की सन-सनाहट ग्रौर सीटियों से मन घबराने लगता।

विपिन दोपहर का खाना खाकर बाहर बइठके में, दालान के भीतर सभी दरवाज़े ग्रौर खिड़कियाँ बन्द करके लेट जाता। भीतर कुछ ठंढ मिलती, कुछ राहत होती। ग्राँखें ग्रलसाकर झपकने लगतीं, पर मन को चैन नहीं था।

करैता ग्राए एक साल हो गया। कुछ ग्रधिक ही। यह पूरा का पूरा साल जैसे दुःस्वप्नों के मेले में गुज़र गया हो।

क्या-क्या मनसूबे थे। क्या-क्या इरादे थे। पर हुग्रा क्या?

उसने इन बारह-तेरह महीनों में ऐसा कुछ भी तो नहीं किया, जिसे उसकी ग्रात्मा करना चाहती रही। इस क्रिया-चक्र से जैसे उसका कोई सम्बन्ध ही न रहा हो। एक बार ग्रलबत्ता भाभी ने उसके ब्याह की बात चलायी थी।

"विप्पी!" वे उस रोज़ ग्रपने दायरे से ग्रलग होकर बोली थीं—"तुम क्या ज़िन्दगी भर ऐसे कुंवारे ही रहोगे?"

वह यह सवाल सुनकर ग्रचकचा गया था। बहुत पहले ये सवाल उठा करते थे। तब इन्हें रोकने के लिए उसे कुछ ग्रभद्र भी होना पड़ा था। उसने भाभी से काफ़ी उखड़ते हुए कहा था कि यदि तुम चाहती हो कि मैं करैता ग्राता-जाता रहूँ तो ये बातें करना छोड़ दो। फिर तब से भाभी कभी उसके ब्याह पर बात नहीं करतीं।

विपिन ने कई बार सोचा है कि ग्राखिर वह ब्याह क्यों नहीं करना चाहता। भाभी ने भी यही पूछा था। विपिन उसकी ज़िद से चिढ़कर बोला था—"मैं नहीं चाहता कि इस घर में कोई ऐसा ग्रनजान ग्रादमी ग्राये जो लड़-झगड़कर मुझसे तुमको ग्रलग करा दे।" भाभी इस उत्तर पर ऊपर से भले ही ग्रछूती-ग्रप्रभावित दिखती-लगती रही हों, विपिन जानता है कि भीतर ही भीतर इससे वे काफ़ी खुश हुई थीं। उन्होंने इसे सच माना, तो ग्रच्छा ही हुग्रा, पर विपिन को ग्रन्तर्यामी जानता है कि उस कथन में सच्चाई एकदम नहीं थी। विपिन शादी करना चाहता था ग्रौर खूब चाहता था। पर किससे? पुष्पा ग्रौर उसके सम्बन्धों के बारे में भाभी ग्रनजान तो नहीं थीं। पर उन्होंने कभी इस प्रसंग पर बात नहीं चलायी। वे खूब जानती थीं कि पुष्पा के लिए मेरे मन में क्या था। पुष्पा कनिया की दायादिन कभी नहीं बनती। वह तो मेरे लिए छावनी में नौक-रानी बनकर रहना भी क़बूल लेती; पर मैंने उस निरपराध को देश-निकाला

दे दिया। भाभी शादी को बात चलाती ही इसलिए थीं कि यदि पुष्पा के बारे में अब भी मेरे मन में कुछ हो तो मैं उसे भूल जाऊँ। विपिन उनके मन्तव्य को खूब समझता था। इसीलिए शादी की चर्चा छिड़ने पर वह अकारण अभद्र हो जाता, बेमुरव्वत ऊल-जलूल बक जाता। भाभी चुप हो जातीं।

पर क्या सचमुच विपिन पुष्पा से शादी करना चाहता था ?

"मैं उससे ब्याह करना नहीं चाहता था। यदि चाहता तो मुझे कौन रोक सकता था। उसने करवट बदलते हुए सोचा और अचानक महसूस किया कि उसके दिमाग़ के भीतर कोई मुर्चीला चक्का किर्र-किर्र की आवाज़ करता लगातार घूम रहा है।

"मैं क्या चाहता हूँ, मुझे खुद नहीं मालूम।" वह बड़बड़ाया।—"मैं सिर्फ़ दूसरों के लिए ज़िन्दगी कुर्बान करने के लिए ही पैदा हुआ हूँ। मैं निर्णय-भीरु हूँ। डरपोक हूँ। सुविधा-पसन्द हूँ। मैं अपनी इच्छा से कोई काम नहीं कर सकता। मेरा चाहा कुछ भी कभी पूरा न होगा। मैं हमेशा अपने ही मन के भीतर अतल में छिपे मिथ्या प्रतिष्ठा और खानदानी बड़प्पन के डोम से हारता रहूँगा।"

शाम हुई तो तपन थोड़ी कम हो गयी। विपिन को बड़ा उदास लग रहा था। वह बखरी में गया और कुर्ता पहनकर आँगन में आ रहा।

"कहीं जा रहे हो क्या ?" भाभी बोलीं।

"सोचता हूँ ज़रा क़स्बे तक घूम आऊँ।" उसने कहा।

"तो मेरा भी एक सामान लेते आना।" कनिया हल्के मुस्करायीं।

"क्या सामान ?"

"कनिया कोनिया घर में गयीं। ट्रंक खोलकर दस रुपये का एक नोट निकाला। और उसे विपिन की ओर बढ़ाते हुए बोलीं—"एक सेर मिश्री ले लेना और एक बोतल गुलाब जल।"

विपिन सहसा मुस्करा उठा। वर्षों बाद उसने कनिया के मुँह से यह फ़रमाइश सुनी। कनिया कोई शौक़ नहीं करतीं। वह जानता था। मालिक काका जब ज़िन्दा थे तब भी उन्होंने अपनी इच्छा से कोई सामान कभी क़स्बे से नहीं मँगवाया। हाँ, उन्हें कभी मिश्री और गुलाब जल से बड़ा प्रेम था। अपनी ये फ़रमाइशें भी वे माई से कहतीं। माई खुद दयाल महराज या किसी और को क़स्बे भेजकर गर्मियों में उनके लिए ये चीज़ें मँगवा देती थीं। माई नहीं रही तो मालिक काका बिना कनिया से पूछे ही ये चीज़ें मँगवाते रहे।

जिस साल भाई और भाभी में काफ़ी खिंचाव आया, ये चीज़ें बिना इस्तेमाल कोनिया घर की आलमारी में इकट्ठा होती रहीं।

उसी गर्मी की बात है। विपिन भी छुट्टी आया था। सुबह के क़रीब सात-आठ बजे होंगे। मालिक काका आँगन में आये। पीछे-पीछे दयाल महाराज थे।

"बहू।" वे बिना कनिया की ओर देखे धीरे से बोले—"दयाल को रुपये दे देना। तेरी मिश्री और गुलाब जल खतम हो गया होगा।"

"मुझे ये चीज़ें अच्छी नहीं लगतीं बाबू जी !" कनिया बोली—"आप नाहक मँगवाते रहते हैं। कई बोतलें आलमारी में ज्यों की त्यों रखी हैं।"

मालिक काका को विश्वास नहीं हुआ। वे कोनिया घर में गये। उन्होंने आलमारी खोलकर देखी। कुछ बोले नहीं। चुपचाप गर्दन झुकाये बखरी से बाहर चले गए थे।

तब से कभी इस घर में ये चीज़ें मँगवायी नहीं गयीं।

विपिन को हँसते देख कनिया थोड़ा शर्माकर बोलीं—"सोचते होगे कि पुराना शौक़ फिर कैसे ज़िन्दा हो गया। है न ? शाम को तुम्हें भी तो कोई ठंढी चीज़ नहीं दे पाती।"

वे चुपचाप फिर कोनिया घर में घुस गयीं। विपिन सोच रहा था कि उसे मुस्कराना नहीं चाहिए था। भाभी खुश हैं, प्रसन्न हैं, यह जान लेना ही काफ़ी था। उसे खुशी हुई कि काफ़ी कुछ सह-झेलकर वह भले ही भीतर से टूट गया हो, कनिया खुश है, परिवार की गाड़ी ठीक रास्ते चल रही है, तो अच्छा ही है। यही तो वह चाहता था।

"और विप्पी।" कनिया ने उसे एक बन्द लिफाफा थमाते हुए कहा—"यह चिट्ठी छोड़ देना। कई दिन से लिखकर रखी है। छुड़वाना भूल गयी।" विपिन ने लिफ़ाफ़ा ले लिया।

लिफ़ाफ़े पर पता देखकर मन में हलचल नहीं हुई, यह कहना ग़लत होगा। पर इस बार विपिन काफ़ी सावधानी से मन के भावों को दबाये रहा।

सीपिया नाले के पुल पर आकर उसने न चाहते हुए भी जेब में हाथ डालकर लिफ़ाफ़ा निकाल लिया। ऊपर कल्पू बो भौजी का नाम लिखा था। चिट्ठी उनके पटने वाले भाई के 'केयर आफ़' थी। लिफ़ाफ़ा काफ़ी भारी था। यह ठीक से बन्द नहीं था। पता नहीं जानकर या अनजाने उसका ढक्कन दोनों तरफ़ के कोनों पर अनसटा-अधखुला छोड़ दिया गया था।

विपिन एक क्षण अपने मन के चोर से लड़ता रहा। फिर उसने बड़ी सावधानी से लिफ़ाफ़ा खोल लिया।

●

अचानक पिछले दिनों करैता में पटनहिया भाभी चर्चा का विषय बन गयी थीं। उनके बारे में तरह-तरह की बातें सुनायी पड़तीं। ये बातें किसी और के बारे में होतीं तो शायद विपिन टाल जाता। गुप्त बातें, चाहे वे झूठ हों या सच, सुनाते समय वक्ता हमेशा श्रोता से एक अजीब तरह की कृतज्ञता की आशा करते हैं। यह कृतज्ञता किसी भी शरीफ़ आदमी को अपमान जैसा लग सकती है। विपिन ने इस अपमान को इसीलिए सह लिया था कि उसे पटनहिया भाभी में बेहद दिलचस्पी थी।

वक्ता झब्बूलाल उपधिया थे। वे मिसिर से बातें कर रहे थे। तभी विपिन वहाँ पहुँच गया था। जाना तो वह उपधिया जी के यहाँ कई दिन से चाहता था, पर जा न सका। देवनाथ के क़स्बे चले जाने का समाचार

उसने सुना था। कोई ख़ास बुरा भी नहीं लगा, क्योंकि वह जानता था कि इस सड़ी जगह में देवनाथ बहुत दिनों तक ठहर नहीं सकता। उसे बुरा यह ज़रूर लगा था कि जाने का इरादा करके देवनाथ ने उसे सूचित नहीं किया। बिना कुछ कहे-सुने चला गया।

उपधिया के प्रति भी विपिन के मन में कोई कुभाव न था। वह जानता था कि देवनाथ को करैता में डिस्पेंसरी खोलने को उसकी सलाह से वे ख़ुश नहीं हुए थे। अब चूँकि उनके मन की हो गयी है, इसलिए किसी भी दिन उनसे मिलकर उनकी पुरानी नाराज़गी को मिटाया जा सकता है। यही सोचकर विपिन उस दिन उपधिया के बइठके में चला गया।

"आइए विपिन बाबू।" उपधिया जी प्रसन्न होकर बोले—"मैं तो सोचता था कि अब आपका दोस्त यहाँ नहीं रहता तो आप भला यहाँ क्यों आयेंगे?"

"वाह।" विपिन को उनकी बात बुरी लगी, पर हँसते हुए बोला—"यानी मेरा परिचय आपसे इसलिए हुआ कि आप देवनाथ के पिता हैं? यही न? गाँव-घर के आदमी से और आशा भी क्या की जा सकती है।"

विपिन चारपाई पर बैठ गया। जग्गन मिसिर ने उसकी ओर कनखी देखा और उपधिया की ओर कटाक्ष करके बोले—"असल में झब्बू भइया आज बहुत ख़ुश हैं विपिन बाबू। इसलिए उन्हें यह पता नहीं लगता कि कब वे क्या बोल जाते हैं। ये मानते हैं कि सारी दुनिया इनके ख़िलाफ़ है। वे अपने को विरोधी लोगों के बीच घिरा हुआ समझते हैं। देवनाथ का क़स्बे में दूकान खोलना पहली घटना है, जो इनके मन माफ़िक हुई है। यानी झब्बू भइया ने इस बार चक्रव्यूह तोड़ दिया है। इसलिए वे बड़े ख़ुश हैं। इसी ख़ुशी में ऊल-जलूल बोल गए।"

"मैंने तुमको लीपापोती करने के लिए कब कहा?" उपधिया जी संतुष्ट भाव से मुस्कराते हुए बोले—"ये भी उसके दोस्त हैं। उसके बारे में सुना-गुना भी होगा। मैं लोभी नहीं हूँ, जैसा तुम समझते हो। मैं इस लिए नहीं ख़ुश हूँ कि देवनाथ क़स्बे में दूकान खोलकर मुझे रुपयों से पाट

देगा। वह अपने लिए खाने-पीने का जोगाड़ कर ले, यही बहुत है। मैं तो खुश भगवान् की कृपा से इसलिए हूँ कि उन्होंने मेरी लाज रख ली। नहीं तो कुछ हो गया होता नीच-ऊँच कहीं, तो मुँह दिखाना भी मुहाल हो जाता।"

मिसिर ने गर्दन झुका ली। ज़ाहिर था कि वे उपधिया की बातों से अपने को तटस्थ करके उन्हें आगे बढ़ने से रोकना चाहते थे। विपिन उस समय बड़े असमंजस में पड़ा। न तो वह उपधिया की ओर आगे की बातों को सुनने की उत्सुकता का भाव लिये देख सकता था और न तो बिना समझे-बूझे मिसिर की तरह गर्दन झुकाकर अपने को तटस्थ ही रख सकता था।

"इसमें गर्दन झुकाने का कोई काम नहीं है जग्गन '" उपधिया सचमुच आज मन के भीतर की सारी घुमड़न निकाल देने के लिए व्यग्र थे—"विपिन बाबू कोई पराये नहीं हैं। और न तो वे बातें ऐसी छिपी-ढँपी हैं कि इन्हें मालूम न होंगी। आशङ्का तो यह है कि इन्हें भी कहीं गलत न मालूम हों। जैसा लोग चारों ओर कहते-फिरते हैं। इसलिए यह और भी अच्छा है कि विपिन बाबू सही बातें जान जायँ।"

जग्गन ने फिर भी कोई उत्साह नहीं दिखाया। विपिन एक अपमानजनक कृतज्ञता का भाव चेहरे पर ओढ़े प्रतीक्षा में बैठा रहा।

"बात देवू की हो रही थी विपिन बेटा।" इस बार अचानक उपधिया बहुत आत्मीय ढंग से बोले—"पिछले कई महीनों से वह बंशी सिंह के लड़के कल्पू की चिकित्सा कर रहा था। चिकित्सा तो मैं कह रहा हूँ, वह तो 'परयोग' करता था। 'परयोग' माने यह कि खुद ही दवा का दाम अपने ऊपर ओढ़कर घर का आटा गीला करना। बंशी सिंह को तुम जानते हो। अपने गाँव में दूसरा कोई वैसा मालदार आदमी नहीं है। भगवान् की दया से खूब गल्ला होता है। इस मँहगाई में बंशी सिंह ने मलाई काटी है समझ लो। पाँच-सात हज़ार से कम बचत नहीं होती उन्हें हर साल। कल्पू इकलौता लड़का था। दूसरा डाक्टर होता तो आदमी बन जाता।

बंशी सिंह एक ही मूजी हैं। पर उनकी मेहरारू वैसी नहीं है। और फिर अपने इकलौते बेटे की बीमारी से किस माँ के कलेजे में दाह नहीं होता। मगर मेरे देवनाथ ठहरे सतयुगी डाक्टर। लगे 'परयोग' करने। कई बार खाली कल्पू की दवाई के लिए बनारस दौड़ जाते। बिला नागा रोज़ दो-तीन बजे अपराह्न में वह बंशी सिंह के घर की फेरी ज़रूर लगाते।

"मुझे बहुत बुरा लगता, पर मैंने तो कान पकड़ लिया था कि इस छोकरे के कामों में मैं टाँग नहीं अड़ाऊँगा। एक ठो मरीज था अँवराई का लछमन। साला एक काइयाँ। गठिया का पुराना रोग था उसे। उठना-बैठना मुहाल था। हें-हें, पें-पें करके उसने देवनाथ को मूँड़ लिया। लगे डाक्टर साहब 'परयोग' करने। वह उठने-बैठने लगा। साला दूसरे-तीसरे एक लौकी, कभी एक दहेड़ी दही थमाकर उल्लू सीधा किये जा रहा था। दूसरे मरीजों से यों बतियाता था गोया वह डाक्टर का दोस्त हो। डाक्टर बाबू ऐसे हैं, डाक्टर बाबू बैसे हैं, याने यह कि तुम लोग भी मेरी तरह उन्हें झाँसा पढ़ाकर मुफ्त में दवाई कराओ। मैंने साले को वह लंगड़ी मारी कि तीन जनम याद करेगा। एक ही दिन टिक्कस दिखाया कि साला दुम दबाकर जो भागा तो फिर आज घरी तक लौटकर मुँह दिखाने नहीं आया।

"उससे तो गला छूटा, बाकी डाक्टर बाबू के गले में जानो किसी ने तीन मन वज़नी नाल डाल दी हो। ऐसा मुँह लटकाया कि सुबह से शाम तक मेरी उसकी बोल-चाल बन्द रही। मैंने कहा, जा ससुरे भरसायँ में, मुझे क्या पड़ी है कि तुम्हारा भला सोच-सोचकर नाहक बद्दू बनूँ। तब से बेटा कान पकड़ लिया कि जो 'परयोग' करना हो करो, मैं नहीं बोलता तुम्हारे बीच।

"इसी से चुप रहा, वरना तीन-चार दिन के बाद ही मैंने 'भतिया' ऐंठ दी होती। न ऊ हुआँ जाता रोजीना, न उस छैल-छबीली के चंगुल में पड़ता।"

"अब जो हो गया वह हो गया। देवनाथ अपने रास्ते पर आ गया।

आपकी बात मानकर उसने क़स्बे में अपनी दूकान भी खोल ली। अब काहे आप पुराना पचड़ा उघाड़कर बैठ जाते हैं?" मिसिर ने उपधिया को अन्तिम चेतावनी दे दी।

विपिन को मिसिर से पहली बार घृणा हुई। हो सकता है कि मिसिर उपधिया परिवार से विपिन के बड़े ख़ैरख्वाह हों किन्तु ख़ैरख्वाही दिखाने का भी एक तरीक़ा होता है। अपने को ख़ैरख्वाही दिखाने के लिए दूसरों को ग़ैर बनाना ज़रूरी ही तो नहीं होता। विपिन फिर भी चुप ही रहा। इतनी बातें तो वह और भी सूत्रों से जान चुका था। अब यदि उपधिया को सुनाना हो सुनायें, न सुनाना हो न सुनायें। वह अपनी ओर से इन बातों के लिए कोई जिज्ञासा व्यक्त नहीं करेगा। वैसे भीतर ही भीतर वह जिज्ञासा से भरा था। कल्पू बो भौजी की उत्तेजक शारीरिक गठन उसके भी हृदय को मथ चुकी थी। अति अपनत्व दिखाते समय उसने उन्हें अपनी ओर खींचने की कोशिश भी की थी। उस वक़्त पटनहिया भाभी के चेहरे पर न तो ग़ुस्सा था और न तो घृणा। वे बड़ी तटस्थता के साथ उसकी पकड़ से बाहर हो गयी थीं, बस। उस क्षण के बाद उनके चले जाने पर वह एक विचित्र आत्म-ग्लानि में काफ़ी देर तक झुलसता रहा था। उसे इस प्रकार कदर्य पुष्पा ने बनाया। वह सोचता। उसी का नाम लेकर पटनहिया भाभी उसके निकट आने में कदराई थीं। पुष्पा ने मुझे कहीं का नहीं रखा। न तो खुद मिली, न इस योग्य रखा कि किसी दूसरी औरत का उसके प्रति झुकाव हो। विपिन निरा मूर्ख है। इसमें भला पुष्पा का क्या दोष? वह कब आने को तैयार न थी? उसने तो चलते वक़्त भी एक नज़र देखने की आशा नहीं छोड़ी।

ये सब बातें माथे में निरुद्देश्य उड़ते पंछियों की तरह इस क़दर चक्कर लगाती हैं कि न चाहते हुए भी विपिन का चेहरा महाभारत की अन्तिम शाम की तरह घायल और उदास लगने लगता है।

"तुमसे मैंने कहा न कि तुम बीच में मत टोको। तुम जानते नहीं हो। वह अपनी कोई भी बात विपिन से नहीं छिपाता। हो सकता है कि वह इनसे सब कुछ कह चुका हो। हो सकता है कि जल्दी ही मिलने पर इनसे सब कुछ कहे। और जब वह कहेगा तो सारी कठिनाइयों का कारण मुझे बतायेगा। जो कुछ हुआ है, उसके लिए मुझे ज़िम्मेदार ठहरायेगा। मैं उसे खूब जानता हूँ। वह मन ही मन अपने जीवन की सभी परेशानियों का कारण मुझे ही मानता है।" इस बार उपधिया जी के शब्दों में अचानक अंतरतम के कहीं छू जाने से उत्पन्न झनझनाहट का स्वर था। उनकी आँखें अजीब ढंग से चिलक रही थीं। इस परम सत्य के स्पर्श से जग्गन मिसिर की अवरोधी मुद्रा छुई-मुई के पौधे की तरह शिथिल होकर सिमट गयी।

"वह तो कहो पुरखों के पुन्य प्रताप से इज्ज़त बच गयी।" उपधिया पुनः ऐंठी हुई डोरी में लटकती फिरकी की तरह चक्कर खाते हुए बोले—"हम तो भाई जगजीत सिंह-बो की बलिहारी जाते हैं। उसी बेचारी ने हमारी नाक रख ली। इज्ज़त तो उसके परिवार की भी तराज़ू पर चढ़ गयी थी। पर अपनी बचाते समय उसने दूसरे का भी ध्यान रखा, यही बहुत है। वह चाहती तो किसी भी दिन हल्ला कर देती और डाक्टर साहब पकड़ जाते। साला छत्ते पर बैठकर उससे घंटों फुसफुस किया करता था। जगजीत सिंह-बो से जब सहा नहीं गया तो उसने भुल्लन को भेज कर उपधाइन को बुलाया और अपनी सास की चोरी-चोरी सारी बातें उन्हें सुना गयी। सुना दोनों कहीं भागने की तैयारी में थे।

"देवनाथ की माँ वहाँ से लौटीं तो उनका चेहरा देखने लायक था। पंडिताइन को जैसे साँप सूँघ गया हो। दुपहर को मेरे खाते समय भी वह एकदम गुमसुम रहीं। जब मैं दालान में आकर लेटा तो भागवान धीरे से आकर मेरे पैताने बैठ गयी और अपने लाड़ले की सारी करतूत सुना गयी। पचास साल की बुढ़िया ऊ सब कहते शरम से पानी-पानी हो जाती रही। बाकी उस बीस-बाईस साल के लौंडे को किस बात की लाज? वो साला तो बस नशे में मदमस्त था, माँ-बाप पर क्या बीतेगी, इस पर सोचने की उसे कहाँ फ़ुर्सत थी भला।

"मैंने कहा वाह बेटा, तुमने मुझे मरा समझ लिया है क्या, कि तुम

पुरखों की सारी इज्ज़त मेटने को कमर कसे हो और समझते हो कि मैं चुप रहूँगा। मैं दूसरे दिन चौकी पर आसन मारकर बैठ गया। चले तो साला आज बंशी सिंह के घर की ओर, मैं मारे जूतों उसका हुलिया टाइट कर दूँगा।

"सुबह के बाद बेर लटकी। दुपहर हुई। मैं वैसे ही बैठा रहा। पता नहीं साले को कैसे पता चल गया था। मैं चार बजे तक बिना खाये-पिये आसन लगाये बैठा रहा। पर वह अपनी कोठरी में जो सुबह घुसा तो बाहर नहीं हुआ। तभी वह कोठरी से निकला और बखरी में गया। कुर्ता पहनकर आया।

"मैंने सोचा कि अब तैयारी करके चलने को हुआ है।

"ज़रा क़स्बे जा रहा हूँ बाबू जी।" उसने कहा।

"मैं कुछ न बोला। वह चबूतरे से उतरकर गली में आया। मैं पीछे-पीछे लगा। वह गाँव से बाहर निकला। मैं उसे देखता रहा। वह सीपिया नाले के पुल पर चढ़ा, मैं ताकता रहा। सोचा, कहीं साला घंटा आध घंटा इधर-उधर घूम-घामकर, मुझे झाँसा देकर फिर लौट न आये। मैं धीरे-धीरे देवीधाम वाले छबरे पर चलता रहा और रुक-रुककर उसकी टोह लेता रहा। वह क़स्बे की ओर चलता गया। शाम तक मैं मन्दिर के आगे बैठा इन्तज़ार करता रहा। वह क़स्बे से लौटा तो मैंने फिर पीछा किया। पर वह कहीं नहीं गया, सीधे बखरी में हेल गया। मैं फिर उसी चौकी पर बैठा रहा।

"वह भीतर से हाथ-मुंह धोकर मेरे पास आया।

"बोला—बाबू जी, मैंने चौक में मेवादास का मकान भाड़े पर ले लिया है। आपने तो देखा ही होगा वह मकान?"

"कौन सा? वही जो तुलसी किरानेवाले के बग़ल में है?" मैंने कहा। वैसे मैं उससे खूब नाराज़ था। मगर क़स्बे में मकान लेने की बात मुझे अच्छी लगी। मैंने सोचा कि चलो, अब यह खुद ही रास्ते पर आ गया। वहाँ दूकान खोल लेगा तो चार पैसे का आदमी हो जायेगा। इसीलिए मैंने गुस्सा थूक दिया। खुद वहाँ जाकर मेवादास वाले मकान की सफ़ाई करायी। पूजा-पाठ करके बास्तु-शान्ति की। मुहूरत देखकर दूकान का उद्घाटन कराया। अब ठीक है। मैंने पंडिताइन को भी वहीं भेज दिया है ताकि उस पर पूरी निगरानी रहे।"

विपिन उपधिया के मुंह से ये बातें सुन चुका था। तब से पटनहिया भाभी के बारे में उसकी जिज्ञासा और बढ़ गयी थी।

●

आज कनिया ने यह लिफ़ाफ़ा दिया तो उस पर पटनहिया भाभी का नाम और पता देखकर विपिन अपने को रोक न सका और उसने सावधानी से लिफ़ाफ़ा खोलकर भीतर की चिट्ठी निकाल ली।

कनिया ने चिट्ठी कोरे काग़ज़ पर लिखी थी। उनकी चिट्ठी में लपेटा हुआ एक और काग़ज़ था। रूलदार। किसी पढ़वैया लड़के की कापी के बीचोबीच से निकाला हुआ। उस पर लिखी इबारत भी बिल्कुल भिन्न थी। एक क्षण विपिन द्विविधा में पड़ा खड़ा रह गया। फिर उसने कनिया वाली चिट्ठी खोलकर सामने कर ली।

प्रिय दुलहिन,

तुम्हारी चीठी मिली। मैंने तो कुछ भी नहीं सुना। तुम जानती हो कि मैं घर के बाहर कम निकलती हूँ। करैता में तुम्हारी क्या नँवहसाई हुई, यह मुझे नहीं मालूम। मैं तो इतना भर जानती हूँ कि तुम्हारे ऊपर दुख का पहाड़ टूटा। कल्पू देवर, दस लड़कों में एक लड़का थे। उनके जैसा बढ़िया आदमी पाकर तुम्हें खुशी हुई होगी। भगवान् की मरज़ी में हमारा क्या वश। कल्पू तुम्हें मझधार में छोड़कर चले गए। तुम खुद समझदार हो, मैं क्या समझाऊँ। धीरे-धीरे आदमी बड़ा से बड़ा दुख भी सह लेता है। मेरी तो माँ भगवती से यही प्रार्थना है कि वे तुम्हें इस दुःख को सहने की शक्ति दें।

विपिन ठीक हैं। हमारे कहने पर वे शादी करने को तैयार नहीं होते। तुम उन्हें इतना मानती हो तो तुम्हीं क्यों नहीं समझाती। आखिर उनकी जैसी भाभी मैं, वैसी ही तुम। फिर संकोच क्यों? भाई, मैं उन बातों को नहीं जानती। तुम लोग नये जमाने की लड़कियों की बात मेरी समझ में नहीं आती।

तुमने बार-बार चीठी को फाड़ने की बात लिखी है। मैं फाड़ भी दूँ तो जाने तुम्हें विश्वास हो या न हो, इसलिए तुम्हारी चीठी भी वापिस कर रही हूँ।

तुम्हारी दिदिया
तारा

विपिन इस चीठी के पीछे छिपे चेहरे को जानता है। ऊपर-ऊपर से चिट्ठी पढ़नेवाले को कभी भी मालूम न होगा कि कनिया के होंठ यह सब लिखते समय कितना खिच गये होंगे। कनिया सुनती सब हैं, मगर कहतीं किसी से कुछ नहीं। कोई उनके मन में अंकित अपनी तस्वीर को धूमिल करनेवाले भावों को पोंछने की कोशिश करे तो कनिया किंचित् आश्चर्य, किंचित् दुःख के साथ उसे यों समझायेंगी कि जैसे अपनी तस्वीर के धूमिल होने की आशंका करके उसने कनिया को चोट पहुँचायी है। चीठी का दूसरा पैरा तो जैसे पटनहिया भाभी पर सीधा आरोप न करके भी अपनी विरक्ति और वितृष्णा प्रकट करने के लिए ही लिखा गया है। कनिया के मन में 'नये ज़माने' के प्रति भले ही आक्रोश न हो, पर इतना तो साफ़ है ही कि वे इसे 'नये' पर, जो अपनी हैसियत और नफा-नुकसान भूल जाता हो, लानत भेजने को तैयार हैं।

विपिन के मुँह से अचानक पटनहिया भाभी के लिए गन्दे शब्द फूट पड़े। मेरा नाम क्यों लेने गयी। बड़ी आयी शुभेच्छु बनने। मैं शादी नहीं करता तो उसके बाप का क्या? ठीक लिखा भाभी ने। यह लो अपनी गन्दी चिट्ठी, रखो अपने पास। इसे रखना भी पाप है, फाड़ना भी पाप।

तभी इस 'गन्दी चिट्ठी' को देखने की तमन्ना विपिन को तीर की तरह छेदती निकल गयी थी। लाओ, देखूँ क्या-क्या लिखा है, इस करैता की किलोपेट्रा ने।

प्रिय दिदिया!

तू मुझे जरूर से भुला गयी। मैं हूँ ही इस लायक कि कोई याद क्यों करे। जाने कौन-कौन सी तमन्नाएँ लेकर तेरी नगरी आयी थी। पर जिसका भाग्य ही खराब हो, उसके सपन कहाँ पूरे होते हैं। नई-नई आयी तो सास-ससुर की नेहभरी बातों में भुलाई रही। अपना दुखड़ा तुझे क्या-क्या सुनाऊँ। सोचती थी कि जब वहाँ से 'बिज-बाज' कर चली आयी, फिर उधर मुँह करना भी नहीं कभी, तो वहाँ के किसी से कहने-सुनने में फायदा क्या। पर जी माना नहीं। आँख उठाकर देखा तो लगा कि उस सुनसान रन-बन में, जहाँ पेड़ की पतई भी नहीं गिरती, मेरा दुखड़ा सुन-कर, उहाँ एक तू ही है ऐसी कि मेरी विपदा सुनकर हँसेगी नहीं। बहुत डरते-डरते यह चिट्ठी तुझे लिख रही हूँ। मेरी सौगन्द दिदिया इसे पढ़कर जरूर फाड़ देना। मैं तेरे पैरों पड़ती हूँ।

तुझसे यह कहाँ छिपा रहा होगा कि मैं जिस आदमी को ब्याही गयी, उसने मुझे औरत की तरह कभी नहीं देखा। सच तो यह है दिदिया कि मैंने यह जाना नहीं कि आदमी के माने क्या होता है।

जब यह मुझे मालूम हुआ तो मैं पागल जैसी हो गयी। घर का सब काम-धाम करती। पर मुझे न भूख न पियास। जानो भूत बनकर रहती थी मैं। दिन पर दिन बीतते गये। मैंने अपने हिरदा को समझाय लिया दिदिया कि चलो अपने करम में यह था ही नहीं। सब है, एक नहीं ही है तो क्या हुआ। सब चीज खाया, एक चीज नहीं ही खाया तो उससे क्या। पर यह जिन्दगानी भार लगने लगी। दिन भर घर में खाली-खाली बैठा रहना दुश्वार हो गया। दिन भर औरत जाँगर पीटती है, घर-बार का काम-काज सँभालती है, इस आशा से कि रात को कोई एक ऐसा भी है जो उसकी खैर-खबर लेगा। उसको भी नेह-दुलार देगा। पर मेरे करम में न

दुलार था न प्यार। जन्मी तो माँ मर गयी, कुछ बड़ी हुई तो बाप। शादी हुई तो यह हुआ। पर इस पर भी मैंने भगवान् का आसरा न छोड़ा। सोचा पढ़ने-लिखने में ही जी लगाऊँ। जाने कब की साध थी कि यदि मैं भी एंट्रेंस पास होती। अब सोचती हूँ कि जैसे सब सहा था वैसे ही इस साध को भी गर्दन मरोड़ देनी चाहिए थी। जब जिन्दगानी में ही कुछ न मिला, तो पढ़ाई-लिखाई कौन सी बात थी। पर मैं इस ललक को दबा न सकी। करैता में तीन ही आदमी थे जो मेरी मदद कर सकते थे। विपिन देवर, देवनाथ और स्कूल के मास्टर शशिकान्त। मास्टर बाहरी थे। बाकी दो तो घर के ही थे। उनमें भी सबसे नजदीकी विपिन ही थे हमारे। पर दिदिया तुझसे झूठ नहीं बोलूँगी। विपिन देवर ने पहले ही दिन ऐसी-बात कही कि मेरा एड़ी से लेकर चोटी तक बदन आग में झुलस गया। विपिन देवर के बारे में अक्सर मेरे घर चर्चा होती। अइय्या उनकी तारीफ के पुल बाँधती अघाती न थीं। मैं तब से उनसे मिलने के मनसूबे बनाती रही। सुना वे छुट्टी में गाँव आये हैं तो मैं मारे खुशी के फूली न समायी। बीस बहाना करके तो मैं आ सकी और मिलते ही विपिन देवर ने ऐसी चोट की कि वह जब तक जीऊँगी, कलेजे में सालती रहेगी——

विपिन की आँखों के आगे से एक क्षण के लिए जैसे बादल का एक टुकड़ा गुज़र गया हो।

"हूँ तो वह बात उन्हें हमेशा याद रही।" वह बड़बड़ाया। अचानक उसका चेहरा उदास हो गया। उसने लम्बी साँस खींचकर फिर चिट्ठी पढ़ना शुरू किया।

——मैंने बाद में अपने को बहुत समझाया। किसी ने उनसे झूठ-मूठ जोड़ा-जाड़ा होगा। उन्होंने अनजाने में यह सब कह दिया। इसी उधेड़-बुन में दो एक बार और गयी उनके पास किताब माँगने के बहाने। पर पता नहीं क्यों लगता था कि वे मुझे बहुत छोटी फालतू समझते हैं। इसीलिए मैं उनसे मदद की विनती नहीं कर पायी। गाँव-घर के लोगों से यह ब्यौहार पाकर मन खट्टा हो गया। सास ने कहा कि इससे अच्छा तो यही

है कि स्कूल के मास्टर से पढ़ो। वे बाहरी आदमी हैं, बाहरी ही रहेंगे। शशिकान्त मास्टर हीरा आदमी था दिदिया। मैंने जब सुना कि किसी ने उसे मारकर रुपये छीना है तो मैं खूब रोयी थी। मुझे जाने क्यों लगता था कि मेरी जैसी अभागिन के पास आने से ही उसका नुकसान हुआ। उसी समय देवनाथ उनकी दवाई करने बखरी में आने लगे। रोज आते। मैं पानी गरम करती। सूई धोने के लिए। वे सूई लगाते तो मैं रोगी के सिरहाने पंखा लेकर बैठती। मैं कसम तो नहीं खाती कि दो-तीन महीने के भीतर कभी हँसी-मज़ाक नहीं हुआ। पर दिदिया मैं सौगन्द खाकर कहती हूँ कि तू मुझे वैसा ही मत मान लेना जैसा गाँववाले कहते हैं। देवनाथ ने जरूर दवाई करने के एहसान में कुछ आगे बढ़ने की कोशिश की। पर दिदिया मैं दुःखी थी, बेचारी नहीं, मैं किसी की किरपा नहीं चाहती थी। वहाँ सब किरपा करनेवाले ही थे। मुझे अपने पैरों पर खड़ा होने में मदद करनेवाला कोई नहीं। इसीलिए उनके किरिया-कर्म में जब भइया आये, तो मैं हठ कर गयी कि मुझे भी साथ ले चलो। यह गाँव अब मुझे सब तरफ से काटने दौड़ता है। मैं यहाँ रह नहीं सकती।

मैंने अपना दुखड़ा सुना दिया। दिल का पत्थर हट गया। आगे तू जान, तेरा विश्वास जाने। मेरी तो विनती यही है तुझसे कि तू भी मुझे बुरी न मान लेना। मैं अभागिन हूँ। और क्या कहूँ। मैं तेरे पैरों गिरती हूँ, इस चिट्ठी को फाड़ देना। इतना जरूर से जरूर करना। दुहाई दिदिया, चिट्ठी बिना फाड़े कहीं धर मत देना। विपिन बबुआ कैसे हैं। तू उनका विवाह क्यों नहीं करती। पुष्पा के जाने से तो उन्हें और भी उदास लगता होगा। बुरा न मानना दिदिया मैं भी तो उनकी भाभी हूँ न। मजाक का इतना हक तो मुझे भी है ही। चिट्ठी जरूर से फाड़ देना।

तुम्हारी अभागिन
दीपा

"एक ही हरामज़ादी थी यह भी औरत।" विपिन ने दोनों चिट्ठियों

को फिर से तह करके लिफ़ाफ़े में रखा। मज़ाक के बहाने-बहाने सब कह भी गयी और अपने को दोष से बचा भी गयी।

लिफ़ाफ़े को साटने की बात सोचते ही विपिन एक क्षण आहत की तरह ताकता रह गया। तो भाभी ने इसीलिए लिफ़ाफ़े को अधखुला-अधसटा छोड़ दिया था। क्या वे चाहती थीं कि यह चिट्ठी मैं भी पढ़ लूँ?

तो क्या मकर संक्रान्ति वाली बात भी वे जानती हैं?—इस ख्याल के आते ही विपिन बुरी तरह चिन्तित हो उठा। वह उसी तरह सहज गति से डग बढ़ाता क़स्बे की ओर चला जा रहा था। पर उसे लगता था कि पता नहीं क्यों चलते समय हवा में हिलती धोती आज पैरों के चौगिर्द एक बोझ की तरह लिपट-लिपट जाती है।

• •

छत्तीस

विपिन जब चौक में देवनाथ की दूकान पर पहुँचा तो क़रीब पाँच बज रहे थे। उसने सिर पर बँधी हुई तौलिया उतार ली। मुंह का खुला हुआ भाग लू में बुरी तरह झुलस गया था। नाक का भीतरी हिस्सा खुश्क हवा खींचते-खींचते बिल्कुल सुन्न और अचेत जैसा हो गया था।

देवनाथ की दूकान पूरी खाली थी। वह भीतर की कोठरी में चारपाई पर बैठा कुछ पढ़ रहा था। विपिन को देखते ही उछलकर दालान में आ गया।

"कहो डाक्टर।" बग़ल की कुर्सी पर अपने शिथिल शरीर को फेंकते हुए विपिन ने कहा—"एकदम सन्नाटा लग रहा है। क़स्बे में भी मरीजों की कमी, आश्चर्य है!"

"तो आप भी लगता है मेरे पिता जी के मुरीद हो गए हैं कि क़स्बे में दूकान खुली नहीं कि मरीज़ों की ठेलम-ठेल मच जायेगी। रुपयों की वर्षा होने लगेगी।"

"होना ही पड़ता है भाई मुरीद ऐसे लोगों का, जिन्होंने दुनिया देखी है। नीच-ऊँच समझते हैं। उनके तजुर्बे से लाभ उठाना कोई गुनाह तो है नहीं।"

देवनाथ मुसकराया।

"खैर छोड़िए। इस पर तो बात बाद में भी होती रहेगी। क्या लीजिएगा, गोल्ड स्पाट, कोका कोला या नीबू का शरबत।"

"भाई, मुझे तो नीबू की शिकंजी ही मँगा लो। ढेर-सा ठंढा पानी साथ में। बस और कुछ नहीं।"

"और चार पत्ती गुलाबजल डाला पान भी जयकिसुन पंडित की दूकान से और हाँ, लाल पत्तीवाला खुशबूदार जर्दा भी बस न ?" देवनाथ बोला।

विपिन हल्के मुसकराया—"सुनो देवनाथ। उधर किसी को भेज रहे हो तो, पंडित की दूकान से यार एक बोतल गुलाबजल भी मँगा लेना। कनिया की फ़रमाइश है। मिश्री तो बग़ल में तुलसी की दूकान पर भी मिल जायेगी।"

उसने जेब से दस का नोट निकालकर देवनाथ की ओर बढ़ाया। देवनाथ दूकान के बाहर निकला। उसने किसी को हाँक देकर बुलाया। और सब चीजें ले आने को सरेखकर पुनः विपिन के सामने कुर्सी पर आकर बैठ गया।

दोनों एक क्षण चुप रहे। सहसा विपिन की दिलचस्पी कमरे के उपकरणों के प्रति बढ़ गयी थी। वह कोने में रखी दवाओं की आलमारी, आलमारी के सिरे पर पाटन में रखी तरह-तरह के लेबुलों की खाली बोतलें और दीवाल पर टँगे फटे-पुराने कैलेंडरों को बड़े ग़ौर से देखने लगा था। देवनाथ को यह समझते देर नहीं लगी कि यह सब किसी बहुत उद्यत बात और उससे उत्पन्न होनेवाली संभाव्य कटुता को बचाने का बहाना मात्र है।

"कैसा लग रहा है यहाँ ?" विपिन कमरे के सामानों से बहुत जल्दी ऊबकर बोला।

"बहुत अच्छा।" देवनाथ हल्के मुस्कराया। उसकी आँखों में मुक्ति की एक चमक थी—"खूब मजे से हूँ यहाँ। न हाय-हाय, न झाँव-झाँव। सुबह कुछ भीड़ जरूर रहती है। मरीज़ों में घिरा रहता हूँ। बारह-एक बज जाते हैं। खा-पीकर दोपहर भर सोता हूँ। शाम को प्रायः भीड़ नहीं होती। सिर्फ़ दो-चार इस्तेमरारी मरीज़ कभी-कभार आ जाते हैं, जिन्हें कोई जल्दी नहीं होती। घंटों बैठकर गप्पें करना ही उनके लिए सबसे बड़ी दवा है। बड़ी बात यह कि यहाँ कोई बिना समझे-बूझे मेरे मामले में टाँग नहीं अड़ाता। किसी को मेरे प्रयोगों से जलन नहीं होती।"

विपिन हँस पड़ा—"लगता है बाप-बेटे में काफ़ी खिचाव आ गया है।"

"खिचाव बिल्कुल नहीं है। मेरे मन में कभी नहीं था। लेकिन कोई अगर अलानाहक़ इसी पर उतारू हो तो क्या किया जा सकता है। उन्हें मेरे हर काम पर शक होने लगा था। दवा लाने बनारस जाऊँ तो, कोई सामान ख़रीदने क़स्बे जाऊँ तो, वे चिढ़ जाते थे। लौटकर पाई-पाई का हिसाब देने पर भी उनको संतोष नहीं होता था। मैंने सुना था कि साझे वाली दूकानों के पार्टनर कभी-कभी एक दूसरे पर बड़ी चौकसी और निगरानी रखते हैं और परस्पर सन्देह के ज्वर से तपते-भुनते रहते हैं, पर कोई बाप बेटे से ऐसा सलूक करेगा, यह तो मैंने सपने में भी नहीं सोचा था।"

"तुम कल्पू की दवाई पर इतना ध्यान क्यों देने लगे ?" विपिन ने न चाहते हुए भी यह सवाल कर दिया।

एक क्षण के लिए देवनाथ का चेहरा एकदम पीला पड़ गया। उसका पूरा चेहरा जैसे शरीर से अलग होकर अपने अस्तित्व का बोध करने के लिए छटपटा रहा हो। वह वैसे ही बैठा रहा। विपिन को दुःख हुआ कि उसने नाहक एक सहज सामान्य स्थिति को कटु बना दिया।

"उन्होंने कहा होगा आपसे ?" उसने दरवाज़े से बाहर सड़क की ओर देखते हुए कहा।

"हाँ, कहा था मुझसे। जग्गन मिसिर ने उन्हें कई बार रोकने-टोकने की कोशिश भी की, पर उन्होंने उनको एक किनारे कर दिया। मुझसे सब कुछ बताने का जैसे संकल्प कर लिया था। कहने लगे देवू विपिन का दोस्त है। इसलिए विपिन को सही बात बताना ज़रूरी है।"

"यानी यह कि यदि मैं बताता आपको तो सब ग़लत बताता ?" वह चिलककर बोला।

"ग़लत न भी बताते तो भी सारा दोष उनको देते यह सोचकर....।"

"हूँ। आदमी भी कितना बेढब जीव होता है। जितनी आसानी से वह अपना पक्ष निश्चित कर डालता है, उतनी ही आसानी से वह उसकी रक्षा के लिए अच्छा-बुरा सब कुछ करने को तैयार भी हो जाता है। हमारे बाबू जी यह मानते हैं कि अपने घर में उनका एक पक्ष है, बाक़ी लोगों का एक पक्ष, सिर्फ़ उनका पक्ष सही है, बाक़ी लोगों का पक्ष ग़लत है, अनुचित है और परिवार की प्रतिष्ठा के लिए घातक है। वह जो सोचते हैं ठीक है, बाक़ी लोग जो सोचते हैं ग़लत है। इसलिए बाक़ी लोगों को सोचने का कोई हक़ ही नहीं है। यह झगड़ा आज का नहीं है विपिन बाबू। बहुत पुराना है।"

तभी विपिन के लिए शिकंजी, देवनाथ के लिए शरबत लिए हुए एक लड़का दूकान में हेल आया। देवनाथ ने गिलास उसके हाथ से लेकर विपिन को दे दिया। अपना लेकर वहीं कुर्सी पर बैठ गया।

"हे गिरधर।" देवनाथ शरबत की चुस्की लेता हुआ बोला—"बर्फ लाया है न ?"

लड़के ने पीठ पर लटकती गठरी को आगे किया। बर्फ के ढोके के ही साथ गुलाबजल की बोतल भी बँधी थी। इस चतुराई भरी व्यवस्था पर देवनाथ को प्रसन्न होते देख लड़का हँस पड़ा।

"बोतल यहीं रख दे मेज पर। बर्फ लेकर भीतर चला जा। अम्मा से पानी माँग लेना लोटे में। उसी में बर्फ डालकर ले आ। पैसे भी लाया है न ?"

लड़के ने रुककर गमछे के खूँट में बँधा पैसा खोला। नोट और पैसे देवनाथ के हाथ पर रखकर वह बर्फ लिए हुए भीतर दौड़ गया।

पानी भरा लोटा देकर लड़का भागने को ही था कि देवनाथ ने टोका —"और पान ?" उसने जेब में हाथ डालकर पत्ते में बँधे पान का चौघड़ा निकाला। अपनी बेवकूफ़ी पर कुछ उदास, कुछ लज्जा का अनुभव करते हुए लड़का फिर हँसा और चौघड़े को मेज पर टिकाकर फुर्र से भाग चला।

"उनका मुझ पर कतई विश्वास नहीं है।" देवनाथ सहज ही उस मनःस्थिति में पहुँच गया था, जहाँ अदना से अदना दबाव भी सहा नहीं जाता। वह जल्दी से जल्दी अपने मन के सभी भारों से हल्का होने के लिए जैसे छटपटा रहा था। उसने एक लम्बी साँस ली और कहने लगा— "अव्वल तो वे मुझे पढ़ाने को ही तैयार नहीं थे। क्या करेगा आगे पढ़कर। ज़माना ख़राब है। अवारा बन जायेगा। किसी तरह महेशपुरा के जीजा के कहने से बनारस भेजने को तैयार हुए तो 'क्या पढ़े' पर बहस छिड़ गई। पढ़ाना ही है बाहर भेजकर तो बाभन के लड़के को धर्मशास्त्र, कर्मकाण्ड वग़ैरह पढ़ाना चाहिए। जीजा ने हठ किया कि नहीं डाक्टरी पढ़ाइये। बाबू जी एकदम नकर गए। जीजा ने कहा कि खरचा वे देंगे। बस, सारी बहस ठंढा हो गयी। डाक्टरी तो धनवंतरी-विद्या है। जनता-जनार्दन की सेवा है। लगे घूम-घूमकर बखान करने। आस-पास के गाँवों में किसी का लड़का पढ़ रहा हो, और यदि उसके दरवाज़े पहुँच जायँ पिता जी तो बिना माँगे उपदेशों का रिकार्ड बजने लगता—ऐसा करिए बाबू साहब कि आगे चलकर लड़का डाक्टरी लाइन में जाए। देखिए न दुनिया भर के लोग कहते थे कि देवू को यह पढ़ाओ वह पढ़ाओ, मैंने कहा ना, पढ़ेगा तो डाक्टरी नहीं घर रहेगा। बस, यही एक लाइन है श्रीमान् कि आदमी रुपया भी कमाये और सेवा करके पुण्य भी पाये।

"एकाएक गंगजली बहिन के प्रति भी उनका स्नेह आसमान छूने लगा। इसी बीच किसी नेमी धर्मी कर्मकांडी पूज्य ब्राह्मण की लड़की से मेरी शादी तै कर बैठे। मैंने बहुत नम्रता से कहा, इतनी जल्दी क्या है। पढ़ लेने दीजिए। हो जायेगी शादी भी। आप यक़ीन नहीं करेंगे विपिन बाबू, माँ कहती थी कि बनारस से लौटकर पाँच दिन तक अनशन किया था उन्होंने। बस एक ही रट—हो गया साला अवारा। गया काम से। मैं पहले ही

जानता था कि शुक्र की महादशा में जन्मा है। कुल कलंक होगा। वही बात सामने आयी। आकर ही रही।

"अब जब डाक्टरी पास करके लौटा तो झगड़ा दूकान की जगह को लेकर खड़ा हो गया। पता नहीं कैसे उस दिन वे आपके कहने पर चुप रह गए। वे बिल्कुल नहीं चाहते थे कि मैं गाँव में दूकान खोलूँ। मैंने सोचा था कि शायद बाबू बदल गये हैं। बदले वे बिल्कुल नहीं थे सिर्फ़ पैंतरा बदल लिया था। जितने दिन मैं गाँव रहा, उन्होंने नाकों दम कर दिया।

"कल्पू की दवाई के प्रसंग पर आखिर तू-तू, मैं-मैं हो ही गयी। इसी बीच जगजीत सिंह बो ने जाने क्या-क्या कहा अम्मा से कि जिसे सुनकर उनका चेहरा एकदम विकृत और काला पड़ गया। मैंने यह चीज़ भाँप ली और बात बढ़े नहीं, इसी डर से कल्पू के यहाँ जाना ही छोड़ दिया। उसके बाद तो बेचारा दो ही तीन दिन तो ज़िन्दा भी रहा। एक दिन अचानक खून की कै हुई। खुद बंशी सिंह दौड़े-दौड़े आये मुझे बुलाने। मैं कुछ न बोला। बाबू सामने चौकी पर बैठे थे। बुड्ढा गिर पड़ा उनके पैर पर। मगर उपधिया जी टस से मस नहीं हुए।

"चलिए मैं चल रहा हूँ।" मैंने चुपचाप बगल से दवाइयों का बक्सा उठाया और बंशी सिंह को लेकर चला गया उनके घर। काफ़ी देर हो गयी थी। दूषित रक्त सारे शरीर में फैल गया था। कुछ कर नहीं सका। मैं जानता था कि बेचारा अब थोड़ी देर का मेहमान है। उसी रात उसका देहान्त भी हो गया।

"असल में विपिन बाबू, ये लोग हमें इसलिए नहीं पढ़ाते कि लड़का पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़ा हो जायेगा। अपनी ज़िन्दगी आप जीने की उसमें शक्ति आ जायेगी। नहीं, वे पढ़ाते इसलिए हैं कि पढ़े लड़कों को भँजाने से ज्यादा पैसा मिलता है। इसलिए ये कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते कि पढ़-लिखकर आदमी गाँव में रहे। जिसे गाँव में रहना हो, वह अपढ़ रहे ताकि वह आसानी से उनका मूर्खता-पूर्ण शासन ढोता रहे, और यदि पढ़ा-लिखा है तो बाहर जाये, क्योंकि पैसा गाँव में नहीं होता, जिसे बटोरने के निमित्त उसे पढ़ाया गया।"

विपिन ध्यानपूर्वक देवनाथ की बातें सुन रहा था। उसके तर्क और निष्कर्ष दोनों ही इस तरह के भावावेश के साथ कहे गये थे कि अचानक विपिन को हल्की हँसी आ गयी। उसे लगा कि देवनाथ ने जानकर बहुत सी बातें छिपा ली हैं। और शायद इस दुराव को ढँकने-तोपने की कोशिश में ही वह इतने भावुकतापूर्ण ढंग से बोल रहा था। उसने पटनहिया भाभी का जिक्र भी नहीं किया जबकि अपनी चिट्ठी में उन्होंने साफ़ लिखा है कि देवनाथ ने कुछ आगे बढ़ने की कोशिश की थी।

"तो पटनहिया भाभी से तुम्हारा कोई लगाव नहीं था?" विपिन बोला।

"आप भी शायद गाँववालों की बकवास को सत्य मान बैठे हैं।" देवनाथ के चेहरे पर पुनः वही घायल पीलापन दौड़ गया।

"गाँववालों की गप्पबाज़ी में तो मुझे कोई विश्वास नहीं। पर वे खुद अपने बारे में झूठ क्यों बोलेंगी? उन्होंने कनिया को एक चिट्ठी लिखी है। इसमें लिखा है कि तुमने कुछ कोशिश की थी।"

"क्या? उस हरामज़ादी कुतिया ने ऐसा लिखा है भाभी को?" वह विपिन की ओर यों देखने लगा, जैसे किसी ने उसके पेट में घूसा मार दिया हो। वह एक क्षण वैसे ही बैठा रहा, फिर धीरे-धीरे बोला—"तो यह है उसका मज़ाक और मनोविनोद। उसकी बात की क्या वक़त विपिन बाबू। उसने तो मुझसे कहा कि पिछली मकर संक्राति को गंगा नहाने के लिए वह कनिया से पूछने गयी थी छावनी में। कनिया थी नहीं। आप थे सिर्फ़। वह कहती थी कि आपने बुरे विचार से उसका हाथ पकड़ लिया था। वह हाथ छुड़ाकर भाग आयी थी।"

"अच्छा!" विपिन का चेहरा देखने लायक़ था। अपने ही मारे हुए दावँ से अंटाचित्त होकर जैसे कोई पहलवान आसमान ताकने लगा हो। एक लमहे के लिए उसकी फटी-फटी आँखों में भले ही आश्चर्य दिखा हो,

दूसरे क्षण तो विपिन की गर्दन अपने आप झुक गयी थी। देवनाथ खुद की मनःस्थिति से इस तरह जूझ रहा था कि उसने विपिन के मनोभावों को लक्ष भी नहीं किया। दोनों अपने में लीन, दोनों अपने में सुस्त और शिथिल पड़े रहे।

काफ़ी देर तक दोनों के बीच एक मुरदा सन्नाटा पसरा रहा।

"अब आपका क्या विचार है विपिन बाबू ?" देवनाथ बोला—"साल भर तो हो गया गाँव में रहते। अभी भी मन में ग्राम-सुधार का उत्साह बचा है या कुछ अपने बारे में भी सोचना-वोचना है ?"

"मारो साले गाँव को गोली।" विपिन के मन में महीने भर से जो विरक्ति भरी थी, सहसा उसे जैसे सर्वमान्य अर्थ मिल गया। वह निःसंकोच कहता गया—"साल भर तक मैंने इस गाँव में रहकर यह जान लिया है कि यहाँ किसी भले आदमी का रहना मुश्किल है। यह एक जीता-जागता नरक है, जिसमें वही आता है जिसके पुण्य समाप्त हो जाते हैं। चारों ओर कीचड़, बदबूदार नाबदान, गू-मूत, बीमारियाँ, कुलबुलाते कीड़े, मच्छर, जहरीली मक्खियाँ—इसके बीच भुखमरी, डरावनी हड्डियों के ढाँचे, किंचरीली आँखों और बीमारी से फूले पेटवाले छोकरे, घरों में बन्द गन्दगी में आपाद मस्तक डूबी औरतें, जो एक दूसरी को खुले आम चौराहे पर नंगियाने में ही सारा सुख और खुशी पाती हैं, धुँधुवाते मन के अपाहिज जैसे नवयुवक, जो अँधेरी बन्द गलियों में बदफेली करने का मौक़ा ढूँढ़ते फिरते हैं, हारे-थके प्रौढ़ जो न गृहस्थी के जुये को उतार पाते हैं, न उसमें उत्साह से जुत पाते हैं। मौत का इन्तजार करते बुड्ढे अपने ही बेटे-बेटियों से उपेक्षित बिलबिलाते रहते हैं—यही न हमारी जन्मभूमि करैता। भइया, मैं तो भर पाया। साल भर तक इस गाँव को देखकर जान लिया कि यदि कुछ दिन और यहाँ रह गए तो हम भी तन-मन से इस महाकाय घूरे का एक हिस्सा बन जायेंगे। लेकिन जायँ कहाँ ? यहाँ से भागने को तो मन हमेशा करता है, पर जाने का कहीं ठौर-ठिकाना सूझता नहीं। एक तरह से तो तुम्हीं अच्छे रहे। कुछ दूर तो हट गये वहाँ से।"

"खाक अच्छे रहे। आप भी विपिन बाबू कैसी बातें करते हैं। आप समझते हैं कि बाबू, चूँकि अब मैंने यहाँ दूकान खोल ली है, मुझे चैन की साँस लेने देंगे। आप देखते रहियेगा। वे वहाँ गाँव में बैठकर झगड़े का नया 'प्वाइंट' तलाश रहे होंगे। कुछ नहीं मिलेगा कारण, तो इसी बात पर लड़ जायेंगे कि मैं कस्बे में इतने चैन से बैठा हूँ गोया यही जिन्दगी की नियामत है। इसलिए मुझे सुरक्षित बिल्कुल ही मत समझियेगा। हाँ, यह है कि मैं अब केन्द्र में नहीं हूँ, परिधि पर आ गया हूँ। रही बात आपकी तो आपके लिए चारों ओर रास्ता ही रास्ता है। आप तैयार होइए।" इतना कहकर देवनाथ उठा। उसने बगलवाली मेज़ की दराज़ खोली। एक बड़ा सा काग़ज़ लेकर वापस लौटा।

"यह लीजिये।"

"क्या है यह ?"

"पिछले हफ्ते 'आज' में एक विज्ञापन था। ग़ाज़ीपुर डिग्री कालेज में इतिहास के प्राध्यायक की जगह खाली है। मैंने आपके नाम से यह फार्म मँगवा लिया था।"

"अरे वाह रे देवू।" विपिन कुर्सी पर से उठा और उसने देवनाथ को अँकवार में भर लिया। सहसा देवनाथ का चेहरा अजीब लजीली मुस्कान में डूब गया। हल्की लाली से उसका मुखमंडल बड़ा मासूम और सुन्दर लगने लगा था। दोनों को लग रहा था कि वे सहसा उम्र में दस-पन्द्रह साल छोटे हो गए हैं। एक चिरपरिचित स्पर्श दोनों के भीतर की जड़ता को गला रहा है। दोनों के परस्पर सटे शरीर एक-दूसरे की धड़कनों में जैसे नहा रहे हों।

दोनों एक-दूसरे की ओर कृतज्ञता और सहानुभूति से भरी-भरी आँखों से देखते हुए अपनी-अपनी कुर्सी पर बैठे तो देवनाथ बोला—"आप इसे अभी भर दीजिए। कल अपनी सर्टिफिकेट्स भेज दीजिएगा। मैं कापी वगैरह कराकर अटेस्ट करा लूँगा। आपको कुछ नहीं करना है। सिर्फ़ देखते चलिए।"

विपिन के हाथ में आवेदन-पत्र रखकर देवनाथ बाहर की सड़क की ओर लपका।

"कहाँ चले ?"

"ज़रा एक दौर और हो जाये शर्बत का, क्यों ?"

"अब शर्बत-वर्बत रहने दो। पान और पानी से ही काम चल जायेगा।"

"आप भरिए न फार्म, मैं अभी आता हूँ।"

●

उस शाम विपिन को लग रहा था कि जैसे वह फिर होस्टल के पुराने कमरे में आ गया है। युनिवर्सिटी का जीवन हमेशा सक्रिय रहता था। सुबह से शाम तक तरह-तरह के लोगों से मिलना-जुलना। बातें करना। बहसें करना, गप्प करना और ठहाके लगाना। वहाँ अपरिचित लोगों का एक अद्भुत परिचय-लोक बन गया था, जिसमें अक्सर आदमी अपने को भूला-भूला रहता है। वहाँ एकान्त और सन्नाटा तब आता था, जब नये परिचय की ऊपरी सतहों पर तैरते-तैरते मन थककर डूब जाता था। तब नीचेवाली सतह में एक अजीब अकेलापन, उदासी और सबसे कटे होने का भाव चारों ओर से लपेटकर बैठ जाता था सीने पर लदा हुआ। इस तरह की मनःस्थिति में बहुत देर तक गुमसुम बैठे रहना विपिन को अच्छा नहीं लगता था। थका-थका लेटा हुआ वह इन्तज़ार करता कि शायद देवनाथ आ जाए। अक्सर ऐसा हुआ है कि ऐसे मौक़ों पर देवनाथ आ जाता था। टेलीपैथी या जो भी कहें इसे। न आए देवनाथ तो विपिन खुद ही उसके होस्टल में पहुँच जाता था। दोनों घण्टों गाँव-घर की फ़ालतू बातें करते रहते थे। ये बातें कितनी मामूली और निरर्थक होती थीं, यह विपिन भी जानता था और देवनाथ भी। पर इसी कदर्थ मामूली के भीतर से घूम-फिरकर जब विपिन लौटता था तो उसे लगता था कि अचानक वह हल्का हो गया है। सारी उदासी और थकावट जाती रही है।

आज दोनों गाँव में ही हैं। सारी हरारत और थकावट को मिटा देने वाली स्मृतियों की अपनी जन्मभूमि में, साक्षात् उपस्थित, साक्षात् विद्यमान। पर लगता है कि आज वे फिर अचानक यूनिवर्सिटी के उसी होस्टल के कमरे में बैठे हैं।

●

शाम उतर गयी थी। अँधेरा होने लगा था। विपिन गाँव चलने को हुआ तो देवनाथ ने मिश्री और गुलाबजल की बोतल झोले में रखकर उसे खुद अपने ही हाथ में लटका लिया। दोनों बड़ी देर तक रेलवे सड़क के किनारे-किनारे चलते रहे।

"अब तुम लौटो, यह देखो सीपिया नाले का पुल आ गया। रात हो जायेगी, लौटते-लौटते।" विपिन ने देवनाथ से झोला लेने के लिए हाथ बढ़ा दिया।

"चलिए पुल तक।" देवनाथ बोला—"ऐसी गर्मी है कि कहीं आने-जाने का जी नहीं करता। कई दिन बाद तो निकले हैं घूमने।"

साँझ की हवा धीरे-धीरे काफ़ी सुहानी होने लगी थी। सड़क के दोनों बाजुओं पर खड़े टेलीफोन के खम्भे धुँधलके में ढँकते चले जा रहे थे। हवा की टकराहट से सिरों पर बँधे तारों से अजीब तरह की तन्द्रिल झनझनाहट फूटकर चारों तरफ फैल रही थी।

सीपिया नाला अपने दोनों किनारों पर उगी कँटीली झाड़ियों के बीच टेढ़े-मेढ़े साँप की तरह लेटा लम्बी-लम्बी साँसें खींच रहा था।

तभी उसके दाहिने किनारे के चिकनी सफेद पगडण्डी से खड़बड़-खड़बड़ की ध्वनि आने लगी। बीच-बीच में 'हट्-हट्' की आवाज़ बदस्तूर उठती और विलीन हो जाती।

सर सूखे पंछी उड़ैं औरनि सरहिं समाहिं।
दीन मीन बिनु पंख के, कह रहीम कहँ जाहिं॥

चिरपरिचित पहचानी आवाज़, बिरहे की लोच और आलाप की लचक का वही पुराना जादू....समूचे शान्त और चुप वनस्पति लोक पर छा गया हो जैसे। तभी गीत की सारी मोहकता को चीरती मालगाड़ी निकल गयी। खड़र, खड़र, खड़र, खड़र।

"सुरजितवा है न?" विपिन ने पूछा।

"सुरजितवा कहाँ है अब?" देवनाथ बोला—"बीसू बरेठा होगा, नदी से आ रहा। सुरजितवा ने तो क़स्बे में लांड्री खोल ली है। बसस्टैंड के पास। आया था एक दिन मेरे यहाँ। कहने लगा देबू भइया अब किसी दूसरे धोबी से कपड़े मत धुलवाइयेगा। एक कम्पनी खोल ली है मैंने। बड़ा मगन था।"

"अच्छा?"

"हाँ, लेकिन बीसू बड़ा चिढ़ा है। एकदिन आया था दवाई को।"

विपिन पुल से उतरा तो गधों पर लादी लादे उसने बीसू को बग़ल से निकलते हुए देखा।

"का हो बीसू....?"

"के है? मलिकार, अरे वाह, महराज जो भी हैं। अन्हार कर दिया काहे सरकार लोगों ने? दिन आछत लौट आना चाहिए न कस्बे-बाजार से?"

"सुरजितवा नहीं है क्या हो बरेठा। इस उमर में तोहें नद्दी जाये में तो बड़ी तकलीफ़ होगी।" विपिन ने बीसू को छेड़ने की गरज से कहा।

"मारिये साले को। सरकार, हमसे कहने लगा कि तुम्हीं मुफुत में नरक साफ करो। हमसे नहीं हुइहै ई सब। इसी गाँव में बीसों पुश्त गल गया अपना। अब ई नरक हुइगा। अरे मादरचो....नमकहराम। दाने-दाने को लाले पड़ जायेंगे। जो जन्मभूमि को तोहमत लगायेगा वोका मुँह में अच्छत नसीब नाहीं होगा, हाँ। भला बताइए सरकार। गाँव में हर कपड़ा पीछे इकन्नी पइसा कौन देगा हमको? कहने लगा कि इकन्नी पइसा लो तो हम लुग्गा धोवेंगे। हरमेसा से यहाँ अगहनी और चैती में धोबी को

एक बोझ फसल का डाँट उबरुआ में देते हैं लोग। परब-त्योहार पर खायक भी। इसी में साल भर कपड़ा धुलता है। अब हम कैसे पुरखा-पुरनियों की चलन बन्द कर देवें तेरे खातिर। नहीं धोवेगा, मत धो, जा चूल्हे भाड़ में। जब तक जीवेंगे अपना नेम निबाह देंगे। मर जावेंगे तो जो तेरे जी में जो आवै करना। अच्छा सरकार।" उसने हाथ जोड़ा और चल पड़ा।

गधे धुंधलके में स्याही की तस्वीर की तरह निश्चेष्ट थे। बीसू ने गमछे से आँखों की गर्द पोछी और गधों को टिटकारकर चलने का संकेत किया।

देवनाथ वहीं से लौट गया। विपिन छावनी में जलती धूमिल लालटेन की जोत को देखता हुआ गाँव की ओर चलता गया।

• •

सैंतीस

पचीस जून को पानी बरसा। किसानों के चेहरे खुशी से खिल उठे। ऐसे आशावान प्राणी दुनिया में शायद ही कहीं मिलें। पिछले दो-तीन वर्षों का सूखा और अकाल भी आशा के इस बिरवे को मार नहीं सका। पौधा झुलस गया। डालें खंखर हो गयीं। भूख की ज्वाला से पेट की आँतें ऐंठती रहीं। चेहरे पर स्याही घनी होती रही। पर पानी बरसा तो लोग जैसे नहा-धोकर एकदम ताज़ा होकर वापस लौट आये। शरीर पर परत पर परत जमी निराशा एकदम धुल गयी।

गाँव में सब जगह उमंग और खुशी थी। अचानक जैसे लोग एक लम्बा दुःस्वप्न देखते-देखते जग गए हैं। चेहरों पर बुरे सपने की छाया अब भी थी, भयानक दृश्यों की यादें इतनी जल्दी कहाँ मिटती हैं। पर जागरण की चेतना फिर से एक बार मन की शक्तियों को सँजो रही थी। लोग हँसते थे, मुसकराते थे। खेती के उपकरणों को जुटाने-जुहाने के दौरान गुनगुनाते थे।

छावनी पर भी चहल-पहल थी। हलवाहे इकट्ठा हो गए थे। वे अपने सामानों को बड़ी ममता से सुधार-सँवार रहे थे। यह भी एक अजीब बात है। बैल, हल, संटी, पैना, ये ही चीज़ें हैं, जो हलवाहे को अपने चंगुल में दबोचकर निचोड़ती रहती हैं, पर इन्हीं के प्रति, यह जानते हुए कि ये चीज़ें गृहस्थ की हैं, ये अच्छी हालत में रहें तो, बुरी हालत में रहें तो, उनको इससे कुछ लेना-देना नहीं, वे कितनी आत्मीयता और निजता से भर जाते हैं। मेरे बैल, मेरा हल, मेरी संटी की यह भावना उन्हें इन चीज़ों में एकदम तदाकार कर देती है।

बीचोंबीच चबूतरे पर माचा डालकर रमचन्ना बैठा है। सर पर बँधी पगड़ी, न ढीली न कड़ी। होंठ में सुरती दबाये वह एक क्षण आसमान को देखता है। धुँधुआता, बदरौंहाँ, गरदीला आसमान। एक क्षण वह अपने दैत्याकार झुके शरीर को देखता है, श्रम से थका, थकावट से संतुष्ट। फिर काँख में दबाये सन के मुट्ठे से रेशे खींचकर, वह उन्हें चुटकी में बटोर लेता है। ढेला चलाता है, नाचता है, भँवर काटता है, और अनमिल रेशे एक में बँटकर, मिल-ऐंठ सुतली में बदल जाते हैं, जिसे वह ढेले के हत्थों पर बड़े करीने से लपेट लेता है।

विपिन गाँव में जन्मा, गाँव में बढ़ा, पर वह उन किसानों की तरह नहीं है, जो छोटी सी खुशी के आगमन पर लम्बे-लम्बे दुःखों को भूलकर भविष्य की आशा में डूब जाते हैं। न तो वह उन हलवाहों की ही बराबरी कर सकता है, जिन्हें अपने को दबोचकर चंगुल में कसनेवाली पराई चीज़ों से घनी आत्मीयता हो जाती है और न तो रमचन्ना की तरह उसकी चुटकी में वह ताक़त ही है कि वह अनमिल रेशों को ढेले पर चक्राकार नचाकर एक में बँट सकता है।

●

विपिन ने नौकरी के लिए आवेदन-पत्र भेज दिया था। साक्षात्कार के लिए भी बुलाया गया था। पर अभी तक नियुक्ति के बारे में कोई सूचना

नहीं मिली। शायद नहीं मिलेगी। वह सोचता। गाँव छोड़कर बाहर जाने की उसकी इच्छा ने उसे पिछले डेढ़ महीने से काफ़ी बदल दिया है। गाँव की एकरस उदासीनता और कुढ़न पैदा करनेवाली बदरंग बोल-चाल को सहने की रही-सही ताक़त भी खतम हो गयी। विरक्ति का भी अपना एक अलग स्वाद है। लगाव और सम्बन्धों के बन्धन कभी-कभी आदमी को एक बेढब संकट में डाल देते हैं। वह न तो उन्हें निर्मम होकर तोड़ पाता है और न तो उनकी बेहूदा कसन को ही झेल पाता है।

उस दिन विपिन को साक्षात्कार के लिए ग़ाज़ीपुर जाना था। उसने जानकर यह सूचना कनिया को नहीं दी थी। पता नहीं रोक-टोक करें। ऐन मौक़े पर जान ही जायेंगी।

वह सुबह जमनिया से बस पकड़कर जानेवाला था। बस बड़ी सुबह करीब छह बजे ही छूटती थी। उसने सोचा था कि शाम को गाँव से चल कर क़स्बे में देवनाथ के यहाँ ठहर जायेगा। पर बाद में उसने यह इरादा भी बदल दिया। अब वह चार बजे सुबह उठकर सीधे जायेगा। पर उतनी सुबह उठकर दरवाज़े से बखरी में जाना, कपड़े वग़ैरह लेने के लिए दरवाज़ा खुलवाना क्या ठीक होगा? रात का खाना खाकर विपिन छत पर चला गया। चमड़े की पेटी में कपड़े वग़ैरह ठीक ही कर रहा था कि कनिया कोठरी में हेल आयीं।

"सुबह की बस से जाओगे न ?"

वह बक्से के पास बैठा-बैठा कनिया की ओर टुकुर-टुकुर ताकता रहा।

"सोचते होगे कि यह मुझे कैसे मालूम ? क्यों विप्पी, मुझसे बिना कहे जाने में ज्यादा खुश हो ?"

वह कुछ न बोला।

"मैंने चन्ना से कह दिया है। वह सुबह तुम्हारे साथ चला जायेगा।"

"चन्ना को क्यों कहा तुमने ? इसमें सामान ही कितना है ? एक पैंट, एक कमीज़। मैं तो सोचता हूँ कि झोले में ही रख लूँ।"

"तो वह झोला लेकर ही चला जायेगा।" कनिया बोलीं।

विपिन जानता है कि कनिया यह सब उसके प्रति सहज ममत्व के कारण ही कह रही हैं, पर न जाने क्यों उसे कनिया की ये सदिच्छाएँ भार जैसी लगने लगीं। उमस और गर्मी से दम घुटते वक़्त जैसे कोई मच्छरदानी डालने की ज़िद करे और तबीयत चिड़चिड़ा जाय।

"मैं क्या दूध-पीता बच्चा हूँ, जो मुझे चन्ना पहुँचाने जायेगा ?" वह रूखे ढंग से बोला।

उसने आज तक कनिया से कभी ऐसे बात नहीं की थी। उसे खुद अपनी कठोरता बहुत अच्छी नहीं लगी। हल्की आशंका भी हुई मन में, शायद कनिया नाराज़ हो जायँ। पर इन सबके भीतर कहीं अपने को मात्र अपने अधीन समझने की अनजानी खुशी भी थी कि वह आज से अपने हर काम और उसके नतीजे के लिए खुद ही ज़िम्मेदार होगा।

"कभी बक्सा लेकर इस तरह आये-गये भी हो ?" कनिया के चेहरे पर कोई परिवर्तन नहीं था, यदि रहा भी हो तो वह सहज लक्षित नहीं किया जा सकता था। कुर्सी का हत्था पकड़े-पकड़े वैसे ही बोलीं—"मैं तुम्हारे रास्ते में कभी रुकावट तो नहीं बनी विप्पी, और कभी बनूँगी भी नहीं। तुम्हारी खुशी में ही मेरी खुशी है। इतना जरूर चाहती हूँ कि जाते समय मुझे बेगाना बनाकर मत जाओ। हाँ, यह मेरा अन्तर्यामी जानता है विप्पी कि इससे अधिक मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहती। यह चाहना भी तुम्हें भार लग रहा हो तो यह भी न चाहूँगी।" इतना कहकर कनिया मुड़ीं और कोठरी से बाहर हो गयीं।

विपिन वैसे ही बैठा रहा। उसे तभी एक विचित्र तरह के भाव ने घेर लिया था। कुछ न चाहते हुए भी वह कुछ कह बैठा। न तो वैसा कहने का उद्देश्य ग़लत है, न तो वह किसी के प्रति कोई अनुचित काम ही कर रहा है। वह सिर्फ़ अपने प्रति पहले से ज़्यादा ध्यान देना चाहता है, बस। पर यह भी लोगों से सहा नहीं जाता। लोग चाहते हैं कि वह यहीं सड़े। घर में रहते हुए भी घर में न रहे। अपने लिए न कुछ सोचे, न करे। बस, इस घर की सड़ी हुई जहन्नुम-रसीद होती गाड़ी को रोकने के लिए

अपना अस्तित्व अड़ा दे। आज भाई साहब चोरी में पकड़ गये, कल बदमाशी में पकड़ गये। आज वे युद्ध करने जा रहे हैं, कल वे गोल बाँध रहे हैं। आज वे खेत बेच रहे हैं, कल गहने बेच रहे हैं। मैं उनके इस टुच्चे कामों का लेखा-जोखा करता यहीं पड़ा कूड़ा बनूँ। हुँह्।

अचानक विपिन का पूरा शरीर एक असफल क्रोध की लपट में झुलसने लगा था। होती हैं नाराज़ तो हों। कह देता पहले तो बीस तरह की बातें करतीं। क्या तकलीफ़ है तुम्हें ? क्यों उदास हो ? क्या असुविधा है तुम्हें यहाँ ? मुझसे नहीं बताओगे ? अच्छा भई, मत बताओ, मैं होती हूँ कौन पूछनेवाली। यानी यह कि दुनिया भर के परोगे पढ़तीं और जाना हराम कर देतीं। न बताओ तो यह कि हमें बेगाना बनाकर जा रहे हो।

अभी जा कहाँ रहा हूँ। इतनी जल्दी इस जगह से छुट्टी मिले, ऐसा मेरा भाग्य कहाँ। जाने के इरादे—या यों कहो, सिर्फ़ भूमिका पर तो यह आफ़त है। जिस दिन जाने का निश्चय होगा, उस दिन तो जाने कौन-कौन सी दीवालें खड़ी होंगी।

विपिन ने बक्से का ढक्कन ज़ोर से पटक दिया। मात्र दो कपड़े, मुँह-हाथ धोने का कुछ सामान और तौलिया—ऐसे भी इतने बड़े बक्स में ये वाहियात की तरह लग रहे थे।

"कहाँ गया झोला साला !" वह बड़बड़ाया। और उठकर कमरे में, अरगनी पर इधर-उधर देखता फिरा। गन्दे कपड़ों के नीचे झोला दिखा। खींचने से समूचे कपड़े लद से ज़मीन पर आ रहे। उसने झोले में पैंट और कमीज़ को रक्खा। तौलिया भी तह करके सजाया। चलते वक़्त साक्षात्कार की सूचना वाले काग़ज़ की याद आयी।

"एक न एक विपत आ ही जाती है।" मुँह विकृत करके उसने अपनी परछाइँ को देखा। झोले को चारपाई पर फेंककर, ताली ढूँढ़कर उसने बक्सा खोला। काग़ज़ निकालकर उसे भी झोले के हवाले किया और कोठरी बन्द करके सीढ़ियाँ उतरता आँगन में आ गया।

कनिया सामने की चारपाई पर लेटी थीं। उन्होंने अपना मुँह हाथों की गेंडुर में लपेट लिया था और गुमसुम पड़ी थीं।

"भाभी।" निकसार की ओर मुड़ते पाँव रुक गये थे—"जा रहा हूँ। चन्ना को ले लूँगा।"

"रुको ज़रा।" कनिया जल्दी से उठीं।

वे कोनिया घर में घुस गयीं। विपिन फिर कुढ़ने लगा।

"यह नाश्ता बनाया था, इसे झोले में रख लो।" कनिया ने उसके हाथ से झोला ले लिया। और नाश्ते के डब्बे को जो काग़ज़ में लिपटा था झोले की खाली जगह में रखती हुई बोलीं—"कल शाम तक लौट आओगे न ?"

"और क्या करूँगा वहाँ ? शाम चार वाली बस मिल गयी तो उससे, नहीं शाम छः बजे से तो ज़रूर ही आ जाऊँगा।"

"चन्ना बस स्टैंड पर मिलेगा। देख लेना। रात को अकेले मत चल देना।"

विपिन को हँसी आ गयी। भाभी सचमुच उसे अभी निरा बच्चा ही समझती हैं। इस घटना को बीते आठ-दस दिन हो गए। वह ग़ाज़ीपुर गया और लौट भी आया। पर उसे जब भी उस रात की बातें याद आतीं, अधरों पर हल्की हँसी आ जाती है। चलो ग़नीमत हुई कि चलते वक़्त अक़्ल आ गयी और भाभी से पूछ लिया। वरना वे बिना नाश्ता लिये, बिना कहे चले जाने की बात पर कई दिन तक मुँह फुलाये रहतीं।

●

शाम हो रही थी। विपिन आज दरवाज़े से उठकर कहीं जाने-आने की मनःस्थिति में नहीं था। छावनी पर हलवाहों की भीड़ वैसे ही थी। दिन भर वे रस्सियाँ बटते-बटाते रहे थे। अब बढ़ई आ गया तो सभी अपने हलों को ठीक-ठाक कराने में व्यस्त थे। मिस्त्री को चारों ओर से घेरकर लोग बैठे थे।

बाबू बुझारथ सिंह अचानक खेती-बाड़ी के कामों में बहुत दिलचस्पी लेने लगे थे, जभी तो वे बढ़ई के पास ही मचिया खींचकर बैठ गए थे और हलवाहों तथा जग्गन मिसिर और गाँव के दो-एक दूसरे लोगों से, जो वहाँ बढ़ई के खाली होने की प्रतीक्षा में बैठे थे, खूब हँस-हँसकर गप्पें कर रहे थे। कामकाजी लोगों की एक खासी भीड़ चबूतरे पर जमा थी, जो दुनिया से बिल्कुल अलग अपने दिलचस्पी के काम में तल्लीन और मगन थी।

"हे विंधेसरी।" दिलचस्प बातों की गिरफ़्त से अपने को मुक्त करते हुए मिसिर चिल्लाये—"अब की हमारा हल ठोंक-ठाँक दो। अभी बैलों को लेहना भी नहीं डाला है मैंने।"

"ले आवो महराज जी, आप तो छोटे मलिकार के साथ चिलबिल्ला-बाजी कर रहे हैं।"

"अब देखो विधेसरी बेजइयाँ मत बनाओ। बाबू बुझारथ सिंह कह रहे थे ई सब। मैं तो जानता भी नहीं था कि तुम्हारी लोहारिन तुम्हें पटक-कर आरी से चीरने जा रही थी। हाँ, मेरा कसूर इतना ज़रूर है कि मैंने पूछ दिया कि क्या बात हुई थी। मुझे तो ई भी नहीं मालूम कि तुम अम्बा-परसाद राजवैद के यहाँ बिजली का झटका लगवाने गये थे।"

विंधेसरी ने मुँगरी पर रखा परिहथ झटक दिया और तिनककर बोला—"मैं कहे देता हूँ छोटे मलिकार। समहुत-साइत का बखत है। खून-खराबा हो जायेगा। आप मिसिर जी को मना करिए, नहीं ई हलफाल सब धरा रह जायेगा, हाँ।"

"मिसिर की यही आदत है।" गाँव के एक ठेठ गिरहस्थ, जो बड़ी देर से विन्धेसरी को अपने यहाँ ले जाने के लिए इन्तज़ार में बैठे थे, उदासीन और तटस्थ भाव से बोले—"बेर ढल रही है। मगर ई हँसमुंसनी किये जा रहे हैं। लग रहा है, समहुत करने को एक हल भी खड़ा नहीं हो पायेगा इस बार।"

उन्होंने अपनी निराशा कुछ ऐसे आत्म-ग्लानि भरे ढंग से कही कि मिसिर एकदम चुप हो गए।

"घबड़ाव मत बाबू दीना सिंह। बस अब हो जाता है। कुल दो ठो रह गया और। जहाँ आदमी बैठते हैं, वहाँ हँसी-मजाक हो ही जाता है।"

मिसिर अपने हल की हरिस पकड़कर खड़े थे। हल विंधेसरी के सामने था।

"कहो महराज।" विंधेसरी मूँछों में मुस्कराते हुए बोला—"हरिस तो काम नहीं देगी।" उसने तरैली पर ज़ोर से बसूला मारा। हरिस का तड़का हुआ माथा मुँह फैलाने लगा।

"अरे अरे विंधेसरिया!" मिसिर चिल्लाए—"ई क्या कर रहा है? मेरे पास तो दूसरी हरिस भी नहीं। अरे भाई सँभाल के, हाँ-हाँ।"

"अब सँभाल के का?" विंधेसरी कुटिल हँसी हँसकर बोला—"हम तो गये थे वैद के यहाँ बिजली का झटका लगवाने। हम तो नामर्द हैं। अब का चिल्ला रहे हो आप? एक झटका ज़रा हमारा भी तो देखो महा-राज जी!" उसने दूसरी बार भी बसूला दे मारा। हरिस का निचला हिस्सा फट गया।

"अरे भाई, ऐसा गज़ब मत कर। दोहाई विंधेसरिया। देख। भगवती कसम, मैं तुमसे अब कभी मजाक नहीं करूँगा। अरे भाई इसे ठीक कर। यही हरिस है साली हमारे पास। बरिस दिन पर समहुत आया है भइया, नागा मत करा, हाँ।"

"हम काहे को नागा करायें। आप लाये ही हैं फटी-सड़ी हरिस। अब इससे कैसे हल बाँधू?" विंधेसरी प्रश्नसूचक दृष्टि से मिसिर की ओर देखने लगा।

मिसिर बेचारे की तरह मुंह लटकाये खड़े थे। विंधेसरी को दया आ गयी। उसने अपने झोले में से लोहे की बन्द निकालकर हरिस के सिर पर मढ़ा और उसे कील गाड़कर जड़ दिया। फिर मिसिर के हल को परिहथ पर पूरी तरह उचित ढंग से जमा करके उसने पाँचर ठोंक हल खड़ा कर दिया।

"लो महराज जी, जरा देख लो।"

मिसिर ने हिला-डुलाकर देखा। हल बिल्कुल दुरुस्त था। मिसिर के होठों पर हँसी उभर आयी। उन्होंने खुशी में गर्दन हिलाकर कहा—"बाह विन्धेसरी तेरे हाथ में तो जादू है, हाँ।"

"ई जादू लेकर हम क्या चाटेंगे महराज जी।" विंधेसरी उदास होकर बोला—"ऊ मेरी छाती पर इसलिए नहीं चढ़ी थी कि मैं नामर्द हूँ। पाँच दिन से फाका हो रहा है, घर में। कहती थी कि जाओ मिर्जापुर। सुना, जंगल कट रहा है उहाँ। वहीं काम करो। गाँव में रहोगे, तो लड़के उपास करके मर जायेंगे।"

सहसा जैसे एक अदृश्य अपनी घिनौनी छाया फैलाकर सबके चेहरे पर उतर गया हो। ऐसा घोर सन्नाटा था कि हर आदमी अपनी साँस खुद ही सुन रहा था।

"मेरा समहुत का उबरुआ महराज जी।" मिसिर को हल उठाते देख विंधेसरी संकोचपूर्वक बोला।

"अभी दे जाता हूँ विंधेसरी।" मिसिर हल उठाये चले गये।

●

विपिन बरामदे में वैसे ही बैठा था। उसे जग्गन मिसिर पर कुढ़न हो रही थी। दो घण्टे से वहाँ बैठे गप्प कर रहे हैं, पर यहाँ एक क्षण आने को भी उन्हें फ़ुरसत नहीं मिली। जग्गन मिसिर की इस निर्मोही तटस्थता पर उसे ईर्ष्या भी हो आयी। मिसिर मनचाहे लोगों के साथ घण्टों बात कर सकते हैं। उन्हें तब समय की शायद ही कुछ परवाह होती हो। बशर्ते वह समय उनके कामों से अलग हो। काम काम है, गप्प गप्प। मिसिर इन दोनों के बीच ऐसी मुस्तैदी बरतते हैं कि देखनेवाला दंग रह जाये। खेल-तमाशा, हँसी-मज़ाक में यों मशगूल रहेंगे कि जानो इनके अलावा उन्हें कुछ करना ही नहीं है। पर जहाँ काम का समय आया, वे उन सभी मन-पसन्द क्रिया-कलापों से यों बाहर निकल जायेंगे, जैसे इनसे कभी उनका

सम्बन्ध ही नहीं था। विपिन को मिसिर की यह इच्छा-भेदी आदत अच्छी भी लगती है, पर ईर्ष्या भी जगाती है।

"विपिन बाबू।" सहसा बरामदे में देवनाथ दाखिल हुआ।

"अरे वाह देवू, आओ, आओ। कहाँ से टपक पड़े प्यारे लाल। मुझे खबर भी नहीं दी कि तुम गाँव आ रहे हो।"

"खबर देने की मोहलत ही नहीं मिली।" देवू बड़ी अदा से मुस्कराते हुए विपिन की चारपाई पर बैठ गया—"मैं आने को कहाँ था कि खबर भेजता। वह तो एकाएक ऐसा हुआ कि आने की इच्छा रोके न रुकी। मैं जब से क़स्बे गया, फिर कभी यहाँ नहीं आया। और नहीं आता। मगर ऐसी बात हो गयी कि आना पड़ा।"

"क्या बात हुई भाई?" अचानक विपिन का चेहरा आशंका से खिंचा सा लगने लगा।

"आप ऐसे घबड़ाते क्यों हैं?" देवनाथ हँसा। उसने जेब से एक काग़ज़ निकालकर हिलाया—"यह सम्मन आया है आपके नाम।"

"मेरे नाम?" विपिन का चेहरा बिल्कुल फक् हो गया—"किसका है?"

देवनाथ ने कागज़ विपिन को थमा दिया। लिफ़ाफ़ा खुला था। काग़ज़ निकालकर विपिन पढ़ता रहा और देवनाथ बड़े ध्यान से उसके चेहरे पर निरन्तर विकसित होती खुशी की हर आभा को देखता रहा।

"अरे जीवो मेरे यार।" विपिन चारपाई से कूद पड़ा। देवनाथ ठठाकर हँसा—"कहिए जनाब, आपको तो विश्वास ही नहीं होता था।"

दोनों गले से गले मिल गए। उनकी सीमातीत खुशी बाहर बैठी भीड़ के लिए काफ़ी कुतूहल का कारण बन गयी।

तभी जग्गन मिसिर एक डलिया में अनाज भरे हुए आए।

"लो हो विंधेसरी अपना उबरुआ।" वे विंधेसरी के पास खड़े हुए। विपिन और देवू की किलकारियाँ उन्होंने भी सुन ली थीं। मुड़कर उनकी ओर देखा भी। पर उन्होंने कोई उत्सुकता नहीं दिखायी। बाबू बुझारथ

सिंह ने मिसिर को संकेत भी किया और बरामदे में जारी इस हुल्लड़बाजी के प्रति अपनी मौन किन्तु उत्कट जिज्ञासा भी दिखाई, पर मिसिर ओठ दबाये विधेसरी की फैली चादर पर डलिया का अनाज डालते रहे।

विधेसरी से छुट्टी पाकर जब वे बरामदे की ओर मुड़े तो बुझारथ सिंह भी पीछे-पीछे लग गए। बुझारथ सिंह के मन में विपिन को नाचते-कूदते देख मामूली कुतूहल नहीं जगा था। कोई बहुत गर्म चीज़ मन के भीतर खुदबुदा रही थी। पर वे विपिन से पूछ नहीं सकते। देवू से भी नहीं। कोई ऐसी खास बात नहीं है। पर वे पूछ नहीं सकते। उन्होंने अपनी चाल-चलन और स्वभाव के कारण अपना सभी हक़ खो दिया है। वे चुपचाप मिसिर के पीछे-पीछे आकर अपनी चारपाई पर बैठ गए।

"क्या बात है ?" मिसिर बरामदे में घुसते ही बोले—"आज बहुत खुशी मनायी जा रही है। कई जगह बरामदे की फरस भी टूट गयी लगती हैं।" वे नाटकीय मुद्रा बनाकर फरस का मुआयना करने लगे।

"बात यह है चाचा कि विपिन बाबू प्रोफेसर हो गए। उनकी नौकरी लग गयी। यह देखो नियुक्ति-पत्र।" देवनाथ ने विपिन के हाथ से काग़ज़ लेकर मिसिर की ओर बढ़ाया।

"अरे वाह, तो यह बात है। तब भाई मिठाई मिलेगी।" मिसिर ने बुझारथ सिंह के पास बैठते हुए कहा—"क्यों बुझारथ बाबू! सुन लिया न ? विपिन बाबू प्रोफेसर हो गए।"

सहसा बुझारथ सिंह ने दोनों बाँहों में घुटने फँसाकर अपने को परम गंभीर बना लिया। खुशी के मारे उनकी बाँहों में बँधे होने पर भी घुटने काँप जाते थे, पर उन्होंने चेहरे को पूरी तरह निर्भाव ही रहने दिया।

"क्यों रे देवू, कितनी तनखा मिलेगी विपिन बाबू को ?" मिसिर ने पूछा।

"शुरू में कुल चार सौ के करीब मिलेंगे मिसिर चाचा।" देवनाथ बोला—"फिर धीरे-धीरे तनखा बढ़ती जायेगी।"

"अच्छा। तब तो मजे की तनखा है।"

देवनाथ कुछ न बोला। बाकी लोग भी चुप रहे।

"तो आपको जाना कब है विपिन बाबू।" मिसिर खड़े हो गये।

"छह-सात जुलाई तक चला जाऊँगा।" विपिन बोला—"बैठिए न, इतनी जल्दी क्यों जा रहे हैं ?"

"नहीं, काम है। सुबह समहुत है। उसका भी इन्तज़ाम करना है। फिर आऊँगा।"

मिसिर चले गये। उन्हीं के साथ देवनाथ भी। बरामदे में सिर्फ़ बुझारथ और विपिन ही बच रहे। दोनों में से कोई किसी से न बोला। आज की चुप्पी शायद बुझारथ सिंह को ही अखरी। वे उठे। जूतों में पैर डाला और उन्हें घिसटते हुए बखरी की ओर चल दिये।

"सुनती हो ?" आँगन में पहुँचते-पहुँचते बुझारथ सिंह की नक़ली गंभीरता छू-मन्तर हो गयी थी। सामने कहीं कनिया को न देखकर वे चिल्लाये—"अरे शीला! तेरी अम्मा नहीं हैं क्या ?"

"कोनिया घर में हैं।" लड़की ने हाथ से इशारा किया।

"अरे भई, सुनती हो ?" बुझारथ कोनिया घर के दरवाज़े पर आ गए।

यद्यपि इधर उनकी कनिया से बोलचाल होने लगी थी। दोनों के बीच पहले जैसा खिंचाव अब नहीं रहा, पर बुझारथ की यह उतावली कनिया को काफ़ी नापसन्द आयी।

"क्या है ?"

एक क्षण के लिए बुझारथ चुप रह गए। सामने खड़ी आकृति की प्रश्नसूचक आँखों ने उनकी प्रसन्नता के गुब्बारे में सुइयाँ चुभो दीं।

"विपिन प्रोफेसर हो गया।" वे हकलाकर बोले। "झब्बू उपधिया का लड़का आया था क़स्बे से चीठी लेकर।"

"हूँ।"

"चार सौ रुपिया तनखा पायेगा।" उन्हें लगा कि कनिया ने प्रोफेसर का सही मतलब नहीं समझा।

"हूँ।"

"तुम्हें खुशी नहीं हुई क्या ?" बुझारथ बाबू अचानक खीझकर बोले—"अरे अपने परिवार में तो इतने रुपये कमानेवाला कोई कभी जन्मा ही नहीं था। अरियात-करियात में भी कोई नहीं है इतनी बड़ी नौकरीवाला। मेरे खानदान में था ही कौन पढ़ा-लिखा। कभी किसी ज़माने में सुना था मालिक काका के ताऊ पुलुस में गये थे, मगर बेचारे घोड़े से गिरकर....।"

"चुप रहिए....!" कनिया इतनी तेज़ चीखीं कि बुझारथ सकपकाकर खड़े हो गए—"बे-बात की बात ही आपको आती है। मालिक काका के ताऊ का क्या जिक्र आ गया ?"

बुझारथ को बुरा लगा। कनिया ने कभी उनसे इस तरह से बातें करने की हिम्मत नहीं की थी। कनिया के इस आकस्मिक गुस्से का वे कारण नहीं समझ पाये। वे चुपचाप मुड़े और बखरी के बाहर चले गये।

उसी चारपाई पर बैठकर वे जलते-उबलते रहे। शायद मालिक काका के ताऊ का परमान देने से चिढ़ गयी। अरे तो मैं क्या कोई विपिन का अनभल ताकता हूँ। ऊ तो बात आयी तो कह दिया। बड़ी आई खैर-खाही दिखाने। चमरपिल्ली की आँखें चढ़ गयी हैं आजकल। यह भी नहीं समझती कि किससे क्या कह रही है। हूँह्।

कनिया को लगा कि उनका शरीर काँप रहा है। पैरों में इतनी ताक़त नहीं कि वे उन्हें सँभाल सकें। वे धीरे-धीरे आगे बढ़ीं। बड़ी मुश्किल से वे चारपाई के पास आयीं। सहारा लेकर वे उसी चारपाई पर बैठ गयीं। उन्हें लगा कि अचानक उनकी आँखों के आगे अँधेरे का एक पर्दा काँप गया है। उन्हें लगा कि इस पर्दे पर एक छाया हिल गयी है। दप-दप गोरा शरीर, सफ़ेद धोती, सफ़ेद मिरजई और सफ़ेद साफा।

"तुम विपिन का ख्याल रखना बहू।" फुसफुसाहट जैसी उभरती है—"इस परिवार पर किसी कुग्रह की दृष्टि है। जो सबसे बहुमूल्य होता है, वही खो जाता है।"

"बाबू जी।" वे चीख उठीं। उन्हें यह मालूम नहीं हुआ कि वे सच-मुच चीखी हैं। वे उसी तरह चारपाई पर बैठी काँप रही थीं।

"भौजी !" शीला उन्हें झकझोर रही थी।

"अयँ।" वे प्रकृतिस्थ होकर बोलीं—"क्या है ?"

"तुम चीखी थीं ?"

"हाँ, नहीं तो। तुम जाओ। मैं ठीक हूँ। ज़रा दिल घबरा रहा था।"

●

शीला शंकित आँखों से उन्हें देखती हुई अपनी जगह पर जाकर बैठ गयी। कनिया चारपाई पर लेट गयीं। पिछले एक पखवारे से उन्होंने जब से विपिन के जाने की बात सुनी है, घबराई रहती हैं। जाने कितने लोग नौकरी करने के लिए बाहर जाते हैं। इसमें इस तरह घबराने की क्या बात ? पर पता नहीं क्यों कनिया को लगता है कि कोई बहुत बुरी घटना घटनेवाली है। लगता है, अब वह घड़ी आ गयी है, जिसके लिए उनके मरते ससुर ने आगाह किया था।

ऐसी बात नहीं कि मैं विपिन को कहीं बाहर जाने देना नहीं चाहती। बाहर ही तो रहता रहा है वह पिछले छह-सात साल से। अभी तो इस साल न रहा है घर। उसके पहले भी तो आता-जाता था बाहर। पर ऐसी घबड़ाहट और धड़कन कभी नहीं होती थी। कनिया को लगता है कि इसमें कुछ विपिन का भी दोष है। चोटी पाकर अपने तो दरवाज़े पर बैठा रहा और मूर्खचन्द को भेज दिया यहाँ, जो लगे मलिकार के ताऊ का दृष्टान्त देने। एक आदमी को बात करने का भी सलीक़ा होता है।

●

पचीस जून को जो पानी बरसा, वह जाने कब का सूख गया। गरमी से तपी-जली धरती पर यह पानी छनछनाकर उड़ गया। आसमान फिर उदास और डरावना लगने लगा। सुबह से ही तलैया के कीचड़ीले जल पर टिटिहा पंछियों का झुण्ड मँडराने लगता। तड़पती-उमसती मछलियाँ दम तोड़ने लगीं। उनकी सड़ाँध से हवा महकने लगी। बदबूदार भूखे पंछी गाँव की गलियों में आकर झपट्टा मारते। मरे ढोरों की लाश पर गीधों की भीड़ लगी रहती।

उस दिन सात जुलाई थी। विपिन का सारा सामान तैयार था। उसे कुछ करना नहीं था। पर दरवाज़े पर चुपचाप बैठा रहना भी अच्छा नहीं लगता। किसी तरह दोपहर कटी। दो-तीन बजे के क़रीब उसे चल देना था। वह खाना खाकर बखरी में ही बैठा रहा। कनिया सबको खिलाने-पिलाने में लगी रहीं। उधर से छुट्टी पाकर वह विपिन के पास आ बैठीं। वे बहुत कुछ कहना चाहती थीं। पर कुछ कह न सकीं।

तभी रमचन्ना आ गया। बुझारथ सिंह भी आए। बिस्तर और बक्स आँगन में रखा था।

"क्यों रे यह तुझसे चला जायेगा न ?" बुझारथ ने पूछा।

रमचन्ना ने बक्से और बिस्तर को बारी-बारी से उठाकर देखा।

"धन्नू को भी बुला लो।" कनिया बोलीं—"आखिर खाली ही तो बैठा है। समहुत होकर ही तो रह गया। खेत में तो कोई काम है नहीं।"

रमचन्ना धन्नू को बुला लाया। दोनों ने सामान उठाया। कनिया ने बगल से उठाकर झोला और अटैची भी उन्हें थमा दी। दोनों चले गये। अब विपिन को खाली हाथ हिलाते जाना होगा, उसने सोचा। तभी कनिया उसके सामने नाश्ता लेकर खड़ी हो गयीं।

"नाश्ता कर लो। वहाँ बस पहुँचते-पहुँचते तो रात हो जायगी।" वे बोलीं।

विपिन ने एक क्षण उनकी आँखों की ओर देखा। फिर मुसकराया और उनके हाथ से कटोरा लेकर नाश्ता करने लगा।

चलते समय कनिया अचानक बहुत उदास हो गयीं—"जा रहे हो विप्पी, जाओ। पर एकदम से बिसार न देना। यहाँ की हालत जानते ही हो। साल भर रहकर छाँह किये रहे। अब कौन देखेगा ? कभी-कभी खोज-खबर लेते रहना।" उनकी आँखें भरभरा आयीं।

विपिन को लगा कि सहसा कोई चीज़ उसके गले में अटक गयी है।

"मैं कौन सा दूर जा रहा हूँ भाभी। ग़ाज़ीपुर कितनी दूर है।" वह हकलाकर बोला—"छुट्टी होगी तब तो आऊँगा ही, ऐसे भी जब ज़रूरत हो, खबर कर देना।" वह आगे बोल न सका। उसने कनिया के पैर छुए और चल पड़ा।

विपिन बाहर चबूतरे पर आया तो बइठके की चारपाई से उठकर मिसिर सामने आ गये।

"चल दिये विपिन बाबू।"

"हाँ मिसिर चाचा, नमस्कार।"

"अरे भाई इतनी जल्दी नमस्कार क्यों ? मैं भी चल रहा हूँ। चलो सीपिया नाले तक तो चलूँगा ही।"

मिसिर साथ हो लिये। विपिन ने बुझारथ के पैर छूकर प्रणाम किया। चलते-चलते उसने देखा, कनिया बखरी के दरवाज़े पर बाज़ू से सटी खड़ी हैं। उनकी भरी-भरी आँखें शून्य में टिकी हैं।

"तो आखिर में तुम भी चल ही दिये विपिन बाबू।"

देवीधाम वाले छवरे से सीपिया नाले के रास्ते पर मुड़ते हुए मिसिर ने कहा।

"क्या करता मिसिर चाचा।" उसने अपने को पूरा तटस्थ रखते हुए कहा—"यहाँ रहकर कूड़ा बनने से तो अच्छा है, कहीं चला ही जाऊँ। मैं तो बड़ी उम्मीदें लेकर आया था। जन्मभूमि के प्रति अपने मन में कम मोह भी नहीं है। पर ऐसा गन्दा और वाहियात हो गया है यह गाँव, यह मैं नहीं जानता था। पहले मुझे विश्वास नहीं होता था, पर साल भर यहाँ

रहकर मैंने यह जान लिया कि इस गाँव पर सचमुच ही कीनाराम का शाप है। इसे बरबाद होने से कोई रोक नहीं सकता।"

"कीनाराम वाली कथा में तो विपिन बाबू यह भी आता है कि उन्हें कनवाँ के लोगों ने शर्बत पिलाया। आदर-सत्कार किया। और उन्होंने खुश होकर बरदान दिया था कि तुम्हारी बस्ती फूलती-फलती रहेगी। यानी कनवाँ आबाद, करैता बरबाद यही न ?"

"हाँ। ऐसा ही कहते हैं लोग।"

"तो कनवाँ की हालत तो करैता से अच्छी होनी चाहिए न ? आप कभी वहाँ गये हैं। साल भर यहाँ रहे पर बग़ल के गाँव में तो गये न होंगे। जाकर वहाँ देखिए। शायद तब आप करैता को गाली देना छोड़ दें।"

"आप जो भी कहिए मिसिर जी, करैता जैसा बदनाम, दरिद्र, गिरा हुआ, बीमार गाँव शायद ही इस देश में कहीं हो। यहाँ कोई भला आदमी रह ही नहीं सकता।"

"आप जा रहे हैं विपिन बाबू, जाइए। कोई आपको उसके लिए दोष भी नहीं देगा। सभी जाते हैं। हमारे गाँवों से आजकल इकतरफ़ा रास्ता खुला है। निर्यात। सिर्फ निर्यात। जो भी अच्छा है, काम का है, वह यहाँ से चला जाता है। अच्छा अनाज, दूध, घी, सब्ज़ी जाती है। अच्छे मोटे ताज़े जानवर, गाय बैल, भेंड़े-बकरे जाते हैं। हट्ठे-कट्ठे मज़बूत आदमी जिनके बदन में ताक़त है, देह में बल है, खींच लिये जाते हैं पल्टन में, पुलिस में। मलेटरी में। मिल में। फिर वैसे लोग, जिनके पास अक़्ल है, पढ़े-लिखे हैं, यहाँ कैसे रह जायेंगे ? वे जायेंगे ही। जाना ही होगा। हमें इसके लिए दुःख भी नहीं है। पर भइया, जाते वक़्त हमें बेगाना बनाकर मत जाओ। गाली देकर न जाओ। तोहमत लगाकर लोग मेहरारू छोड़ते हैं, महतारी नहीं।" मिसिर मुसकराये।

"शायद आपको मेरी बात बुरी लग गयी मिसिर चाचा।" विपिन ने कहा—"मैं गाली नहीं दे रहा था। मैं खुद बहुत दुखी हूँ कि मेरा गाँव ऐसा हो गया। जो जा रहे हैं जायँ। उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। पर

जो रह रहे हैं, उन्हें तो सोचना चाहिए कि आखिर इस जगह को अच्छी कैसे बनाया जा सकता है।"

"जानेवालों से क्यों नहीं बनता-बिगड़ता विपिन बाबू !" मिसिर बोले—"इतना बड़ा गाँव है। सुना है मर्दुमशुमारी वाले कहते हैं कि आबादी दो हज़ार हो गयी। हुई होगी। रोज़ साले पिल्ले जन्मते हैं। सारी गलियाँ पें-पें की आवाजों से भरी हैं। ऐसे दो हज़ार का क्या महत्त्व ? इन अँधेरी बन्द भुतही गलियों में रोज़ ही सैकड़ों बिना चेहरे के लोग घूमते हैं। आते-जाते हैं। थूकते हैं। पेशाब करते हैं। ये भी क्या ध्यान देने लायक़ लोग हैं ? बिना चेहरे वालों की भीड़ में चेहरे वाले लोग बहुत कम हैं। चेहरा अच्छा है, या बुरा है, इससे कुछ होता जाता नहीं। चेहरा हो, यही बहुत है। और जिनके पास चेहरा है, वे चले जा रहे हैं, यही दुख की बात है।"

"जाते तो लोग पहले भी थे मिसिर चाचा !"

"हाँ भई, जाते थे। अक्सर वे जिन्हें यहाँ काम नहीं मिलता था, या फिर वे जो ज़मींदारी के जोर-जुलुम से घबड़ाकर भाग जाते थे। पर अब तो एक नये तरह का अनत गौन हो रहा है। यहाँ रहते वे हैं, जो यहाँ रहना नहीं चाहते, पर कहीं जा नहीं पाते। यहाँ से जाते अब वे हैं, जो यहाँ रहना चाहते हैं, पर रह नहीं पाते।"

"अच्छा ?" विपिन ने उदास हँसी हँसकर पूछा।

"यह हँसने की बात नहीं है विपिन बाबू ! मुझको तो लगता है कि अब आदमी का मन ही बदल गया है। कुछ ऐसा निर्मोही स्वभाव होता जा रहा है कि अपने अलावा कोई किसी के बारे में कुछ सोचता ही नहीं। यहाँ तक कि खून के रिश्ते भी झूठे होते जा रहे हैं।"

"फिर गाँव का क्या होगा ?"

"गाँव का क्या होगा ? गाँव कोई आदमी है कि उसका कुछ होता रहेगा। अरे भाई, यह तो खेमा है। कभी उखड़ता है। कभी गड़ता है। कभी बुरे दिन आते हैं। कभी अच्छे दिन आते हैं। कभी बिगड़ता है, कभी

सँवरता है। असली चीज़ तो धरती है। आप क्या समझते हैं कि अब दुनिया को धरती से कोई मतलब नहीं रहा? धरती ही सब कुछ देती है विपिन बाबू! उसके बिना आदमी का गुज़र नहीं। यह पक्की बात है। खेमा ख़राब होगा, इन्तज़ाम बिगड़ेगा। धरती से ज़रूरी चीज़ों का मिलना बन्द होगा। हाय तोबा मचेगी। तो झख मारकर खेमा दुरुस्त करना होगा। नहीं करोगे तो मरोगे। है कि नहीं?"

विपिन आश्चर्य से मिसिर की ओर देखने लगा।

"लो भाई यह रहा सीपिया नाले का पुल।" मिसिर हँसे।

"मिसिर चाचा!" उसने उनका हाथ पकड़ लिया—"कभी ग़ाज़ीपुर भी आइए न? ज़रा शहर भी देखिए।"

"अरे भई ऊ तो हेडकुवाटर है। बिना वहाँ आये, काम कैसे चलेगा। हम तो चाहे रोकर जाएँ तो, हँस के जाएँ तो, वहाँ जायेंगे ही। सवाल आप लोगों का है कि हेडकुवाटर पहुँचकर फटे-पुराने खेमे को भूल न जाना।"

"अच्छा मिसिर चाचा।" विपिन ने लपककर उनके पैर छू लिये।

"जीते रहो बाबू। जीते रहो।"

विपिन चला गया। मिसिर लौट पड़े।

सीपिया नाले के पुल के अन्तिम छोर पर पहुँचकर वह चौंक पड़ा। उसे लगा कि नीचे पुल के ताखे में कोई चीज़ खड़की है। शायद पत्थर का कोई ढोका गिरा है। तभी नीचे से ऊपर की ओर आती हुई एक आकृति दिखी।

विपिन उधर ही देख रहा था। सामने दयाल महराज खड़े थे। वे हाँफ रहे थे और बड़े इत्मीनान से मुसकरा रहे थे।

"नाले में बैठे-बैठे कमर पिराने लगी।" वे पास आकर बोले।

"आप वहाँ छिपकर क्यों बैठे थे?"

"छिपकर कहाँ बैठा था। ऊपर घाम है न? चन्ना और धन्नू के साथ ही आया था। वे सब चले गये। मैंने कहा, भई मैं तो अब यहीं बैठूंगा। विपिन बाबू आ जायँ तो साथ ही चलूँगा।" वे फिर हँसे।

"तो आप क़स्बे तक चलेंगे?" विपिन ने पूछा।

"क़स्बे तक ही काहे? ग़ाज़ीपुर चलूँगा।"

"ग़ाज़ीपुर?"

"अरे आपको नहीं मालूम? बहूरानी ने आपसे नहीं कहा?"

"नहीं तो।"

दयाल महराज फिर हँसे—"नहीं कहा होगा। कह रही थीं कि विपिन सुनेगा तो रोक-टोक करेगा। आप अगुताहे चले जाइये। न माने तो कहियेगा कि कनिया ने कसम दिलायी है कि दयाल महाराज को साथ ले ही जाना पड़ेगा।"

विपिन ने खीझकर कहा—"कनिया जाने क्या-क्या सोच लेती हैं। हमसे कहना चाहिए था। फिर दयाल महराज! आपका घरद्वार कौन देखेगा? बूढ़ी माई हैं। गाय है। आपको खुद सोचना चाहिए।"

"तो आपसे मिसिर ने भी नहीं बताया। नहीं बताया होगा। माई जग्गन के घर रहेगी और गैया भी। बहू जी ने मिसिर से ही तो पूछा था कि विपिन के साथ जाने के लिए कौन आदमी ठीक रहेगा। जग्गन ने कहा दयाल ठीक पड़ेगा। वह परेशानी में भी है आजकल। उसी को ले जायँ। वह उनकी पूरी देख रेख करेगा।"

विपिन चुप रह गया। उसने एक लम्बी साँस ली। पूरब तरफ़ सीपिया नाला है। उधर पच्छिमी छोर पर पेड़ों की पाँत में खोया गाँव का हाशिया, काजल की लकीर की तरह। बीच में ढलते सूरज की रोशनी में फैला है करैता का सीवान, कहीं हरियाली नहीं, कहीं जल नहीं, बिल्कुल वीरान, तेज बुख़ार में तपती उदास आँख की तरह। तभी विपिन को कनिया याद आ गयीं, छावनी के दरवाज़े पर बाज़ू से सटी हुई कनिया! वे अपनी वीरान, उदास आँखों से उसे एकटक देखे जा रही थीं।

●